आचार्य विष्णु गुप्त (चाणक्य) प्रणीत

कौटिल्य अर्थशास्त्र

(भाषा टीका, चाणक्य सूत्र एवं पारिभाषिक शब्दावलि सहित)

●

सम्पादक :

श्री भारतीय योगी

ज्ञानेश्वरी भगवद्गीता व पंचतंत्र के भाष्यकार
और हस्तरेखा महाविज्ञान व सम्वत् २००० के प्रसिद्ध लेखक।

●

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००१ [उ०प्र०]

आचार्य विष्णुगुप्त कौटिल्य (चाणक्य) कृत

कौटिल्य अर्थशास्त्र

सरल हिन्दी अनुवाद एवं पारिभाषिक शब्दावली सहित

—*—

अनुवादक :

श्रीभारतीय योगी

सं० २००० अथवा भावी महाभारत एवं हस्तरेखा महाविज्ञान के रचयिता तथा ज्ञानेश्वरी गीता एवं पंचतन्त्र के भाष्यकार

—*—

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर) बरेली

प्रकाशक :

डा. चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली (उ० प्र०)

❋

सम्पादक :

श्री भारतीय योगी

❋

❋

प्रथम संस्करण
१९७३

❋

मुद्रक :
विश्व भारती प्रेस,
मथुरा

❋

मूल्य : बारह रुपये

भूमिका

प्रस्तुत ग्रंथ संस्कृत वाङ्मय की एक ऐसी अद्भुत कृति है, जिसका अवलोकन करने के लिए भारतीय ही नहीं विदेशी विद्वान भी अत्यन्त उत्सुक रहते हैं। इस ग्रंथ के मूल रचयिता आचार्य विष्णु गुप्त कौटिल्य अर्थात् चाणक्य थे, जो कि सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामात्र थे। मगध नरेश महानन्द पद्म ने इनका तिरस्कार किया, जिसके फलस्वरूप उसे इनकी क्रोधाग्नि का शिकार होना पड़ा। राजनीति के महान् पंडित चाणक्य ने उक्त राजा को नष्ट करके चन्द्रगुप्त मौर्य को राज्यपद पर आसीन किया और स्वयं उसके प्रधान अमात्य का पद ग्रहण करके कुशलता पूर्वक राज्य का संचालन करने लगे।

यद्यपि यह ग्रन्थ अत्यन्त कठिन है। इसमें ऐसे अप्रसिद्ध पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग भी हुआ है, जिनका समझना कोई सरल कार्य नहीं है। विषय भी इतना गम्भीर है कि हर कोई इसे न तो समझता है और न समझने की चेष्टा करता है। फिर भी अनेकों व्यक्ति इसे पढ़ने के लिये लालायित रहते हैं, क्योंकि यह ग्रंथ आर्थिक और पारमार्थिक दोनों हो दृष्टियों से लिखा गया है।

यह स्वीकार करना होगा कि अनेक स्थलों पर इसके पाठ के विषय में सन्देह होता है और कुछ प्रतियों में कहीं कहीं शब्दान्तर भो दिखाई दिया है किन्तु चेष्टा यह की गई है कि जो शब्द उपयुक्त प्रतोत हुआ, वहो ग्रहण किया गया है। फिर भी मूल पाठ की सर्वथा शुद्धि का दावा नहीं किया जा सकता।

हाँ, यह कहना कुछ अनुचित न होगा कि उपलब्धि के अनुसार जितना संभव हुआ, उतना शुद्ध बनाने की चेष्टा की गई है।

यह अवश्य ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारतीय जनता विदेशी ग्रंथों में जितनी रुचि लेती रखती है, उतनी अपने ग्रंथो में नहीं लेती। संस्कृत साहित्य के महासागर में जो अमूल्य निधियाँ भरी पड़ी हैं, उनके प्रति हम तो उपेक्षा का भाव रखते हैं, किन्तु विदेशी विद्वान उन्हें खोज कर अपना भंडार भर रहे हैं। इसी ग्रंथ के विषय में लीजिए—सर्व प्रथम इस ग्रंथ का अनुवाद आज से साठ वर्ष पूर्व आंग्ल भाषा में प्रकाशित हुआ था। तत्पश्चात् अन्य विद्वानों का ध्यान इसकी उपयोगिता की ओर गया और उन्होंने हिन्दी अनुवाद के प्रयास किये। किन्तु विशेष ध्यान तब हुआ, जब कि इस ग्रंथ का रूसी भाषान्तर हुआ और रूस में उसकी लाखों प्रतियाँ प्रकाशित होते ही बिक गयीं। अपने ही रत्नों की गुण ग्राहकता का अपने में अभाव और विदेशियों द्वारा उन्हीं से लाभार्जन का और प्रमाण क्या हो सकता है ?

प्रस्तुत ग्रंथ में विभिन्न आचार्यों के भिन्न मत एवं कौटिल्य के मत का पृथक्-पृथक् विवेचन यह शंका उत्पन्न करता है कि क्या इस ग्रंथ की रचना कौटिल्य ने स्वयं की थी अथवा उनके किसी शिष्य या मतावलम्बी ने ? इसका समाधान ग्रंथ के अन्तिम श्लोक के प्रमाण से ही संभव है:—

दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेशु भाष्यकाराणाम्।
स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च ॥

अर्थात्—विभिन्न शास्त्रों के विषय में मत वैभिन्न से भाष्यकारों में विवाद देखकर स्वयं आचार्य विष्णुगुप्त ने सूत्रों की रचना के साथ उनका भाष्य भी लिख दिया।

अब यह शंका होती है कि कौटिल्य स्वयं अपने इस ग्रंथ में सूत्र-रचना की बात कहते हैं तो प्रायः ग्रंथ के गद्यांश के अन्त में और अनेक प्रकरणों में बीच-बीच में भी श्लोकों का समावेश मिलता है, उनकी रचना किसने की ? यद्यपि अनेक विद्वान् इन्हें भी कौटिल्य-रचित मानते हैं, फिर भी यह निर्णय होना कठिन ही है कि वे श्लोक भी कौटिल्य के ही हैं अथवा किसी अन्य आचार्य के ?

प्रस्तुत ग्रंथ राजतन्त्रात्मक राज्यों के विषय में होते हुए भी उच्छृंखल या स्वेच्छाचारी राजा के शासन का किंचित् भी समर्थन नहीं करता। इसके अनुसार राजा को प्रजापालक, न्यायवान, धार्मिक और योग्य मन्त्रियों के परामर्श पर चलने वाला होना चाहिए। साथ ही राष्ट्र-रक्षा के लिए सतर्क और कोश-वृद्धि की दिशा में सजग रहना भी राजा का परम कर्तव्य बताया गया है। स्वराज्य में प्रजा के योगक्षेम की दृष्टि से जो शासन-व्यवस्था की गई है, उसे 'तन्त्र' तथा निकटवर्ती और दूर वर्ती राज्यों पर तीक्ष्ण दृष्टि रखने और आवश्यक होने पर उनसे युद्ध करने के लिए शत्रु के प्रति कूटनीति के प्रयोग से सम्बन्धित जो कार्य किया जाय, उसे 'आवाप' कहा गया है। इन तंत्र और आवाप संज्ञक दोनों कार्यों पर दृष्टि रखते हुए ही इसमें अधिकरण, प्रकरण और अध्याय की कल्पना हुई प्रतीत होती है।

आचार्य कौटिल्य ब्राह्मणादि चारों वर्ण और ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों का अपने-अपने धर्म या आचार में अवस्थित रहना आवश्यक मानते हैं। तथा राजा से अपेक्षा रखते हैं कि वह उन सभी से उनका अपना-अपना धर्म पालन कराये। इसके लिए आवश्यक होने पर उचित दण्ड की व्यवस्था करे। किन्तु किसी को अनुचित दण्ड भी कदापि न दिया जाय। यही बात

ध्यान में रखते हुए उन्होंने दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के विवादों के लिए पृथक्-पृथक् न्याय की व्यवस्था की है।

कौटिल्य प्रजाजनों के प्रति ही दण्ड व्यवस्था करके चुप नहीं रह गये, वरन् उन्होंने न्यायाधीशों पर भी सतर्क दृष्टि रखी है और उनके द्वारा अनुचित दण्ड दिये जाने अथवा घूसखोरी द्वारा अपराधी को छोड़ दिये जाने पर कठोर दण्ड की नीति अपनायी है। यदि इस नीति का आज भी अवलम्बन किया जाय तो न्याय में भ्रष्टाचार की जो बात आज उठाई जा रही है, उसका सरलता से उन्मूलन हो सकता है। आज कोई न्यायाधीश अविचारपूर्ण निर्णय देता है और उसका प्रतिवाद (अपील) स्वीकार होने पर उच्च न्यायालय सामान्य न्यायालय के अयुक्त निर्णय पर टिप्पणी तो कर देता है, किन्तु उस अयुक्त निर्णय के लिए उस न्यायाधीश को दण्ड नहीं दिया जाता। न्याय में भ्रष्टाचार का होना इसी का प्रतिफल समझना चाहिए।

अमात्यों द्वारा अपराध होने पर राजा उन्हें भी दण्ड देता था, राजधर्म की प्रतिष्ठा रखने और मन्त्रियों या राजकुमारों आदि के विरोधी हो जाने पर, उनके लिए भी उपांशुवध द्वारा दण्ड देने का विधान था। न्याय, न्याय है, वह प्रिय-अप्रिय का कोई विचार नहीं करता। धर्माधिकारी हो या मन्त्री, उसे अपना कर्तव्यपालन करना ही चाहिए। दण्ड उसके अपराध की उपेक्षा नहीं कर सकता। आचार्य कौटिल्य तो राजा को भी दण्ड से अछूता नहीं छोड़ते। राजा के दोष पर उसे भी दण्डित होना पड़ता था, चाहे वह अर्थ दण्ड के रूप में ही क्यों न हो। राजा को दिये गये दण्ड से प्राप्त हुआ धन वरुणदेव की प्रसन्नता के लिए जल में डाल देने का विधान था।

किसी कारण से राजकोश में कमी हो जाने पर राजा को अधिकार था कि वह प्रजा से किसी प्रकार भी धन वसूल करे।

उसमें चाहे मिथ्या व्यवहार या बल-प्रयोग ही क्यों न करना पड़े। इसका अधिक प्रभाव व्यापारियों, कृषकों और योनिपोषकों पर पड़ता था। आवश्यक होने पर अनैतिक कार्यों द्वारा धन जुटाना अधर्म नहीं समझा जाता था। किन्तु यह भार अधिक दुष्ट प्रकृति ओर अधार्मिकों पर ही डाला गया था, धार्मिक और निरपराधों को उससे मुक्त रखने की चेष्टा की गई थी। साथ ही इस प्रकार की धन वसूली बहुत आवश्यक होने पर केवल एक बार ही की जाती थी।

राजा का राजतन्त्र पर पूर्ण आधिपत्य होते हुए भी उसमें उत्थान गुण होना अत्यन्त आवश्यक माना गया है। उत्थान का अर्थ है सभी चलते हुए कार्यों का निरीक्षण-परीक्षण। राजा में इस गुण का न होना निश्चय ही सब प्रकार के अनर्थों का मूल है। क्योंकि राजा में इस गुण का अभाव उसके प्रकृतिवर्ग अर्थात् अमात्यादि को भी प्रमादी बना देता है। आचार्य कौटिल्य की यहाँ तक मान्यता है कि राजा की सजगता इतनी प्रबल होनी चाहिए कि वह राजपरिवार के पुरुषों और रानी आदि स्त्रियों पर भी विश्वास नहीं करे। क्योंकि 'कर्कटधर्माणो हि राजपुत्रा जनकभक्षाः' अर्थात् कर्कट की सी प्रकृति वाले होने के कारण राजपुत्र अपने पिता का ही भक्षण कर लेते हैं। वह जब रनिवास में जाय तब पहिले इस बात का पता लगा ले कि वहाँ जाने पर किसी प्रकार की विपत्ति की संभावना तो नहीं है। क्योंकि अनेक महारानियों द्वारा अपने पति की हत्या किये जाने के बहुत-से उदाहरण मिलते हैं।

राजा के आवागमन विषयक भी कुछ नियम हैं। कौटिल्य उन नियमों को मानने का उपदेश देते हैं। अधिक भीड़-भाड़ के स्थानों पर न जाना, अकेले न चलना, विश्वस्त नाविकों, वाहकों, सारथियों या महावतों आदि की उपस्थिति में ही पर्ण

भरोसा कर लेने के पश्चात् जलपोत, यान, रथ, अश्व, गज आदि पर सवारी करनी चाहिए । किसी अन्य देश के दूत या सामन्त से भेंट आवश्यक हो तो अपने अमात्यवर्गसे घिरा रह कर ही मिले। उस समय सशस्त्र अङ्गरक्षकों का साथ रहना भी आवश्यक है। यदि किसी मान्य पुरुष, सिद्ध, तपस्वी, महात्मा आदि से मिलना हो तब भी अङ्गरक्षक तो उपस्थित रहने ही चाहिए ।

राजा के खान-पान की भी भले प्रकार परीक्षा होनी चाहिए। क्योंकि किसी भी द्रव्य में विष मिलाया जा सकता है, जिसकी बाह्य रूप से कोई पहिचान नहीं हो सकती। पाकशाला में तैयार हुए भोजन को पाकशाला अधिकारी पहिले स्वयं चाख कर देखे, तत्पश्चात् अग्नि और काक आदि को देकर ही राजा को दे। इसी प्रकार, औषधि आदि की भी परीक्षा की जाती है। यहाँ तक कि राजा के लिए उपभोग्य स्त्रियों की विषशुद्धि का भी विधान योनि प्रक्षालन आदि कार्यों के द्वारा किये जाने का विधान है। जिससे कि शत्रु द्वारा प्रेषित कोई विषकन्या जैसी स्त्री ही राजा का अन्त न कर दे ।

इस ग्रंथ में शासनतंत्र के संचालन का जो वर्णन किया गया है वह वर्तमान प्रणाली से बहुत भिन्न नहीं था। उस समय भी राज्य के विभिन्न विभागों में उनके अध्यक्षों अर्थात् अधिकारियों की नियुक्तियाँ की जाती थीं, जो कि राजतंत्र के प्रमुख अंग माने जाते थे। अपने-अपने विभाग की पूरी देख-भाल और उत्तरदायित्व का कार्य उन्हीं पर निर्भर करता था। किन्तु वे प्रजाजनों का हित-साधन न करते हुए प्रायः राजहित के साधन में ही लगे रहते थे। इसमें संदेह नहीं कि रिश्वत (घूँस) उस समय भी चलती थी। इसलिए आचार्य कौटिल्य ने " बहुमुख्यमनित्यं चाधिकरण स्थापयेत्" कह कर मुख्य कर्मचारियों का स्थानान्त-

रण करते रहने का विधान किया था। क्योंकि कौटिल्य यह नहीं मानते थे कि राज्य के अर्थ कार्य में संलग्न कर्मचारी छिपे रूप में किञ्चित् भी राज्यधन न खाने वाले हो सकते हैं।

नगर की व्यवस्था का भार नागरिक नामक महामात्र पर होने का विधान होने से इसमें बहुत कुछ साम्य मिलता है कि उस समय की व्यवस्था के अनुसार ही, बल्कि उसी ढाँचे पर नगरपालिकाएँ आज भी कार्य-रत हैं। उनका अधिकारी प्राचीन-कालीन नागरिक के समान अध्यक्ष होता है। उस समय नागरिक के अधीनस्थ स्थानिक और गोप संज्ञक राजकर्मचारी नगर में रहने वाले स्त्री-पुरुष आदि की जाति, गोत्र, व्यवसाय, संख्या एवं आय-व्यय का पूरा लेखा जोखा रखते थे। यात्रियों का नगर में टिकना नागरिक की अनुमति लेकर ही संभव था। अपने यहाँ आगत अतिथियों का विवरण भी प्रत्येक गृहपति को देना पड़ता था। यद्यपि इनमें से अनेक कार्यों और अधिकारों में भिन्नता आगई है, तथापि स्वरूप कुछ वैसा ही बनाया हुआ है।

राजा के कर्तव्यों के साथ प्रजा के कर्त्तव्यों की तुलना करें तो प्रतीत होगा कि प्रजाजनों का भी उत्तरदायित्व उस काल में कम नहीं था। उनके लिए जो आचार संहिता थी, उसके अनुसार उन्हें परस्पर भी-एक दूसरे के दुख दर्द में साथी या सहायक होना होता था। पड़ौसी के घर में आग लगे तो दूसरे पड़ौसी का परम कर्त्तव्य था कि आग बुझाने में उसकी सहायता करे मकान-मालिक हो या किरायेदार दोनों ही वर्ग समान अधिकारी से सम्पन्न थे।

इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि उस समय के और आज के ढाँचे में वहुत कुछ समानता है। फिर भी नवीनता के प्रेमी भारतीय आज भी उस प्राचीनता से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

—प्रकाशक

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण

अध्याय	विषय	पृष्ठ

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण

धर्मस्थानीय तृतीय अधिकरण

कण्टकशोधन चतुर्थ अधिकरण

योगवृत्त पंचम अधिकरण

ॐ

कौटिलीय-अर्थशास्त्र

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण

प्रथमोऽध्याय

प्रकरण एवं अधिकरण वर्णन

ॐ नमः शुक्रबृहस्पतिभ्याम् । पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम् । तस्यायं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः—

ॐ शुक्राचार्य जी और बृहस्पति जी को नमस्कार। पृथिवी की उपलब्धि और उपलब्ध होने पर पालन के विषय में पूर्व कालीन आचार्यों ने जिन अर्थशास्त्रों को रचा, प्रायः उन सबको संग्रहीत करके मैं इस अर्थशास्त्र को रचता हूँ। अब इस ग्रन्थ के प्रकरण और अधिकरण की सूची रूप में गणना करता हूं—

विद्यासमुद्देशः । वृद्धसंयोगः । इन्द्रियजयः । अमात्योत्पत्तिः । मंत्रिपुरोहितोत्पत्तिः । उपाधिभिः शौचाशौचज्ञानममात्यानाम् । गूढपुरुषोत्पत्तिः । गूढपुरुषप्रणिधिः । स्वविषये कृत्याकृत्यपक्षरक्षणम् । परविषये कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः । मन्त्राधिकारः । दूतप्रणिधिः । राजपुत्ररक्षणम् । अवरुद्धवृत्तम् । अवरुद्धे वृत्तिः । राजप्रणिधिः । निशान्तप्रणिधिः । आत्मरक्षितकम् । इति विनयाधिकारिकं प्रथममधिकरणम् ।

विनयाधिकार नामक प्रथम अधिकरण में इन अठारह प्रकरणों का निरूपण हुआ है--विद्या समुद्देश, वृद्ध संयोग, इन्द्रियजय, अमात्योत्पत्ति, मन्त्रिपुरोहितोत्पत्ति, उपाधि से अमात्यों के पवित्र या अपवित्र हृदय होने का ज्ञान, गूढ़पुरुषोत्पत्ति गूढ़पुरुषप्रणिधि, अपने राज्य में कृत्य और अकृत्य पक्ष की रक्षा, शत्रु के राज्य में कृत्य और अकृत्य पक्ष का ग्रहण, मन्त्राधिकार, दूतप्रणिधि, राजपुत्र-रक्षण, अवरुद्ध राजपुत्रों का वृत्त, अवरुद्ध राजपुत्र के प्रति पिता की वृत्ति, राज प्रणिधि, निशान्त प्रणिधि और आत्म रक्षा।

जनपदनिवेशः। भूमिच्छिद्रविधानम्। दुर्गविधानम्। दुर्गनिवेशः। सन्निधातृनिचयकर्म। समाहर्तृसमुदयप्रस्थापनम्। अक्षपटले गाणनिक्याधिकारः। समुदयस्य युक्तापहृतस्य प्रत्यानयनम्। उपयुक्तपरीक्षा। शासनाधिकारः। कोशप्रवेश्यरत्नपरीक्षा। आकरकर्मान्तप्रवर्तनम्। अक्षशालायां सुवर्णाध्यक्षः। विशिखायां सौवर्णिकप्रचारः। कोष्ठागाराध्यक्षः। पण्याध्यक्षः। कुप्याध्यक्षः। आयुधागाराध्यक्षः। तुलामानपौतवम्। देशकालमानम्। शुल्काध्यक्षः। सूत्राध्यक्षः। सीताध्यक्षः। सुराध्यक्षः। सूनाध्यक्षः। गणिकाध्यक्षः। नावध्यक्षः। गोऽध्यक्षः। अश्वाध्यक्षः। हस्त्यध्यक्षः। रथाध्यक्षः। पत्त्यध्यक्षः। सेनापत्तिप्रचारः। मुद्राध्यक्षः। विवीताध्यक्षः। समाहर्तृप्रचारः। गृहपतिवैदेहकतापसव्यञ्जनाः प्रणिधयः। नागरिकप्रणिधिः। इत्यध्यक्षप्रचारो नाम द्वितीयमधिकरणम्।

अध्यक्षप्रचार नामक दूसरे अधिकरण में इन अढ़तीस प्रकरणों का नामोल्लेख हुआ है—जनपदनिवेश, भूमिच्छिद्र विधान, दुर्गनिवेश, सन्निधाता के धनादि का रक्षण, राजकर आदि की प्राप्ति का प्रबन्ध अक्षपटल में गाणनिकों का अधिगार, अधिकृत गणों द्वारा अपहृत वित्त की पुनर्प्राप्ति का प्रबन्ध, अधिकृतगणों की परीक्षा, शासनाधिकार, कोश में रखने योग्य रत्न की परीक्षा, खानों से निर्गत पदार्थों के

लिए स्थापित कार्यालयों का प्रबन्ध, अक्षशाला में स्वर्णाध्यक्ष, बाजारों में स्वर्णकारों का कार्य, कोष्ठागार-अध्यक्ष, पण्याध्यक्ष, कुप्याध्यक्ष, शस्त्रागार-अध्यक्ष, तुला और मान का पौतव, देशकाल मान, शुल्काध्यक्ष, कृषिकर्म का अध्यक्ष, सुराध्यक्ष, पशु-वध स्थान का अध्यक्ष, गणिकाध्यक्ष, नौका-अध्यक्ष, गौ-अध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, गजाध्यक्ष, रथाध्यक्ष, पदाति सेना का अध्यक्ष, सेनापति का कार्य, मुद्राध्यक्ष, विवीताध्यक्ष, समाहर्त्ता के कार्य, गृहस्थ-वैदहक या तपस्वी रूप गुप्तचरों के कार्य और अढतीसवां नागरिक प्रणिधि।

व्यवहारस्थापना । विवादपदनिबन्धः । विवाहसंयुक्तम् । दायविभागः । वास्तुकम् । समयस्यानपाकर्म । ऋणादानम् । औपनिधिकम् । दासकर्मकरकल्पः । सम्भूयसमुत्थानम् । विक्रीतक्रीतानुशयः । दत्तस्यानपाकर्म । अस्वामिविक्रयः । स्वस्वामिसम्बन्धः । साहसम् । वाक्पारुष्यम् । दण्डपारुष्यम् । द्यूतसमाह्वयम् । प्रकीर्णकानि । इति धर्मस्थीयं तृतीयमधिकरणम् ।

व्यवहार-स्थापन, विवादपद निबन्ध, विवाह-संयोग, दाय विभाग, वास्तु कला, समय या संवित्त का न छोड़ना, ऋण-आदान, औपनिधिक विधान, दास-कर्म विधान, सम्भूय-समुत्थान, क्रय-विक्रय विषयक विधान, प्रदत्त द्रव्य को पास रखना, स्वयं स्वामी न होते हुए भी वस्तु का विक्रय, वस्तु से स्वामित्व सम्बन्ध, साहस, वाणी की कठोरता, दण्ड की कठोरता, जुआ और क्रीड़ा तथा प्रकीर्ण—इस प्रकार इस धर्मस्थीय नामक तीसरे अधिकरण में उपर्युक्त उन्नीस प्रकरण कहे गये हैं।

कारुकरक्षणम् । वैदेहकरक्षणम् । उपनिपातप्रतीकारः । गूढाजीविनां रक्षा । सिद्धव्यञ्जनैर्माणवप्रकाशनम् । शंकारूपकर्माभिग्रहः । आशुमृतकपरीक्षा । वाक्यकर्मानुयोगः । सर्वाधिकरणम् । एकाङ्गवधनिष्क्रयः । शुद्धश्चित्रश्च दण्डकल्पः । कन्याप्रकर्म । अतिचारदण्डः । इति कण्टकशोधनं चतुर्थमधिकरणम् ।

कारुकरक्षण, वैदेहकरक्षण, दैवी विपत्ति का प्रतीकार, गूढ़ जीवियों से रक्षा, सिद्ध व्यंजन-निर्माण का प्रकाशन, शंका-रूप-कर्म के द्वारा अभिग्रहण, आशु मृतक परीक्षा, वाणी और कर्म का अनुयोग, सर्व प्रकार के अधिकरण, एकांगवध निष्क्रय, शुद्ध एवं विचित्र दण्ड की कल्पना, कन्या से अपकर्म पर दंड-विधान, तथा तेरहवाँ अतिचारदण्ड—इस प्रकार इस कंटकशोधन नामक चौथे अधिकरण में तेरह प्रकरण हुए।

दाण्डकर्मिकम्। कोशाभिसंहरणम्। भृत्यभरणीयम्। अनुजीविवृत्तम्। समयाचारिकम्। राज्यप्रतिसन्धानम्। एकैश्वर्यम्। इति योगवृत्तं पञ्चममधिकरणम्।

प्रकृतिसम्पदः। शमव्यायामिकम्। इति मण्डलयोनिः षष्ठमधिकरणम्।

दण्ड-प्रयोग, कोष का संग्रह, भृत्यों का भरण-पोषण, राजाश्रितों की वृत्ति, समयानुकूल आचार, राज्य प्रति सन्धान तथा एक के ऐश्वर्य की स्थापना। इस प्रकार योगवृत्त नामक यह पाँचवां अधिकरण हुआ। अब मण्डल योनि नामक छटवें अधिकरण को कहते हैं, जिसमें अमात्यादि प्रकृतियों की सम्पदा एवं शम तथा व्यायाम का निरूपण है।

षाड्गुण्यसमुद्देशः। क्षयस्थानवृद्धिनिश्चयः। संश्रयवृत्तिः। समहीनज्यायसां गुणाभिनिवेशः। हीनसन्धयः। विगृह्यासनम्। सन्धायासनम्। विगृह्य यानम्। सन्धाय यानम्। सम्भूय प्रयाणम्। यातव्यामित्रयोरभिग्रहचिन्ता। क्षयलोभविरागहेतवः। प्रकृतीनां सामवायिकविपरिमर्शः। संहितप्रयाणिकम्। परिपणितापरिपणितापसृताश्च सन्धयः। द्वैधीभाविकाः सन्धिविक्रमाः। यातव्यवृत्तिः। अनुग्राह्यमित्रविशेषाः। मित्रहिरण्यभूमिकर्मसन्धयः। पार्ष्णिग्राहचिन्ता। हीनशक्तिपूरणम्। बलवता विगृह्योपरोधहेतवः। दण्डोपनतवृत्तम्। दण्डोपनायिवृत्तम्। सन्धिकर्म। सन्धिमोक्षः। मध्यमचरितम्। उदासीमचरिम्। मण्डलचरितम्। इति षाड्गुण्यं सप्तममधिकरणम्।

षाड्गुण्य-परिचय, क्षय-स्थान-वृद्धि का निरूपण, संश्रयवृत्ति, सम-हीन उच्च का गुण-स्थापन, हीनबल द्वारा सन्धि, युद्ध द्वारा स्व-स्थान निवास, सन्धि द्वारा स्वस्थान निवास, विग्रह के लिए आक्रमण, सन्धि करके आक्रमण, अन्य राज्यों से मिल कर आक्रमण, अमित्र के प्रति अभि-ग्रह विषयक चिन्तन, प्रजा का क्षय, राग हीनता एवं लोभ के हेतु, सम्मि-लित राजाओं की क्षमता विषयक विचार, सन्धि बन्धन हेतु यात्रा, परिपणित, अपरिपणित और अपसृत की सन्धि, द्वैधीभाव वाली सन्धि और पराक्रम, यातव्य-वृत्ति, अनुग्रह योग्य मित्र विशेष, मित्र, स्वर्ण, पृथिवी और कर्म सम्बन्धी सन्धियाँ, पार्ष्णिग्राह चिन्तन, न्यून शक्ति की पूर्ति, बलवान से विग्रह होने पर उपरोध के हेतु, दण्डोपनत वृत्ति, दण्डोपनायिक वृत्ति, सन्धि कर्म, सन्धि की समाप्ति, मध्यम के प्रति व्यवहार, उदासीन के प्रति व्यवहार और मण्डल के प्रति व्यवहार। यह उन्तीस प्रकरण षाड्गुण्य नामक सातवें अधिकरण में कहे हैं।

प्रकृतिव्यसनवर्गः। राजराज्ययोर्व्यसनचिन्ता। पुरुषव्यसन-वर्गः। पीडनवर्गः। स्तम्भनवर्गः। कोशसंगवर्गः। बलव्यसनवर्गः। मित्रव्यसनवर्गः। इति व्यसनाधिकारिकमष्टममधिकरणम्।

शक्तिदेशकालबलाबलज्ञानम्। यात्राकालाः। बलोपादान-कालाः। सन्नाहगुणाः। प्रतिबलकर्म। पश्चात्कोपचिन्ता। बाह्या-भ्यन्तरप्रकृतिकोपप्रतीकारः। क्षयव्ययलाभविपरिमर्शः। बाह्या-भ्यन्तराश्चापदः। दूष्यशत्रुसंयुक्ता। अर्थानर्थसंशययुक्ताः। तासा-मुपायविकल्पजाः सिद्धयः। इत्यभियास्यत्कर्म नवममधिकरणम्।

अमात्यादि की विपत्ति, राजा एवं राज्य विषयक चिन्तन, पुरुषों की विपत्ति, पीडन वर्ग, स्तम्भन वर्ग, कोष संग वर्ग, सेना की विपत्ति और मित्रों की विपत्ति—इन आठ प्रकरणों को इस व्यसना-धिकारिक नामक आठवें अधिकरण में कहा है। अब अभियास्यत्कर्म नामक अधिकरण को कहते हैं, जिसमें शक्ति और देश-काल के बल-अबल का ज्ञान यात्रा का समय, सेना की तैयारी का समय, सन्नाह

गुण, प्रतिपक्षी की सेना के प्रति कार्य, शत्रुता के पश्चात् क्रोध-चिन्तन, अमात्यादि के क्रोध का प्रतीकार, क्षय, व्यय एवं लाभ का विवेचन, बाह्याभ्यान्तर संकट, दुष्टों और शत्रुओं का संयुक्त होना, अर्थ, अनर्थ एवं संशय से विपत्ति तथा विपत्तियों के प्रतीकार के उपायों की सिद्धि आदि बारह प्रकरण कहे हैं।

स्कन्धावारनिवेशः। स्कन्धावारप्रयाणम्। बलव्यसनावस्कन्दकालरक्षणम्। कूटयुद्धविकल्पाः। स्वसैन्योत्साहनम्। स्वबलान्यबलव्यायोगः। युद्धभूमयः। पत्त्यश्वरथहस्तिकर्माणि। पक्षकक्षोरस्यानां बलाग्रतो व्यूहविभागः। सारफल्गुबलविभागः। पत्त्यश्वरथहस्तियुद्धानि। दण्डभोगमण्डलासंहतव्यूहव्यूहनम्। तस्य प्रतिव्यूहस्थापनम्। इति सांग्रामिक दशममधिकरणम्।

स्कन्धावार निवेश, स्कन्धावार प्रयाण, सेना की संकट काल में रक्षा, कूट युद्ध के विकल्प, अपनी सेनाओं को उत्साहित करना, परायी सेनाओं से अपनी सेनाओं का उत्कर्ष स्थापन, रणभूमि, पदाति, अश्व, रथ और हाथी युक्त सेना के कर्म, पक्ष, कक्ष, और उरस्य के बलानुसार व्यूहों का विभाजन, शक्त-अशक्त सेनाओं का विभाजन, पदाति, अश्व, रथ एवं हाथी युक्त सेनाओं के युद्ध, दण्ड, भोग मण्डल और असंहत व्यूह रचना एवं उन व्यूहों के प्रतिव्यूहों का स्थापन, इस प्रकार यह तेरह प्रकरण इस सांग्रामिक नामक दसवें अधिकरण में कहे हैं।

भेदोपादानानि। उपांशुदण्डः। इति संघवृत्तमेकादशमधिकरणम्।

दूतकर्म। मन्त्रयुद्धम्। सेनामुख्यवधः। मण्डलप्रोत्साहनम्। शस्त्राग्निरसप्रणिधयः। वीवधासारप्रसारवधः। योगातिसन्धानम्। दण्डातिसन्धानम्। एकविजयः। इत्याबलीयसं द्वादशमधिकरणम्।

संघवृत्त नामक ग्यारहवें अधिकरण में सैन्य संगठन के भेदनार्थ उपाय एवं छिपकर नष्ट करने के उपाय रूप में दो प्रकरणों का वर्णन

हुआ है। अब आबलीयस नामक बारहवें अधिकरण के नौ प्रकरणों को कहते हैं—दूत का कर्म, मन्त्र-युद्ध, सेनापति का वध, मित्र-मण्डल को प्रोत्साहन, शस्त्र, अग्नि और विष के प्रयोग, अन्न-संचय, मित्रबल एवं ईंधनादि का क्षय, युक्ति द्वारा शत्रु का अति संधान, दंड द्वारा अति सन्धान और नौवाँ एक विजय।

उपजापः। योगवामनम्। अपसर्पप्रणिधिः। पर्युपासनकर्म। अवमर्दः लब्धप्रशमनम्। इति दुर्गलम्भोपायस्त्रयोदशमधिकरणम्।

परघातप्रयोगः। प्रलम्भनम्। स्वबलोपघातप्रतीकारः। इत्यौपनिषदिकं चतुर्दशमधिकरणम्।

तन्त्रयुक्तयः। इति तन्त्रयुक्तिः पञ्चदशमधिकरणम्।

अत्र दुर्गलम्भोपाय नामक तेरहवें अधिकरण को बताते हैं। जिसमें उपजाप, योगवामन, अपसर्पप्रणिधि, पर्युपासन कर्म, अवमर्द और लब्ध प्रशमन नामक छः प्रकरणों का वर्णन हुआ है। चौदहवाँ अधिकरण औपनिषदिक नाम का है। उसमें परघात-प्रयोग, प्रलम्भन अर्थात् शत्रु को छलने की विधि एवं अपनी सेना पर हुए उपघात का प्रतीकार नामक तीन प्रकरण हैं। अन्तिम पंद्रहवें अधिकरण का नाम तन्त्र युक्ति है, जिसमें तन्त्रयुक्ति अर्थात् अर्थशास्त्र-निर्णय के लिए उपयुक्त विधियाँ ही विवेचित हुई हैं।

शास्त्रसमुद्देशः पञ्चदशाधिकरणानि सपञ्चाशदध्यायशतं साशीतिप्रकरणशतं षट्श्लोकसहस्राणि।

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चयम्।
कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम् ॥१

इस शास्त्र में पन्द्रह अधिकरण, एक सौ पचास अध्याय, एक सौ अस्सी प्रकरण और छः हजार श्लोक हैं। यह कौटिल्य कृत शास्त्र विस्तृत ज्ञान के देने वाला है। इसमें वर्णित तत्त्वार्थ एवं पदों का प्रयोग इस प्रकार किया गया है, जिससे कि यह अत्यन्त सरलता से समझ में आ जाता है और कोई भी शंका शेष नहीं रहती ॥१॥

द्वितीयोऽध्याय

विद्यासमुद्देश, आन्वीक्षिकीस्थापना

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः। त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति मानवाः। त्रयीविशेषो ह्यान्वीक्षिकीति।

वार्ता दण्डनीतिश्चेति बार्हस्पत्याः। संत्ररणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद इति। दण्डनीतिरेका विद्यत्यौशनसाः। तस्यां हि सर्वविद्यारम्भाः प्रतिबद्धा इति।

विद्याएँ चार प्रकार की होती हैं—(१) आन्वीक्षिकी (अध्यात्म एवं हेतु विद्या) (२) त्रयी (ऋक्, यजुः, साम विषयक विद्या (३) वार्त्ता (कृषि, पशुपालन एवं वाणिज्य विषयक विद्या) और (४) दंडनीति। किन्तु मनु के अनुयायियों के अनुसार त्रयी, वार्त्ता और दंडनीति—यह तीन विद्याएँ ही हैं। वे आन्वीक्षिकी को त्रयीविद्या के अन्तर्गत ही मानते हैं। आचार्य बृहस्पति के मत को मानने वालों ने वार्त्ता और दंडनीति-- इन दो को ही विद्या रूप में स्वीकार किया है। क्योंकि लोकयात्राविदों के अनुसार त्रयी विद्या को निन्दाओं से बचने का साधन समझने के कारण उसी का आवरण मात्र माना है। शुक्राचार्य के अनुयायी एक दंड-नीति को ही विद्या कहते हैं। उनके विचार में उक्त तीनों विद्याएँ दंडनीति के ही अन्तर्गत आ जाती हैं। क्योंकि दंडनीति अर्थात् राज्यविद्या के प्रारम्भ होने पर सब विद्याएँ स्वयं व्यवहार में आ जाती हैं।

चतस्र एव विद्या इति कौटिल्यः। ताभिर्धर्माधर्मौ यद्विद्या-त्तद्विद्यानां विद्यात्वम्। सांख्यं योगो लौकायतं चेत्यान्वीक्षिकी।

धर्माधर्मौ त्रय्याम्। अर्थानर्थौ वार्तायाम्। नयानयौ दण्डनी-त्याम्। बलाबले चैतासां हेतुभिरन्वीक्षमाणा लोकस्योपकरोति। व्यसनेऽभ्युदये च बुद्धिमवस्थापयति। प्रज्ञावाक्यवैशारद्यं च करोति।

प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्
आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता ॥१

आचार्य कौटिल्य उक्त चारों ही विद्याओं को मानते हैं। उनके अनुसार सभी विद्याओं के विद्यात्व का उद्देश्य धर्म-अधर्म का ज्ञान कराना है सांख्य, योग और लोकायत शास्त्र आन्वीक्षिकी विद्या में ही निहित हैं। त्रयी विद्या में धर्म-अधर्म, वार्त्ता विद्या में अर्थ-अनर्थ तथा दंडनीति में न्याय-अन्याय का प्रतिपादन होता है। इन विद्याओं की उपयोगिता-अनुपयोगिता को हेतु से सिद्ध करती हुई आन्वीक्षिका विद्या अत्यन्त लोकोपकार करती है। यह संकट काल एवं भाग्योदय के समय भी बुद्धि को स्थिर करती हुई प्रज्ञा, वाणी चातुर्य एवं कार्य में निपुणता बनाये रखती है। यह आन्वीक्षिकी विद्या सर्व विद्याओं के लिए दीपक स्वरूपा, सर्व कर्मों की उपाय भूता एवं सभी धर्मों की आश्रयरूपा मानी जाती है ॥१॥

तृतीयोऽध्याय

विद्यासमुद्देश त्रयीस्थापना

सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयी। अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचितिर्ज्योतिषमिति चाङ्गानि।

एष त्रयीधर्मश्चतुर्णां वर्णानामाश्रमाणां च स्वधर्मस्थापनादौपकारिकः। स्वधर्मो ब्राह्मणस्याध्ययनमध्यापनं यजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति। क्षत्रियस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्राजीवो भूतरक्षणं च। वैश्यस्याध्ययनं यजनं दानं कृषिपाशुपाल्ये वणिज्या च। शूद्रस्य द्विजातिशुश्रूषा वार्ता कारुकुशीलवकर्म च।

साम, ऋक् और यजुर्वेद तीनों को त्रयी कहते हैं। अथर्ववेद और इतिहास भी वेद कहे जाते हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचित और ज्योतिषशास्त्र यह छओं वेद के अंग माने गये हैं। उस त्रयी में उपदेशित धर्म चारों वर्णों और चारों आश्रमों को अपने-अपने

धर्म में नियुक्त रख कर उन पर उपकार करता है। चार वर्णों में ब्राह्मण का धर्म अध्ययन, अध्यापन, यजन, दान देना और दान लेना है। क्षत्रिय का धर्म अध्ययन, यज्ञ, शस्त्र द्वारा जीविकोपार्जन और सब जीवों की रक्षा करना है। वैश्य का धर्म अध्ययन, यज्ञ, दान, कृषि, पशु-पालन और वाणिज्य तथा शूद्र का धर्म द्विजाति की सेवा, वार्त्ता, कारीगरी एवं कुशव कर्म अर्थात् गाना-बजाना, कौतुक दिखाना आदि कार्य करना है।

गृहस्थस्य स्वकर्माजीवस्तुल्यैरसमानर्षिभिर्वैवाह्यमृतुगामित्वं देवपित्रतिथिभृत्येषु त्यागः शेषभोजनं च। ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायोऽग्निकार्याभिषेकौ भैक्षव्रतत्वमाचार्ये प्राणान्तिकी वृत्तिस्तदभावे गुरुपुत्रे सब्रह्मचारिणि वा। वानप्रस्थस्य ब्रह्मचर्यं भूमौ शय्या जटाऽजिनधारणमग्निहोत्राभिषेकौ देवतापित्रतिथिपूजा वन्यश्चाहारः। परिव्राजकस्य संयतेन्द्रियत्वमनारम्भो निष्किंचनत्वं सगत्यागो भैक्षमनेकत्रारण्ये वासो बाह्यमाभ्यन्तरं च शौचम्। सर्वेषामहिंसा सत्यं शौचमनसूयाऽनृशस्यं क्षमा च।

अब चारों आश्रम में गृहस्थ का धर्म कहते हैं—अपने कर्म के अनुरूप जीविकोपार्जन, अपने समान कुल में ऋषि-सन्तानों से विवाह-बन्धन, ऋतुकाल में स्त्रीगमन तथा देवता, पितर, अतिथि और भृत्यादि को देकर बचे हुए शेष भोज्य का आहार करना। ब्रह्मचर्याश्रम में स्थित ब्रह्मचारी का धर्म स्वाध्याय, अग्निहोत्र, स्नान, भिक्षा-वृत्ति, आचार्य के जीवित रहने तक उनकी सेवा और उनके पश्चात् गुरुपुत्र या अपने समान ब्रह्मचारी के पास रहना है। वानप्रस्थ को ब्रह्मचर्य-पालन, भूमि-शयन, जटा एवं मृगचर्म धारण, अग्निहोत्र, तीनों समय स्नान, देव-पितर-अतिथि का पूजन तथा वन्य फल आदि का आहार करते हुए जीवनयापन करना चाहिए। संन्यासी को इन्द्रिय संयम, कर्मफल का त्याग, अकिंचनत्व, संग का त्याग, अनेक घरों में जाकर भिक्षा लेना, वन में निवास तथा बाह्याभ्यंतर में शुद्धि रखनी

उचित है। सब वर्णों और आश्रमों का सामान्य धर्म अहिंसा, सत्य, पवित्रता, पराये दोष न देखना, दया और क्षमा का रखना है।

स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च। तस्यातिक्रमे लोकः संकरादुच्छेद्येत।

तस्मात्स्वधर्मं भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।
स्वधर्मं सन्दधानो हि प्रेत्य चेह च नन्दति ॥१
व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितिः।
त्रय्या हि रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति ॥२

अपने धर्म में स्थित रहने से स्वर्ग और अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। किन्तु अपने धर्म का अतिक्रमण लोक में संकरत्व के द्वारा उच्छेद कराने वाला है। इसलिए राजा को उचित है कि वह सभी जीवों को स्वधर्म से विचलित होने से रोके। क्योंकि सबको स्वधर्म पर चलने वाला राजा लोक-परलोक वर्णाश्रम धर्मों का पालन करने वाली तथा त्रयी के निर्देशानुसार रक्षित रहती है, वह सदैव प्रसन्न रहती हुई, कभी भी नष्ट नहीं होती ॥१-२॥

चतुर्थोऽध्याय

विद्यासमुद्देश वार्ता, दण्डनीतिस्थापना।

कृषिपाशुपाल्ये वणिज्या च वार्ता, धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिप्रदानादौपकारिकी। तया स्वपक्षं परपक्षं च वशीकरोति दंडकोशाभ्याम्।

आन्वीक्षकीत्रयोवार्तानां योगक्षेमसाधको दंडः। तस्य नीतिर्दण्डनीतिः। अलब्धलाभार्था लब्धपरिरक्षिणी रतक्षिविवर्धनी वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादनी च। तस्यामायत्ता लोकयात्रा। तस्माल्लोकयात्रार्थी नित्यमुद्यतदंडः स्यात्।

वार्ता विद्या कृषि, पशुपालन, वाणिज्य, धान्य, पशु, स्वर्ण, तैजस्-अतैजस् द्रव्य एवं विष्टि अर्थात् कला के द्वारा उपकार करने वाली

है। इस विद्या की विधि से प्राप्त कोष तथा दण्ड द्वारा राजा अपने और पराये पक्ष को भी वश में कर लेता है। आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता विद्याओं का साधक दंड ही है। इस दण्ड विद्या की नीति दण्डनीति ही कही जाती है। क्योंकि दण्डनीति के द्वारा अप्राप्त की प्राप्ति, प्राप्त की रक्षा, रक्षित की वृद्धि और प्रवृद्ध वस्तु का उपयोग उपयुक्त पात्र में होता है। लोकयात्रा की निर्भरता भी दण्डनीति पर ही है। इसलिए लोकयात्रा की भले प्रकार इच्छा करने वाले राजा को दण्डनीति के उपयोग में सदैव उद्यत रहना चाहिए।

न ह्येवंविधं वशोपनयनमस्ति भूतानां यथा दंड इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। तीक्ष्णदडो हि भूतानामुद्वेजनीयः। मृदुदंडः परिभूयते। यथार्हदंडः पूज्यः। सुविज्ञातप्रणीतो हि दंडः प्रजाः धर्मार्थकामैर्योजयति। दुष्प्रणीतः कामक्रोधाभ्यामज्ञानाद्वानप्रस्थपरिव्राजकानपि कोपयति, किमङ्ग पुनर्गृहस्थान्। अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति। बलीयानबलं हि ग्रसते दंडधराभावे। तेन गुप्तः प्रभवतीति।

चतुर्वर्णाश्रमो लोको राज्ञा दंडेन पालितः।
स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वर्त्मसु ॥१

अनेक आचार्यों की मान्यता है कि प्राणियों को वश में रखने के लिए दण्डनीति के अतिरिक्त कोई अन्य नीति नहीं है। किन्तु आचार्य कौटिल्य इसे न मानते हुए कहते हैं कि तीक्ष्ण दण्ड प्राणियों के लिए उद्वेगजन्य होता है। मृदु दण्डदाता राजा प्रजा से त्रस्त रहता है, किन्तु उचित दण्ड देने वाले को सब पूजते हैं। इसलिए भले प्रकार सोच-समझ कर दण्ड देने से प्रजा धर्म, अर्थ और काम से परिपूर्ण हो जाती है। यदि काम क्रोध अथवा अज्ञान से दण्ड दिया जाता है तो सामान्य प्रजा ही नहीं, वानप्रस्थ और संन्यासी भी क्रोधित हो उठते हैं। दण्ड के उचित प्रयोग न होने पर बलवान पुरुष बलहीन को वैसे ही ग्रस लेते हैं, जैसे कि बड़े मत्स्य छोटे मत्स्यों को निगल लेते हैं।

इस प्रकार दण्ड का अप्रत्यक्ष रूप से भारी प्रभाव पड़ता है। क्योंकि चारों वर्ण और चारों आश्रम वालों का राजा के द्वारा उचित दण्ड से ठीक प्रकार पालन होता है तो वे सब स्वयं ही अपने अपने धर्म कर्म का पालन करते हुए उचित मार्ग पर बढ़ते रहते हैं ॥१॥

पञ्चमोऽध्याय

वृद्ध संयोग।

तस्माद्दण्डमूलास्तिस्रो विद्याः। विनयमूलो दण्डः प्राणभृतां योगक्षेमावहः। कृतकः स्वाभाविकश्च विनयः।

क्रिया हि द्रव्यं विनयति नाद्रव्यम्। शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहतत्त्वाभिनिविष्टबुद्धिं विद्या विनयति नेतरम्। विद्यानां तु यथास्वमाचार्यप्रामाण्याद्विनयो नियमश्च !

तीनों विद्याओं (आन्वीक्षिकी, त्रयी और वार्ता) का मूल दण्ड ही है। विनय के आश्रय वाला दण्ड सब जीवों का योगक्षेम करने में समर्थ है। उस विनय के दो भेद हैं—(१) परिश्रम से उपलब्ध विनय और (२) स्वाभाविक विनय। क्रिया द्रव्य (पात्र) को विनीत बनाती है, किन्तु अद्रव्य (अपात्र) को विनीत नहीं बनाती। विद्या उसी को विनीत बनाती है, जिसमें सेवा-भाव, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊहा, (तर्क) अपोह (वितर्क) एवं तत्त्व के यथार्थ ज्ञान वाली बुद्धि हो, इससे विपरीत को नहीं। विभिन्न विद्या का स्वरूप आचार्यों के मत अनुसार निर्धारित होता है, इसलिए अपने अपने आचार्य के द्वारा निश्चित नियमों का पालन आवश्यक है।

वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुंजीत। वृत्तोपनयनस्त्रयीमान्वीक्षिकीं च शिष्टेभ्यः, वार्तामध्यक्षेभ्यः, दण्डनीतिं वक्तृप्रयोक्तृभ्यः।

ब्रह्मचर्यं चाषोडशाद्वर्षात्। अतो गोदानं दारकर्म चास्य। अस्य नित्यश्च विद्यावृद्धसंयोगो विनयवृद्ध्यर्थं, तन्मूलत्वाद्विन-

यस्य। पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरणविद्यासु विनयं गच्छेत्। पश्चिममितिहासश्रवणे।

मुण्डन संस्कार के पश्चात् बालक लिपि और संख्या का ज्ञान प्रारम्भ करे तथा उपनयन होने पर तीनों वेद आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति को उन-उन विषयों के कुशल विद्वानों से सीखे। सोलह वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का पालन करे। फिर गोदान अर्थात् केशान्त कर्म के पश्चात् विवाह करे और तत्पश्चात् भी उत्कर्ष हेतु विद्यावृद्ध आचार्यों की सेवा करे, क्योंकि विनय (उत्कर्ष अथवा विद्या) की प्राप्ति का मूल विद्यावृद्ध आचार्यों का सम्पर्क ही है। दिन के पूर्व भाग में हाथी, अश्व, रथ और शस्त्रास्त्र विद्या की शिक्षा ग्रहण करे तथा शेष भाग में इतिहास श्रवण करे।

पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रं चेतीतिहासः। शेषमहोरात्रभागमपूर्वग्रहण गृहीतपरिचयं च कुर्यात्। अगृहीतानामाभीक्ष्णयश्रवणं च। श्रुताद्धि प्रज्ञोपजायते प्रज्ञया योगो योगादात्मवत्तेति विद्यासामर्थ्यम्।

विद्याविनीतो राजा हि प्रजानां विनये रतः।
अनन्यां पृथिवीं भुंक्ते सर्वभूतहिते रतः ॥१

इतिहास में पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र आदि का समावेश हुआ समझे। शेष दिन और रात्रि के भाग में जो विषय न जाने हों उन्हें जाने और जाने हुए विषयों का परिचय अर्थात् मनन करे। भले प्रकार न समझे हुए विषय को बारम्बार सुने, क्योंकि ऐसा करने से ही प्रज्ञा प्रखर होती है। प्रज्ञा से योग और योग से आत्म विश्वास जागृत होता है। विद्या का यही सामर्थ्य है। क्योंकि विद्या से विनीत राजा ही प्रजा को विनय युक्त बना सकता है। सब जीवों के हित में लगा हुआ राजा ही सम्पूर्ण पृथिवी का भोग करता है ॥१॥

षष्ठोऽध्याय

इन्द्रियजय, कामादि षड्रिपुवर्जन

विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः कामक्रोधलोभमानमदहर्षत्यागात्कार्यः। कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः शास्त्रानुष्ठानं वा। कृत्स्नं हि शास्त्रमिन्द्रियजयः।

इन्द्रिय-जय ही विद्या एवं विनय का कारण है। काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष के त्याग से इन्द्रिय का जीतना सुगम है। पंचेन्द्रिय रूप कान, त्वचा, चक्षु जिह्वा और नासिका के द्वारा पंच विषय रूप शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध का उपभोग होता है। इनमें आसक्ति न रखना ही इन्द्रियजय है। इन्द्रियजय के लिए शास्त्र-प्रतिपादित विषय यही हैं।

तद्विरुद्धवृत्तिरवश्येन्द्रियश्चातुरन्तोऽपि राजा सद्यो विनश्यति। यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामाद्ब्राह्मणकन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रो विननाश। करालश्च वैदेहः। कोपाज्जनमेजयो ब्राह्मणेषु विक्रान्तः, तालजंघश्च भृगुषु। लोभादैलश्चातुर्वर्ण्यमत्याहारयमाणः, सौवीरश्चाजबिन्दुः। मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन्, दुर्योधनो राज्यादंशं च। मदाडुम्भोद्भवो भूतावमानी हैहयश्चार्जुनः। हर्षाद्वातापिरगस्त्यमत्यासादयन्, वृष्णिसंघश्च द्वैपायनमिति।

शास्त्र के विरुद्ध आचरण करने एवं इन्द्रियों को वश में न रखने वाला राजा चाहे चक्रवर्ती नरेश ही क्यों न हो, शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जैसे कि भोजवंशोत्पन्न दाण्डक्य नामक राजा काम के वश में होकर एक ब्राह्मणी की कन्या में आसक्ति के कारण उसके पिता के शाप से अपने बन्धुओं एवं राष्ट्र के सहित नष्ट हो गया था तथा

विदेह-नरेश राजा कराल की भी ऐसी ही दशा हुई थी। क्रोध से किसी ब्राह्मण पर प्रहार करने के कारण राजा जनमेजय और भृगु-वंशियों पर कुपित होने के कारण राजा तालजंघ नाश को प्राप्त हुए। लोभ के वशीभूत हुए राजा पुरूरवा और सौवीर नरेश अजविन्दु ने चारों वर्णों का धन छीन कर अपने को नष्ट करा लिया। गर्व के कारण रावण ने परनारी को नहीं लौटाया और दुर्योधन ने पाण्डवों को उनका राज्य नहीं दिया, इसलिए यह भी मृत्यु को प्राप्त हो गए। मदान्ध हैहय नरेश अर्जुन की भी परशुरामजी द्वारा ऐसी ही दशा की गई। हर्ष के वश में हुए वातापि नामक असुर ने अगस्त्य ऋषि को सन्तप्त किया और यादवों ने व्यास जी को दुःख दिया, जिससे उन दोनों का भी नाश होगया।

एते चान्ये च बहवः शत्रुषड्वर्गमाश्रिताः।
सबन्धुराष्ट्रा राजानो विनेशुरजितेन्द्रियाः ॥१
शत्रुषड्वर्गमुत्सृज्य जामदग्न्यो जितेन्द्रियः।
अम्बरीषश्च नाभागो बुभुजाते चिरं महीम् ॥२

उपर्युक्त अथवा अन्यान्य अनेक राजागण कामादि छः शत्रुओं के आश्रित होकर अजितेन्द्रिय रहने के कारण अपने बन्धुओं और राष्ट्र के सहित नाश को प्राप्त हुए। किन्तु उन्हीं छः शत्रुओं को जीत कर परशुराम, अम्बरीष, और नाभाग चिरकाल तक पृथिवी का भोग करते रहे ॥१-२॥

सप्तमोऽध्याय

इन्द्रियजय, राजर्षिव्यवहार

तस्मादरिषड्वर्गत्यागेनेन्द्रियजयं कुर्वीत। वृद्धसंयोगेन प्रज्ञां, चारेण चक्षुरुत्थानेन योगक्षेमसाधनं, कार्यानुशासनेन स्वधर्मस्थापनं, विनय विद्योपदेशेन, लोकप्रियत्वमर्थसंयोगेन, हितेन वृत्तिम्।

एवंवश्येन्द्रियःपरस्त्रीद्रव्यहिंसाश्च वर्जयेत्। स्वप्नं लौल्यमनृत-

मुद्धतवेषत्वमनर्थसंयोगं च । अधर्मसंयुक्तमनर्थसंयुक्तं चव्यवहारम्।

इसलिए कामादि षड् रिपुओं के त्याग से इन्द्रियजय करना चाहिये। विद्यावृद्धों की संगति से प्रज्ञा की वृद्धि करे। गुप्तचरों रूपी दृष्टि से अपने और पराये राष्ट्र के व्यवहार को देखता हुआ अपना उत्थान करे तथा योग-क्षेत्र के साधन एकत्र करे। कार्य और अनुशासन से प्रजा को अपने धर्म में लगाये रहे। विद्या के उपदेश से स्वयं को और प्रजा को विनयशील (विद्यामय) बनावे और लोक-हित के कार्यों में धन लगाता हुआ अपनी जीविका का भी उपार्जन करे। इस प्रकार इन्द्रियों को वश में करके परनारी, पर द्रव्य और हिंसा का त्याग करे, अति निद्रा, चपलता, असत्य, उद्धत वेश-भूषा और अनर्थ संयोग को छोड़ दे और अधर्म तथा अनर्थ से भी दूर रहे।

धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत । न निःसुखः स्यातु । समं वा त्रिवर्गमन्योन्यानुबन्धनम् । एको ह्यत्यासेवितो धर्मार्थकामानामात्मानमितरौ च पीडयति । 'अर्थ एव प्रधान' इति कौटिल्यः। अर्थमूलौ हि धर्मकामाविति ।

मर्यादां स्थापयेदाचार्यानमात्यान् वा । य एनमपायस्थानेभ्यो वारयेयुः । छायानालिकाप्रतोदेन वा रहसि प्रमाद्यन्तमभितुदेयुः ।

सहायसाध्यं राजत्वं चक्रमेकं न वर्तते ।
कुर्वीत सचिवांस्तस्मात्तेषां च शृणुयान्मतम् ॥१

धर्मार्थ के अनुसार ही काम-सेवन करे, सदैव सुखी रहे, परस्पर आश्रय वाले धर्म, अर्थ और काम रूपी त्रिवर्ग का सेवन समान रूप से ही करे। क्योंकि इनमें से एक की भी व्यसन रूप से अति शेष दो को पीडित करने वाली होती है। कौटिल्य के मत में अर्थ ही है। मर्यादानुसार आचार्यों और अमात्यों की नियुक्ति करनी चाहिए, जिससे कि वे राजा को कुमार्ग पर न जाने दें और उसके प्रमाद ग्रस्त होने पर समय सूचक छाया प्रमाण और नालिका प्रमाण के द्वारा कर्तव्य में लगाये रहें। एक पहिये से रथ के न चलने के समान,

राज्य का कार्य भी सहायक द्वारा साध्य होता है। इसलिए सचिवों को नियुक्त करके उनकी बात ध्यान पूर्वक सुननी चाहिए ॥१॥

अष्टमोऽध्याय

अमात्यनियोग

सहाध्यायिनोऽमात्यान्कुर्वीत दृष्टशौचसामर्थ्यत्वादिति भारद्वाजः। ते ह्यस्य विश्वास्या भवन्तीति।

नेति विशालाक्षः। सहक्रीडितत्वात्परिभवन्त्येनम्। येह्यस्य गुह्यसधर्माणस्तानमात्यान्कुर्वीत। समानशीलव्यसनत्वात्। ते ह्यस्य मर्मज्ञत्वभयान्नापराध्यन्तीति। साधारण एष दोष इति पराशरः। तेषामपि मर्मज्ञत्ववभयात्कृताकृतान्यनुवर्तेत।

यावद्भ्यो गुह्यमाचष्टे जनेभ्यः पुरुषाधिपः।
अवशः कर्मणा तेन वश्यो भवति तावताम् ॥१

भारद्वाज के मत में राजा को अपने सहपाठियों में से ही सचिवों की नियुक्ति करनी चाहिए। क्योंकि राजा उनके शुद्ध भाव और सामर्थ्य के विषय में, साथ-साथ पढ़ने के कारण, जानकार रहता है और इसी लिए वे विश्वासी हो सकते हैं। किन्तु आचार्य विशालाक्ष इसे नहीं मानते और कहते हैं कि अध्ययन काल में सहक्रीडा के कारण उनमें धृष्टता हो सकती है। इसलिए गोपनीय कार्यों में साथ देने वालों में से ही किन्हीं को अमात्य बनावे। क्योंकि वे राजा के गोपनीय कार्य में समान शील वाले होने के कारण राजा पर उनका सब मर्म प्रकट रहता है, जिससे वे कार्य ठीक प्रकार करते हैं। आचार्य पराशर के अनुसार अमात्यगणों का राजा के मर्मों से जानकार रहना भी ठीक नहीं, क्योंकि संभव है कि मर्म भेद के भय से राजा स्वयं ही अमात्यों के कृत्य-अकृत्य में सम्मिलित होजाय। कहा भी है कि जो राजा अपने मर्म की बातों को जिन-जिन पर प्रकट कर देता है, उसे उन-उन व्यक्तियों के वशीभूत होजाना पड़ता है ॥१॥

य एनमापत्सु प्राणबाधयुक्तास्वनुगृह्णीयुस्तानमात्यान् कुर्वीत दृष्टानुरागत्वात् इति । नेति पिशुनः—भक्तिरेषा न बुद्धिगुणः । संख्यातार्थेषु कर्मसु नियुक्ता ये यथाऽऽदिष्टमर्थं सविशेषं वा कुर्युस्तानमात्यान्कुर्वीत । दृष्टगुणत्वादिति ।

नेति कौणपदन्तः । अन्यैरमात्यगुणैरयुक्ता ह्येते । पितृपैतामहानमात्यान्कुर्वीत । दृष्टापदानत्वात्ते ह्येनमचरन्तमपि न त्यजन्ति, सगन्धत्वात् । अमानुषेष्वपि चैतत् दृश्यते । गावो ह्यसन्धं गोगणमतिक्रम्य सगन्धेष्वेवावतिष्ठन्ते इति ।

इसलिए प्राण की बाधा उपस्थित होने पर राजा का उपकार करने वाले परखे हुए पुरुष ही अमात्य बनाये जाने चाहिए । किन्तु आचार्य पिशुन के मत में ऐसा नहीं करे । क्योंकि प्राण-बाधा के समय किया जाने वाला राजा का उपकार केवल राजभक्ति ही है, इस कारण वह उसकी बुद्धि का परिचायक नहीं है । राजकर्म में नियुक्त पुरुश को बुद्धिमान होना चाहिए, इसलिए जो निर्दिष्ट कार्य को जैसे का तैसा, वरन् कुछ विशेषता से पूरा करे उसे ही मंत्री बनावे । ऐसे कार्यों के देखने से ही उसकी परीक्षा संभव है । आचार्य कौणपदन्त इसे भी नहीं मानते । उनके विचार में ऐसे कार्य करने वाले पुरुष में भी अमात्य के योग्य गुणों का अभाव रहता है । इसलिए जिनके पिता-पितामह आदि अमात्य पद पर रहे हों, उन्हें ही मन्त्री बनाना चाहिए । क्योंकि वे जटिल समस्याओं को सुलझाने में भी समर्थ होते हैं और राजा से प्रगाढ़ सम्बन्ध रहने के कारण, अपने साथ अन्याय होने पर भी वे राजा का त्याग नहीं किया करते । ऐसा प्रगाढ़ सम्बन्ध अमानुषों (पशुओं) में भी दिखाई देता है । जैसे कि गौएँ अपरिचित गो-समूह का अतिक्रमण कर परिचित गौओं में ही रहा करती हैं ।

नेति वातव्याधिः ते ह्यस्य सर्वमवगृह्य स्वामिवत्प्रचरन्तीति । तस्मान्नीतिविदो नवानमात्यान्कुर्वीत । नवास्तु यमस्थाने दण्डधरं मन्यमाना नापराध्यन्तीति ।

नेति बाहुदन्तीपुत्रः । शास्त्रविददृष्टकर्माकर्मसु विषादं गच्छेत् अभिजनप्रज्ञाशौचशौर्यानुरागयुक्तानमात्यान्कुर्वीत । गुणप्राधान्या-दिति ।

सर्वमुपपन्नमिति कौटिल्यः । कार्तसामर्थ्याद्धि पुरुसामर्थ्यं कल्प्यते सामर्थ्यतश्च ।

विभज्यामात्यविभवं देशकालौ च कर्म च ।
अमात्याः सर्व एवैते कार्याः स्युर्न तु मंत्रिणः ॥२

आचार्य वातव्याधि इसे भी नहीं मानते । उनका कथन है कि वंश क्रम से नियुक्त अमात्य राजा के सर्वस्व को मानकर उसके स्वामी के समान हो जाते हैं । इसलिए नवीन नीतिविदों को ही अमात्य बनावे । क्योंकि यह नव नियुक्त अमात्य राजा को यमराज के समान दंडधारी मानकर अपराध में प्रवृत्त नहीं होते । किन्तु आचार्य बाहुदन्त के पुत्र का मत इससे भिन्न है । उनके अनुसार यह नये नीतिज्ञ व्यावहारिक रूप से कुछ न जानने के कारण जो कुछ करेंगे उसी में विषाद की प्राप्ति होगी । मंत्री में गुण की प्रधानता आवश्यक होने के कारण कुलीन, प्रज्ञावान, शौच और शौर्य युक्त तथा राजा में अनुराग रखने वाले पुरुष को ही मंत्री बनाना चाहिए । आचार्य कौटिल्य के मत में सभी आचार्यों का मत युक्ति संगत है, फिर भी सामर्थ्य की प्रमुखता श्लाघ-नीय होने के कारण सामर्थ्य देखकर ही मंत्री की नियुक्ति करे । देश, काल, गुण, कर्म आदि के अनुसार उपर्युक्त सहपाठी आदि में से किसी को भी अमात्य तो बना सकते हैं, किन्तु मन्त्री नहीं । क्योंकि सर्वगुण सम्पन्न पुरुष ही मन्त्री होने के योग्य होता है ॥२॥

नवमोऽध्याय

मंत्रिपुरोहितनियोग:

जानपदोऽभिजातः स्ववग्रहः कृतशिल्पश्चक्षुष्मान् प्राज्ञो धार-यिष्णुर्दक्षो वाग्मी प्रगल्भः प्रतिपत्तिमानुत्साहप्रभावयुक्तःक्लेशसहः

शुचिमैत्रो दृढ़भक्तिः शीलबलारोग्यसत्त्वसंयुक्तः स्तम्भचापल्य-वर्जितः संप्रिया वैराणामकर्तेत्यमात्य सम्पत् । अतः पादार्धगुण-हीनौ मध्यमावरौ ।

मन्त्री में निम्न गुणों की विद्यामानता आवश्यक होती है—राजा के देश में ही जन्मा हो, श्रेष्ठ कुल वाला, परनिन्दा से परे, शिल्पादि में निपुण, सूक्ष्म दृष्टि से सम्पन्न, प्रज्ञावान, स्मरण शक्ति से सम्पन्न, शीघ्र कार्यपूर्त्ति की क्षमता वाला, वाग्मी, प्रगल्भ, अपनी बात व्यक्त करने में चतुर, उत्साही, प्रभावशाली, कष्ट सहन करने वाला, पवित्र, मैत्रीयुक्त राजा के प्रति दृढ़ भक्ति युक्त, शीलवान, बली, रोग-रहित, धैर्यवान, निरभिमान, चापल्य-रहित, सौम्य और वैर-भाव से रहित हो, वही पुरुष मन्त्रित्व के योग्य है। जिनमें उपरोक्त गुणों से चौथाई न्यून हों, वे मन्त्री मध्यम और आधे गुण हों, वे निम्न कोटि के समझने चाहिए।

तेषां जनपदमवग्रहं चाप्ततः परीक्षेत । समानविद्येभ्यः शिल्पं शास्त्रचक्षुष्मत्तां च । कर्मारम्भेषु प्रज्ञां धारयिष्णुतां दाक्ष्यं च । कथायोगेषु वाग्मित्वं प्रागल्भ्यं प्रतिभानत्त्वं च । आपद्युत्साह-प्रभावो क्लेशसहत्वं च सव्यवहाराच्छौचं मैत्रतां दृढभक्तित्वं च । संवासिभ्यः शीलबलारोग्यसत्त्वयोगमस्तम्भचापल्यं च । प्रत्यक्षतः संप्रियत्वमवैरित्वं च ।

प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः । स्वयंदृष्टं प्रत्यक्षम् । परोपदिष्टं परोक्षम् । कर्मसु कृतेनाकृतावेक्षणमनुमेयम् । अयौगप-द्यात्तु कर्मणामनेकत्वादनेकस्थानत्वाच्च देशकालात्ययो माभूदिति परोक्षममात्यैः कारयेदित्यमात्यकर्म ।

उपर्युक्त गुणों में मन्त्री के जन्म स्थान और कुल की जानकारी पूछने से हो सकती है। शिल्प एवं शास्त्र में निपुणता विषयक ज्ञान मंत्री के सहपाठियों से करना चाहिए। उसकी प्रज्ञा और धारणशक्ति को कार्य करने में अवलोकन करे। उसके वाणी नैपुण्य, प्रागल्भ एवं प्रतिभा की परीक्षा वार्त्तालाप द्वारा करें। उसके साहस, प्रभाव और

क्लेशसहन शक्ति की परीक्षा विपत्ति के समय करे। शुद्धता, मित्रता और दृढ़ भक्ति का परिचय उसके आचरण एवं व्यवहार से करे। शील, बल, आरोग्य, धैर्य, निरंहकारत्व एवं निश्चलता का ज्ञान उसके साथ रहने वालों से करे। सौम्यता का निश्चय प्रत्यक्ष आकृति देखकर और शत्रुता रहित होने का अनुमान विभिन्न प्रश्नों के उत्तर से करले। प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमेय के भेद से राजवृत्ति तीन प्रकार की है। स्वयं देखे वह प्रत्यक्ष, दूसरे पुरुष देखकर कहें वह परोक्ष और कृत कर्म के अवलोकन से शेष कर्म का अनुमान हो वह अनुमेय है। राजा के अनेक कार्य होते हैं, वे एक साथ तो पूरे हो नहीं सकते। उन कार्यों के भिन्न-भिन्न स्थानों में होने के कारण राजा एकाकी ही उन्हें कर नहीं सकता। इसलिए देश-काल के अनुसार मन्त्रियों को नियुक्त करके कार्यों को पूर्ण करावे। इस प्रकार यह अमात्यवर्ग आदि के कार्यों के विषय में बताया गया है।

पुरोहितमुदितोदितकुलशीलं षडङ्गे वेदे दैवे निमित्ते दण्डनीत्यां च अभिविनीतमापदां दैवमानुषीणामथर्वभिरुपायैश्च प्रतिकर्तारं कुर्वीत। तमाचार्यं शिष्यः पितरं पुत्रो भृत्यः स्वामिनमिव चानुवर्तेत।

ब्राह्मणेनैधितं क्षत्र मंत्रिमंत्राभिमंत्रितम्।
जयत्यजितमत्यन्तं शास्त्रानुगमशस्त्रितम् ॥१

अब पुरोहित के विषय में कहते हैं। श्रेष्ठ कुलोत्पन्न, शीलवान, सदाचारी, वेद के छओं अंग, दैवी-विपत्ति, शकुन-शास्त्र एवं दंडनीति आदि में पारंगत तथा अथर्ववेद के मन्त्रोपायों द्वारा दैवी और मानुषी विपत्तियों को दूर करने में समर्थ पुरुष को पुरोहित के पद पर नियुक्त करना चाहिए। जिस प्रकार शिष्य आचार्य को, पुत्र पिता को और भृत्य स्वामी को पूज्य समझता है, वैसे ही पुरोहित को राजा अपना पूज्य मानता हुआ उसके कहे अनुसार ही कार्य करे। इस प्रकार ब्राह्मण पुरोहित के द्वारा संवर्द्धित एवं मन्त्रियों की मन्त्रणाओं द्वारा अभि-

मंत्रित क्षत्रिय नरेश शास्त्रोक्त विधियों में तत्पर रहता हुआ, शस्त्र के बिना ही अत्यंत अजेय हो जाता है ॥१॥

दशमोऽध्याय

उपधा से अमात्यों का शौचाशौचज्ञान

मन्त्रिपुरोहितसखः सामान्येष्वधिकरणेषु स्थापयित्वाऽमात्यानुपधाभिः शौचयेत् ।

पुरोहितमयाज्ययाजनाध्यापने नियुक्तममृष्यमाणं राजा अवक्षिपेत् । स सत्रिभिः शपथपूर्वकमेकैकममात्यमुपजापयेत् । अधार्मिकोऽयं राजा साधुधार्मिकमन्यमस्य तत्कुलीनमवरुद्ध कुल्यमेकप्रग्रहं सामन्तमाटविकमौपपादिकं वा प्रतिपादयामः । सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति । प्रत्याख्याने शुचिरिति धर्मोपधा ।

अमात्य आदि को प्रथम किसी सामान्य अधिकारी का पद देकर राजा अपने मन्त्री, पुरोहित, सखा आदि के सहयोग से उपधा अर्थात् छल पूर्वक उसके हृदय की पवित्रता को परखे । इसकी यह विधि उपयुक्त रहेगी कि राजा अपने पुरोहित को किसी अनधिकारी का यज्ञ कराने अथवा वेद पढ़ाने को कहे, जिसे ठुकरा कर वह राजा से रुष्ट हो जाय । तब राजा उसे पुरोहित के पद से रिक्त कर दे । तब वह पुरोहित सत्रि संज्ञक गुप्तचरों के द्वारा नवनियुक्त अधिकारी के पास जाकर उन्हें शपथ पूर्वक विश्वास में लेता हुआ कहे कि यह राजा तो अधर्मी है । इसलिए इसे राज्यपद से च्युत करके इसी वंश के किसी साधु और धार्मिक पुरुष को अथवा निकटवर्त्ती किसी सामन्त, वन्य प्रदेश के अधिपति अथवा किसी अन्य योग्य व्यक्ति को राजा बना दें । इस बात से सभी मन्त्री आदि सहमत हैं, अब आप अपना विचार भी प्रकट करिये । यह सुनकर वह अधिकारी तुरन्त ही इसे अस्वीकार कर दें । तो उन्हें शुद्ध मानना चाहिए । यह धर्मोपधा संज्ञक परीक्षण विधि कही गई है ।

सेनापतिरसत्प्रतिग्रहेणावक्षिप्तः सत्त्रिभिरेकैकममात्यमुपजापयेल्लोभनीयेनार्थेन राजविनाशाय। सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति। प्रत्याख्याने शुचिरित्यर्थोपधा।

परिव्राजिका लब्धविश्वासा अन्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रमेकैकमुपजपेत्—'राजमहिषी त्वां कामयते कृतसमागमोपाया महानर्थश्च ते भविष्यती' ति। प्रत्याख्याने शुचिरिति कामोपधा।

अब अर्थोपधा संज्ञक परीक्षण विधि को कहते हैं। राजा अपने सेनापति को अनधिकारी पुरुष को सम्मानित करने का आदेश दे और वह उस आदेश को ठुकरा दे। तब राजा उसे पद से हटा दे और वह सत्रिसंज्ञक गुप्तचरों को उन अमात्य या अधिकारी के पास भेज कर धन लोभ देता हुआ राजा को मारने का विचार प्रकट कर उसकी सम्मति माँगे। यदि वे अमात्यादि उस प्रस्ताव को तुरन्त ही ठुकरा दें तो उन्हें शुद्ध समझना चाहिए। इसी प्रकार अब कामोपधा अर्थात् काम-प्रलोभन के छल से परीक्षण की विधि को कहते हैं। राजा के अन्तःपुर की रानियों द्वारा पूजनीया एवं विश्वास को प्राप्त कोई संन्यासिनी उन अमात्यादि के पास जाकर कहे—आप पर राजमहिषी अनुरक्त हैं और उन्होंने आपके समागम का उपाय भी कर लिया है। इसलिए आप उनके पास चलिए। इससे आपको प्रभूत धन की भी प्राप्ति होगी। इसे सुन कर वे तुरन्त ठुकरा दें तो शुद्ध समझना चाहिए।

प्रवहणनिमित्तमेकोऽमात्यः सर्वानमात्यानावाहयेत्। तेनोद्वेगेन राजा तानवरुंध्यात्। कापटिकच्छात्त्रः पूर्वावरुद्धस्तेषामर्थमानावक्षिप्तमेकैकममात्यमुपजपेत्—'असत्प्रवृत्तोऽयं राजा। सहैनं हत्वाऽन्यं प्रतिपादयामः। सर्वेषामेतद्रोचते कथं वा तवेति'। प्रत्याख्याने शुचिरिति भयोपधा।

तत्र धर्मोपधाशुद्धान्धर्मस्थीयकण्टशोधनेषु स्थापयेत्। अर्थोपधाशुद्धान्समाहर्तृसंनिधातृनिचयकर्मसु। कामोपधाशुद्धान्बाह्या-

भ्यन्तरविहाररक्षासु । भयोपधाशुद्धानासन्नकार्येषु राज्ञः सर्वोपधाशुद्धान्मंत्रिणः कुर्यात् । सर्वत्राशुचीन्खनिद्रव्यहस्ति वनकर्मान्तेषूपयोजयेत् ।

अब भयोपधा अर्थात् भय-प्रदर्शन के छल से परीक्षण-विधि को कहेंगे । राजा का कोई एक मन्त्री सहसा सब अमात्यों को नौकाविहार के लिए आमंत्रित करे । उनके उद्वेग के कारण राजा उन्हें दण्डित कर दे । फिर राजा द्वारा पहिले ही दण्ड पाया हुआ छात्र रूपी छद्मवेश वाला एक गुप्तचर उन अमात्यों से पृथक्-पृथक् कहे—यह राजा असत्-प्रवृत्ति वाला है । इसका सहसा वध करके किसी अन्य योग्य व्यक्ति को राजा बनाना चाहिए । सभी इस बात से सहमत हैं, आपका क्या विचार है, वह बताइये । यह सुन कर उसे ठुकरा दें तो उन्हें शुद्ध समझना चाहिए इन चारों उपधाओं में से धर्मोपधा द्वारा परीक्षित शुद्ध अमात्यों को धर्मस्थीय एवं कण्टकशोधन के कार्य पर नियुक्त करे । अर्थोपधा द्वारा शुद्ध अमात्यों को समाहर्त्ता (राजकर अधिकारी) अथवा सन्निधाता (राजकोष अधिकारी) का पद प्रदान करे । कामोपधा द्वारा शुद्ध पुरुषों को बाह्याभ्यन्तर की विहार-साधन रूपा महारानी आदि स्त्रियों की रक्षा में नियुक्त करे और भयोपधा द्वारा शुद्ध ठहरे हुए अमात्यों को राजा अपनी रक्षा के लिए नियुक्त करके अपने पास रखे । जो अमात्य चारों प्रकार की उपधाओं में शुद्ध सिद्ध हों, उन्हें मन्त्री बनावे तथा जो अशुद्ध ठहरें, उन्हें खान, द्रव्य, हाथियों के वन आदि के अन्यान्य बाह्य कार्यों पर नियुक्त करे ।

त्रिवर्गभयसंशुद्धानमात्यान्स्वेषु कर्मसु ।
अधिकुर्याद्यथाशौचमित्याचार्या व्यवस्थिताः ।।१
न त्वेव कुर्यादात्मानं देवीं वा लक्ष्मीश्वरः ।
शौचहेतोरमात्यानामेतत्कौटिल्यदर्शनम् ।।२
न दूषणमदुष्टस्य विषेणेवाम्भसश्चरेत् ।
कदाचिद्धि प्रदुष्टस्य नाधिगम्येत भेषजम् ।।३

कृता च कलुषा बुद्धिरुपधाभिश्चतुर्विधा ।
नागत्वाऽ र्तनिवर्तेत स्थिता सत्त्ववतां धृतौ ।।४
तस्माद्वाह्यमधिष्ठानं कृत्वा कार्ये चतुर्विधे ।
शौचाशौचममात्यानां राजा मार्गेत सत्रिभिः ।।५

आचार्यों के मत में उपर्युक्त धर्म, अर्थ, काम और भय रूपी चारों उपधाओं द्वारा जिनकी परीक्षा हो चुकी और वे शुद्ध सिद्ध हो चुके हों, उन्हें उनकी शुद्धता के अनुसार ही कार्यों पर लगावे । किन्तु कौटिल्य के मत में उक्त परीक्षाओं में राजा स्वयं को अथवा रानियों को कदापि सम्मिलित न करे । क्योंकि इस प्रकार की छलयुक्त परीक्षा विषयुक्त जल के समान भीषण परिणाम वाली इस लिए सिद्ध हो सकती है कि एक बार ऐसी प्रवंचना में पड़ कर दुष्टमति हुए किसी अमात्य के प्रतीकार की कोई औषधि नहीं हो सकती और इस प्रकार यदि कोई अमात्य दूषित हो जाय तो उसकी कलुषित बुद्धि राजा के अमंगल की चरम सीमा पर जाये बिना निवृत्त नहीं हो सकती । इसलिए उपरोक्त उपधाओं की विधि से किया जाने वाले परीक्षण को राजा अपने सात्रिसंज्ञक गुप्तचरों के द्वारा किसी बाहरी वस्तु से ही पूरी करावे ।।१-५।।

एकादशोऽध्याय

गूढपुरुष नियोग

उपधाभिः शुद्धोऽमात्यवर्गो गूढपुरुषानुत्पादयेत् । कापटिकोदास्थितगृहपतिकवैदेहकतापसव्यञ्जानान् सत्रितीक्षणरसदभिक्षुकाश्च ।

परमर्मज्ञः प्रगल्भश्छात्रः कापटिकः । तमर्थमानाभ्यामुत्साह्य मन्त्रा ब्रूयात् राजानं मां च प्रमाणं कृत्वा यस्य यदकुशलं पश्यसि तत्तदानीमेव प्रत्यादिशेति ।

उपर्युक्त चार उपधाओं द्वारा अमात्यों की शुद्धता सिद्ध होने पर उन अमात्यों द्वारा गुप्तचरों की नियुक्ति की जानी चाहिए । कापटिक,

उदास्थित, गृहपति, वैदेहक, तापस व्यंजन, सत्री, तीक्ष्ण, रसद और भिक्षुकी के भेद से गुप्तचर अनेक प्रकार के होते हैं। दूसरों के छिद्र जानने में चतुर, प्रगल्भ, छात्रवेश धारण करने वाला गुप्तचर कापटिक कहा गया है। उसे प्रभूत धन एवं सम्मान से उत्साहित करके मन्त्री को कहना चाहिए—राजा को और मुझे प्रमाण मानकर तुम जहाँ, जिस अमात्यादि की अकुशलता देखो, उसे तत्काल हमसे कहो।

प्रव्रज्याप्रत्यवसितः प्रज्ञाशौचयुक्त उदास्थितः। स वार्ताकर्म-प्रदिष्टायां भूमौ प्रभूतहिरण्यान्तेवासी कर्म कारयेत्। कर्मफलाच्च सर्वप्रव्रजितानां ग्रासाच्छादनावसथान् प्रतिविदध्यात्। वृत्तिकामांश्चोपजपेत्—एतेनैव वेषेण राजार्थश्चरितव्यो भक्तवेतन-काले चोपस्थातव्यमिति। सर्वप्रव्रजिताश्च स्वं स्वं वर्गमुपजपेयुः।

प्रज्ञावान, पवित्र एवं संन्यासी के वेश में रहने वाला गुप्तचर उदास्थित कहा गया है। प्रभूत धन और अनेक शिष्यों के साथ वह गुप्तचर निश्चित स्थान पर पहुँचकर वार्ताकर्म अर्थात् कृषि, वाणिज्य या पशु-पालनादि करे। उस व्यवसाय द्वारा अर्जित लाभ से सब प्रकार साधु-संन्यासियों के भोजन और निवास का प्रबन्ध करे। उनमें से जो साधु उससे भोजन आदि की इच्छा करें उन्हें वह उदास्थित गुप्तचर समझावे-तुम अपने इसी वेश में रहते हुए राज-कार्य करो और वेतन तथा भत्ता आदि मेरे पास आकर ले लिया करो। इसी प्रकार वे सब साधु अपने-अपने वर्ग के साधुओं को जीविका देते हुए अपने वश में करलें।

कर्षको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो गृहपतिकव्यञ्जनः। स कृषिकर्मप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण।

वाणिजको वृत्तिक्षीणः प्रज्ञाशौचयुक्तो वैदेहकव्यञ्जनः। स वणिक्कर्मप्रदिष्टायां भूमौ इति समानं पूर्वेण।

गृहपतिक गुप्तचर वह कहा जाता है, जो कृषक जीविका-रहित, दरिद्र किन्तु बुद्धिमान और पवित्र हो। वह कृषिकर्म के लिए निश्चित भूमि पर निवास करता हुआ, पूर्वोक्त प्रकार से अन्य कृषकों को जीविका

देकर अपने वश में रखता है। अब वैदेहक गुप्तचर के विषय में कहते हैं। वह वैश्य, वृत्तिहीन, किन्तु बुद्धिमान और पवित्र हृदय होता है और अपने वणिक कर्म को करता हुआ पूर्व प्रकार से अन्य वैश्यों को देकर वश में रखता है।

मुण्डो जटिलो वा वृत्तिकामस्तापसव्यंजनः। स नगराभ्याशे प्रभूतमुण्डजटिलान्तेवासी शाकं यवसमुष्टिं वा मासद्विमासान्तरं प्रकाशमश्नीयात्। गूढमिष्टमाहारम्। वैदेहकान्तेवासिनश्चैनं समिद्धयोगैरर्चयेयुः। शिष्याश्चास्यावेदयेयुरसौ सिद्धःसामेधिक इति। सनेधाशास्तिभिश्चाभिगतानामङ्गविद्यया शिष्यसंज्ञाभिश्च कर्माण्यभिजनेऽवसितान्यादिशेत्।

अल्पलाभमग्निदाहं चोरभयं दूष्यवधं तुष्टदानं विदेशप्रवृत्तिज्ञानं 'इदमद्य श्वो वा राजा करिष्यतीति'।

तापसव्यंजन गुप्तचर सिर मुडाये हुए, जटाधारी किन्तु आजीविका के लिए राज-कार्य करने वाला होता है। वह किसी नगर के समीप आश्रम बनाकर अपने जैसे वेश वाले अनेक तपस्वी शिष्यों के साथ रह कर मास-दो मास के अन्तर से एक दिन शाक या यवादि अन्न का आहार करना प्रकट करे। उसके शिष्य उसकी सिद्धि के प्रचारार्थ सदा उसका पूजनादि सत्कार करते रहें और जन-साधारण में फैलादें कि यह सिद्ध भविष्य में उपलब्ध होने वाली सुख-सम्पत्ति आदि के विषय में यथार्थ बता देते हैं। तत्पश्चात् भविष्य विषयक प्रश्नकर्त्ताओं को वह तापस गुप्तचर पूछने वाले के शारीरिक चिन्ह, आदि देखकर या शिष्यों द्वारा पता लगाकर बताये हुए संकेत को समझकर तथा अपनी बुद्धि के बल से भूतकाल की बातें उसे बतावे। फिर उसे अल्पलाभ, अग्निदाह और चोरी के भय की बात बताकर राजा से वैर करने वालों का वध, राजा की प्रसन्नता से वैभव की प्राप्ति, विदेश में हुई घटनाओं की जानकारी दे। साथ ही किसी प्रसंग में यह भी बतादे कि आज-कल में तुमसे सम्बन्धित अमुक राजाज्ञा होने वाली है।

तदस्य गूढाः सत्रिणश्च सम्वादयेयु । सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्ति-सम्पन्नानां राजभाव्यमनुव्याहरेत् मंत्रिसंयोगं च। मन्त्री वृत्तिकर्मभ्यां वियतेत। ये च कारणादिक्रुद्धास्तानर्थमानाभ्यां शमयेत्। अकारणक्रुद्धान् तूष्णींदण्डेन राजद्विष्टकारिणश्च।

पूजिताश्चार्थमानाभ्यां राज्ञा राजोपजीविनाम्।
जानीयुः शौचमित्येताः पंच संस्थाः प्रकीर्तिताः ॥१

तत्पश्चात् उसके शिष्य सत्री गुप्तचर अपने गुरु के वचन को यथार्थ कर दिखावें। यदि प्रश्नकर्त्ता बल, बुद्धि से सम्पन्न और बात करने में चतुर हो तो उसे राजा से मिलने वाले धन तथा मन्त्री से भेंट होने का सुयोग भी बतावे। फिर जब वह मंत्री से मिले तो उसके शरीर एवं बुद्धि के बलानुसार उसे वृत्तिकार्य दिलवाने का उपाय करे। गुप्तचरों की सूचना के आधार पर किसी शक्तिशाली पुरुष का राजा से रुष्ट होना ज्ञात हो तो मंन्त्री द्वारा उसे धन या सम्मान देकर सन्तुष्ट करना चाहिए। किन्तु यदि कोई अकारण ही कुपित हो जाय, तो उसे राजद्रोह के अभियोग में मरवा डाले। राजा द्वारा दान और सम्मान से पूजित हुए गुप्तचरों को अमात्यादि उपजीवियों का सदा परीक्षण करते रहना चाहिए। यह पाँच प्रकार के गुप्तचर 'संस्था' भी कहे गये हैं। क्योंकि वे राजकार्य के लिए एक स्थान पर स्थित रहते हुए भी सम्पूर्ण राज्य को देखते रहते हैं ॥१॥

द्वादशोऽध्याय

गूढ़पुरुषप्रणिधि

ये चाप्यसम्बन्धिनोऽवश्यं भर्तव्यास्ते लक्षणमङ्गविद्यां जम्भकविद्यां मायागतमाश्रमधर्मं निमित्तमन्तरचक्रमित्यधीयानाः सत्रिणः संसर्गविद्या वा। ये जनपदे शूरास्त्यक्तात्मानो हस्तिनं व्यालं वा द्रव्यहेतोः प्रतियोधयेयुस्ते तीक्ष्णाः। ये बन्धुषु निःस्नेहाः क्रूराश्चालसाश्च ते रसदाः। परिव्राजिका वृत्तिकामा

दरिद्रा विधवा प्रगल्भा ब्राह्मण्यन्तःपुरे कृतसत्कारा महामात्रकुलान्यधिगच्छेत् । एतया मुण्डा वृषल्यो व्याख्याताः । इति सचाराः ।

सम्बन्धी न होते हुए भी राजा उनको गुप्तचरों का भरण-पोषण अवश्य करना चाहिए । उनमें से जिन्हें लक्षण शास्त्र, अङ्गविद्या, जम्भक विद्या, मायामय इन्द्रजाल आदि, आश्रमधर्म, शकुन विद्या, अन्तरचक्र-विद्या, कामशास्त्र तथा इसके सहायक संगीत आदि का ज्ञान है, वे सत्री कहे गये हैं । जो गुप्तचर अपने देह की चिन्ता छोड़कर नगरादि में जाकर धन-प्राप्ति के उद्देश्य से हाथी या सर्प आदि से युद्ध करते हुए अपना बल दिखाते हैं, वे तीक्ष्ण संज्ञक होते हैं । जो अपने बान्धवादि के प्रति भी स्नेह-रहित एवं क्रूर होते हैं, वे प्रमाद में पड़े रहने वाले गुप्तचर रसद कहे गये हैं । जीविका की इच्छा वाली जो ब्राह्मणी दरिद्रा, विधवा या धृष्टा हो, वह राजा के अन्तःपुर में सत्कार को प्राप्त होकर महामात्र आदि के घरों में भी पहुँचती हो, वह परिव्राजिका अर्थात् संन्यासिनी नाम की गुप्तचरी कही जाती है । इसी प्रकार मुण्डा (बौद्ध भिक्षुणी) तथा वृषली (शूद्रा) के विषय में भी जाने । यह संचार विषयक कहा गया है ।

तान् राजा स्वविषये मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजदौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्तृसन्निधातृप्रदेष्टृ नायकपौरव्यावहारिककार्मान्तिकमंत्रिपरिषदध्यक्षदण्डं दुर्गान्तपालाटविकेषु श्रद्धेयदेशवेष शिल्पभाषाभिजनापदेशान् भक्तितः सामर्थ्ययोगाच्चापसर्पयेत् ।
तेषां बाह्यं चारं छत्रभृंगारव्यजनपादुकासनयानवाहनोपग्राहिणः तीक्ष्णा विद्युः । सत्रिण सस्थास्वर्पयेयुः ।

उन संचार संज्ञक गुप्तचरों की अपने प्रति भक्ति और कार्य-सम्पादन में चतुराई देखकर उन्हें सब प्रकार सुसज्जित कर मन्त्री, पुरोहित, सेनापति, युवराज, दौवारिक, अन्तःपुर अधिकारी, कारागार अधिकारी, राजकोष अधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, नायक, नगर-न्यायालय का प्रमुख विचारक, यंत्रालयों

का मुख्य निरीक्षक, मंत्रिपरिषद का अध्यक्ष, दंडपाल, दुर्गपाल सीमापाल एवं वनरक्षक—इन अठारहों के ऊपर नियुक्त करे। उक्त अठारह महामात्रों के यहाँ रहता हुआ तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर उनके छत्र, चँवर, पंखा, पादुका, आसन, यान एवं वाहनादि के कार्य पर नियुक्त होकर उनके बाहरी समाचार सत्रि संज्ञक गुप्तचरों को देते रहें, जो कि 'संस्था' के पास भेज दिया करें।

सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारका रसदाः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मानो नटनर्तकगायनवादकवाग्जीवनकुशीलवाः स्त्रियश्चाभ्यन्तरं चारं विद्युः। तं भिक्षुक्यः संस्थास्वर्पयेयुः। संस्थानामन्तेवासिनः सज्ञालिपिभिश्चारसंचारं कुर्युः। न चान्योन्यं संस्थास्ते वा विद्युः।

अमात्यादि की आन्तरिक गति-विधि के ज्ञानार्थ रसद संज्ञक गुप्तचर, उनके यहाँ रसोइया, माँस बनाने वाले, स्नान कराने वाले, शरीर दाबने वाले, शय्या बिछाने वाले, नापित, प्रसाधक और जल भरने वाले के रूप में जाकर रहें अथवा कुबड़े, ठिगने, मूक, वधिर, मूर्ख, अन्ध, नट, नर्तक, गायक, वादक, कथा कहने वाले या कुशीलव के रूप में उनसे सम्पर्क बनाये रखें। सुशिक्षिता नारियों को भी गुप्तचरी का कार्य दिया जाय, जिससे कि वे आन्तरिक समाचार प्राप्त करके भिक्षुणियों को दें और वे भिक्षुणियाँ 'संस्था' के पास पहुंचावें। तब संस्था के कर्मचारी उन समाचारों को सांकेतिक लिपि में सचार नामक गुप्तचरों को भेज दें। इस विषयक में सतर्क रहें कि संस्था के कर्मचारी भी उन बातों को ठीक प्रकार से न समझ पावें।

भिक्षुकीप्रतिषेधे द्वाःस्थपरम्परा मातृपितृव्यंजनाः शिल्पकारिकाः कुशीलवा दास्यो वा गीतपाठ्यभाण्डगूढलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारं निर्हारयेयुः दीर्घरोगोन्मादाग्निरसविसर्गेण वा गूढनिर्गमनम्। त्रयाणामेकवाक्ये संप्रत्ययः।

तेषामभीक्ष्णविनपाते तूष्णीं दण्डः प्रतिषेधो वा कण्टकशोधनोक्ताश्चापसर्पाः परेषु कृतवेतना वसेयुः सम्पातनिश्चारार्थम् । त उभयवेतनाः ।

यदि किसी आमात्यादि के यहाँ भिक्षुणी का प्रवेश निषिद्ध हो तो वहाँ के द्वारपाल परस्पर में उनके आन्तरिक समाचार का आदान-प्रदान करते हुए राजा के पास पहुंचा दें । यदि ऐसा न हो सके तो गुप्तचर वहाँ भृत्यों के माता-पिता आदि सम्बन्धी बन कर भीतर जा घुसें । गुप्तचरियाँ वहां की स्त्रियों में शिल्पकारिका या गायन-वादन सुनाने वाली के रूप में दासी होकर रहस्य भेद करें । यह भी संभव न हो तो भीतर जाकर गुप्तचर गीत, पाठ, सांकेतिक वाद्यवादन अथवा पात्र आदि में गुप्त लेख रख कर बाहर भेज दें या दीर्घ उन्माद आदि रोगों के बहाने से, किसी प्रकार अग्नि जलाकर या विष देकर वहाँ के जीवन को त्रस्त करते हुए भीतरी समाचार लेकर बाहर आ जांय । किन्तु ऐसे समाचारों पर तभी विश्वास करना चाहिए जब कि तीन गुप्तचरों द्वारा समान समाचार दिया गया हो । गुप्तचरों द्वारा यथार्थ समाचार न मिलने पर उन्हें गुप्त रूप से दण्ड दे अथवा कार्य से पृथक् कर दे । इनके अतिरिक्त कण्टकशोधन अधिकरण में वर्णित अपसर्पनाशक गुप्तचरों को शत्रु की सेवा के लिए नियुक्त करे,जो कि शत्रु से भी वेतन लेते रहें । यह उभयवेतन वाले गुप्तचर वहाँ के समाचारों को भेजने में सफल हो सकते हैं ।

गृहीतपुत्रदारांश्च कुर्यादुभयवेतनान् ।
ताँश्चारिप्रहितान्विद्यात्तेषां शौचं च तद्विधैः ॥१
एवं शत्रौ च मित्रे च मध्यमे चावपेच्चरान् ।
उदासीने च तेषां च तीर्थेष्वष्टादशस्वपि ॥२
अन्तर्गृहचरास्तेषां कुब्जवामनवञ्चकाः ।
शिल्पवत्यः स्त्रियो मूकाश्चित्राश्च म्लेच्छजातयः ॥३

दुर्गेषु वणिजः संस्था दुर्गान्ते सिद्धतापसाः ।
कर्षकोदास्थिता राष्ट्रे राष्ट्रान्ते व्रजवासिनः ॥४
वने वनचराः कार्याः श्रमणाटविकादयः ।
परप्रवृत्तिज्ञानार्थं शीघ्राश्चारपरम्पराः ॥५
परस्य चैते बोद्धव्यास्तादृशैरेव तादृशाः ।
चारसंचारिणः संस्था गूढाश्च गूढसंज्ञिताः ॥६
अकृत्यान्कृत्यपक्षीयैर्दर्शितान्कार्यहेतुभिः ।
परापसर्पज्ञानार्थं मुख्यानन्तेषु वासयेत् ॥७

उभयवेतन गुप्तचर की नियुक्ति करके उसके स्त्री-पुत्र आदि को अपने अधीन रखे । शत्रु के भेजे हुए ऐसे गुप्तचर को प्रयत्न पूर्वक पहिचाने । इनके हृदयगत शुद्ध-अशुद्ध भावों का परीक्षण उभयवेतन गुप्तचरों द्वारा ही करानी चाहिए । इस प्रकार शत्रु, मित्र, मध्यम एवं उदासीन राजा, उनके मंत्री आदि अठारह महामात्र आदि सभी पर गुप्तचर नियुक्त कर दे । उन उदासीन राजाओं के अन्तःपुर के समाचार जानने के लिए कुबड़े, ठिंगने, ठग, शिल्प कार्य में निपुण नारियाँ, मूक अथवा विविध प्रकार के म्लेच्छ जातीय गुप्तचरों की नियुक्ति करनी चाहिए । शत्रु-दुर्ग के समाचारों के लिए वैदेहक, दुर्ग-सीमा पर तापस, राष्ट्र में कृषक या उदास्थित तथा जनपद की सीमा पर व्रजवासी संज्ञक गुप्तचर लगावे । शत्रु की प्रवृत्ति जानने के लिए उसके वन में वनचर, श्रमण या आटविक आदि गुप्तचर नियुक्त करने चाहिए । यदि शत्रु के गुप्तचर अपने राष्ट्र में हों तो उनकी जानकारी के लिए राजा अपने उसी प्रकार के गुचप्तरों को लगा दे । जो अनेक प्रलोभनो के भी शत्रु के वशीभूत न हो सकें और जिन्हें सब कारणों या कर्त्तव्यों का ज्ञान करा दिया हो, उन्हें शत्रुओं के गुप्तचरों की गति-विधि जानने के लिए सीमा पर नियुक्त करना चाहिये ॥१-७॥

त्रयोदशोऽध्याय

कृत्याकृत्यपक्षरक्षण

गूढ़पुरुषप्रणिधिः कृतमहामात्रापसर्पः पौरजानपदानपसर्पयेत् । सत्रिणो द्वन्द्विनस्तीर्थसभाशालापूगजनसमवायेषु विवादं कुर्युः— "सर्वगुणसम्पन्नश्चायं राजा श्रूयते । न चास्य कश्चिद्गुणो दृश्यते । यः पौरजानपदान् दण्डकराभ्यां पीडयतीति' । तत्र येऽनुप्रशंसेयुस्तानितरस्तं च प्रतिषेधयेत्—

महामात्र आदि पर गुप्तचर लगाने के साथ ही नगर या जनपद के निवासियों पर भी गुप्तचर लगाने चाहिये । उसके लिए तीर्थ स्थान, सभास्थल, भोजन विक्रय स्थान, श्रमिक-समूह अथवा विशेष भीड़ के स्थानों पर सत्री संज्ञक गुप्तचर परस्पर कहें— राजा को सर्वगुण सम्पन्न सुनते हैं, किन्तु ऐसा कोई भी गुण इसमें दिखाई नहीं देता । क्योंकि यह लोगों को अकारण ही दण्ड देकर पीडित करता है । तब अन्य गुप्तचर उसे रोकने के लिए इस प्रकार कहे—

'मात्स्यन्यायाभिभूता प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे । धान्यषड्भागं पण्यदशभागं हिरण्यं चास्य भागधेयं कल्पयामासुः । तेन भृता राजानः प्रजानां योमक्षेमवहाः तेषां किल्बिषं दण्डकरा हरन्ति, योगक्षेमवहाश्च प्रजानाम् । तस्मादुञ्छषड्भागमारण्यका अपि निवपन्ति—तस्यैतद्भागधेयं योऽस्मान् गोपायतीति ।' इन्द्रयमस्थानमेतत् राजानः प्रत्यक्षहेडप्रसादाः । तानवमन्यमानान् दैवोऽपि दण्डः स्पृशति । तस्माद्राजानो नावमन्तव्याः' । इति क्षुद्रकान् प्रतिषेधयेत् ।

मात्स्य न्याय से पीडित हुई प्रजा ने वैवस्वत मनु को अपना राजा बना कर यह नियम भी बना दिया कि राजा प्रजा से धान्य का छटवाँ भाग एवं विक्रय योग्य वस्तु का दसवाँ भाग कर रूप नकद प्राप्त करके

प्रजा के योग क्षेम का स्वयं वहन करेगा। प्रजा पर जो राज कर या राज दण्ड लगे उससे पाप नष्ट होता और मंगल भी होता है। इसीलिए वन में वास करने वाले तपस्वी भी कण-कण के संचय से एकत्र किए अन्न का छटवाँ भाग राजा को देते हैं। उनके मत में रक्षा करने वाले राजा को वह कर रूप में प्राप्त होना उचित ही है। प्रजा पर अनुग्रह और निग्रह करने वाला होने के कारण राजा इन्द्र और यम दोनों का ही प्रतिनिधित्व करता है। इसलिए राजा का अपमान करने वाला दैव द्वारा भी दंडित होता है। अतएव राजा का अपमान नहीं करना चाहिए। यह कह कर वह उसे निन्दा करने से निषेध करे।

किंवदन्तीं च विद्युः। ये चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याजीवन्ति तैरुपकुर्वन्ति, अभ्युदये वा कुपितं बन्धुं राष्ट्रं वा व्यावर्तयन्त्यमित्रमाटविकं वा प्रतिषेधयन्ति, तेषां मुण्डजटिलव्यंजनास्तुष्टातुष्टत्वं विद्युः। तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत्।

असन्तुष्टांस्तुष्टिहेतोस्त्यागेन साम्ना च प्रसादयेत्। परस्पराद्वा भेदयेदेनान्सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धेभ्यश्च। तथाप्यतुष्यतो दण्डकरसाधनाधिकारेण वा जनपदविद्वेषं ग्राहयेत्। विद्विष्टानुपांशुदण्डेन जनपदकोपेन वा साधयेत्। गुप्तपुत्रदारानाकरकर्मान्तेषु वा वासयेत्, परेषामास्पदभयात्।

इस प्रकार उन गुप्तचरों को किम्बदन्तियों की भी जानकारी रहनी चाहिए। जो राजा को धान्य, पशु, स्वर्ण आदि देने के इच्छुक हों या संकट काल में किसी प्रकार राजा की सहायता करना चाहते हों अथवा अभ्युदय या आपत्काल में रुष्ट हुए बान्धवों या राष्ट्र को सन्तुष्ट करते हों तथा वन में डेरा डालने वाले दस्यु आदि के प्रतिषेध में राजपुरुषों के सहायक रहते हों, ऐसे राजभक्तों का परिचय मुण्डी या जटाधारी गुप्तचरों को अवश्य रखना चाहिए। जो प्रजाजन राजा से प्रसन्न हों, उनका सम्मान और धन से राजा द्वारा अवश्य सत्कार किया जाना चाहिए। असन्तुष्टों को भी धन और आश्वासनों से सन्तुष्ट करे। यह

न हो पाये तो उन विरोधियों में ही परस्पर मतभेद उत्पन्न करा दे। इसके लिए सामन्त, वन में रहने वाले, उनके कुटुम्बीजनों या परिचितों से काम ले। इससे भी कार्य न बने तो दण्ड या कर लेने वाले अधिकारियों के माध्यम से प्रजा को उनके विरुद्ध करने का प्रयत्न करे। राजा से द्वेष करने वालों को गुप्त रीति से दण्ड देकर या जनता को उनके विरुद्ध करके वश में करे और उनके पुत्र, पत्नी आदि का रक्षण-भार अपने हाथ में करके उन्हें किसी खान या अरण्य के कार्य में नियुक्त कर दे। क्योंकि उनके शत्रु पक्ष में मिलने का अधिक भय बना रहता है।

क्रुद्धलुब्धभीतावमानिनस्तु परेषां कृत्याः। तेषां कार्तान्तिक-नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यंजनाः परस्पराभिसम्बन्धममित्रप्रतिसम्बन्धं वा विद्युः। तुष्टानर्थमानाभ्यां पूजयेत्। अतुष्टान् सामदानभेद-दण्डैः साधयेत्।

एवं स्वविषये कृत्यानकृत्यांश्च विचक्षणः।
परोपजापात्संरक्षेत्प्रधानान्क्षुद्रकानपि ॥१

क्योंकि क्रोधी, लोभी, भयभीत या तिरस्कृत पुरुष ही शत्रु से मिल सकते हैं। उन पर दृष्टि रखने के लिए ज्योतिषी, शकुनी या मौहूर्तिक के वेश वाले गुप्तचर नियुक्त किये जाने चाहिए। वे उनके पारस्परिक सम्बन्ध की जानकारी रखते रहें कि कहीं उनका सम्पर्क शत्रु या उसके पक्ष वालों से तो नहीं बढ़ रहा है। संतुष्ट प्रजाजनों को धन-सम्मान से सन्तुष्ट करे तथा असंतुष्टों के प्रति साम, दान, भेद और दण्ड का साधन करे।

चतुर्दशोऽध्याय

कृत्याकृत्यपक्षोपग्रह

कृत्याकृत्यपक्षोपग्रहः स्वविषये व्याख्यातः। परविषये वाच्यः। संश्रुत्यार्थान् विप्रलब्धः तुल्याधिकारिणोः शिल्पे वोपकारे वा विमानितः वल्लभावरुद्धः, समाहूय पराजितः प्रवासोपतप्तः,

कृत्वा व्ययमलब्धकार्यः, स्वधर्माद्दायाद्याद्वोपरुद्धः, मानाधिकाराभ्यां भ्रष्टः, तुल्यैरन्तर्हितः, प्रसभाभिमृष्टस्त्रीकः, काराभिन्यस्तः, परोक्षदण्डितः, मिथ्याचारवारितः, सर्वस्वमाहारितः, बन्धनपरिक्लिष्टः, प्रवासितबन्धुरिति क्रुद्धवर्गः।

राजा स्वदेश में किस प्रकार कृत्य-अकृत्य पुरुषों का संग्रह करे, यह बात चुके हैं। अब शत्रु-देश में संग्रह के विषय में कहा जायगा। प्रथम क्रुद्धवर्ग में आने वाले व्यक्तियों के लक्षण कहते हैं। जिसे कुछ देने का आश्वासन देकर भी न दे,जिन दो समान कार्य वालों में से एक का तिरस्कार कर दिया हो, राजा के मित्रों ने राज-सभा में जिसका प्रवेश वर्जित करा दिया गया हो, जिसे बुलाकर तिरस्कृत किया गया हो, जो राजा के कारण प्रवास के दुःख प्राप्त कर रहा हो, व्यय करने पर भी जो अपना अभीष्ट प्राप्त करने में असफल रहा हो, जो स्वधर्म के कार्यों एवं पैतृक सम्पत्ति से वंचित कर दिया गया हो, जो किसी सम्मानित पद से भ्रष्ट किया गया हो, जिसे राजपुरुषों द्वारा निन्दित होने के कारण बढ़ने न दिया गया हो, जिसकी स्त्री का हरण कर लिया हो, जिसे कारागृह में डाल दिया हो, जिसे बिना विचारे ही परोक्ष रूप से दण्डित कर दिया हो, मिथ्याचार के द्वारा जिसे सदाचार से वंचित किया गया हो, जिसका सर्वस्व हरण कर लिया हो, जिसके व्यवसाय आदि पर रोक लगा दी हो अथवा जिसके बान्धव आदि को देश से निष्कासित कर दिया हो। इस प्रकार के सभी व्यक्ति क्रुद्धवर्ग में माने गये हैं, जिनके शत्रुपक्ष में मिलने की अधिक संभावना रहती है।

स्वयमुपहतो विप्रकृतः पापकर्माभिख्यातः तुल्यदोषदण्डेनोद्विग्नः पर्यात्तभूमिः दण्डेनोपहतः सर्वाधिकरणस्थः सहसोपचितार्थः तत्कुलीनोपाशंसुः प्रद्विष्टो राज्ञा राजद्वेषी चेति भीतवर्गः।

परिक्षीणोऽत्यात्तस्वः कदर्यो व्यसन्यत्याहितव्यवहारश्चेति लुब्धवर्गः।

अब भीतवर्ग के विषय में बताते हैं। जो कोई क्रूर कर्म करके दूषित हो गया हो, जो किसी से अपमानित हुआ हो, जो पापकर्म में विख्यात हो गया हो, जो अपने समान अपराध करने वालों को दंड पाता हुआ देखकर व्याकुल हो गया हो, जिसने किसी दूसरे की भूमि पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया हो जिसका दंड द्वारा दमन किया गया हो, जो राज्य के सभी विभागों का अधिकारी हो, जिसे प्रभूत धन की सहसा प्राप्ति हुई हो, जिसने स्वार्थवश राज्य कुल की शरण ले रखी हो, जिससे राजा को द्वेष हो अथवा जो राजा से द्वेष रखता हो। अब लुब्धक वर्ग को कहते हैं—जिसका सब धन चला गया हो, जिसका प्रभूत धन राज-दंड के रूप में निकल गया हो, जो कृपण हो, जो दुर्व्यसनों में निरत हो अथवा जो अपने कार्य में इतना संलग्न रहे कि उसे अपने जीवन की भी चिन्ता न रहती हो। यह पाँच प्रकार के मनुष्य लोभी-वर्ग के माने गए हैं।

आत्मसंभावितो मानकामः शत्रुपूजाऽमर्षितो नीचैरुपहतस्तीक्ष्णः साहसिको भोगेनासन्तुष्ट इति मानिवर्गः।

तेषां मुण्डितजटिलव्यंजनैर्यो यद्भक्तिः कृत्यपक्षीयस्तं तेनोपजापयेत्। "यथा मदान्धो हस्ती मत्तेनाधिष्ठितो यद्यदासादयति तत्सर्वं प्रमृद्नात्येवमयमशास्त्र चक्षुरन्धो राजा पौरजानपदवधायाभ्युत्थितः शक्यमस्य प्रतिहस्तिप्रोत्साहनेनापकर्तुममर्षः क्रियताम्।' इति क्रुद्धवर्गमुपजापयेत्।

अब मानीवर्ग को कहते हैं—जो स्वयं को बहुत बड़ा समझता हो, जो दूसरों से मान प्राप्त करने की इच्छा करता हो, जो अपने शत्रु का सम्मान होना सहन न करता हो, जो नीच मनुष्यों द्वारा बढ़ा दिया गया हो, जिसका स्वभाव तीखा हो, जो साहसिक हो, जो भोग से कभी तृप्त ही न होता हो। राजा का कर्त्तव्य है कि वह शत्रु-देश के इन चारों वर्गों के विषय में जानकारी करे और जिसे जिस वस्तु की कामना हो, उसे वही वस्तु देने के लिए मुण्डी या जटिल संज्ञक गुप्तचरों को उनके पास

भेजे। अब क्रुद्धवर्ग के लोगों को अपनी ओर करने के विषय में कहते हैं। मुण्डित या जटिल गुप्तचर उनसे कहे—मदोन्मत्त महावत युक्त मदान्ध हाथी के समान यह राजा चाहे जिसे नष्ट कर डालता है और शस्त्र रूपी चक्षुओं से रहित तथा अंधे मंत्रियों से चलाया जाने वाला होने के कारण सभी प्रजा को मार डालना चाहता है। इसलिए जो शत्रु राजा इस राज्य को लेना चाहते हैं, उन्हें प्रोत्साहित करके इसे नष्ट किया जा सकता है। इसलिए जनता को इसके विरुद्ध कर देना चाहिए। इस प्रकार वाक्यों से क्रुद्धवर्ग को अपनी ओर करे।

"यथा लीनः सर्पो यस्माद्भयं पश्यति तत्र विषमुत्सृजत्येवमयं राजा जातदोषाशंकस्त्वयि पुरा क्रोधविषमुत्सृजतीत्यन्यत्र गम्यताम्' इति भीतवर्गमुपजापयेत्।

यथा श्वगणिनां धेनुः श्वभ्यो दुग्धे न ब्राह्मणेभ्य एवमयं राजा सत्त्वप्रज्ञावाक्यशक्तिहीनेभ्यो दुग्धे नात्मगुणसम्पन्नेभ्यः असौ राजा पुरुषविशेषः सेव्यतामिति लुब्धवर्गमुपजापयेत्।

यथा चण्डालोदपानश्चण्डालानामेवोपभोग्यो नान्येषामेवमयं राजा नीचो नीचानामेवोपभोग्यो न त्वद्विधानामार्याणाम्। असौ राजा पुरुषविशेषज्ञः तत्र गम्यतामिति मानिवर्गमुपजापजेत्।

इसी प्रकार गुप्तचर शत्रुदेश के भीतवर्ग से कहें—जैसे बिल में घुसा हुआ सर्प जिससे भयभीत रहता है, उसी को काटता है, वैसे ही आप के प्रति शंका करता हुआ यह राजा आप सभी पर प्रहार करता हुआ अपने क्रोध रूपी विष का वमन करेगा। इसलिए इस राज्य को त्याग कर अन्यत्र गमन ही श्रेयस्कर है। इस प्रकार के शब्दों द्वारा भीतवर्ग को अपनी ओर करे। लोभीवर्ग के पास जाकर भी यह गुप्तचर इस प्रकार कहें—चाण्डाल की गौ द्वारा चाण्डाल को ही दूध देने और ब्रह्माणों को न देने के समान ही यह राजा बल, बुद्धि, वाक्शक्ति से रहित मनुष्यों को ही धन प्रदान करता है, आत्मगुण से सम्पन्न पुरुषों को नहीं देता। अमुक राजा पुरुष की विशेषतानुसार वर्तता है, इसलिए उसी की सेवा

करना कल्याणकारी होगा। इस प्रकार लुब्धवर्ग को अपनी ओर आकर्षित करना चाहिये। शत्रुपक्ष के मानीवर्ग को अपनी ओर करने के लिए गुप्तचरों को उनसे कहना चाहिए कि जैसे चाण्डालों का कूप चाण्डालों के अतिरिक्त अन्य किसी के उपयोग में नहीं आता, वैसे ही यह नीच राजा नीचों के लिए ही उपभोग्य है, आप जैसे उच्च ओर गुणी पुरुषों के लिये नहीं। किन्तु अमुक राजा पुरुष विशेष के गुणों का जानने वाला है, इसलिए उसी राजा के राज्य में चल कर रहना चाहिये।

तथेति प्रतिपन्नांस्तान्संहितान्पणकर्मणा।
योजयेत यथाशक्ति सापसर्पान्स्वकर्मसु ॥१

लभेत सामदानाभ्यां कृत्यांश्च परभूमिषु।
अकृत्यान्भेददण्डाभ्यां परदोषांश्च दर्शयेत् ॥२

गुप्तचरों द्वारा अपनी ओर करके लाये हुए उपर्युक्त वर्गों के शत्रु-पक्षीय पुरुषों को इच्छित प्रदान करता हुआ राजा उन्हें यथाशक्ति उपयुक्त पदों पर आसीन करे। किन्तु उन पर भी दृष्टि रखने के लिए अपने गुप्तचर अवश्य नियुक्त करदे। अपने राज्य के कृत्य अर्थात् रुष्ट हुए पुरुष शत्रु-राज्य में चले गये हों तो उन्हें साम-दाम की नीति से लौटाकर बुला ले तथा जो अभी अपने देश से गये न हों, किन्तु जाने के लिए इच्छुक हों उनके प्रति भेद या दण्ड की नीति का प्रयोग करे अथवा उन्हें शत्रु राजा के दोष दिखाकर अपने वश में रखने का प्रयत्न करे ॥१-२॥

पञ्चदशोऽध्याय

मन्त्राधिकार

कृतस्वपक्षपरपक्षोपग्रहः कार्यारम्भांश्चिन्तयेत्। मंत्रपूर्वाः सर्वारम्भाः। तदुद्देशः संवृतः कथानामविस्रावी पक्षिभिरनालोक्यः

स्यात् । श्रूयते हि शुकशारिकाभिर्मन्त्रो भिन्नः श्वभिरन्यैश्च तिर्यग्योनिभिः । तस्मान्मंत्रोद्देशमनायुक्तो नोपगच्छेत् ।

उच्छिद्येत मन्त्रभेदी । मन्त्रभेदो हि दूतामात्यस्वामिनामिङ्गिताकाराभ्याम् । इङ्गितमन्यथावृत्तिः । आकृतिग्रहणमाकारः । तस्य संवरणमायुक्तपुरुषरक्षणमाकार्यकालात् । तेषां हि प्रमादमदसुप्तप्रलापकामादिरुत्सेकः । प्रच्छन्नोऽवमतो वा मंत्रं भिनत्ति । तस्माद्रक्षेन्मंत्रम् । मन्त्रभेदो ह्ययोगक्षेमकरो राज्ञस्तदायुक्तपुरुषाणां च ।

उपर्युक्त विधि से स्वदेश एवं परदेश में कृत्य और अकृत्य पुरुषों को अपने वशीभूत करके राज्य-शासन एव सुरक्षा विषयक कार्यों का आरम्भ मंत्रणा से करना चाहिए। क्योंकि राजा के सभी कार्य मन्त्रणा से आरम्भ होते हैं। मंत्रणा-स्थान सब ओर से भले प्रकार संवृत्त हो, जिससे कि वहाँ का एक शब्द भी बाहर सुनाई न पड़ सके तथा उस स्थान को कोई पक्षी भी न देख सके। सुनते हैं कि शुकशारकादि पक्षी और श्वानादि, पशु भी गुप्त मंत्रणा को प्रकट कर चुके हैं। जिस समय मन्त्रणा हो रही हो, उस समय स्थान पर बिना बुलाये हुए किसी भी व्यक्ति का जाना वर्जित हो। मंत्रणा के भेद को प्रकट करने वाले को नष्ट करदे। दूत, मंत्री एवं स्वयं राजा के इंगित और आकार (अर्थात् स्वाभाविक से भिन्न चेष्टा एवं मानसिक भाव प्रकट करने वाली आकृति) से भी मंत्र भेद हो सकता है। इसलिये कार्य की सम्पन्नता होने तक इंगित और आकृति को प्रयत्न पूर्वक छिपाये रखना चाहिए। इसी प्रकार मंत्री आदि सभी मन्त्र भेद की रक्षा में सावधान रहें। क्योंकि उनकी असावधानी से निद्रा या मद्यपान के कारण प्रलाप अथवा कामोपभोग के समय अहंकारोक्ति से भी मन्त्रभेद की संभावना बढ़ जाती है। भीत की ओट में छिपकर सुनने वाला अथवा मूर्ख समझा जाकर अपमान को प्राप्त हुआ व्यक्ति भी मंत्रणा को प्रकट कर देता है। इसलिए मन्त्र रक्षा के लिए पूर्णतया

सतर्क रहे। क्योंकि कार्यारम्भ काल में या उससे पूर्व भी मन्त्र भेद होने पर राजा और उसके सहायक योग-क्षेम से वंचित हो सकते हैं।

तस्माद्गुह्यमेको मन्त्रयेतेति भारद्वाजः। मन्त्रिणामपि हि मन्त्रिणो भवन्ति। तेषामप्यन्ये। संषा मंत्रिपरम्परा मत्रं भिनत्ति।

तस्मान्नास्य परे विद्युः कर्म किंचिच्चिकीर्षितम्।
आरब्धारस्तु जानीयुरारब्धं कृतमेव वा ॥१

नैकस्य मंत्रसिद्धिरस्तीति विशालाक्षः। प्रत्यक्षपरोक्षानुमेया हि राजवृत्तिः। अनुपलब्धस्य ज्ञान मुपलब्धास्य निश्चयो निश्चितस्य बलाधानमर्थं द्वैधस्य सशयच्छेदनमेकदेशदृष्टस्य शेषोपलब्धिरति मन्त्रिसाध्य मेतत्। तस्माद्बुद्धिवृद्धैः सार्धमासीत मंत्रम्।

न कंचिदवमन्येत सर्वस्य शृणुयान्मतम्।
बालस्याप्यर्थवद्वाक्यमुपयुञ्जीत पण्डितः ॥२

अतएव भरद्वाज के अनुयायियों का कथन है कि अत्यन्त गुप्त बात पर राजा स्वयं ही विचार करे। क्योंकि मंत्रियों के भी मन्त्री होते हैं और उन मंत्रियों के भी मन्त्री हुआ करते हैं। इस प्रकार की मन्त्रि-परम्परा के कारण मंत्र की रक्षा दुष्कर हो जाती है। राजा द्वारा भविष्य में किये जाने वाले कार्यों का किसी को भी ज्ञान न हो। उस कार्य में सहायक होने वाले अधिकारियों को भी उसका ज्ञान कार्यारम्भ के समय ही हो और जन-साधारण को तो कार्य के पूर्ण होने पर ही उसकी जानकारी होनी चाहिए ॥१॥ आचार्य विशालाक्ष का इस विषय में मत है कि यदि मनुष्य एकाकी ही किसी बात पर विचार करे तो मंत्रसिद्धि संभव नहीं हैं। क्योंकि राजवृत्ति का आधार प्रत्यक्ष परोक्ष और अनुमान है तो सहायक बिना कोई कार्य हो नहीं सकता। अज्ञात का जानना, जानी हुई का निश्चय करना, निश्चित हुई को दृढ़ करना, यदि मतभेद हो तो शंका-समाधान करना, किसी बात का आंशिक ज्ञान हो तो उसे पूर्ण रूप से जानना या अनुमान करना आदि

कार्यों की सिद्धि मन्त्रियों द्वारा ही संभव है। इसलिए मंत्रणा में सम्मिलित किसी भी व्यक्ति की अवज्ञा न करे वरन् उसके विचारों को अवश्य सुने। यदि बालक भी हित की बात कहे तो पंडितजनों को उसे मान लेना चाहिए ॥२॥

"एतन्मंत्रज्ञानं नैतन्मंत्ररक्षणमिति" पाराशराः। यदस्य कार्यमभिप्रेतं तत्प्रतिरूपकं मन्त्रिणः पृच्छेत्—'कार्यमिदमेवमासीदेवं वा यदि भवेत्तत्कथं कर्तव्यमिति'। ते यथा ब्रूयुः तत्कुर्यात्। एवं मन्त्रोपलब्धः संवृतिश्च भवतीति।

नेति पिशुनः। मंत्रिणो हि व्यवहितमर्थं वृत्तमवृत्तं वा पृष्टमनादरेण ब्रुवन्ति प्रकाशयन्ति वा स दोषः। तस्मात्कर्मसु ये येष्वभिप्रेताः तैः सह मंत्रयेत्। तैर्मन्त्रप्रमाणो हि मंत्रबुद्धि गुप्तिं च लभत इति।

पराशर के अनुयायी कहते हैं कि उपर्युक्त से केवल मंत्रज्ञान संभव है, मन्त्र-रक्षा नहीं। इसलिए राजा जो कार्य करने का इच्छुक हो, उस कार्य के समान अन्य कार्य का प्रसंग लाकर मंत्रियों से पूछे कि अमुक कार्य पहिले इस प्रकार हुआ था, यदि उसे अमुक रूप में किया जाय तो किस प्रकार करना उपयुक्त रहेगा ? इस प्रश्न पर मंत्रियों से जैसा परामर्श मिले, उसी के अनुसार कार्य करे। इस युक्ति से मंत्रणा भी हो जायगी और वह गोपनीय भी रह सकेगी। किन्तु आचार्य पिशुन (नारद) इसे नहीं मानते। उनके विचार में प्रकारान्तर से किसी कार्य के विषय में प्रश्न करने पर मन्त्रिगण स्वयं के प्रति राजा का अविश्वास मानते हुए उसकी बात का अनादर करेंगे और संभव है कि वे रुष्ट होकर मंत्रभेद ही कर डालें। इसलिए कार्य के जानने वाले और विश्वस्त मंत्री के साथ मंत्रणा अवश्य करे। क्योंकि ऐसी मन्त्रणा बुद्धि को प्रखर करती है और मंत्र भी गोपनीय रहा आता है।

न इति कौटिल्यः। अनवस्था ह्येषा। मंत्रिभिस्त्रिभिश्चतुर्भिर्वा सह मंत्रयेत। मंत्रयमाणो ह्येकेनार्थकृच्छ्रेषु निश्चयं नाधि-

गच्छेत् । एकश्च मन्त्री यथेष्टमनवग्रहश्चरति । द्वाभ्यां मन्त्रयमाणो द्वाभ्यां संहताभ्या मवगृह्यते विगृहीताभ्यां विनाश्यते । त्रिषु चतुर्षु वा नैकान्तं कृच्छ्रेणोपपद्यते महादोषम् । उपपन्नं तु भवति । ततः परेषु कृच्छ्रेणार्थनिश्चयो गम्यते, मन्त्रो व रक्ष्यते ।

देशकालकार्यवशेन त्वेकेन सह द्वाभ्यामेको वा यथासामर्थ्यं मंत्रयेत ।

आचार्य कौटिल्य का मत इसके विरुद्ध है । उनके अनुसार एक-एक मंत्र से मंत्रणा करने पर अनवस्था दोष की प्राप्ति होगी । क्योंकि मंत्रणा विषयक अनेक कार्य होने के कारण अनेक मंत्रियों का होना आवश्यक होगा, तब उनमें से प्रत्येक मंत्री से मंत्रणा किया जाना उपयुक्त नहीं होगा और तीन चार मंत्रियों से मंत्रणा करनी होगी । क्योंकि एक मंत्री से मन्त्रणा कठिन विषयों के यथार्थ निर्णय में अबाध नहीं होगी तथा एक ही मन्त्री का उस समय प्रतिद्वन्द्वी-रहित होने के कारण स्वेच्छाचारी होना भी संभव है । यदि दो मन्त्री उस मन्त्रणा में सम्मिलित किये गये तो उनके एक मत होने से राजा को दबना पड़ सकता है अथवा उन दोनों में मत भेद हुआ तो उससे राजा के कार्य में भी हानि हो सकती है । किन्तु तीन-चार मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा में वैसा कोई व्यवधान प्रायः नहीं होता । यदि चार से अधिक मन्त्रियों को मंत्रणा में सम्मिलित किया जाय तो न कार्य का निश्चय ही ठीक प्रकार हो सकता है। और न मन्त्र की गोपनीयता ही बनी रह सकती है इस पर भी राजा देश, काल और कार्य के अनुसार एक या दो मन्त्रियों से मन्त्रणा करे अथवा सामर्थ्य हो तो स्वयं ही निर्णय ले ले ।

कर्मणामारम्भोपायः, पुरुषद्रव्यसम्पत्, देशकालविभागः, विनिपातप्रतीकारः, कार्यसिद्धिरिति पंचांगो मंत्रः तानेकैकशः पृच्छेत् समस्तांश्च । हेतुभिश्चैषां मतिप्रविवेकान् विद्यात् । अवाप्तार्थः कालं नातिक्रामयेत् ।

न दीर्घकालं मन्त्रयेत् । न च तेषां पक्ष्यैर्येषामपकुर्यात् ।

मन्त्रणा के पाँच अंग होते हैं—(१) कार्यारम्भ का उपाय, (२) पुरुष या सम्पत्ति विषयक विचार, (३) उपयुक्त देशकाल का विभाग, (४) विघ्न का प्रतीकार और (५) कार्यसिद्धि विषयक विचार। इन पर राजा अपनी इच्छानुसार एक-एक मन्त्री से पृथक्-पृथक् अथवा सब के साथ मिलकर मन्त्रणा करे तथा प्रयत्न पूर्वक उन मन्त्रियों के पारस्परिक मतभेद को भी जानने की चेष्टा करे। कार्य का निर्णय हो जाने पर उसके आरम्भ में विलम्ब नहीं करना चाहिए। किसी मन्त्र पर बहुत काल तक विचार न करे। राजा जिनका कभी अपकार कर चुका हो या जिनका उनके साथ किसी प्रकार भी सम्पर्क हो, उनके साथ कभी मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए।

मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान्कुर्वीतेति मानवाः। षोडशेति बार्हस्पत्याः। विंशतिमित्यौशनसाः। यथासामर्थ्यमिति कौटिल्यः। ते ह्यस्य स्वपक्षं परपक्षं च चिन्तयेयुः। अकृतारम्भमारब्धानुष्ठानमनुष्ठितविशेषं नियोगसम्पदं च कर्मणां कुर्युः। आसन्नैः सह कार्याणि पश्येत्। अनासन्नैः पत्रसंप्रेषणेन मन्त्रयेत।

मनु के अनुयायी बारह मन्त्रियों की मन्त्रिपरिषद् का होना उचित मानते हैं। बृहस्पति के मत वाले सोलह की परिपरिषद् और शुक्राचार्य-मत के लोग बीस मन्त्रियों की परिषद् को मान्यता देते हैं। किन्तु आचार्य कौटिल्य किसी निश्चित संख्या को न मानते हुए कहते हैं कि सामर्थ्य के अनुसार मन्त्रियों की संख्या निश्चित करे। मन्त्रियों को स्वपक्ष और परपक्ष के कार्यों पर सदा विचार करते रहना चाहिए। राजा अनारम्भ कार्य का आरम्भ और आरम्भ हुए कार्य का संचालन करे। जिसका संचालन हो चुका हो उसे विशेष रूप से पूरा करे। इस प्रकार करने योग्य कार्यों को सम्पन्न कराता रहे। जो मन्त्री निकट में हों, उनसे प्रत्यक्ष रूप से बात करे और जो दूर हों उनसे पत्र द्वारा सम्पर्क बनाये रहे।

इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषदृषीणां सहस्रम् । स तच्चक्षुः । तस्मादिमं द्व्यक्षं सहस्राक्षमाहुः । आत्ययिके कार्ये मन्त्रिणो मन्त्रिपरिषदं चाहूय ब्रूयात् । तत्र यद्भूयिष्ठाः कार्यसिद्धिकरं वा ब्रूयुस्तत्कुर्यात् । कुर्वतश्च—

नास्य गुह्यं परे विद्युः छिद्रं विद्यात्परस्य च ।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि यत्स्याद्विवृतमात्मनः ॥३
यथा ह्यश्रोत्रियः श्राद्धं न सतां भोक्तुमर्हति ।
एवमश्रुतशास्त्रार्थो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥४

इन्द्र के मन्त्रिपरिषद् में एक सहस्र ऋषि हैं। उन एक हजार ऋषियों के कारण ही दो नेत्र वाला इन्द्र सहस्राक्ष बना हुआ है। संकटकालीन स्थिति में कुछ मन्त्रियों को अथवा सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् को बुला कर राजा को मंत्रणा करनी चाहिए। बहुमत द्वारा समर्थित उपायों को ही उस समय कार्यान्वित करे। कार्य में लगे हुए राजा के गुप्त मन्त्र को जानने में अन्य व्यक्ति सफल नहीं होते, वरन् वही अपने शत्रु के छिद्रों के जानने में सफल हो जाता है। कछुआ का अपने अङ्गों को समेटे हुए रहने के समान ही राजा अपने मंत्र को गोपनीयता बनाये रखे। अश्रोत्रिय के श्राद्ध में भोजन के अयोग्य होने के समान ही नीतिशास्त्र से अनभिज्ञ मन्त्रिगण मंत्रणा विषयक वार्त्ता सुनने में अनधिकारी होते हैं ॥३.४॥

षोडशोऽध्याय

दूतप्रणिधि

उद्धृतमन्त्रो दूतप्रणिधिः । अमात्यसम्पदोपेतो निसृष्टार्थः । पादगुणहीनः परिमितार्थः । अर्धगुणहीनः शासनहरः ।

सुप्रतिविहितयानवाहनपुरुषपरिवापः प्रतिष्ठेत शासनमेवं वाच्यः परः वक्ष्यत्येवं तस्येदं प्रतिवाक्यमेवमतिसंधातव्यमित्यधीयानो गच्छेत् । अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेत् ।

अनीकस्थानयुद्धप्रतिग्रहापसारभूमीरात्मनः परस्य चावेक्षेत। दुर्गराष्ट्रप्रमाण सारवृत्तिगुप्तिच्छिद्राणि चोपलभेत। पराधिष्ठानमनुज्ञातः प्रविशेत्।

अब दूत प्रणिधी अथवा दूत भेजने के कार्य पर प्रकाश डालना उचित होगा। दूत तीन प्रकार के माने जाते हैं—(१) निसृष्टार्थ—जो अमात्य के सभी गुणों से सम्पन्न हो, (२) परिमितार्थ—जिसमें अमात्य-गुण का चतुर्थ अंश कम हो और (३) शासनहर—जिसमें अमात्य से आधे गुण हों। जब शत्रु के अश्व, यान, वाहन, सैनिक, शय्यादि सब समान भले प्रकार सुसज्जित हो गए हों तब उसके राज्य में अपने दूत का जाना उचित है। उस दूत को यह भले प्रकार समझ लेना चाहिए कि शत्रु राजा उसके पक्ष वालों से उसे क्या बात करनी है, पूछने पर क्या उत्तर देना है या उसे किस उपाय से वश में किया जा सकता है। दूत को अरण्यपाल, सीमापाल, नगरप्रमुख, राष्ट्रप्रमुख आदि से मैत्रीपूर्ण सम्पर्क बनाना एवं परदेश में जाकर अपनी और शत्रु की सेना के शिविरों, रणभूमियों तथा युद्ध से पीछे हटने के स्थानों का तुलनात्मक पर्यवेक्षण करना होता है। उसे यह भी जानने का प्रयत्न करना चाहिये कि शत्रु के दुर्ग एवं जनपद का विस्तार कितना है, रत्न स्वर्णादि सम्पत्ति में कौन सी सम्पत्ति ऐसी है जो उसके देश में उत्पन्न होती है तथा संचित सम्पत्ति कितनी है। वहाँ की प्रजा के जीविका-साधन, रक्षा-व्यवस्था एव राजा या राज्य की त्रुटियों को भी जानने की चेष्टा करे। शत्रु राजा के राज्य में प्रवेश करने से पूर्व उसे उसकी अनुमति भी ले लेनी चाहिए।

शासनं च यथोक्तं ब्रूयात्। प्राणाबाधेऽपि दृष्टे परस्य वाचि वक्त्रे दृष्ट्यां च प्रसादं वाक्यपूजनमिष्टपरिप्रश्नं गुणकथासंगमासन्नमासन्न सत्कारमिष्टेषु स्मरणं विश्वासगमनं च लक्षयेत्तुष्टस्य विपरीतमतुष्टस्य। तं ब्रूयात्-'दूतमुखा वै राजानस्त्वं चान्ये च। तस्मादुद्धृतेष्वपिशस्त्रेषु यथोक्तं वक्तारस्तेषामन्तावसा

यिनोऽप्यवध्याः। किमङ्ग पुनर्ब्राह्मणः। परस्यैतद्वाक्तमेष दूत धर्मः' इति।

दूत को अपने राजा के मत को यथोक्त प्रकार से कहना चाहिए। प्राण-संकट की स्थिति आजाय तो भी अपने स्वामी के संदेश को यथावत् कह दे। यदि शत्रु राजा के वचन, मुख एवं दृष्टि पर प्रसन्नता परिलक्षित हो और वह दूत के वचनों को आदर सहित सुने, प्रीति पूर्वक पूछे, सत्कार करे, कुशल-क्षेम विषयक प्रश्न करे और विश्वास दिखावे तो उस राजा को प्रसन्न हुआ समझना चाहिए। यदि इससे विपरीत चेष्टा प्रतीत हो तो अप्रसन्न जाने। इस स्थिति में दूत को राजा से कहना चाहिए—राजा दूत के मुख से बातें किया करते हैं। प्रसंगवश दूत मृदु और कठोर दोनों प्रकार की बातें कह सकते हैं। आप अथवा अन्यान्य राजागण, सभी को दूत भेजने होते हैं। दूत को निर्भीक रूप से अपने स्वामी का सन्देश यथावत् कहना होता है, इसलिए यदि वह चाण्डाल भी हो तो भी मारने योग्य नहीं होता, तब ब्राह्मण के विषय में तो वध-विषयक बात सोची भी नहीं जा सकती। दूत का कथन उसके राजा का ही कथन है, इसलिए अपने स्वामी की बात कहना दूत का परम धर्म है।

वसेदविसृष्टः प्रपूजया नोत्सिक्तः परेषु बलित्वं न मन्येत। वाक्यमनिष्टं सहेत। स्त्रियः पानं च वर्जयेत्। एकः शयीत। सुप्तमत्तयोर्हि भावज्ञानं दृष्टम्। कृत्यपक्षोपजापमकृत्यपक्षे गूढप्रणिधानम्। रागापरागौ भर्त्तरि रन्ध्रं प्रकृतीनां तापसवैदेहकव्यंजनाभ्यामुपलभेत। तयोरन्तेवासिभिश्चिकित्सकपाषण्डव्यञ्जनोभयवेतनैर्वा। तेषामसम्भावनायां याचकमत्तोन्मत्तासुप्तप्रलापैः पुण्यस्थानदेवगृहचित्रलेख्यसंज्ञाभिर्वा चारमुपलभेत। उपलब्धस्योपजापमुपेयात्। परेण चोक्तः स्वासां प्रकृतीनां परिमाणं नाचक्षीत। 'सर्वं वेद भवानीति' ब्रूयात्। कार्यसिद्धिकरं वा कार्यस्यासिद्धावुपरुध्यमानस्तर्कयेत्—

शत्रु द्वारा विदा न किये जाने तक दूत वहीं रहे। शत्रु से सत्कार पाकर गर्वित न हो और वहाँ अपने को बलवान भी न माने। शत्रु पक्ष की कठोर बातों को सहन करले। स्त्रियों से और मद्य से दूर ही रहे। एकाकी शयन करे, जिससे कि निद्रा या मद के कारण बड़बड़ाने से कहीं कोई रहस्य-भेद न हो जाय। तापस और वैदेहक नामक गुप्तचरों के द्वारा शत्रु पक्ष के फोड़े जाने योग्य व्यक्तियों को फोड़ने की चेष्टा करे और राजभक्तों पर गुप्तचर लगा दे। अमात्य आदि का अपने स्वामी के प्रति कितना प्रेम या कितना द्वेष है, उनमें कितने छिद्र कहाँ-कहाँ हैं, इसकी भी जानकारी करे। अथवा उन्हीं गुप्तचरों के वैद्य वेशधारी, पाखण्डवेशधारी अथवा उभयवेतन गुप्तचरों के द्वारा शत्रु पक्ष के सब समाचारों को जानने का प्रयत्न करे। यदि उक्त गुप्तचरों से कभी प्रकट रूप में बात करने का अवसर मिले तो उन गुप्तचरों को भिक्षुक, मदोन्मत्त, उन्मादग्रस्त या सुप्त पुरुष के समान प्रलापयुक्त सांकेतिक वार्तालाप करना चाहिए। अथवा किसी तीर्थ या मन्दिर में मिलने पर भित्तिलेख या चित्र के संकेत आदि के द्वारा सब समझले और फिर संभव हो तो फूट डालने के प्रयास में लगे। शत्रु द्वारा पूछे जाने पर अपने पक्ष के अमात्यादि की संख्या न बताकर आपको सब ज्ञात ही है कहकर टाल देना चाहिए। शत्रु राजा यदि कार्य पूर्ण होने पर भी दूत को रोके रहे तो वह उसके कारण पर मन ही मन विचार करे।

जि भर्तुर्मे व्यसनमासन्नं पश्यन् स्वं वा व्यसनं प्रतिकर्तुकामः पार्ष्णिग्राहासारावन्तः कोपमाटविकं वा समुत्थापयितुकामः मित्रमाक्रन्दं वा व्यापादयितुकामः स्वं वा परतो निग्रहमन्तःकोपमाटविकं वा प्रतिकर्तुकामः। ससिद्धं मे भर्तुर्यात्राकालमभिहन्तुकामः। सस्यकुप्यपण्यसंग्रहं। दुर्गकर्म बलसमुत्थानं वा कर्तुकामः, स्वसैन्यानां व्यायामदेशकालावाकांक्षमाणः परिभवप्रसादाभ्यां वा संसर्गानुबन्धार्थो वा तामुपरुणद्धि इति ज्ञात्वा वसेदप-

सरेद्वा। प्रयोजनमिष्टमत्रेक्षेत वा। शासनमनिष्टमुक्त्वा बन्धवध-भयादविसृष्टो व्यपगच्छेत्। अन्यथा नियम्येत।

उस समय दूत यह विचार करे कि यह मेरे स्वामी पर आने वाली किसी विपत्ति को देख रहा है अथवा मुझे अपने यहाँ रोककर अपनी ही किसी त्रुटि की पूर्ति कर रहा है। कहीं यह हमारे किसी शत्रु, शत्रु के मित्र अथवा वनवासी राजा को तो हमारे विरुद्ध उत्साहित नहीं कर रहा है? कहीं यह हमारे राजा के अङ्गरक्षकों को नष्ट कर देने की ताक में तो नहीं है? कहीं इसका किसी अन्य नरेश से वैर या युद्ध तो प्रारम्भ नहीं होगया है, जिसका प्रतीकार मुझे यहाँ रोक कर करना चाहता हो। इस प्रकार यह कहीं हमारे द्वारा आक्रमण करने के उपयुक्त समय को तो नहीं निकाल देना चाहता? मेरे रोके जाने से युद्ध में विलम्ब उपस्थित करके कहीं यह अपने यहाँ की अन्न, चारा, धातु आदि की कमी तो पूरी नहीं कर रहा है अथवा दुर्ग की मरम्मत या सेना का साज-समान तो नहीं जुटा रहा है? कहीं यह सेना को व्यायामादि के अभ्यास में संलग्न रहकर उसे सबल बनाने के लिए उपयुक्त देश-काल की प्रतीक्षा में तो नहीं है? इसने किसके सहयोग या सम्पर्क की आशा में मुझे यहाँ रोका हुआ है? इस प्रकार तर्क-वितर्क करता हुआ दूत वास्तविकता जानने की चेष्टा करे और साथ ही यह भी निर्णय ले कि वहाँ रुके रहना चाहिए अथवा नहीं? यदि शत्रु नरेश को दूत के राजा का सन्देश अच्छा न लगे और वह उससे क्षुब्ध होकर दूत का वध करने या बन्दी बनाने का विचार कर रहा हो तो उस राजा से पूछे विना ही अवसर पाकर सावधानी पूर्वक भाग आवे। क्योंकि किंचित् असावधानी से ही उसका पकड़ा जाना संभव है।

प्रेषणं सन्धिपालत्वं प्रतापो मित्रसंग्रहः।
उपजापः सुहृद्भेदो गूढदण्डातिसारणम्॥१
बन्धुरत्नापहरणं चारज्ञानं पराक्रमः।
समाधिमोक्षो दूतस्य कर्म योगस्य चाश्रयः॥२

स्वदूतैः कारयेदेतत्परदूतांश्च रक्षयेत् ।
प्रतिदूतापसर्पाभ्यां दृश्यादृश्यैश्च रक्षिभिः ॥३

अब राजदूत के कर्त्तव्यों को कहते हैं-शत्रु के पास अपने स्वामी का सन्देश पहुंचाकर उसका उत्तर लाकर स्वामी को देना, पहिले हुई सन्धियों का पालन कराना, अवसर पर अपने स्वामी का प्रताप प्रकट करना, मित्रों का संग्रह करना, शत्रुपक्ष के फूटने योग्य पुरुषों को अपनी ओर फोड़ लेना, शत्रु के मित्रों में फूट डालना शत्रु-सेना और गुप्तचरों को अपने राज्य से बाहर निकालना, शत्रु के बन्धुओं या रत्नादि धनों का अपहरण करना,गुप्तचरों के आचार का ज्ञान,शत्रु की दुर्बलता दिखाई देते ही अपने पक्ष का पराक्रम प्रदर्शित करना,सन्धि के अनुसार युद्ध बन्दियों को मुक्त कराना तथा शत्रुपक्ष पर अभिचारादि का प्रयोग कराना आदि कर्म राजदूत के करने योग्य हैं। राजा को यह सभी कार्य अपने दूतों द्वारा करानें चाहिए। पर पक्ष के दूतों पर कठोर दृष्टि रखे तथा शत्रु दूत की गति का अन्य दूतों, गुप्तचरों और प्रकट-अप्रकट रक्षकों के द्वारा निरन्तर पता लगता रहे ॥१-२॥

सप्तदशोऽध्याय

राजपुत्ररक्षण

रक्षितो राजा राज्यं रक्षत्यासन्नेभ्यः भरेभ्यश्च। पूर्वं दारेभ्यः पुत्रेभ्यश्च ।दाररक्षणं निशान्तप्रणिधौ वक्ष्यामः। पुत्ररक्षणम्—जन्मप्रभृति राजपुत्रान् रक्षेत् । कर्कटकसधर्माणो जनकभक्षा राजपुत्राः ।

'तेषामजातस्नेहे पितर्युपांशुदण्डः श्रेयान्' इति भारद्वाजः। 'नृशंसमदृष्टवधः क्षत्रबीजविनाशश्चेति' विशालाक्षः। तस्मादेकं-स्थानावरोधः श्रेयानिति ।

जो राजा अपने पास रहने वाले बन्धु आदि स्वजनों से सुरक्षित रहता है, वही अपने राज्य की ठीक प्रकार से रक्षा कर सकता है।

सर्व प्रथम तो उसे अपनी स्त्री या पुत्रादि से रक्षित रहने का ही प्रबन्ध कर लेना चाहिए। स्त्री से आत्मरक्षा करने का उपाय निशान्त प्रणिधि नामक प्रकरण में कहा जायगा। यहाँ पुत्रों से रक्षा का उपाय कहते हैं। राजा को राजपुत्रों की रक्षा उनके जन्म काल से ही करनी चाहिए। सदैव उन पर सतर्कतापूर्ण तीक्ष्ण दृष्टि रखे। क्योंकि उनका स्वभाव कर्कट जैसा होता है और वे अवसर मिलने पर अपने पिता का ही भक्षण कर डालते हैं। आचार्य भारद्वाज इस विषय में कहते हैं कि राजा के जितने पुत्र उत्पन्न हों, पिता स्वयं ही उन सभी का वध कर दे, उन पर स्नेह न करे। किन्तु विशालाक्ष के मत में निरपराध शिशुओं की इस प्रकार से हत्या करना नृशंसता है। इस प्रकार बिना देखे-समझे राजपुत्रों की हत्या होती रहने से क्षत्रियों का तो बीज-नाश ही हो जायगा। इसलिए सब राजपुत्रों को सदैव एक स्थान पर रखना ही उचित है।

'अहिभयमेतदिति' पाराशराः। कुमारो हि विक्रमभयान्मां पिता रुणद्धीति ज्ञात्वा तमेवाङ्के कुर्यात्तस्मादन्तपालदुर्गे वासः श्रेयान् इति'। 'औरभ्रकं भयमेतदिति' पिशुनः। प्रत्यापत्तेर्हि तदेवकारणं ज्ञात्वाऽन्तपालसखः स्यात्। तस्मात्स्वविषयादपकृष्टे सावन्तदुर्गे वासः श्रेयानिति।

किन्तु पाराशर के मत में राजपुत्रों को अपने समीप रखना सर्प-भय के समान भीषण है। क्योंकि समान ज्ञान के कारण राजकुमार समझ कर कि मेरे पिता ने मुझे बन्दी बनाया हुआ है, अपनी शक्ति का विस्तार करेगा। इसलिए राजपुत्रों को अपने राज्य के सीमान्त पर स्थित किसी दुर्ग में रखना चाहिए। यही राजा के लिए श्रेयस्कर उपाय है। इसके विपरीत, आचार्य पिशुन इस कार्य को मेढ़े के समान अधिक भयप्रद होना मानते हैं। इसका प्रभाव यह है कि जैसे मेंढ़ों की लड़ाई में मेंढ़ा दूर तक पीछे हट कर फिर तेजी से आक्रमण करता है, वैसे ही दूर दुर्ग में पहुंचा हुआ राजकुमार आक्रमण के लिए

और भी भीषण हो सकता है। क्योंकि पिता के लिए पुत्र का भय ही उसके दूर रखे जाने का कारण जान कर वह सीमा पाल से मित्रता करके उसके साथ आक्रमण कर सकता है। इसलिए राजपुत्र को अपने से दूर रखना हो तो किसी सामन्त के दुर्ग में रखना चाहिए।

वत्सस्थानमेतदिति कौणपदन्तः। वत्सेनेव हि धेनुं पितरमस्य सामन्तो दुह्यात्। तस्मान्मातृबन्धुषु वासः श्रेयानिति।

ध्वजस्थानमेतदिति वातव्याधिः। तेन हि ध्वजेनादितिकौशिकवदस्य मातृबान्धवा भिक्षेरन्। तस्माद्ग्राम्यधर्मेष्वेनमवसृजेयुः। सुखोपरुद्धा हि पुत्राः पितरं नाभिद्रुह्यन्तीति।

आचार्य कौणपदन्त इसे भी उपयुक्त न मानते हुए कहते हैं कि यह तो गौ के बछड़े को बाँधने के समान सिद्ध होगा। क्योंकि सामन्त-दुर्ग के निवासी राजागण उस राजपुत्र को बछड़ा और उसके पिता को गाय के समान मानते हुए सदैव उससे धन रूपी दुग्ध का दोहन करते रहेंगे, इसलिए राजपुत्र को वहाँ न रख कर उसके मामा के यहाँ रखना कल्याणकारी होगा। इस मत के विपरीत आचार्य वातव्याधि का कथन है कि इस प्रकार उस राजपुत्र की स्थिति ध्वजा के समान होगी। उस समय देवमूर्त्ति दिखाकर उसके नाम पर भिक्षा माँगने वाली भिक्षुकी एवं साँप दिखा कर याचना करने वाले सपेरे के समान मामा आदि उस राजपुत्र को दिखाते हुए उसके नाम पर धन एकत्र करने लगेंगे। इसलिए राजपुत्र को स्त्रियों से मिलने-जुलने की स्वतन्त्रता दे देना अधिक उपयुक्त होगा, जिससे कि वह विषयों में लगा रह कर पिता के प्रति विद्रोह की बात सोच भी न सके।

'जीवन्मरणमिति' कौटिल्यः। काष्ठमिव घुणजग्धं राजकुलमविनीतपुत्रमभियुक्तमात्रं भज्येत। तस्मादृमत्यां महिष्यां ऋत्विजश्चरुमैन्द्रबार्हस्पत्यं निर्वपेयुः। आपन्नसत्त्वायां कौमारभृत्यो गर्भभर्मणि प्रजनने च वियतेत। प्रजातायाः पुत्रसंस्कारं पुरोहितः कुर्यात्। समर्थं तद्विदो विनययेयुः।

सत्रिणामेकश्चैणं मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रलोभयेत—'पितरि पराक्रम्य राज्यं गृहाणेति। तदन्यः सत्री प्रतिषेधयेत्' इत्याम्भीयाः।

किन्तु आचार्य कौटिल्य इसमे किंचित् भी सहमत न होते हुए कहते हैं कि राजपुत्र को विषय सुख की स्वतंत्रता देना उसे जीवित ही मार देने के समान सिद्ध होगा। जैसे काष्ठ को घुन खा जाता है, वैसे ही अशिक्षित राजपुत्र भी युद्ध के बिना ही उस राजवंश को नष्ट करने का कारण बन जाता है। इसलिए राजमहिषी के ऋतुमती होने पर ऋत्विज्ञों को इन्द्र और बृहस्पति के लिए अग्नि में यजन करना चाहिए, जिससे कि होने वाला राजपुत्र बलवान और प्रज्ञावान हो। राजमहिषी के गर्भवती होने पर शिशु चिकित्सक उस गर्भ की पुष्टि और सुखपूर्वक प्रसव कराने का उद्योग करे। पुत्र उत्पन्न होने पर पुरोहित को उसका जातकर्म संस्कार करना चाहिए। जब वह समर्थ होने लगे तब उसे विभिन्न विषयों की शिक्षा उस-उस विषयक के पारंगत विद्वानों द्वारा पृथक्-पृथक दिलावे। अम्भिनामक आचार्य के मत में शिक्षा पूर्ण होने सत्री संज्ञक गुप्तचर उसके पास जाकर आखेट, द्यूत, मद्यपान एवं नारी सुख आदि का प्रलोभन देते हुए उससे कहें—इस राज्य को अपने पिता से बलपूर्वक ले लीजिए। तब उनमें से कोई अन्य गुप्तचर इसका निषेध करदे।

महादोषमबुद्धबोधनमिति कौटिल्यः। नवं हि द्रव्यं येन येनार्थजातेनोपदिह्यते तत्तदाचूषति। एवमयं नवबुद्धिर्यद्युच्यते तत्तच्छास्त्रोपदेशमिवाभिजानाति। तस्माद्धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च। सत्रिणस्त्वेनं 'तव स्मः' इति वदन्तः पालयेयुः। यौवनोत्सेकात्परस्त्रीषु मनः कुर्वाणं आर्यव्यंजनाभिः स्त्रीभिरमेध्याभिः शून्यागारेषु रात्रावुद्वेजयेयुः। मद्यकामं योगपानेनोद्वेजयेयुः। द्यूतकामं कापटिकैः पुरुषैरुद्वेजयेयुः। मृगयाकामं प्रतिरोधकव्यंजनैस्त्रासयेयुः। पितरि विक्रमबुद्धिं तथेयनु

प्रविश्य भेदयेषुः । अप्रार्थनीयो राजा विपन्ने घातः सम्पन्ने नरकपातः । संक्रोशः प्रजाभिरेकलोष्टवधश्चेति ।

किन्तु आचार्य कौटिल्य इस मत को ग्राह्य न मानते हुए कहते हैं कि पुत्र के लिए पिता के प्रति विद्रोह का उपदेश भीषण अनर्थकारी सिद्ध होगा । जैसे नवीन मृत्तिका-पात्र तैल आदि जिस किसी वस्तु से मिलता है, उसी को चूस लेता है, वैसे ही नवीन मति वाला राजकुमार जो कुछ सुनेगा, उसी को शास्त्र के उपदेश के समान हृदय में रख लेगा । उसलिये उसे यथार्थ धर्म और अर्थ सम्पन्न शास्त्रों का ही उपदेश किया जाना चाहिए । न कि पिता से विद्रोह आदि रूपी अधर्म और मृगया या विषय-सुख रूपी अनर्थ का । सत्री उस राज पुत्र का 'आप हमारे स्वामी हैं' कहते हुए आदर सहित पालन करें । फिर यौवनावस्था की प्राप्ति पर उसका मन परस्त्री की ओर जाता हुआ प्रतीत हो तब सुन्दर वेशभूषा में सुसज्जित हुई कुरूप एवं घृणास्पद आकृति वाली स्त्रियाँ रात्रि के समय एकान्त स्थान में मिलकर भय दिखाती हुई उसके मन को ऐसा फेर दें जिससे कि वह परनारी-सेवन जैसे दूषित विचारों से सदैव दूर भागता रहे । यदि वह मद्यपान की इच्छा करे तो उसे कोई कड़वा तरल पिलाकर उससे विरक्त कर दें । यदि द्यूत क्रीड़ा की इच्छा करे तो कापटिक पुरुषों से भय प्राप्त करावे । यदि मृगया खेलना चाहे तो उसे वन में ले जाकर ऐसा त्रस्त कर दें, जिससे कि वह उससे भी मुख मोड़ ले । यदि पिता से विद्रोह की इच्छा करे तो गुप्तचर उसकी हां में हां मिलाता हुआ उससे प्रीति बढ़ावे और फिर धीरे-धीरे उसके मन को विद्रोह करने वाले विचार से फेरने की चेष्टा करे और पिता पर आक्रमण करना अनुचित बताकर, हारने पर मृत्यु-भय और जीतने पर नरक में गिरने का भय उपदिष्ट करता हुआ अन्त में यह भी कह दे कि पराजय पर लोकनिन्दा तो होगी ही. साथ ही सम्भव है कि पितृद्रोह के दोष से क्रुद्ध हुई प्रजा ही कहीं तुम्हारी हत्या न कर बैठे ।

विरागं प्रियमेकपुत्रं वा बध्नीयात् । बहुपुत्रः प्रत्यन्तमन्यविषयं वा प्रेषयेद्यत्र गर्भः पण्यं डिम्बो वा न भवेत् । आत्मसम्पन्नं सैनापत्ये यौवराज्ये वा स्थापयेद् । बुद्धिमानाहार्यबुद्धिर्दुर्बुद्धिरिति पुत्रविशेषाः । शिष्यमाणो धर्मार्थावुपलभते चानुतिष्ठति च बुद्धिमान् । उपलभमानो नानुतिष्ठत्याहार्यबुद्धिः । अपायनित्यो धर्मार्थद्वेषी चेति दुर्बुद्धिः । स यद्येकपुत्रः पुत्रोत्पत्तावस्य प्रयतेत । पुत्रिकापुत्रानुत्पादयेद्वा ।

वृद्धस्ते व्याधितो वा राजा मातृबन्धुकुल्यगुणवत्सामन्तानामन्यतमेन क्षेत्रे बीजमुत्पादयेत् । न चैकपुत्रमविनीतं राज्ये स्थापयेत् ।

राजपुत्र चाहे एक ही हो, यदि पिता से विद्रोही हो गया है तो बन्धन में डाल देने ही योग्य है । यदि अनेक पुत्र हों और वे विरोधी हो जाँय तो उन्हें राज्य की सीमा पर अथवा ऐसे किसी अन्य देश में निर्वासित कर दे जहाँ उन्हें राजोचित साज-सामान अथवा आक्रमण के लिये कोई साधन या सुविधा उपलब्ध न हो सके । उनमें से जो राजपुत्र आत्मगुण युक्त प्रतीत हो उसे युवराज एवं सेनापति का पद प्रदान कर दे । राजपुत्रों के तीन भेद किये गये हैं—बुद्धिमान्, आहार्यबुद्धि, और दुर्बुद्धि । इनमें बुद्धिमान् वह है जिसका आचरण श्रेष्ठ हो और जो सुशिक्षित होकर धर्म और अर्थ की ही प्राप्ति में लगा रहे । आहार्यबुद्धि वह कहा गया है जो श्रेष्ठ आचरण वाला तो न हो, किन्तु धर्म और अर्थ की प्राप्ति में तत्पर रहे और दुर्बुद्धि उसे कहते हैं जो सदा आलस्य में पड़ा रहकर धर्म और अर्थ के प्रति द्वेष-भाव रखे । यदि राजा का पुत्र एक दुर्बुद्धि ही हो तो राज्य-कार्य के सुचारू रूप से संचालन करने वाले अपने सुयोग्य उत्तराधिकारी की प्राप्ति के निमित्त उसी पुत्र से पुत्र की उत्पत्ति करावे । यदि ऐसा न हो सके तो अपनी पुत्री से पुत्र उत्पन्न करा कर उसे अपने पुत्र रूप में ले ले । यदि राजा वृद्ध या रोगी है तो उसे मातृकुल के अथवा किसी अन्य सर्वगुण सम्पन्न सामन्त राजा के द्वारा

नियोग विधि से अपनी स्त्री से पुत्र उत्पन्न करावे, किन्तु अशिक्षित या दुर्जन पुत्र को राज्य पर कभी भी प्रतिष्ठित न करे ।

बहूनामेकसंरोधः पिता पुत्रहितो भवेत् ।
अन्यत्रापद ऐश्वर्यं ज्येष्ठभागी तु पूज्यते ।।१
कुलस्य वा भवेद्राज्यं कुलसङ्घो हि दुर्जयः ।
अराज्यव्यसनाबाधः शश्वदावसति क्षितिम् ।।२

राजा के अनेक पुत्रों में जो भी दुर्बुद्धि हों, उन्हें सीमा पर अवरुद्ध करे। किन्तु जिस पुत्र से किसी प्रकार का भय न हो उसका सदैव हित करता रहे। वैसे, अनेक पुत्रों ज्येष्ठ पुत्र को ही राजपद पर प्रतिष्ठित करना उचित माना गया है। राजा चाहे सभी पुत्रों को अपने राज्य का अधिकारी बना सकता है। उस स्थिति में अनेक पुत्रों का अधिकार होने के कारण अधिकारी राजकुल कहा जायगा, इस प्रकार राजकुल रूप से स्थापित राज्य संघ दुर्जय होकर शत्रुओं के आक्रमण को निष्फल करने में समर्थ होता है। ऐसा राज्य प्रजा को पीडा न पहुंचाने वाला होने के कारण पृथिवी पर सदैव टिका रह सकता है ।।१-२।।

अष्टादशोऽध्याय

अवरुद्ध राजपुत्र की वृत्ति

राजपुत्रः कृच्छ्रवृत्तिरसदृशे कर्मणि नियुक्तः पितरमनुवर्तेत । अन्यत्र प्राणाबाधकप्रकृतिकोपकपातकेभ्यः । पुण्यकर्मणि नियुक्तः पुरुषमधिष्ठातारं याचेत । पुरुषाधिष्ठितश्च सविशेषमादेशमनुतिष्ठेत् अभिरूपं च कर्मफलमौपायनिकं च लाभं पितुरुपनाययेत् ।

अवरुद्ध राजपुत्र को पिता द्वारा अयुक्त कार्य सौंपे जाने एवं अत्यन्त कठिनाई जीवनयापन करने पर भी पिता की आज्ञा पालन सदैव करते रहना चाहिए। किन्तु यदि ऐसा प्रतीत हो कि पिता द्वारा उसके प्राण लेने वाला कोई कार्य किया जा रहा है, या उसे किसी ऐसे कार्य के करने का आदेश हुआ है, जिससे प्रजाजनों या अमात्यों आदि का कुपित

होना संभावित है तो पिता की आज्ञा मानना आवश्यक नहीं है। यदि पिता द्वारा उसे कोई पुण्य कार्य सौंपा जाय तो पुत्र चाहे तो उस कार्य में सहायक होने के लिये किसी निपुण या अधिकारी पुरुष को पिता से मांग ले और जब ऐसा व्यक्ति मिल जाय, तब पिता के आदेश का भले प्रकार पालन करे। यदि वह कार्य अनुरूप फल वाला सिद्ध हो और उससे प्रसन्न हुई प्रजा किसी प्रकार का पुरस्कार प्रदान करे तो उस पुरस्कृत वस्तु को वह पुत्र अपने पिता के पास ही भेज दे।

तथाप्यतुष्यन्तमन्यस्मिन्पुत्रे दारेषु वा स्निह्यन्तमरण्याय आपृच्छेत। बन्धवधभयाद्वा यः सामन्तो न्यायवृत्तिर्धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः प्रतिग्रहीता मानयिता चाभिपन्नानां तमाश्रयेत। तत्रस्थः कोशदण्डसम्पन्नः प्रवीरपुरुषकन्यासम्बन्धमटवीसम्बन्धं कृत्यपक्षोपग्रहं वा कुर्यात्।

पुत्र द्वारा ऐसा श्रेष्ठ आचरण किया जाने पर भी पिता यदि सन्तुष्ट न हो और वह यह देखे कि पिता का प्रेम दूसरे पुत्र और विमाता पर है तो वह वन में रहने की पिता से आज्ञा माँगे। पिता यदि उस पुत्र को कारागार में बन्द करने या मार डालने के प्रयत्न में हो तो पुत्र को न्यायवान, धर्मवान, सत्यवादी, वंचना-रहित, शरणागतों के रक्षक और सम्मान करने वाले किसी सामन्त राजा के यहाँ चला जाना चाहिए और उसी के आश्रय में रहकर कोश एवं सैन्य संग्रह कर किसी बलवान् राजा की कन्या का पाणिग्रहण करे और फिर पिता के वनरक्षकों या असन्तुष्ट अमात्यादि अधिकारियों के साथ मैत्री करके अपने पक्ष को प्रबल बनाने का प्रयत्न करे।

एकचरः सुवर्णपाकमणिरागहेमरूप्यपण्याकरकर्मान्तानाजीवेत्। पाषण्डसङ्घद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यदेवद्रव्यमाढ्यविधवाद्रव्यं वा गूढमनुप्रविश्य सार्थयानपात्राणि च मदनरसयोगेनातिसंधायापहरेत् पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत्। मातुः परिजनोपग्रहेण वा चेष्टेत कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपाषण्डछद्मभिर्वा नष्टरूप-

स्तद्व्यञ्जनसखः छिद्रे प्रविश्य राज्ञः शस्त्ररसाभ्यां प्रहृत्य ब्रूयात्-'अहमसौ कुमारः, सहभोग्यमिदं राज्यमेकोनार्हति भोक्तुं तत्र ये कामयन्ते भर्तुं नाहं द्विगुणेन भक्तवेतनेनोपस्थास्ये इति । इत्यवरुद्धवृत्तम् ।

यदि उपरोक्त प्रकार की सहायता का सुयोग न बने और उस राजपुत्र को एकाकी ही रहना पड़े तो उसे स्वर्णपाक (ताम्र-लौह-रजत आदि के योग से स्वर्ण बनाने की रासायनिक क्रिया) या रत्न, राग तथा स्वर्ण, रजत या खनिज द्रव्य आदि के व्यापार से अपनी जीविका चलानी चाहिए । यह भी न हो पावे तो किसी पाखण्ड-संघ का द्रव्य, जो श्रोत्रिय ब्राह्मणों के उपयोग में न आता हो अथवा निरर्थक पड़ा हुआ देव द्रव्य या किसी धनाढय् विधवा का धन उसके घर में गुप्तरीति से जाकर चुरा लावे । अथवा वणिक्-समुदाय या व्यापारिक जलयानों में जाकर संज्ञाविहीन करने वाले विषादि के प्रयोग से उन्हें बेहोश करके लूट ले या पारग्रामिक प्रकरणोक्त उपायों को करे या माता के सेवकों से मिल कर कार्य निकाले । अथवा बढ़ई, चित्रकार, मदारी, वाग्जीवी, पाखण्डी आदि का वेश धारणकर वैसे ही वेश वाले गुप्तचरों को अपने साथ मिलाकर राजा के छिद्र को जानता हुआ घुस जाय और शस्त्र-प्रहार या विषप्रहार का प्रयोग करता हुआ अमात्यादि को बतावे—मैं राज्य द्वारा निर्वासित राजपुत्र हूँ। राज्य के भोग के अधिकारी अकेले राजा ही नहीं है, मैं भी उसके अंश का अधिकारी हूं । यदि आप लोग मेरे साथ कार्य करना चाहें तो मैं आप को उसी पद पर द्विगुणित वेतन-भत्ता देने को प्रस्तुत हूं । इस प्रकार यह अवरुद्ध राजपुत्रों की वृत्ति के विषय में बताया गया है ।

अवरुद्धं तु मुख्यपुत्रमपसर्पाः प्रतिपाद्यानयेयुः । माता वा प्रतिग्रहीता । त्यक्तं गूढ़पुरुषाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः । अत्यक्तं तुल्यशीलाभिः स्त्रीभिः पानेन मृगयया वा प्रसज्य रात्रावुपगृह्यानयेयुः ।

उपस्थितं च राज्येन मदूर्ध्वमिति सान्त्वयेत् ।
एकस्थमथ संरुध्यात्पुत्रवान् वा प्रवासयेत् ।।१

अब अवरुद्ध राजपुत्र के प्रति राजा के व्यवहार को कहते हैं। यदि राजा ने क्रोध पूर्वक किसी प्रमुख राजपुत्र को अवरुद्ध कर दिया हो तो अमात्यादि अधिकारीगण उसके पास जाकर युवराज पद का या किसी अन्य प्रकार का प्रलोभन देकर राजा के समीप लिवा लावें। अथवा माता ही जाकर उसे ले आवे। यदि राजपुत्र अपराध कर्म में प्रवृत्त है और उसके त्यागे बिना कार्य नहीं चलता तो शस्त्र या विष के प्रयोग से गुप्तचरों द्वारा उसका वध करादे। यदि राजपुत्र का राजा द्वारा त्याग न किया गया हो, वरन् वह स्वयं ही रुष्ट होकर चला गया हो तो उसके पास उसी की समवयस्का रूपवती स्त्रियाँ भेज कर वश में करना चाहिए, जो कि उसे मद्यपान या आखेट आदि के प्रलोभन में फाँस कर लावें। यदि राजकुमार लौट कर आजाय तो पिता उसे समझावे कि मेरे पश्चात् इस सम्पूर्ण राज्य के स्वामी तुम्हीं होगे। यदि वह समझाने पर भी न माने और एक मात्र पुत्र हो तो उसे बन्दी बनावे और अन्य पुत्र उत्पन्न हो जाय तो उसे निष्कासित करदे।

एकोनविंशोऽध्याय

राजप्रणिधि

राजानमुत्तिष्ठमानमनूत्तिष्ठन्ते भृत्याः। प्रमाद्यन्तमनुप्रमाद्यन्ति। कर्माणि चास्य भक्षयन्ति। द्विषद्भिश्चातिसंधीयते। तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीत। नाडिकाभिरहरष्टधा रात्रिं विभजेत। छायाप्रमाणेन वा। त्रिपौरुषि पौरुषी चतुरङ्गुला च छाया मध्याह्न इति चत्वारः पूर्वे दिवसस्याष्टभागाः। तैः पश्चिमा व्याख्याताः।

राजा के कर्त्तव्य के प्रति सतर्क रहने पर उसके भृत्य भी सतर्क रहते हैं और राजा के प्रमादी होने पर भृत्य भी प्रमादग्रस्त होकर राजा

के सम्पूर्ण कार्य को नष्ट कर देते हैं उस दशा में राजा के सब ओर शत्रुगण छाये रहते हैं। इसलिये राजा को अपने कर्त्तव्य के प्रति सदैव सावधान रहना चाहिए। राजा को नालिका अर्थात् घड़ी के अनुसार दिन और रात्रि के आठ-आठ भाग करे। इस प्रकार किया गया आठवाँ भाग पौने चार नालिका अर्थात् डेढ घण्टे का होता है। अथवा छाया के मान से दिन का पहला आठवाँ भाग कल्पित करे। इसका प्रमाण यह है कि सूर्योदय से तीन पुरुष लम्बी छाया रहने तक दिन का प्रथम आठवां भाग, एक पुरुष लम्बी रहने तक दूसरा आठवां भाग चार अंगुल लम्बी छाया रहने तक तीसरा आठवां भाग और मध्याह्न तक चौथा आठवाँ भाग होता है। यह दिन का पूर्वार्द्ध हुआ, इसी के समान उत्तरार्द्ध का विभाजन क्रमशः कि चार अङ्गुल की छाया, एक पुरुष प्रमाण छाया, तीन पुरुष प्रमाण छाया और फिर दिन का अन्तिम भाग।

तत्र पूर्वे दिवसस्याष्टभागे रक्षाविधानमायव्ययौ च शृणुयात्। द्वितीये पौरजानापदानां कार्याणि पश्येत्। तृतीये स्नानभोजनं सेवेत। स्वाध्यायं च कुर्वीत। चतुर्थे हिरण्यप्रतिग्रहमध्यक्षांश्च कुर्वीत। पंचमे मंत्रिपरिषदा पत्रसंप्रेषणेन मन्त्रयेत। चारगुह्य-बोधनीयानि च बुद्ध्येत। षष्ठे स्वैरविहारं मंत्रं वा सेवेत। सप्तमे हस्त्यश्वरथायुधीयान् पश्येत्। अष्टमे सेनापतिसखो विक्रमं चिन्तयेत्। प्रतिष्ठतेऽहनि सन्ध्यामुपासीत।

इस प्रकार दिवस के प्रथम आठवें भाग में राजा को रक्षा-विधान कार्य एवं आय-व्यय का हिसाब सुनना चाहिए। द्वितीय आठवें भाग में नगर और जनपद के प्रजाजनों से सम्बन्धित कार्य का अवलोकन तथा तृतीय अष्टमभाग में स्नान, भोजन और स्वाध्याय, चतुर्थ अष्टमभाग में स्वर्ण, धन आदि के रूप में कर, अर्थ दण्ड या भेंट, पांचवें में पत्र व्यवहार द्वारा दूरस्थ मंत्रियो से मंत्रणा कार्य और गुप्तचरों द्वारा गूढ़ विषय श्रवण, छठवें में विहार अथवा मंत्रणा, सातवें में गज, अश्व, रथ एवं आयुधादि का अवलोकन और आठवें में सेनापतियों अपने सैन्य-बल विषयक

विचार विमर्श करे तथा दिन व्यतीत होने सन्ध्याकालीन उपासना में लगे।

प्रथमे रात्रिभागे गूढ़पुरुषान्पश्येत् । द्वितीये स्नानभोजनं कुर्वीत, स्वाध्यायं च । तृतीये तूर्यघोषेण संविष्टः चतुर्थपञ्चमौ शयीत षष्ठे तूर्यघोषेण प्रतिबुद्धः शास्त्रमितिकर्तव्यतां च चिन्तयेत् । सप्तमे मन्त्रमध्यासीत गूढपुरुषांश्च प्रेषयेत् । अष्टमे ऋत्विगाचार्य पुरोहितसखः स्वस्त्ययनानि प्रतिगृह्णीयात् । चिकित्सकमाहानसिकमौहूर्तिकांश्च पश्येत् । सवत्सां धेनुं वृषभं च प्रदक्षिणीकृत्योपस्थानं गच्छेत् ।

रात्रि के प्रथम भाग में गुप्तचरों से भेंट, द्वितीय भाग में स्नान, भोजन और स्वाध्याय, तीसरे भाग में तूर्यादि वाद्य, संगीत आदि, चौथे और पांचवें भाग में शयन, पांचवें भाग में तूर्यघोष के साथ जागरण, शास्त्र विषयक और आगामी दिवस के कार्य विषयक चिन्तन, सातवें भाग में मंत्रणा विषयक चिन्तन एवं गुप्तचरों का उनके कार्य पर प्रेषण तथा आठवें भाग में ऋत्विज्, आचार्य और पुरोहित द्वारा स्वस्तिवाचन करावे और फिर चिकित्सक, पाकशास्त्री और ज्योतिषी से सम्पर्क करे तथा सवत्सा गौ और वृषभ की परिक्रमा करके अपनी में पहुंचे।

आत्मबलानुकूल्येन वा निशाहर्भागान् प्रतिविभज्य कार्याणि सेवेत । उपस्थानगतः कार्यार्थिनामद्वारासंगं कारयेत् । दुर्दर्शो हि राजा कार्याकार्यविपर्यासमासन्नैः कार्यते । तेन प्रकृतिकोपमरिवशं वा गच्छेत् । तस्माद्देवताश्रमपाषण्डश्रोत्रियपशुपुण्यस्थानानां बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथानां स्त्रीणां च क्रमेण कार्याणि पश्येत् । कार्यगौरवादात्ययिकवशेन वा ।

अथवा अपनी सुविधा और बल के अनुसार दिन-रात्रि के समय का विभाग कर कार्यों का सम्पादन करे। राजसभा में जाकर राजा कार्य से समागत कार्यार्थियों के प्रवेशार्थ द्वार को खुलवा दे, जिससे कि वे सरलता से राजा की सेवा में उपस्थित होकर अपने-अपने कार्यों को करा

सकें। क्योंकि जो राजा प्रजा से नहीं मिलता उसके अधिकारीगण प्रजा के कार्यों को ठीक प्रकार नहीं करते, इस कारण राजा को या तो प्रजा-जनों का कोप-भाजन होना पड़ता है और शत्रु उसे शीघ्र ही वश में कर लेते हैं। इसलिए राजा को क्रमशः देवता, आश्रम, पाखण्डी, श्रोत्रिय, पशु, पुण्य स्थान, बाल, वृद्ध, व्याधिग्रस्त, विपत्तिग्रस्त, अनाथ एवं स्त्री आदि से सम्बन्धित कार्यों को स्वयं ही देखना चाहिए। अथवा कार्य की गुरुता लघुता को देख कर राजा इस क्रम में परिवर्तन भी कर सकता है।

सर्वमात्ययिकं कार्यं शृणुयान्नातिपातयेत्।
कृच्छ्रसाध्यमतिक्रान्तमसाध्य वा विजायते ॥१
अग्न्यगारगतः कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम्।
पुरोहिताचार्यसखः प्रत्युत्थायाभिवाद्य च ॥२
तपस्विनां तु कार्याणि त्रैविद्यैः सह कारयेत्।
मायायोगविदां चैव न स्वयं कोपकारणात् ॥३
राज्ञो हि व्रतमुत्थानं यज्ञः कार्यानुशासनम्।
दक्षिणा वृत्तिसाम्य च दीक्षितस्याभिषेचनम् ॥४
प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते रतम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥५
तस्मान्नित्योत्थितो राजा कुर्यादर्थानुशासनम्।
अर्थस्य मूलमुत्थानमनर्थस्य विपर्ययः ॥६
अनुत्थाने ध्रुवो नाशः प्राप्तस्यानागतस्य च।
प्राप्यते फलमुत्थानाल्लभते चार्थसम्पदम् ॥७

कार्य छोटा हो या बड़ा, अधिक आवश्यक हो वही कार्य राजा को सुनना चाहिए, जिससे कि समय का दुरुपयोग न हो। क्योंकि किये जाने वाले कार्य का समय निकल जाने पर वह कष्टसाध्य अथवा असाध्य तक हो जाता है। अग्निशाला में पुरोहित और आचार्य के साथ जाकर वेद-विज्ञों और तपस्वियों के कार्यों का अवलोकन करे और वहाँ भी पुरोहित,

आचार्य आदि का अभिवादन करे। तपस्वियों के कार्यों का अवलोकन न करता हुआ राजा त्रयीविद्याविदों के साथ माया-प्रयोग के ज्ञाताओं का कार्य भी देखे। किन्तु उनके कार्यों पर एकाकी ही विचार न करे, अन्यथा उनके रुष्ट हो जाने की संभावना रहती है। सदैव उद्योग करते रहना राजा के लिए व्रत स्वरूप है।' कार्य व्यवहार का निर्णय यज्ञ एवं सबके साथ समानता रखना उसकी दक्षिणा समझे। इस प्रकार निरन्तर कार्य संलग्न राजा ही यथार्थ रूप में दीक्षित एवं अभिषेक युक्त है। प्रजा के सुख में ही राजा का सुख निहित है। प्रजा का हित ही राजा का हित है जो स्वयं को प्रिय लगे उसे हितकर न समझता हुआ राजा प्रजा को प्रिय लगे उसे ही अपना हित माने। इसलिए नित्य उद्योग में लगा रह कर राजा अर्थ-कार्य करे। क्योंकि अर्थ का मूल उद्योग ही है। इसके विपरीत अनुद्योग को अनर्थ समझे। उद्योग न करने के परिणाम स्वरूप पूर्वकृत एवं भविष्य में किये जाने वाले कार्यों का भी सम्पूर्ण फल नष्ट हो जाता है। किन्तु उद्योगी राजा तत्काल ही अपने कार्य का फल प्राप्त कर लेता है ॥१-७॥

विंशोऽध्याय

निशान्तप्रणिधि

वास्तुकप्रशस्ते देशे सप्राकारपरिखाद्वारमनेककक्ष्यापरिगतमन्तःपुरं कारयेत्। कोशगृहविधानेन वा मध्ये वासगृहं गूढभित्तिसंचारं मोहनगृहं तन्मध्ये वा वासगृहं भूमिगृहं वा, आसन्नकाष्ठचैत्यदेवतापिधानद्वारमनेकसुरुंगासंचारं प्रासादं वा गूढभित्तिसोपानं, सुषिरस्तम्भप्रवेशापसारं वा वासगृहं यंत्रबद्धतलावपातं कारयेत्। आपत्प्रतीकारार्थमापदि वा कारयेत्। अतोऽन्यथा वा विकल्पयेत् सहाध्यायिभयात्।

वास्तु विद्या में प्रवीण पुरुष जिस स्थान को श्रेष्ठ कहें वहाँ परकोटा, खाई, द्वार, अनेक कक्ष एवं मन्जिलों वाले अन्तःपुर का निर्माण

करावे और फिर कोषागार के विधान से कोषगृह बनवा कर अन्तःपुर के मध्य में अपना आवासगृह बनवावे । जिस भवन की भित्तियों में आवागमन का मार्ग अदृश्य प्रतीत हो, ऐसे मोहनगृह के मध्य अपना निवास रखे तो भी उपयुक्त होगा । अथवा किसी समीपस्थ देव मन्दिर की मूर्ति से ढके हुए पथ द्वारा या अनेक सुरङ्गों के मार्ग द्वारा पहुँचने वाला भूमिगत भवन बनवा ले । अथवा ऐसा भवन बनवाये जिसकी भित्तियों में सोपान अदृश्य रहे तथा पोले स्तम्भों के मध्य आवागमन के मार्ग भी छिपे रहें । ऐसा आवास भवन अधिक प्रशस्त माना जायगा जो शत्रु द्वारा उत्पन्न की गई विपत्ति के प्रतीकारार्थ उसे नींव से ही चाहे जब गिरा कर अदृश्य किया जा सके । यह व्यवस्था किसी ऐसे यन्त्र के लगाने से की जा सकती है, जिसकी एक कील घुमा देने मात्र से ही समूचा गृह धरती में विलीन हो जाय या ढह जाय । यदि कभी कहीं ऐसा भवन बना हुआ देखा-सुना न हो तो राजा आपदा के प्रतीकारार्थ स्वकल्पना से ऐसे भवन का निर्माण कराने में सफल हो सकता है । अथवा उपरोक्त प्रकारों में से किसी प्रकार का प्रासाद न बनवा कर राजा अपनी किसी नवीन कल्पना के अनुसार ही भिन्न प्रकार का ऐसा प्रासाद बनवाये, जिसका भेद शत्रु राजा यदि वास्तुकला का पण्डित हो तो भी, न जान पावे ।

मानुषेणाग्निना त्रिरपसव्यं परिगतमन्तः पुरमग्निरन्यो न दहति । न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति । वैद्युतेन भस्मना मृत्संयुक्तेन करकवारिणाऽवलिप्तं च ।

दाँयी ओर से तीन बार घुमा कर चिताग्नि का धुँआ देने से अन्य कोई अग्नि अन्तःपुर को कभी भस्म नहीं करेगी । यदि अथर्व के अग्नि-शमन करने वाले मन्त्रोच्चारण के साथ बाँस द्वारा मर्दित एवं मनुष्य की अस्थियों से उत्पन्न अग्नि का धुँआ दे दे तो भी कोई अन्य अग्नि उस भवन को दग्ध करने में समर्थ नहीं होगी । क्योंकि कोई अग्नि वहाँ प्रज्वलित ही नहीं हो सकती । यदि मेघ से बरसाये हुए ओले के जल

से बाँबी की मिट्टी सान कर उसमें विद्युत पात से दग्ध हुए वृक्ष आदि की भस्म मिला दे और भित्ति पर उसका पलस्तर करा दे तो उस भवन में कभी अग्नि प्रज्वलित ही नहीं होगी।

जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाभिरक्षीवे जातस्याश्वत्थस्य प्रतानेन वा गुप्तं सर्पा विषाणि वा न प्रसहन्ते। मार्जारमयूरनकुलपृषतोत्सर्गः सर्पान् भक्षयति। शुकः शारिका भृङ्गराजो वा सर्पविषशंकायां क्रोशति। क्रौंचो विषाभ्याशे माद्यति। ग्लायति जीवंजीवकः। म्रियते मत्तकोकिलः। चकोरस्याक्षिणी विरज्येते। इत्येवमग्निविषसर्पेभ्यः प्रतिकुर्वीत।

अब विष से बचने का उपाय कहते हैं जीवन्ती (गिलोय,) शंखपुष्पी, कृष्ण पाँढरी और करौंदा वृक्ष पर उत्पन्न हुए बाँदा की माला रख दे या सँहजने के वृक्ष पर उत्पन्न हुए पीपल की जटा बाँध दे राजभवन में सर्प का अथवा अन्य किसी भी प्रकार का विष-प्रयोग कार्यकारी नहीं होता। बिलाव, मयूर, नेवला और मृग में से किसी को भवन में रखा जाय तो वे सर्पों का भक्षण कर लेते हैं। सर्प अथवा अन्य किसी भी प्रकार के विष की आशंका होने पर शुक, शारिका और भोंरे चिल्लाते तथा क्रोंच पक्षी व्याकुल हो जाते हैं। जीव-जीवक म्लान हो जाता है, मत्त हुई कोकिला मर जाती है, चकोर के चक्षु रक्तवर्ण के हो जाते हैं। इस प्रकार के लक्षणों को देख कर राजा अग्नि, विष अथवा सर्प से अपनी रक्षा करने में समर्थ होता है।

पृष्ठतः कक्ष्याविभागे स्त्रीनिवेशो गर्भव्याधिवैद्यप्रत्याख्यातसंस्था वृक्षोदकस्थानं च बहिः कन्याकुमारपुरम्। पुरस्तादलंकारभूमिर्मन्त्रभूमिरुपस्थानं कुमाराध्यक्षस्थान च। कक्ष्यान्तरेष्वन्तर्वंशिकसैन्य तिष्ठेत्।

राजभवन के पृष्ठ भाग में ऐसे कक्ष बनवाये, जिनमें रानियों के आवासगृह, गर्भिणियों एवं रोगियों के निवास, प्रसूतिगृह तथा चिकित्सक एवं असाध्य रोगियों के लिए भी स्थान नियुक्त हों। वहाँ

वृक्षों और सरोवर आदि से युक्त उद्यान भी होना चाहिए। उससे बाहर राजकन्याओं और कुमारों के रहने के लिए भी पृथक्-पृथक् भवनों की व्यवस्था हो। अन्तःपुर के समीप ही आभूषणादि रखने के कक्ष और सामने एक मंत्रणा-भवन, एक सभाभवन, एक राजपुत्रों के प्रमुख का भवन रहे और साथ ही अन्तःपुर के विभिन्न अधिकारियों के प्रमुख एवं रक्षा में नियुक्त सैनिकों के लिए भी विभिन्न कक्ष एवं स्थान होने आवश्यक हैं।

अन्तर्गृहगतः स्थविरस्त्रीपरिशुद्धां देवीं पश्येत्। न कांचिद-भिगच्छेत्। देवगृहे लीनो हि भ्राता भद्रसेनं जघान। मातुः शय्या-न्तर्गतश्च पुत्रः कारूशम्। लाजान्मधुनेति विषेण पर्यस्य देवी काशिराजम्। विषदिग्धेन नूपुरेण वैरन्त्यं मेखलामणिना सौवीरं जालूखमादर्शेन वेण्या गूढं शस्त्रं कृत्वा देवी विदूरथं जघान। तस्मादेतान्यास्पदानी परिहरेत्।

राजा अपने भवन के भीतर जाकर परखी हुई विश्वस्त वृद्धा परि-चारिका के साथ महारानी के पास जाय, अकेला कभी न जाय। क्योंकि महारानी के भवन में छिपे हुए पुरुष ने ही अपने भाई भद्रसेन की हत्या कर दी थी। माता की शय्या के नीचे छिपे हुए पुत्र ने राजा कारूश को मार डाला था तथा धान की खील में मधु के स्थान पर विष डालकर महारानी ने ही काशिराज की इहलीला समाप्त कर दी थी। इसी प्रकार विषबुझे नूपुर से वैरन्त्य, मेखला-मणि से सौवीर, विषैले दर्पण के स्पर्श से जालूख और वेणी में छिपे शस्त्र से राजा विदूरथ अपनी ही महारानी द्वारा मार दिया गया था। इसलिए राजा को कभी अपने राजभवन में अकेला नहीं जाना चाहिए।

मुण्डजटिलकुहकप्रतिसंसर्गं बाह्यभिश्च दासीभिः प्रतिषेधयेत् न चैनाः कुल्याः पश्येयुरन्यत्र गर्भव्याधिसंस्थाभ्यः। रूपाजीवाः स्नानप्रघर्षशुद्धशरीराः परिवर्तितवस्त्रालंकारा पश्येयुः।

अशीतिकाः पुरुषाः पंचाशत्काः स्त्रियो वा मातृपितृव्यंजनाः स्थविरवर्षवराभ्यागारिकाश्चावरोधानां शौचाशौचं विद्युः स्थापयेयुश्च स्वामिहिते।

राजा को मुण्डित, जटिल, मायावी तथा बाह्यकार्यों पर नियुक्त दासियों से अपनी महारानियों का सम्पर्क कभी नहीं होने देना चाहिए। रानियों के मातृकुल के लोग भी उनसे प्रसूति स्थान या रुग्णालय के अतिरिक्त कहीं न मिल सकें। रूपजीविनी अर्थात् वेश्याओं को भी भले प्रकार स्नान एवं वस्त्राभूषण के द्वारा सुसज्जित होकर राजाओं के समक्ष जाना चाहिए। अन्तःपुर में जो वृद्ध मनुष्य रखे जाँय, उनमें अस्सी वर्ष आयु के पुरुष एवं पचास वर्ष की स्त्रियाँ माता-पिता के रूप में रहें तथा वहाँ के अन्य वृद्ध, नपुंसक आदि का ध्यान रखते हुए, उन्हें सदैव स्वामी के हित में लगाये रखें।

स्वभूमौ च वसेत्सर्वः परभूमौ न संचरेत्।
न च बाह्येन संसर्गः कश्चिदाभ्यन्तरो व्रजेत् ॥१
सर्वं चावेक्षित द्रव्यं निबद्धागमनिर्गमम्।
निर्गच्छेदभिगच्छेद्वा मुद्रासंक्रान्तभूमिगम् ॥२

जो जो अधिकारी जिस-जिस कार्य-क्षेत्र में नियुक्त हों, वे अपने-अपने स्थानों पर ही रहें, अन्य स्थानों में न जांय। भीतर कार्य करने वाले व्यक्ति बाहर के व्यक्तियों से मिलना-जुलना न रखे। बाहर से भीतर और भीतर से बाहर जो-जो भी वस्तुएं जायें, वे भले प्रकार अवलोकन के पश्चात् सीलबन्द होकर ही जानी चाहिए ॥१-२॥

एकविंशोऽध्याय

आत्म-रक्षण

शयनादुत्थितः स्त्रीगणैर्धन्विभिः परिगृह्येत। द्वितीयस्यां कक्षायां कंचुकोष्णीभिविर्वर्षवराभ्यागारिकैः तृतीयायां कुब्जवा-

मनकिरातैश्चतुर्थ्यां मंत्रिभिः सम्बन्धिभिर्दौवारिकैश्च प्रासपाणिभिः ।

अब राजा को अपनी आत्म-रक्षा का जो प्रबन्ध करना चाहिए, उसे कहते हैं। प्रातःकाल सोकर उठने पर धनुर्धारिणी नारियाँ राजा के सब ओर खड़ी हो जाँय। जब राजा शयनकक्ष से निकलकर अन्य कक्ष में जाय तब कंचुकीगण नपुंसक एवं भवन के अधिकारी शस्त्रास्त्र धारण किये हुए राजा के साथ रहकर रक्षण कार्य करें। तीसरे कक्ष में जाय तब शस्त्रास्त्रधारी कुबड़े, बौने, किरात पुरुष उसकी रक्षा करें। चौथे कक्ष में जाने पर राजा की रक्षा का कार्य मंत्रिगण, सम्बन्धीजन एवं द्वाररक्षकादि करें।

पितृपैतामहं महासम्बन्धानुबन्धं शिक्षितंमनुरक्तं कृतकर्माणं जनमासन्नं कुर्वीत। नान्यतोदेशीयमकृतार्थमानं स्वदेशीयं वाऽप्यकृत्योपगृहीतं अन्तर्वंशिकसैन्यं राजानमन्तःपुरं च रक्षेत्।

गुप्ते देशे माहानसिकः सर्वमास्वादबाहुल्येन कर्म कारयेत्। तद्राजा तथैव प्रतिभुञ्जीत पूर्वमग्नये वयोभ्यश्च बलिं कृत्वा।

पिता पितामह के क्रम से चला आता एवं बड़े-बड़े प्रमुख जनों से तथा राजवंश से सम्बन्ध रखने वाला एक अंगरक्षक सदैव राजा के साथ रहना चाहिए। ऐसे व्यक्ति का सुशिक्षित, राजा से प्रीति करने वाला, राजभक्त तथा रक्षणकार्य में चतुर होना आवश्यक है। राज्य द्वारा असम्मानित विदेशी अथवा पहिले राज्य द्वारा तिरस्कृत, किन्तु पश्चात् सेवा में स्वीकृत किया हुआ स्वदेश में रहने वाला पुरुष भी इस कार्य के लिए कभी न रखे। अन्तःपुर के अधिकारी के अनुशासन में रहने वाली सेना भी अन्तःपुर में राजा की एवं रानी आदि की रक्षा में लगी रहे। राजा का पाकाधिकारी गोपनीय स्थान में सब प्रकार के अधिक सुस्वादु भोजन बनवावे। बनकर तैयार हुई वह भोज्य सामग्री

प्रथम बलि वैश्वदेव विधि से अग्नि को और पक्षियों को दे तथा उसके पश्चात् राजा उन्हें खाय।

अग्नेर्ज्वालाधूमनीलता शब्दस्फोटनं च विषयुक्तस्य। वयसां विपत्तिश्च। अन्नस्योष्मा मयूरग्रीवाभः शैत्यमाशु क्लिष्टस्येव वैवर्ण्यं सोदकत्वमक्लिन्नत्वं च। व्यञ्जनानामाशुशुष्कत्वं च क्वाथश्यामपटलविच्छिन्नभावो गन्धस्पर्शरसवधश्च। द्रवेषु हीनातिरिक्तच्छायादर्शनं फेनपटलसीमन्तोर्ध्वराजीदर्शनं च। रसस्य मध्ये नीला राजी, पयसस्ताम्रा, मद्यतोययोः काली, दध्नः श्यामा, मधुनः श्वेता च। द्रव्यामार्द्राणामाशुप्रम्लानत्वमुत्पक्वभावः क्काथनीलश्यामता च। शुष्काणामाशुशातनं वैवर्ण्यं च। कठिनानां मृदुत्वं मृदूनां कठिनत्वं च। तदभ्याशे क्षूद्रसत्त्ववधश्च। आस्तरणप्रावरणानां श्याममण्डलता तन्तुरोमपक्ष्मशातनं च। लौहमणिमयानां पंकमलोपदेहता स्नेहरागगौरवप्रभाववर्णं स्पर्शवधश्चेति विषयुक्तलिङ्गानि।

विषयुक्त पदार्थों की परीक्षा बताते हैं—यदि विषैले अन्न को अग्नि में डालें तो उसकी ज्वाला और धूम नीली होकर उसमें स्फोट अर्थात् चटकने जैसा शब्द होता है। विषयुक्त अन्न का भक्षण करते ही पक्षी मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। विषैले भोजन से जो वाष्प (भाप) निकले, वह मोर की ग्रीवा के समान नीली होगी। परोसा जाने पर वह भोजन शीघ्र ही ठन्डा हो जायगा और मर्दन की हुई वस्तु के समान उसका रङ्ग विवर्णता लिए हुए या मैला होगा। वह कभी पनैल लगता है और कभी सूखा। यदि दाल आदि पतली चीज है, तो विष के कारण शीघ्र सूख जायगी। क्वाथ जैसा प्रतीत होने वाला द्रव्य ईंधन द्वारा भी नहीं पक पाता, उसका फेन काला और फटा-फटा दिखाई देता है। उसमें स्वाभाविक गन्ध, स्पर्श और स्वाद नहीं रहता। किसी पतले द्रव्य में विष हो तो उसमें मनुष्य की छाया कभी छोटी और कभी बड़ी दिखाई देती है। अग्निपाक में उससे रेखायुक्त फेन निकलता है। घृतादि

में नीली, दुग्धादि में ताम्रवर्ण की, मद्य या जल में काली, दही में श्याम-वर्ण की तथा मधु आदि में उज्वल रेखा दिखाई देती हैं। आम्रादि गीले फल विषमय हों तो शुष्क या पिलपिले हो जाते हैं। यदि अधिक पके फलों में विष हो तो उनका वर्ण काला या नीला हो जाता है। सूखा हुआ खाद्य पदार्थ विषैला हो तो चूर्ण हो जाता या उसके रंग में विवर्णता आजाती है। कठोर द्रव्य में मदुता और मृदु में कठोरता प्रतीत होती है। विषयुक्त पदार्थ के समीप चलने वाले चींटी आदि जीव तत्काल प्राणहीन हो जाते हैं। ऊनी या सूती ओढ़ने-बिछावे के वस्त्रों में विष लगा हो तो उनमें यत्र-त्र धब्बे पड़ जाते या उनके रोयें से निकल आते हैं। विषयुक्त स्वर्णादि धातु या रत्नादि पर कींच जैसे धब्बे पड़ जाते तथा उनमें प्रभा, वर्ण, भार, प्रभाव एवं स्पर्श गुण आदि का नाश हो जाता है। इस प्रकार यह विषयुक्त वस्तुओं के लक्षण कहे गये हैं।

विषप्रदस्य तु शुष्कश्याववक्त्रता वाक्सगः स्वेदो विजृम्भणं चातिमात्रं वेपथुः प्रःस्खलनं वाक्यविप्रेक्षणमावेगः कर्मणि स्व-भूमौ चानवस्थानमिति।

तस्मादस्य जाङ्गलीविदो भिषजश्चासन्नाः स्युः।

भिषग्भैषज्यागारादास्वादविशुद्धमौषधं गृहीत्वा पाचकपोष-काभ्यामात्मना च प्रतिस्वाद्य राज्ञे प्रयच्छेत्। पानं पानीयं चौष-धेन व्याख्यातम्।

अब विष देने वाले के लक्षण कहते हैं। जो व्यक्ति किसी को विष देता है, उसका मुख शुष्क, पीतवर्ण का अथवा काला पड़ जाता है। वार्त्तालाप में उसकी जिह्वा लड़खड़ाती और देह पर पसीना आ जाता है। बारम्बार जंभाई लेता, काँपता चलने में डगमगाता एवं शंकित रहता हुआ यदि किसी को कोई बात करता हुआ देखता है तो उसे यही संदेह रहता है कि यह बातें कहीं मेरे विषय में ही तो नहीं हो रही हैं। उसका मन उसी के चिन्तन में लगा रहने के कारण किसी कार्य में नहीं लगता, जिसके कारण वह किसी एक स्थान पर नहीं

ठहर पाता। इसलिए राजा को विष-चिकित्सों को अपने यहां अवश्य रखना चाहिए। राजवैद्य भिषगागार से निकाल कर स्वयं उसका स्वाद चाख-चाख कर पाचक और प्रेषक को दे तथा औषधियों के सिद्ध हो जाने पर सर्व प्रथम उन दोनों को खिला कर स्वयं खाये और तब राजा को उपयोगार्थ दे। इसी प्रकार मद्य और जल भी औषधि के समान शुद्ध करके ही राजा को देना चाहिए।

कल्पकप्रसाधकाः स्नानशुद्धवस्त्रहस्ता : समुद्गमुपकरणमन्त-र्वंशिकहस्तादादाय परिचरेयुः। स्नापकसंवाहकास्तरकरजकमाला-कारकर्म दास्यः कुर्युः। ताभिरधिष्ठिता वा शिल्पिनः। आत्म-चक्षुषि निवेश्य वस्त्रमाल्यं दद्युः। स्नानानुलेपनप्रघर्षचूर्णवास-स्नानीयानि स्वचक्षोबाहुष च। एतेन परस्मादागतकं च व्याख्यातम्।

अब राजा के भृत्यों के कर्त्तव्यों पर प्रकाश डालेंगे। राजा का नाई और वस्त्रादि धारण कराने वाला प्रसाधक स्वयं स्नान और वस्त्र धारण से निवृत्त होकर अन्तःपुर के अधिकारी से मुद्रांकित क्षुर-वस्त्रादि अपने शुद्ध हाथों में ग्रहण कर राजा की सेवा में तत्पर हो। इसी प्रकार राजा को स्नान कराने वाले, देह दबाने वाले, बिछौने बिछाने वाले, धोबी एवं माली का कार्य राजभवन की दासियों को स्वयं करना चाहिए अथवा उनकी देख-रेख में उन कार्यों को वे शिल्पी गण करें जो उन्हें करने के लिए नियुक्त हैं। वे दासियां राजा को जो वस्त्र और माला आदि दें, उन्हें पहिले स्वयं देखलें तथा अनुलेप, प्रघर्ष, सुवासित चूर्ण एवं सुगन्धित तैल आदि की भी पहिले अपने शरीर या वक्ष आदि पर लगाकर परीक्षा कर लेने के पश्चात् ही राजा को देना चाहिए। इसी प्रकार किसी अन्य स्थान से प्राप्त वस्तुओं के विषय में करना उचित है।

कुशीलवाः शस्त्राग्निरसवर्जं नर्मयेयुः। आतोद्यानि चैषामन्त-स्तिष्ठेयुरश्वरथद्विपालकाराश्चा मौलपुरुषाधिष्ठितं यानवाहनमा-रोहेत्। नावं चाप्तनाविकाधिष्ठिताम्। अन्यनौप्रतिबद्धां वात-

वेगवशां च नोपेयात् । उदकान्ते सैन्यमासीत । मत्स्यग्राहविशुद्धमवगाहेत । व्याल ग्राहविशुद्धमुद्यानं गच्छेत् । लुब्धकैः श्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपराबाधमयं चललक्ष्यपरिचयार्थं मृगारण्यं गच्छेत् ।

कुशीलद अर्थात् खेल दिखाने वाले नट या मदारी आदि को भी शस्त्र, अग्यि या विष के व्यवहार द्वारा प्रयुक्त होने वाले खेलों को छोड़ कर, दूसरी प्रकार के खेलों के प्रदर्शन से राजा का मनोरंजन करना चाहिए। इनकी खेल दिखाने की सामग्री या बाजे आदि सब राजा के अन्तःपुर में ही रखे रहने चाहिए। राजा के प्रयोग में आने वाले रथ अश्व, हाथी और शिविका अर्थात् पालकी आदि भी वहीं रखे जाँय तथा विश्वस्त पुरुषों द्वारा बैठकर परीक्षा कर लेने के पश्चात् ही राजा को उन सवारियों का उपयोग करना उचित है। यदि नौका पर चढना हो तो विश्वस्त नाविकों द्वारा चालित नाव पर ही बैठे तथा किसी अन्य नौका से बँधी और पाल के सहारे वायु जैसे वेग से चलने वाली नाव पर राजा को कभी भी सवारी नहीं करनी चाहिए। राजा के नौकारोहण में चलने पर नदी के दोनों तटों पर सेना खड़ी कर दी जाय। यदि नदी में स्नान की इच्छा हो तो मत्स्य या ग्राह से रहित जल वाले स्थान में ही स्नान करे। भ्रमण की इच्छा हो तो सर्प एवं सिंह आदि जीवों से रहित उद्यान में टहले। मृगया की इच्छा से भी राजा वन में तभी जाय, जब श्वानों एवं आखेटकों के साथ जाकर लुब्धकगण सब ओर से सिंहादि हिंसक जीवों से वन को रहित करदें।

आप्तशस्त्रग्राहाधिष्ठितः सिद्धतापसं पश्येत् । मंत्रिपरिषदा सामन्तदूतम् । सन्नद्धोऽश्वं हस्तिनं रथं वाऽऽरूढः सन्नद्धमनीकं गच्छेत् । निर्याणेऽभियाने च राजमार्गमुभयतः कृतारक्षं दण्डिभिरपास्तशस्त्रहस्तप्रव्रजितव्यंगं गच्छेत् । न पुरुषसम्बाधमवगाहेत । यात्रासमाजोत्सव प्रवहणानि च दशवर्गिका धिष्ठितानि गच्छेत् ।

यथा च योगपुरुषैरन्यान् राजाऽधितिष्ठति ।
तथाऽयमन्यबाधेभ्यो रक्षेदात्मानमात्मवान् ।।१

सिद्ध पुरुषों या तपस्वियों से साक्षात्कार करते समय भी राजा किसी विश्वस्त एवं सशस्त्र अंगरक्षक को अवश्य साथ रखे तथा सामन्तों या राजदूतों से साक्षात् के समय मंत्रियों को भी उपस्थित रखे । सैन्य-निरीक्षण का कार्य वीरवेश में सुसज्जित होकर पैदल, रथ, अश्व या हाथी पर चढ़कर करे । नगर से जाने या लौट कर नगर में आने के समय ऐसे मार्ग से निकले, जिसके दोनों ओर रक्षा के लिए राजपुरुष सतर्क खड़े रहकर शस्त्रधारी, सन्यासी एवं विकलांगादि को वहाँ से दूर हटादें । राजा को भीड़ के स्थान में नहीं जाना चाहिए । यात्रा या समाज आदि के उत्सवों में नायक युक्त दस सशस्त्र वीरों के दल के साथ ही जाना चाहिए । राजा जैसे छद्मवेशधारी गुप्तचरों के द्वारा शत्रु राज्य में बाधा उपस्थित करता है, वैसे ही उसे अन्य राजाओं द्वारा उपस्थित की गई बाधाओं से अपनी रक्षा करनी चाहिए ।

विनयाधिकारिक प्रथम अधिकरण समाप्त

अध्यक्षप्रचार द्वितीय अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

जनपदनिवेश

भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत् । शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं पंचशतकुलपरं ग्रामं क्रोशद्विक्रोशसीमानमन्योन्यरक्षं निवेशयेत् ।

नदीशैलवनगृष्टिदरी सेतुबन्धशाल्मलीशमीक्षीर वृक्षानन्तेषु सीम्नां स्थापयेत् । अष्ठशतग्राम्या मध्ये स्थानीयं, चतु.शतग्राम्या द्रोणमुखं, द्विशतग्राम्या खार्वटिकं, दशग्रामीसंग्रहेण संग्रहणं स्थापयेत् । अन्तेष्वन्तपालदुर्गाणि, जनपदद्वाराण्यन्तपालाधिष्ठितानि स्थापयेत् ।

पहिले से विद्यमान अथवा नवीन जनपद की स्थापना के समय राजा लोगों को परदेश से लाकर अथवा अपने देश के जिस भूखण्ड में अधिक घनी बस्ती हो, वहाँ से कुछ को हटा कर वहाँ बसा दे । नवीन ग्रामों को इस प्रकार बसाना चाहिए, जिससे कि उसमें अधिकतर शूद्रजातीय कृषक रहें और प्रत्येक ग्राम में से पाँच सौ परिवार तक निवास करें । वे ग्राम एक या दो-दो कोस के अन्तर पर बसाये जायें, जिससे कि आपत्काल में वे सब परस्पर मिल कर अपनी रक्षा कर लें । नदी, शैल, वन, काँटेदार वृक्ष, कन्दरा, सेतु अथवा शाल्मली शमी और वट के वृक्षों के द्वारा सीमा-निर्धारण करे । इस प्रकार आठ सौ ग्रामों के मध्य स्थानीय नामक नगर, चार सौ ग्रामों के मध्य द्रोणमुख नामक उपनगर (कस्बा) दो सौ ग्रामों के मध्य खार्वटिक बसावे तथा दस गावों को संयुक्त कर एक महाग्राम की स्थापना करे । जनपद के सीमान्त पर द्वार रूप में

अन्त पाल का दुर्ग बनावे। इन अन्त पालों का एक अध्यक्ष भी नियुक्त कर दें।

तेषामन्तराणि वागुरिकशवरपुलिन्दचण्डालारण्यचरा रक्षेयुः। ऋत्विगाचार्यं पुरोहित श्रोत्रियेभ्यो ब्रह्मदेयान्य दण्डकराण्यभिरूपदायकानि प्रयच्छेत् अध्यक्षसंख्यायकादिभ्यो गोपस्थानिकानीकस्थचिकित्साकाश्वदमकजंघालकेभ्यश्च विक्रयाधानवर्गम्। करदेभ्यः कृतक्षेत्राण्यैकपुरुषिकाणि प्रयच्छेत्। अकृतानि कर्तृभ्यो नादेयात्।

वागुरिक (लुब्धक), शबर, पुलिंद, चाण्डाल एवं अन्यान्य वनचरों द्वारा उन दुर्गों की रक्षा में नियुक्त रहें। जनपद को बसाते समय राजा को ऋत्विज्ञ, आचार्य, पुरोहित, एवं श्रोत्रिय आदि को उनके उत्तराधिकारियों तक के लिए सर्व कर-मुक्ति की सुविधा प्रदान हुआ ब्रह्मदेय संज्ञक भूमिदान करे तथा अन्तपालाध्यक्ष, संख्यायक, (गणक), गोपगण, स्थानिक, अनीकस्थ, चिकित्सक, अश्व-शिक्षक, और जंघालक को भी सब करों से मुक्त पृथिवी इस अनुबन्ध पर देनी चाहिए कि वे उसे विक्रय या बन्धक नहीं कर सकेंगे। कृत अर्थात् उर्वर बनाये हुए खेत को एक पीढी के लिए प्रदान करे, किन्तु अकृत खेत को अपने पुरुषार्थ से जो कृषक उर्वर बना दे, उस पर उसका वंश परम्परा से अधिकार बना रहे।

अकृषतामाच्छिद्यान्येभ्यः प्रयच्छेत्। ग्रामभृतकवैदेहका वा कृषेयुः। अकृषन्तोऽपहीनं दद्युः। धान्यपशुहिरण्यैश्चैनानगृह्णीयात्तान्यनुसुखेन दद्युः। अनुग्रहपरिहारौ चैभ्यः कोशवृद्धिकरो दद्यात्। कोशोपघातिकौ वर्जयेत्। अल्पकोशो हि राजा पौरजानपदानेव ग्रसते। निवेशसमकालं यथागतकं वा परिहारं दद्यात्। निवृत्तपरिहारान्पितेवानुगृह्णीयात्।

जो कृषक अपनी भूमि पर खेती न करके परती ही रहने दें, उनसे उस भूमि को लेकर किसी अन्य कृषक को प्रदान कर दे। यदि उसे कोई कृषक न ले, तो उसे ग्राम-प्रमुख अथवा कृषि-कर्म के इच्छुक किसी अन्य

को दे दे। खेत लेकर भी उसमें खेती न करने वाले से उसकी हानि को पूरी करावे। अनावृष्टि या अतिवृष्टि आदि से असहाय हुए कृषकों को अन्न, बीज, पशु अथवा मुद्रा आदि प्रदान करे। किन्तु कालान्तर में अधिक प्राप्ति होने पर कृषक को भी राजा से प्राप्त सहायता राजा को लौटा देनी चाहिये, जिससे कि राजकोष की वृद्धि होती रहे। इस प्रकार राजा का कर्त्तव्य है कि वह आवश्यकतानुसार कृषकादि प्रजा पर अनुग्रह (कर में छूट और बीज-प्रदान आदि) तथा परिहार (पूर्ण करमुक्ति) अवश्य करे। किन्तु ऐसा अनुग्रह परिहार न करे, जिससे राजकोष खाली ही हो जाय। क्योंकि राजकोष का क्षय होने पर उसकी पूर्ति के लिए राजा नवीन-नवीन कर लगा कर नगर और जनपद के प्रजाजनों को ही निगलने लगता है। नवीन जनपद या ग्राम स्थापित करते समय पूर्ण कर-मुक्ति की जा सकती है। जिनकी कर-मुक्ति की अवधि समाप्त हो जाय और फिर भी आवश्यक हो राजा पिता के समान उसे अनुग्रह प्रदान करे।

आकरकर्मान्तद्रव्यवनहस्तिवनव्रजवणिक्पथप्रचारान् वारिस्थलपथपण्यपत्तनानि च निवेशयेत्। सहोदकमाहार्योदकं वा सेतुं बन्धयेत्। अन्येषां वा बध्नतां भूमिमार्गवृक्षोपकरणानुग्रहं कुर्यात्।

खान, यन्त्रालय, बहुमूल्य वृक्षों का वन, हाथियों का वन, पशुशाला, आयात-निर्यात के लिए वाणिज्य-मार्ग, जलमार्ग, स्थलमार्ग, क्रय-विक्रयार्थ बाजार, कृषि आदि के लिए जल की स्थायी व्यवस्था वाले जलाशय या जल को रोकने वाले बाँधों का निर्माण करावे। यदि दूसरे लोग बाँध आदि बनाने के कार्यों को करने के लिए स्वयं उद्यत हों तो उन्हें उस कार्य के लिए आवश्यक भूमि, जल-मार्ग अथवा काष्ठ आदि की सहायता राजा प्रदान करे।

पुण्यस्थानारामाणां च सम्भूय सेतुबन्धादपक्रामतः कर्मकुर्युः। व्ययकर्मणि च भागी स्यात्। न चांशं लभेत। मत्स्यप्लवहरित-

पण्यानां सेतुषु राजा स्वाम्यं गच्छेत् । दासाहितकबन्धूननुशृण्वतो राजा विनयं ग्राहयेत् । बालवृद्धव्याधितव्यसन्यनाथांश्च राजा बिभृयात् । स्त्रियमप्रजातां प्रजातायाश्च पुत्रा ।

जो लोग पुण्यस्थल या उद्यान आदि बनाना चाहें, उन्हें भी राजा वैसी ही सहायता दे । अधिक व्यक्ति मिलकर पुल या बाँध आदि बनावें, उसमें कोई व्यक्ति स्वयं परिश्रम न कर सके तो उसे अपने स्थान पर श्रमिक, वृषभादि एवं उसके भाग में आया हुआ धन अवश्य देना चाहिए । किन्तु वह बाँधादि के उस कार्य से होने वाले लाभ में भागीदार न होगा । उसमें उत्पन्न होने वाले मत्स्य, प्लव, शाकादि का स्वामी राजा ही रहेगा । उपर्युक्त प्रकार बसाये हुए जनपदादि के दास, आहित (बन्धक व्यक्ति) एव जन साधारण के बन्धु या पुत्र आदि को स्वामी की आज्ञा न मानने पर राजा दण्डित कर सकता है । साथ ही बाल, वृद्ध, रोगी, संकटग्रस्त, आश्रयहीन तथा वन्ध्या या अनाथ पुत्रवती आदि का भरण-पोषण करना भी राजा का कर्त्तव्य है ।

बालद्रव्यं ग्रामवृद्धा वर्धयेयुराव्यवहारप्रापणात्, देवद्रव्यं च । अपत्यदारान् मातापितरौ भ्रातृनप्राप्तव्यवहारान् भगिनीः कन्या विधवाश्चाबिभ्रतः शक्तिमतो द्वादशपणो दण्डोऽन्यत्र पतितेभ्यः, अन्यत्र मातुः । पुत्रदारानप्रतिविधाय प्रव्रजतः पूर्वः साहसदण्डः, स्त्रियं च प्रव्राजयतः । लुप्तव्यवायः प्रव्रजेदापृच्छ्य धर्मस्थान् । अन्यथा नियम्येत ।

वयस्क होने तक अवयस्क के धन की वृद्धि ग्राम के वृद्ध पुरुषों को करनी चाहिए । देवधन की वृद्धि करना भी उन्हीं का कर्त्तव्य है । भरण-पोषण में समर्थ पुरुष भी यदि अपने पुत्र, स्त्री, माता, पिता, अवयस्क भ्राता अविवाहित या विधवा भगिनी अथवा कन्या का भरण-पोषण न करे उसे राजा बारह पण का दण्ड दे । किन्तु पुत्रादि के धर्म से भ्रष्ट होने पर भरण-पोषण न करे तो गृह स्वामी दण्डित नहीं किया जा सकता । उनमें यदि माता धर्म से भ्रष्ट हो जाय तो भी भरण-पोषण

प्राप्ति की अधिकारिणी है। यदि पुत्र या भार्या की जीविका का उचित प्रबन्ध किये विना ही कोई पुरुष संन्यास ग्रहण कर लें और स्त्री को भी सन्यासिनी बनाना चाहे तो उसे पूर्व साहस अर्थात् ढाई सौ पण का दण्ड दिया जाय। मैथुन सामर्थ्य के न रहने पर धर्माधिकारी से अनुमति लेकर ही संन्यास लेना चाहिए। इससे अन्यथा आचरण वाले को राजा बन्धन में डाल दे।

वानप्रस्थादन्यः प्रव्रजितभावः, सुजातादन्यः संघः, सामुत्थायकादन्यः समयानुबन्धो वा नास्य जनपदमुपनिवेशेत। न च तत्रारामविहारार्थाः शालाः स्युः। नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवा वा न कर्मविघ्नं कुर्युः। निराश्रयत्वाद्ग्रामाणां क्षेत्राभिरतत्वाच्च पुरुषाणां कोषाविष्टद्रव्यधान्यरसवृद्धिर्भवतीति।

वानप्रस्थ के अतिरिक्त किसी संन्यासी आदि को राज्य या राजा के हितार्थ बने हुए संघ से भिन्न कोई दूषित संघ तथा प्रजाहित के लिए कार्य करने वाले दल से भिन्न कोई दल राजा के जनपद अथवा उपनिवेश में नहीं बनाना चाहिए। उस जनपद में विहार करने की दृष्टि से कोई उद्यान या क्रीडाशाला का निर्माण वर्जित रहे, जिससे कि नट, नर्त्तक, गायक, वादक, वाग्जीवी और कुशीलव आदि वहाँ किसी के कार्य में बाधा उत्पन्न न कर सकें। क्योंकि वैसी सुविधा न होने पर प्रजाजन अपने खेती आदि कार्यों में व्यस्त रहेंगे, जिससे कि श्रम, द्रव्य, धान्य और रसादि की वृद्धि के साथ राजकोष की भी वृद्धि होगी।

परचक्राटवीग्रस्तं व्याधिदुर्भिक्षपीडितम्।
देशं परिहरेद्राजा व्ययक्रीडाश्च वारयेत् ॥१

दण्डविष्टिकराबाधैः रक्षेदुपहतां कृषिम्।
स्तेनव्यालविषग्राहैर्व्याधिभिश्च पशुव्रजान् ॥२

वल्लभैः कार्मिकैः स्तेनैरन्तपालैश्च पीडितम्।
शोधयेत्पशुसंघैश्च क्षीयमाणं वणिक्पथम् ॥३

एवं द्रव्यद्विपवनं सेतुबन्धमथाकरान् ।
रक्षेत्पूर्वकृतान् राजा नवांश्चाभिप्रवर्तयेत् ॥४

शत्रु के कुचक्र, वनपालों के अत्याचार, रोग अथवा दुर्भिक्ष से प्रजा पीड़ित न हो, इसका ध्यान रखता हुआ राजा अपने भोग-विलास पर यदि अधिक व्यय होता हो तो उसे कम करदे । दण्ड, बेगार, और कर की बाधा या अधिकता के कारण नष्ट होते हुए कृषि-उद्योगादि की सदा रक्षा करनी चाहिए । पशुओं को भी चोरों, हिंस्रजन्तुओं, विष-प्रयोगों या विभिन्न रोगों से बचाने की समुचित व्यवस्था करे । राजा के प्रिय, कर-प्राप्ति अधिकारी, चोर, अन्तपाल एवं हिंस्र जीवों से नष्टप्राय: वाणिज्य-मार्ग को सदैव ठीक कराता रहे । इसी प्रकार विद्यमान वृक्ष रूपी धन वाले वन, हस्तवन, सेतु, बाँध एवं खानों की रक्षा करता हुआ राजा नवीन वनादि का निर्माण कराये ॥१-४॥

द्वितीयऽध्याय

भूमिच्छिद्रविधानम

अकृष्यायां भूमौ पशुभ्यो विवीतानि प्रयच्छेत् । प्रदिष्टाभय-स्थावरजंगमानि च ब्राह्मणेभ्यो ब्रह्मसोमारण्यानि तपोवनानि च, तपस्विभ्यो गोरुतपराणि प्रयच्छेत् । तावन्मात्रमेकद्वारं खातगुप्तं स्वादुफलगुल्मगुच्छमकण्टकिद्रु ममुत्तानतोयाशयं दान्तमृग चतुष्पदं भग्ननखदंष्ट्रव्यालं मार्गायुकहस्तिहस्तिनीकलभं मृगवनं विहारार्थं राज्ञः कारयेत् ।

अब भूमि छिद्र विधान को कहते हैं । जो भूमि जोतने-बोने के अयोग्य हो, उस पर पशुओं के लिए तृण-जल आदि युक्त क्षेत्र बनवा दे । ऐसी पृथ्वी पर चार कोस के क्षेत्र में ब्रह्मवन बनाकर ब्राह्मण को दान करदे । उस वन में स्थावर-जंगम प्राणियों की अवध्यता मान्य हो । इसी प्रकार न जोती हुई भूमि तपस्वियों के लिए तप करने को प्रदान

करे। मृगया के लिए भी राजा ऐसी ही न जोती जाने योग्य भूमि पर चार कोस विस्तार वाला मृगवन स्थापित करे, जिसमें केवल एक ही प्रवेशद्वार हो। उस वन के चारों ओर खाई रहे तथा वन में सुस्वादु फल वाले वृक्ष, गुल्म एवं सुन्दर पुष्पगुच्छ रहें, कांटेदार वृक्ष न हों, किन्तु एक जलाशय अवश्य हो। वहां के मृगादि पशु विनीत तथा हिंसक जीव दाँत और नख से विहीन कर दिये जाँय। विहार के लिए हाथी, हाथिनी और उनके बच्चे भी वहाँ होने चाहिए।

सर्वातिथिमृगं प्रत्यन्ते चान्यन्मृगवनं भूमिवशेन वा विवेशयेत्। कुप्यप्रदिष्टानां च द्रव्याणामेकैकशो वा वनं निवेशयेत्। द्रव्यवन-कर्मान्तानटवीश्च द्रव्यवनापाश्रयाः। प्रत्यन्ते हस्तिवनमटव्यारक्ष्यं निवेशयेत्।

नागवनाध्यक्षः पार्वतं नादेयं सारसमानूपं नागवनं विदित-पर्यन्तप्रवेशनिष्कासनं नागवनपालैः पालयेत्। हस्तिघातिनं हन्युः। दन्तयुगं स्वयं मृगस्याहरतः सपादचतुष्पणो लाभः।

किसी प्रकार सताये हुए मृगादि पशुओं के आश्रयार्थं जनपद के सीमान्त में या जहाँ कहीं उपयुक्त भूमि दिखाई दे एक अन्य मृगवन स्थापित करे। इसी प्रकार कुप्याध्यक्ष प्रकरण में निर्देशित देवदारु, बाँस एवं वल्कल वाले वृक्षों के पृथक्-पृथक् वन लगाकर वन लगाकर वन के कार्यों में कुशल कर्मचारियों को वहाँ रखे तथा जनपद की सीमा पर एक हस्तिवन भी लगादे, जिसकी सुरक्षा वनवासी लोग करें। पर्वत, नदीतट या जलाशय के तटवर्ती जलपूर्ण अथवा जल-रहित प्रदेश में विद्यमान हस्तिवन की रक्षा उसके रक्षकों के अध्यक्ष की देख-रेख में हो। यह सभी रक्षक आदि उस वन में घुसने या उसमें से बाहर निकलने के मार्ग से भले प्रकार परिचित हों। रक्षकों को हाथियों की हत्या कर देने वाले व्याघ आदि का बध कर देना चाहिए। जो कर्मचारी स्वयं मृत्यु को प्राप्त हुए हाथी के दाँत का एक जोड़ा लाकर प्रस्तुत करे उसे सवा चार पण का पुरस्कार प्राप्त होना उचित है।

नागवनपाला हस्तिपकपादपाशिकसैमिकवनचरकपारिकर्मिकसखा। हस्तिमूत्रपुरीषच्छन्नग धा भल्लातकीशाखाप्रतिच्छन्नाः पंचभिः सप्तभिर्वा हस्तिबन्धकीभिः सह चरन्तः शय्यास्थानपद्मालेण्डकूलपातोद्देशेन हस्तिकुलपर्यग्रं विद्युः।

यूथचरमेकचर निर्यूथं यूथपति हस्तिनं व्यालं मत्तं पोतं वद्धमुक्तं च निबन्धेन विद्युः। अनीकस्थप्रमाणैः प्रशस्तव्यञ्जनाचारान् हस्तिनो गृह्णीयुः। हस्तिप्रधानो हि विजयो राज्ञाम्। परानीकव्यूहदुर्गस्कन्धावारप्रमर्दना ह्यतिप्रमाणशरीराः प्राणहरकर्माणो हस्तिन इति।

हस्तिवन का, रक्षक, महावत, हाथी के पाँवों को बांधने में कुशल, सीमाविज्ञ, वनवासी एवं हस्ति-कार्य में चतुर व्यक्तियों को साथ ले और हाथी के मूत्र-विष्ठा को शरीर में ल्हेस कर भल्लातक और वासा की शाखाओं से अपने शरीर को ढके। फिर पाँच-सात हाथियों को आकर्षित करने वाली हथिनियों के साथ घूमता हुआ, हाथी के शयन या ठहरने के स्थान पर उसके पांवों के चिन्हों के सहारे से जाय अथवा उसके मल-मूत्र के स्थान या नदियों के किनारे ढहाने के स्थान में जाकर उनके यूथ को खोजे। यूथ के रूप में चलने वाले, एकाकी चलने वाले, यूथ से रहित रहने वाले, यूथधिपति, क्रूर, मन्दोन्मत्त, बन्धन में पड़कर भी भाग जाने वाले या हाथियों के बालकों आदि की पृथक् पृथक् गणना करके उनका लेखा रखने की व्यवस्था करे। सेना में जो हाथियों के विशेषज्ञ हों, उनके निर्देशानुसार श्रेष्ठ आचरण वाले हाथियों को पकड़ना चाहिए। क्योंकि हाथियों से सुसज्जित हुई प्रमुख सेना के पराक्रम में राजा की विजय निहित होती है और यह हाथी शत्रु की सेना, व्यूह, दुर्ग आदि युक्त स्कंधावार (छावनी) को नष्ट करने में चतुर एवं विशाल डील-डौल के होते हैं। इसलिए हाथी जितने शीघ्र शरीर से प्राण का हरण करते हैं, उतने शीघ्र सेना का कोई अन्य जीव नहीं कर सकता।

कालिङ्गाङ्गगजाः श्रेष्ठाः प्राच्याश्चेति करूशजाः ।
दशार्णाश्चापरान्ताश्च द्विपानां मध्यमा मताः ॥१
सौराष्ट्रिकाः पाञ्चनदाः तेषां प्रत्यवराः स्मृताः ।
सर्वेषां कर्मणा वीर्यं जवस्तेजश्च वर्धते ॥२

कलिंग, अङ्ग और पूर्वीय करूश देश में जन्मे हुए हाथी श्रेष्ठ एवं दशार्ण और पश्चिम में उत्पन्न हुए हाथी मध्यम माने गये हैं। सौराष्ट्र और पंजाब आदि में जन्मे हुए हाथियों की निम्न कोटि होती है। किन्तु भले प्रकार सिखाने से उनका बल, वेग और तेज अधिक प्रवृद्ध हो सकता है ॥१-२॥

तृतीयोऽध्याय

दुर्गविधानम्

चतुर्दिशं जनपदान्ते साम्परायिकं दैवकृतं दुर्गं कारयेत् । अन्तर्द्वीपं स्थलं वा निम्नावरुद्धमौदकं प्रास्तरं गुहां वा पार्वतं निरुदकस्तम्बमिरिणं वा धान्वनंखंजनो .कं स्तम्बगहनंवा वनदुर्गम् तेषांनदीपर्वतदुर्गं जनपदारक्षस्थानं धान्वनवदुर्गमटवीस्थानम् । आपद्यपसारो वा ।

अपने देश की सीमाओं पर दैवकृत पर्वत आदि दुर्गम स्थानों को राजा दुर्गरूप में परिवर्तित कर दे। औदक दुर्ग अर्थात् जल से घिरे हुए दुर्ग दो प्रकार के होते हैं—(१) जल के मध्य कोई स्वाभाविक द्वीप और (२) गहरी खोदी गई जल से परिपूर्ण खाई से घिरा हुआ स्थान। विशाल पर्वतों या कन्दराओं से परिवेष्टित दुर्ग पर्वतदुर्ग और सब ओर दलदल एवं काँटेदार झाड़ियों से घिरा वनदुर्ग कहा गया है। नदी दुर्ग और पर्वत दुर्ग से देश की सुरक्षा ठीक प्रकार होती है। वनों में धान्वनदुर्ग और वनदुर्गों का निर्माण होता है। यह दुर्ग आपादकालीन स्थिति में राजा द्वारा भाग कर आत्मरक्षा करने के लिए उपयोग में लाये जाते हैं।

जनपदमध्ये समुदयस्थानं स्थानीयं निवेशयेत् । वास्तुकप्रशस्ते देशे नदीसंगमे ह्रदस्य वाऽविशोषस्यांके सरसस्तटाकस्य वा वृत्तं दीर्घं चतुरस्रं वा वास्तुकवशेन प्रदक्षिणोदकं पण्यपुटभेदनमंसवारिपथाभ्यामुपेतम् । तस्य परिखास्तिस्रो दण्डान्तराः कारयेत् । चतुर्दश द्वादश दशेति दण्डान्विस्तीर्णा विस्तारादवगाधाः पादोनमर्धं वा त्रिभागमूला मूले चतुरस्राः पाषाणोपहिताः पाषाणेष्टकाबद्धपार्श्वा वा तोयान्तिकीरागन्तुतोयपूर्णा वा सपरिवाहाः पद्मग्राहवतीश्च ।

आठ सौ ग्रामों में एक स्थानीय सञ्ज्ञक विशिष्ट नगर की रचना जनपद के मध्य में करे, जो कि राजा का धन-वसूली का स्थान भी हो। वास्तुविद्या विशेषज्ञों के अनुसार ऐसा नगर किसी प्रशस्त स्थान पर, नदी के संगमस्थल के समीप अथवा जलपूर्ण बड़े जलाशय के तट पर या किसी पद्मयुक्त तड़ाग के मध्य में बनवाये। उस नगर को वास्तुस्थिति के अनुसार गोल, चौकोर या लम्बा रखे। नगर के चारों ओर जलयुक्त नदी का प्रवाह अथवा जल से परिपूर्ण खाई अवश्य रहे। उस नगर में चारों ओर की उत्पादित वस्तुएँ लाकर संग्रह करने और क्रय-विक्रय करने की पूर्ण सुविधाएँ रहें तथा उसका सम्पर्क जल थल मार्गों से रखा जाय। नगर के चारों ओर एक-एक दंड (चार-चार हाथ) के अन्तर पर तीन खाइयाँ हों जो क्रमशः चौदह दंड, बारह दंड और दस दंड चौडी तथा इससे पौन या आधी गहराई रहे अथवा चौड़ाई का तिहाई भाग ही गहराई रखे। उन खाइयों का तल भाग चौकोर एवं पाषाण बिछा कर पक्का करदे तथा उनकी भित्ती भी पाषाणादि से पक्की बनावे। वे खाइयाँ या तो इतनी गहरी खुदी हों कि उनमें पृथिवी के भीतर से जल स्वयं निकल आये अथवा किसी नदी आदि से उनका सम्बन्ध करके उन्हें जल से परिपूर्ण कर दे। उन खाइयों में जल निकलने का मार्ग भी रहे तथा वे पद्म एवं ग्राह या मत्स्यादि जल-जन्तुओं से युक्त भी रहें।

चतुर्दण्डावकृष्टं परिखायाः षड्दण्डोच्छ्रितमवरुद्धं तद्द्विगुणविष्कम्भं खाताद्वप्रं कारयेत्। ऊर्ध्वचयं मञ्चपृष्ठं कुम्भकुक्षिकं वा हस्तिभिर्गोभिश्च क्षुण्णं कण्टकिगुल्मविषवल्लीप्रतानवन्तं पांसुविशेषेण वास्तुच्छिद्रं वा पूरयेत्। वप्रस्योपरि प्राकारं विष्कम्भद्विगुणोत्सेधमैष्टकं द्वादशहस्तादूर्ध्वमोजं युग्मं वा आचतुर्विंशतिहस्तादिति कारयेत्।

खाइयों से चार दण्ड हट कर एक छः दण्ड ऊँचा, नीचे से सुदृढ़ आठ दण्ड के तल वाला एक वड़ा वप्र अर्थात् बाँध बनावे। यह वप्र तीन प्रकार के होते हैं—(१) ऊर्ध्वचय, (२) मंचपृष्ठ और (३) कुम्भकुक्षिक, जो कि क्रमशः ऊँचे, मध्यम और अत्यन्त सुदृढ़ होते हैं। इनका निर्माण कराते समय इनकी मिट्टी को वृषभों और हाथियों द्वारा खूब खुँदवा-खुँदवा कर सुपुष्ट कर दे। उनके ऊपर काँटेदार झाड़ियाँ और विषैली लताएँ आरोपित करे। वप्र बनने से बची हुई मृत्तिका को समीपस्थ गढ़ों को भरने में लगावे। ऊँचे वप्र पर प्रथम वप्र से द्विगुणित ऊँचे विस्तार वाली एक प्राकार पक्की इंटों से निर्मित करे। इसकी ऊँचाई के न्यूनतम और अधिकतम प्रमाण के विषय में कहते हैं कि बारह हाथ से अधिक तेरह या पन्द्रह हाथ विषम संख्यक हो अथवा सोलह हाथ हो। अधिकतम ऊँचाई चौबीस हाथ तक होनी चाहिए।

रथचर्यासंचारं तालमूलमुरजकैः कपिशीर्षकैश्चाचिताग्रं पृथुशिलासहितं वा शैलं कारयेत्। न त्वेव काष्ठमयम्। अग्निरवहितो हि तस्मिन् वसति। विष्कम्भचतुरस्रमट्टालकमुत्सेधसमावक्षेपसोपानं कारयेत्। त्रिंशद्दण्डान्तरं च। द्वयोरट्टालकयोर्मध्ये सहर्म्यद्वितलामध्यर्धायामां प्रतोलीं कारयेत्। अट्टालकप्रतोलीमध्ये त्रिधानुष्काधिष्ठानं सापिधानच्छिद्रफलकसंहतं मितोन्द्रकोशं कारयेत्।

उस प्राकार की तल-मूल (नींव) इतनी बड़ी हो, जितनी पर कि एक रथ पर बैठा हुआ रथी उस पर चल सके। उसका अगला भाग

ताड़-मूल जैसा, मृदंग जैसा अथवा बन्दर के सिर जैसा हो। ईंट न हों तो पत्थर से ही प्राकार-रचना करे, किन्तु काष्ठ से न बनावे। क्योंकि काष्ठ में सदैव अग्नि का वास रहना मानते हैं। उस प्राकार पर भव्य अट्टालिकाएँ निर्मित करानी चाहिये। उनका विस्तार और ऊँचाई समान रख कर अस्थायी सीढियाँ ऊपर चढ़ने के लिए बनाई जाँय। प्रत्येक अट्टालिका की पारस्परिक दूरी तीस दण्ड रहे और प्रति दो अट्टालिका के मध्य में रथ चलने के योग्य वीथि बनी हो। उसके इधर-उधर दो मंजिला एक अट्टालक के एवं प्रतोली के मध्य में इन्द्रकोश नामक ऐसा स्थान रखे, जिस पर तीन धनुर्धारी रक्षक सुख पूर्वक रह सकें। उसमें अनेक छेदों वाला काष्ठ का एक तख्ता इस प्रकार लगाये, जिसकी आड़ में छिपे वे धनुर्धारी आने वाले शत्रुओं को छेदों में से देख कर तीर चला सकें।

अन्तरेषु द्विहस्तविष्कम्भं पार्श्वे चतुर्गुणायामनुप्राकारमष्टहस्तायतं देवपथं कारयेत्। दण्डान्तरा द्विदण्डान्तरा वा चार्याःकारयेत्। अग्राह्यदेशे प्रधावितिकां निष्कुहद्वारं च। बहिर्जानुभंजनी त्रिशूलप्रकरकूपकूटावपातकण्टकप्रतिसराहिपृष्ठतालपत्र श्रृङ्गाटकश्वदंष्ट्रार्गलोपस्कन्दनपादुकाम्बरीषोदपानकैश्छन्नपथं कारयेत्।

अट्टालक, प्रतोली और इन्द्रकोश के मध्य दो हाथ चौड़ा और प्राकार के पार्श्व में आठ हाथ चौड़ा देवपथ नामक एक गुप्त मार्ग रखे तथा चार हाथ या आठ हाथ चौड़ा एक आवागमन मार्ग प्रत्यक्ष रूप से भी बनाये। उसके एक भाग में, जो बाहर के व्यक्तियों को दिखाई न दे, शत्रु के बाणों से बचने के लिए एक आवरण निर्मित करे। शत्रु के कार्य-कलाप पर दृष्टि रखने के लिए उपयोगी झरोखे और मार्ग विशेष भी बनावे। बाह्य द्वार में प्रविष्ट होने के मार्ग में जानु-भंजनी, त्रिशूल, कूपकूट अवपात, कंटकाकीर्ण लौह-जाल, अहिपृष्ठ, श्वान दंताकार लौह शूल, लौहदण्ड, उपस्कन्दन (फिसलन युक्त काष्ठ), पादुका (कीचड़ युक्त गढ़ा जिसमें पाँव फँस जाय, गुप्त भाड़ और उपदान अर्थात् कींच युक्त मैले

जल से युक्त गढ़ा) इन्हें दुर्ग-द्वार पर इस प्रकार बनावे, जिनके ढंके रहने से अनजान शत्रु विपत्ति में पड़ जाय।

प्राकारमुभयतो मण्डपकमध्यर्धदण्डं कृत्वा प्रतोलीषट्तलान्तरं द्वारं निवेशयेत्। पंचदण्डादेकोत्तरवृद्धयाऽष्टदण्डादिति चतुरस्रं द्विदण्डं वा। षड्भागायामादधिकमष्टभागं वा। पंचदशहस्तादेकोत्तरमष्टादशहस्तादिति तलोत्सेधः। स्तम्भस्य परिक्षेपाः षडायामा द्विगुणो निखातः चूलिकायाश्चतुर्भागः। आदितलस्य पंचभागाः शालावापी सीमागृहं च। दशभागिकौ समत्तवारणौ द्वौ प्रतिमञ्चौ अन्तरमाणिः। हर्म्यं च समुच्छ्रयादर्धतलं स्थूणावबन्धश्च।

प्राकार के उभय ओर छः हाथ का मण्डप एवं प्रतोली का आधाररूप छः स्तम्भों से युक्त चौकोर द्वार निर्मित करावे। उनका विस्तार बीस हाथ से बत्तीस हाथ तक अथवा आठ हाथ का ही हो। उसकी ऊंचाई चौड़ाई से छः गुनी या आठ गुनी हो। अथवा पन्द्रह से अठारह हाथ तक की ऊंचाई स्तम्भ अथवा द्वार की हो। उनमें से चार स्तम्भों की मोटाई उनकी ऊंचाई का छटवां भाग रहे। स्तम्भों की मोटाई का द्विगुणित भाग भूमि में दबा रहे और स्तम्भ का ऊपरी भाग भी उसकी मोटाई से चौथाई रहे। निचली मंजिल के पाँचवें अंश में वापी, शाला और सीमागृह रखे। उसके दशम अंश में पाषाण के दो मदमत्त आकृति के हाथी एवं उन हाथियों के समक्ष दो मंच निर्मित करें। शाला और सीमागृहों में क्षुद्र द्वार रखे। ऊपरी मंजिल में चन्द्र-शाला संज्ञक भवन प्रथम मंजिल के आकार से आधे परिमाण में बनावे, जो कि लघु स्तम्भों के आधार पर टिका हो।

आर्धवास्तुकमुत्तमागारं त्रिभागान्तरं वा। इष्टकावबद्धपार्श्वम्। वामतः प्रदक्षिणसोपानम्। गूढभित्तिसोपानमितरतः। द्विहस्तं तोरणशिरः, त्रिपंचभागिकौ द्वौ कवाटयोगौ, । द्वौ द्वौ परिघौ, अरत्निरिन्द्रकीलः, पंचहस्तमाणिद्वारं, चत्वारो हस्ति-

परिघाः। निवेशार्थं हस्तिनखो मुखसमः। संक्रमोऽसंहार्यो वा भूमिमयो वा निरुदके। प्रकारसमं मुखमवस्थाप्य त्रिभागगोधामुखं गोपुरं कारयेत्।

उत्तमागार अर्थात् तीसरी मंजिल का भाग छः हाथ ऊँचा अथवा बीस हाथ ऊँचे द्वार के तिहाई परिमाण का होगा, जिसका पार्श्वभाग ईंटों से बने और बाँयी ओर चक्करदार सीढ़ियाँ हों। दाँये ओर भी सीढ़ियां रहें, किन्तु वे दीवार आदि से आवृत अर्थात् छिपी रहें। तोरण का गुम्बज दो हाथ का रहे, जिससे तीन या पाँच काष्ठ खण्डों के दो किवाड़ बनावे। उन किवाड़ों को बन्द करने के लिये दो अर्गला हों और किवाड़ की कीली का प्रमाण एक हाथ का हो। दोनों किवाड़ों के मध्य एक क्षुद्र द्वार रखे और मुख्य द्वार इतना विशाल हो, जिसमें कि पाँच हाथियों का आवागमन हो सके। उस फाटक में चार हस्तिपरिघ (विशाल अर्गल) लगाये जाँय। द्वार-निवेश से आधा ऊँचा और द्वार के समान चौड़ा हस्तिनख नामक ढलवाँ सोपान रहे तथा दुर्ग में जाने-आने का मार्ग काष्ठ-स्तम्भ आदि के सहारे सुदृढ़ बनावे। यदि भूमि जल-रहित स्थान में दुर्ग बने तो आवागमन का मार्ग मिट्टी से ही बनवाले। प्राकार के विस्तार के अनुसार के अनुसार ही दुर्ग से निकलने के मार्ग पर गोह के मुख की आकृति का स्थापित करे।

प्राकारमध्ये कृत्वा वापीं पुष्करिणीद्वारं, चतुःशालमध्यर्धान्तराणिकं कुमारीपुरं, मुण्डहर्म्यं द्वितलं मुण्डकद्वारं। भूमिद्रव्यवशेन वा, त्रिभागाधिकायामा भाण्डवाहिनीः कुल्याः कारयेत्।

तासु पाषाणकुद्दालकुठारीकाण्डकल्पनाः।
मुसण्ठिमुद्गरा दण्डचक्रयंत्रशतघ्नयः॥ ॥१
कार्याः कार्मारिकाः शूला वेधनाग्राश्च वेणवः
उष्ट्रग्रीव्योऽग्निसंयोगाः कुप्यकल्पे च यो विधिः॥२

प्राकार में जो वापी बने, उस पर पुष्करिणी संज्ञक एक द्वार रहे। क्षुद्र द्वार के परिमाण से डयौढ़े विस्तार की चार शालाएँ और कुमारीपुर नामक द्वार बनावे। फिर कंगूरों से रहित दो मंजिला भवन एवं मुण्डक संज्ञक द्वार निर्माण करे अथवा अपनी भूमि या वित्तीय विस्तार के अनुरूप ही द्वार आदि की कल्पना करे। विस्तार परिमाण के तिहाई से कुछ बड़े प्रमाण की नौकाएँ तथा जिनमें द्रव्यादि का यातायात हो सके, वैसी नदियाँ बनवाये। उन नदियों का उपयोग पाषाण, कुदाल, कुल्हाड़ी, कल्पना, मुसृण्ठि, मुद्गर, दण्ड, चक्र, यंत्र, शतघ्नी, लोहार के उपकरण, शूल भाले युक्त लाठी, उष्ट्रग्रीवी एवं आग्नेयास्त्र आदि सामान के लाने-लेजाने के कार्य में हो तथा वह दुर्ग कुप्याध्यक्ष प्रकरण में कहीं सामग्री मे सदा परिपूर्ण रहे ॥१-२॥

चतुर्थोऽध्यायः

दुर्गनिवेश

त्रयः प्राचीना राजमार्गास्त्रय उदीचीना इति वास्तुविभागः। स द्वादशद्वारो युक्तोदकभूमिच्छन्नपथः। चतुर्दण्डान्तरा रथ्याः। राजमार्गद्रोणमुखस्थानीयराष्ट्रविवीतपथाः संयानीयव्यूहश्मशानग्राम।शाश्चाष्टदण्डाः। चतुर्दण्डः सेतुवनपथः। द्विदण्डा हस्तिक्षेत्रपथः। पञ्चारत्नयो रथपथश्चत्वारः पशुपथो द्वौ शूद्रपशुमनुष्यपथः। प्रवीरे वास्तुनि राजनिवेशाश्चातुर्वर्ण्यसमाजीवे।

दुर्ग से पूर्व और पश्चिम की ओर तीन-तीन राज-मार्ग जाने चाहिए। वास्तु-निर्माण के विभाजन में कुल द्वादश द्वार रहें। उक्त छओं राजमार्गों के प्रान्तभाग में दो-दो द्वार होने से उनकी संख्या बारह रहेगी। दुर्ग में जलमार्ग, स्थल मार्ग और गुप्त सुरंगों के मार्ग तथा सोलह हाथ चौड़ी गलियाँ होगी। राजमार्ग, द्रोणमुख (चार सौ ग्रामों के मध्य भाग) को जाने वाला मार्ग, स्थानीय (आठ सौ ग्रामों के

मध्य) को जाने वाला मार्ग एवं राष्ट्र और जनपद में आवागमन के मार्ग, गोचरभूमि और व्यावसायिक केन्द्रों को जाने वाले मार्ग बत्तीस हाथ विस्तृत होने चाहिए। सेतुवन का पथ चार दण्ड चौड़ा, हस्तिवन का दो दण्ड चौड़ा, रथ मार्ग सवा दण्ड चौड़ा तथा गोचर भूमि का पथ एक दण्ड चौड़ा रहे, साथ ही बकरी आदि पशुओं और मनुष्यादि के चलने का मार्ग दो हाथ चौड़ा हो। राजा का भवन ब्रह्मादि चारों वर्णों के रहने योग्य स्थान में ही निर्मित होना चाहिए।

वास्तुहृदयादुत्तरे नवभागे यथोक्तविधानमन्तः पुरं प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा कारयेत्। तस्य पूर्वोत्तरं भागमाचार्यपुरोहितेज्यातोयस्थानं मन्त्रिणश्चावसेयुः। पूर्वदक्षिणं भागं महानसं हस्तिशाला कोष्ठागारं च। ततः परं गन्धमाल्यधान्यरसपण्याः प्रधानकारवः क्षत्रियाश्च पूर्वां दिशमधिवसेयुः। दक्षिणपूर्वं भागं भाण्डागारमक्षपटलं कर्मनिषद्याश्च। दक्षिणपश्चिमं भागं कुप्यगृहमायुधागारं च। ततः परं नगरधान्यव्यावहारिककार्मान्तिकबलाध्यक्षाः पक्वान्नसुरामांसपण्याः रूपाजीवास्तालावचरा वैश्याश्च दक्षिणां दिशमधिवसेयुः। पश्चिमदक्षिणं भागं खरोष्ट्रगुप्तिस्थानं कर्मगृहं च। पश्चिमोत्तरं भागं यानरथशालाः। ततः परमूर्णासूत्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारवः शूद्राश्च पश्चिमां दिशमधिवसेयुः। उत्तरपश्चिमं भागं पण्यभैषज्यगृहम्। उत्तरपूर्वं भागं कोशो गजाश्वं च। ततः परं नगरराजदेवतालोहमणिकारवो ब्राह्मणाश्चोत्तरां दिशमधिवसेयुः। वास्तुच्छिद्रानुशालेषु श्रेणीप्रवहणिकनिकाया आवसेयुः।

उस भवन के स्थान से उत्तर की ओर पृथिवी के नौवें भाग में विधिपूर्वक अन्तःपुर बनवाये, जिसका द्वार पूर्व या उत्तर की ओर मुख वाला रहे। उसके पूर्वी और उत्तरी भाग में आचार्य और पुरोहित के भवन, यज्ञशाला, जलगृह एवं मंत्रियों के निवास स्थान बनाये जाय तथा पूर्वी और दक्षिणी भाग में रसोईगृह, हाथीशाला एवं कोष्ठागार

रहे। उससे परे गन्ध, माला, धान्य, घृत-दुग्ध-दही आदि के विक्रय-स्थान और पूर्व की ओर मुख्य शिल्पी और शूरवीर क्षत्रियों के रहने के घर निर्मित हों। अन्तःपुर के दक्षिण और पूर्व में विभिन्न वस्तुओं के भन्डार, आय-व्यय गणक का कार्यालय एवं रत्न-स्वर्णादि मूल्यवान वस्तुओं के रत्नागार एवं दक्षिण तथा पश्चिम भाग में लौहादि धातुओं एव शस्त्रागारों का निर्माण हो। इससे आगे दक्षिण ओर अन्न आदि के व्यापारी, कर्मकार, सेनापति, हलवाई, मांस और मद्यविक्रेता, वेश्याएँ, ताल पर नाचने वाले नट तथा वणिकों के आवासगृह बनाये जाँय। दक्षिण-पश्चिम की ओर खच्चर, गर्दभ और ऊँटों का घेरा तथा उनके खरीदने-बेचने का स्थान एवं पश्चिम और उत्तर की ओर बैलगाड़ी आदि ठहरने के स्थान तथा रथशाला बनाई जाय। पश्चिम में ऊन निर्माता, वस्त्रकार, बाँस की वस्तुओं के कलाकार, चर्मकार, वर्मकार एवं शस्त्रों के आवरण बनाने वाले एवं शूद्रों को बसाया जाय। उत्तर पश्चिम में पण्यघर, औषधिघर एवं उत्तर-पूर्व में राजकोष, गोशाला और अश्वशाला बने। उत्तरी भाग में नगर देवता, राजवंश के देवता, लौहकार, मणिकार एवं ब्राह्मणों के आवासगृह हों। शेष स्थान में कहीं धोबी एवं कहार आदि के लिए रहने का स्थान है।

अपराजिताऽप्रतिहतजयन्तवैजयन्तकोष्ठान् शिववैश्रवणाश्वि-श्रीमदिरागृहं च पुरमध्ये कारयेत्। कोष्ठकालयेषु यथोद्देशं वास्तुदेवताः स्थापयेत्। ब्राह्मैन्द्रयाम्यसैनापत्यानि द्वाराणि बहिः परिखाया धनुःशतापकृष्टाश्चैत्यपुण्यस्थानवनसेतुबन्धाः कार्याः। यथादिशं च दिग्देवताः।

उत्तरः पूर्वो वा श्मशानवाटः, दक्षिणेन वर्णोत्तराणाम्। तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः। पाषण्डचण्डालानां श्मशानान्ते वासः। कर्मान्तक्षेत्रवशेन वा कुटुम्बिनां सीमानं स्थापयेत्। तेषु पुष्पफलवाटषण्डकेदारान् धान्यपण्यनिचयांश्च अनुज्ञाताः कुर्युः।

नगर के बीच में दुर्गा, विष्णु, जयन्त, वैजयन्त के अन्तर्गृह एवं शिव, कुबेर, अश्विद्वय, लक्ष्मी, मदिरादेवी आदि के भवन बनाये जाँय। उपर्युक्त अन्तर्गृहों में ही अनेक देशों में पूजित हुए वास्तु देवता की भी स्थापना करे। चारों दिशाओं में उत्तरादि के क्रम से क्रमशः ब्राह्मद्वार, ऐन्द्रद्वार, याम्यद्वार और कार्तिकेय-द्वार निर्मित हों। परिखाके बाह्य भाग में, दुर्ग से सौ धनुष या सौ दण्ड की दूरी पर चैत्य, पुण्य स्थान, अरण्य, एवं सेतुबन्ध बनावे। फिर उन-उन दिशाओं में उनके दिशा-देवताओं की स्थापना करे। नगर के उत्तर या पूर्व में श्मसान बने। हीनजाति वालों के लिए दक्षिण में श्मसान रहे। उस व्यवस्था को तोड़ने वालों को प्रथम साहस दण्ड दे। पाखण्डियों और चाण्डालों को श्मसान के समीप बसावे। कुटुम्बियों और सामान्य गृहस्थों के क्षेत्रादि के अनुसार भूमि-सीमा का निर्धारण करे। वहीं फल. फूलों के उद्यान, कमल एवं शाकादि उत्पन्न करने की भूमि, धान्य तथा अन्यान्य वस्तुओं का कृषि कर्म आदि राजाज्ञा से करना चाहिए।

दशकुलीवाटं कूपस्थानम्। सर्वस्नेहधान्यक्षारलवणभैषज्यशुष्कशाकयवसवल्लूरतृणकाष्ठलोहचर्माङ्गारस्नायुविषविषाणवेणुवल्कलसारदारुप्रहरणावरणाश्मनिचयाननेकवर्षोपभोगसहान् कारयेत्। नवेनानवं शोधयेत्। हस्त्यश्वरथपादातमनेकमुख्यमवस्थापयेत्। अनेकमुख्यं हि परस्परभयात्परोपजापं नोपैतीति। एतेनान्तपालदुर्गसंस्कारा व्याख्याताः।

न च बाहिरिकान्कुर्यात्पुरराष्ट्रोपघातकान्।
क्षिपेज्जनपदे चैतान् सर्वान् वा दापयेत्करान् ॥१

दस कुल (दो हलों द्वारा जोतने योग्य भूमि) परिमाण खेत में एक कुँआ सिचाई के लिए रहे। सब प्रकार के स्नेह, धान्य, क्षार, लवण, औषधि, शुष्क शाक, यवस, वल्लूर, तृण, काष्ठ, लौह, चर्म, अङ्गार, स्नायु, विष, विषाण, वेंत, वल्कल, सारदारु, प्रहरण, आवरण एवं पत्थरों का ढेर नगर के मध्य में अनेक वर्षों तक उपभोग में आने

योग्य रूप से संग्रह करें। यह वस्तुएं जैसे-जैसे नई मिलती जाँय, वैसे वैसे पुरानी का उपभोग करते रहें अर्थात् पुरानी वस्तु के स्थान पर नवीन वस्तु उपलब्ध होते ही संचय करे। गज, अश्व, रथ एवं पदाति सेना को अनेक सैनिक अधिकारियों के नियंत्रण में नगर के मध्य में ही रखे, क्योंकि अनेक अधिकारियों के नियंत्रण के कारण परस्पर भय से भीत रहते हुए सैनिकगण शत्रु के गुप्तचरों द्वारा नहीं फूट पाते। इस प्रकार यह अन्तपाल आदि एवं दुर्ग [illegible]ार विषयक व्याख्या की गई। नगर के भीतर कभी बाह्यिरिक ([illegible], नर्त्तक, धूर्त्त आदि) को न रहने दे, क्योंकि यह लोग पुर, राष्ट्र और जनपद के कार्यों को नष्ट करने वाले होते हैं। यदि चाहे तो ऐसे लोगों को सीमा पर बसा कर उनसे भी राज्य कर वसूल करे।

पञ्चमोऽध्यायः

सन्निधातृ निचयकर्म

सन्निधाता कोशगृहं पण्यगृहं कोष्ठागारं कुप्यगृहमायुधागारं बन्धनागारं च कारयेत्। चतुरस्रां वापीमनुदकोपस्नेहां खानयित्वा पृथुशिलाभिरुभयतः पार्श्वंमूलं च प्रचित्य सारदारुपंजरं भूमिसमं त्रितलमनेकविधानं कुट्टिमदेशस्थानतलमेकद्वारं यन्त्रयुक्तसोपानं देवतापिधानं भूमिगृह कारयेत्। तस्योपर्युभयतो निषेधं सवप्रग्रीवमैष्टकं भाण्डवाहिनीपरिक्षिप्तं कोशगृह कारयेत्, प्रासादं वा।

सन्निधाता को (राज्यकोषाधिकारी) कोषागार, विक्रय भण्डार, खाद्यान्न भंडार, काष्ठभण्डार, शस्त्रागार, कारागार, आदि का निर्माण कराना चाहिए। कोषागार के लिए प्रथम एक चोकोर गढ़ा वापी के रूप में खुदवा कर यह देखे कि वहाँ जल या शील का तो अधिक भय नहीं है। इस प्रकार जल रहित स्थान के गड़े को चारों ओर से

मोटे-मोटे पाषाणों से चुन कर दीवार बनावे और उसके भूतल को भी पाषाणों से सुदृढ़ करके और काष्ठ से पाट कर तीन मंजिला तहखाना निर्मित करे, जिसमें कि केवल एक ही द्वार हो तथा उसकी सीढ़ियों को इस प्रकार से यंत्र-युक्त रखे, जिससे कि आवश्यक होने पर उन्हें हटाने या पुनः लगाने में कोई कठिनाई न हो। उस पर ढक्कन के रूप में कोई देवमूर्ति स्थापित की जाय। इस तहखाने वाले भवन के ऊपरी भाग में पक्की ईंटों से कोषाकार एव कार्यालय के लिए प्रासाद बनाना चाहिए, जिसमें झरोखे भी हों। इस कोषागार के चारों ओर ऐसी नदी भी रहे, जिसमें कि नौका चलाई जा सके।

जनपदान्ते ध्रुवनिधिमापदर्थमभित्यक्तैः पुरुषैः कारयेत्। पक्वेष्टकास्तम्भं चतुःशालमेकद्वारमनेकस्थानतलं विवृतस्तम्भापसारमुभयतः पण्यगृहं कोष्ठागारं च। दीर्घबहुलशालं कक्ष्यावृतकुड्यमन्तः कुप्यगृहं तदेव भूमिगृहयुक्तमायुधागारं पृथग्धर्मस्थीयं महामात्रीयं विभक्तस्त्रीपुरुषस्थानमपसारतः सुगुप्तकक्ष्यं बन्धनागारं स्थापयेत्।

विपत्ति के समय कार्योपयोगी एवं स्थायी निधि रूप एक ऐसे प्रासाद का निर्माण सन्निधाता को कराना चाहिए जो जनपद की सीमा पर हत्या आदि के अपराधियों एवं समाज से परित्यक्त व्यक्तियों द्वारा निर्मित किया जाय। पकी हुई ईंटों से बनाये गये स्तम्भों से युक्त एक चतुः शाल जिसके चारों ओर भव्य गृह हो, इस प्रकार का पण्यागार और कोष्ठागार भी बनाया जाय। उसका भूमितल सुदृढ़ हो, अनेक कक्ष और एक ही द्वार रहे। उसके दोनों ओर अनेक स्तम्भों वाले बरामदे हों। उसी में एक सुदृढ़ प्राचीर वाला कुप्य भवन रहे, जिसमें अनेक विशाल कक्ष एवं बरामदे हों तथा साथ ही एक भूमिगत कक्ष युक्त शस्त्रागार भी रहे। उसी स्थान पर धर्माधिकारी एवं अन्यान्य महामन्त्रों या न्यायाधीशों के द्वारा दण्डित व्यक्तियों के लिए पृथक्-पृथक् वन्दीगृह बनवाये, जिनमें कि स्त्री, पुरुष एवं विभिन्न

अपराधों के अपराधी पृथक्-पृथक् रह सकें। साथ ही गोपनीय कक्ष (काल कोठरी) बनाई जांय।

सर्वेषां शालाखातोदपानवच्च स्नानगृहाग्निविषत्राणमार्जारनकुलारक्षाः स्वदैवपूजनवृत्ताः कारयेत्। कोष्ठागारे वर्षमानमरत्निमुखं कुण्डं स्थापयेत्। तज्जातिकरणाधिष्ठितः पुराणं नवं च रत्नं सारं फल्गु कुप्य वा प्रतिगृह्णीयात्। तत्र रत्नोपधावुत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुश्च। सारोपधौ मध्यमः। फल्गुकुप्योपधौ तच्च तावच्च दण्डः। रूपदर्शकविशुद्धं हिरण्यं प्रतिगृह्णीयात्। अशुद्धं छेदयेत्। आहर्तुः पूर्वः साहसदण्डः।

इन सब आगारों के लिए शाला, परिखा, कूप स्नान घर अग्नि एवं विष से रक्षा के उपाय, बिलाव और न्यौले आदि के रखने की तथा सैनिकों के द्वारा रक्षा से सम्बन्धित सभी व्यवस्थाएं विभिन्न देवताओं की पूजा द्वारा पूरी करावे, वर्षा को नापने के लिए कोष्ठागार में एक हाथ परिमाण मुख वाला एक कुण्ड बनावे। विभिन्न व्यवहारों के ज्ञाता पुरुषों के सहयोग से सन्निधाता विभिन्न पदार्थों को परख कर, रत्नादि द्रव्य चन्दनादि सार द्रव्य, वस्त्रादि फल्गुद्रव्य तथा कुप्य द्रव्यादि को संचित करे। यदि कोई बनावटी रत्नादि देकर राजकोष को ठगे तो उसे उत्तम साहस का दण्ड तथा सार द्रव्य नकली हो तो मध्यम साहस का दण्ड दे। यदि फल्गु द्रव्य या कुप्य द्रव्य के द्वारा ठगे तो उससे उस वस्तु को असली और श्रेष्ठ लाने के आदेश के साथ उतने ही मूल्य का अर्थ-दण्ड और करे। मुद्रा परीक्षक द्वारा परीक्षा करानें के पश्चात् ही सन्निधाता को मुद्रा लेनी चाहिए। अशुद्ध अथवा नकली मुद्रा प्रतीत हो तो उसे कतरनी से काट दे, जिससे कि वह व्यवहार-योग्य न रहे। नकली मुद्रा लाने वाले व्यक्ति पर प्रथम साहस दण्ड भी करना चाहिए।

शुद्धं पूर्णमभिनवं च धान्यं प्रतिगृह्णीयात्। विपर्यये मूलद्विगुणो दण्डः। तेन पण्यं कुप्यमायुधं च व्याख्यातम् सर्वाधिकर-

णेषु युक्तोपयुक्ततत्पुरुषाणां पणद्विपणचतुष्पणाः, परमापहरेषु पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः। कोशाधिष्ठितस्य कोशावच्छेदे घातः। तद्वैयावृत्यकाराणामर्धदण्डः। परिभाषणमवज्ञाते। चोराणामभिप्रधर्षणे चित्रो घातः। तस्मादाप्तपुरुषाधिष्ठितः सन्निधाता निचयाननुतिष्ठेत्।

बाह्यामाभ्यन्तरं चायं विद्याद्वर्षशतादपि।
यथा पृष्टो न सज्जेत व्ययशेषं च दर्शयेत् ॥१

राज्य के अन्न भंडार में संग्रह करने के लिए धान्याधिकारी को शुद्ध, समुचित भारयुक्त एवं नवीन धान्य ले। यदि देने वाला खराब धान्य दे अथवा ग्रहण करने वाला उसे स्वीकार कर ले तो यह दोनों ही दण्ड के अधिकारी हैं। यह दण्ड उस अन्न के मूल रूप से देय धन का द्विगुण होना चाहिए। इसी से पण्य कुप्य और आयुध की भी व्याख्या हुई समझे। सभी प्रकार के अधिकरण में कार्यकारी युक्त (प्रमुख), उपयुक्त (उपप्रमुख) एवं उनके सहायक अधिकारीगण यदि राजद्रव्य की वंचना करे तो उन्हें क्रमशः एक पण, दो पण, तथा चार पण का दण्ड दे। यदि वे प्रथम अपराध के पश्चात् भी अपराध करते हुए पकड़े जाँय तो उन्हें क्रमशः प्रथम साहस, मध्यम साहस और उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। इतने पर भी न मानें और फिर भी पकड़े जाते रहें तो मृत्यु दण्ड के अधिकारी समझने चाहिए। राज्य-कोषाधिकारी ही यदि कोश को नष्ट करे या उसे किसी प्रकार से हानि पहुंचाये तो वह भी वध दण्ड के योग्य है। यदि प्रमुख अधिकारी का सहायक अधिकारी या अन्य कोई सेवक अपराधी पाया जाय तो उसे आधा दण्ड देना चाहिए। यदि कोश नष्ट करने वाला अपराध सिद्ध न हो सके तो भर्त्सना करके ही मुक्त कर दे। यदि कोई चोर राज कोश को काट कर चोरी करता पकड़ा जाय चित्रघात अर्थात् तड़पाते हुए मृत्यु का दण्ड दे। इस प्रकार सन्निधाता को विश्वस्त पुरुषों की सहायता से कोष-संग्रह और रक्षा की व्यवस्था करनी

चाहिए। उसे वाह्याभ्यंतर अर्थात् जनपद और नगर से प्राप्य आय का पूर्ण ज्ञान रहना चाहिए। यदि सौ वर्ष पूर्व की आय के विषय में भी उससे प्रश्न किया जाय तो तुरन्त उत्तर दे सके तथा व्यय के पश्चात् शेष रहे धन को भी उसी समय दिखा सके अर्थात् रोकड़ बाकी में किंचित् भी फर्क न रहे ॥१॥

षष्ठोऽध्यायः

समाहर्तृ समुदयप्रस्थापन

समाहर्ता दुर्गं राष्ट्रं खनिं सेतुं वनं व्रजं वणिक्पथं चावेक्षेत। शुल्कं दण्डः पौतवं नागरिको लक्षणाध्यक्षो मुद्राध्यक्षः सुरा सूना सूत्रं तैलं घृतं क्षारः सौवर्णिकः पण्यसंस्था वेश्या द्यूतं वास्तुकं कारु-शिल्पिगणो देवताध्यक्षो द्वारबाहिरिकादेयं च दुर्गम्। सीता भागो बलिः करो वणिक् नदीपालस्तरो नावः पट्टनं विवीतं वर्तनी रज्जूश्चोररज्जूश्च राष्ट्रम्।

समाहर्ता (मालगुजारी वसूल करने वाला अधिकारी) दुर्ग, राष्ट्र, खान, सेतु, वन, व्रज एवं व्यावसायिक केन्द्रों का सदा अवलोकन करता रहे। शुल्क, दण्ड, पौतव (तुला आदि), नगराध्यक्ष, लक्षणाध्यक्ष, मुद्राध्यक्ष, सुराध्यक्ष, सूनाध्यक्ष, सूत्र, तैल घृत, क्षार, लवण एवं स्वर्णादि का विक्रय केन्द्र, वेश्याघर, द्यूतघर, घर बनाने वाले राज, शिल्पी, देवस्थानाध्यक्ष, तथा नगर और जनपद से प्राप्त होने वाला द्रव्य—इस प्रकार, उपर्युक्त के द्वारा प्राप्त होने वाले धन को 'दुर्ग' कहते हैं। अब राष्ट्र संज्ञक धन को कहते हैं—सीताध्यक्ष, भाग, बलि, कर, वणिक्, नदीपाल, तर (मल्लाह) नौकाध्यक्ष, पट्टन (नदीतट पर बसी हुई छोटी बस्ती), गोचर भूमि का अधिकारी, सीमापाल द्वारा संचित मार्ग कर, रज्जु और चोर रज्जु—इन तेरह उपायों से प्राप्त होने वाला धन ही 'राष्ट्र' कहा जाता है।

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालशंखलोहलवणभूमि प्रस्तररस-धातवः खनिः । पुष्पफलवाटषण्डकेदारमूलवापाः सेतुः । पशुमृग-द्रव्यहस्तिवनपरिग्रहो वनम् । गोमहिषमजाविकं खरोष्ट्रमश्वाश्वत-राश्च व्रजः । स्थलपथो वारिपथश्च वणिक्पथः । इत्यायशरीरम् ।

मूलं भागो व्याजी परिधः क्लृप्तं रूपिकमत्ययश्चायमुखम् । देवपितृपूजादानार्थं स्वस्तिवाचनमन्तःपुरं महानसं दूतप्रावर्तनं कोष्ठागारमायुधागारं पण्यगृहं कुप्यगृह कर्मान्तो विष्टिः पत्त्यश्व-रथद्विपपरिग्रहो गोमण्डलं पशुमृगपक्षिव्यालवाटाः काष्ठतृणवाटा-श्चेति व्ययशरीरम् ।

स्वर्ण, रजत, हीरा, मणि, मुक्ता, प्रवाल, शंख, लौह, लवण, पाषाण, भूमि से निकलने वाली धातु और रसधातु से प्राप्त धन 'खनि' कहा गया है। पुष्पोद्यान, फलोद्यान, षण्ड (नारियल-केला आदि), केदार (धान की कृषि) एवं मूलवाप अर्थात् अदरक आदि की खेती—इन पाँच प्रकारों से प्राप्त धन 'सेतु' होता है। पशुवन, मृगवन, द्रव्यवन और हस्ति-वन से उपलब्ध धन को 'वन' कहते हैं। गौ, भैंस, बकरी, भेड़. गधा, ऊँट, अश्व और खच्चर—इन आठ से प्राप्त धन 'व्रज' होता है। स्थल-पथ और जलपथ से प्राप्त आय को 'वणिक्पथ' कहते है। आय के सभी साधन सम्मिलित रूप से 'आय शरीर' कहे जाते हैं। मूल. भाग, व्याजी, परिघ, क्लृप्त, रूपिक और अत्यय से उपलब्ध आय को 'आयमुख' कहा है। अब चौवीस प्रकार के व्यय का विवरण देते हैं—देवपूजा, पितृपूजा, दान, स्वस्तिवाचन, अन्तःपुर, रसोईशाला, परदेश में दूतावास शस्त्रा-गार, पण्यागार, कुप्यागार, कर्मागार, विष्टि, पदाति, अश्व, रथ, हाथी, गवादि पशु, पशु-वाड़ा, पक्षि-वाड़ा, सर्पसिंह आदि का वाड़ा, काष्ठवाट एवं तृणवाट इन सब पर होने वाले व्ययों को 'व्ययशरीर' कहा गया है।

राजवर्षं मासः पक्षो दिवसश्च व्युष्टम् । वर्षाहेमन्तग्रीष्माणां तृतीयसप्तमा दिवसोनाः पक्षाः, शेषाः पूर्णाः । पृथगधिमासक इति कालः ।

करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवी च । संस्थानं प्रचारः शरीरावस्थापनमादानं सर्वसमुदयपिण्डः संजातमेतत्करणीयम् ।

कोशार्पितं राजहारःपुर व्ययश्च प्रविष्टं परमसंवत्सरानुवृत्तं शासनमुक्तं मुखाज्ञप्तचापा तनीयमेतत्सिद्धम् ।

राजा के राज्याभिषेक के समय से प्रारम्भ वर्ष, मास, पक्ष एवं दिवस—यह सब 'व्युष्ट' कहे गये हैं । राजवर्ष के वर्षा, हेमन्त और ग्रीष्म ऋतुओं के रूप में तीन विभाग किये हैं तथा इस प्रकार चार मास के एक विभाग को आठ भाग में विभाजित करने पर एक पक्ष होता है । प्रत्येक भाग के आठ पक्षों में तीसरे और सातवें पक्षों का एक-एक दिन घटा कर चौदह दिन रखे जाते हैं और शेष पक्ष पन्द्रह दिन के होते हैं । इसके अतिरिक्त एक अधिक मास की भी कल्पना की गई है, जिससे कि दोनों की घट-बढ़ को गणना में ठीक करने की दृष्टि से लगभग ढाई वर्ष बाद, उस वर्ष में तेरह मास पड़ जाते हैं । वह बढ़ा हुआ महीना ही अधिक मास कहा जाता है । राजसभाओं में की जाने वाली काल गणना इसी प्रकार होती है । करणीय, सिद्ध, शेष, आय, व्यय, और नीवी की व्यवस्था समाहर्त्ता करता है । उनमें संस्थान, प्रचार, शरीरावस्थापन, आदाय, सर्वसमुदयपिण्ड और संजात के भेद से करणीय के छः प्रकार माने गये हैं । इसी प्रकार कोशार्पित, राजहार और पुरव्यय संज्ञक धन 'प्रविष्ट' और परमसंवत्सरानुवृत, शासनमुक्त और मुखाज्ञप्त संज्ञक धन 'आपातनीय' कहे जाते हैं तथा प्रविष्ट और आपातनीय रूपी छओं प्रकार के धनों को 'सिद्ध' कहा गया है ।

सिद्धिप्रकर्मयोगो दण्डशेषमाहरणीयं बलात्कृतप्रतिस्बधमवसृष्टं च प्रशोध्यमेतच्छेषमपसारमल्पसारं च ।

वर्तनाम पर्युषितोऽन्यजातश्चायः। दिवसानुवृत्तो वर्तमानः। परमसांवत्सरिकः परप्रचारः सङ्क्रान्तो वा पर्युषितः। नष्टप्रस्मृत-मायुक्तदण्डः पार्श्वं पारिहीणिकमौपायनिकं डमरगतकस्वमपुत्रकं निधिश्चान्यजातः।

सिद्धि प्रकर्म योग अर्थात् कर-वसूली एवं दण्डशेष अर्थात् सैनिक व्यय से बचा हुआ धन—दोनों को आहरण कहते हैं। राजा के बान्ध-वादि द्वारा बलपूर्वक न दिया गया धन 'प्रतिस्तब्ध' कहा गया है। यह और अवसृष्ट अर्थात् स्वेच्छा से न दिया गया धन 'प्रशोध्य' (प्रयत्न साध्य) संज्ञक माना जाता है। निरर्थक व्यय हुआ धन 'असार' और अति व्यय तथा अल्प लाभ वाला धन 'अल्पसार' कहलाता है। इस प्रकार यह छः भेद 'शेष' संज्ञक धन के ही हैं। वर्तमान पर्युषित और अन्य जात के भेद से आय के तीन प्रकार हैं। नित्य प्रति होने वाली आय वर्तमान, गतवर्ष में संभावित आय अन्य वर्ष में ही अथवा शत्रु देश से किसी प्रकार धन मिले वह पर्युषित आय तथा विस्मृत आय का स्मरण हो जाय अथवा आर्थिक दण्ड से प्राप्त हुई या टेढे मार्ग से अपने से प्रभाव वश प्राप्त हुई हो वह 'पार्श्व' कहलाती है। क्षतिपूर्त्ति के रूप में हुई आय 'पारिहीणक' उपहार में प्राप्त औपायनिक, शत्रुसेना से प्राप्त 'डमर', निःसंतान व्यक्ति से प्राप्त धन 'अपुत्रक' एवं धरती में गड़े हुए धन की निधी यह सब 'अन्यजात' आय के अन्तर्भेद हैं।

विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेषश्च व्ययप्रत्ययः। विक्रये पण्या-नामर्धवृद्धिरुपजा मानोन्मानविशेषो व्याजी क्रयसंघर्षे वृद्धिरि-त्यायः।

नित्यो नित्योत्पादिको लाभो लाभोत्पादिक इति व्ययः। दिवसानुवृत्तो नित्यः। पक्षमाससंवत्सरलाभो लाभः। तयो-रुत्पन्नो नित्योत्पादिको लाभोत्पादिक इति। व्ययसंजातादाय-व्ययविशुद्धा नीवी प्राप्ता चानुवृत्ता चेति।

एव कुर्यात्समुदयं वृद्धिं चायस्य दर्शयेत् ।
ह्रासं व्ययस्य च प्राज्ञः साधयेच्च विपर्ययम् ।।१

'व्ययप्रत्यय' संज्ञक एक विशिष्ट आय और भी है । विक्षेप से शेष अर्थात् किसी कार्य विशेष के व्यय से अवशिष्ट धन, रोगियों पर संभावित व्यय से अवशिष्ट धन एवं नगर या दुर्ग पर होने वाले व्यय से बचा हुआ धन, यह सब उक्त आय में आता है। इनके अतिरिक्त, आय के अन्य पाँच प्रकार और भी कहे गये हैं—(१) क्रीत पदार्थ की भाव-वृद्धि से हुई आय, (२) प्रतिषिद्ध पदार्थों के विक्रय से हुई आय, (३) आय, मान और उन्मान की कमीवेशी से हुई आय, (४) किसी वस्तु की तौल में पांच प्रतिशत बढ़ाकर लेने (अर्थात् सौ सेर की एक सौ पाँच सेर लेने से प्राप्त हुई आय और (५) विक्रय के समय पारस्परिक स्पर्द्धा से बढ़ाये गये मूल्य से प्राप्त हुई आय । अब व्यय का स्वरूप बताते हैं, जो कि नित्य, नित्योत्पादित, लाभ और लाभोत्पादित के भेद से चार प्रकार का है । उनमें नित्यप्रति होने वाला व्यय 'नित्यव्यय' और पाक्षिक, मासिक या वार्षिक लाभ के लिए हो वह व्यय 'लाभ' कहा जाता है । नित्यव्यय के साथ अतिरिक्त व्यय हो वह 'नित्योत्पादित' एवं लाभव्यय के साथ हो वह 'लाभोत्पादित' होता है । आय में व्यय को काटने पर शेष रहा धन या द्रव्य 'नीवी' कहा गया है । 'प्राप्त' और 'अनुवृत्त' के नाम से नीवी के भेद हैं । उनमें भी राजकोष में जमा हुआ प्राप्त और जमा करने के लिए निकाला गया 'अनुवृत्त' कहलाता है । चतुर समाहर्त्ता को उक्त प्रकारेण राजकोष के लिए धन की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे आय का बढ़ना और व्यय का कम होना प्रत्यक्ष दिखाई दे । यदि आवश्यक हो तो इसके विपरीत व्यवस्था भी करनी होती है ।।१।।

सप्तमोऽध्याय

अक्षपटल गाणनिक्याधिकार

अक्षपटलमध्यक्षः प्रत्यङ्मुखमुदङ्मुखं वा विभक्तोपस्थानं निबन्धपुस्तकस्थानं कारयेत् ।

तत्राधिकरणानां संख्याप्रचारसंजाताग्रं कर्मान्तानां द्रव्यप्रयोगे वृद्धिक्षयव्ययप्रयामव्याजीयोगस्थानवेतनविष्टिप्रमाणं रत्नसारफल्गुकुप्यानामर्घप्रतिवर्णकप्रतिमानोन्मानभाण्डं देशग्रामजातिकुलसंघातानां धर्मव्यवहारचारित्रसंस्थानं, राजोपजीविनां प्रग्रहप्रदेशभोगपरिहारभक्तवेतनलाभं, राज्ञश्च पत्नीपुत्राणां रत्नभूमिलाभं, निर्देशौत्पातिक प्रतीकारलाभं, मित्रामित्राणां च सन्धिविक्रमप्रदानादानं निबन्धपुस्तकस्थं कारयेत् ।

अक्षपटल (अर्थात् आय-व्यय कार्यालय) के अध्यक्ष को पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रूप से अपने कार्यालय का निर्माण करावे । उसमें अनेक कक्ष रहें और वहाँ आय-व्यय की निबन्ध पुस्तक उचित स्थान पर रखी जाय । उस पुस्तक में निम्न विषय लिखे जाँय—(१) राज्यान्तर्गत जितने भी अधिकरण हों, उन सब की संख्या उनके नियम और उनसे होने वाली आय, (२) खनिज पदार्थों आदि के कारखानों में उपयोग की हुई पूँजी, वृद्धि, ब्याज, लाभ, क्षति, व्यय, भण्डार, ब्याजी, योग (द्रव्यापद्रव्य का मिलना), स्थान, वेतन एवं विष्टि की संख्या, (३) रत्न, सार, असार, एवं कुप्य पदार्थों का मूल्य, रङ्ग, परिमाण, भार और उनसे निर्मित होने वाली सामग्री, (४) देश, ग्राम, जाति, कुल, संघति, दायभाग, आचार एवं रीति-रिवाज, (५) राज से जीविका पाने वालों के सम्मान में व्यय होने वाला धन, प्रदेश, भोग, परिहार, भत्ता एवं वेतन, (६) राजा, उसकी पत्नी और पुत्र आदि के पास रहे रत्न एवं भूमि आदि की सूची, (७) उत्सवादि पर होने वाले व्यय के लिए अथवा रोगादि के शमनार्थ विशेष रूप से प्राप्त होने वाले धन की सूची और (८) मित्र एवं शत्रुओं से सन्धि होने पर दिये जाने या प्राप्त होने वाले धन का परिमाण आदि का विवरण ।

ततः सर्वाधिकरणानां करणीयं सिद्धं शेषमायव्ययौ नीवीमुपस्थानं प्रचारचरित्रसंस्थानं च निबन्धे न प्रयच्छेत् । उत्तममध्यमावरेसु च कर्मसु तज्जातिकमध्यक्षं कुर्यात् । सामुदायिकेष्ववक्लृ-

प्तिकं व्ययमुपवृत्य न राजाऽनुतप्येत । सहग्राहिणः प्रतिभुवः कर्मोपजीविनः पुत्रा भ्रातरो भार्या दुहितरो भृत्याश्चास्य कर्मच्छेदं वहेयुः ।

फिर सब अधिकरणों के अध्यक्षों के कर्त्तव्य, सिद्ध, शेष, आय, व्यय, नीवी, उपस्थान, प्रचार एवं आचरणादि का स्वरूप—यह सब भी लिखा जाय और उसी के अनुसार कार्य का प्रबन्ध किया जाय। उसी को उत्तम, मध्यम एवं अधम कार्यों के संचालनार्थ अधिकारियों की नियुक्ति करे। अथवा प्रत्येक कार्य के लिए एक-एक अध्यक्ष बनावे। कार्य-निपुण पुरुषों को भी अपराध होने पर उचित दण्ड देकर राजा को उस विषय में कुछ खेद नहीं करना चाहिए। यदि कोई कार्याध्यक्ष भी किसी प्रकार का अपराध कर बैठे तो उस अपराध-कार्य में भागीदार व्यक्ति, उसके अधीनस्थ कर्मचारी, प्रतिभू, पुत्र, भाई, पत्नी, पुत्री और सेवक आदि उस क्षति की पूर्ति करें।

त्रिशतं चतुःपञ्चाशच्चाहोरात्राणां कर्मसंवत्सरः। तमाषाढी-पर्यवसानमूनं पूर्णं वा दद्यात्। करणाधिष्ठितमधिमासकं कुर्यात्। अपसर्पाधिष्ठितं च प्रचारम्। प्रचारचरित्रसंस्थान्यनुपलभमानो हि प्रकृतः समुदयमज्ञानेन परिहापयति। उत्थानक्लेशासहत्वा-दालस्येन शब्दादिष्विन्द्रियार्थेषु प्रमादेन, संक्रोशाधर्मानर्थभीरु-र्भयेन, कार्यार्थिष्वनुग्रहबुद्धिः कामेन, हिंसाबुद्धिः कोपेन, विद्या-द्रव्यवल्लभापाश्रयाद्दर्पेण, तुलामानतर्कगणिकान्तरोपधानाल्लो-भेन। तेषामानुपूर्व्या "यावानर्थोपघातः तावानेकोत्तरो दण्डः" इति मानवाः। 'सर्वत्राष्टगुणः' इति पाराशराः। 'दशगुणः' इति बार्हस्पत्याः। 'विंशतिगुणः' इत्यौशनसाः। 'यथापराधम्' इति कौटिल्यः।

तीन सौ चौवन अहोरात्र का एक कर्म सम्वत्सर होता है, जिसकी समाप्ति आषाढ़ी पूर्णिमा को होती है। इसी प्रकार से कार्यकाल की गणना द्वारा कर्मचारियों को वेतन दिया जाय। मास में उपस्थितियों की

गणना उसी विभाग का कर्मचारी करे। अक्षपटल के अध्यक्ष को कर्मचारियों की कार्य-विधि का निरीक्षण गुप्तचरों से कराते रहना चाहिए। क्योंकि विभिन्न कार्याध्यक्ष प्रचार, चरित्र एवं संस्थान के विषय में धनोत्पादन में हानि उपस्थित कर सकते हैं। वे कर्मोद्योग में कष्ट सहन के अयोग्य होने के कारण आलस्यवश निन्दा, अधर्म और अनर्थ के भय से डरे होने के कारण, अपने चापलूसों पर कृपा दिखाने और काम अथवा स्वेच्छाचारितावश या हिंसामय बुद्धि की प्रेरणा से कुपित होकर अपनी विद्या, द्रव्य और राजा के स्नेहियों के अनुग्रह से गर्व पूर्वक तौल, मान या गणित में छल करके, लोभ के वशीभूत होकर हानि पहुंचा सकते हैं। मनु के मतानुयायियों के अनुसार उक्त दोषों में से जिस दोष के कारण राजकोष का जितना क्षय हुआ हो, उस क्षति से एक गुण अधिक अर्थ दण्ड दिया जाय। पराशर के अनुयायी उस सब प्रकार के अपराधियों को अठगुना तथा बृहस्पति के अनुयायी दस गुना अर्थ दण्ड दे। शुक्राचार्य के अनुयायी बीस गुने अर्थदण्ड की व्यवस्था करते हैं। किन्तु कौटिल्य के मत में अपराध के न्यूनाधिक्य को देखकर ही दण्ड देना उचित है।

गाणनिक्याभ्याषाढीमागच्छेयुः। आगतानां समुद्गपुस्तभाण्डनीवीकानामेकत्र सम्भाषावरोधं कारयेत्। आयव्ययनीवीनामग्राणि श्रुत्वा नीवीमवहारयेत्। यच्चाग्रादायस्यान्तरवर्णे नीव्या वर्धेत, व्ययस्य वा यत्परिहापयेत्, तदष्टगुणमध्यक्षं दापयेत्। विपर्यये तमेव प्रति स्यात्।

सभी अधिकारी अपने-अपने लेखे के सहित तथा मुद्रांकित निबन्ध पुस्तकों का बक्स और अवशिष्ट धन साथ लेकर आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन गाणनिक्य अर्थात् गणनाधिकारी के कार्यालय में उपस्थित हों और अध्यक्ष को गणना को पूर्ण रूपेण समझा देने से पूर्व किसी अन्य से वार्त्तालाप भी न करें। गणनाधिकारी आय, व्यय और नीवी का लेखा सुनकर बचा हुआ धन उनसे ग्रहण कर ले। आय के अनुसार बचत खाते

में बढ़े हुए धन और व्यय के परिमाण से यदि धन की न्यूनता परिलक्षित हो, उस विभागाध्यक्ष पर उस धन का आठगुना अर्थ दण्ड किया जाय। यदि धन की कमी न पडे, वरन् वृद्धि दिखाई दे तो वह वृद्धि वाला धन उसे पुरस्कार स्वरूप प्रदान कर दे।

यथाकालमनागतानामपुस्तनीविकानां वा देयदशबन्धो दण्डः। कार्मिके चौपस्थिते कारणिकस्याप्रतिबध्नतः पूर्वः साहसदण्डः। विपर्यये कार्मिकस्य द्विगुणः।

प्रचारसमं महामात्राः समग्राः श्रावयेयुरविषममात्राः पृथग्भूतो मिथ्यावादी चैषामुत्तमदण्डं दद्यात्। अकृताहोरूपहरं मासमाकांक्षेत। मासादूर्ध्वं मासद्विशतोत्तरं दण्डं दद्यात्।

समय पर उपस्थित न होने वाले अथवा लेखा या नीवी न लाने वाले कार्याधिकारियों को देय अंश से दुगुने अर्थ से दण्डित किया जाय। यदि प्रमुख कर्मचारी उपस्थित हो किन्तु उसके सहकारियों ने गणना ठीक न की हो तो उन पर प्रथम साहस दण्ड करे यदि प्रमुख कर्मचारी का ही दोष हो तो उसे दुगने अर्थ से दण्डित करना उचित है। राजा के महामात्रों को सभी कार्याध्यक्षों के विभागों का पूरा हिसाब देख कर और भले प्रकार जाँच कर ठीक प्रमाणित होने पर जन-साधारण को सुना देना चाहिए। उन अधिकारियों में से कोई झूँठा सिद्ध हो तो उस पर उत्तम साहस दण्ड करे। निश्चित दिन लेखा उपस्थित न करने वाले विभागाध्यक्ष को एक मास का समय और दिया जा सकता है। उतनी अवधि में भी लेखा न दिखाने वाले अधिकारी पर दो सौ पण प्रतिमास का अर्थ-दण्ड देना चाहिए।

अल्पशेषलेख्यनीविकं पंचरात्रमाकांक्षेत। ततः परं कोशपूर्वमहोरूपं धर्मव्यवहारचरित्रसंस्थानसंकलननिर्वर्तनानुमानचारप्रयोगैरवेक्षेत। दिवसपंचरात्रपक्षमासचातुर्मास्यसंवत्सरैश्च प्रतिसमानयेत्। व्युष्टदेशकालमुखोत्पत्त्यनुवृत्तिप्रमाणदायकदापकनिबन्धप्रतिग्राहकैश्चायं समानयेत्। व्युष्टदेशकालमुखलाभकारण-

देययोगपरिमाणाज्ञापकोद्धारकनिधातृकप्रतिग्राहकैश्च व्ययं समानयेत् । व्युष्टदेशकालमुखानुवर्तनरूपलक्षणपरिमाणनिक्षेपभाजनगोपायकैश्च नीवीं समानयेत् ।

एक मास का समय देने के पश्चात भी यदि किसी अधिकारी का स्वल्प लेखा शेष रह गया हो तो उसे पाँच दिन की अवधि और बढ़ा देनी चाहिए। तत्पश्चात् उसे दण्ड दे । निश्चित दिन लेखा और नीवी सहित उपस्थित अध्यक्ष की धर्म, व्यवहार, चरित्र, संस्थान, संकलन, निर्वर्तन, अनुमान और गुप्तचरों के उपयोग से परीक्षा करनी चाहिए। आय, व्यय और नीवी का लेखा एक दिन, पाँच दिन, एक पक्ष, एक मास, चार मास या एक वर्ष के रूप में काल-विभाजन करके रखे। आय का लेखा बनाते समय व्युष्ट, देश, काल, मुख, उत्पत्ति, अनुवृत्ति, प्रमाण, दाता, दापक, निबन्धक और कर अधिकारी आदि का लेखे में यथार्थ उल्लेख हुआ या नहीं, इसकी परीक्षा कर ले। तथा यह भी देखे कि व्युष्ट, देश, काल, मुख, लाभ, कारण, देय, योग, परिमाण, ज्ञापक, उद्धारक, निधातृक और प्रतिग्राहक का उल्लेख लेखे में हुआ है या नहीं। इसी प्रकार शेष धन के लेखे में व्युष्ट, देश, काल, मुख, अनुवर्तन, रूप, लक्षण, परिमाण, निक्षेप, भाजन, और गोपायक अर्थात् धनरक्षक का वर्णन है या नहीं।

राजार्थे कारणिकस्याप्रतिबध्नतः प्रतिषेधयतो वाज्ञां निबन्धादायव्ययमन्यथा वा विकल्पयतः पूर्वः साहसदण्डः ।

क्रमावहीनमुत्क्रममविज्ञातं पुनरुक्तं वा वस्तुक्रमवलिखतो द्वादशपणो दण्डः। नीवीमवलिखतो द्विगुणः। भक्षयतोऽष्टगुणः। नाशयतः पंचबन्धः प्रतिदानं च। मिथ्यावादे स्तेयदण्डः। पश्चात्प्रतिज्ञाते द्विगुणः प्रस्मृतोत्पन्ने च।

परार्धं सहेताल्पं तुष्येदल्पेऽपि चोदये।
महोपकारं चाध्यक्षं प्रग्रहेणाभिपूजयेत् ॥१

जो कारणिक अर्थात् लिपिक राजा से सम्वन्धित धन आदि का उल्लेख लेखे में न करे या राजाज्ञा का उल्लघन करे अथवा निबन्ध में निर्धारित नियमों की अवहेलना कर अन्य प्रकार से आय-व्यय लिखे, वह पूर्व साहस दण्ड का अधिकारी है। जो लिपिक विपरीत क्रम से, दूसरों के न समझने योग्य तथा पुनरोक्ति दोष से युक्त लेखा बनावे उसे बारह पण का दण्ड दे। रोकड़ में बचे धन को न लिखे या अशुद्ध लिखे तो उसे चौबीस पण से और नीवी का धन स्वयं ही उड़ा ले, उसे छियानवे पण से दंडित करे। यदि नीवी का धन किसी अन्य को दे दे तो उसे साठ पण का दण्ड दे और उसके द्वारा जो धन नष्ट हुआ हो, उसे भी वसूल करे। यदि किसी प्राप्त धन को स्वीकार करके अप्राप्त बतादे तो उसे चोर के दण्ड से दुगुना दण्ड दे। पहिले भूले हुए धन को फिर प्रकट करे उसे भी दुगुना दण्ड दे। राजा अध्यक्ष द्वारा हुआ स्वल्प अपराध क्षमा कर दे। जिस किसी ने स्वल्प आय की भी वृद्धि की हो, उसे महान् उपकार करने वाला मानकर प्रसन्नता पूर्वक सत्कारित करे ।।१।।

अष्टमोऽध्यायः

युक्तापहृतप्रत्यानयन

कोषपूर्वाः सर्वारम्भाः। तस्मात्पूर्वं कोषमवेक्षेत। प्रचार-समृद्धिश्चरित्रानुग्रहश्चोरग्रहो युक्तप्रतिषेधः सस्यसम्पत्पण्यबाहुल्य-मुपसर्गप्रमोक्षः परिहरक्षयो हिरण्योपायनमिति कोषवृद्धिः। प्रति-बन्धः प्रयोगो व्यवहारोऽवस्तारः परिहापणमुपभोगः परिवर्तनम-पहारश्चेति कोषक्षयः।

राजाओं के सर्व कार्यों का आरम्भ कोष पर ही निर्भर है इसलिए सर्व प्रथम कोष पर ही ध्यान देना उचित है। राज्य समृद्धि, चरित्र, अनुग्रह, चोरों का पकड़ना, घूँस लेने वाले से प्रजा का रक्षण, अन्नोत्पादन एवं जल या स्थल में उत्पन्न होने वाले पदार्थों की वृद्धि,

अग्नि, उत्प्लव, अनावृष्टि आदि से देश की रक्षा, शेष धन की वसूली और स्वर्णादि की भेंट स्वीकार करना—यह उपाय कोषवृद्धि के लिए कहे हैं। अब प्रतिबन्ध, प्रयोग, व्यवहार, अवस्तार, परिहापण, उपभोग, परिवर्तन और उपहार नामक आठ भेद वाले कोषक्षय के कारणों को कहेंगे।

सिद्धीनामसाधनमनवतारणमप्रवेशनं वा प्रतिबन्धः। तत्र दशबन्धो दण्डः। कोशद्रव्याणां वृद्धिप्रयोगः प्रयोगः।

पण्यव्यवहारो व्यवहारः। तत्र फलद्विगुणो दण्डः। सिद्धं कालमप्राप्तं करोत्यप्राप्तं वेत्यवस्तारः। तत्र पंचबन्धो दंडः।

सिद्ध हुए प्राप्य कर की वसूली के उपाय न करना, वसूल होने पर भी न मिलना और मिलने पर भी राजकोष में जमा न होना—यह भेद प्रतिबन्ध के हैं, जिनके कारण राजकोष की क्षति होने से उस कार्याधिकारी को दस गुने अर्थदण्ड से दंडित करे। प्रयोग उसे कहते हैं, जिसमें राजकोष में जमा धन का व्याज के द्वारा कोष-वृद्धि के लिए किया जाय। राज्य के पण्य पदार्थों के क्रय-विक्रय को व्यवहार कहते हैं। प्रयोग और व्यवहार संज्ञक कोषक्षति के अपराधी अधिकारी ने लाभ अर्जन किया हो, उससे दुगुना उसे दण्ड देना चाहिये। अवस्तार के दो भेद हैं—कर वसूल करने की अवधि पूरी होने पर भी अधिकारी लोभ के वशीभूत होकर उसे अप्राप्य बना दे तथा अवधि पूरी न होने पर भी उसे प्राप्य मान ले। इस अपराध के अपराधी को हानि से पाँच गुणा अर्थ-दण्ड देना चाहिए।

क्लृप्तमायं परिहापयति व्ययं वा विवर्धयति इति परिहापणम्। तत्र हीनचतुर्गुणो दण्डः। स्वयमन्यैर्वा राजद्रव्याणामुपभोजनमुपभोगः। तत्र रत्नोपभोगे धातः। सारोपभोगे मध्यमः साहसदण्डः। फल्गुकुप्योपभोगे तच्च तावच्च दण्डः।

राज्यद्रव्याणामन्यद्रव्येणादानं परिवर्तनम्। तदुपभोगेन व्याख्यातम्। सिद्धमायं न प्रवेशयति, निबद्धं व्ययं न प्रयच्छति,

प्राप्तां नोवीं विप्रतिजानीत इत्यपहारः । तत्र द्वादशगुणो दण्डः ।

परिह्वापण दो प्रकार का है—(१)नियत धन को कम कर देना, या (२) निश्चित व्यय में वृद्धि करना । इस दोष द्वारा हानि पहुँचाने वाले राज्याधिकारी को चौगुन' अर्थं दण्ड दे । रत्न, सार, फल्गु और कुप्य का स्वयं उपभोग करने या किसी अन्य को दे देने वाले अधिकारी 'उपभोग' दोष के दोषी होंगे । उन्हें रत्न के उपभोग-दोष में मृत्यु-दण्ड, सार के उपभोग में मध्यम साहस दण्ड एवं फल्गु या कुप्य द्रव्य के उपभोग करने वाले अधिकारी को द्रव्य के मूल्य का अर्थ दण्ड दे और उससे वे द्रव्य भी वापस ले ले ।

तेषां हरणोपायाश्चत्वारिंशत्—पूर्वं सिद्धं पश्चादवतारितम्, पश्चात्सिद्धं पूर्वमवतारितम्, साध्यं न सिद्धम्, असाध्यं सिद्धम्, सिद्धमसिद्धं कृतम्, असिद्धं सिद्धं कृतम्, अल्पसिद्धं बहुकृतम्, बहुसिद्धमल्पं कृतम्, अन्यत्सिद्धमन्यत्कृतम्, अन्यतः सिद्धमन्यतः कृतम्, देयं न दत्तम्, अदेयं दत्तम्, काले न दत्तम्, अकाले दत्तम्, अल्प दत्तं बहु कृतम्, बहु दत्तमल्प कृतम्, अन्यद्दत्तमन्यत्कृतम्, अन्यतो दत्तमन्यतः कृतम्, प्रविष्टमप्रविष्टं कृतम्, कुप्यमदत्तमूल्यं प्रविष्टम्, दत्तमूल्यं न प्रविष्टम्, संक्षेपो विक्षेपः कृतः, विक्षेपः संक्षेपो वा, महार्घमल्पार्घेण परिवर्तितम्, अल्पार्घं महार्घेण वा, समारोपितोऽर्घः, प्रत्यवरोपितो वा, रात्रयः समारोपिताः, प्रत्यवरोपितो वा, संवत्सरो मासविषमः कृतः, मासो दिवसविषमो वा, समागमविषमः, मुखविषमः, धार्मिकविषमः, निर्वर्तनविषमः, पिण्डविषमः, वर्णविषमः, अर्घविषमः, मानविषमः, मापनविषमः, भाजनविषमः । इति हरणोपायाः ।

राजधन के अपहरण को चालीस प्रकारों में विभक्त किया गया है। यथा—पहिले प्राप्त हुआ धन अन्य किसी दिन लिखना, पश्चात् प्राप्त धन को पहिले लिख लेना, प्राप्ति योग्य धन को वसूल न करना, जहाँ से धन न लेना हो, वहाँ धन-माँगने विषयक विवाद करना, प्राप्त धन

को अप्राप्त बताना अप्राप्त, को प्राप्त बताना, अल्प प्राप्ति को अधिक और अधिक को अल्प दिखाना, किसी वस्तु को अन्य वस्तु के रूप में लिखना, धन जिससे मिला उसका नाम न लिखकर दूसरे का नाम लिखना, देय वस्तु का न देना, अदेय वस्तु का देना, वस्तु को निर्धारित समय पर न देना, वस्तु को असमय में देना, न्यून धन को अधिक और अधिक को न्यून लिख देना, जो देना है वह न देकर कुछ का कुछ दिया जाना, एक को देने का वचन देकर अन्य को दे देना, प्रजा से प्राप्त धन को न जमा करना, अप्राप्त धन को लिखना, मूल्य दिये बिना ही सामग्री ले आना, मूल्य से क्रय किये सामान का लेखा न रखना, पूर्ण प्राप्य धनराशि को थोड़ी-थोड़ी करके स्वीकार कर लेना, पृथक् पृथक् प्राप्य कर को एकत्र ही ले लेना, अधिक मूल्य की वस्तु का अल्प मूल्य की वस्तु से परिवर्तन कर देना, अल्प मूल्य का पदार्थ अधिक मूल्य का बताना, मिथ्या मूल्यवृद्धि प्रदर्शित करना, मूल्य में मिथ्या ह्रास दिखाना, किसी के कार्य के दिन अधिक लिखना, किसी की अधिक उपस्थितियों को कम बताना, वर्ष के मास में व्यवधान दिखाना, मासों में व्यवधान प्रस्तुत करना, कर्मचारियों की संख्या कम या अधिक लिखना, आय के साधनों में परिवर्तन करना, धर्मकार्यों में कम या अधिक कर देना, धन की प्राप्ति में नियम तोड़ना, किसी से प्राप्त करना किसी से न करना, कर वसूली में जातिवाद उपस्थित करना, मूल्य में कम या अधिक कर देना तथा तौल, माप और उनके पात्रों में गड़बड़ कर देना ।

तत्रोपयुक्तनिधायकनिबन्धकप्रतिग्राहकदायकदापकमंत्रिवैयावृत्यकरानेकैकशोऽनुयुंजीत । मिथ्यावादे चैषां युक्तसमो दण्डः । प्रचारे चावघोषयेत्--'अमुना प्रकृतेनोपहताः प्रज्ञापयन्त्विति । प्रज्ञापयतो यथोपघात दापयेत् । अनेकेषु चाभियोगेष्वपव्ययमानः सकृदेव परोक्तः सर्वं भजेत । वैषम्ये सर्वत्रानुयोगं दद्यात् । महत्यर्थापहारे चाल्पेनापि सिद्धः सर्वं भजेत । कृतप्रतिघातावस्थः सूचको निप-

न्नार्थः षष्ठमंशं लभेत। द्वादशमंशं भृतकः। प्रभूताभियोगादल्पनिष्पत्तौ निष्पन्नस्यांशं लभेत। अनिष्पन्ने शारीरं हैरण्यं वा दण्ड लभेत। न चानुग्राह्यः।

उपर्युक्त के विषय में किसी राजपुरुष के प्रति सन्देह होने पर उपयुक्त, निधायक, निबन्ध, प्रतिग्रहीता, दायक, दापक, और मन्त्री को मिलाकर बनी एक परीक्षण-समिति के द्वारा परीक्षा करनी चाहिये। यदि यह भी दोषी व्यक्ति से मिल कर मिथ्या भाषण करें तो अपराधी को जो दण्ड दिया जाय, वहीं उन्हें देना उचित है। फिर राजा सब क्षेत्रों में घोषणा करा दे कि अमुक अधिकारी ने जिस किसी को सताया हो, वे सब परीक्षण समिति के समक्ष उपस्थित होकर अपनी व्यथा कहें। तब समिति के सामने जो व्यक्ति उस अधिकारी द्वारा अपहरण की गई जितनी धन-राशि का प्रमाण दे, उतना धन उससे वसूल करके उन व्यक्ति को दे दे। किसी अपराधी अधिकारी पर यदि कोई अभियोग सिद्ध हो जाय, तब उस अधिकारी की हार मान ली जायगी और तब वह सभी योगों का भागी समझा जाकर उसी के अनुसार दण्ड प्राप्त करेगा। यदि अनेक अभियोगों पर विचार करते समय कोई विषमता उत्पन्न हो जाय तो अपराधी को उन अभियोगों के विषय में बचाव का अवसर दिया जाना चाहिए। यदि अपहृत धन राशि अत्यधिक हो और साथ ही समिति को उसके द्वारा स्वल्प धन के अपहरण का प्रमाण मिलता हो तो उसे अपहरणों का अपराधी मान कर उचित दण्ड देना उचित है। यदि किसी अधिकारी का अन्य अपराधियों के सहयोग से धन का अपहरण करना किसी न्यायाधीश के समक्ष कोई सूचक सिद्ध कर दे तो उस धन का छटवाँ भाग उस सूचक को मिलना न्याय संगत होगा। यदि सूचक उस अधिकारी का दास हो तो उसे छटवें भाग के स्थान पर बारहवां भाग देना उचित है। धन के अपहरण विषयक अनेक अभियोगों में से किसी अल्प धन का भी अभियोग सिद्ध हो जाय तो प्रमाणित करने वाले सूचक को सम्पूर्ण अपहृत धन का छटवाँ अंश देना चाहिए। इसके

विपरीत सूचक अभियोग सिद्ध करने में सफल न हो तो उसे शारीरिक या आर्थिक दण्ड दिया जाना उचित होगा। उस पर अनुग्रह नहीं होना चाहिए।

निष्पत्तौ निक्षिपेद्वादमात्मानं वाऽपवाहयेत् ।
अभियुक्तोपजापात्तु सूचको वधमाप्नुयात् ।।१

सूचित अभियोग के सिद्ध होने पर सूचक चाहे तो उस विवाद को समाप्त करा कर स्वयं अभियोगी न रहे। यदि सूचक उस अधिकारी को दुःखित करने के लिए या उसके किसी वैरी से कुछ लेकर मिथ्या आरोप लगावे तो वह मृत्यु दण्ड का अधिकारी होता है ।।१।।

नवमोऽध्याय

उपयुक्त परीक्षा

अमात्यसम्पदोपेताः सर्वाध्यक्षाः शक्तितः कर्मसु नियोज्याः। कर्मसु चैषां नित्यं परीक्षां कारयेत्। चित्तानित्यत्वान्मनुष्याणाम्। अश्वसधर्माणो हि मनुष्या नियुक्ताः कर्मसु विकुर्वते। तस्मात्कर्तारं कारणं देशं कालं कार्यं प्रक्षेपमुदयं चैषु विद्यात्। ते यथासंदेशमसंहता अविगृहीताः कर्माणि कुर्युः। संहता भक्षयेयुः। विगृहीता विनाशयेयुः। न चानिवेद्य भर्तुं किंचिदारम्भं कुर्युरन्यत्रापत्प्रतीकारेभ्यः। प्रमादस्थानेषु चैषामत्ययं स्थापयेद्दिवसवेतनव्ययद्विगुणम्।

अमात्य-गुण युक्त सब अध्यक्षों को उनकी कार्यक्षमता की परीक्षा करके ही विविध उत्तरदायित्व के पदों पर नियुक्त करे। क्योंकि मनुष्य का चित्त चलायमान होता है, जिससे श्रेष्ठ मनुष्य भी पदासीन होकर विकार को प्राप्त हो सकता है। इसीलिए मनुष्य घोड़े का समानधर्मी कहा जाता है। जैसे कि सवारी में काम आने वाला अश्व रथादि में जुत कर अड़ने या बिगड़ने लगता है, वही दशा पद का भार प्राप्त करके मनुष्य की हो जाती है। इसीलिए इनके विषय में कर्त्ता, कारण, देश,

काल, कार्य, प्रक्षेप और उदय (लाभ), इन सब से राजा को पूर्णतया परिचित रहना चाहिए। उन अध्यक्षों को राजाज्ञानुसार सदैव परस्पर में असंगठित रूप से और विरोध-रहित रहते हुए ही कार्यरत रहना चाहिए। यदि वे संगठित रहते हैं तो राजा के सब फल का ही भक्षण कर लेते हैं। और विरोधी रहते हैं तो सम्पूर्ण उपलब्धि को नष्ट कर डालते हैं। इसीलिए उन्हें सभी कार्य अपने स्वामी की आज्ञा और निर्देष के अनुसार ही करना चाहिए। उन अध्यक्षों के द्वारा भूल होने पर राजा को उन्हें आर्थिक दण्ड देना चाहिए, जो कि वेतन और क्षति से द्विगुणित हो सकता है।

यश्चैषां यथाऽऽदिष्टमथ सविशेषं वा करोति स स्थानमानौ लभेत। 'अल्पायतिश्चेन्महाव्ययो भक्षयति। विपर्यये यथाऽऽयतिव्ययश्च न भक्षयति' इत्याचार्याः। 'अपसर्पेणैवोपलभ्यते' इति कौटिल्यः। यः समुदयं परिहापयति स राजार्थं भक्षयति। स चेदज्ञानादिभिः परिहापयति तदैनं यथागुणं दापयेत्।

उनमें राजाज्ञा के अनुसार या उससे भी अधिक सावधानी से कार्य करने वाले अध्यक्षों को पदोन्नति या सम्मान प्राप्त होना उचित है। कुछ आचार्यों के मत में अल्प धन अर्जित करके अधिक व्यय करने वाले अधिकारी राजधन का भक्षण करते हैं और जो अधिक आय तथा अल्प व्यय करते हैं, वे वित्त के भक्षक नहीं हैं। आचार्य कौटिल्य के मत में उन अधिकारियों की अर्थ-सम्बन्धी दुष्टता या निर्दोषिता का ज्ञान गुप्तचरों के द्वारा किया जाना चाहिये। जो उपयुक्त (प्रमुख अधिकारी) राजा के धन-अर्जन में उदासीन रहते हैं, वे राज्य के धन का ही भक्षण करते हैं, उनका यह कार्य यदि अज्ञान आदि के कारण हो तो उन्हें क्षति से दुगुना, तिगुना या उससे भी अधिक अर्थ दण्ड देने और साथ ही क्षति पूर्ति करने की आज्ञा देनी चाहिए।

यः समुदयं द्विगुणमुद्भावयति स जनपदं भक्षयति । स चेद्राजार्थमुपन्यत्य ल्पापराधे वारयितव्यः । महति यथापराधं दण्डयितव्यः । यः समुदयं व्ययमुपनयति स पुरुषकर्माणि भक्षयति । स कर्मदिवसद्रव्यमूलपुरुषवेतनापहारेषु यथाऽपराधं दण्डयितव्यः । तस्मादस्य यो यस्मिन्नधिकरणे शासनस्थः स तस्य कर्मणो याथातथ्यमायव्ययौ च व्याससमासाभ्यामाचक्षीत । मूलहरतादात्विककदर्यांश्च प्रतिषेधयेत् । यः पितृपतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः । यो यद्यदुत्पद्यते तत्तद्भक्षयति स तादात्विकः । यो भृत्यात्मपीडाभ्यामुपचिनोत्यर्थं स कदर्यः । स पक्षांश्चेदनादेयः । विपर्यये पर्यादातव्यः ।

निर्धारित कर से दुगुना कर वसूल करने वाला अधिकारी जनपद की प्रजा का भक्षण करता है। यदि उस धन को पूरा ही राजकोष में जमा कर दे तो अपराध की गुरुता कम हो जाती है। फिर भी उसे भविष्य में वैसा न करने का आदेश दिया जाय । यदि अपराध अधिक है तो उसे उसी के अनुसार दण्ड दे। यदि व्यय के लिये निर्धारित धन का व्यय न करे और उसे आय के मद में दिखावे तो वह भी राज्य के धन का भक्षण करना ही माना जायगा। यदि अधिकारी कार्य-दिवस अधिक दिखाकर, मूल्य में वृद्धि दिखाकर या कर्मचारियों के वेतन में से काट कर धन चुरावे तो उसे वैसा ही दण्ड दे । अधिकारी अपने विभाग की सामयिक स्थिति और उसके आय-व्यय का विवरण संक्षेप या विस्तार से राजा के समक्ष प्रस्तुत करता रहे। जो अध्यक्ष मूलहर अर्थात् मूलधन का अपहरण कर्त्ता, तादात्विक या कदर्य अर्थात् कृपण हो तो उसे वैसे कार्य करने से निवारित करे या उसे पदमुक्त करदे। पिता-पितामह के धन अन्याय से भक्षण करने वाला 'मूलहर' कहलाता है। तादात्विक वह है जो नित्यप्रति की उपार्जित आय को खाजाय और कुछ भी न बचावे। जो अपने भृत्यादि को और स्वयं को कष्ट देकर धन की वृद्धि करे वह कदर्य कहा गया है'ऐसा अधिकारी बान्धवादि

से युक्त हो तो उसे सब धन को न छीने, किन्तु बान्धवादि से रहित हो तो सब धन छीन लेने में भी कुछ अन्याय नहीं होगा।

यो महत्यर्थसमुदये स्थितः कदर्यः सन्निधत्ते, उपनिधत्ते, अवस्रावयति वा। सन्निधत्ते स्ववेश्मनि अवनिधत्ते पौरजानपदेषु, अवस्रावयति परविषये, तस्य सत्री मंत्रिमित्रभृत्यबन्धुपक्षमार्गांतिगतिं च द्रव्याणामुपलभेत। यश्चास्य परिविषये संचारं कुर्यात्तमनुविश्य मंत्रं विद्यात्। सुविदिते शत्रुशासनापदेशेनैनं घातयेत्।

तस्मादस्याध्यक्षाः संख्यायकलेखकरूपदर्शकनीवीग्राहकोत्तराध्यक्षसखाः कर्माणि कुर्युः। उत्तराध्यक्षा हस्त्यश्वरथारोहास्तेषामन्तेवासिनः शिल्पशौचयुक्ताः संख्यायकादीनामपसर्पाः। बहुमुख्तमनित्यं चाधिकरणं स्थापयेत्।

कदर्य श्रेणी का अधिकारी लाभ के किसी उच्चपद पर रहता हुआ धन का सन्निधान, उपनिधान अवस्रावण (भूमि में गाढना), किसी के पास धरोहर रूप में रखना या शत्रु-देश में भेजना आदि कार्य करे तो राजा को सत्री संज्ञक गुप्तचरों के द्वारा उसके परामर्शदाता, मित्र; भृत्य, बान्धवादि से आय-व्यय विषयक जांच करे। बाहर गये हुए धन की जाँच के लिये गुप्तचर को उस अधिकारी से मेल बढ़ाना या उसका सेवक हो जाना चाहिए, जिससे रहस्य भेद होना सुगम है। जब उसके षड्यन्त्र का भंडाफोड़ हो जाय तब उस पर शत्रु से मिला होने का लांछन लगा कर उसे मृत्यु दण्ड दे दे। इसलिए सब अध्यक्ष, संख्यायक, लेखक, रूपदर्शक, नीवीग्राहक और उत्तराध्यक्ष आदि सबको मिलकर राजा का वित्त विषयक कार्य पूर्ण करना चाहिये। वे वृद्ध एवं तीक्ष्ण बुद्धि पुरुष राज-कार्य के लिये हाथी, अश्व या रथादि सवारी पर चढ़ कर आवागमन के अधिकारी हैं। उनके शिष्यों को शुद्ध हृदय से संख्यायक आदि की परीक्षा का कार्य गुप्त रूप से करना चाहिये। सभी अधिकारियों के कार्यस्थल इस प्रकार स्थापित करे, जिससे कि वहाँ मुख्य अधिकारीगण रह सकें। क्योंकि अनेक अधिकारियों के रहने

से कर्मचारियों द्वारा राज्य धन का अपहरण भयवश कठिन ही होगा। अधिक काल तक एक स्थान पर सब कर्मचारियों के साथ-साथ रहने से अपराध छिपाने विषयक पारस्परिक मंत्रणा का सुयोग रहता है, जिससे राजधन के अपहरण की अधिक संभावना हो सकती है।

यथा ह्यनास्वादयितुं न शक्यं जिह्वातलस्थं मधु वा विषं वा।
अर्थस्तथा ह्यर्थचरेण राज्ञः स्वल्पोऽप्यनास्वादयितुं न शक्यः ॥१
मत्स्या यथाऽन्तःसलिले चरन्तो ज्ञातुं न शक्याः सलिलं पिबन्त।
युक्तास्तथा कार्यविधौ नियुक्ता ज्ञातुं न शक्या धनमाददानाः ॥२

अपि शक्या गतिर्ज्ञातुं पततां खे पतत्रिणाम्।
न तु प्रच्छन्नभावानां युक्तानां चरतां गतिः ॥३
आस्रावयेच्चोपचितान् विपर्यस्येच्च कर्मसु।
यथा न भक्षयन्त्यर्थं भक्षितं निर्वमन्ति वा ॥४
यथा न भक्षयन्त्यर्थान्न्यायतो वर्धयन्ति च।
नित्याधिकाराः कार्यास्ते राज्ञः प्रियहिते रताः ॥५

जैसे किसी जिह्वा पर स्वल्प मात्रा में भी मधु अथवा विष रख दें तो वह न चाहने पर भी स्वाद लिये बिना नहीं रह सकता, वैसे ही राजा के वित्त-कार्य में नियुक्त कर्मचारी स्वल्प धन का भी स्वाद लिये बिना नहीं रहेगा। जैसे जल में विचरण करती हुई मछलियों को जल पीते हुए कोई नहीं देख पाता, वैसे ही वित्त-कार्य में लगे राजकर्मचारी द्वारा धन का अपहरण करना कोई नहीं जान पाता। आकाश में उड़ने वाले पक्षियों की चाल देखी जा सकती है, किन्तु राज्य-कर्मचारी के धन-अपहरण को कोई नहीं देख सकता। इसलिए जो अधिकारी धन के अपहरण द्वारा सम्पन्नता को प्राप्त हुए हों, राजा उनसे सब धन लेकर पदच्युत कर दे और फिर चाहे तो किसी नीचे कार्य पर नियुक्त कर दे। जिससे कि उनके द्वारा धन का अपहरण रुक जाय और जो धन उनके पास पहुंच चुका हो, वह भी निकल आवे। वित्त कार्य में

नियुक्त जो कर्मचारी राज्य के धन का भक्षण न करें, वरन् उसकी वृद्धि में लगे रहें, ऐसे राजहित में लगे व्यक्तियों को स्थायी पद दिये जाने चाहिए ॥१-५॥

दशमोऽध्याय:

शासनाधिकार

शासने शासनमित्याचक्षते । शासनप्रधाना हि राजानः, तन्मूलत्वात्सन्धिविग्रहयोः । तस्मादमात्यसम्पदोपेतः सर्वसमयविदाशुग्रन्थश्चार्वक्षरो लेखवाचनसमर्थो लेखकः स्यात् । सोऽव्यग्रमना राज्ञः सन्देशं श्रुत्वा निश्चितार्थं लेखं विदध्यात् । देशैश्वर्यवंशनामधेयोपचारमीश्वरस्य, देशनामधेयोपचारमनीश्वरस्य ।

जातिं कुलं स्थानवयःश्रुतानि कर्मर्द्धिशीलान्यथ देशकालौ ।
यौनानुबन्धं च समीक्ष्य कार्य लेखं विदध्यात्पुरुषानुरूपम् ॥१

प्राचीन आचार्यों के अनुसार पत्र में लिखे हुए विषय को 'शासन' कहते हैं । राजागण इन शासनों (लेखों) द्वारा ही राज्य-संचालन किया करते हैं । क्योंकि संधि हो या युद्ध सभी में शासन मूल रूप बन जाता है । इसलिए शासन-लेखक में सम्पूर्ण अमात्यगुणों का समावेश होना आवश्यक है । वर्णाश्रम के आचरणों का ज्ञाता, शब्द रचना में समर्थ, सुलेख अर्थात् लिखने के अक्षर सुन्दर लिखे और दूसरों के लेख को भले प्रकार पढ़ने में सक्षम हो । वह राजा के वचनों को सुन कर सुनिश्चित और सुविवेचित लेखों की रचना कर सके तथा उसे यह भी ज्ञान हो कि यदि वह पत्र किसी राजा के लिये लिखा जा रहा है तो उसमें उसका देश, ऐश्वर्य, वंश एवं नाम आदि का तथा मंत्री के लिए लिखा जा रहा हो तो उसमें उसका देश और नाम का ससम्मान वर्णन किया जाय । जिसके लिए पत्र लिखा जा रहा है, उसकी जाति कुल, स्थान, आयु, ज्ञान, कर्म, समृद्धि, शील, देश, काल और यौना-

नुबन्ध (विवाह) आदि के पर्यवेक्षण द्वारा उसके श्रेष्ठ मध्यम या निम्न पद के अनुरूप ही लेख लिखे ॥१॥

अर्थक्रमः सम्बन्धः परिपूर्णता माधुर्यमौदार्यं स्पष्टत्वमिति लेखसम्पत् । तत्र यथावदनुपूर्वक्रियाप्रधानस्यार्थस्य पूर्वमभिनिवेश इत्यर्थस्य क्रमः । प्रस्तुतस्यार्थस्यानुपरोधादुत्तरस्य विधानमासमाप्तेरिति सम्बन्धः। अर्थपदाक्षराणामन्यूनातिरिक्तता हेतूदाहरणदृष्टान्तैरर्थोपवर्णनाऽश्रान्तपदेति परिपूर्णता । सुखोपनीतचार्वर्थशब्दाभिधानं माधुर्यम् । अग्राम्यशब्दाभिधानमौदार्यम् । प्रतीतशब्दप्रयोगः स्पष्टत्वमिति ।। अकारादयो वर्णाः त्रिषष्टिः ।

सभी लेखों में अर्थक्रम, सम्बन्ध, परिपूर्णता, माधुर्य, औदार्य और स्पष्टता का होना आवश्यक है । लेख में क्रम की रक्षा यथार्थ रूप से करना ही अर्थक्रम है । प्रस्तुत विषय अबाध गति से अन्त तक चलता रहे, यह सम्बन्ध है । अर्थ, पद एवं अक्षरों में कमी या वेशी का न होना तथा हेतु, उदाहरण और दृष्टान्त और पद के उपयोग में शैथिल्य का न होना 'परिपूर्णता' है। सुन्दर और सुख पूर्वक अर्थात् सरल अर्थ निकले ऐसी आकर्षक शब्दावलि का प्रयोग ही 'माधुर्य' है । गँवारू शब्दों का प्रयोग न होना 'औदार्य' और सुप्रचलित शब्दावलि का प्रयोग 'स्पष्टता' है । अकारादि वर्ण की संख्या तिरेसठ कही गई है । (स्वरवर्ण २२, व्यंजनों में स्पर्श वर्ण २५, अन्तस्थवर्ण ४, यमवर्ण ४, ऊष्मावर्ण ४, अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय ४— इस प्रकार कुल ६३ वर्ण माने गये हैं ।

वर्णसंघातः पदम् । तच्चतुर्विधम्—नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्चेति । तत्र नाम सत्त्वाभिधायि । अविशिष्टलिङ्गमाख्यातं क्रियावाचि । क्रियाविशेषकाः प्रादय उपसर्गाः ।। अव्ययाश्चादयो निपाताः । पदसमूहो वाक्यमर्थपरिसमाप्तौ । एकपदावरस्त्रिपदपरः पदपदार्थानुरोधन वर्गः कार्यः । लेखपरिसंहरणार्थ इति शब्दो वाचिकमस्येति च ।

वर्णों के समुदाय को 'पद' कहते हैं। नाम आख्यात, उपसर्ग और निपात के भेद से पद के चार प्रकार हैं। उनमें जाति, गुण और द्रव्य वाचक पद 'नाम' कहा गया है। क्रिया वाचक और स्त्री पुरुषादि लिंग-रहित पद को 'आख्यात' कहते हैं। क्रिया विशेष के अर्थ को प्रकट करने वाले पद 'उपसर्ग, कहे जाते हैं। अव्यय शब्द निपात कहे गये हैं। जिन पदों का अर्थ ठीक प्रकार समझा जा सके वे 'वाक्य' कहलाते हैं। परवर्त्ती पदार्थ के अनुसरण से न्यूनतम एक और अधिकतम तीन पदों से वर्ग होता है अन्त में 'इति' शब्द का प्रयोग लेख के अन्त का सूचक होता है। यदि कोई गुप्त बात हो तो अन्त में यह लिखा जाता है कि शेष बात पत्रवाहक से सुनें।

निन्दा प्रशंसा पृच्छा च तथाऽऽख्यानमथार्थना।
प्रत्याख्यानमुपालम्भः प्रतिषेधोऽथ चोदना ।।२
सान्त्वमभ्यवपत्तिश्च भर्त्सनानुनयौ तथा।
एतेष्वर्थाः प्रवर्तन्ते त्रयोदशसु लेखजाः।।३

तत्राभिजनशरीरकर्मणां दोषवचनं निन्दा। गुणवचनमेतेषामेव प्रशंसा। 'कथमेतदिति' पृच्छा। एवमित्याख्यानम्। देहीत्यर्थना। 'न प्रयच्छामि' इति प्रत्याख्यानम्। अननुरूपं भवत इत्युपालम्भः। 'माकार्षीः इति प्रतिषेधः। 'इदं क्रियताम्' इति चोदना। 'योऽहं स भवान्, मम द्रव्यं तद्भवतः' इत्युपग्रहः सान्त्वम्। व्यसनसाहाय्यमभ्यवपत्तिः। सदोषमायतिप्रदर्शनमभिभर्त्सनम्। अनुनयस्त्रिविधोऽर्थकृतावतिक्रमे पुरुषादिव्यसने चेति।

निन्दा, प्रशंसा, पृच्छा, आख्यान, अर्थना, प्रत्याख्यान, उपालम्भ, प्रतिषेध, चोदना सान्त्व, अभ्यवपत्ति, भर्त्सना तथा अनुनय—इन तेरह के द्वारा लेखों का विषय प्रवर्तन करे ।।२-३।। इनमें किसी के कुल, देह, कार्य आदि के विषय में दोष कथन 'निन्दा' और कुल, देह, कार्यादि विषयक गुणों का बखान 'प्रशंसा' है। कार्य के विषय में जिज्ञासा को

'पृच्छा' और इसके उत्तर को 'आख्यान' कहते हैं। किसी प्रकार की याचना 'अर्थना' और याचित वस्तु के देने से अस्वीकार-कथन 'प्रत्याख्यान' है। अमुक कार्य आपके अनुरूप नहीं—यह लिखना 'उपालम्भ' और यह कार्य न करना—ऐसा निर्देश प्रतिषेध' कहा जाता है। करने की प्रेरणा देने को 'चोदना' और मुझमें—तुममें कोई अन्तर नहीं—ऐसा प्रकट करके अपने पक्ष में कर लेने को 'सान्त्व' कहते हैं। संकट में सहायता-प्रदान का वचन 'अभ्यवपत्ति' और किसी के भविष्य को दोष पूर्ण कहकर भय दिखाना 'भर्त्सना' है। अनुनय के तीन भेद हैं—(१) अर्थकरण अर्थात् कार्य के अवश्य करने का अनुरोध (२) अतिक्रम अर्थात् किसी का इच्छित कार्य न होने से कुपित होने पर उसे सन्तुष्ट करने के लिए किया गया अनुनय और (३) पुरुषादिव्यसन अर्थात् किसी के संकट में सहायक होने के लिए किया गया अनुरोध।

प्रज्ञापनाज्ञापरिदानलेखस्तथा परीहारनिसृष्टलेखौ।
प्रावृत्तिकश्च प्रतिलेख एव सर्वत्रगश्चेति हि शासनानि ॥४
अनेन विज्ञापितमेवमाह तद्दीयतां चेद्यदि तत्त्वमस्ति।
राज्ञः समीपे वरकारमाह प्रज्ञापनैषा विविधोपदिष्टा ॥५
भर्तुराज्ञा भवेद्यत्र निग्रहानुग्रहौ प्रति।
विशेषेण तु भृत्येषु तदाज्ञालेखलक्षणम् ॥६
यथार्हगुणसंयुक्ता पूजा यत्रोपलक्ष्यते।
अप्याधौ परिदाने वा भवतस्तावुपग्रहौ ॥७

प्रज्ञापन, आज्ञा, परिदान, परिहार, निसृष्ट, प्रावृत्तिक, प्रतिलेख और सर्वत्रग के भेद से लेख के आठ प्रकार कहे हैं। इनमें प्रज्ञापन के भी अनेक भेद हैं। किसी अधिकारी का दोष दिखाई दे तो प्रमुख अधिकारी राजा को लिखे कि अमुक राजसेवक द्वारा सूचित है कि अमुक अधिकारी ने निधि प्राप्त करके स्वयं रखली है। इस पर राजा की ओर से उत्तर मिले कि यदि ऐसा है तो उससे वह निधि ले लें। आपके इस श्रेयस्कर कार्य के विषय में राजा को सूचित कर दिया गया है। जिस

लेख में भृत्यादि के प्रति निग्रह या अनुग्रह विषयक राजाज्ञा लिखी गई हो, उसे 'आज्ञालेख' कहा गया है। जिसमें किसी का सम्मान प्रदर्शित होता हो, वह राजलेख 'परिदान' कहा जाता है। इस लेख के भी दो प्रकार हैं—(१) किसी के यहाँ मृत्युजनित शोक उपस्थित होने पर संवेदना-सूचक, (२) किसी संकट में रक्षा: स्वरूप कृपा-भाव सूचक ॥४-७॥

जातेर्विषेषु परेषु चैव ग्रामेषु देशेषु च तेषु तेषु ।
अनुग्रहो यो नृपतेर्निदेशात्तज्ज्ञः परीहार इति व्यवस्येत् ॥८
निसृष्टस्थापना कार्या करणे वचने तथा ।
एष वाचिकलेखः स्याद्भवेन्नैसृष्टिकोऽपि वा ॥९
विविधां दवसंयुक्ता तत्त्वजा चैव मानुषीम् ।
विविधां तां व्यवस्यन्ति प्रवृत्ति शासनं प्रति ॥१०
दृष्ट्वा लेखं यथातत्त्वं ततः प्रत्यनुभाष्य च ।
प्रतिलेखो भवेत्कार्यो यथा राजवचस्तथा ॥११
यत्रेश्वरांश्चाधिकृतांश्च राजा रक्षोपकारौ पथिकार्थमाह ।
स र्वत्रगो नाम भवेत्स मार्गे देशे च सर्वत्र च वेदितव्य ॥१२

जिस लेख में जाति विशेष, नगर, ग्राम या देश विशेष के विषय में कर आदि से मुक्ति रूपी राजाज्ञा हो, उस अनुग्रह रूपी लेख को विद्वानों ने 'परिहार' संज्ञक कहा है। जिसमें किसी आप्त पुरुष की कार्य-प्रणाली विषयक प्रामाणिकता का उल्लेख हो उसे 'निसृष्टि' कहते हैं। जिसमें दैवी, मानवी या तत्वगत प्रवृत्ति समाविष्ट हो, उस लेख को 'प्रावृत्तिक' कहते हैं। यह शुभ-अशुभ भेद से दो प्रकार का होता है। किसी के उत्तर में लिखा जाय, वह 'प्रतिलेख' है। इसे लिखने से पूर्व, जो पत्र प्राप्त हुआ है ठीक प्रकार पढ़-समझकर राजा को सुनावे और फिर राजा के अनुसार उसे लिखे। 'सर्वत्रग' लेख वह है, जिसमें यात्रियों की रक्षा या अन्यान्य उपकारी आदेश दुर्ग-पाल, सीमापाल आदि

रक्षा-अधिकारियों को दिए गये हों। वह लेख मार्ग, देश एवं अन्यत्र सर्वत्र प्रचारित होने के कारण 'सर्वत्रग' कहा जाता है ॥८-१२॥

उपायाः सामोपप्रदानभेददण्डाः। तत्र साम पंचविधम्—गुण-संकीर्तनं सम्बन्धोपाख्यानं परस्परोपकारसन्दर्शनमायतिप्रदर्शन-मात्मोपनिधानमिति। तत्राभिजनशरीरकर्मप्रकृतिश्रुतिद्रव्यादीनां गुणागुणग्रहणं प्रशंसा स्तुतिर्गुणसंकीर्तनम्। ज्ञातियौनमौखस्रौ-वकुलहृदयमित्रसंकीर्तनं सम्बन्धोपाख्यानम्। स्वपक्षपरपक्षयो-रन्योन्योपकारसंकीर्तनं परस्परोपकारसन्दर्शनम्। अस्मिन्नेवं कृत इदमावयोर्भवतीत्याशाजननमायतिप्रदर्शनम्। 'योऽहं स भवान्मम द्रव्यं तद्भवता स्वकृत्येषु प्रयोज्यताम्' इत्यात्मोपनिधा-नमिति।

उपप्रदानमर्थोपकारः। शंकाजननं निर्भर्त्सनं च भेदः। वधः परिक्लेशोऽर्थहरणं दण्ड इति।

राज-लेखक को साम,उपप्रदान,भेद और दण्ड रूपी चार उपायों का भले प्रकार ज्ञान होना चाहिए। उनमें गुण संकीर्तन,सम्बन्धोपाख्यान,पर-स्परोपकारसन्दर्शन,आयतिप्रदर्शन और आत्मोपनिधान के भेद से साम के पाँच प्रकार हैं। शत्रु के कुल,देह,कर्म,स्वभाव,ज्ञान,संस्कार, ऐश्वर्य आदि की प्रशंसा हो, वह साम प्रयोग 'गुण संकीर्तन' है। जिसमें जाति, विवाह, मौख (मौखिक), स्रौव (याज्य-याजक सम्बन्ध), कुल, हृदय और मित्र के सम्बन्धों का उल्लेख हो 'सम्बन्धोपाख्यान' है। जिसमें अपने और पराये दोनों पक्षों के पारस्परिक उपकारों को कहा जाय, वह 'पर-स्परोपकार सन्दर्शन' कहा गया है। स्वपक्ष और परपक्ष दोनों की ही कल्याण-कामना द्वारा साम प्रयोग को 'आयतिप्रदर्शन, कहते हैं। पार-स्परिक अभिन्नता प्रदर्शित करते हुए 'मेरे धन को आप अपनी इच्छा के अनुसार उपयोग करने में स्वतन्त्र हैं। ऐसा आत्म-समपर्ण सूचक प्रार्थना 'आत्मोपनिधान' कही गई है। दान द्वारा उपकार ही उप-प्रदान' है। भेद दो प्रकार है—[१] विरोधी के चित्त में शंका उत्पन्न

करना और [२] निर्भर्त्सन । हत्या बन्धन और धन का अपहरण आदि के भेद से दण्ड तीन प्रकार का है।

अकान्तिर्व्याघातः पुनरुक्तमपशब्दः सम्प्लव इति लेखदोषाः। तत्र कालपत्रकमचारुविषमविरागाक्षरत्वमकान्तिः। पूर्वेण पश्चिमस्यानुपपत्तिर्व्याघातः। उक्तस्याविशेषेण द्वितीयमुच्चारणं पुनरुक्तम्। लिङ्गवचनकालकारकाणामन्यथाप्रयोगोऽपशब्दः। अवर्गे वर्गकरणं वर्गे चावर्गक्रिया गुणविपर्यासः सम्प्लव इति।

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगमुपलभ्य च।
कौटिल्येन नरेन्द्रार्थे शासनस्य विधिः कृतः ॥१३

अब लेख के दोषों को व्यक्त करते हैं। अकान्ति, व्याघात, पुनरुक्त, अपशब्द और सम्प्लव—यह पाँच दोष माने गये हैं। इनमें धब्बे वाले कागज पर लिखा, बेडौल एवं असुन्दर अक्षरयुक्त तथा फीकी स्याही से लिखा हुआ लेख-दोष 'अकान्ति' है। जिसमें पूर्ववर्ती और परवर्ती अर्थों में वैषम्य हो वह 'व्याघात' दोष है। लेख में अकारण ही एक शब्द का दूसरी बार प्रयोग 'पुनरुक्त' कहा जायगा। स्त्री पुरुषादि लिंग, वचन, काल, कारक आदि का विपरीत प्रयोग हुआ हो, वह 'अपशब्द' दोष कहा जाता है। विराम के स्थान पर विराम न होना .। अनावश्यक स्थान पर विराम होना एवं गुण-विपर्यय का परि- न क्षित होना लेख में सम्प्लव' संज्ञक दोष का होना सिद्ध करता है। आचार्य कौटिल्य ने सब शास्त्रों के सार रूप में प्रयोग उपलब्ध कर र.जागण की अभीष्ट सिद्धि के लिए शासन-रचना की यह विधि कही है ॥१३॥

कोशप्रवेश योग्य

रत्न-परीक्षा

कोशाध्यक्षः कोषप्रवेश्यं रत्नं सारं फल्गु कुप्यं वा त ज्जात- क.रणाधिष्ठितः प्रमिगृह्णीयात्। ताम्रपर्णिकं पाण्ड्यकवाटकं

पाशिक्यं कौलेयं चौर्णेयं माहेन्द्रं कार्दमिकं स्रौतसीयं ह्रादीयं हैमवतं च मौक्तिकम् । शुक्तिः शंखः प्रकीर्णकं नः च ।ययो

मसूरकं त्रिपुटकं कूर्मकमर्धचन्द्रकं कंचुकितं यमकं कर्तकं खरकं सिक्तकं कामण्डलुकं श्यावं नीलं दुर्विद्धं चाप्रशस्तम् ।

स्थूलं वृत्तं निस्तलं भ्राजिष्णु श्वेतं गुरु स्निग्धं देशविद्धं च प्रशस्तम् । शीर्षकमुपशीर्षकं प्रकाण्डकमवघाटकं तरलप्रतिबन्धकं चेतियष्टिप्रभेदाः ।

कोषाध्यक्ष कोष में रखने योग्य रत्न, सार द्रव्य, फल्गु द्रव्य, कुप्य द्रव्य की परीक्षा के लिए उसमें निपुण पुरुषों से परामर्श लेना चाहिए। अब पहिले मोती परीक्षण की विधि कहते हैं। मोती अर्थात् मुक्ता की उत्पत्ति के दस स्थान कहे हैं। मुक्ता के विभिन्न नाम उन स्थानों के अनुसार ही पड़े हैं। जैसे ताम्रपर्णी के निकटस्थ समुद्र से उत्पन्न होने वाले मोती को ताम्रपर्णिक कहते हैं। पाण्ड्यक वाटक पाण्ड्यदेश के मलय कोटि पर्वत उत्पन्न होता है। पाशिक्य की उत्पत्ति पाशिका नदी से होती है। कौलेय का प्राकट्य कुला नामक नदी से है। इसी प्रकार चौर्णेय चूर्णा नदी से, माहेन्द्र महेन्द्र पर्वत के निकटस्थ समुद्र से कार्दमिक कर्दमा नदी से, स्रोतसीय स्रोतसी नदी से, ह्रादीय श्रीघंट ह्रद से और हैमवत हिमालय से उत्पन्न होता है। मौक्तिक के तीन उत्पत्ति स्थान हैं--शंख, शुक्ति और प्रकीर्णक। मसूरक, त्रिपुटक, कूर्मक, अर्धचन्द्रक, कंचुकित, यमक, कर्तक, खरक, सिक्थक, कामंडलुक, श्याव, नील और दुर्विद्ध के भेद से मोती के तेरह दोष माने गये हैं, जिन्हें क्रमशः इस प्रकार समझना चाहिए--मसूर जैसे आकार का तिकोना, कछुए जैसे आकार का अर्ध चन्द्रकार, छाल जैसे आवरण वाला, जुड़ा हुआ सा, कटाटूटा, खुरदुरा, मोम जैसी बूंद वाला, कमंडलु जैसी आकृतिका, धुंधला, नीला सही स्थान पर न विंधा हुआ। अब मौक्तिक के गुण कहते हैं—स्थूल, गोल, तलहीन, दीप्तिमय, श्वेत, भारी, स्निग्ध और सही स्थान पर बिंधा हुआ मौक्तिक श्रेष्ठ होता है। अब मौक्तिक लहरियों के भेद कहते हैं--

(१) शीर्षक. उपशीर्षक, प्रकांडक, अवघाटक और तरल प्रतिबन्ध—यह पाँच भेद होते हैं।

यष्टीनामष्टसहस्रमिन्द्रच्छन्दः। ततोऽर्धं विजयच्छन्दः। शतं देवच्छन्दः। चतुःषष्टिरर्धहारः। चतुष्पचाशद्रश्मिकलापः। द्वात्रिंशद्गुच्छः। सप्तविंशतिर्नक्षत्रमाला। चतुर्विंशतिरर्धगुच्छः। विंशतिर्माणवकः। ततोऽर्धमर्धमाणवकः। एत एव मणिमध्यास्तन्माणवका भवन्ति। एकशीर्षकः शुद्धो हारः। तद्वच्छेषाः। मणिमध्योऽर्धमाणवकः। त्रिफलकः फलकहारः। पचफलको वा। सूत्रमेकावलो शुद्धा। सैव मणिमध्या यष्टिः। हेममणिचित्रा रत्नावली। हेममणिमुक्तान्तरोऽपवर्तकः। सुवर्णसूत्रान्तरं सोपानकम्। मणिमध्यं वा मणिसोपानकम्।

एक सहस्र आठ संख्यक मुक्ताओं का हार इन्द्रच्छन्द पाँच सौ चार मुक्ताओं का विजयच्छन्द तथा एक सौ मुक्ताओं का हार देवच्छ... नामक होगा। चौंसठ मोतियों का अर्धहार, चौवन का रश्मिकलाप और बत्तीस का गुच्छ कहलाता है। सत्ताईस मोतियों की नक्षत्रमाला चौबीस की अर्द्ध गुच्छ कही जायगी। बीस मुक्ताओं का हार माणवक और दस का अर्ध माणवक होगा। यदि उक्त इन्द्रच्छद आदि हारों में यदि मणि भी लगी हो तो इन्द्रच्छन्दमाणवक और यदि केवल शीर्षक (बड़े मोतियों) से बना हो तो उसे शुद्धहार कहा जायगा। इसी प्रकार उपशीर्षक, प्रकाण्डक, अवघाटक और तरल प्रतिबन्धक नामक मुक्ताओं से बना हुआ इन्द्रच्छन्द हार उन-उन मुक्ताओं के नाम पर होगा, जैसे कि इन्द्रच्छन्द प्रकांडक शुद्धहार इत्यादि। दस दानों के हार में मणि के साथ पांच अथवा तीन सोने के दाने भी हों तो वह फलकहार और केवल एक लड़ी वाले हार को सूत्र कहते हैं। यदि सूत्र में मणि भी लगी हो तो यष्टि और यष्टि में स्वर्ण और मणि भी हो तो रत्नावली कही जायगी। जिसमें क्रमशः स्वर्ण, मणि और मोती के दाने हों तो उसे अपवर्तक कहेंगे। स्वर्ण के दानों के साथ मोती गुंथे हों तो वह माला 'सोपानक' तथा

मणि भी पिरोये हों तो वह 'मणिसोपानक' कही जायगी।

तेनशिरोहस्तपादकटीकलापजालकविकल्पा व्याख्याताः।

मणिः कौटो मालेयकः पारसमुद्रकश्च।

सौगन्धिकः पद्मरागः अनवद्यरागः पारिजातपुष्पकः बालसूर्यको वैडूर्यः उत्पलवर्णः शिरीषपुष्पक उदकवर्णो वशरागः शुकपत्रवर्णः पुष्परागो गोमूत्रको गोमेदकः। नीलावलीयक इन्द्रनीलः कलायपुष्पको महानीलो जाम्बवाभो जीमूतप्रभो नन्दकः स्रवन्मध्यः। शुद्धस्फटिको मूलाटवर्णः शीतवृष्टिः सूर्यकान्ता श्चेति मणयः।

उक्त विवरण में शिर, हाथ, पाँव और कटि में धारण किये जाने वाले हार, माला आदि के विषय में कहा गया। अब खान के विषय में कहेंगे। कौट, मालेयक और पारसमुद्रक नामक तीन प्रकार के मणि-खान से निकलते हैं। उन मणियों को जाति भेद से सौगन्धिक पद्मराग, अनवद्यराग, पारिजातपुष्पक और बालसूर्यक नामक पाँच भेदों में विभक्त किया गया है। वैदूर्यमणि के आठ भेद कहे हैं—उत्पलवर्ण, शिरीषपुष्पक, उदकवर्ण, वंशराग, शुकपत्रवर्ण, पुष्पराग, गोमूत्रक और गोमेद। अब इन्द्रनील के आठ प्रकार बताते हैं—नीलावलीयक, इन्द्रनील, कलायपुष्पक, महानील, जाम्बवाभ, जीमूतप्रभ, नन्दक, और स्रवन्मध्य। स्फटिक मणि के शुद्ध स्फटिक, मूलाटवर्ण शीतवृष्टि और सूर्यकान्त के भेद से चार प्रकार हैं तथा मणि भी इतने ही प्रकार के हैं।

षडस्रश्चतुरस्रो वृत्तो वा, तीव्ररागः संस्थानवानच्छः स्निग्धो गुरुर्चिष्मानन्तर्गतप्रभः प्रभानुलेपो चेति मणिगुणाः।

मन्दरागप्रभः सशर्करः पुष्पच्छिद्रः खण्डो दुर्विद्धो लेखाकीर्ण इति दोषाः।

षट्कोण चारकोण, वृत्त, तीव्रराग, संस्थानमय स्वच्छ, स्निग्ध, भारी, दीप्तिमय, अन्तर्गतप्रभ और प्रभानुलेपी के भेद से मणियों के अनेक आकार हैं। अब मणियों के दोष कहते हैं—मन्दराग (हलका रङ्ग),

मन्दप्रभ, सशर्कर (खुरदुरी) पुष्पच्छिद्र (बूंद जेसे छेद वाली), खण्ड, दुर्विद्ध (अनुचित स्थान पर बिंधी) और लेखाकीर्ण अर्थात् जिस पर लकीरें या धब्बे हों।

विमलकः सस्यकोऽञ्जनमूलकः पित्तकः सुलभको लोहिताक्षो मृगाश्मको ज्योतीरसको मैलेयक आहिच्छत्रकः कूर्पः प्रतिकूर्प सुगन्धिकूर्पः क्षीरपकः शुक्तिचूर्णकः शिलाप्रवालकः पुलकः शुक्र पुलक इत्यन्तरजातयः । शेषाः काचमणयः ।

सभाराष्ट्रकं मध्यमराष्ट्रकं कास्तीरराष्ट्रकं श्रीकटनकं मणिमन्तकमिन्द्रवानकं च वज्रम् ।

अब मणियों के अन्तर्जातीय भेद कहते हैं—विमलक, सस्यक, अंजनमूलक पित्तक सुलभक, लोहिताश्व, मृगाश्मक, ज्योतीरसक, मैलेयक, आहच्छत्रिक, कूर्प, प्रतिकूर्प, सुगन्धिकूर्प, क्षीरपक, शुक्तिचूर्णक शिलाप्रवालक, पुलक और शुक्रपुलक—यह अठारह हैं इनके अतिरिक्त जो मणि हैं वे कांचमणि कहे जाते हैं। हीरा जाति से छः प्रकार का होता है। उसके सभाराष्ट्रक, मध्यमराष्ट्रक, कास्तीरराष्ट्रक, श्रीकटनक, मणिमन्तक और इन्द्रवानक—यह भेद कहे गये हैं।

खनिः स्रोतः प्रकीर्णकं च योनयः। मार्जाराक्षकं च शिरीषपुष्पकं गोमूत्रकं गोमेदकं शुद्धस्फटिकं मूलाटीपुष्पकवर्णं मणिवर्णानामन्यतमवर्णमिति वज्रवर्णाः । स्थूलं स्निग्धं गुरु प्रहारसहं समकोटिकं भाजनलेखि तर्कुभ्रामि भ्राजिष्णु च प्रशस्तम् ।

नष्टकोणं निरस्रि पार्श्वापवृत्तं च अप्रशस्तम् ।

प्रवालकमालकन्दकं वैर्णिकं च रक्तं पद्मरागं च करटं गर्भिणिकावर्जमिति ।

हीरे की उत्पत्ति खान, जलस्रोत और हाथी दाँत के मूल भाग से होती है। इसका विविध वर्णों में होना कहा है। यह बिल्ली के नेत्र जैसा भूरा, शिरीष पुष्प जैसा गोमूत्र और गोरोचन जैसा स्फटिक मणि जैसा सफेद, मुलहठी-पुष्प जैसा तथा ऊपर कही हुई विभिन्न मणियों के

समान चमक वाला होता है। स्थूल अर्थात् मोटा और बड़ा, चमकदार, भारी, चोटों को सहने वाला अर्थात् तोड़ने से भी न टूटने वाला, समान कोटि वाला, भाजनलेखि, तर्कभ्रामि अर्थात् तकुए के घूमने जैसी दीप्ति से युक्त और भ्राजिष्णु अर्थात् अधिक चमकता हुआ हीरा प्रशस्त समझा जाता है। जिसका कोना नष्ट हो गया हो। (टूट या घिस गया हो), जिसमें पहल न हो या किसी कोने के विकृत होने से बेडौल प्रतीत हो, उस हीरे को अप्रशस्त समझे। अब प्रवाल अर्थात् मूँगा की उत्पत्ति बताते हैं। अलकन्दन संज्ञक समुद्र तट पर उत्पन्न और यूनान के विवर्ण संज्ञक समुद्री स्थल में उत्पन्न, जिनके नाम क्रमश: आलकंदक और वैवर्णिक। यह लाल रंग का या लाल कमल के वर्ण का होता है। जो मूँगा कीड़ों द्वारा खा लिया हो एवं जो बीच में मोटा हो वह अच्छा नहीं माना जाना।

चन्दनम्—सातनं रक्तं भूमिगन्धि। गोशीर्षकं कालताम्रं मत्स्यगन्धि। हरिचन्दनं शुकपत्रवर्णमाम्रगन्धि। तार्णसं च। ग्रामेरुकं रक्तं रक्तकालं वा बस्तमूत्रगन्धि। दैवसभेयं रक्तं पद्मगन्धि। जावकं च। जोङ्गकं रक्तं रक्तकालं वा स्निग्धम्। तौरूपं च। मालेयकं पाण्डुरक्तम्। कुचन्दनं कालवर्णकं गोमूत्रगन्धि। कालपर्वतकं रूक्षमगुरुकालं रक्तं रक्तकालं वा। कोशकारपर्वतकं कालं कालचित्रं वा। शीतोदकीयं पद्माभं कालस्निग्धं वा। नागपर्वतकं रूक्षं शैवलवर्णं वा। शाकलं कपिलमिति।

अब चन्दन के विषय में कहते हैं। यह सोलह स्थानों में उत्पन्न होता है। इसके नौ रङ्ग एवं छः प्रकार की गन्ध तथा ग्यारह गुण बताये गये हैं सातन देश में उत्पन्न चन्दन का वर्ण लाल तथा गन्ध तत्काल भीगी हुई भूमि के समान होती है। गोशीर्ष देश में उत्पन्न हुआ चन्दन मिश्रित वर्ण का और मत्स्य जैसी गन्ध का होता है। हरि देश में तथा तृणसा नदी के तट पर उत्पन्न चन्दन तोते के पंख के समान रङ्ग वाला और आम जैसी गन्ध का होता है। ग्रामेरु

देश में उत्पन्न चन्दन का रङ्ग लाल अथवा कत्थई होता है और उसमें अजामूत्र जैसी गन्ध होती है। देवसभा नामक स्थान में या जावक देश में उत्पन्न चन्दन का रंग लाल और कमलपुष्प जैसी गन्ध होती है। जोंग देश (कामरूप) का चन्दन लाल या कत्थई तथा पद्मपुष्प की गन्ध का और चमकयुक्त होता है तथा तुरूप देश में उत्पन्न 'तौरूप' संज्ञक चन्दन भी उसी के समान होता है। मलयगिरि का लाल-श्वेत मिश्रित रङ्ग का और पंकजपुष्प जैसी गन्ध का तथा कुचन्दन नाम का नितान्त काला एवं गोमूत्र जैसी गन्ध का होता है। काल पर्वत का रूखा,अगर के समान काला या कत्थई तथा कोशकार पर्वत का काला या काले चितकबरे रंग का होता है। शीतोदकीय पद्म जैसी आभा वाला, काला एवं चिकना होता है। नाग पर्वत का रूखा एवं शैवल वर्ण का तथा शाकल देश का पीला-लाल रंग मिश्रित वर्ण का होता है।

लघु स्निग्धमाश्यानं सर्पिःस्नेहलेपि गन्धसुखं त्वगनुसार्यनुल्बणमविरागयुष्णसहं दाहग्राहि सुखस्पर्शनमिति चन्दनगुणाः।

अगुरु जोङ्गकं कालं कालचित्रं मण्डलचित्रं वा श्यामं दोङ्गकम्। पारसमुद्रकं चित्ररूपम्। उशीरगन्धि वेति। गुरु स्निग्धं पेशलगन्धि निर्हारि अग्निसहमसंप्लुतधूमं समगन्धं विमर्दसहमित्यगुरुगुणाः।

लघु, स्निग्ध आश्यान, घी की चिकनाई से मिल कर लगने वाला सुखमय गन्ध वाला, चर्म पर लगने से आनंद देने वाला, शनैः शनैः प्रभावोत्पादक, अपने रङ्ग और गन्ध को न छोड़ने वाला, उष्णता को सहने वाला, देह की जलन को खींच लेने वाला और स्पर्श से प्रफुल्लित करने वाला—यह ग्यारह गुण चन्दन में होते हैं। अब अगर के विषय में कहते हैं—जोंग देश का कालः, चितकबरा या चित्र-विचित्र मंडल वाला, दोंगक में उत्पन्न काला, सिंहलादि देशों में पैदा हुआ अनेक रङ्ग का तथा खस और चमेली जैसी गंध का होता है।

उसके गुण आठ कहे हैं। यथा भारी, स्निग्ध, मनोहारी गन्ध का, दूर तक सुगन्ध देने वाला, अग्नि के ताप को सहन करने वाला, जिसका धुँआ मन को बुरा न लगने वाला, सदैव एक सी सुगन्ध वाला तथा रगड़ने पर भी अपनी गन्ध न छोड़ने वाला होता है।

तैलपर्णिकम् अशोकग्रामिकं मांसवर्णं पद्मगन्धि। जोङ्गकं रक्तपीतकमुत्पलगन्धि गोमूत्रगन्धि वा। ग्रामेरुकं स्निग्धं गोमूत्रगन्धि। सौवर्णकुडचकं रक्तपीतं मातुलुङ्गगन्धि। पूर्णकद्वीपकं पद्मगन्धि नवनीतगन्धि वेति।

भद्रश्रीयम्--पारलौहित्यकं जातीवर्णम्। आन्तरवत्यमुशीरववर्णम्। उभयं कुष्ठगन्धि चेति।

कालेयकः स्वर्णभूमिजः स्निग्धपीतकः। औत्तरपर्वतको रक्तपीतकः। इति साराः।

पिण्डक्काथधूमसहमविरागि भोगानुविधायि च। चन्दनागुरुवच्च तेषां गुणाः।

अब तैलपर्णिक नामक चन्दन आदि के विषय में कहते हैं। कामरूपस्थ अशोक ग्राम का माँस के समान रङ्ग और कमल जैसी गन्ध का होता है। जोंग का लाल-पीले वर्ण का एवं कमल या गोमूत्र जैसी गन्ध वाला होता है। ग्रामेरु में जायमान चिकना और गोमूत्र गंध का, स्वर्णकुड्य देश में उत्पन्न लाल-पीले रङ्ग का और नीबू जैसी गन्ध का तथा पूर्णक द्वीप वाले में कमल या मक्खन जैसी सुगन्ध का होता है। भद्रश्रीय चन्दन के दो प्रकार हैं—लौहित्यनद के पार जूही पुष्प के वर्ण जैसा तथा आन्तरवती के तट का भद्रश्रीय उशीर के वर्ण का होता है। इन दोनों में कुठ जैसी गंध होती है। कालेयक संज्ञक चन्दन स्वर्णभूमि में उत्पन्न हुआ चिकना और पीला तथा हिमालय में जायमान लाल-पीला होता है। यह सार द्रव्यों का वर्णन पूरा हुआ। यह तैलपर्णिक, भद्रश्रीय और कालेयक पिसने, पकने और जलने पर अपनी सुगंध नहीं छोड़ते। अन्य द्रव्यों में मिलने या पुराने हो जाने पर

भी अविकृत रूप से अर्थात् रूप-रंग में पूर्ववत बने रहते हैं और अन्यान्य गंध-द्रव्यों में मिश्रित किये जा सकते हैं। चन्दन और अगर के सभी गुणों का इन तीनों में विद्यमान रहना बताया जाता है।

कान्तनावकं प्रैयकं चोत्तरपर्वतकं चर्म। कान्तनावकं मयूरग्रीवाभम्। प्रैयकं नीलपीतश्वेतलेखि बिन्दुचित्रम्। तदुभयमष्टाङ्गुलायामम्।

बिसी महाबिसी च द्वादशग्रामीये। अव्यक्तरूपा दुहिलिका चित्रा वा बिसी। परुषा श्वेतप्राया महाबिसी। द्वादशांगुलायाममुभयम्।

श्यामिका कालिका कदली चन्द्रोत्तरा: शाकुला चारोहजाः। कपिला बिन्दुचित्रा वा श्यामिका। कालिका कपिला कपोतवर्णा वा। तदुभयमष्टाङ्गुलायामम्। परुषा कदली हस्तायता। सैव चन्द्रचित्रा चन्द्रोत्तरा। कदली त्रिभागा कोमलदण्डचित्रा कृतकर्णिकाऽजिनचित्रा चेति।

अब फल्गुद्रव्यों में पहले चमड़े के विषय में कहते हैं। कान्तनव देश या प्रेय देश में उत्पन्न चमड़ा हिमालय पर उत्पन्न होने के कारण उत्तरपूर्वक कहलाता है। कान्तनावक मोर के कंठ जैसे रंग का तथा प्रैयक नील-पीत रंग का सफेद रेखा आदि से विचित्र लगता है। दोनों प्रकार के चर्म की चौड़ाई आठ अंगुल की होती है। विसी और महाविसी संज्ञक चर्म द्वादशग्राम में उत्पन्न होते हैं। उनमें जिसका रंग स्पष्ट न दीखे और जो चित्र-विचित्र रोयों से युक्त हो वह चर्म विसी तथा रूक्ष और श्वेतवर्ण का चर्म महाविसी कहा जाता है। यह चर्म बारह अंगुल चौड़े होते हैं। हिमगिरि के आरोहज नामक स्थान में श्यामिका, कालिका, कदली. चन्द्रोत्तरा और शाकुला के भेद से पाँच प्रकार का होता है। उनमें कपिल वर्ण का, चितकबरी बूँदों वाला श्यामिका और कपिल या कपोत जैसे वर्ण का कालिका कहा जाता है। इन दोनों प्रकार के चर्म की चौड़ाई आठ अंगुल होती है। छूने में

खुरदरे और एक हाथ चौड़े को कदली तथा चन्द्राकार मंडल भी हों तो चन्द्रोत्तरा कहा जायगा। कदली के तिहाई भाग चौड़ाचर्म दण्डचित्रा, गोल-गोल गाँठों से युक्त तथा मृगचर्म के समान प्रतीत होता है।

सामूरं चीनसी सामूली च बाह्लवेयाः। षट्त्रिंशदंगुलमञ्जनवर्णं सामूरम्। चीनसी रक्तकाली पाण्डुकाली वा। सामूली गोधूमवर्णेति। सातिना नलतूला वृत्तपुच्छा च औद्राः। सातिना कृष्णा। तलतूला नलतूलवर्णा। कपिला वृत्तपुच्छा च। इति चर्मजातयः। चर्मणां मृदु स्निग्धं बहुलरोम च श्रेष्ठम्।

शुद्धं शुद्धरक्तं पद्मरक्तं च आविकं खचित वानचित्रं खण्डसंधात्यं तन्तुविच्छिन्नं च।

सामूर, चीनसी और सामूली के नाम भेद से बाह्णव प्रदेशोत्पन्न चर्म तीन प्रकार का होता है। सामूर छत्तीस अंगुल चौड़ा और अंजन जैसा काला, चीनसी लाल-काले या पीले-काले मिश्रित रंग का तथा सामूली गेंहुआ वर्ण का होता है। उद्र संज्ञक जलचर का चर्म सातिना, नलतूला और वृत्तपुच्छा के भेद से तीन प्रकार का है, जिनमें सातिना का रङ्ग कृष्ण, नलतुला का मूंज जैसा और वृत्तपुच्छा का कपिल वर्ण का होता है। यह चर्म के विविध भेद कहे गये हैं। इनमें कोमल, स्निग्ध और अधिक रोयों से युक्त चर्म श्रेष्ठ माना जाता है। आविक अर्थात् भेड़ के ऊन से बने वस्त्र सफेद, शुद्ध लाल या कमल जैसे लाल वर्ण के होते हैं। यह वस्त्र चार प्रकार के कहे गये हैं—(१) खचित अर्थात् कसीदाकारी से युक्त, (२) वानचित्र अर्थात् पुष्प पत्तियों की बुनाई वाला, (३) खण्डसंघात्य अर्थात् पट्टियों और विविध बुनावटों वाला और (४) तंतुविच्छिन्न अर्थात् जालीदार बुनाई से युक्त।

कम्बलः कौचपकः कुलमितिका सौमितिका तुरगास्तरणंतर्णकं तलिच्छकं वारवाणः परिस्तोमः समन्तभद्रकं च आविकम्।

पिच्छिलमार्द्रमिव च सूक्ष्मं मृदु च श्रेष्ठम्। अष्टप्लौतिसंघात्या कृष्णा भिङ्गिसी वर्षवारणमपसारक इति नैपालकम्।

सम्पुटिका चतुरस्त्रिका लम्बरा कटवानकं प्रावरकः सत्तलिकेति मृगरोम।

यह वस्त्र दस प्रकार के होते हैं—१--कम्बल, २—कौचपक, ३—कुलमितिका (हाथी की झूल रूपी), ४--सौमितिका, ५--तुरगास्तरण (अश्व की पीठ का आवरण), ६--वर्णक (रंगीन), ७—तलिच्छक, ८—वारवाण (कम्बल का चोगा) ९—परिस्तोम और १०—समन्तभद्रक (चारखाने का)—यह दसों भेद आविक अर्थात् ऊनी वस्त्र या कम्बल के ही हैं। जो आविक चिकना, भीगा-सा महीन और कोमल हो, वह श्रेष्ठ है। आठ पट्टियों को जोड़ कर बनाया हुआ कम्बल भिंगिसी कहा जाता है। यह वर्षा के समय भीगने से बचने के लिए उपयोगी होता है। अपसारक नाम के कम्बल में एक ही पट होता है, अनेक पट्टियों को जोड़ कर नहीं बनाया जाता है। इन कम्बलों का निर्माण नैपाल में होता है। मृगरोम से निर्मित वस्त्र छः प्रकार के होते हैं—सम्पुटिका, चतुरस्त्रिका (दुशाला), कम्बरा अर्थात् लोई, कटवानक, प्रावरक अर्थात् ओढ़ने की चादर तथा सत्तलिका अर्थात् बिछाने की चादर।

वाङ्गकं श्वेतं स्निग्धं दुकूलं पौण्ड्रकं श्यामं मणिस्निग्धं सौवर्णकुडचकं सूर्यवर्णं मणिस्निग्धोदकवानंचतुरस्त्रवानं व्यामिश्रवानं च। एतेषामेकशुकांमर्धद्वित्रिचतुरंशुकमिति। तेन काशिकं पौण्ड्रकं च क्षौमं व्याख्यातम्।

वांगक, पौण्ड्रक और सौवर्णकुण्ड्यक के भेद से दुकूल के तीन प्रकार कहे हैं। इनमें वांगक अर्थात् वंगदेश में जायमान रेशमी वस्त्र श्वेत एवं चिक्कण होता है। पुण्ड्रदेश में उत्पन्न का रंग श्याम और मणि जैसी आभा होती है। सुवर्णकुड्य में बने हुए रेशमी वस्त्र का वर्ण सूर्यरश्मियों जैसा होता है। इन दुकूलों की बुनाई के भी तीन प्रकार है—१—मणिस्निग्धोदकवान, २--चतुरस्त्रवान और ३—व्यामिश्रवान। इनमें

प्रथम प्रकार की बुनाई तन्तुओं को जल में भिगोकर कलाई से रगड़ने के पश्चात् की जाती है। दूसरी बुनाई में ताना-बाना समान सूत का रहता है और तीसरे प्रकार में सूती-रेशमी तन्तुओं के मिश्रण से या विभिन्न रङ्ग के तन्तुओं से बुनाई की जाती है। इनमें समान सूत के ताने-बाने का महीन वस्त्र प्रशस्त रहता है। ताने में दो सूत और बाने में एक सूत वाले वस्त्र अर्धांशुक, जिनके ताने-बाने में दो-दो सूत लगें वह द्वयंशुक अर्थात् दुसूती संज्ञक वस्त्र होता है। ऐसे ही त्र्यंशुक और चतुरंशुक के विषय में समझना चाहिए। द्व्यंशुक, त्र्यंशुक और चतुरंशुक क्रमशः एक से दूसरा मोटा बनता है। इस प्रकार काशी और पुण्ड्र देश के दुकूलों के विषय में समझिये।

मागधिका पौण्ड्रिका सौवर्णकुड्यका च पत्रोर्णाः। नागवृक्षो लिकुचोव कुलो वटाश्च योनयः। पीतिकाः नागवृक्षिका, गोधूमवर्णा लैकुची, श्वेता वाकुली, शेषा नवनीतवर्णा। तासां सौवर्ण्यकुड्यका श्रेष्ठा। तया शौशेयं चीनपट्टाश्च चीनभूमिजा व्याख्याताः। माधुरमापरान्तकं कालिङ्गकं काशिकं वाङ्गकं वात्सकं माहिषकं च कार्पासिकं श्रेष्ठमिति।

मागधिका, पौण्ड्रिका, और सौवर्णकुड्य अर्थात् मगध, पुण्ड्र और सुवर्णकुड्य में उत्पन्न वृक्षों के पत्रों पर कीड़े की लार एक प्रकार की पत्रोर्णा बन जाती है। पत्रोर्णा बनने वाले पत्ते नाग, लिकुच, वकुल और वटवृक्ष के होते हैं। नागवृक्ष पर उत्पन्न पत्रोर्णा पीत वर्ण की, लिकुच की गेंहुआ रंग की, वकुल अर्थात् मौलश्री की सफेद रंग की और वट की नवनीत जैसे वर्ण की होती है। इन सब में सौवर्णकुड्य पत्रोर्णा को सब से उत्तम होती है। इस प्रकार यह पत्रोर्णा द्वारा रेशमी पट्ट और चीनपट्ट के विषय में भी कह दिया गया। अब सूती वस्त्रों के विषय में कहते हैं, जो कि कपास से निर्मित श्रेष्ठ होते हैं। माधुर, अपरान्तक कालिंगक, काशिक, वांगक वात्सक और माहिषक के नाम से इन वस्त्रों के सात भेद उत्पत्तिस्थानानुसार किये गये हैं।

अतः परेषां रत्नानां प्रमाणं मूल्यलक्षणम् ।
जातिं रूपं च जानीयान्निधानं नवकर्म च ॥१
पुराणप्रतिसंस्कारं कर्मगुह्यमुपस्करान् ।
देशकालपरीभोगं हिंस्राणां च प्रतिक्रियाम् ॥२

उपर्युक्त पदार्थों के अतिरिक्त अन्यान्य रत्नों के प्रमाण, मूल्य, लक्षण, जाति, रूप, भंडार एवं नवकर्म अर्थात् शोधन, वेधन आदि का भी ज्ञान रखे। पुरानी वस्तुओं का प्रति संस्कार (जीर्णोद्धार), कर्मगुह्य (रङ्गना, घिसना आदि), उपस्कर (उपकरण आदि), देश-कालानुसार उनके उपभोग और उन्हें हानि पहुँचाने वाले जीवों (चूहे आदि) के प्रतीकार के उपाय को भले प्रकार जानने चाहिए ॥१-२॥

द्वादशोऽध्यायः

खानों का संचालन

आकराध्यक्षः शुल्बधातुशास्त्ररसपाकमणिरागज्ञस्तज्ज्ञसंघो वा तज्ज्ञातकर्मकरोपकरणसम्पन्नः किट्टमूषाङ्गारभस्मलिंगं वाऽऽकरं भूतपूर्वमभूतपूर्वं वाभूमिप्रस्तररसधातुमत्यर्थं वर्णगौरवमुग्रगन्धरसं परीक्षेत।

अब खानों के विषय में कहते हैं। आकर अर्थात् खान का अध्यक्ष धातु-विज्ञान, धातु शास्त्र, रस, पाक और मणिराग आदि विषयक सभी ज्ञानों में पारंगत होना चाहिए। इसके लिए उसे कार्यकुशल कर्मचारियों एवं उनके द्वारा प्रयुक्त उपकरणों का स्वयं कार्य करके अनुभव प्राप्त करना चाहिए। इस प्रकार इस विषय में जानकर और अनुभवी आकराध्यक्ष पुरानी खानों की कीट अर्थात् धातु का मल, मूषा, अंगार और भस्म के चिह्न के अनुसार उनका परीक्षण करे या नई खान, उसकी भूमि, पत्थर या रस आदि की धातु आदि का विवेचन करता हुआ रंग, भार, गंध, तीव्रता आदि के निरीक्षण द्वारा परीक्षा करे।

पर्वतानामभिज्ञातोद्देशानां बिलगुहोपत्यकालयनानिगूढखाते-ष्वन्तः प्रस्यन्दिनो जम्बूचूततालफलपक्वहरिद्राभेदहरितालमनः शिलाक्षौद्रहिंगुलुकपुण्डरीकशुकमयूर पत्रवर्णाःसवर्णोदकौषधीपर्यन्ताश्चिक्कणा विशदा भारिकाश्च रसाः कांचनिकाः।

अप्सु निष्ठ्यूतास्तैलवद्विसर्पिणः पंकमलग्राहिणश्च ताम्ररूप्ययोः शतादुपरिवेद्धारः।

तत्प्रतिरूपकमुग्रगन्धरसं शिलाजतु विद्यात्।

खोज के परिचित स्थानों पर जाकर वहाँ के भूछिद्र, गुहा, तलहठी, काट कर बनाई हुई गुफाओं या गोपनीय गढ़ों में प्रवाहमान जामुन, आम, ताड़, पक्व हरिद्राखण्ड, हरताल, हिंगुल, श्वेतकमल, तोता या मोर के पंख जैसे रंग वाले जल या ओषधि आदि वहाँ या समीपस्थ भूखंड में परिलक्षित हो तथा चिकना, स्वच्छ और भारी रस हो तो उसे स्वर्ण को उत्पन्न करने वाला रस जाने। उक्त सौवर्णिक रस यदि जल में पड़ कर तैल के समान फैले और जल के मैल आदि को नीचे बैठा दे तो वह रस सौ पल तांबे और सौ पल चाँदी पर एक पल के के परिणाम डाल कर देखना चाहिए। यदि उससे वह स्वर्णिम हो जाय तो वहाँ स्वर्ण की खान का होना समझना चाहिए। उस रस के समान यदि कोई रस उग्र गंध एव स्वभाव वाला हो तो वह शिला-जीत का मूल होगा।

पीतकास्ताम्रपीतका वा भूमिप्रस्तरधातवो भिन्ना नीलराजिवन्तो मुद्गमाषकृसरवर्णा वा दधिबिन्दुपिण्डचित्रा हरिद्राहरीतकीपद्मपत्रशैवलयकृत्प्लीहानवद्यवर्णा भिन्नाश्चुञ्चुबालुकालेखाबिन्दुस्वस्तिकवन्तः सगुलिका अर्चिष्मन्तस्ताप्यमाना न भिद्यन्ते। वहुफेनधूम्राश्च सुवर्णधातवः प्रतीवापार्थास्ताम्ररूप्यवेधनाः।

पीत, लाल अथवा ताम्र-पीत मिश्रित वर्ण की उस भूमिधातु और प्रस्तर धातु को भी स्वर्णधातु ही कहेंगे। तोड़ने पर उसके भीतर

नीली या मूँग, उड़द, तिल में से किसी के रंग रेखा दिखाई दे और वह दधि के छींटों या सूक्ष्म कणों के समान बिन्दु युक्त और दधि-पिंड के समान मोटी बूँदों से चित्रित एवं हरिद्रा, हरड़, कमलपत्र, सेवार, यकृत्, या प्लीहा के दोष-रहित वर्ण की हो। उसे तोड़ने पर सूक्ष्म बालू की रेखा, बूँद और स्वस्तिक युक्त, गुटिकामय, चमकदार, तपाने पर भी न फूटने वाली तथा अधिक फेन एवं धूम वाली एवं ताम्र और रजत का चूर्ण डालने से वह उसे वेध सके।

शंखकर्पूरस्फटिकनवनीतकपोतपारावतविमलकमयूरग्रीव-वर्णाः सस्यकगोभेदकगुडमत्स्यण्डिकावर्णाः कोविदारपद्मपाटलीक-लायक्षौमातसीपुष्पवर्णाः ससीसाः साञ्जना विस्रा भिन्नाः श्वेताभाः कृष्णाः कृष्णाभाः श्वेताः सर्वे वा लेखाबिन्दुचित्रा मृदवो ध्मायमाना न स्फुटन्ति बहुफेनधूमाश्च रूप्यधातवः।

शंख, कर्पूर, स्फटिक, नवनीत, कपोत, पारावत, विमलक और मोर के कंठ जैसे वर्ण का खनिज द्रव्य चाँदी का उत्पन्न करने वाला होता है। सस्यक मणि, गोमेद मणि, गुड़, शर्करा, कचनार, कमल, पाटली, मटर, क्षौम और अलसी जैसे वर्ण का पदार्थ, जिसमें सीसा और सुरमा मिश्रित हो और जिसमें दुर्गन्ध हो, तोड़ने पर बाहर सफेद और भीतर से कृष्णवर्ण की या बाहर कृष्ण और भीतर सफेद वर्ण की आभा वाला हो। अथवा उक्त वर्णों के साथ ही विभिन्न वर्णी रेखाओं और बूँदों से युक्त प्रतीत हो, कोमल किन्तु अग्नि पर तपाने से न फूटने वाला, अधिक फेन एवं धुँआ युक्त वह पदार्थ रजत उत्पादक समझना चाहिए।

सर्वधातूनां गौरववृद्धौ सत्त्ववृद्धिः। तेषामशुद्धा मूढगर्भा वा तीक्ष्णमूत्रक्षारभाविता राजवृक्षवटपीलुगोपित्तरोचना महिषखर-करभमूत्रलेण्डपिण्डबद्धास्तत्प्रतीवापास्तदवलेपा वा विशुद्धाः स्रवन्ति।

यवमाषतिलपलाशपीलुक्षारैर्गोक्षीरैर्वा कदलीवज्रकन्दप्रतीवापो मार्दवकरः ।

मधुमधुकमजापयः सतैलं घृतगुडकिण्वयुत सकन्दलीकम् ।
यदपि शतसहस्रधा विभिन्नं भवति मृदु त्रिभिरेव तन्निषेकैः ॥१
गोदन्तशृङ्गप्रतीवापो मृदुस्तम्भनः ।

उपर्युक्त अथवा आगे वर्णित सब धातुओं में गुरुत्व के अनुसार ही सारत्व की विद्यमानता समझी जाती हैं । अर्थात् जो धातु जितनी अधिक भारी होगी, उसमें उतना ही अधिक सार होगा । जिन धातुओं में अन्य धातुओं के मिल जाने से अशुद्धता के कारण सारतत्व अप्रकट हो, उनका शोधन करना चाहिए । इसके लिए तीक्ष्ण मूत्र (अर्थात् मनुष्य, अश्व या हाथी का मूत्र) और तीक्ष्ण क्षार से अशुद्ध धातुओं को भावना देनी चाहिए । अथवा उन धातुओं को अमलताश, वट, पीलू, गोपित्त, गोरोचन, भैंस-गधा और ऊँट के शिशु के मूत्र या मल में में मिला कर या लपेट कर उस धातु को अग्नि में तपावे तो वह धातु शुद्ध हो जाती है । यदि सोने-चांदी में मुलायमी लानी हो तो उसमें जौ, उड़द, तिल, ढाक और पीलू वृक्षों की छाल की भस्म तथा गौ और बकरी के दूध और जिमीकन्द में भावित करे । यदि मधु, मुलहठी, अजा-दुग्ध, तैल, घृत गुड़, किण्व और कन्दली को एक साथ पीस कर कल्क बनावे और इसकी तीन भावना सोने आदि किसी भी धातु में दे तो वह चाहे कैसा भी दृढ़ और न टूटने वाला हो, इस प्रकार से मुलायम हो जाता है ॥१॥ गोदन्त और गोशृंग के चूर्ण में स्वर्ण आदि जिस धातु को भी भावना दी जाती है, उसकी कोमलता नष्ट होकर कठोरता आ जाती है ।

भारिकः स्निग्धो मृदुश्च प्रस्तरधातुर्भूमिभागो वा पिंगलो हरितः पाटलो लोहितो वा ताम्रधातुः । काकमेचकः कपोतरोचनावर्णः श्वेतराजिनद्धो वा विस्रः सीसधातुः । ऊषरकर्बुरः पक्वलोष्ठवर्णो वा त्रपुधातुः । कुरुम्बः पाण्डुलोहितः सिन्दुवारपुष्पवर्णो

वा तीक्ष्णधातुः । काकाण्डभूर्जपत्रवर्णो वा वैक्रन्तकधातुः । अच्छि स्निग्धः सप्रभो घोषवान् शीततीव्रस्तनुरागश्च मणिधातुः । धातुसमुत्थितं तज्ज्ञातकर्मान्तेषु प्रयोजयेत ।

भारी, स्निग्ध और कोमल प्रस्तर धातु या भूमि-भाग में तांबे की उत्पत्ति संभव है। वह उत्पत्ति स्थान भूरा, हरा, नीला, हल्का या लाल या गहरा लाल होता है। जहाँ सीसा होता है, वह स्थान काक जैसे काले वर्ण का, कबूतरी रंग या गोरोचन जैसे रंग का होता है। वहाँ धवल रेखाएँ होती हैं, जिनसे दुर्गंध आती है। रांगा के उत्पत्ति स्थान का वर्ण अनुर्वरा भूमि जैसा, पाण्डुर या ईंट के वर्ण जैसा होता है। जहाँ का पाषाण मृदु हो, पृथिवी का वर्ण भूरा, रक्त या सम्हालू के पुष्प जैसा हो, वहाँ किसी तीक्ष्ण धातु—इस्पात आदि का होना संभव है। जिस भूखण्ड का वर्ण वायस-अण्ड या भोजपत्र के समान हो वहाँ भी इस्पात या लौह की संभावना रहती है। आभामय, चिक्कण, अग्नि में डालने पर चटचट शब्द युक्त, अत्यन्त शीतल और कुछ विवर्ण जैसे भूखण्ड में मणियों की उत्पत्ति की संभावना हो सकती है। इन धातुओं से उपलब्ध धन को उत्पादन कार्य में ही लगावे।

कृतभाण्डव्यवहारमेकमुखमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतविक्रेतृणां स्थापयेत् । आकरिकमपहरन्तमष्टगुणं दापयेदन्यत्र रत्नेभ्यः । स्तेनमनिसृष्टोपजीविनं च बद्धं कर्म कारयेत् । पण्डोपकारिणं च ।

व्ययक्रियाभारिकमाकरं भागेन प्रक्रयेण वा दद्यात् । लाघविकमात्मना कारयेत् । लोहाध्यक्षस्ताम्रसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटवृत्तकंसताललोहकर्मान्तान् कारयेन । लोहभाण्डव्यवहारं च ।

यदि कोई व्यक्ति राज्य की चोरी से स्वर्णादि धातु को खान से निकाले या क्रय-विक्रय करे अथवा बनावे तो उसे अर्थ दण्ड दिया जाना उचित है, जो कि उसके मूल्य से आठ गुना होना चाहिये। यदि कोई अन्य खनिज पदार्थ खान से चोरी करके निकाल ले तो उसे बन्दी बना कर कठोर कार्य ले और जो उस कार्य में सहायक हो उसे भी कठोर दण्ड

देना उचित है। खान के संचालन में भारी व्यय हो रहा हो और अधिक लोगों के जुटने से कार्य सिद्धि की संभावना हो तो दूसरों को भागीदार बना कर राजा उसका प्रबन्ध उन्हें सौंप दे। यदि खान में अल्प व्यय या-अल्पश्रम से कार्य चल सके तो खान का प्रबन्ध राज्य के द्वारा ही किया जाय। लोहाध्यक्ष को ताँबा, सीसा, वंग, लौह, लौहवृत्त, काँसा, हरताल तथा विभिन्न प्रकार की लौह जातीय धातुओं के उत्पादनार्थ कारखाना लगा कर उत्पन्न हुए माल का व्यवसाय करे।

लक्षणाध्यक्षश्चतुर्भागं ताम्रं रूप्यरूपं तीक्ष्णत्रपुसीसाञ्जनानामन्यतमं माषबीजयुक्तं कारयेत्। पणमर्धपणं पादमष्टभागमिति। पादाजीवं ताम्ररूपं माषकमर्धमाषकं काकणीमर्धकाकणीमिति। रूपदर्शकः पणयात्रां व्यावहारिकीं कोशप्रवेश्यां च स्थापयेत्।

रूपिकमष्टकं शतम्। पंचकशतं व्याजीम्। पारीक्षिकमष्टभागिकं शतम्। पंचविंशतिपणमत्ययं चान्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृपरीक्षितृभ्यः। खन्यध्यक्षः शखवज्रमणिमुक्ताप्रवालक्षारकर्मान्तान्कारयेत्। पणनव्यवहारं च।

अत्र टकसाल के अधिकारी अर्थात् लक्षणाध्यक्ष के कर्त्तव्य-विषय में कहते हैं। उसे एक पण अर्थात् रुपये जैसा सिक्का बनाने के लिए चार माशे ताम्र, एक माशा राँग, सीसा अथवा सुरमा और ग्यारह माशे चाँदी मिलावे। इसी अनुपात से आधा, चौथाई या अष्टमांश के सिक्के ढलवाने चाहिए। पादपण अर्थात् चौथाई या चवन्नी का सिक्का ताम्र का भी बनाया जा सकता है, जिसे 'माषक' कहा जाता है, जिसमें ग्यारह माशे ताम्र, चार माशे रजत और एक माशा लौह, सीसक या वंग मिलना चाहिए। इसी प्रकार अर्द्धमाषक, काकणी और अर्द्धकाकणी का सिक्का ढलवाया जाय। यह सिक्के प्रचलनार्थ कोष में भेजने के साथ ही, उनसे सम्बन्धित एक पृथक् विभाग स्थापित करना चाहिए। यदि प्रजाजन रजत और ताम्र देकर प्रचलित सिक्के ढलवाने की इच्छा करें तो सिक्के

ढालने के व्यय के साथ, रूपिक, व्याजी और पारीक्षिक नामक तीन प्रकार कर लेकर ढालना उचित है। आठ प्रतिशत का कर रूपिक, पाँच प्रतिशत का कर व्याजी और साढ़े बारह प्रतिशत का कर पारीक्षिक कहा गया है। सिक्के ढलवाने या उनके लेने-देने के लिए जो अधिकारी नियुक्त हों, उसके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति वैसा कार्य करे तो वह पच्चीस पण अर्थ-दण्ड का भागी होगा। किन्तु यह दण्ड उन्हीं पर होगा जो राज्य की ओर से इस कार्य के लिए अधिकार-प्राप्त न हों। खन्याध्यक्ष को शंख, हीरे, मणि, मुक्ता, प्रवाल एवं यवक्षारादि के उत्पादनार्थ कारखाना स्थापित करना उनके विक्रय की व्यवस्था करनी चाहिए।

लवणाध्यक्षः पाकमुक्तं लवणभागं प्रक्रयं च यथाकालं संगृह्णीयात्। विक्रयाच्च मूल्यं रूपं व्याजीञ्च। आगन्तुलवणं षड्भागं दद्यात्। दत्तभागविभागस्य विक्रयः। पञ्चकं शतं व्याजीं रूपं रूपिकं च। क्रेता शुल्कं राजपण्यच्छेदानुरूपं च वैधरणं दद्यात्। अन्यत्र क्रेता षट्शतमत्ययं च। विलवणमुत्तमं दण्डं दद्यात्। अनिसृष्टोपजीवी च। अन्यत्र वानप्रस्थेभ्यः। श्रोत्रियास्तपस्विनो विष्टयश्च भक्तलवणं हरेयुः। अतोऽन्यो लवणक्षारवर्गः शुल्कं दद्यात्।

लवणाध्यक्ष को निर्मित एवं विक्रय योग्य लवण को यथा समय संचित करना चाहिए, जिससे कि उसकी कमी न हो जाय। उसके विक्रय मूल्य पर व्याजी नामक कर लगावे। विदेश से आयात हुए नमक का छटवाँ अंश कर के रूप में वसूल करे। इस प्रकार राज्य-कर देने वाला जो विदेशी व्यापारी नमक का व्यापार करे, उससे पाँच प्रतिशत व्याजी एवं साढ़े बारह प्रतिशत रूपिक कर लेना चाहिए। विदेश से आयातित नमक का क्रयकर्त्ता व्यापारी भी इसी प्रकार कर देगा। नमक आदि वस्तुएँ के स्वदेश में उत्पन्न होते हुए भी जो व्यापारी आयातित माल क्रय करे, उसे राज्य की क्षति पूरी करने के लिए वैधरण संज्ञक कर देना होगा। अन्य राज्य से नमक खरीदने पर छः प्रतिशत एवं मिट्टी

आदि मिलाकर बेचने पर उत्तम साहस दण्ड करे। राजाज्ञा के बिना लवण का उत्पादन या क्रय-विक्रय करने पर भी यही दण्ड निर्धारित करे, किन्तु वानप्रस्थों पर यह दण्ड-व्यवस्था लागू नहीं होती। क्योंकि वानप्रस्थ, श्रोत्रिय, तपस्वी, और राज्य के बेगारी मनुष्य अपने उपयोगार्थ बिना शुल्क दिये नमक बना सकते हैं। इनके अतिरिक्त लवणवर्ग और क्षारवर्ग के अन्तर्गत आने वाले पदार्थों पर उत्पादन शुल्क भी देनी होगी।

एवं मूल्यं विभाग च व्याजीं परिघमत्ययम्।
शुल्क वैधरणं दण्डं रूपं रूपिकमेव च ॥२
खनिभ्यो द्वादशविध धातु पण्यं च संहरेत्।
एवं सर्वेषु पण्येषु स्थापयेन्मुखसंग्रहम् ॥३
आकरप्रभवः कोशः कोशाद्दण्डः प्रजायते।
पृथिवी कोशदण्डाभ्यां प्राप्यते कोशभूषणा ॥४

इस प्रकार मूल्य, विभाग, व्याजी, परिघ, अत्यय, वैधरण, दण्ड, रूप, रूपिक एवं विविध प्रकार की खानों से निकलने वाली बारह प्रकार की धातुओं और उनसे बनने वाले पदार्थों का संचय आकाराध्यक्ष करे। कोष अर्थात् राज्य के धन की उत्पत्ति और दण्ड अर्थात् सैन्य शक्ति की वृद्धि होती है तथा कोश और दण्ड दोनों से ही पृथिवी की प्राप्ति संभव है ॥२-४॥

त्रयोदशोऽध्यायः

अक्षशाला में सुवर्णाध्यक्ष के कार्य

सुवर्णाध्यक्षः सुवर्णरजतकर्मान्तानामसम्बन्धावेशनचतुःशाला मेकद्वारामक्षशालां कारयेत्। विशिखामध्ये सौर्वणिकं शिल्पवन्त-मभिजातं प्रात्ययिकं स्थापयेत्।

स्वर्णाध्यक्ष को स्वर्ण-रजत के आभूषण निर्माणार्थं पृथक्-पृथक् चौमंजिले कक्षों से युक्त एक अक्षशाला का निर्माण कराना चाहिए, जिसमें कि केवल एक प्रवेश द्वार रहे। उस यक्षशाला में विद्यमान

विशिखा अर्थात् सोने-चाँदी के व्यवसाय-केन्द्र वाले कक्ष में शिल्पकार्यों में प्रवीण, श्रेष्ठ वंश वाले विश्वस्त सौर्वणिक अर्थात् सुनारों को नियुक्त करे।

जाम्बूनदं शातकुम्भं हाटकं वैणवं शृङ्गिशुक्तिजं जातरूपं रसविद्धमाकरोगद्गतं च सुवर्णम्। किंजल्कवर्णं मृदु स्निग्धमनादि भ्राजिष्णु च श्रेष्ठम्। रक्तपीतकं मध्यमं रक्तमवरं श्रेष्ठानाम्। पाण्डु श्वेतं चाप्राप्तकम्। तत् येनाप्राप्तकं तच्चतुर्गुणेन सीसेन शोधयेत्। सीसान्वयेन भिद्यमानं शुष्कपटलैर्ध्मापयेत्। रूक्षत्वाद्भिद्यमानं तैलगोमये निषेचयेत्।

स्वर्ण के पांच वर्ण कहे गये हैं—(१) जम्बूनद स्वर्ण, जो जम्बूनद से निकलता और जामुन जैसे ही रङ्ग का होता है। (२) शातकुम्भ स्वर्ण, जो कि शतकुम्भ पर्वत की खानों से निकलता और कमल केसर जैसे वर्ण का होता है। (३) हाटक स्वर्ण, जो कि हाटक नामक खान से पीले रङ्ग का होता है। (४) वैणव स्वर्ण, जो वेणु पर्वत पर कर्णिकारपुष्प जैसे रङ्ग का होता है। (५) शृंगिशुक्तिज स्वर्ण, जो कि मैनशिल जैसे वर्ण का शृंगशुक्ति नामक भूखंड पर होता है। इनके भी तीन भेद कहे हैं—(१) जातरूप अर्थात् खान से शुद्ध रूप में निकलने वाला, (२) रससिद्ध अर्थात् पारे द्वारा शोधित और (३) आकरोद्गत् अर्थात् खान से अशुद्ध रूप में निकलने वाला। जो स्वर्ण कमल-केसर के वर्ण का स्निग्ध, तपने के समय निःशब्द और चमकदार श्रेष्ठ, रक्त-पीत वर्ण का स्वर्ण मध्यम एवं नितान्त लाल निकृष्ट होता है। जो स्वर्ण पीले रङ्ग का हो जिसमें सफेद झलक लगती हो वह उत्तम श्रेणी का होते हुए भी 'अप्राप्तक, कहा जाता है। क्योंकि उसमें मिलावट होती है। उस मिलावट वाली धातु से चौगुना सीसा डाल कर उसे तब तक शोधे, जब तक सीसा नष्ट न हो जाय। यदि वह स्वर्ण सीसा मिलाने से फट जाय तो उसे कण्डों की अग्नि में तपाये। यदि

रूक्ष होने के कारण से फटा हो तो उसमें तैल और गोबर की भावना दे।

आकरोद्गतं सीसन्वयेन भिद्यमानं पाकपत्राणि कृत्वा गण्डिकासु कुट्टयेत्। कदलीवज्रकन्दकल्के वा निषेचयेत्।

तुत्थोद्गतं गौडिकं गाममल कांबुकं चाक्रवालिकं च रूप्यम्। श्वेतं स्निग्धं मृदु च श्रेष्ठम्। विपर्यये स्फोटनं च दुष्टम्। तत्सीचतुर्भागेन शोधयेत्। उद्गतचूलिकमच्छं भ्राजिष्णु दधिवर्णं च शुद्धम्।

शुद्धस्यैको हारिद्रस्य सुवर्णो वर्णकः। तत शुल्वकाकिण्यूत्तरापसारिता आ चतुःसीमान्तादिति षोडश वर्णकाः।

खान से निकाला हुआ स्वर्ण शोधन-काल में सीसा के मिश्रण से फटे तो उसे पत्र रूप में करके तख्ते पर रख कर काठ के हथौड़े से ही कूटे या कन्दली नामक लता (जो सौराष्ट्र में उत्पन्न होती है), वज्र एवं पद्ममूल के कल्क या काढ़े में भावित करे। अब चाँदी-शोधन के विषय में कहते हैं। तुत्थोद्गत, गौडिक, चाक्रवालिक और काम्बुक के भेद से चाँदी चार प्रकार की होती है। तुत्थोद्गत नाम की चाँदी जूही-पुष्प जैसे वर्ण की तुत्थ पर्वत पर होती है। गौडिक की उत्पत्ति गौड़ देश में होती है और इसका वर्ण तगर-पुष्पों जैसा होता है। चाक्रवालिक की उत्पत्ति चक्रवाल नामक खान से और काम्बुक की कम्बुपर्वत से होती है। इनका रंग कुन्द-पुष्प जैसा श्वेत होता है। श्वेत, स्निग्ध और मृदु चाँदी उत्तम तथा इनसे विपरीत गुण वाली चांदी स्फोटन दोष से युक्त होने के कारण दूषित समझी गई है। इसमें चतुर्थ भाग सीसा मिला कर शुद्ध करे। जिसमें बुद्बुद जैसी बुन्दकियां उभरती दिखाई दें और जो स्वच्छ चमकती हुई, चिकनी एवं दधि जैसे वर्ण की हो, उसे शुद्ध समझे। हरिद्रा की गाँठ के टुकड़ों जैसे रङ्ग के शुद्ध स्वर्ण द्वारा निर्मित सोलह माशे की स्वर्ण मुद्रा शुद्ध वर्णक कहलाती हैं। इसके अतिरिक्त सोलह प्रकार के मिश्रवर्णक

कहे गये हैं, जो कि शुद्धवर्णक में दो रत्ती ताम्र मिला कर या उससे क्रमशः चार माशे ताम्र के मिश्रण तक शुद्ध स्वर्ण कम करते हुए मुद्रायें तैयार करने से पन्द्रह प्रकार के अशुद्ध वर्णक बन जाते हैं।

सुवर्ण पूर्वं निकष्य पश्चाद्वर्णिकां निकर्षयेत्। समरागलेखनिम्नोन्नते देशे निकर्षितं परिमृदितं परिलीढं नखान्तराद्वा गैरिकेणावचूर्णितमुपधिं विद्यात्। जातिहिंगुलुकेन पुष्पकासीसेन वा गोमूत्रभावितेन दिग्धेनाग्रहस्तेन संस्पृष्टं सुवर्णं श्वेतीभवति। सकेसरः स्निग्धो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च निकषरागः श्रेष्ठः। कालिगकस्थालीपाषाणो वा मुद्गवर्णो निकषः श्रेष्ठ। समरागी विक्रयक्रयहितः। हस्तिच्छविकः सहरितः प्रतिरागी विक्रयहितः स्थिरः पुरुषो विषमवर्णश्चाप्रतिरागी क्रयहितः। छेदश्चिक्कणः समवर्णः श्लक्ष्णो मृदुर्भ्राजिष्णुश्च श्रेष्ठः।

वर्णक-परीक्षण के लिए प्रथम कसौटी पर शुद्ध स्वर्ण की और फिर उसके पास अशुद्ध स्वर्ण की रेखा खींचनी चाहिए। यदि दोनों रेखाओं का रंग एक जैसा हो तो ठीक प्रकार परीक्षण हुआ समझे। वेचने वाले को कसौटी पर स्वर्ण को जोर से और क्रेता धीरे से रगड़े या विक्रेता अपने नख में भरे गेरू के चूर्ण को उस रेखा पर लगा दे तो यह तीनों विधियाँ छल युक्त समझी जाती हैं। इसी प्रकार अन्य कपट युक्त कार्यों द्वारा प्रवंचन किया जाता है। जैसे कि गोमूत्र भावित जाति हिंगुलक या पुष्पकासीस नाम्नी पीत हरताल को हाथ में लगा कर स्पर्श करे तो स्वर्ण श्वेत वर्ण का-सा प्रतीत होने लगता है। यदि कसौटी पर खींची हुई स्वर्ण-रेखा का वर्ण अनेक केसरों युक्त, चिक्कण, मृदु और चमकदार हो तो वह श्रेष्ठ है। कसौटी भी कलिंग देश के अथवा ताप्ती नदी के पाषाण की श्रेष्ठ समझी जाती है। समान रंग ग्रहण करने वाली कसौटी विक्रेता और क्रेता दोनों के लिए अनुकूल रहती है। यदि कसौटी हस्ति चर्मजैसी खुरदरी एवं रूखी हो तो वह दागी स्वर्ण के भी वर्ण को उभार देती है, इसलिए वह

विक्रेता के हित में रहती है। किन्तु दृढ़ खुरदरी अनेक वर्ण की कसौटी उत्तम स्वर्ण के रंग को भी नहीं उभारती, इसलिए यह क्रेता के लिए लाभप्रद रहती है। चिक्कण, बाहर-भीतर से समान वर्ण का मृदु और चमकदार स्वर्ण उत्तम माना जाता है।

तापे बहिरन्तश्च समः किंजल्कवर्णः कुरण्डकपुष्पवर्णो वा श्रेष्ठः। श्यावो नीलश्चाप्राप्तकः।

तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्यामः। तेनोपदेशेन रूप्यं सुवर्णं दद्यादादीत च।

अग्नि-ताप में बाहर-भीतर से समान रंग का निकले और तपाने से पूर्व उसका रंग कमल-केसर या कुरण्डक-पुष्प जैसा हो वह स्वर्ण उत्तम होता है। किन्तु जो तपाने पर नीला या भूरा हो जाय वह अप्राप्तक अर्थात् अशुद्ध होगा, धातुओं की तौल के विषय में पौतवाध्यक्ष प्रकरण में कहेंगे। स्वर्ण-रजत का लेना-देना उसी पौतव अर्थात् तौल के विधानानुसार करना चाहिए।

अक्षशालामनायुक्तो नोपगच्छेत्। अभिगच्छन्नुच्छेद्यः। आयुक्तो वा सरूप्यसुवर्णस्तेनैव जीयेत। विचित्रवस्त्रहस्तगुह्याः कांचनपृषतत्वष्टृतपनीयकारवो ध्मायकचरकपांसुधावकः प्रविशेयुर्निष्कषेयुश्च। सर्वं चैषामुपकरणमनिष्ठिताश्च प्रयोगास्तत्रैवावतिष्ठेरन्। गृहीतं सुवर्णं धृतं च प्रयोगं करणमध्ये दद्यात्। सायं प्रातश्च लक्षितं कर्तृकारयितृमुद्राभ्यां निदध्यात्।

अक्षशाला में बिना आज्ञा प्रवेश वर्जित रहे। बिना आज्ञा प्रविष्ट होने वाले का राजा सर्वस्व-हरण करके उसे देश से निष्कासित कर दे। यदि राजाज्ञा से अक्षशाला में प्रविष्ट होने वाला व्यक्ति, वहाँ सोना चुराता हुआ मिले तो उसे भी उपर्लिखित दण्ड दे। स्वर्ण निष्कासित करने वाले, उसकी गोली बनाने वाले, स्वर्णपात्रादि पर चमक करने वाले, झाड़ने और धोने वाले, आदि कर्मचारियों को अक्षयशाला में कार्य पर जावे और कार्य पूर्ण करके निकलते समय अपने वस्त्र, हाथ पाँव,

यहाँ तक कि गुप्त अंग तक की तलाशी देनी होगी। उन कर्मचारियों के कार्य के सब उपकरण और सभी सामग्री अक्षशाला के नियत कक्ष में रहने चाहिए। वे किसी के भी द्वारा बाहर नहीं ले जाये जाँय। तैयार स्वर्ण और अनिर्मित खान के स्वर्ण की तौल के पूर्ण विवरण का वहाँ का अधिकारी रजिस्टर में उल्लेख करे इस प्रकार वह अधिकारी सायंकाल उस सामग्री को रखने और प्रातः काल देने लेने का कार्य मुद्रांकन तथा कर्मचारी के हस्तांगुष्ठ चिह्न के अंकन सहित करे, क्योंकि इन सब कार्य में मुद्रांकन आवश्यक है।

क्षेपणो गुणः क्षुद्रकमिति कर्माणि। क्षेपणः काचार्पणादीनि। गुणः सूत्रवानादीनि। घनं सुषिरं पृषतादियुक्तं क्षुद्रकमिति। अर्पयेच्च काचकर्मणः कांचनं दशभागं कटुमानम्। ताम्रपादायुक्तं रूप्यं रूप्यपादयुक्तं वा सुवर्णं संस्कृतकं तस्माद्रक्षेत्। पृषतकाच-कर्मणस्त्रयो हि भागाः परिभाण्डं द्वौ वास्तुकम्। चत्वारो वा वास्तुकं त्रयः परिभाण्डम्।

क्षेपण, गुण और क्षुद्र के भेद से अक्षशाला में तीन कार्य मुख्य रूप से किये जाते हैं। क्षेपणकर्म से तात्पर्य आभूषणों में मणि-रत्न या काच आदि के जडने से है। गुणकर्म का अभिप्राय स्वर्णादि के सूत्रों (हारों, मालाओं आदि) की गुँथाई से है और क्षुद्रकर्म उसे कहते हैं जो पोले घुंघरू आदि बनाये जाते हैं। अँगूठी आदि ठोस कार्य को सछिद्र कर्म कहा है। मणि आदि जड़ने के समय स्वर्ण में मणि का पाँचवाँ भाग प्रविष्ट करे और मणि आदि भरने के लिए दसवाँ भाग स्वर्णपत्र लगावे। मणि आदि जड़ने के समय स्वर्ण चोरी की आशंका रहती है, स्वर्णाध्यक्ष उससे सदैव सतर्क रहे। जड़ाई में जहाँ चाँदी लगानी हो वहाँ चतुर्थभाग तांबा मिला कर चाँदी और जहाँ सोना लगाना हो वहाँ चतुर्थांश चांदी मिला कर स्वर्ण चुराया जा सकता। यदि सोना या चांदी शुद्ध करना होता है तो उसमें भी कुछ चोरी करने की सुविधा स्वर्णकार को मिल जाती है। क्षुद्र मणियों की जड़ाई में स्वर्ण के पाँच भाग करे, जिनमें

से तीन भाग पुष्प आदि के आकार के लिए और दो भाग उस आभूषण के आधार पृष्ठ के निमित्त रखे। मोटी मणि हों तो सोने के सात भाग करके उसमें से चार भाग आधारपृष्ठ को और तीन भाग पुष्पादि के आकार को निश्चित करे।

त्वष्टृकर्मणः शुल्बभाण्डं समसुवर्णेन संयूहयेत् । रूप्यभाण्डं घनं घन सुषिरं वा सुवर्णार्धेनावलेपयेत् । चतुर्भागसुवर्णं वा बालुकाहिंगुलकस्य रसेन चूर्णेन वा वासयेत् । तपनीयंज्येष्ठं सुवर्णं सुरागं समसीसातिक्रान्तं पाकयन्त्रपक्वं सैन्धविकयोज्ज्वालितं नीलपीतश्वेतहरितशुककपोतवर्णानां प्रकृतिर्भवति । तीक्ष्णं चास्य मयूरग्रीवाभं श्वेतभंगं चिमिचिमायितं पीत चूर्णितं काकणिकः सुवर्णरागः ।

अब तांबा पर स्वर्ण या चाँदी के पत्र चढ़ाने का कार्य अर्थात् त्वष्टकर्म को कहते हैं। तांबा के आभूषण के मूल भार के समान भार का स्वर्णपत्र चढ़ावे। यदि चाँदी के आभूषण पर चढ़ाना हो तो आभूषण ठोस या पोला, कैसा भी हो, उस पर आधे भार का स्वर्णपत्र चढ़ाना चाहिए। तांबा या रजत के आभूषण के भार का चौथाई अंश सोना बालू और सिंगरफ के चूर्ण में मिश्रित कर स्वर्ण का पानी चढ़ावे। अब स्वर्ण गला कर आभूषण निर्माण के विषय में कहते हैं। कमल-केशर के वर्ण का, स्निग्ध और चमकदार स्वर्ण तपाने में श्रेष्ठ होता है। अशुद्ध स्वर्ण में समान भाग सीसे का शोधन कर या स्वर्ण-खण्डों को उपलों की अग्नि में तपाकर सिन्धु देश की मृत्तिका से मार्जित करे। इस प्रकार शुद्ध हुआ स्वर्ण नीले, पीले, सफेद, तोते के पंख जैसे हरे आभूषण बनाने के लिए बहुत उपयुक्त होता है। यदि इस स्वर्ण में इस्पात मिश्रित कर दे तो भी नीले पीले आदि रंग बन सकते हैं। किन्तु वह इस्पात मोर-कंठ के समान नीला और तोड़ने पर भीतर से चमकदार एवं सफेद रंग का हो। उपर्युक्त गलाये हुए स्वर्ण में इस्पात के चूर्ण को तपा कर दो रत्ती मिला देने से उसका वर्ण अधिक निखर जाता है। इस

से इस्पात स्वर्ण-रंजक के काम में आने वाला पदार्थ भी है।

तारमुपशुद्धं वा अस्थितुत्थे चतुः समसीसे चतुः शुष्कतुत्थे चतुः कपाले त्रिर्गोमये द्विः एवं सप्तदशतुत्थातिक्रान्तं सैन्धविकयोज्ज्वालितम्। एतस्मात्काकिण्युत्तरापसारिता। आद्विमाषादिति सुवर्णे देयं पश्चाद्रागयोगः श्वेततारं भवति।

त्रयोंशास्तपनीयस्य द्वात्रिंशद्भागश्वेततारमूर्छितंतत् श्वेतलोहितकं भवति। ताम्रं पीतकं करोति।

शोधित चांदी भी स्वर्ण के ही समान नीले, पीले,हरे आदि रंग की की जा सकती है। उसके शोधनोपाय को बताते हैं—पहिले उसे अस्थि और मिट्टीके मिश्रण से निर्मित मूषा में चार बार गलावे। फिर चार-बार समभागसीसा-मृत्तिका मिश्रित मूषा में और चार बार ही शुष्क तुत्थ में रख कर गलानी चाहिए,तत्पश्चात् ठीकरे में अर्थात् विशुद्ध मृत्तिका की मूषा में तीन बार और गोबर-मृत्तिका मिश्रत मूषा में दो बार गलावे। इस प्रकार सत्रह बार गलाने के बाद सिन्धु देश की मिट्टी से मांजने पर चाँदी शोधन कार्य पूर्ण होता है। यदि इस शोधित चाँदी को स्वर्ण में दो रत्ती मिला दें तो उतना ही स्वर्ण उसमें से निकाल सकते हैं। इस प्रकार स्वर्ण में दो माशा तक शुद्ध चाँदी मिला कर उतना ही स्वर्ण निकाल लेने से वह सोना नीले, पीले, हरे रंग से युक्त होता हुआ चाँदी के समान ही श्वेत हो जाता है। बत्तीस भाग स्वर्ण से तीन भाग स्वर्ण निकाल कर उसके स्थान पर पहिले कहा गया शोधित स्वर्ण और एक भाग सफेद चाँदी मिलाने से वह समस्त स्वर्ण श्वेत-लाल वर्ण का हो जाता है यदि शोधित स्वर्ण तीन भाग में उन्तीस भाग तांबा मिला दें तो वह तांवा पीत वर्ण का हो जायगा।

तपनीयमुज्ज्वाल्य रागत्रिभागं दद्यात्। पीतरागं भवति। श्वेततारभागौ द्वौ एकस्तपनीयस्य मुद्गवर्णं करोति। कालायसस्यार्धभागाभ्यक्तं कृष्णं भवति। प्रतिलेपिना रसेन द्विगुणाभ्यक्तं तपनीयं शुकपत्रवर्णं भवति। तस्तारम्भे रागविशेषे

णिकां गृह्णीयात् । तीक्ष्णताम्रसंस्कारं च बुद्ध्येत । तस्माद्वज्र-मणिमुक्ताप्रवालमपनेयिमानं च रूप्यसुवर्णभाण्डप्रमाणानि चेति ।

शोधित स्वर्ण को सिन्धुदेश की मिट्टी से माँज कर उपर्युक्त तीक्ष्ण लोहादि रंजनीय पदार्थ तीन चौथाई, इतना ही तपनीय अर्थात् शोधित स्वर्ण और इतना ही ताम्बा संयुक्त करने से तांबा पीत वर्ण का हो जायगा। यदि स्वर्ण का रंग मूंग के समान हरा करना है तो शोधित चाँदी दो भाग में एक भाग शोधित सोना मिला दे। यदि काले लोहे का आधा भाग तपनीय सोने में मिलावे तो सोने का रंग काला हो जायगा। दो भाग परिमाण पारे के साथ गलित काले लोहे को शोधित स्वर्ण में मिलाने पर उसका रंग तोते के पंख जैसा हरित् हो जाता है। पहिले कहे नीले-पीले आदि रंगों वाला सोना बनाते समय वर्ण विशेष के निर्णयार्थ प्रत्येक के रंग को देखे। स्वर्ण-रंजनार्थ प्रयुक्त तीक्ष्ण लौह और ताम्र की शोधन-विधि का ज्ञान भी धातु शोधन विज्ञान द्वारा ज्ञात करे। कर्मचारियों द्वारा चुराये जाने की आशंका से सोने-चाँदी आदि की शोधन-विधि जान कर हीरा, मणि, मोती, मूंगा और रूप विषयक विविध असार पदार्थों के मिश्रण से रंग-परिवर्तन आदि के रूप में चोरी करने के ढंगों का ज्ञान तथा सोने-चाँदी के आभूषणादि के बनाने और तौल का भी ज्ञान रखना आवश्यक है।

समरागं समद्वन्द्वमसक्तपृषतं स्थिरम् ।
सुविमृष्टसंवीतं विभक्तं धारणे सुखम् ॥१
अभिनीतं प्रभायुक्तं संस्थानमधुरं समम् ।
मनोनेत्राभिरामं च तपनीयगुणाः स्मृताः ॥२

तपनीय सोने के बने आभूषण सर्वत्र एक विशिष्ट प्रकार के वर्ण वाले रहेंगे। भार और रङ्ग में भी निश्चित समानता होगी। वे ग्रंथि विहीन, चिर स्थायी और अत्यन्त चमकीले होंगे। चमक लाने के लिए उनके घिसने की अधिक आवश्यकता न रहेगी। वे समान रूप से विभाजित अंग वाले बनेंगे और पहिनने पर मन को आनन्दप्रद

होंगे। सफाई में दर्शनीय, प्रभायुक्त, आकार प्रकार में चित्ताकर्षक, सब ओर से समान तथा मन और नेत्रों को सुन्दर दिखाई देंगे ॥१-२॥

चतुर्दशोऽध्यायः

विशिखा में सौवर्णिक का कार्य

सौवर्णिकः पौरजानपदानां रूप्यसुवर्णमावेशनीभिः कारयेत्। निर्दिष्टकालकार्यं च कर्म कुर्युः। अनिर्दिष्टकालं कार्यापदेशम्। कार्यस्यान्यथाकरणे वेतननाशस्तद्द्विगुणश्च दण्डः। कालातिपातने पादहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः। यथावर्णप्रमाणं निक्षेपं गृह्णीयुस्तथाविधमेवार्पयेयुः। कालान्तरादपि च यथाविभमेव प्रतिगृह्णीयुरन्यत्र क्षीणपरिशीर्णाभ्याम्।

सौवर्णिक अर्थात् स्वर्णादि के विभागाधिकारी को नगर और जनपद के लोगों के आभूषण अपने अधीनस्थ स्वर्णकारों द्वारा ही बनवाने चाहिए। समय और कार्य के अनुसार निश्चित पारिश्रमिक वाले शिल्पकारों से कार्य करावे। उनको दिया गया कार्य यदि अधिक समय साध्य प्रतीत हो तो उसके अनुसार कार्य का समय बढ़ा दे। किन्तु निश्चित समय पर कार्य पूरा न करके देने वाले कारीगर का चतुर्थ भाग पारिश्रमिक काट ले और तब जो पारिश्रमिक शेष बचे उसका द्विगुणित अर्थदण्ड दे। यदि आदेश के अनुसार कार्य न बनाया गया हो, अथवा किसी आभूषण के स्थान पर कोई अन्य आभूषण बना दिया हो तो उसे पारिश्रमिक न देकर, पारिश्रमिक से दुगुना अर्थ दण्ड देना उचित होगा। शिल्पी को चाहिये कि वह जिस रूप, रंग और भार परिमाण में स्वर्णादि प्राप्त करे, उसी में लौटावे। यदि कोई शिल्पी स्वर्णादि लेने के पश्चात् विदेश चला जाय अथवा मर जाय तो उसके उत्तराधिकारियों का कर्त्तव्य होगा कि वे ग्राहक के स्वर्णादि को उसी रूप, रंग और परिमाण में लौटा दें। यदि वैसा न करें या कम लौटावें तो वे पहिले बताये हुए आर्थिक दण्ड के अधिकारी होंगे।

आवेशनीभिः सुवर्णपुद्गललक्षणप्रयोगेषु तत्तज्जानीयात् । तप्तकलधौतयोः काकणिकः सुवर्णे क्षयो देयः । तीक्ष्णकाकणी-रूप्यद्विगुणो रागप्रक्षेपस्तस्य षड्भागः क्षयः । वर्णहीने माषावरे पूर्वः साहसदण्डः । प्रपाणहीने मध्यमः । तुलाप्रतिमानोपधावुत्तमः । कृतभाण्डोपधौ च ।

स्वर्णाध्यक्ष को शिल्पियों द्वारा किये जाने वाले स्वर्ण-प्रयोग, पुद्गल (धातु-चूर्ण) और लक्षणादि विषय का पूर्ण ज्ञान रहना चाहिए। क्योंकि जानकारी रहने से उसे कोई ठग नहीं सकता। सोलह माशे अशुद्ध स्वर्ण या चाँदी के गलवाने के लिए ग्राहक को एक काकणी अर्थात् दो रत्ती छीजन देनी होगी। एक काकणी तीक्ष्ण धातु और दो काकणी रजत को सोलह माशे स्वर्ण में रंग के लिए मिलाया जा सकता है। रंजनार्थ प्रदत्त द्रव्य में से षष्ठांश (अर्थात् रङ्गने वाले पदार्थ का छटवाँ अंश=एक रत्ती) की छीजन उसके जलने में हो सकती है। यदि स्वर्णकार माशे के हिसाब से नियत रंग को ठीक प्रकार न चढ़ा सके तो उसे प्रथम साहस अर्थात् ढाई सौ पण, कम तोले तो मध्यम साहस अर्थात् पाँच सौ पण और तराजू बांट में किसी प्रकार का छल कर तो उत्तम साहस अर्थात् एक हजार पण से दंडित करे। यदि आभूषण के द्रव्य से किसी प्रकार की चोरी करे तो उसे भी उत्तम साहस दंड देना चाहिए।

सौवर्णिकेनादृष्टमन्यत्र वा प्रयोगं कारयतो द्वादशपणो दण्डः। कर्तुर्द्विगुणः सापसारश्चेत् । अनपसारः कण्टकशोधनाय नीयेत । कर्तुश्च द्विशतो दण्डः पणच्छेदनं वा । तुलाप्रतिमानभाण्डं पौतवहस्तात्क्रीणीयुः । अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ।

स्वर्णाध्यक्ष की अनुमति के बिना जो मनुष्य राज्य के निर्माण विभाग के अतिरिक्त किसी अन्य स्वर्णकार से आभूषणादि का निर्माण कराये तो उस ग्राहक पर बारह पण और स्वर्णकार पर चौबीस पण का अर्थ-दण्ड करे। किन्तु, यह दंड तभी दे, जबकि उन्हें वैसा करते

हुए पकड़ लें। पकड़ने और कंटक शोधन अधिकारी के न्यायालय में उपस्थित होने पर उसे दंड दिया जाय। कारीगर पर दो सौ पण का अर्थदण्ड या कार्यसाधन वाले हाथ की उंगलियों वा उच्छेद रूप दण्ड दे। स्वर्णकार को राज्य के पौतवाध्यक्ष (तुला-मान के अधिकारी) के कार्यालय से ही काँटा-बाट क्रय करने चाहिए। यदि कोई वहाँ से न खरीद कर अन्यत्र से खरीदे अथवा स्वयं बना कर प्रयुक्त करे तो उसे बारह पण का दण्ड देना चाहिए।

घनं घनसुषिरं संयूह्यमवलेप्यं संघात्यं वासितकं च कारुकर्म। तुलाविषममपसारणं विस्रावणं पेटकः पिंकश्चेति हरणोपायाः। सन्नामिन्युत्कीर्णका भिन्नमस्तकोपकण्ठी कुशिक्या सकटुकक्ष्या पारिवेल्ययस्कान्ता च दुष्टतुलाः।

कारीगर के छः कार्य बताये गये हैं—(१) घन अर्थात् ठोस आभूषण का निर्माण, (२) घनसुषिर अर्थात् ठोस एवं पोले मिश्रित का निर्माण, (३), संयूह्य यानी मोटे पत्रों की जुड़ाई के आभूषणों का निर्माण, (४) अवलेप्य यानी छोटे पत्रों की जुड़ाई वाले गहनों का निर्माण, (५) सघात्य यानी क्षुद्र टुकड़ों या कड़ियों के जोड़ से बने गहनों का निर्माण और (६) वासितक अर्थात् रसादि के द्वारा धातु को भावित करना। उपर्युक्त कार्यों में तुलाविषम, अपसारण, विस्रावण, पेटक और पिंक संज्ञक पाच उपायों से चोरी हो सकती है। इनमें से तुलविषम के विषय में कहते हैं। तुलाविषम अर्थात् तौल में गड़बड़ी वाली तराजू के आठ प्रकार कहे हैं (१) 'सन्नामिनी' जो कि लचकदार लोहे की होने के कारण लपलपाती है, (२) जिसके भीतरी छेद में पारा भरा हो, वह 'उत्कर्णिका' (३) 'भिन्नमस्तका' अर्थात् टूटे मस्तक की एवं छेद वाली तराजू जो वायु के रुख से एक ओर झुक जाती हो, (४) 'उपकण्ठी' अर्थात् अनेक गाँठों वाली डोरी में बँधे हुए पलड़े वाली, (५) 'कुशिक्या' खराब सूत की डोरी वाली, (६) 'सकटुकक्ष्या' खराब पलड़े वाली, (७) 'पारिवेल्ली' विशेष प्रकार से

हिलने डुलने वाली और (८) 'अयस्कान्ता' लौह कान्त से निर्मित तुला, जिसमें जिधर द्रव्य रखें, उधर ही हिलती-डुलती हो।

रूप्यस्य द्वौ भागावेकं शुल्वस्य त्रिपुटकम्। तेनाकरोद्गतमपसार्यते तत्त्रिपुटकापसारितं शुल्बेन शुल्बापसारितं वेल्लकापसारितं शुल्बार्धसारेण हेम्ना हेमापसारितम्।

अब 'अपसारण' कर्म को कहते हैं। सारहीन वस्तु से सार द्रव्य निकालने की यह कला चार प्रकार की होती है। दो भाग चांदी और एक भाग तांबे के मिश्रण से तैयार पदार्थ 'त्रिपुटक' कहलाता है। खान से निष्पन्न शुद्ध स्वर्ण में त्रिपुटक मिला कर उतना स्वर्ण निकाल लें तो वह अपसारण का एक भेद 'त्रिपुटकापसारित' होता है। इसका दूसरा भेद 'शुल्वापसारित' है, जिसमें स्वर्ण में ताम्बा मिला कर स्वर्ण निकाल लेते हैं। जो पदार्थ समान भाग तीक्ष्ण लौह और रजत के मिश्रण से वने वह 'वेल्लक' संज्ञक होता है। सोने में इस पदार्थ को डाल कर उतना ही सोना निकाल लेने को 'वेल्लकापसारित' कहते हैं। स्वर्ण में आधा भाग ताम्बा मिला कर उसमें से स्वर्ण निकाल ले, वह विधि 'हेमापसारित' कही जाती है।

मूकमूषा पूतिकिट्टः करटकमुखं नालीसन्देशो जोंगनी सुवर्चिका लवणं तदेव सुवर्णमित्यपसारणमार्गाः। पूर्वप्रणिहिता वा पिण्डवालुका मूषाभेदादग्निष्ठा उद्ध्रियन्ते पश्चाद्बन्धने आचितकपरीक्षायां वा रूप्यरूपेण परिवर्तनं विस्रावणम्। पिण्डबालुकानां लोहपिण्डबालुकाभिर्वा।

अपसारण की उक्त विधियों से स्वर्णकार सोना चुरा कर ग्राहक को उसका स्वर्ण खराब होने का बहाना करते हैं। अपसारण-कर्म में निम्न वस्तुएं सहायक होती हैं—मूकमूषा (जिसमें पहिले से ही कोई द्रव्य छिपाया हुआ हो), पूतिकिट्ट (लोह का मल), करकटमुख (कैंची), नाली या नली, सन्दंश (संडासी), जोंगनी (चिमटा), सुवर्चिका (सोड़ा सज्जी आदि), नमक तथा भट्टी में पहिले से छिपा कर रखी हुई

पिण्डवालुका अर्थात् पिघली हुई चाँदी। जिसे देख कर ग्राहक की शंका पर स्वर्णकार मूषा के फूट जाने का बहाना करता हुआ अग्नि पर चढ़ाने से पहले ही उसे हटा देने की बात कहेगा। उस कार्य के द्वारा वह कुछ स्वर्ण को निकाल कर उसके स्थान पर पिण्डवालुका मिला कर सोना चुरा सकता है। निर्माण योग्य द्रव्यों का परीक्षण करने के पश्चात् सीसे के पत्र मिला कर सोने के पत्र चुरा लेने का नाम विस्रावण है। अथवा स्वर्ण-आकार की बालुका के स्थान पर लौह-आकार की वालुका रख देने को भी विस्रावण ही कहा जाता है।

गाढश्चाभ्युद्धार्यश्च पेटकः संयूह्यावलेप्यसंघात्येषु क्रियते । सीसरूपं सुवर्णपत्रेणावलिप्तमभ्यन्तरमष्टकेन बद्धं गाढपेटकः। स एव पटलसंपुटेष्वभ्युद्धार्यः। पत्रमाश्लिष्टं यमकपत्रं वावलेप्येषु क्रियते। शुल्वं तारं वा गर्भः पत्राणां संघात्येषु क्रियते। शुल्वरूपं सुवर्णपत्रसंहतं प्रमृष्टं स पार्श्वम्। तदेव यमकपत्रसंहतं प्रमृष्टम् ताम्रताररूपं चोत्तरवर्णकः। तदुभयं तापनिकषाभ्यां निःशब्दो-ल्लेखनाभ्यां वा विद्यात्। अभ्युद्धार्यं बदराम्ले लवणोदके वा साद-यन्ति। इति पेटकः।

पहिले कहे हुए संयूह्य, अवलेप्य और संघात्य को 'पेटक' कहते हैं। स्वर्णकारों द्वारा पेटक के द्वारा सोने-चाँदी की चोरी सुगम होती है। पेटक के भी दो प्रकार हैं—गाढ़ और अभ्युद्धार्य। स्वर्ण-पत्रों में सीसक-पत्रों को लाख से जोड़ कर जो सोना चुरा लेते हैं, वह गाढ़ पेटक है। यदि वह जोड़ लाख आदि से दृढ़ न किये जाँय तो उसे अभ्युद्धार्य पेटक कहते हैं। अवलेप्य में दो पत्रों को जोड़ कर एक-से कर देते हैं या दो पत्रों में चाँदी या तांबे का पत्र लगा देते हैं। इसे भी एक प्रकार का पेटक समझे। छोटे-छोटे टुकड़ों या कड़ियों को जोड़ने में ताम्रपत्र को स्वर्णपत्र से ढँक कर जोड़ते और दोनों ओर से ताम्बे पर सोना चढ़ा कर ऐसा बना देते हैं, जिससे कि भीतर तांबा या चाँदी होने पर भी ऊपर से श्रेष्ठ सोना ही बना रहता है।

तपाने, कसौटी पर लगाने, हल्की चोट देने और किसी तीक्ष्ण उपकरण से रेखा खींच कर इन पेटकों की परीक्षा की जा सकती है। जिस जिस पेटक में पत्रों को दृढ़ करने में लाख आदि का उपयोग न किया गया हो, उनकी परीक्षा वेर के अम्ल रस में या नमक के जल में डुबाने से हो सकती है। यह पेटक का वर्णन पूर्ण हुआ।

घनसुषिरे वा रूपे सुवर्नमृद्बालुकाहिंगुलुककल्को वा तप्तोऽवतिष्ठते। दृढवास्तुके वा रूपे बालुकामिश्रजतुगान्धारपङ्को वा तप्तोऽवतिष्ठते। तयोस्तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिः। सपरिभाण्डे वा रूपे लवणमुल्कया कटुशर्करया तप्तमवतिष्ठते। तस्य क्वाथनं शुद्धिः। अभ्रपटलमष्टकेन द्विगुणवास्तुके वा रूपे बद्ध्यते। तस्यापिहितकाचस्योदके निमज्जत एकदेशः सीदति। पटलान्तरेषु वा सूच्याभिद्यते। मणयो रूप्यं सवर्णंवा घनसुघषिराणांपिङ्कः। तस्य तापनमवध्वंसनं वा शुद्धिः इतिपिङ्कः।

अब पांच प्रकार के पिंक और उनके परीक्षण के विषय में कहते हैं। सोने की खान की मिट्टी, बालू और हिंगुल के कल्क को अग्नि में तपा कर ठोस या पोले आभूषणों में भर देते हैं। आभूषण का ढाँचा तैयार होने पर उसमें स्वर्णवालुका मिश्रित लाख या सिन्दूर का मल भर दिया जाता है। उनके तोड़ने या तपाने को ही शुद्धि कहते हैं। घुंघरु वाले आभूषणों में नमक की डेली के साथ उल्का से तपी हुई छोटी कंकड़ियाँ भर देते हैं। इन गहनों की शुद्धि वेर के खट्टे रस के साथ उबालने पर हो जाती है। जिन अलंकारों का ढाँचा द्विगुणित दृढ़ता से बंधा हो, उनमें अभ्रक के पत्रों को मोम से जड़ते हैं। इस प्रकार अभ्रक वाले गहने को जल में डुबाया जाय तो उसका एक भाग ही डूवेगा, । अभ्रक वाला भाग नहीं डूबेगा। उसमें ताम्र आदि के पत्र भरे होते हैं तो सुई द्वारा कुरेद कर देखने से उसका पता लग जाता है। ठोस-पोले अलंकारों में मणि या काँच के जड़ने से भी स्वर्ण की चोरी की जाती है। चोरी की इस

क्रिया को पिंक कहा जाता है। तपाने या तोड़ने से इनकी शुद्धि-अशुद्धि का ज्ञान हो जाता है। यह पिंक का वर्णन हुआ।

तस्माद्वज्रमणियुक्ताप्रवालरूपाणां जातिरूपवर्णप्रमाणपुद्गल-लक्षणान्युपलभेत। कृतभाण्डपरीक्षायां पुराणभाण्डप्रतिसंस्कारे वा चत्वारो हरणोपायाः। परिकुट्टनमवच्छेदनमुल्लेखनं परिमर्दनं वा। पेटकापदेशेन पृषतं गुणं पिटकां वा यत्परिशातयन्ति तत्परि-कुट्टनम्। यद्द्विगुण वास्तुकानां वा रूपे सीसरूपं प्रक्षिप्याभ्यन्तर-मवच्छिन्दन्ति तदवच्छेदनम्। यद्घनानां तीक्ष्णेनोल्लिखन्ति तदुल्लेखनम्। हरितालमनः शिलाहिंगुलुकचूर्णानामन्यतमेन कुरु-विन्दचूर्णेन वा वस्त्रं संयूह्य यत् परिमृद्नन्ति तत्परिमर्दनम्। तेन सुवर्णराजतानि भाण्डानि क्षीयन्ते। न चैषां किंचिदवरुग्णं भवति।

स्वर्णाधिकारी को हीरा, मणि, मोती मूँगा और चाँदी की जाति, रूप, रंग, प्रमाण और उनसे निर्मित अङ्कारों के लक्षण का ज्ञान भली भाँति होना चाहिए। निर्मित अङ्कार की परीक्षा के समय और पुराने अलङ्कारों की सफाई या नवीनीकरण के समय परिकुट्टन, अवच्छेदन, उल्लेखन और परिमर्दन के भेद से चार उपायों के द्वारा सोने की चोरी हो सकती है। परिकुट्टन वह है, जिसमें पेटक परीक्षा के बहाने से क्षुद्र खण्ड, गुण (छोटे तार) या पिटका अर्थात् घुँघरू आदि काट कर निकाल ले। अवच्छेदन उसे कहते हैं जिसमें अनेक छोटे पत्रों के रूप में लगे हुए सोने के गहने में सोने के पानी वाला सीसे या चाँदी आदि का पत्र लगा कर स्वर्ण का कुछ भाग काट कर चुरा ले। उल्लेखन उस कर्म का नाम है, जिसमें कि किसी ठोस गहने से सोना किसी तीक्ष्ण उपकरण द्वारा काट लिया जाय तथा परिमर्दन कर्म में हरताल, मनशिल और हिंगुल में से किसी एक के चूर्ण से मिश्रित और कुरुविन्द नायक प्रस्तर चूर्ण को लगाकर सोने के गहने को किसी कपड़े में रख कर रगड़े। इस प्रकार करने से आभूषण में से स्वर्ण छीज कर उसका भार घट जाता है और

कहीं काट-फाँस न होने से उसके घटने का आभास तक नहीं होता। इसलिए सोने की इस चोरी का पकड़ा जाना कोई सरल कार्य नहीं है।

भग्नखण्डघृष्टानां संयूह्यानां सदृशेनानुमानं कुर्यात्। अवलेप्यानां यावदुत्पाटितं तावदुत्पाट्यानुमानं कुर्यात्। विरूपाणां वा तापनमुदकपेषणं च बहुशः कुर्यात्। अवक्षेपः प्रतिमानमग्निर्गण्डिका भण्डिकाऽधिकरणी पिच्छः सूत्रं चेल्लं बोल्लनं शिर उत्संगो मक्षिका स्वकायेक्षादृतिरुदकशरावमग्निष्ठमिति काचं विद्यात्। राजतानां विस्त्रं मलग्राहि परुषं प्रस्तीनं विवर्णं वा दुष्टमिति विद्यात्।

स्थूल स्वर्णपत्रों से बने आभूषणों से यदि परिकुट्टन, अवच्छेदन या उल्लेखन कर्म द्वारा स्वर्ण काट लिया या घिस कर चुरा लिया गया हो तो उस कटे-घिसे भागों का अनुमान उनके अवयवों को देख कर सरलता से लगाया जा सकता है। इसी प्रकार क्षुद्र पत्रों से बने अलंकारों के उचाले हुए स्थान को देख कर चोरी हुए माल का भार अनुमान किया जा सकता है। बढ़िया सोने में निकृष्ट मिलाने का अनुमान उसके रूपान्तर से हो सकता है। उन्हें तपा कर या जल-योग से रगड़ कर शोधन करने से विवर्णता नष्ट की जा सकती है। अब अन्य अपहरणोपायों को बताते हैं—अवक्षेप अर्थात् हाथ की चालाकी से सार वस्तु निकाल कर उसमें निकृष्ट वस्तु मिला देना, प्रतिमान अर्थात् असली के बदले नकली रख देना, अग्नि अर्थात् राख में सोना डाल कर छिपाना, गण्डिका अर्थात् पिटाई किये जाने वाले काष्ठ के द्वारा स्वर्ण का अपहरण, भण्डिका अर्थात् अग्नि से निकाले हुए सोने को पात्र में डाल कर ठंडा करने में कुछ अंश उड़ा देना, अधिकरणी अर्थात् लौह मूषा में रख का गलाने में चुराना, पिच्छ अर्थात् मोरपंख द्वारा, सूत्र अर्थात् तराजू की जोती द्वारा, चेल्ल (वस्त्र द्वारा), बोल्ल (वार्तालाप में ध्यान बटा कर उड़ा देना), सिर एवं उत्संग (अर्थात् सिर खुजलाने के बहाने से बालों में या गोद में छुपाना) मक्षिका अर्थात् मक्खी उड़ाने के बहाने या बार-बार अपने

शरीर की ओर देखने से ध्यान आकर्षित करते हुए चोरी करना, दृति अर्थात् धौंकनी के द्वारा या जलपात्र और अग्नि में पहिले से ही छिपी हुई असार वस्तु के मिश्रण द्वारा सोना चोरी किया जाता है। उपरोक्त लक्षणों को देख कर समझ ले कि अवश्य ही वह सोना चुराना चाहता है। अब रजत-निर्मित अलंकारों में पाँच प्रकार के दोष परिलक्षित होते हैं। जैसे कि सीसे के मिश्रण से दुर्गन्ध आना तथा मैलापन, खुरदरापन, कठोरपन या भदरंग होना आदि।

एवं नवं च जीर्णं च विरूपं च विभाण्डकम्।
परीक्षेतात्यय चैषां यथोद्दिष्टं प्रकल्पयेत् ॥१

इस प्रकार नये, पुराने और खराब माल के मिलने से आभाहीन हुए अलंकारों की परीक्षा करके, अपराधी पाये जाने पर स्वर्णाध्यक्ष उन स्वर्णकारों से क्षति पूरी कराके उन्हें उचित आर्थिक दण्ड भी दे ॥१॥

पञ्चदशोऽध्यायः

कोष्ठागाराध्यक्ष के कर्त्तव्य

कोष्ठागाराध्यक्षः सीताराष्ट्रक्रयिमपरिवर्तकप्रामित्यकसिंहनिकान्यजातव्ययप्रत्यायोपस्थानान्युपलभेत। सीताध्यक्षोपनीतः सस्यवर्णकः सीता। पिण्डकरः, षड्भागः, सेनाभक्तं, बलिः, करः उत्संगः, पार्श्वं, पारिहीणकं, औपायनिकं, कौष्ठेयकं च राष्ट्रम्।

कोष्ठागाराध्यक्ष अर्थात् भंडार का प्रमुख अधिकारी सीता, राष्ट्र, क्रयिम, परिवर्तक, प्रामित्यक, आपमित्यक, सिंहनिका, अन्यजात, व्यय-प्रत्याय और उपस्थान के विषय में पूर्ण जानकार होना चाहिए। कोष्ठागार में संचित सब प्रकार के अन्नों को सीता कहते हैं। कोठार के अधिकारी को उन्हें ठीक-प्रकार से तौल कर रखना चाहिए। उसे राष्ट्र से प्राप्य कर स्वरूप पदार्थों आदि की व्यवस्था और सुरक्षा का भी पूरा ज्ञान होना चाहिए। राष्ट्र से निम्न वस्तुओं का प्रयोजन है—(१)

पिंडकर—राजकीय कर के रूप में प्राप्त वस्तुएँ, (२) षड्भाग—छटवें अंश के रूप में प्राप्य राज-कर (३) सेनाभक्त—युद्धकाल में राज्यादेश से प्रजाजनों द्वारा प्राप्त खाद्य पदार्थ, (४) बलि—करों के अतिरिक्त अन्य भेंटों के रूप में प्राप्त धन, (५) कर—अधीनस्थ राजाओं से मिलने वाला कर, (६) उत्संग—उत्सवादि के अवसर पर भेंट स्वरूप प्राप्त वस्तुएँ, (७) पार्श्व—नियत कर से अधिक की वसूली, (८) पारिहीणक—पशुओं द्वारा खेत आदि को हुई हानि के कारण पशु-स्वामी को दिये गये अर्थदण्ड से उपलब्ध धन, (९) औपायनिक—राजा को उपहार में प्राप्त धन और (१०) कौष्ठेयक—खुदाई में सहसा प्राप्त हुआ धन।

धान्यमूल्यं कोशनिर्हारः प्रयोमप्रत्यादानं च क्रयिमम्। सस्यवर्णानामर्घान्तरेण विनिमयः परिवर्तकः। सस्ययाचनमन्यतः प्रामित्यकम्। तदेव प्रतिदानार्थमापमित्यकम्। कुट्टकरोचकसक्तुशुक्तपिष्टकर्म तज्जीवनेषु तैलपीडनमौरभ्रचाक्रिकष्विक्षूणां च क्षारकर्म सिंहनिका। नष्टप्रस्मृतादिरन्यजातः। विक्षेपव्याधितान्तरारम्भशेष च व्ययप्रत्यायः। तुलामानान्तरं हस्तपूरणमुत्करो व्याजी पर्युषितं प्रार्जितं चोपस्थानमिति।

धान्यमूल, कोशनिर्हार और प्रयोगप्रत्यादान के भेद से क्रयिक के तीन प्रकार हैं। एक प्रकार के अन्न के स्थान पर अन्य प्रकार के अन्नों का कम या अधिक मात्रा में लिया जाना परिवर्तक कहा जाता है। न लौटाने के निश्चय से सुहृदों से अन्न आदि की याचना करना प्रामित्यक और व्याज सहित लौटाने के वचन पर अन्न लेना आपमित्यक है। जीविकोपार्जन के लिए धान कुटाई आदि का कार्य करने वाले, रोचक कर्म वाले, सक्तुकर्म अर्थात् सत्तू पीसने वाले, शुक कर्म और पिष्टकर्म वाले तेली तथा ईख से शर्करा बनाने वाले आदि से प्राप्त देय अंश सिंहनिका कहा जाता है। किसी के खोये हुए द्रव्य का कोठार में, जमा होना अन्यजात और नियत व्यय से बचा हुआ धन व्ययप्रत्याय कहा गया है। व्ययप्रत्याय के तीन भेद हैं—(१) विक्षेपशेष—कहीं

भेजी गई सेना के अनुमानित व्यय से बचा हुआ धन, (२) व्यावितशेष—चिकित्सालय आदि के नियत व्यय से शेष रहा हुआ धन और (३) अन्तरारम्भशेष—दुर्ग या भवन आदि के निर्माण में निश्चित व्यय से बचा हुआ धन। अब उपस्थान के छः प्रकार बताते हैं—(१) तुलामानान्तर अर्थात् तौल में अधिक लेने और कम देने से हुआ लाभ, (२) हस्तपूरण—तोलने के पश्चात् और अन्न गिरा लेने से लाभ, (३) उत्कर—गिनी हुई वस्तु पर अधिक वस्तु लेने से लाभ, (४) व्याजी—कमी की पूर्ति के रूप में अधिक ली जाने वाली वस्तु, (५) पर्युषित—विगत वर्ष का बचा हुआ अंश और (६) प्रार्जित—अपनी चतुराई से प्राप्त हुआ धन-लाभ।

धान्यस्नेहक्षारलवणानां धान्यकल्पं सीताध्यक्षे वक्ष्यामः। सर्पिस्तैलवसामज्जानः स्नेहाः। फाणितगुडमत्स्यण्डिकाखण्डशर्कराः क्षापवर्गः। सैन्धवसामुद्रविडयवक्षारसौवर्चलोद्भेदजा लवणवर्गः। क्षौद्रं मार्द्वीकं च मधु।

इक्षुरसगुडमधुफाणितजाम्बवपनसानामन्यतमो मेषशृङ्गीपिप्पलीक्वाथाभिषुतो मासिकः षाण्मासिकः सांवत्सरिको वा चिर्भटोर्वारुकेक्षुकाण्डाम्रफलामलकावसुतः शुद्धो वा शुक्तवर्गः। वृक्षाम्लकरमर्दाम्रविदलामलकमातुलुंगकोलबदर सौवीरकपरूषकादिः फलाम्लवर्गः। पधिधान्याम्लाविद्रंवाम्लवर्गः। पिप्पलीमरिचशृङ्गिबेराजाजिकिराततिक्तगौरसर्षपकुस्तुम्बुरुचोरकदमनकमरुवकशिग्रुकाण्डादिः कटुकवर्गः। शुष्कमत्स्यमांसकन्दमूलफलशाकादि च शाकवर्गः।

अन्न, स्नेह, क्षार, लवण के विषय में बताते हुए कहते हैं कि धान्यवर्ग का वर्णन सीताध्यक्ष प्रकरण में करेंगे। घृत, तैल, वसा, मज्जा—यह चारों स्नेहवाची ही हैं। ईख की बनी राब, गुड़, शर्करा, खाँड क्षारवर्ग माने जाते हैं। सैंधव, सामुद्र, विड, यवक्षार, सौवर्चल और उद्भेदज—यह सब लवण हैं। क्षौद्र अर्थात् मक्षिका का मधु और

मार्द्वीक अर्थात् अंगूर की मदिरा—यह दो भेद मधु के हैं। इक्षुरस, गुड़, मधु, राव, जामुन का रस और कटहल का रस में से कोई एक रस मेषशृंगी नामक औषधि और पिप्पलीक्वाथ में मिला कर फूट, ककड़ी, ईख, आम और आँवले के रस में मिलावे। अथवा किसी में भी न मिला कर शुद्ध रस को ही एक महीने, छः महीने या एक वर्ष रख कर शुक्त बना ले, इसी को शुक्त वर्ग कहते हैं। अब फलाम्ल-वर्ग कहते हैं—इमली, करोंदा, आम, अनार, आंवला बिजौरा निम्बू, छोटा वेर, बड़ा वेर, सौवीरक और परुषक नामक फल को फलाम्ल-वर्ग माना गया है। दधि और कांजी आदि द्रवाम्लवर्ग है तथा पिप्पली, गोल मरिच, अदरक, जीरक, चिरायता, पीत सरसों, धनिया, चोरहूली, दौना, मैनफल, और सहजना—यह सब कटुवर्ग के अन्तर्गत हैं। शुष्क मछली, मांस, कन्द, मूल, फल एवं विविध शाक शाकवर्ग में आते हैं।

ततोऽर्धमापदर्थं जानपदानां स्थापयेत्। अर्धमुपभुंजीत। नवे चानवं शोधयेत्। क्षुण्णघृष्टपिष्टभृष्टानामार्द्रशुष्कसिद्धानां च धान्यानां वृद्धिक्षयप्रमाणानि प्रत्यक्षीकुर्वीत। कोद्रवव्रीहीणामर्धं सारः। शालीनामष्टभागोनः। त्रिभागोनोऽवरकाणाम्। प्रियङ्गूणा-मर्धं सारो नवभागवृद्धिश्च। उदारकस्तुल्यः। यवा गोधूमाश्च क्षुण्णाः। तिला यवा मुद्गमाषाश्च घृष्टाः। पंचभागवृद्धिर्गोधूमः सक्तवश्च। पादोना कलायचमसी। मुद्गमाषाणामर्धपादोनः। शैम्बानामर्धं सारः। त्रिभागोनो मसूराणाम्। पिष्टमामं कुल्माष-श्चाध्यर्धगुणः। द्विगुणो यवकः पुलाकः पिष्टं च सिद्धम्।

आपत्काल में प्रजाजनों के सहायता देने के लिए स्नेह गों में से आधा भाग सुरक्षित रखे, और शेष आधा भाग राजा अपने रसोई घर आदि में व्यय कर ले। नवीन फसल आने पर पुरानी वस्तु को निकाल कर उसके स्थान पर नयी वस्तु भरे। अन्न के कुटने, मलने, पिसने, भुनने, गीले होने या पकने आदि में जो छीजन या वृद्धि हो, उसकी तोल आदि को कोष्ठाधिकारी स्वयं देखे। कोदों और साठी चावल में

चावल आधी मात्रा में निकलता है लोबिया आदि में तृतीयाँश कम हो जाता है, प्रियंगु में आधा सार प्राप्त होता है, साथ ही उनमें नवमभाग की वृद्धि हो जाती है। मोटे धान्यों में भी आधा चावल उपलब्ध होता है। तिल, जौ, मूँग और उड़द धृष्ट अन्न अर्थात् माड़ने पर निकलने वाले होते हैं। गेहूँ और जौ भुन कर सत्तू बनने पर पंचम अंश बढ़ते हैं, किन्तु मटर पीसने-भूनने से चतुर्थभाग घट जाती है। मूँग-उड़द पिस कर अष्टम भाग घटती है तथा सेम तो आधे ही निकल पाते हैं। मसूड़ पिस कर तृतीयांश घट जाती है, किन्तु कच्ची कुलथी पिसने पर आधी बढ़ जाती है। अर्धपक्व चावल और पिसा हुआ गेहूँ पक कर द्विगुणित हो जाता है।

कोद्रववरकोदारकप्रियंगूणां त्रिगुणमन्नं चतुर्गुणं व्रीहीणां पञ्चगुणं शालीनाम्। तिमितमपरान्नं द्विगुणमर्धाधिकं विरूढानाम्। पञ्चमभागवृद्धिर्भृष्टानाम्। कलायो द्विगुणः। लाजा भरुजाश्च। षट्कं तैलमतसीनाम्। निम्बकुशाम्रकपित्थादीनां पञ्चभागः। चतुर्भागिकास्तिलकुसुम्भमधूकेंगुदीस्नेहाः। कार्पास-क्षौमाणां पंचपले पलं सूत्रम्।

कोदो एवं लोबिया आदि अन्न, मोटा चावल और प्रियंगु का चावल पक कर तिगुना होता है। साठी चावल चौगुना एवं ब्रीही चावल पंचगुना हो जाता है। कटने के समय अधपके अन्न को पकाया जाय तो दुगुना और कुछ बढ़ने पर पकाया जाय तो ढाई गुना होता है। भुने हुए धान्य पकने पर केवल पांचवा भाग बढ़ते हैं। पकने पर मटर द्विगुणित और लावा तथा जौ द्विगुणित हो जाता है। असली से छटवाँ अंश, तिल, कुसुम्भ, महुआ फल और इंगुदी से चौथाई अंश तेल निकलता है। पांच पल कपास या रेशम से एक पल अर्थात् चार तोले सूत बन पाता है।

पञ्चद्रोणे शालीनां च द्वादशाढकं तण्डुलानां कलभभोजनम्। एकादशकं व्यालानाम्, दशकमौपवाह्यानाम्, नवकं सान्ना-

ह्यानाम्, अष्टकं पत्तीनाम्, सप्तकं मुख्यानाम्, षट्कं देवीकुमाराणाम्, पञ्चकं राज्ञाम् । अखण्डपरिशुद्धानां वा तण्डुलानां प्रस्थः ।

पाँच द्रोण (दो मन अर्थात् बीस आढक) धान कुटने छटने पर बारह आढक चावल बचे तो वह हाथी के बालक के खाने योग्य एवं बीस आढक धान का ग्यारह आढक रह जाय तो वह मदमत्त हाथी के खाने योग्य होता है। बीस आढक से नौ आढक रह जाने वाला चावल सेना के हाथी के खाने योग्य होता है। यदि बीस आढक का आठ ही रह जाय तो पदाति सैनिकों के तथा सात आढक रहे जो प्रमुख वीरों के भोजन योग्य होता है। यदि बीस आढक का छः आढक रह जाय तो रानियों और राजकुमारों के तथा पाँच आढक रह जाय तो राजा के भोजन में प्रयुक्त हो सकता है। अथवा बीस आढक चावल का एक प्रस्थ अर्थात् चौथाई आढक बिना टूटा बढ़िया चावल रहे तो वह राजा के भोजन के लिए उपयोगी होता है।

चतुर्भागः सूपः, सूपषोडशो लवणस्यांशः, चतुर्भागः सर्पिषः तैलस्य वा एकमार्यभक्तम् । प्रस्थषड्भागः सूपः, अर्धस्नेहमवराणाम् । पादोनं स्त्रीणाम् । अर्धं बालानाम् । मांसपलविंशत्या स्नेहार्धकुडवः, पलिको लवणस्यांशः, क्षारपलयोगः, द्विधरणिकः कटुकयोगः, दध्नश्चार्धप्रस्थः । तेनोत्तरं व्याख्यातम् । शाकानामध्यर्धगुणः, शुष्काणां द्विगुणः, स चैव योगः ।

मनुष्य के पूर्ण भोजन के लिए एक प्रस्थ अन्न, चौथाई प्रस्थ दाल, दाल का सोलहवां अंश लवण, दाल का चौथाई भाग घृत या तैल उचित है। अथवा आर्य पुरुष के लिए एक प्रस्थ छटवाँ भाग दाल और दाल का आधा भाग घृत या तैल का भोजन होना चाहिए। इस भोजन-परिमाण का पौन भाग आर्य स्त्रियों को तथा उससे आधा भोजन बालकों को दिया जाय। बीस पल माँस के लिए आधा कुडव [आधा पाव] घृत या तैल, एक पल नमक अथवा नमक न हो तो

उसके स्थान में एक पल यवक्षारादि, दो धरण (दो तोले) तीक्ष्ण मशाला आदि और आधा प्रस्थ दही हो। इस हिसाब से ही मांस के न्यूनाधिक होने पर सब वस्तुओं को कम या अधिक कर ले। शाक में माँस से आधी सामग्री डाली जायगी। सूखे शाक या सूखे माँस के लिए, ऊपर जो सामग्री माँस पकाने के उद्देश्य से दी गई है, उससे दुगुनी होनी चाहिए।

हस्त्यश्वयोस्तदध्यक्षे विधाप्रमाणं वक्ष्यामः। बलीवर्दानां माषद्रोणं यवानां वा पुलाकः। शेषमश्वविधानम्। विशेषो घाणपिण्याकतुला कणकुण्डकं दशाढकं वा। द्विगुणं महिषोष्ट्राणाम्। अर्धद्रोणं खरपृषतरोहितानाम्। आढकमेणकुरंगाणाम्। अर्धाढकमजैडकवराहाणां द्विगुणं वा कणकुण्डकम्। प्रस्थौदनः शुनाम्। हंसक्रौंचमयूराणामर्धप्रस्थः। शेषाणामतो मृगपशुपक्षिव्यालानामेकभक्तादनुमानं ग्राहयेत्।

हाथी-घोड़ों के भोजन-विषय में हस्त्यध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष प्रकरण में कहेंगे। एक वृषभ के लिए एक-एक द्रोण उड़द और अधपका जौ एवं शेष सामग्री अश्व के भोजन के समान दे। वृषभ के लिए एक तुला अर्थात् सौ पल कुटा हुआ तिल या दस आढक परिमाण भूसी मिश्रित चावल-कण विशेष रूप से देना चाहिए। भैंस और ऊँट को वृषभ से द्विगुणित सामग्री दे। खच्चर, गधा, पृषत एवं रोहित मृग के लिए दो आढक परिमाण उचित है। एण या कुरंग मृग को एक आढक एवं बकरा, मेढा, शूकर को अर्ध आढक भोजन दे या एक आढक भूसी युक्त तन्दुल-कण दे। श्वान को एक प्रस्थ और हंस, क्रौंच या मोर को आधा प्रस्थ देना उचित है। उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्य जीवों पशु पक्षी आदि को भोजन कराके उनके भोजन की मात्रा निश्चित करे।

अङ्गारांस्तुषाँल्लोहकर्मान्तभित्तिलेप्यानां हारयेत्। कणिकाः दासकर्मकरसूपकाराणाम्। अतोऽन्यदौदनिकापूपिकेभ्यः प्रयच्छेत्।

तुलाभाण्डमानं रोचनीदृषन्मुसलोलूखलकुट्टकरोचकयंत्रपत्रकशूर्प-चालनीकण्डोलीसम्मार्जन्यश्चोपकरणानि । मार्जकरक्षकधारक-मापकमायकदायकदापकशलाका प्रतिग्राहकदासकर्मकरवर्गश्च विष्टः ।

उच्चैर्धान्यस्य निक्षेपो मूताः क्षारस्य संहृताः ।
मृत्काष्ठकोष्ठाः स्नेहस्य पृथिवी लवणस्य च ।।१

रसोई बनाने से शेष रहा अंगार (कोयला) लौह-निर्माण के कारखाने के और मिट्टी मिश्रित अन्न की भूसी दीवार पर लेप करने के कार्य में लावे। दासों, कर्मकारों और रसोइयों के भोजनार्थं चावण की किनकी दे और उनसे भी जो बचे, वह पुए आदि बनाने वाले सहकारी रसोइयों को दे दे। अब उपर्युक्त के लिए उपयोगी उपकरणों को कहते हैं—तराजू, बांट, दरेंती, सिल, मूसल, ओखली, [illegible]गची, आटा-चक्की, काष्ठ की छुरी, सूप, चलनी, टोकरी, पिटारी, सम्मार्जनी। अब कर्मचारी के विषय में बताते हैं—झाड़ूदार, कोठार का चौकीदार, रखने वाला, धान्यादि नापने वाला, माप-तौल करने वाला, देने वाला, उसकी देख-माल करने वाला, भार-गणना करने वाला, दास एवं अन्यान्य कार्य-कर्त्ता-गणों को विष्टि कहते हैं। अन्न के कोष्ठार उच्च स्थान पर रहे, क्षार पदार्थों का भंडार ठंडे स्थान पर तृणादि से ढका रहे, घृत-तैल आदि के भाण्ड मिट्टी का काष्ठ के तथा नमक रखने के भी मिट्टी के बड़े पात्र रहें ।।१।।

षोडशोऽध्यायः

पण्याध्यक्ष के कर्त्तव्य

पण्याध्यक्षः स्थलजलजानां नानाविधानां पण्यानां स्थलपथ-वारिपथोपयातानां सारफल्गवर्धान्तरं प्रियाप्रियतां च विद्यात् । तथा विक्षेपसंक्षेपक्रयविक्रयप्रयोगकालान् । यच्च पण्यं प्रचुरं स्यात्त-

देकीकृत्यार्धमारोपयेत् । प्राप्तेऽर्घे वाऽर्घान्तरं कारयेत् । स्वभूमिजानां राजपण्यानामेकमुखं व्यवहारं स्थापयेत् । परभूमिजानामनेकमुखम् । उभयं च प्रजानामनुग्रहेण विक्रापयेत् । स्थूलमपि च लाभं प्रजानामौपघातिकं वारयेत् । अजस्रपण्यानां कालोपरोधं संकुलदोषं वा नोत्पादयेत् ।

पण्याध्यक्ष अर्थात् विक्रय योग्य वस्तुओं का प्रबन्ध स्थल या जल में पैदा हुई तथा स्थल या जल मार्ग से लाई गई विक्रय योग्य वस्तुओं में गुरु एवं सामान्य के अनुपात से मूल्य एवं प्रिय या अप्रिय वस्तुओं के कम या अधिक संग्रह के विषय में भले प्रकार जानकारी प्राप्त करे। उसमें यह भी चतुराई होनी चाहिए कि जो वस्तु अपने भंडार में अधिक हो, उसका मूल्य अधिक कर दे और उसके विक कर समाप्त होने पर मूल्य कम कर दे। स्वदेश में उत्पन्न पण्य पदार्थों का विक्रय एक ही स्थान पर करे और विदेशी पदार्थों की विक्रय-व्यवस्था विभिन्न केन्द्रों द्वारा कराये। उपर्युक्त दोनों प्रकार के पदार्थों की खरीद-बेच में प्रजा-हित का भी ध्यान रखे। राजा के अधिक लाभ में प्रजा का कष्ट-निहित हो तो राजा उस अधिक लाभ को भी छोड़ दे। जो वस्तुएं नित्य उपयोगी एवं सहज प्राप्त हो जांय तो उनके विक्रय पर कोई अंकुश न लगावे और ऐसा भी कोई कारण न बनने दे, जिससे कि वे वस्तु अधिक इकट्ठी हो जाँय।

बहुमुखं वा राजपण्यं वैदेहकाः कृतार्घं विक्रीणीरन् । छेदानुरूपं च वैधरणं दद्युः । षोडशभागो मानव्याजी । विंशतिभागस्तुलामानम् । गण्यपण्यानामेकादशभागः । परभूमिजं पण्यमनुग्रहेणावाहयेत् । नाविकसार्थवाहेभ्यश्च परिहारमायतिक्षमं दद्यात् । अनभियोगश्चार्थेष्वागन्तूनामन्यत्र सभ्योपकारिभ्यः ।

थोक या फुटकर व्यापारियों को अनेक व्यक्तियों द्वारा विक्रय योग्य राजकीय द्रव्यों को निश्चित मूल्य पर बेचना चाहिए। यदि वे नियत मूल्य से कम में किसी पदार्थ के विक्रय द्वारा राज्य को हानि

पहुंचावे तो उसकी क्षतिपूर्त्ति उन्हीं से कराई जाय। अब व्यापारियों पर लगने वाले कर के विषय में कहते हैं—माप से विक्रय योग्य वस्तु के मूल्य का षोडशांश रूप में कर मानव्याजी कहा गया है। तौल से विक्रय योग्य पदार्थों का बीसवाँ भाग 'कर' तुलामान कहा गया है। गणना द्वारा विक्रय योग्य 'कर' ग्यारहवाँ भाग कर होता है। विदेशी व.तुओं को उदारता से आने दे। जलमार्ग से व्यापार करने वालों के लिए परिहार अर्थात् करमुक्ति प्रदान करे। विदेशी व्यापारियों के प्रति अपने देश का कोई व्यापारी न्यायालय में वाद प्रस्तुत न करके, स्वयं ही उससे ऋण की वसूली करेगा। किन्तु यदि विदेशी व्यापारी के साथ जो भागीदार हो, उसके प्रति वाद चलाया जा सकेगा।

पण्याधिष्ठातारः पण्यमूल्यमेकमुखं काष्ठद्रोण्यामेकच्छिद्रापिधानायां निदध्युः। अह्नश्चाष्टमे भागे पण्याध्यक्षस्यार्पयेयुः। इदं विक्रीतमिदं शेषमिति। तुलामानभाण्डकं चार्पयेयुः। इति स्वविषये व्याख्यातम्। परविषये तु पण्यप्रतिपण्ययोरर्घं मूल्यं च आगमय्य शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभक्तभाटकव्ययशुद्धमुदयं पश्येत्। असत्युदये भाण्डनिर्वहणेन पण्यप्रतिपण्यार्घेण वा लाभं पश्येत्। ततः सारपादेन स्थलव्यवहारमध्वना क्षेमेण प्रयोजयेत्। अटव्यन्तपालपुरराष्ट्रमुख्यैश्च प्रतिसंसर्गं गच्छेदनुग्रहार्थम्।

राज्य के विक्रय-केन्द्र अधिकारी एक स्थान की विक्री से प्राप्त धन एक छेद वाली काष्ठपेटिका में रखें और दिवस के अष्टम भाग में विक्रय-काल समाप्त होने पर वह सम्पूर्ण विक्रय धन पण्याध्यक्ष को दे दें। साथ ही यह भी बतादें कि इतना माल बिका और इतना शेष बचा है। फिर तराजू-बाट और नापने के उपकरण भी सौंप दें। यह विक्रय-विषयक विधि कही गई, अब विदेश में विक्रय के विषय में कहेंगे। पण्याध्यक्ष को यह जान लेना चाहिए कि विदेश में गये माल पर वहाँ का आयात कर, वर्तनी (सीमा कर), आतिवाहिक अर्थात् मार्ग-

रक्षक सेना के लिए दिया जाने वाला कर,तरदेय अर्थात् उतरने पर कर, भक्त अर्थात् कर्मचारियों और निर्यात पर पड़ने वाला व्यय तथा भाड़ा आदि देकर कितना शुद्ध लाभ शेष रहेगा। यदि उसमें लाभ प्रतीत हो तो इस पर विचार करे कि यदि अपने माल को वहाँ रोक रखा जाय तो उससे कुछ लाभ हो सकता है अथवा नहीं। यदि लाभ दिखाई दे तो लाभ का चौथाई अंश मार्ग की सुरक्षा व्यय में लगा कर स्थल मार्ग से व्यापार करावे। इसके संचालनार्थ राजा का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए विदेश के वनपाल, सीमापाल, नगर प्रमुख और राष्ट्र प्रमुख से सम्पर्क किया जाना चाहिए।

आपदि सारमात्मानं वा मोक्षयेत्। आत्मनो वा भूमिमप्राप्तः सर्वदेयविशुद्धं व्यवहरेत्। वारिपथे वा यानभाटकपथ्यदनपण्यप्रतिपण्यार्घप्रमाणयात्राकालभयप्रतीकारपण्यपत्तनचारित्राण्युपलभेत।

नदीपथे च विज्ञाय व्यवहारं चरित्रतः।
यतो लाभस्ततो गच्छेदलाभं परिवर्जयेत्॥

पण्याध्यक्ष का अधीनस्थ कोई व्यापारी परदेश में व्यापारी के लिये जाकर किसी प्रकार के संकट में फँस जाय तो उसे अपने माल और प्राण की रक्षा करनी चाहिए। जब तक स्वदेश में न आवे, तब तक वहाँ के राजा को सभी कर देकर अपना व्यवसाय चलाता रहे। इसी प्रकार जलपथ से विदेश में जाकर व्यापार करने वाले को यानादि का किराया, मार्ग-भोजन व्यय, अपने माल और विदेशी माल के मूल्यों का सामंजस्य, यात्रा का समय, मार्ग में चोरी आदि के भयों से बचने के प्रतीकार और उसदेश के चाल-व्यवहार की पूरी जानकारी रखनी चाहिए। नदी मार्ग से जाकर भी देश-भेद से चरित्र और व्यवहार का अनुसरण करे और जिस मार्ग से जाने में सुविधा या लाभ हो उस मार्ग से गमन करे। अल्प लाभ या लाभ-रहित मार्ग का परित्याग करे

सप्तादशोऽध्यायः

कुप्याध्यक्ष के कर्त्तव्य

कुप्याध्यक्षो द्रव्यवनपालैः कुप्यमानाययेत् । द्रव्यवनकर्मान्ताँश्च प्रयोजयेत् । द्रव्यवनच्छिदां च देयमत्ययं च स्थापयेदन्यत्रापद्भ्यः । कुप्यवर्गः—शाकतिनिशधन्वनार्जुनमधूकतिलकसालशिशपारिमेदराजादनशिरीषखदिरसरलतालसर्जाश्वकर्णसोमवल्कशाम्रप्रियकधवादिः सारदारुवर्गः ।

कुप्याध्यक्ष का कार्य चन्दनादि काष्ठ, बाँस एवं छाल आदि की समुचित व्यवस्था करने का है । उसे वनपालों के द्वारा श्रेष्ठ काष्ठ मँगा कर, कारखानों के द्वारा उत्तमोत्तम वस्तुएँ बनवानी चाहिए । श्रेष्ठ वन के काष्ठ को काटने के लिए नियुक्त कर्मचारियों को वेतन और विना आज्ञा वृक्षों को काटने वालों को दण्ड दे । अब पुण्यवर्ग में आने वाले सारदारुवर्ग (दृढ़ या वेश कीमती काष्ठ) के विषय में वताते हैं—सागौन, तिनिश, धन्वन, अर्जुन, महुआ तिल, साल, शीशम, अरिमेद, राजादन, शिरीष, खैर, सरल, ताल, सर्ज, अश्वकर्ण, सोमवल्क, वल्कश, आम, प्रियक और धौ ।

उटजचिमियचापवेणुवंशसातिनकण्टकभाल्लूकादिर्वेणुवर्गः । वेत्रशीकवल्लीवाशीश्यामलतानागलतादिर्वल्लिवर्गः । मालतीमूर्वार्कशणगवेधुकातस्यादिर्बल्कवर्गः मुञ्जबल्वजादि रज्जुभाण्डम् । तालीतालभूर्जानां पत्रम् । किंशुककुसुम्भकुंकुमानां पुष्पम् । कन्दमूलफलादिरौषधवर्गः ।

कालकूटवत्सनाभहालाहलमेषशृङ्गमुस्ताकुष्ठमहाविषवेल्लितकगौरार्द्रबालकमार्कटहैमवतकालिङ्गकदारदकांकोलसारकोष्ट्रकादीनि विषाणि । सर्पाः कीटाश्च । त एव कुम्भगताः । इति विषवर्गः ।

उटज, चिमिय, चाप, वेणु, वंश, सातिन कण्टक, भाल्लूक, आदि बाँस के भेद हैं । यह क्रमशः बड़े छेद, खरदुरी पीठ एवं अति काँटे वाले,

ठोक एवं कोमल, खुरदुरातना अल्प छिद्र, सीधा बाँस, छोटा बाँस, कण्ट-काकार एवं लम्बा स्थूल और काँटे-रहित होते हैं। अब वल्लीवर्ग के विषय में कहते हैं--बेंत, शीकवल्ली, वाशी, श्यामलता, नागलता आदि वल्लीवर्ग में आते हैं। अब वल्लक वर्ग को बताते हैं--मालती, मूर्वा, आक, शण नागवला और अलमी आदि को इसमें माना है। मूँज और वल्वजा से रस्सी बटी जाती है। ताली अर्थात् ताड़ और भोजपत्र लिखने के कार्य में आता है। ढाक, कुसुम्भ और कुमकुम पुष्प का उपयोग वस्त्र आदि के रंगने में किया जाता है। कन्द, मूल और फल औषधिवर्ग के अन्तर्गत माने जाते हैं। अब विषवर्ग को कहते हैं--कालकूट, वत्सनाभ, हालाहल, मेषशृंग वृक्ष, कुष्ठ, महाविष, वेल्लितक, गौरार्द्र, वालक मार्कट हैमवत, कालिंगक, दारदक, अंकोलमारक, एवं उष्ट्रक आदि विषवृक्षों के द्वारा स्थावर विष उत्पन्न होते है। जंगम विषों में सर्प, विच्छू आदि कीड़े के विष सम्मिलित हैं। यह सभी विष असंस्कार वाले होते हैं। यदि इन्हीं को घटादि में रखा जाय तो और भी प्रबल विषधर सिद्ध होते हैं। यह विषवर्ग कहा गया।

गोधासेरकद्वीपिशिशुमारसिंहव्याघ्रहस्तिमहिषचमरसृमरखड्गगोमृगगवयानां चर्मास्थिपित्तस्नाय्वस्थिदन्तशृङ्गखुरपुच्छान्यन्येषां वाऽपि मृगपशुपक्षिव्यालानाम् । कालायसताम्रवृत्तकांस्यसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटानि लोहानि । विदलमृत्तिकामयं भाण्डम् । अङ्गारतुषभस्मानि मृगपशुपक्षिव्यालवाटाः काष्ठतृणवाटाश्चेति ।

बहिरन्तश्च कर्मान्ता विभक्ताः सर्वभाण्डिकाः ।
आजीवपुररक्षार्थाः कार्याः कुप्योपजीविनाम् ॥

गोधा, सेरक, द्वीपी, शिशुमार, सिंह, व्याघ्र, गज, भैंस, चमर धेनु साँभर, गेंडा, गौ, मृग, गवय, विविध प्रकार के हरिण, पशु, पक्षी और व्याल आदि का चर्म, अस्थि पित्त, स्नायु, दाँत, सींग, खुर और पूँछ आदि कुप्य पदार्थों में माने जाते हैं, इसलिए इन सबका संग्रह कुप्याध्यक्ष करे। कालायस, ताम्र, वृत्त, काँसा, सीसा, राँग, इस्पात

और पीतल भी कुप्य द्रव्यों के अन्तर्गन्त ही हैं। बाँस या बेंत से निर्मित और मिट्टी से निर्मित के भेद से भाण्ड दो प्रकार के होते हैं। अंगार, भुमी, मृगों का बाड़ा, पक्षी एवं नाग आदि जीवों के बाड़े अथवा काठ या तृण बने हुए बाड़े भी 'कुप्य' ही कहे जाते हैं। इनके द्वारा जिनकी आजीविका हो, उनके लिये नगर के बाहर या भीतर, थोड़ी-थोड़ी दूरी के अन्तर से उनकी जीविका तथा नगर की रक्षा के निमित्त ऊपर कहे ढँग के भाण्ड बनाने के कारखानों को खोलने में कुप्याध्यक्ष को सहायक होना चाहिए

अष्टादशोऽध्याय

आयुधागाराध्यक्ष के कर्त्तव्य

आयुधागाराध्यक्षः सांग्रामिकं दौर्गकर्मिकं परपुराभिघातिकं यन्त्रमायुधमावरणमुपकरणं च तज्जातकारुशिल्पिभिः कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारयेत्। स्वभूमौ च स्थापयेत्। स्थानपरिवर्तनमातपप्रवातप्रदानं च बहुशः कुर्यात्। ऊष्मोपस्नेहक्रिमिभिरुपहन्यमानमन्यथा स्थापयेत्। जातिरूपलक्षणप्रमाणागममूल्यनिक्षेपैश्चोपलभेत।

अब आयुधागाराध्यक्ष के विषय में कहते हैं—युद्ध के उपयोग में आने वाली सब सामग्री बनवाने और उनके रख-रखाव का पूरा उत्तरदायित्व उसी पर होता है। उसे दुर्ग-निर्माण, शत्रु के नगर पर आक्रमण और उसके विनाशार्थ यन्त्र, आयुध, उसके रखने के आवरण, उपकरण आदि के कारीगरों और शिल्पियों को रख कर कार्य कराना चाहिए तथा उनके द्वारा किये जाने वाले दैनिक कार्य का परिमाण, कार्य का समय, कार्य का पारिश्रमिक और उनके कार्यों के फल रूप में उत्पादित सामग्री का परिमाण निश्चित करे। तैयार सामग्री को सुरक्षित स्थान में रखने की व्यवस्था के साथ ही उन्हें एक स्थान पर कभी न रखे अर्थात् स्थान बदलता रहे। उस सामग्री को यथा आव-

श्यक धूप और वायु भी मिल सके, इसका ध्यान रखे। गर्मी, स्नेह या घुन आदि क्रमियों से भी सुरक्षा का उपाय करे। युद्ध में उपयोग होने वाली सभी वस्तुओं की जाति, स्वरूप, लक्षण, आकार, आगम, मूल्य और निक्षेप विषयक सभी बातों का ज्ञान आयुधागाराध्यक्ष को होना आवश्यक है।

सर्वतोभद्रजामदग्न्यबहुमुखविश्वासघातिसंघाटीयानकपर्जन्य-कबाहुर्ध्वबाह्वर्धबाहूनि स्थिरयंत्राणि।

'स्थिर यन्त्र' के अन्तर्गत निम्न दस यन्त्र हैं जो कि एक स्थान पर रख कर प्रयोग में लाये जाते हैं। इनका परिचय देते हैं—सर्व-तोभद्र (गाड़ी के पहिये के आकार का यह यन्त्र दुर्गभित्ति पर रखा जाकर सब दिशाओं की ओर घूमता हुआ पाषाण-वर्षा करता है), जामदग्न्य (यह अपने भीतर रखे अनेक बाणों की वर्षा स्वयं करता रहता है), बहुमुख (दुर्ग-प्राकार पर निर्मित एक कक्ष, जिसमें बैठा हुआ धनुर्धर चारों ओर बाण-वर्षा करने में समर्थ रहता है), विश्वास-घाति (नगर के बाहर रखा यह तिर्यक परिघ जैसा अपने स्पर्श करने वाले शत्रु पर तुरन्त गिर कर उसे नष्ट कर देता है), संघाटी (काष्ठ पर स्थित यह अग्नियंत्र बड़े-बड़े भवनों को भस्म करने में सहायक होता है), यानक (दण्डाकार यह लम्बा यन्त्र एक चक्र पर स्थित रहता है), पर्जन्यक (अग्निशामक वारुणास्त्र), बाहुयन्त्र (पर्जन्यक से आधे परिमाण का यह यन्त्र दो समान स्तम्भों जैसा प्रतीत होता हुआ शत्रु पर गिर कर उसे नष्ट कर देता है), ऊर्ध्व-बाहु (एक वृहद् स्तम्भ जैसा यह यन्त्र भी शत्रु पर गिर कर उसे मार देता है), अर्धबाहु (ऊर्ध्वबाहु की आकृति का, किन्तु उससे आधे आकार का होता है)।

पंचालिकदेवदण्डसूकरिकामुसलयष्टिहस्तिवारकतालवृन्तमु-द्गरद्रुघणगदास्पृक्तलाकुद्दालास्फोटिमौद्घाटिमोत्पाटिशतघ्नीत्रि-शूलचक्राणि चलयंत्राणि।

अब 'चल यन्त्र' के सत्तरह प्रकार बतलाते हैं—पंचालिका (काष्ठ निर्मित तीखे मुख का यह यन्त्र दुर्ग-प्राकार के बाहर स्थित खाई के जल में छिपा रह कर शत्रु के मार्ग को रोकने में सहायक होता है), देवदण्ड (दुर्ग-प्राकार पर स्थित कीली-रहित यह यन्त्र वृहद् स्तम्भ के रूप में प्रतीत होता है), सूकरिका (सूत एवं चर्म से निर्मित एवं रुई आदि से भरे हुए इस शूकराकार यन्त्र का उपयोग बाहर से होने वाली पाषाण-वर्षा के रोकने में होता है), मुसलयष्टि (खैर की लकड़ी से बना हुआ एक यन्त्र), हस्तिवारक (हाथियों को आगे बढ़ने से रोकने वाले त्रैमुखी यन्त्र) तालवृन्त (हवा चलाने के लिए घूमने वाला यत्र), मुद्गर, द्रुघण, गदा, स्पृक्तला (कांटों युक्त गदा), कुदाल, आस्फोटिम (गर्जनायुक्त पाषाण-वर्षा करने वाला), उद्दाटिक (मुद्गराकार) उत्पाटिम स्तम्भादि उखाड़ने में उपयोगी), शतघ्नी (मोटी एवं लम्बी कीलियों से परिपूर्ण और पहियों से युक्त स्तम्भाकार यन्त्र, जो दुर्ग-प्राकार पर स्थित रहता है), त्रिशूल एवं चक्र।

शक्तिप्रासकुन्तहाटकभिण्डिपालशूलतोमरवराहकर्णकणपकर्पणत्रासिकादीनि च हलमुखानि

अब अग्रभाग में तीक्ष्ण शस्त्रों के विषय में कहते हैं। यह शस्त्र 'हलमुख' कहे गये हैं। शक्ति (चार हाथ लम्बा लौह-निर्मित यह यन्त्र करीरपत्र जैसे मुख और गोस्तन जैसे अधोभाग वाला होता है), प्रास (काष्ठ और लौह से निर्मित यह यन्त्र चौबीस अंगुल लम्बा और दो पीठों वाला होता है), कुन्त (पाँच या सात हाथ लम्बा), हाटक तीन शूल युक्त , भिण्डिपाल, शूल, तोमर वराहकर्ण, कंणप, कर्णप और त्रासिका संज्ञक यह सभी शस्त्र हलमुख के अन्तर्गत आते हैं।

तालचापदारवशार्ङ्गाणि कार्मुककोदण्डद्रूणा धनूंषि। मूर्वार्कशणगवैधुवेणुस्नायूनि ज्याः। वेणुशरशलाकादण्डासननाराचा-

श्च इषवः। तेषां मुखानि छेदनभेदनताडनान्यायसास्थिदारवाणि। निस्त्रिंशमण्डलाग्रासियष्टयः खड्गाः। खड्गमहिषवारणविषाणदारुवेणुमूलानि त्सरवः। परशुकुठारपट्टिशखनित्रकुद्दालक्रकचकाण्डच्छेदनाः क्षुरकल्पाः। यन्त्रगोष्पणमुष्टिपाषाणरोचनीदृषदश्चायुधानि।

ताड़, चाप (एक प्रकार का बाँस), काष्ठ या सींग से बनाये जाने वाले धनुष कार्मुक, कोदण्ड और द्रूण संज्ञक तीन भेद वाले कहे हैं। धनुष की ज्या अर्थात् खींचने की डोरी मूर्वा, अर्क, शण, गवेधु, वेणु या स्नायु अर्थात् ताँत से बनाई जाती है। इषु अर्थात् बाण वेणु, शर, शलाका, दण्डासन और नाराच अर्थात् लोहे आदि से बनते हैं। इनके मुखों का कार्य काटना, भेदन करना या ताड़न करना होता है। यह लोह, अस्थि और काष्ठ से बनाये जाते हैं। खड्ग के तीन भेद हैं—(१) निस्त्रिंश (आगे से टेढ़ी), (२) मण्डलाग्र (आगे से मण्डलाकार) और (३) असियष्टि (पतली और लम्बी) उसकी मूँठ गैंडे या भैंस के सींग से अथवा हाथी दाँत से बनाई जाती है। परशु अर्थात् फरसा, कुठार, पट्टिश, खनित्र, कुदाल, आरा और काण्ड-छेदन आदि सब यन्त्र छुरे के समान तेज धार वाले होने के कारण क्षुरकल्प कहे गये हैं। कुछ और भी आयुध हैं, जैसे—यन्त्र पाषाण (यन्त्र से फेंका जाने वाला पाषाण), गोष्पण (पत्थर फेंकने का एक यन्त्र विशेष), मुष्टिपाषाण मुष्टि से फेंका जाने वाला पाषाण), रोचनी अर्थात् बड़े-बड़े पाषाण स्वयं भी आयुध ही होते हैं।

लोहजालजालिकापट्टकवचसूत्रककटशिशुमारकखड्गि धेनुकहस्तिगोचर्मखरश्रृङ्गसंघातं वर्माणि।। शिरस्त्राणकण्ठत्राणकूर्पासकंचुकवारवाणपट्टनागोदरिकाः। पेटीचर्महस्तिकर्णतालमूलधमनिकाकवाटकिटिकाप्रतिहतवलाहकान्ताश्चावरणानि। हस्तिरथवाजिनां योग्यभाण्डमालङ्कारिकं च कर्म सन्नाहकल्पनाश्चोपकरणानि। ऐन्द्रजालिकमौपनिषदिकं च कर्म। कर्मान्तानां च।

इच्छामारम्भनिष्पत्तिं प्रयोगं व्याजमुद्यमम् ।
क्षयव्ययौ च जानीयात् कुप्यानामायुधेश्वरः ॥१

अब आवरण के विषय में बताते हैं, जो कि वर्म अर्थात् कवच कहे जाते हैं। लौहजाल (सब शरीर को ढँक लेने वाला), लौहजालिका (केश-विहीन शीश की रक्षा के लिए, लौहपट्ट) (भुजाओं के अतिरिक्त शेष अङ्गों को ढँकने वाला), लौहकवच (वक्षःस्थल और पीठ का आवरण), सूत्रकंटक (सूत से बना), शिशुमार, खड्ग, धेनुक, हाथी और बैल आदि के चर्म, खुर एवं सींग से निर्मित आवरण—यह सभी कवच कहलाते हैं। शिरस्त्राण, कण्ठत्राण, कूर्पास (आधी भुजा का रक्षक), कंचुक घुटनों तक लम्बा), वारवाण (एड़ी तक लम्बा), पट्ट (हाथों को छोड़ कर सर्वांग को ढकने वाला लौह-रहित आवरण) और नागोदरिका अर्थात् हाथ की अंगुलियों और उर का आवरण, पेटी (बिल्ली से बनी ढाल), चर्मनिर्मित ढाल, हस्तिकर्ण (मुख ढँकने का), ताल मूल (काष्ठ की ढाल), धमनिका (सूत-निर्मित ढाल), कवाट, किटिका, अप्रतिहत (पूरे हाथ की रक्षा के लिए) और वलाहकान्त आदि सब आवरण श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। हाथी, रथ और घोड़े आदि के लिए जो अंकुश, आदि शस्त्र एवं अलंकार आदि का प्रयोग किया जाता है, वे सभी उपकरण कहे गये है। ऐन्द्रजालिक और औपनिषदिक कर्मों को भी उपकरण ही कहा गया है। कुप्य द्रव्य विषयक कार्यों में राजा का अभिप्राय, कार्यारम्भ, कर्मसिद्धि, प्रयोग, हानि, लाभ एवं व्यय का पूर्ण ज्ञान आयुधाध्यक्ष को रखना चाहिए ॥१॥

एकोविंशोऽध्यायः

तोल-माप का संशोधन

पौतवाध्यक्षः पोतवकर्मान्तान् कारयेत्। धान्यमाषा दश सुवर्णमाषकः। पञ्च वा गुञ्जाः। ते षोडश सुवर्णः कर्षो वा।

चतुष्कर्षं पलम् । अष्टाशीतिर्गौरसर्षपारूप्यमाषकः । ते षोडशधरणम् । शैम्ब्यानि वा विंशतिः । विंषतितण्डुलं वज्रधरणम् । अर्धमाषकः, मापकः, द्वौ, चत्वारः, अष्टौ माषकाः, सुवर्णो, द्वौ,चत्वारः, अष्टौ सुवर्णाः, शदः विंशतिः, त्रिशत्, चत्वारिंशत् शतमिति । तेन धरणानि व्याख्यातानि ।

पौतवाध्यक्ष अर्थात् तराजू-बाट का प्रमुख अधिकारी विभिन्न तौल के काँटे-बाट आदि के निर्माणार्थ कारखाना लगावे । उड़द के दस दानों के भार वाले स्वर्ण की तोल का एक माशा होता है और सोलह उड़द के भार का एक स्वर्ण या कर्ष एवं चार कर्ष का एक पल कहा जाता है । अब चाँदी कीतोल के बाँटों के विषय में कहते हैं—पीली सरसों के अट्ठासी दानों का एक माशा और सोलह माशे का एक धरण होता है । सेम के बीस दानों का भार भी एक धरण ही समझा जाता है। चावल के बिना टूटे बीस दाने हीरे की तोल के एक धरण भार के बराबर होते हैं । आधा माशा, माशा, दो माशा, चार माशा, आठ माशा सुवर्ण (सोलह माशा), दो सुवर्ण, चार सुवर्ण, आठ सुवर्ण, दस सुवर्ण, बीस सुवर्ण चालीस सुवर्ण और सौ सुवर्ण के बाँट स्वर्ण की तोल के निमित्त निश्चित करे । इस प्रकार स्वर्ण की तोल वाले एवं चाँदी की तोल वाले धरण आदि बाँट बताये गये ।

प्रतिमानान्ययोमयानि मागधमेकलशैलमयानि यानि वा नोदकप्रदेहाभ्यां वृद्धिं गच्छेयुरुष्णेनवा ह्रासम् । षडङ्गुलादूर्ध्वमष्टाङ्गुलोत्तरा दश तुलाः । कारयेल्लोहपलादूर्ध्वमेकपलोत्तराः । यन्त्रमुभयतः शिक्यं वा ।

सामान्य वस्तुओं को तोलने के बाँट लौह निर्मित हों । मगध और मेकल देशों के पत्थर भी इस कार्य में उपयोगी होते हैं । शंख आदि से भी इन्हें बनाया जा सकता है । बाँट वही उपयोगी होते हैं जो जल में भीगने या किसी द्रव्य में लिप्त होने पर भार में न बढ़ें और अग्नि आदि से गर्मी पाकर न घटें । स्वर्ण और चाँदी की तौल के लिए दस प्रकार

की तुला बनवानी चाहिए। यह काँटे छः अंगुल, चौदह अंगुल, बाईस अंगुल, तीस अंगुल, अढ़तीस अंगुल आदि के क्रम से (क्रमशः आठ अंगुल बढ़ते हुए) अठहत्तर अंगुल तक के होंगे। प्रथम प्रकार अर्थात् छः अंगुल के काँटे में लगे हुए लोहे का भार एक पल होना चाहिए और फिर एक-एक पल बढ़ता हुआ अंतिम प्रकार का काँटा दस पल भार का होता है। इन सब प्रकार के काँटों में दो पलड़े रहेंगे, जिनमें से एक में बाँट और दूसरे में तौला जाने वाला पदार्थ रखा जायगा।

पञ्चविंशत्पललोपां द्विसप्तत्यङ्गुलायामां समवृत्तां कारयेत्। तस्याः पंचपलिकं मण्डलं बद्ध्वा समकरणं कारयेत्। ततः कर्षोत्तरं पलं पयोत्तारं दशपलं द्वादश पंचदश विंशतिरिति पदानि कारयेत्। तत आषताद्दशोत्तरं कारयेत् अक्षेषु नद्ध्रीपिनद्धं कारयेत्। द्विगुणलोहांतुलामतः षण्णवत्यंगुलायामां परिमाणीं कारयेत्। तस्याः शतादूर्ध्वं विंशतिःपंचाशत् शयमिति पदानि कारयेत्। विंशतितौलिको भारः। दशधर्णिकं पलम्।तत्पलशतमायमानी। पंचपलावरा व्यावहारिकी भाजन्यन्तः पुरभाजनी च। तासामर्धधरणावरं पलम्। द्विपलावरमुत्तरलोहम्। षडङ्गुलावराश्चायामाः।

अब अन्यान्य वस्तुओं की तौल के लिए बनाई जाने वाली तुला के विषय में कहते हैं—समवृता नाम की तुला पेंतीस पल लौह से बहत्तर अंगुल लम्बी बनाई जाती है। इसके मध्य में पाँच पल का एक मण्डल बना कर दोनों पलड़ों में समान तौल लायी जाती है तथा उसके यथार्थ निश्चय के लिए मध्य भाग में एक चिह्न भी बना दिया जाता है। यदि चाहें तो उस चिह्न के आगे एक कर्ष से एक पल तक की माप का चिह्न भी अंकित कर सकते हैं। फिर एक कर्ष, दो कर्ष, एक पल, दस पल, द्वादशपल, पन्द्रह पल और बीस पल या दस-दस बढ़ाते हुए सौ पल तक के चिह्न लगा दे। प्रत्येक अक्ष (पाँच पल) की माप के स्थान पर स्वस्तिक चिह्न अंकित करना चाहिए। इस समवृत्ता तुला से दुगुने भार की परिणामी तुला बनावे, जो कि छियानवे अंगुल परिमाण की होगी।

यह भी एक कर्ष से पल तक के चिह्न वाली बनायी जा सकती है। इसमें बीस, पचास या सौ का निशान लगावे। सौ पल की एक तुला तथा बीस तुला का एक भार होता है। दस धरणि का एक पल, सौ पल की एक आयमानी, पिचान्वे पल एक व्यावहारिकी, नव्वे पल की भाजनी तथा पिचासी पल की अन्तःपुर भाजनी होती है। उपर्युक्त तीनों प्रकार की तुलाओं के प्रत्येक पल में आधे पल की कमी होती जाती है। जैसे कि आयमानी में एक पल दस धरण का होता है और व्यावहारिकी में एक पल साढ़े नौ धरण का, वैसे ही भाजनी में एक पल नौ धरण का और अन्तःपुर भाजनी में साढ़े आठ धरण का होता है। इनमें से प्रत्येक में उत्तरोत्तर दो पल परिमाण कम लोहा लगेगा। इसी प्रकार प्रत्येक तुला के आकार में भी छः छः अंगुल आकार कम होता जायगा।

पूर्वयोः पचपलिकः प्रयामो मांसलोहवणमणिवर्जम्। काष्ठतुला अष्टहस्ता पदवती प्रतिमानवती मयूरपदाधिष्ठिता। काष्ठ॰ पंचविंशतिपलं तण्डुलप्रस्थसाधनम्। एष प्रदेशो बह्वल्पयोः। इति तुलाप्रतिमानं व्याख्यातम्।

अथ धान्यमाषद्विपलशतं द्रोणमायमानम्। सप्ताशीतिपलशतमर्धपलं च व्यावहारिकम्। पंचसप्ततिपलशतं भाजनीयम्। द्विषष्टिपलशतमर्धपलं चान्तः—पुरभाजनीयम्। तेषामाढकप्रस्थकुडवाश्चतुर्भागावराः।

पहिली दोनों तराजुओं (समवृत्ता और परिणामी) में मांस, लौह, लवण एवं मणि के अतिरिक्त अन्य पदार्थों की तौल करते समय सौ पल में पाँच पल अधिक चढ़ जाता है। तौल की यह अधिक मात्रा 'प्रयाम' कही जाती है। काठ की तराजू का विस्तार आठ का होगा। इसमें एक-दो के क्रम से मान-चिन्ह बनावे। इसके बाँट पाषाण के होते हैं। इसके आधार रूप में जो स्तम्भ होता है, उसका आकार मोर के पाँवों जैसा होता है। इस प्रकार तुला और प्रतिमान का वर्णन पूर्ण हुआ। अब अन्न को नापने वाले द्रोण आदि के विषय में कहते

हैं—दो सौ पल उड़द से भरे हुए माप-पात्र को एक आयमान द्रोण, एक सौ साढ़े सत्तासी पल वाले पात्र को एक व्यावहारिक द्रोण, पौने दो सौ पल वाले को एक भाजनीय द्रोण और एक सौ साढ़े बासठ पल वाले को एक अन्तःपुर भाजनीय द्रोण कहते हैं। उक्त चारों प्रकार के द्रोणों में एक-एक चौथाई अंश कम करने से आढक, प्रस्थ और कुडव नामक परिमाण बन जाते हैं। जैसे कि द्रोण से चौथाई अंश कम वाले को आढक, आढक से चौथाई कम वाले को प्रस्थ और प्रस्थ से चौथाई कम वाले को कुडव कहा गया है

षोडशद्रोणा खारी, विंशतिद्रोणकः कुम्भः कुम्भैर्दशभिर्बहः। शुष्कसारदारुमयं समं चतुर्भागशिखं मानं कारयेत्। अन्तःशिखं वा। रसस्य तु सुरायाः पुष्पफलयोः तुषाङ्गाराणां सुधायाश्च शिखामानं द्विगुणोत्तरा वृद्धिः।

सपादपणो द्रोणमूल्यम्। आढकस्य पादोनः। षण्माषकः प्रस्थस्य। माषकः कुडवस्य। द्विगुणं रसीदानां मानमूल्यम्। विंशतिपणाः प्रतिमानस्य। तुलामूल्यं त्रिभागः। चातुर्मासिकं प्रातिवेधनिकं कारयेत्। अप्रतिविद्धस्यात्ययः सपादः सप्तविंशतिपणः।

सोलह द्रोण की एक खारी, बीस द्रोण का एक कुम्भ और दस कुम्भ का एक बह होता है। अन्न नापने का मानभाण्ड शुष्क काष्ठ का तथा उसका मूल भाग और अग्रभाग समान हो। उसका कंठ इस प्रकार से बनावे, जिससे कि उसमें चौथाई अन्न भर सके। यह कण्ठ या शिखा उसी में रहे, पृथक् नहीं। घृत-तैल आदि स्नेह की नाप के लिए भी ऐसा ही पात्र बनाया जाता है। सुरा, पुष्प, फल, भुमी, कोयला एवं चूना की नाप के लिए जो मानभाण्ड बनाया जाय उसकी शिखा पेंदी से द्विगुणित होनी चाहिए। जिस मानभाण्ड में एक द्रोण अन्न आवे उसका मूल्य सवा पण, एक आढक माप वाले का पौन पण, एक प्रस्थ वाले का छः माष और एक कुडव वाले का एक माष होना चाहिए। रसादि मापक भाण्ड का मूल्य उक्त से दूना होगा।

उक्त प्रतिमानों अर्थात् बाँटों में प्रत्येक का मूल्य बीस पण एवं तराजू का मूल्य उसका तीसरा अंश होगा। तराजू-बाँटों की प्रत्येक चार मास के अन्तर पर परीक्षा होनी चाहिए। जो अधिकारी नियत समय पर परीक्षा न कराने, उसे सवा सत्ताइस पण का आर्थिक दण्ड दे।

प्रातिवेधनिकं काकणीकमहरहः पौतवाध्यक्षाय दद्युः। द्वात्रिंशद्भागस्तप्तव्याजी सर्पिषश्चतुःषष्टिभागस्तैलस्य। पंचाषद्भागो मानस्रावो द्रवाणाम्। कुडवार्धचतुरष्टभागानि मानानि कारयेत्।

कुडवाश्चतुराशीतिर्वारकः सर्पिषो मतः।
चतुःषष्टिस्तु तैलस्य पादश्च घटिकाऽनयोः ॥१

परीक्षा-कार्य के लिए एक काकिणी दैनिक रूप से व्यवसाइयों द्वारा पौतवाध्यक्ष को देय है। तपाया हुआ घृत क्रय करने वाला व्यापारी उसके मूल्य का बत्तीसवाँ भाग सप्तव्याजी कर राज्य को दे। यदि तैल क्रय करे तो उस पर मूल्य का चौंसठवाँ भाग कर रूप में देना होगा। द्रव पदार्थों पर मूल्य का पचासवाँ भाग तौल की कमी पूरी करने के रूप में लेना उचित है। कुडव, आधा कुडव, चौथाई और अष्टमांश कुडव के बाँट और तौल के पात्र भी बनवाये। घृत की तौल में चौरासी और तैल की तौल में चौंसठ कुडव का वारक कहा गया है। घृत की तौल वाले वारक के चतुर्थांश अर्थात् इक्कीस कुडव को घृत-तौल की घटिका और तैल वाले वारक चौथे अंश को तैल-तौल की घटिका कहा जाता है ॥१॥

विंशोऽध्यायः

देशकालमान वर्णन

मानाध्यक्षो देशकालमानं विद्यात्। अष्टौ परमाणवो रथचक्रविप्रुट्। ता अष्टौ लिक्षा। ता अष्टौ यूकामध्यः। ते अष्टौ यवम-

ध्यः । अष्टौ यवमध्या अंगुलम् । मध्यमस्य पुरुषस्य मध्यमाया अंगुल्या मध्यप्रकर्षो वाऽङ्गुलम् ।

चतुरंगलो धनुर्ग्रहः । अष्टांगुला धनुर्मुष्टिः । द्वादशांगुला बितस्तिः । छायापौरुषं च । चतुर्दशांगुलः शमः शलः परिरयः पदं च । द्विबितस्तिररत्निः प्राजापत्यो हस्तः । सधनुर्ग्रहः पौतवविवीतमानम् । स धनुर्मुष्टिः किष्कुः कंसो वा । द्विचत्वारिंशदंगुलस्तक्षणः क्राचकिकः किष्कुः स्कन्धावारदुर्गराजपरिग्रहमानम् । चतुःपंचाशदंगुलः कुप्यवनहस्तः ।

मानाध्यक्ष देश-काल के मान की भी पूर्ण जानकारी रखे । आठ परमाणुओं के मिलने पर रथ-चक्र से उड़ी धूल का एक विप्रुट् (रज-कण) होता है आठ विप्रुट् की एक लिक्षा, आठ लिक्षा का एक यूकामध्य, आठ यूकामध्य का एक यवमध्य और आठ यवमध्य का एक अंगुल होता है । उस अंगुल की मोटाई मध्यम आकार के पुरुष की मध्यमा अंगुली की मोटाई के समान होती है । चार अंगुल का धनुर्ग्रह, आठ अंगुल की धनुर्मुष्टि, बारह अंगुल की वितस्ति या छाया पुरुष और चौदह अंगुल का शम, शल, परिरय अथवा पद कहा गया है । दो वितस्ति (२४ अंगुल) की अरत्नि या प्रजापति का एक हाथ माना गया है । प्रजापति के हाथ में चार अंगुल मिलाने से २८ अंगुल का एक हस्तमान हुआ, जो कि पौतव और विवीत को नापने में प्रयुक्त होता है। यदि एक प्रजापति हाथ में एक धनुर्मुष्टि अर्थात् आठ अंगुल और जोड़ दें तो वह हस्तमान होगा, जिसे किष्कु या कंस कहते हैं । काष्ठकार (बढ़ई) का हाथ क्राचकिक किष्कु नामक होता है जिसका परिमाण चालीस अंगुल माना गया है । हाथ का यह मान सैन्य-शिविर, दुर्ग-निर्माण अथवा अन्य राजकीय नापों में किया जाता है । वन में काष्ठादि की नाप के लिए चौवन अंगुल के हाथ को मान्यता दी गई है ।

चतुरशीत्यंगुलो व्यामो रज्जुमानं खातपौरुषं च। चतुररत्निर्दण्डो धनुर्नाडिका पौरुषं च। गार्हपत्यमष्टशतांगुलं धनुः पथि प्राकारमानम्। पौरुषं च अग्निचित्यानाम्। षट्कंसो दण्डो ब्रह्मदेयातिथ्यमानम्। दशदण्डा रज्जुः। द्विरज्जुकः परिदेशः। त्रिरज्जुकं निवर्तनम्। एकतो द्विदण्डाधिको बाहुः। द्विधनुःसहस्रं गोरुतम्। चतुर्गोरुतं योजनम्। इति देशमानं व्याख्यातम्

रस्सी नापने या कूप आदि की गहराई का नाप करने के लिए जिस हस्तमान का प्रयोग होता है, वह चौरासी अंगुल का कहा है। चार अरत्नि का एक दण्ड माना गया है। धनुष, नाडिका और पौरुष-- दंड के ही तीन भेद हैं। एक सौ आठ अंगुल का गार्हपत्य धनुष होता है। इस माप का प्रयोग दुर्ग प्राकार और मार्ग के नापने में करते हैं। एक सौ आठ अंगुल का भी पौरुष कहा गया है, जिसका प्रयोग यज्ञ में अग्नि संचयादि कार्यों में किया जाता है। छः कंस या एक सौ बानवे अंगुल का एक अन्य 'दण्ड' है, जो ब्राह्मण-अतिथि आदि को प्रदान किये जाने वाले भूखड की नाप में काम आता है।। दस दंड की एक रज्जु, दो रज्जु का एक परिदेश और तीन रज्जु का एक निवर्तन होता है। इस निवर्तन में दो दण्ड और मिलाने से (३२ दंड का) एक बाहु होता है। दो सहस्र धनुष-प्रमाण एक गोरुत (१ कोश) और चार गोरुत का एक योजन माना जाता है। यह देशमान कहा गया।

कालमानमत ऊर्ध्वम् । तुटो लवो निमेषः काष्ठा कला नाडिका मुहूर्तः पूर्वा परभागौ दिवसो रात्रिः पक्षो मासः ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति कालाः। निमेषचतुर्भागस्तुटः। द्वौ तुटौ लवः। द्वौ लवौ निमेषः काष्ठाः। त्रिंशत् काष्ठा कला। चत्वारिंशत्कला नाडिका। सुवर्णमाषकाश्चत्वारश्चतुरंगुलायामाः कुम्भच्छिद्रमाढकमम्भसो वा नाडिका। द्विनाडिको मुहूर्तः। पंचदश मूहूर्तो दिवसो रात्रिश्च चैत्रे मास्याश्वयुजे मासि च भवतः। ततः पर त्रिभिर्मुहूर्तैरन्यतरः षण्मासे वर्धते ह्रसते चेति।

अब काल-मान कहते हैं। तुट, लव, निमेष, काष्ठा, कला, नाडिका, मुहूर्त दिवस का पूर्व भाग, उत्तर भाग, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु अयन, संवत्सर और युग के यह सत्रह विभाग किये गये हैं। चौथाई निमेष का एक तुट, दो तुट का एक लव, दो लव का एक निमेष, पाँच निमेष की एक काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला और चालीस कला की एक नाडिका होती है। अब नाडिका का परिमाण अन्य प्रकार से कहते हैं—एक घड़े में चार सुवर्णमाष एवं चार अंगुल परिमाण का एक बड़ा छेद करने पर उसमें भरा एक आढक जल जितने समय में निकले, उतना समय नाडिका कहा जायगा। ऐसी दो नाडिका का समय एक मुहूर्त होगा। पन्द्रह मुहूर्त का दिन और इतने की ही रात्रि होती है। किन्तु चैत्र और आश्विन के महीनों में दिन-रात्रि का समय बराबर होने के कारण इन्हीं महीनों में यह समय-मान ठीक उतरता है। इसके पश्चात् छः मासों तक दिवस और रात्रि के समय में घट-बढ़ होती रहती है।

छायायामष्टपौरुष्यामष्टादशभागच्छेदः, षट्पौरुष्यां चतुर्दशभागः, चतुष्पौरुष्यामष्टभाग,ःद्विपौरुष्यां षडभागः,पौरुष्यां चतुर्भागः, अष्टांगुलायां त्रयोदश भागाः, चतुरंगुलायामष्ट भागाः अच्छायो मध्याह्न इति परावृत्ते दिवसे शेषमेवं विद्यात् आषाढे मासि नष्टच्छायो मध्याह्नो भवति। अतः परं श्रावणादीनां षण्मासानां द्वयंगुलोत्तरा माघादीनां द्वयंगुलावरा छाया इति। पंगदशाहोरात्राः पक्षः। सोमाप्यायनः शुक्लः। सोमावच्छेदनो बहुलः।

छाया से भी समय का प्रमाण जाना जाता है। शंकुछाया आठ पौरुष (९६ अंगुल) प्रमाण दिखाई देने पर दिन का अठारहवाँ भाग व्यतीत हुआ समझे। छः पौरुष लम्बी छाया दिन का चौदहवाँ भाग व्यतीत हुआ प्रदर्शित करती है। चार पौरुष की छाया से दिन का आठवाँ भाग, दो पुरुष की छाया से दिन का छटवाँ भाग, एक पौरुष से दिन का चौथा भाग, आठ अंगुल लम्बी छाया से दिन के

दस भागों में से तीन भाग और चार अंगुल लम्बी छाया से दिन के आठ भागों में से तीन भाग व्यतीत हुए समझे। द्वादश अंगुल का एक पौरुष होता है। शङ्कु में प्रविष्ट हो जाने पर छाया किंचित् भी दिखाई न दे तो मध्याह्न काल और उसके पश्चात् उक्त प्रकार से विपरीत होने पर दिन के शेष भाग को माने। आषाढ़ के अन्त में दिवस के मध्याह्न काल में छाया नहीं दिखाई देती और फिर श्रावण मास से पौष मास तक दो दो-दो अंगुल करके बढ़ती तथा माघ मास से आषाढ़ मास के अन्त तक दो-दो अंगुल करके घटती है। पंद्रह अहो-रात्र का एक पक्ष अर्थात् पखवारा होता है। चन्द्र-वृद्धि वाले पक्ष को शुक्लपक्ष और चन्द्रमा के घटने वाले पक्ष को कृष्णपक्ष कहते हैं।

द्विपक्षो मासः। त्रिंशदहोरात्रः प्रकर्ममासः। सार्धः सौरः। अर्धन्यूनश्चान्द्रमासः। सप्तविंशतिर्नक्षत्रमासः। द्वात्रिंशत् मल-मासः। पंचत्रिंशदश्ववाहायाः। चत्वारिंशद्धस्तिवाहायाः। द्वौ मासावृतुः। श्रावणः प्रोष्ठपदश्च वर्षा। आश्वयुजः कार्तिकश्च शरत्। मार्गशीर्षः पौषश्च हेमन्तः। माघः फाल्गुनश्च शिशिरः। चैत्रो वैशाखश्च वसन्तः। ज्येष्टामूलीय आषाढश्च ग्रीष्मः। शिशिरा-द्युत्तरायणम्। वर्षादि दक्षिणायनम्। द्वयनः संवत्सरः। पंचसं-वत्सरो युगमिति।

दो पक्ष का एक मास अथवा तीस अहोरात्र का एक प्रकर्म मास होता है। आधे अहोरात्र युक्त मास अर्थात् साढ़े तीस दिन का एक सौर मास (सूर्य गणना से) और आधे अहोरात्र कम अर्थात् साढ़े उन्तीस दिनों का एक चान्द्रमास (चन्द्र गणना से) होता है। सत्ताईस नक्षत्र होने से सत्ताईस अहोरात्र का नक्षत्र मास और बत्तीस अहोरात्र का मल मास होता है। अश्ववाहकों का वेतन मास पैंतीस अहोरात्र का और हस्तिवाहक अर्थात् महावतों का वेतन मास चालीस अहोरात्र का माना जाता है। दो मास की एक ऋतु मानी गई है। श्रावण-भादों की वर्षा ऋतु, आश्विन कार्तिक की शरद, मार्गशीर्ष-पौष की हेमन्त,

माघ-फाल्गुन की शिशिर, चैत्र-वैशाख की वसन्त एवं ज्येष्ठ-आषाढ़ की ग्रीष्म ऋतु होती है। शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म को उत्तरायण एवं वर्षा, शरद् और हेमन्त को दक्षिणायन कहा जाता है। इन दोनों अयनों के योग से एक वर्ष तथा पाँच वर्षों का एक युग होता है।

दिवसस्य हरत्यंकः षष्टिभागमृतौ ततः।
करोत्येकमहश्छेदं तथैवैकं च चन्द्रमाः ॥१
एवमर्धतृतीयानामब्दानामधिमासकम्।
ग्रीष्मे जनयतः पूर्वं पंचाब्दान्ते च पश्चिमम् ॥२

सूर्य नित्य प्रति दिन के साठवें भाग का हरण करता रहता है, इसीलिए एक ऋतु (६० दिन) में एक दिन के हिसाब से बढ़ाता हुआ तीस मास में पन्द्रह अहोरात्र की वृद्धि कर देता है। किन्तु इसी प्रकार चन्द्रमा नित्य-प्रति दिन के साठवें भाग को क्षीण करता हुआ दो मास में एक दिन घटा देता है, जिससे तीस मास में पन्द्रह दिन घट जाते हैं। इसके अनुसार ढाई वर्ष के व्यतीत होने पर माघ आदि में प्रथम अधिमास और पांच वर्ष व्यतीत होने पर श्रावण आदि में द्वितीय अधिक मास की उत्पत्ति यह सूर्य और चन्द्र करते रहते हैं ॥१-२॥

एकविंशोऽध्यायः

शुल्काध्यक्ष के कर्त्तव्य

शुल्काध्यक्षः शुल्कशालाध्वजं च प्राङ्मुखमुदङ्मुखं वा महाद्वाराभ्याशे निवेशयेत्। शुल्कादायिनश्चत्वारः पंच वा सार्थोपयातान् वणिजो लिखेयुः—'के कुतस्त्याः कियत्पण्याः क्व चाभिज्ञानमुद्रा वा कृता' इति। अमुद्राणामत्ययोदेयद्विगुणः। कूटमुद्राणामष्टगुणो दण्डः। भिन्नमुद्राणामत्ययो घटिकास्थाने स्थानम्।

शुल्काध्यक्ष अर्थात् कर-वसूली विभाग के प्रमुख अधिकारी को एक विस्तृत शुल्कशाला बनवानी चाहिए। उसका मुख पूर्व या उत्तर

में रखे तथा द्वार के समीप ही शुल्कशाला के चिन्ह रूप में एक ध्वज फहरावे। शुल्काध्यक्ष द्वारा निश्चित किये गये शुल्क की वसूली के लिए नियुक्त चार-पांच कर्मचारी, सामान लेकर समागत हुए व्यवसाइयों के विषय में, अपनी पुस्तिका में निम्न प्रकार से उल्लेख करे—कौन व्यापारी है (नाम, पता आदि), कहाँ से आया, क्या पण्यवस्तु लेकर आया, किस अन्तपाल से कहाँ पर वस्तु के परिचय विषय मुद्रांकन या विज्ञप्ति प्राप्त की तथा किस-किस वस्तु को मुद्रांकित करा कर लाया। व्यापारियों द्वारा लाया गया बिना मुद्रा का माल पकडा जाय तो अन्तपाल को देने योग्य वर्तनी नामक कर का द्विगुणित दण्ड उन्हें दिया जाय। कूट मुद्रा (अर्थात् जाली मुहर) द्वारा अंकित पण्य वस्तु लाने वाले पर देय कर का अष्ठगुना दंड निर्धारित करे। मुद्रा प्राप्ति के पश्चात् उसे नष्ट कर देने वाले व्यापारी को अन्यान्य व्यवसाइयों के सामने ही कहीं तीन घड़ी तक रुकने का दण्ड दे।

राजमुद्रापरिवर्तने नामकृते सपादपणिकं वहनं दापयेत्। ध्वजमूलोपस्थि तस्य प्रमाणमर्घं च वैदहकाः पण्यस्य ब्रूयुः। एतत्प्रमाणेनार्घेण कः क्रेतेति। ।त्रिरुद्घोषितमर्थिभ्यो दद्यात्। क्रेतृसंघर्षे मूल्यवृद्धिः सशुल्का कोशं गच्छेत्। शुल्कभयात्पण्यप्रमाणं मूल्यं वा हीनं ब्रुवतस्तदतिरिक्तं राजा हरेत्। शुल्कमष्टगुणं वा दद्यात्। तदेव निविष्टपण्यस्य भाण्डस्य हीनप्रतिवर्णकेनार्घापकर्षणे सारभाण्डस्म फल्गुभाण्डेन प्रतिच्छादने च कुर्यात्।

राजमुद्रा या पण्य वस्तु के बदलने वाले डेढ़ पण्य की दर से प्रत्येक भार का पारिश्रमिक उसे दिलावे, जिसकी वस्तुओं का परिवर्तन किया गया है। शुल्कशाला के निकटस्थ ध्वज के नीचे एकत्र पण्य पदार्थों के परिमाण एवं मूल्य के विषय में व्यापारी स्वयं कहे—यह पदार्थ इतने भार का एवं इतने मूल्य का है। इसे कौन क्रय करना चाहता है? इस प्रकार तीन बार घोषित करने के पश्चात्

वह सामान क्रेता को दे दे। यदि उस समय क्रेताओं में मूल्यवृद्धि स्पर्द्धा होने लगे और माल के मूल्य से अधिक धन प्राप्त हो जाय, तो मूल्य से अधिक प्राप्त धन शुल्क के सहित राजकोष में जमा होना चाहिए। यदि अधिक शुल्क न देने के उद्देश्य से कोई विक्रेता अपनी वस्तु का भार और मूल्य कम घोषित करे तो उसके बताये हुए से जितना भी अधिक प्राप्त हो, उस सब का राजा हरण कर ले अथवा मिथ्या भाषण के दोष में उससे अष्ठगुणा शुल्क वसूल करे। यदि कोई उच्च कोटि के पदार्थ के होते हुए भी अधिक शुल्क से बचने के लिए उसका निकृष्ट नमूना दिखाता हुआ कम मूल्य घोषित करे अथवा उच्चकोटि के पदार्थ पर निकृष्ट कोटि का पदार्थ डाल कर उसे ढक दे तो उससे भी शुल्क से अष्ठगुणा दण्ड वसूल करे।

प्रतिक्रेतृभयाद्वा पण्यमूल्यादुपरि मूल्यं वर्धयतोमूल्यवृद्धिं राजा हरेत्। द्विगुणं वा शुल्कं कुर्यात्। तदेवाष्टगुणमध्यक्षस्य छादयतः। तस्माद्विक्रयःपण्यानां धृतो मितो गणितोवाकार्यः। तर्कः फल्गुभाण्डानामानुग्राहिकाणां च। ध्वजमूलमतिक्रान्तानां चाकृतशुल्कानां शुल्कादष्टगुणो दण्डः। पथिकोत्पथिकास्तद्विद्युः।

यदि कोई प्रतिद्वन्द्वी क्रेता के द्वारा क्रय किये जाने की आशंका से यथार्थ मूल्य से अधिक मूल्य देकर वस्तु क्रय करने की इच्छा प्रकट करे तो राजा उस बढ़े हुए मूल्य वाले अंश को उससे वसूल कर ले या क्रेता से द्विगुणित शुल्क ले। यदि किसी परिचय विशेष अथवा घूस की इच्छा से शुल्काध्यक्ष किसी व्यापारी के अपराध को छिपाने की चेष्टा करे तो व्यापारियों के विभिन्न दोषों के प्रति निर्धारित दण्डों से आठ गुणा अधिक दण्ड उसे देना चाहिये। तौल, माप और गणना के योग्य वस्तुओं का विक्रय तुला के द्वारा तौल कर, प्रस्थ आदि के द्वारा माप कर और संख्या के द्वारा गिन कर करना चाहिये, जिससे कि न्यूनाधिक की संभावना न रहे। सामान्य कोटि के पदार्थ पर न्युनतम शुल्क लिया जाय अथवा उन्हें

शुल्कमुक्त ही रखा जाय। ऐसे सामानों के मूल्य पर भी साधारणत: मोटी दृष्टि से देख कर ही कर ले सकते हैं। जो व्यापारी कर न देकर शुल्कशाला के ध्वज के नीचे से पलायन कर जाँय, उनसे प्राप्य कर के अतिरिक्त आठ गुना अधिक कर लिया जाय। सीधे मार्ग को छोड़ कर और घूम फिर कर निकलने वाले कर-चोर व्यापारियों की जानकारी राज्य के इसी कार्य पर नियुक्त गुप्तचरों को करनी चाहिए।

वैवाहिकमन्वायनमौपायनिकं यज्ञकृत्यप्रसवनैमित्तिकं देवेज्याचौलोपनयनगोदानव्रतदक्षिणादिषु क्रियाविशेषेषु भाण्डमुच्छुल्कं गच्छेत्। अन्यथावादिनः स्तेयदण्डः। कृतशुल्केनाकृतशुल्कनिर्वाहयतो द्वितीयमेकमुद्रया भित्त्वा पण्यपुटमपहरतो वैदेहकस्य तच्च तावच्च दण्डः। शुल्कस्थानाद्गमयपलालं प्रमाणं कृत्वाऽपहरत उत्तमः साहसदण्डः।

वैवाहिक कार्योपयोगी, या नववधु द्वारा पिता के घर से दहेज में प्राप्त सामान, अन्नक्षेत्रादि के निमित्त उपहार स्वरूप प्राप्त सामान, यज्ञकार्य के लिए जाता हुआ दही-दूध आदि पदार्थ, प्रसवोपयोगी औषधियाँ एवं देव-पूजन, मुण्डन, यज्ञोपवीत, गोदान, व्रत, दक्षिणा आदि क्रिया विशेषों में काम आने वाली सभी सामग्री नगर में कर-रहित लाने की छूट दी जानी चाहिए। यदि कोई मिथ्या कह कर उक्त वस्तुओं के स्थान पर अन्य वस्तुएं लावे तो उसे वही दण्ड दे, जो चोरों के लिए निर्धारित है। जिस सामान का कर चुका दिया गया हो, उसके साथ ही यदि कोई बिना कर चुकाया हुआ सामान भी निकाल कर ले जाय अथवा एक प्रकार के सामान की मुद्रा (पार पत्र) दिखा कर, उसके समान अन्य सामान निकाल कर ले जाय अथवा पिटारा तोड़ कर उसमें रखे सामान के साथ कर न चुकाया हुआ अन्य सामान भी निकाल ले जाय, उस व्यापारी से निकाले गये सामान के साथ दण्ड रूप में एक प्रस्थ सामान और वसूल करे। जो व्यापारी कर वसूली वाले स्थान पर असार वस्तु बता कर

बहुमूल्य सार वस्तु निकाल ले जाय तो उसे उत्तम साहस अर्थ दण्ड से दण्डित करे।

शस्त्रवर्मकवचलोहरथरत्नधान्यपशूनामन्यतमानिर्वाह्यं निर्वाहयतो यथावघुषितो दण्डः पण्यनाशश्च। तेषामन्यतमस्यानयने बहिरेवोच्छुल्को विक्रयः। अन्तपालः सपादपणिकां वर्तनीं गृह्णीयात्। पण्यवहनस्य पणिकामेकखुरस्य पशूनापर्धपणिकां क्षुद्रपशूनां पादिकाम सभारस्य माषिकाम्। नष्टापहृतं च प्रतिविदध्यात्।

शस्त्र, वर्म, कवच, लौह, रथ, रत्न, धान्य एवं पशु आदि में से किसी भी निषिद्ध वस्तु को यदि कोई देश स बाहर निकाल ले जाय तो उसे निर्धारित दण्ड दे और साथ ही उसकी उन वस्तु को भी नष्ट कर दे। उक्त शस्त्रादि वस्तुओं में से किसी को कोई बिना आज्ञा लिये नगर में लाने का प्रयत्न करे तो उस वस्तु को दुर्ग के बाहर ही बिना किसी कर के वेच दे। अन्तपाल को निम्न प्रकार से वर्तनी कर लेना चाहिए--मार्गरक्षा कर माल से परिपूर्ण बैलगाड़ी पर सवा पण, माल लदे हुए एक खुर वाले पशु पर एक पण, गवादि पशुओं पर आधा पण, भेड़ आदि क्षुद्र पशुओं पर चौथाई पण तथा कन्धे पर भार रखे हुए मनुष्यों से एक माषक। यदि मार्ग में किसी की कोई वस्तु खो जाय या चोरी हो जाय तो उसका प्रतिकार किया जाना उचित है अर्थात् उसकी क्षतिपूर्ति की जाय।

वैदेश्यं सार्थं कृतसारफल्गुभाण्डविचयनमभिज्ञानं मुद्रां च दत्त्वा प्रेषयेदध्यक्षस्य। वैदेहकव्यंजनो वा सार्थप्रमाणं राज्ञः प्रेषयेत्। तेन प्रदेशेन राजा शुल्काध्यक्षस्य सार्थप्रमाणमुपदिशेत्सर्वज्ञत्वख्यापनार्थम्। ततः सार्थमध्यक्षोऽभिगम्य ब्रूयात्—'इदमुष्यामुष्य च सारभाण्डं फल्गुभाण्डं च न निगूहितव्यं एष राज्ञः प्रभावः' इति। निगूहतः फल्गुभाण्डं शुल्काष्टगुणो दण्डः। सारभाण्डं सर्वापहारः।

राष्ट्रपीडाकरं भाण्डमुच्छिन्द्यादफलं च यत् ।
महोपकारमुच्छुल्कं कुर्याद्बीजं तु दुर्लभम् ॥

विदेश से समागत व्यापारियों की वेश कीमती या सामान्य वस्तुओं के यथार्थ परिमाण आदि के अनुसन्धान द्वारा अपने हस्ताक्षर युक्त प्रमाण पत्र को ग्रंथियों पर मुद्रांकित करके उन्हें अन्तपाल को शुल्काध्यक्ष के पास भेजना चाहिए। अथवा व्यापारियों के छद्मवेश को धारण किये हुए राजा के गुप्तचर उन व्यापारियों की वस्तुओं की यथार्थ गणना राजा को बतावें और तब राजा अपने सर्वज्ञता को प्रकट करता हुआ उनके विषय में पूरा प्रमाण शुल्काध्यक्ष को प्रेषित कर दे। उस प्रमाण की प्राप्ति के पश्चात् शुल्काध्यक्ष उन व्यापारियों से कहे—अमुक-अमुक व्यापारी के पास इतनी बहुमूल्य तथा इतनी सामान्य वस्तुएँ हैं। इन्हें कोई छिपा नहीं सकेगा। क्योंकि छिपायी हुई सब वस्तुओं की पूरी जानकारी हमें अपने राजा के प्रभाव से हो जाती है। शुल्काध्यक्ष द्वारा दी गई इस चेतावनी के पश्चात् भी जो व्यापारी सामान्य वस्तुओं को छिपावे तो उससे निर्धारित कर की अपेक्षा आठ गुना दण्ड वसूल करे। यदि कोई रत्नादि बहुमूल्य वस्तुओं को छिपावे, उस सबका हरण कर ले। जिन वस्तुओं से राज्य में पीड़ा या अनिष्ट की संभावना हो अथवा जो वस्तु फलहीन या न्यून फल वाली हो, उन वस्तुओं के आयात को अवरुद्ध करे और जो वस्तु राज्य के लिये उपकारी सिद्ध हों, उन दुर्लभ बीज प्रभृति वस्तुओं को निःशुल्क आने दे ॥१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

शुल्कव्यवहार निरूपण

शुल्कव्यवहारो बाह्यमाभ्यन्तरं चातिथ्यम्। निष्क्राम्यं प्रवेश्यं च शुल्कम्। प्रवेश्यानां मूल्यपंचभागः। पुष्पफलशाकमूलकन्दवल्लिक्यबीजशुष्कमत्स्यमांसानां षड्भागं गृह्णीयात्। शंख-

वज्रमणिमुक्ताप्रवालहाराणां तज्जातपुरुषैः कारयेत् । कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभि. ।

अब शुल्क व्यवहार अर्थात् किसी वस्तु पर कितना शुल्क लगे, इसके विषय में कह। हैं। बाह्य, आभ्यन्तर और आतिथ्य के भेद से शुल्क व्यवहार तीन प्रकार का माना गया है। स्वदेश में उत्पन्न वस्तु पर लिया जाने वाला शुल्क बाह्य, राजधानी में लिया जाने वाला शुल्क आभ्यन्तर एवं विदेशी माल पर लिया जाने वाला शुल्क आतिथ्य है। स्वदेश से बाहर जाने वाले सामान पर लिया जाने वाला कर 'निक्राम्य' और विदेश स आयातित सामान पर लिया जाने वाला 'प्रवेश्य' होता है। बाहर से आने वाले सामान पर मूल्य का पंचमांश तथा पुष्प, फल, शाक, मूल, कन्द, वल्लिक्य, बीज, शुष्क मत्स्य एवं शुष्क मांस पर मूल्य का षष्ठांश या अधिक कर लिया जाय। शंख, हीरा मणि, मुक्ता, प्रवाल एवं हार आदि वस्तुओं की परख जौहरियों से करावे, क्योंकि वे इस विषय में विशेषज्ञ एवं अनुभवी होने के कारण चिरकाल से इसी कार्य पर नियुक्त रहते चले आते हैं।

क्षौमदुकूलक्रिमितानकंकटहरितालमनः शिलाहिंगुलुकलौहवर्णधातूनां चन्दनागुरुकटुककिण्वावराणां सुरादन्ताजिनक्षौमदुकूलनिकरास्तरणप्रावरणक्रिमिजातानामजैडकस्य च दशभागः पंचदशभागो वा। वस्त्रचतुष्पदद्विपदसूत्रकार्पासगन्धभैषज्यकाष्ठवेणुवल्कलचर्ममृद्भाण्डानां धान्यस्नेहक्षारलवणमद्यपक्वान्नादीनां च विंशतिभागः पंचविंशतिभागो वा।

मोटा या महीन रेशमी वस्त्र, कृमियों से उत्पन्न तार वाला रेशम, कंकट, हरताल, मैनशिल, हींग, लोह, वर्णधातु, चन्दन, अगर, कटुक, किण्व एवं मद्यसार, दाँत, चर्म, मोटे दुकूल के बनने में काम आने वाले तन्तु, बिछावन, चादर, कृमिजन्य रेशम या भेंड़ आदि के ऊन से बनाये जाने वाले वस्त्रों पर जो कर-निर्धारण किया जाय, वह दसवाँ या पन्द्रहवाँ अंश होना चाहिए। वस्त्र, चौपाये, दो पाँव के जीव, सूत, कपास,

सुगन्धित द्रव्य, औषधि, काष्ठ, बाँस, वल्कल, चर्म, मृत्तिका पात्र, अन्न, घृत-तैल, क्षार, नमक, मद्य और पकवान्नादि पर उनके मूल्य का बीसवाँ अथवा पच्चीसवाँ भाग कर-निर्धारण करे।

द्वारादेयं शुल्कपंचभागमानुग्राहिकं वा यथादेशोपकारं स्थापयेत्। जातिभूमिषु च पण्यानामविक्रयः। खनिभ्यो धातुपण्यादानेषु षट्शतमत्ययः। पुष्पफलवाटेभ्यः पुष्पफलादाने चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः। षण्डेभ्यः शाकमूलकन्दादाने पादोनं द्विपंचाशत्पणः। क्षेत्रेभ्यः सर्वसस्यादाने त्रिपंचाशत्पणः। पणोऽध्यर्धपणश्च सीतात्ययः।

अतो नवपुराणानां देशजातिचरित्रतः।
पण्यानां स्थापयेच्छुल्कमत्ययं चापकारतः॥

नगर का द्वाराध्यक्ष प्रत्येक व्यापारिक वस्तु के लिए निर्धारित कर का पाँचवाँ भाग द्वारादेय करके रूप में वसूल करे। यह शुल्क तथा अन्न जो भी शुल्क लगते हैं, उनमें राजकृपा ही निहित होती है। इसलिए इन करों या शुल्कों की वसूली स्वदेश का हित-चिन्तन करते हुए ही करे। जहाँ, जो वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, वे वहीं नहीं बिक जातीं। राजाज्ञा प्राप्त किये बिना ही खान से निष्पन्न धातुओं या उन धातुओं से निर्मित वस्तुओं के क्रय-विक्रय करने वालों पर छः सौ पण अर्थ-दण्ड करना चाहिए। बिना राजाज्ञा के उद्यान से पुष्प-फल आदि खरीदने-बेचने का दण्ड चौवन पण रहे एवं शाक, मूल्य और कन्द आदि की खरीद-बेच पर पौने बावन पण दण्ड लगावे। यदि कोई खेत से सीधा ही अन्न खरीदे या बेच दे तो तिरेपन पण से दण्डित करे। अन्य कृषिजन्य पदार्थों पर भी इसी प्रकार डेढ़ पण सीतात्यय दण्ड करना चाहिए। अतएव, नवीन एवं पुराने सामानों पर देश, जाति और चरित्र के भेद से कर-निर्धारण करे, किन्तु उन सामानों से देश की कोई हानि होती हो तो उसके प्रतीकारार्थं अत्यय अर्थात् हानि दण्ड निश्चित करे।

त्रयोदशोऽध्यायः

सूत्राध्यक्ष के कर्त्तव्य

सूत्राध्यक्षः सूत्रवर्मवस्त्ररज्जुव्यवहारं तज्जातपुरुषैः कारयेत् । ऊर्णावल्ककार्पासतूलशणक्षौमाणि च विधवान्यङ्गाकन्याप्रव्रजितादण्डाप्रतिकारिभी रूपाजीवामातृकाभिर्वृद्धराजदासीभिर्व्युपरतोपस्थानदेवदासीभिश्च कर्तयेत् ।

श्लक्ष्णस्थूलमध्यतां च सूत्रस्य विदित्वा वेतनं कल्पयेत् । बह्वल्पतां च । सूत्रप्रमाणं ज्ञात्वा तैलामलकोद्वर्तनैरेता अनुगृह्णीयात् । तिथिषु प्रतिपादनमानैश्च कर्म कारयितव्याः । सूत्रह्रासे वेतनह्रासो द्रव्यसारात् ।

ऊन-सूत के अधिकारी सूत्राध्यक्ष को सूत, कवच, वस्त्र और रस्सी आदि उन-उन वस्तुओं के निपुण कारीगरों से बनवानी चाहिए । ऊन, वल्कल, कपास, सेमर, सन और क्षौम के कुछ भाग को विधवाओं, अंगहीनों, अनाथ कन्याओं, सन्यासिनियों, अपराधी जाति के व्यक्तियों वेश्याओं की वृद्ध जननियों, राजा की वृद्ध दासियों या देवस्थान से निकाली हुई देवदासियों से कतवाना चाहिए । सूत का पारिश्रमिक उसकी स्वच्छता, स्थूलता या मध्यमता के अनुसार सूत्राध्यक्ष निश्चित करे । उसकी अल्प या दीर्घ लम्बाई, भार आदि देख कर कातने वालियों को तैल, आमला या उबटन आदि के प्रदान द्वारा उनका उपकार करे । इस प्रकार की कृपा द्वारा उन्हें कार्य का प्रोत्साहन दे तथा पुण्य तिथियों (उत्सवों आदि) में उन्हें दान-मान द्वारा सम्मान प्रदान कर कार्य-रत रखे । उनके द्वारा कात कर लगाये सूत में भार घट गया हो तो उनका पारिश्रमिक उसी अनुपात से घटा दे ।

कृतकर्मप्रमाणकालवेतनफलनिष्पत्तिभिः कारुभिश्च कर्म कारयेत्, प्रतिसंसर्गं च गच्छेत् । क्षौमदुकूलक्रिमितानराङ्कवकार्पाससूत्रवानकर्मान्तांश्च प्रयुंजानो गन्धमाल्यदानैरन्यैश्चौपग्राहिकैरा-

राधयेत् । वस्त्रास्तरणप्रावरणविकल्पानुत्थापयेत् । कंकटकर्मान्तांश्च तज्जातकारुशिल्पिभिः कारयेत् । याश्चानिष्कासिन्यः प्रोषितविधवा व्यङ्गाः कन्यका वाऽऽत्मानं बिभृयुस्ताः स्वदासीभिरनुसार्य सोपग्रहं कर्म कारयितव्याः ।

कारीगरों के कार्य का प्रमाण, काल, वेतन, और किये हुए कार्य की उत्पत्ति से सम्बन्धित पारिश्रमिक आदि के निश्चय से जो बन कर सहमत हों, उनसे भी कताई आदि का कार्य लेता हुआ सूत्राध्यक्ष उनसे निकट का संसर्ग स्थापित रखे, जिससे कि वह उनके छल-कपट से परिचित हो सके। क्षौम, दुकूल, क्रिमितान, रांकव एवं कपास के सूत की कताई-बुनाई के लिए एक केन्द्र स्थापित करे। उसमें जो कारीगर कार्य करें, उन्हें इत्र, माला आदि एवं अन्यान्य पारितोषकों से सन्तुष्ट रखता हुआ वस्त्र, बिछावन एवं चादर आदि बुनवाये। इसी प्रकार सूत्र से कवच आदि बनाने के लिए भी केन्द्र खोलना चाहिए। जो स्त्रियाँ घर से बाहर न जाती हों, पति के प्रवासी होने से जो पतिहीना हों, जो अंगहीन अथवा विधवा हों, जो अविवाहिता वयस्क कन्याएं घर पर रहती हों और जो अपने कार्य से उपार्जित धन द्वारा ही अपनी जीविका चलाती हों, ऐसी महिलाओं के पास अनुग्रह पूर्वक अपनी सेविकाओं द्वारा सामग्री भेज कर कताई-बुनाई का कार्य सूत्राध्यक्ष करावे।

स्वयमागच्छन्तीनां वा सूत्रशालां प्रत्युषसि भाण्डवेतनविनिमयं कारयेत । सूत्रपरीक्षार्थमात्रः प्रदीपः । स्त्रिया मुखसन्दर्शनेऽन्यकार्यसंभाषायां वा पूर्वः साहसदण्डः । वेतनकालातिपातने मध्यमः । अकृतकर्मवेतनप्रदाने च । ग्रहीत्वा वेतनं कर्माकुर्वंत्या अंगुष्ठसन्दंशन दापयेत् भक्षितापहृतावस्कन्दितानां च । वेतनेषु च कर्मकराणामपराधतो दण्डः । रज्जुवर्तकैश्र्मकारैश्च स्वयं संसृज्येत । भाण्डानि च वरत्रादीनि वर्तयेत् ।

सूत्रवल्कमयी रज्जूर्वरत्रा वेत्रवैणवीः ।
सान्नाह्या बन्धनीयाश्च यानयुग्यस्य कारयेत् ॥१

प्रातः काल होते ही सूत्रशाला में आ जाने वाली स्त्रियों से सूत्राध्यक्ष उनसे तैयार सूतादि लेकर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था करे। यदि सूत के गुण-दोष के अवलोकनार्थ दीपक की आवश्यकता हो तो उतना ही प्रकाश देने वाला दीपक काम में लावें, जिससे कि सही परीक्षा हो सके। उस समय सूत्राध्यक्ष किसी स्त्री के मुख की ओर देखता हुआ, कार्य के अतिरिक्त कोई अन्य बात करे तो उसे राजा द्वारा उत्तम साहस का दण्ड दिया जाना चाहिए। ठीक समय पर वेतन न देने वाला सूत्राध्यक्ष मध्यम साहस दण्ड का भागी है और घूस की आशा में बिना कार्य किये ही किसी को वेतन दे दे तो भी उसे यही दण्ड देना चाहिए। वेतन लेकर भी कार्य न करने वाली स्त्रियों को दण्ड देने के लिए सूत्राध्यक्ष उनके अँगूठा काटने का दण्ड दें। जो सूत ले जाकर न लौटावें, भाग जाँय या चोरी करें तो उन्हें भी अंगुष्ठभंग का ही दण्ड देना चाहिए। इसके अतिरिक्त उनके अपराध के अनुसार वेतन में से क्षति पूर्ति भी की जा सकती है। जो रस्सी बट कर या चर्म निर्मित सामान बना कर जीविका चलाते हों, उनसे सौहार्द्र रखता हुआ सूत्राध्यक्ष पशुबंधनार्थ उपकरण बनवाये। कपास के सूत एवं सन आदि वल्कल से निर्मित रस्सी, बेंत एवं बाँस से निर्मित गवादि के बाँधने वाली रस्सी, कवच आदि संग्राम-सामग्री, यान, रथ और अश्वादि के बन्धनार्थ प्रयुक्त होने वाली रस्सियों को आवश्यकतानुसार बनवाये ॥१॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

सीताध्यक्ष के कर्त्तव्य

सीताध्यक्षः कृषितन्त्रशुल्बवृक्षायुर्वेदज्ञस्तज्ज्ञसखो वा सर्वधान्य-पुष्पफलशाककन्दमूलवल्लिक्यक्षौमकार्पासबीजानि यथाकाल

गृह्णीयात् । वहुलपरिकृष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकर्तृभिर्वापयेत् । कर्षणयंत्रोपकरणबलीवर्दैश्चैषामसंगं कारयेत् । कारुभिश्च कर्मारकुट्टाममेदकरज्जुवर्तकसर्पग्राहादिभिश्च । तेषां कर्मफलविनिपातेन तत्फलहानं दण्डः ।

सीता अर्थात् हल जुतने से उत्पन्न पदार्थ या कृषि कर्म के अधिकारी सीताध्यक्ष को कृषितन्त्र, शुल्व (भूमि-भेद विषयक) एवं वृक्षों की आयु से सम्बन्धित शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। इस विषय के ज्ञाता कर्मचारियों के सहयोग से वह सब प्रकार के अन्न, पुष्प, फल, शाक, कन्द, मूल, वल्लिक्य, क्षौम एवं कपास के बीजों को यथा समय एकत्र करे। अनेक हलों से जोती गई भूमि पर उन बीजों की दासों, कर्मचारियों या अर्थ दण्ड को कार्य करके चुकाने वाले व्यक्तियों द्वारा बुवाई करावे। उन सभी कर्मचारियों को हलादि उपकरणों, रस्सी आदि साधनों या वृषभादि की रक्षा के भार से विरत करे। शिल्पकार, लौहकार, काष्ठकार, खनक, रस्सी बटने वाले तथा सर्प पकड़ने वाले व्यक्तियों के साथ भी सीताध्यक्ष को मधुर सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए। यदि उक्त कर्मचारियों के अपराध से कृषि को कोई क्षति हो जाय तो उसकी पूर्ति उन्हें अर्थ-दण्ड देकर करे।

षोडशद्रोणं जांगलानां वर्षप्रमाणमध्यर्धमानूपानां देशवापानामर्धत्रयोदशाश्मकानां त्रयोविंशतिरवन्तीनाममितमपरान्तानां हैमन्यानां कुल्यावापानां च कालतः । वर्षत्रिभागः पूर्वपश्चिममासयोः, द्वौ त्रिभागौ मध्यमयोः सुषमारूपम् । तस्योपलब्धिर्बृहस्पतेः स्थानगमनगर्भाधानेभ्यः शुक्रोदयास्तमयचारेभ्यः सूर्यस्य प्रकृतिवैकृताच्च ।

अब अन्न उत्पादन में उपयोगी वर्षा के विषय में कहते हैं। वन एवं मरु स्थल पर वर्षा-मापक कुण्ड में सोलह द्रोण जल भर जाय तो समझले कि उस प्रदेश में अन्न उत्पादन के लिए पर्याप्त वर्षा हो गई है। जल-रहित प्रदेश में इससे ड्योढ़ी वर्षा होनी चाहिए। अश्मक

(महाराष्ट्र) में वर्षा मापक कुण्ड में साढ़े तेरह द्रोण और अवन्ती (मालवा) में तेईस द्रोण जल भरना पर्याप्त वर्षा का सूचक है। अपरान्त (कोंकण) में बहुत वर्षा होने से पूर्ति होती है। हिमालय या जहाँ-कहीं नदी-नहरों से सिंचाई होती है, उन प्रदेशों यथा समय होने वाली उचित वर्षा ही पर्याप्त रहती है। श्रावण से कार्तिक तक के चतुर्मास में प्रथम मास श्रावण और अन्तिम कार्तिक में कुल वर्षा का तिहाई अंश और मध्यवर्ती भादों-क्वार में कुल वर्षा की आधी वर्षा हो जाय तो वह वर्ष श्रेष्ठ समझा जायगा। वर्षा की दृष्टि से संवत्सर के शुभ-अशुभ होने में गुरु की मेष आदि राशियों में स्थिति एक से अन्य राशि में संक्रमण गुरु की नति से क्वार में ओले आदि की वृष्टि, शुक्र का उदय,अस्त और संचार तथा सूर्य प्रकृति और विकृति आदि कारण समझने चाहिए।

सूर्याद्बीजसिद्धिः बृहस्पतेः सस्यानां स्तम्भकारिता। शुक्राद्-वृष्टिरिति

त्रयः साप्ताहिका मेघा अशीतिः कणशीकराः।
षष्टिरातपमेघानामेषा वृष्टिः समाहिता ॥१
वातमातपयोगं च विभजन् यत्र वर्षति।
त्रीन् कर्षकांश्च जनयंस्तत्र सस्यागमो ध्रुवः ॥२

सूर्य की उक्त प्रकार की स्थिति से बीज की उत्पत्ति होती है और उपर्युक्त गुरु से पौधे की स्तम्भ वृद्धि एवं शुक्रग्रह से वर्षा का अनुमान होता है। यदि वर्षा कालीन तीन मेघ सप्ताह पर्यन्त बरसते रहें या पूर्ण वर्षा काल में मेघों द्वारा अस्सी बार मन्द-मन्द बूंदें पड़ें अथवा धूप के साथ साठ बार वर्षा हो तो यह वृष्टि श्रेयस्कर होगी। जहां मेघ पवन और धूप पृथक्-पृथक् रूप से कृषकों को कार्य करने का अवसर देते हुए तीन बार खेत जोतने में सहायक होकर वृष्टि करते हैं, वहां निश्चय ही प्रचुर अन्न की उत्पत्ति होती है ॥१-२॥

ततः प्रभूतोदकमल्पोदकं वा सस्यं वापयेत् । शालिव्रीहिकोद्रवतिलप्रियङ्गुदारकवरकाः पूर्ववापाः । मुद्गमाषशैम्ब्या मध्यवापाः। कुसुम्भमसूरकुलत्थयवगोधूमकलायातसीसर्षपाःपश्चाद्वापाः तथर्तुवशेन वा बीजवापाः । वापातिरिक्तमर्धसीतिकाः कुर्युः । स्ववीर्योपजीविनो वा चतुर्थपंचभागिकाः । यथेष्टमनवसितभागं दद्युरन्यत्र कृच्छ्रेभ्यः । स्वसेतुभ्यो हस्तप्रावर्तितमुदकभागं पंचमं दद्युः । स्कन्धप्रावर्तिमं चतुर्थम् । स्रोतोयंत्रप्रावर्तिमं च तृतीयम्।

वर्षा के विषय में उक्त जानकारी के पश्चात् सीताध्यक्ष अधिक जल से उत्पन्न या अल्प वर्षा होने वाले अन्न की बुवाई करे । शालि, व्रीहि, कोंदो, तिल, ककुनी, दारक, वरक—यह सात बीज वर्षा के प्रारम्भ में ही बोने चाहिए । मूंग, उड़द, शिम्ब वर्षा के मध्य भाग में, कुसुम्भ, मसूर, कुलथी, जौ, गेंहूँ, मटर, अलसी और सरसों के बीज वर्षा के अन्त में बोये जाते हैं । अथवा जिस बीज के लिए जो समय अनुकूल हो, उसी में बुवाई करे । जहाँ बुवाई हो चुकी है, उनसे बचे हुए खेतों में आध-बटाई पर काम करने वालों से बुवाई करावे । या जो परिश्रम करके जीविका करते हों वे चौथाई या पंचमांश लेकर बुवाई का कार्य करें । इस प्रकार फसल का आधा, चौथाई या पंचमांश लेकर कार्य करने वाले व्यक्ति क्षेत्र-स्वामी की अनुमति से कम-अधिक अंश भी दे सकते हैं । यदि किसी प्रकार का दैवी-संकट उपस्थित हो जाय तो उनसे कुछ नहीं भी लिया जा सकता । शास्त्रों ने राजा को ही पृथिवी और जल का स्वामी माना है । इसलिए वह भूमिकर के अतिरिक्त जलकर लेने का भी अधिकारी होता है । अपने परिश्रम से बनाये कूप आदि से सिंचाई करने वाले कृषक फसल का पाँचवाँ अंश अन्न राजा को जलकर के रूप में दे । अपने कंधे पर रख कर जल का घड़ा लाकर उससे खेती करने वाला चतुर्थांश और नहर आदि के जल से सिंचाई करने वाला तृतीयांश राजा को दे ।

चतुर्थं नदीसरस्तटाककूपोद्घाटम् । कर्मोदकप्रमाणेन कैदारं हैमनं ग्रैष्मिकं वा सस्यं स्थापयेत् । शाल्यादि ज्येष्ठम् । षण्डो मध्यमः । इक्षुः प्रत्यवरः । इक्षवो हि बह्वाबाधा व्ययग्राहिणश्च । फेनघातो वल्लीफलानाम् । परीवाहान्ताः पिप्पलीमृद्वीकेक्षूणाम् । कूपपर्यन्ताः शाकमूलानाम् । हरिणिपर्यन्ता हरितकानाम् । पाल्यो लवानाम् । गन्धभैषज्योशीरह्रीबेरपिण्डालुकादीनाम् । यथास्वं भूमिषु च स्थूल्याश्चानूप्याश्चौषधीः स्थापयेत् ।

नदी, सरोवर, तड़ाग, या कुँए आदि के जल से सिंचाई करने वाले कृषक चतुर्थांश दें । कृषि के लिए जल के न्यूनाधिकता के अनुसार बोने योग्य खेत में, हेमन्त या ग्रीष्म में बोने योग्य बीजों की यथा समय बुवाई सीताध्यक्ष कराये । शालि चावल आदि की फल सर्वश्रेष्ठ होती है, क्योंकि उसमें श्रम और व्यय की न्यूनता और उत्पादन की अधिकता होती है फलों की फसल मध्यम और ईख की फसल अधम कही है । क्योंकि ईख की बुवाई में विभिन्न प्रकार के विघ्न एवं व्यय होता है । लताओं के फल उत्पन्न करने में जल की समीपता वाला खेत श्रेष्ठ होता है । पिप्पली, अंगर और ईख के लिए भी समीप में जल के बहाव वाला खेत उपयोगी होता है । शाक-सब्जी के लिए कुँए के पास की भूमि या नदी-नाले के किनारे का भाग ठीक रहता है । सुगन्धि द्रव्य, ओषधि, उशीर, नेत्रवाला पिण्डालु आदि की बुवाई के लिए सरोवर या पोखर वाला खेत श्रेष्ठ कहा है । शुष्क भूमि या जलीय भूमि में अन्यान्य ओषधियों को इच्छानुसार बो सकते हैं ।

तुषारपायनमुष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धान्यबीजानां, त्रिरात्रं पंचरात्रं वा कोशीधान्यानां, मधुघृतसूकरवसाभिः शकृद्युक्ताभिः काण्डबीजानां छेदलेपो मधु मधुघृतेन कन्दानाम् । अस्थिबीजानां कृदालेपः । शाखिनां गर्तदाहो गोऽस्थिशकृद्भिः काले दौहृद च । प्ररूढांश्चाशुष्कमत्स्यांश्च स्नुहीक्षीरेण पाययेत् ।

कार्पाससारं निर्मोकं सर्पस्ह च समाहरेत् ।
न सर्पास्तत्र तिष्ठन्ति धूमो यत्रैष तिष्ठति ॥३

अब वीज-संस्कार की विधि कहते हैं। धान के बीज को रात्रि के समय ओस में फैला कर सात दिनों पर्यन्त रखे और फिर सात दिनों तक ही धूप में फैलावे। मूंग-उड़द आदि के बीज भी इसी प्रकार तीन दिन ओस और धूप में रखे। ईख आदि वोने के लिये उसके टुकड़ों पर मधु, घृत और शूकरवसा को गोवर में मिश्रित कर लेप करते हैं। कड़े छिलके वाले बीजों पर केवल गोवर को लेप करना चाहिए। आम्रादि के वीजों का जिस गढ़े में आरोपण करना हो, उसमें, घास फूँस जला कर उष्णता पहुँचानी होती है। तब पशु-अस्थि और गोबर डालते हैं। इस प्रकार बीज की बुवाई के पश्चात् अंकुर निकलने पर सेंहुड़ के दूध में छोटी-छोटी विना सूखी (अर्थात् ताजी) मछलियां डाल कर, उससे उन्हें सीचे। बिनौले के गूदे को सर्प की केंचुली में मिला कर उन अंकुरों को धूप देनी चाहिए, क्योंकि उस धुएँ से वहाँ सर्प नहीं रह सकता ॥३॥

सर्वबीजानां तु प्रथमवापे सुवर्णोदकसम्प्लुतां पूर्वमुष्टिं वापयेत् अमुं च मंत्रं ब्रूयात्—

प्रजापतये काश्यपाय देवाय च नमः सदा ।
सीता मे ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च ॥४

षण्डवाटगोपालदासकर्मकरेभ्यो यथापुरषपरिवापं भक्तं कुर्यात् । सपादपणिकं मासं दद्यात् । कर्मानुरूपं कारुभ्यो भक्तवेतनम् । प्रशीर्णं पुष्पफलं देवकार्यार्थं व्रीहियवमाग्रयणार्थं श्रोत्रियास्तपस्विनश्चाहरेयुः । राशिमूलमुञ्छवृत्तयः ।

बुवाई के समय सभी प्रकार के बीजों की प्रथम मुट्ठी स्वर्णोदक से तर करके ही वोवे। उ समय निम्न मन्त्र का उच्चारण करे—प्रजापति, काश्यप और मेघ देवता को सदैव नमस्कार हो। कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता हमारे इस बीज की वृद्धि के साथ धन को भी बढ़ावें ॥४॥ सीताध्यक्ष को कृषि पालक, गोपालक, दास एवं कर्मचारियों में

से प्रत्येक के कार्यानुसार भोजन की व्यवस्था करे और सवा पण मासिक वेतन भी दे। इसी प्रकार काष्ठादि के काटने वालों को भी भोजन-वेतन आदि देना चाहिए। वृक्षों से स्वतः पतित हुए फल-फूल देव-कार्य और नवशस्यइष्टि अर्थात् नवान्न यज्ञ के लिये दे। स्वय गिरे हुए धान्य एवं जौ को श्रोत्रिय एवं तपस्वी पुरुषों के लिए बिना अनुमति ले जाने दे। उञ्छवृत्ति वाले तपस्वियों को खेत या खलिहान में पड़े हुए दानों को बीन कर ले जाने देना चाहिये।

यथाकालं च सस्यादि जातं जातं प्रवेशयेत्।
न क्षेत्रे स्थापयेत्किंचित्पलालमपि पण्डितः ॥५
प्रकराणां समुच्छ्रायान् वलभीर्वा तथाविधाः।
न संहतानि कुर्वीत न तुच्छानि शिरांसि च ॥६
खलस्य प्रकरान् कुर्यान्मण्डलान्ते समाश्रितान्।
अनग्निकाः सोदकाश्च खले स्युः परिकर्मिणः ॥७

चतुर पुरुष सब प्रकार के तैयार अन्न को यथा समय उठा कर घर ले जाय, खलिहान में पुआल को भी न छोड़े। अन्न का कोठार ऊँचा रहे और छत ऐसी कमजोर न हो कि वायु के झोंके से ही उड़ जाय। खलिहान में डांठों की खरही लगावे। खलिहान के समीप जलती अग्नि न रहने दे और जल का संग्रह भी अच्छा रखे, जिससे कि अग्नि लगने पर उसके बुझाने में कठिनाई न हो ॥५-७॥

पञ्चविंशोऽध्याय

सुराध्यक्ष के कर्त्तव्य

सुराध्यक्षः सुराकिण्वव्यवहारान् दुर्गे जनपदे स्कन्धावारे वा तज्जातसुराकिण्वव्यवहारिभिः कारयेदेकमुखमनेकमुखं वा विक्रय-क्रयवशेन वा। षट्शतमत्य यमन्यत्र कर्तृक्रेतृविक्रेतृणां स्थापयेत्। ग्रामादनिर्णयनमसम्पातंच सुरायाः, प्रमादभयात्कर्मसु निर्दिष्टानां

मर्यादातिक्रमभयादार्याणाम्, उत्साहभयाच्च तीक्ष्णानाम्। लक्षितमल्पं वा चतुर्भागमर्धंकुडुवं कुडुवमर्धंप्रस्थं प्रस्थं वेति ज्ञातशौचा निर्हरेयुः।

जिस विभाग द्वारा सुरा निर्मित होती है, उसका प्रमुख अधिकारी सुराध्यक्ष दुर्ग, जनपद एवं सैन्य-शिविर आदि में, सुरा एवं किण्व के व्यापार में चतुर वंश में उत्पन्न हुए व्यापारियों के द्वारा व्यापार करावे और संभव हो तो उस कार्य के लिये एक केन्द्र स्थापित कर दे, अन्यथा अनेक स्थान से ही व्यापार करावे। यह अपनी क्रय-विक्रय की क्षमता के अनुसार ही करे। निश्चित स्थान अन्यत्र सुरा या किण्व आदि का उत्पादन या क्रय-विक्रय करने वाले को छः सौ पण का दण्ड दे। मदिरा साथ लेकर या पीकर कोई ग्राम से बाहर न जा सके या एक घर से दूसरे घर अथवा भीड़ भाड़ के स्थान में न जाय इसका विशेष ध्यान रखे। क्योंकि वैसी छूट होने से लोगों के प्रमादी एवं पतित होने की आशंका रहती तथा सभ्य समाज में अमर्यादा का विस्तार हो सकता है। अथवा कठोर प्रकृति के पुरुष नशे में उन्मत्त व्यक्तियों के अनुचित कार्यों से क्रोधित होकर हिंसा पर उतारू हो सकते हैं। इसलिये चौथाई कुडव, आधा कुडव, एक कुडव, आधा प्रस्थ या एक प्रस्थ सुरा राजमुद्रा से अंकित करके वे पुरुष ही घर से बाहर ले जा सकें, जिनके श्रेष्ठ आचरण का ज्ञान सुराध्यक्ष को स्वयं ही हो।

पानागारेषु वा पिबेयुरसंचारिणः। निक्षेपोपनिधिप्रयोगापहृतादोनामनिष्टोपगतानां च द्रव्याणां ज्ञानार्थमस्वामिकं कुप्यं हिरण्यं चोपलभ्य निक्षेप्तारमन्यत्र व्यपदेशेन ग्राहयेत्। अतिव्ययकर्तारमनायतिव्ययं च। न चानर्घेण कालिकां वा सुरां दद्यादन्यत्र दुष्टसुरायाः। तामन्यत्र विक्रापयेत्। दासकर्मकरेभ्यो वा वेतनं दद्यात्। वाहनप्रतिपानं सूकरपोषणं वा दद्यात्।

सुरा को अन्यत्र ले जाने की आज्ञा जिन्हें प्राप्त न हुई हो, वे पानागारों सुरा-विक्रय स्थानों में पान कर सकें। कोई सुरापायी धरोहर,

उपनिधि, बन्धक, चोरी से उपलब्ध या अवैध रूप मे प्राप्त धन को या लाक्षारिस कुप्य द्रव्य एवं हिरण्य (स्वर्ण या नकद) को प्राप्त कर ले तो सुरा का व्यापारी उस ग्राहक को अपनी दुकान से किसी बहाने से कहीं अन्यत्र भेजता हुआ पकड़वा दे। यदि कोई व्यक्ति अपनी आय से अधिक व्यय करता हुआ सुरापान में धन उड़ावे तो उसे भी पकड़वा देना चाहिये। कम मूल्य पर या बिना मूल्य लिये मदिरा विक्रेता श्रेष्ठ मदिरा नहीं देगा, किन्तु निकृष्ट मदिरा दे सकेगा। वह निकृष्ट या दूषित मदिरा उस श्रेष्ठ मदिरा के विक्रय स्थान पर न बेच कर और कहीं बेचेगा। वह दूषित मदिरा दासों या नीचे कर्मचारियों को वेतन के बदले में भी दे सकते हैं या वाहन पशुओं (ऊँट आदि) को अथवा शूकर आदि को भी पोषण-द्रव्य के रूप में पिला सकते हैं।

पानागाराण्यनेककक्ष्याणि विभक्तशयनासनवन्ति पानोद्देशानि गन्धमाल्योदकवन्ति ऋतुसुखानि कारयेत्। तत्रस्थाः प्रकृत्यौत्पत्तिकौ व्ययौ गूढा विद्यूरागन्तूंश्च। क्रेतृणां मत्तसुप्तानामलङ्काराच्छादनहिरण्यानि च विद्युः। तन्नाशे वणिजस्तच्च तावच्च दण्डं दद्युः। वणिजस्तु संवृतेषु कक्ष्याविभागेषु स्वदासीभिः पेशलरूपाभिरागन्तूनां वास्तव्यानां च आर्यरूपाणां मत्तसुप्तानां भावं विद्युः। मेदकप्रसन्नासवारिष्टमैरेयमधूनाम्। उदकद्रोणं तण्डुलानामर्धाढकं त्रयः प्रस्थाः किण्वस्येति मेदकयोगः। द्वादशाढकं पिष्टस्य पंचप्रस्थाः किण्वस्य पुत्रकत्वक्फलयुक्तो वा जातिसंभारः प्रसन्नायोगः।

सुराध्यक्ष को अनेक कक्ष वाला पानागार बनवाना चाहिए उन कक्षों में पृथक्-पृथक् शय्या या आसन रहें। पीने के लिए पृथक् स्थान रहे, जिसमें सुगन्धित द्रव्य, माला, जल एवं विभिन्न-ऋतुओं में उपभोग्य वस्तुएँ सुख पूर्वक प्राप्त हो सकें। वहाँ गुप्तचर कर्मचारियों के रूप में रह कर सुरापायियों पर नजर रखते हुए देखे कि किस का व्यय सामान्य

रूप से और किसका अनुचित उपाय से प्राप्त है तथा वहाँ कौन विदेशी आता है। वे उन सुरा पीने वालों के शयन करने पर उनके भूषण, वस्त्र, नक़द धन आदि के विषय में भी जानकारी प्राप्त कर लें। यदि पाना-गार में किसी का आभूषणादि खो जाय तो दुकानदार उसकी क्षति पूर्ति करे और उतना ही धन दण्ड स्वरूप राजा को दे। पृथक्-पृथक् कक्षों में देशी, विदेशी मदोन्मत्त पड़े हुए ग्राहकों का अभिप्राय दुकानदार अपनी सुन्दरी दासियों के द्वारा जान ले। मेदक, प्रसन्ना, आसव, अरिष्ट, मैरेय और मधु के भेद से मदिरा छः प्रकार की है। एक द्रोण पानी, अर्द्ध आढ़क चावल और तीन प्रस्थ किण्व के मिश्रण से बनने वाली मदिरा 'मेदक' है। बारह आढक पिष्ट और पाँच प्रस्थ किण्व या पुत्रक की छाल और फल तथा आगे वर्णित जाति संभार आदि के मिश्रण से 'प्रसन्ना' बनती है।

कपित्थतुला फाणितं पंचतौलिकं प्रस्थो मधुन इत्यासव-योगः। पादिको ज्येष्ठः पादहीनः कनिष्टः। चिकित्सकप्रमाणाः प्रत्येकेशो विकाराणामरिष्टाः। मेषश्रृंगीत्वक्क्वाथाभिषुतो गुड-प्रतीवापः पिप्पलीमरिचसम्भारास्त्रिफलायुक्तो वा मैरेयः। गुड-युक्तानां वा सर्वेषां त्रिफलासम्भारः। मृद्वीकारसो मधु। तस्य स्वदेशे व्याख्यानं कापिशायनं हारहूरकमिति। माषकलनीद्रो-णमामं सिद्धं वा त्रिभागाधिकं तण्डुलं मोरटादीनां कार्षिकभा-गयुक्तो किण्वबन्धः।

एक कपित्थ-फलसार, पाँच तुला राब और एकप्रस्थ मधु से 'आसव' बनता है। इसी में कपित्थ-फलसार आदि की मात्रा एक चौथाई और बढ़ा दे तो श्रेष्ठ तथा घटा दे तो निम्न श्रेणी का बनता है। 'अरिष्ट' चिकित्सकों की विधि से अथवा आयुर्वेद की प्रसिद्धि विधियों से बनता है। मेंढासिंगी वृक्ष की छाल के क्वाथ में गुड़ एवं त्रिफला अथवा पिप्पली और मिर्च डालने से 'मैरेय' नाम की सुरा बनती है। सभी गुड़ मिश्रित

सुराओं में त्रिफला सम्भार प्रयुक्त करे। अंगूर की सुरा 'मधु' कही गई है। यह 'मधु' कपिशा नदी के तटवर्ती प्रदेश में बनने से 'कापिशा-यन' और हुरहुर नगर में बनने से 'हारहूरक' भी कही जाती है। उड़द-पिष्ठी में भावित एक द्रोण जल में एक तिहाई कच्चे अथवा पके चावलों का आटा और एक कर्ष मोरट आदि औषधियाँ मिलाने से किण्व बन जाता है।

पाठालोध्रतेजोवत्येलावालुकमधुमधुरसाप्रियंगुदारुहरिद्रामरिचपिप्पलीनां च पंचकार्षिकः संभारयोगो मेदकस्य प्रसन्नायाश्च। मधुकनिर्यूहयुक्ता कटशर्करा वर्णप्रसादनी च। चोचचित्रकविडंगगजप्पिलीनां च पंचकार्षिकः क्रमुकमधुकमुस्तालोध्राणां द्विकार्षिकश्चासवसम्भारः दशभागश्चैषां बीजबन्धः। प्रसन्नायोगः श्वेतसुरायाः। सहकारसुरा रसोत्तरा बीजोत्तरा वा महासुरा सभारिकी वा।

मेदक और प्रसन्नता में जो संभारयोग कहा है वह यह है—पाठा, लोध, गजपीपल, इलायची, बालछड़, मधुयष्ठी, अंगूर, ककुनी, दारुहल्दी, मिर्च और पीपल का चूर्ण पाँच-पाँच कर्ष मिश्रित करने से उक्त मदिराओं का किण्व बनता है। मधुयष्ठी क्वाथ में दानेदार शर्करा डाल कर सुरा में मिला देने से उसका रंग खिल जाता है। दालचीनी, वायविडंग, चीता और गजपीपल पाँच-पाँच कर्ष, सुपारी, मधुयष्ठी, मोथा और लोध दो-दो कर्ष मिला देने से आसव का किण्व और दालचीनी आदि के दशांश से आसव का बीजबन्ध बनता है। प्रसन्ना सुरा वाला योग ही श्वेतसुरा में प्रयुक्त होता है। सहकार सुरा, रसोत्तरा, बीजोत्तरा और संभारिकी नामकी सुराओं में क्रमशः आम का रस, गुड़ का रस, बीजवन्ध की अधिक मात्रा और संभार की अधिक मात्रा का मिश्रण होता है।

तासां मोरटापलाशपत्तूरमेषश्रृङ्गीकरंजक्षीरवृक्षकषायभावितं दग्धकटशर्कराचूर्णं लोध्रचित्रकबिडंगपाठामुस्ताकलिंगगय-

वदारुहरिद्रेन्दीवरशततुष्पापामार्गसप्तपर्णस्फोतकल्कार्धयुक्तमन्तर्नखो मुष्टिः कुम्भीं राजपेयां प्रसादयति। फाणितः पञ्चपलिकश्चात्र रसवृद्धिर्देयः। कुटुम्बिनः कृत्येषु श्वेतसुरामौषधार्थं वारिष्टमन्यद्वा कर्तुं लभेरन्। उत्सवसमाजयात्रासु चतुरहः सौरिको देयः। तेष्वननुज्ञातानां प्रवहणान्तानां दैवासिकमत्ययं गृह्णीयात्। सुराकिण्वविचयं स्त्रियो बालाश्च कुर्युः। अराजपण्याः पञ्चकं शतं शुल्कं दद्युः। सुरामेदकारिष्टमधुफलाम्लशीधूनां च।

अह्नश्च विक्रयं व्याजीं ज्ञात्वा मानहिरण्ययोः।
तथा वैधरणं कुर्यादुचितं चानुवर्तयेत्॥

ऊपर कही सभी प्रकार की सुराओं में मोरटा, ढाक, पत्तूर, मेढासिंगी, कंजा एवं क्षीरवृक्ष के काढ़े में भावित दानेदार शर्करा का चूर्ण, लोध, बायविडग, पाठा, मोथा, कलिंग देश में उत्पन्न जौ, दारुहल्दी, सफेद कमल, सोया, चिर्चिटा, छतिवन, नीम एवं मदार के कल्क में उपर्युक्त चीनी आधी मिश्रित कर एक खारी (परिमाण) मद्य से परिपूर्ण घट में डालने से राजाओं के पान योग्य सुरा बनती हैं। क्योंकि यह वस्तुएँ मदिराओं में प्रसारगुण उत्पन्न करने वाली है। उसमें भी पांच पल राव मिला दे तो स्वाद अधिक हो जाता है। विवाहादि उत्सवों में श्वेतसुरा, अरिष्ट अथवा अन्य प्रकार की मदिरा का उपयोग करे। वसन्तोत्सव, देव-यात्रा एवं ऐसे अन्यान्य उत्सवों के से सुरापान की छूट चार दिन की दी जा सकती है। किन्तु उक्त उत्सवो में भी सुराध्यक्ष की अनुमति के बिना सुरा पीवे तो उसे दड देना चाहिए। मदिरा या किण्व बनाने के कार्य में उसके स्वाद से अपरिचित स्त्रियों या बालकों को लगावे। जो लोग राजाज्ञा के बिना सुरा, मेदक, अरिष्ट, मधु, फलाम्ल एवं अम्लशीधु आदि मदिराओं का विक्रय करें, उन पर मूल्य का पांच प्रतिशत दण्ड दिया

जाय। सुराध्यक्ष उक्त शुल्क या दण्ड के अतिरिक्त नित्य प्रति सुरा-विक्रय आदि पर कर-निर्धारण करता हुआ व्याजी एवं हिरण्य व्याजी भी वसूल करे। किन्तु कर उचित ही होना चाहिए।

षड्विंशोऽध्यायः

सूनाध्यक्ष के कर्त्तव्य

सूनाध्यक्षः प्रदिष्टाभयानामभयवनवासिनां च मृगपशुपक्षिमत्स्यानां बन्धवधहिंसायामुत्तमं दण्डं कारयेत्। कुटुम्बिनामभयवनपरिग्रहेषु मध्यमम्। अप्रवृत्तवधानां मत्स्यपक्षिणां बन्धवधहिंसायां पादोनसप्तविंशतिपणमत्ययं कुर्यात्। मृगपशूनां द्विगुणम्। प्रवृत्तहिंसानामपरिगृहीतानां षड्भागं गृह्णीयात्। मत्स्यपक्षिणां दशभागं वाधिकं, मृगपशूनां शुल्कं वाधिकम्। पक्षिमृगाणां जीवत्षड्भागमभयवनेषु प्रमुंचेत्।

सूना (पशुवध स्थान) का अधिकारी सूनाध्यक्ष उन पर उत्तम साहस दण्ड करे जो लोग राजा से अभय प्राप्त मृग, पशु, पक्षी और मत्स्य आदि को जाल में फँसावे, उन पर प्रहार करें या उनको मारें। यदि आखेट से जीविकोपार्जन करने वाला कोई व्यक्ति उपर्युक्त कार्य करे तो उस पर मध्यम साहस दण्ड करे। आक्रमण करने वालों पर प्रत्याक्रमण न करने वाले मत्स्यों एवं पक्षियों को बाँधने या मारने पर पौने सत्ताईस पण और मृगों या पशुओं को बांधने या हिंसा करने पर साढ़े तिरेपन पण दण्ड होना चाहिए। आक्रमणकारी पर आक्रमण करने वाला अनाथ पशु या अरक्षित वन में रहने वाला पशु जिसके द्वारा मारा जाय उससे षष्ठांश कर ले। इसी अवस्था वाले मत्स्यों या पशुओं को मारने पर दशमांश या अधिक कर लगावे। मारे गये मृगों या अन्य पशुओं पर भी दशमांस या अधिक कर लगावे तथा जीवित पकड़े गये पशु-पक्षियों का षष्ठांश लेकर उन्हें सुरक्षित वन में रखने की आज्ञा दे।

सामुद्रहस्त्यश्वपुरुषवृषगर्दभाकृतयो मत्स्याः सारसा नादेया-स्तटाककुल्योद्भवा वा क्रौंचोत्क्रोशकदात्यूहहंसचक्रवाकजीवंजीवकभृङ्गराजचकोरमत्तकोकिलमयूरशुकमदनशारिका विहारपक्षिणो मङ्गल्याश्चान्येऽपि प्राणिनः पक्षिमृगा हिंसाबाधेभ्यो रक्ष्याः । रक्षातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः । मृगपशूनामनस्थि मांसं सद्योहतं विक्रीणीरन् । अस्थिमतः प्रतिपातं दद्युः । तुलाहीने हीनाष्टगुणम् । वत्सो वृषो धेनुश्चैषामवध्याः । घ्नतः पञ्चाशत्को दण्डः । क्लिष्टघातं घातयतश्च । परिसूनमशिरः पादास्थि विगन्धं स्वयं मृतं च न विक्रीणीरन् । अन्यथा द्वादशपणो दण्डः ।

दुष्टाः पशुमृगव्याला मत्स्याश्चामयचारिणः ।
अन्यत्र गुप्तिस्थानेभ्यो वधबन्धमवाप्नुयुः ।।१

अब रक्षणीय पशुओं के विषय में कहते हैं—हाथी, अश्व, मनुष्य, वृष, गर्दभाकृति वाला मत्स्य, सरोवर-नदी-तड़ाग या नहर में उत्पन्न मछलियाँ, क्रौंच, उत्क्रोशक, दात्यूह, हंस, चकवा, जीवजीवक, भृंगराज, चकोर, मत्तकोयल, मोर, तोता एवं मैना आदि को विहार पक्षी कहते हैं। इनके अतिरिक्त भी विभिन्न प्रकार के मंगलमय मृग या पक्षी जीवजन्तु की हिंसा या ताड़न आदि से रक्षा की जानी चाहिए। इसमें असावधानी बरतने वाले अधिकारी को प्रथम साहस दण्ड देना चाहिए। मृगों या पशुओं का मांस अस्थि-रहित करके विक्रय किया जाय। मांस कम तोलने वाले को अठगुना दंड दे। गाय-बैल का वध वर्जित हो, फिर भी कोई वैसा करे तो पचास पण दण्ड का भागी होगा। पशुओं को क्लेश देकर मारने वाले पर भी इतना दण्ड करे। राज्य की पशुशाला में न मारे गये पशु का शिर, पाँव एवं अस्थि-, रहित, दुर्गंधयुक्त या रोग से मरे हुए पशु का मांस बेचने पर भी रोक होनी चाहिए। जो इस नियम को न माने उसे बारह पण का अर्थ-दण्ड दे। अभय वन वाले दुष्ट पशु, मृग, व्याल मत्स्य आदि उस सुर-

क्षित वन से बाहर निकलें तो उनका वध, बन्धन और प्रहार भी कर सकते हैं ॥१॥

सप्तविंशोऽध्यायः

गणिकाध्यक्ष के कर्त्तव्य

गणिकाध्यक्षो गणिकान्वयामगणिकान्वयां वा रूपयौवनशिल्पसम्पन्नां सहस्रेण गणिकां कारयेत् । कुटुम्बार्धेन प्रतिगणिकाम् । निष्पतिताप्रेतयोर्दुहिता भागिनी वा कुटुम्बं भरेत । तन्माता वा प्रतिगणिकां स्थापयेत् । तासामभावे राजा हरेत् । सौभाग्यालंकारवृद्धया सहस्रेण वारं कनिष्ठं मध्यममुत्तमं वारोपयेत् । छत्रभृङ्गारव्यजनशिबिकापीठिकारथेषु च विशेषार्थम् । सौभाग्य भंगे तां मातृकां कुर्यात् ।

वेश्याओं की व्यवस्था करने वाले गणिकाध्यक्ष को गणिकाओं की जाति में उत्पन्न या अगणिका जाति में उत्पन्न रूप, यौवन और नृत्य-गानादि शिल्प में सम्पन्न किसी सुन्दरी को एक हजार पण प्रतिवर्ष के वेतन पर राजा की गणिका के रूप मे रखे । एक प्रतिगणिका के रूप में भी कोई सुन्दरी नियुक्त की जा सकती है । राज-सेवा के आधे-आधे कार्य वे दोनों सुन्दरियाँ करें । यदि कोई गणिका चली जाय या मर जाय तो उसकी पुत्री या बहन की उसके स्थान पर नियुक्ति हो और उसकी सम्पत्ति भी उसे ही मिले । गणिका की माता द्वारा भी कोई युवती प्रतिगणिका नियुक्त की जा सकती है । यदि गणिका की पुत्री, बहिन या माता द्वारा कोई प्रतिगणिका नियुक्त न हो तो उसका सब धन राजा ग्रहण कर ले । सौन्दर्य और शोभा के अनुपात से गणिकाध्यक्ष कनिष्ठ, मध्यम और श्रेष्ठ श्रेणी के अनुसार एक सहस्र पण वेतन से प्रारम्भ करके क्रमशः एक, दो और तीन हजार वार्षिक तक निश्चित करे और उन सबकी शोभावृद्धि के लिए उन्हें छत्र, झारी, पंखा, पालकी, आसन एवं रथ वहन विशयक कार्यों पर नियुक्त कर दे । जब गणिका का

सौन्दर्य ढल जाय तब उसे युवती गणिका के मातृ स्थान पर नियुक्त करे जो कि अपने स्थान पर नियुक्त हुई गणिका को शिक्षित करें ।

निष्क्रयश्चतुर्विंशतिसाहस्रो गणिकायाः । द्वादशसाहस्रो गणिकापुत्रस्य । अष्टवर्षात्प्रभृति राज्ञः कुशीलवकर्म कुर्यात् । गणिकादासी भग्नभोगा कोष्ठागारे महानसे वा कर्म कुर्यात् । अविशन्ती सपादपणमवरुद्धा मासवेतनं दद्यात् । भोगं दायमायं व्ययमायतिं च गणिकाया निबन्धयेत् । अतिव्ययकर्म च वारयेत् ।

राजा की सेवा से मुक्त होने की इच्छा वाली गणिका चौबीस हजार पण निष्क्रय मूल्य दे । उसका पुत्र दासता से मुक्त होना चाहे तो बारह हजार पण ही दे । यदि वह निष्क्रय मूल्य न देना चाहे तो आठ वर्ष तक राजा के चारण आदि का कार्य करके छूट सकेगा । भोग के योग्य न रहने पर प्रतिगणिका से कोठार या रसोईघर का कार्य लिया जा सकता है । यदि वह वैसा न करके किसी पुरुष की पत्नी के रूप में रहने लगे तो अपनी स्वामिनी गणिका को डेढ़ पण प्रतिमास देगी । गणिका द्वारा उपभोग्य धन, मातृकुल से प्राप्त धन एवं उसकी आय आदि का लेखा गणिकाध्यक्ष रखे और अधिक व्यय करने वाली गणिका को वैसा न करने दे ।

मातृहस्तादन्यत्राभरणन्यासे सपादचतुष्पणो दण्डः । स्वापतेयं विक्रयमाधानं नयन्त्याः सपादपंचाशत्पणो दण्ड- । चतुर्विंशतिपणो वाक्पारुष्ये । द्विगुणो दण्ड-पारुष्ये । सपादपंचाशत्पणः पणोऽर्धपणश्च कर्णच्छेदने । अकामायाः कुमार्यां वा साहसे उत्तमो दण्डः । सकामायाः पूर्वः साहसदण्डः । गणिमामकामां रुन्धतो निष्पातयतो वा व्रणविदारणेन वा रूपमुघ्नतः सहस्रदण्डः । स्थानविशेषेण वा वृद्धिरानिष्क्रयद्विगुणात् पणसहस्रं वा दण्डः ।

अपने आभूषणादि माता के पास न रख कर अन्यत्र रखने वाली गणिका पर चार पण दण्ड करे । यदि वह अपने किसी सामान को बेचे तो सवा पचास पण और किसी से अशोभनीय व्यवहार करे तो चौबीस

पण का दंड दे। यदि वेश्या किसी पर लकुड़-प्रहार करे तो अड़तालीस पण और किसी के कान काटे तो पौने बावन पण का दण्ड करे। किसी कुमारी कन्या पर उसकी अनिच्छा से बलात्कार करने वाले पुरुष पर उत्तम साहस और इच्छा से व्यभिचार करने वाले पर प्रथम साहस दण्ड दे। यदि कोई किसी वेश्या को उसकी इच्छा के बिना घर में बन्द करे, कहीं छिपाले या उसके शरीर को दाँत-नखादि से काट कर कुरूप करे तो उसे एक हजार पण से दण्डित करे। गणिका के विशिष्ट अवयवों में व्रण बनाने वाले से निष्क्रय मूल्य का दुगना अर्थात् अढ़तालीस हजार पण एवं एक हजार पण अधिक वसूल करे।

प्राप्ताधिकारां गणिकां घातयतो निष्क्रयात्त्रिगुणो दण्डः। मातृकादुहितृकारूपदासीनां घात उत्तमः साहसदण्डः। सर्वत्र। प्रथमेऽपराधे प्रथमः, द्वितीये द्विगुणः, तृतीये त्रिगुणः, चतुर्थे यथाकामी स्यात्। राजाज्ञया पुरुषमनभिगच्छन्ती गणिका शिफासहस्रं लभेत, पंचसहस्रं वा दण्डः। वसतिभोग-पहारे भोगमष्टगुणं दद्यात्—अन्यत्र व्याधिपुरुषदोषेभ्यः। पुरुषं घ्नत्याश्चिताप्रतापोऽप्सु प्रवेशनं वा।

जिस गणिका को छत्र-चँवर आदि डुलाने का अधिकार प्राप्त हो चुका हो, उसके हत्यारे पर बहत्तर हजार पण और मातृका, कुमारी या रूपदासी संज्ञक गणिकाओं के हत्यारे को उत्तम साहस दण्ड दे। जिन-जिन अपराधों में जो दण्ड-निर्धारित हो, प्रथम अपराध पर प्रथम दण्ड, दूसरी बार अपराध करने पर द्विगुणित, तीसरी बार त्रिगुणित और चौथी बार अपराध करे तो जितनी इच्छा हो उतना दंड करे। राजाज्ञा पर भी गणिका यदि किसी विशिष्ट पुरुष की सेवा में उप-स्थित न हो तो उसे एक हजार कोड़ों का या पाँच हजार पण का दण्ड दिया जाय। संभोग मूल्य की प्राप्ति के पश्चात् उस मूल्य देने वाले पुरुष से द्वेष करने वाली गणिका से संभोग मूल्य का दुगुना वसूल किया जाय। संभोग मूल्य देकर भी गणिका यदि उसे किसी

बहाने से भोग का अवसर न दे तो उस पर भोगमूल्य का अठगुना दण्ड करे। किन्तु पुरुष किसी संक्रामक रोग या अन्य दोष से दूषित हो तो गणिका को दण्डित नहीं किया जा सकता। किसी पुरुष की हत्या करने वाली गणिका उसी मृतक के साथ चिता में दग्ध कर दी जाय अथवा उसके कंठ में पत्थर बाँध कर जल में डुबा दिया जाय।

गणिकाभरणमर्थं भोगं वाऽपहरतोऽष्टगुणो दण्डः। गणिका भोगमायतिं पुरुषं च निवेदयेत्। एतेन नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवप्लवकसौभिकचारणस्त्रीव्यवहारिणां स्त्रियो गूढाजीवाश्च व्याख्याताः। तेषाँ तूर्यमागन्तुकं पंचपणं प्रेक्षावेतनं दद्यात्। रूपाजीवा भोगद्वयगुणं मासं दद्युः। गीतावाद्यपाठ्यनृत्तनाट्याक्षरचित्रवीणावेणुमृदंगपरचित्तज्ञानगन्धमाल्यसंयूहनसम्पादन संवाहनवैशिककलाज्ञानानि गणिका दासी रङ्गोपजीविनीश्च ग्राहयतो राजमण्डलादाजीवं कुर्यात्। गणिकापुत्रान् रंगोपजीविनश्च मुख्यान् निष्पादयेयुः सर्वतालावचराणां च।

संज्ञाभाषान्तरज्ञाश्च स्त्रियस्तेषामनात्मसु।
चारघातप्रमादार्थं प्रयोज्या बन्धुवाहनाः ॥१

गणिका के आभूषण, द्रव्य या संभोग मूल्य के अपहरण करने वाले को अपहृत द्रव्य से अठगुने धन का दण्ड दे। गणिकाओं को प्राप्य भोगमूल्य, संभावित आय एवं सहवासित पुरुषों के नाम आदि का विवरण गणिकाध्यक्ष को देना चाहिए। इस व्यवस्था के द्वारा नट, नर्तक, गायक, वादक, वाग्जीवी, कुशीलव, प्लवक, सौभिक, चारण, स्त्री से कमाई कराने वाले की पत्नी और व्यभिचारियों स्त्रियों की भी व्याख्या हो गई। यदि नट-नर्तकादि किसी अन्य देश से कलाप्रदर्शनार्थ आकर प्रदर्शन करे तो उनसे हर बार पाँच पण राज्यकर लिया जाय। रूपजीवी (व्यभिचारिणी) स्त्रियाँ अपनी मासिक आय में से दो दिन की आय राज्य को दें। गणिका, दासी, अभिनेत्री आदि को गीत, वाद्य, पाठ्य, नृत्य, नाट्य, लेखन, चित्रकला, वीणा-वंशी-

मृदंग का बजाना, दूसरों के मनोभाव जानना, सुगंधित द्रव्य एवं माला आदि का गूँथना, अंग मर्दन करना एवं वैशिक कला की शिक्षा देने वाले शिक्षकों की आजीविका की व्यवस्था राज्य की आय से की जाय तथा गणिका-पुत्रों को संगीत की तालों के अनुकूल नृत्यादि करने वाले पुरुषों का मुखिया बनाया जाय। तालों पर नृत्यादि करने वाले उन व्यक्तियों के संकेतों और भाषा के तत्वों को समझने वाली स्त्रियों एवं धन द्वारा वश में किये गये उनके बान्धवों को राज्य के कार्यों में लगा कर असंयमी और अपराधी वृत्ति के पुरुषों या अपने लोगों की हत्या एवं प्रमाद उत्पन्न करने के लिए शत्रुओं द्वारा नियुक्त व्यक्तियों पर नजर रखने का कार्य सौंप दे ॥१॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

नावध्यक्ष के कर्त्तव्य

नावध्यक्षः समुद्रसंयाननदीमुखतरप्रचारान् देवसरोविसरोनदीतरांश्च स्थानीयादिष्ववेक्षेते । तद्वेलाकूलग्रामाः क्लृप्तं दद्युः । मत्स्यबन्धका नौकाभाटकं षड्भागं दद्युः । पत्तनानुवृत्तं शुल्कभागं वणिजो दद्युः । यात्रावेतनं राजनौभिः सम्पतन्तः शखमुक्ताग्राहिणो नौभाटकं दद्युः, स्वनौभिर्वा तरेयुः । अक्षध्यक्षश्चैषां खन्यध्यक्षेण व्याख्यातः ।

नावध्यक्ष अर्थात् नौ संचालन का अधिकारी नगरो में समुद्र तट के यातायात पथ, समुद्र और नदी के संगम का संतरण पथ, देवसरोवर (सदा जलयुक्त) और विसर (सूखने वाला सरोवर) आदि की देखभाल करे। समुद्र या नदी तट के नगरों और गाँवों के लोग जल मार्ग से जाने आने का नियत कर देते रहें और मछली आदि पकड़ने वाले भी नौका-भाड़े के रूप में छटवाँ भाग दें। माल का आयात-निर्यात करने वाले व्यापारी भी पंचमांश या षष्ठांश शुल्क

नियमानुसार जमा करें। राजकीय नाव पर माल का यातायात करें या शंख-मोती आदि निकालें तो नौका भाड़े के रूप में दें। यदि वे अपनी नौका काम में लाना चाहें तो उन्हें वैसी सुविधा देनी चाहिए। शंख-मोती आदि के विषय में खन्यध्यक्ष के कर्त्तव्य वर्णन वाले प्रकरण में कह चुके हैं।

पत्तनाध्यक्षनिबन्धं पण्यपत्तनचारित्रं नावध्यक्षः पालयेत् । मूढवाताहतां तां पितेवानुगृह्णीयात् । उदकप्राप्तं पण्यशुल्कमर्ध-शुल्कं वा कुर्यात् । यथानिर्दिष्टाश्चैताः पण्यपत्तनयात्राकालेषु प्रेष-येत् । सयान्तीर्नावः क्षेत्रानुगताः शुल्कं याचेत । हिंस्रिका निर्घा-तयेत् । अभित्रविषयातिगाः पण्यपत्तनचारित्रोपधातिकाश्च । शासकनियामकदात्ररश्मिग्राहकोत्सेचकाधिष्ठिताश्च महानावो हेम-न्तग्रीष्मतार्यासु महानदीषु प्रजोजयेत् । क्षुद्रिकाः क्षुद्रासु वर्षा-स्राविणीषु । बद्धतीर्थाश्चैताः कार्या राजद्विष्टकारिणां तरणभ-यात् । अकालेऽतीर्थे च तरतः पूर्वः साहसदण्डः । काले तीर्थे चानिसृष्टतारिणः पादोनसप्तविंशतिपणस्तरात्ययः ।

नावध्यक्ष को पत्तनाध्यक्ष अर्थात् नगराध्यक्ष द्वारा निश्चित, निबंध पुस्तिका में लिखित एवं प्रचलित नागरिक नियमों के अनुसार कार्य करना चाहिए। दिशा-भ्रम या तूफान में फँसी हुई नाव की पिता के समान रक्षा करे। जल में भीग कर खराब हुए नाव के सामान का भाड़ा छोड़ा दे या आधा भाड़ा ले और जब यह निश्चय हो चुके कि भाड़ा छोड़ा जायगा या आधा लगेगा, तब तुरन्त ही उस सामान को विक्रयार्थ बाजार में जाने दे। शुल्कक्षेत्र में पहुँचते ही शुल्क ले लिया जाय तथा चोर-डाकुओं की नौकाएँ नष्ट कर दी जांय। शासक, नियामक. दात्रग्राहक, रश्मिग्राहक और उत्सेचक आदि कर्मचारियों से युक्त बड़ी नावों को हेमन्त या ग्रीष्म में भी एक-से प्रवाह वाली गहन नदियों में यातायात करने दे। जो छोटी नदियाँ वर्षा काल में ही बहती हों उनमें क्षुद्र नौकायें चलने दे। बन्दरगाहों पर शत्रु-राज्य

की नाव आकर न ठहरे, इसकी निगाह रखे। असमय पर या अनिश्चित पथ से आकर ठहरने वाली नौका के स्वामी को पूर्व साहस दण्ड दे। बिना आज्ञा बन्दरगाह पर आने वाली नौका के अपराध में पौने सत्ताईस पण से दण्डित करे।

कैवर्त काष्ठतृणभार पुष्पफलवाटषण्डगोपालकानामनत्ययः सम्भाव्यदूतानुपातिनां चसेनाभाण्डप्रचारयोगाणां च। स्वतरणैस्तरताम्। बीजभक्तद्रव्योपस्कारांश्चानूपग्रामाणां तारयताम्। ब्राह्मणप्रव्रजितबालवृद्धव्याधितशासनहरगर्भिण्यो नावध्यक्षमुद्राभिस्तरेयुः। कृतप्रवेशाः पारिविषयिकाः सार्थप्रमाणाः प्रविशेयुः।

परस्य भार्यां कन्यां वित्तं वाऽहरन्तं शंकितमाविग्नमुद्भाण्डीकृतं महाभाण्डेन मूर्ध्नि भारेणावच्छादयन्तं सद्योगृहीतलिंगिनमलिंगिनं वाप्रव्रजितमलक्ष्यव्याधितं भयविकारिणंगूढसारभाण्डशासन शस्त्राग्नियोगं विषहस्तं दीर्घपथिकममुद्रं चोपग्राहयेत्।

कैवर्त (लुब्धक), लकड़हारे, घसियारे, माली, शाकादि के व्यापारी एवं गोपालकों को दण्ड न दे। चोर पकड़ने, सैन्यसामग्री ले जाने या गुप्तचरों के कार्य में आने वाली नौकाओं के लिए कोई समय नियत नहीं होता। नाव के सहारे तैरने वालों को भी दंड न दे। चारों ओर जल वाले गाँवों के लिए उपयोगी सामान ले जाने वाले भी दण्डित न किये जाँय। विप्र, संन्यासी, बाल, वृद्ध, रोगी, शासक का हरकारा और गर्भिणी नावध्यक्ष की मुद्रावाले पारपत्र से बिना शुल्क ही पार जा सकते हैं। प्रवेशाधिकार-प्राप्त विदेशी या उनके साथीगण ही राज्य की सीमा में प्रवेश पा सकेंगे। परस्त्री, परपुत्री या परधन का हरण कर जाने वाला व्यक्ति शंका से आक्रान्त, सिर के सामान के लटकने से ढके हुए मुख वाला, संन्यासी के वेश वाला, स्वस्थ होते हुए भी रोग का बहाना प्रदर्शित करने वाला, भयाकृति युक्त एवं किसी वस्तु को छिपाने जैसी चेष्टा वाला होता है। विस्फोटक पदार्थ, शस्त्र अथवा विष रखने की शंका जिसके प्रति की जाय, जो दूर-यात्रा का यात्री

हो अथवा जिसके पास सीमापाल की मुद्रा न हो—इन लक्षणों से युक्त को अपराधी जान कर पकड़वा देना चाहिए ।

क्षुद्रपशुर्मनुष्यश्च सभारो माषक दद्यात् । शिरोभारः कायभारो गवाश्वं च द्वौ उष्ट्रमहिषं चतुरः । पंच शघुयानम् । षड् गोलिंगम् । सप्त शकटम् । पण्यभारः पादम् । तेन भाण्डभारो व्याख्यातः । द्विगुणो महानदीषु तरः । क्लृप्तमानूपग्रामा भक्तवेतनं दद्युः । प्रत्यन्तेषु तराः शुल्कमातिवाहिकं वर्तनीं च गृह्णीयुः । निर्गच्छतश्चामुद्रस्य भाण्डं हरेयुः । अतिभारेणावेलायामतीर्थे तरतश्च । पुरुषोपकरणहीनायामसंस्कृतायां वा नावि विपन्नायां नावध्यक्षो नष्टं विनष्टं वाभ्यादेहेत् ।

सप्ताहवृत्तामाषाढीं कार्तिकीं चान्तरा तरः ।
कार्मिकप्रत्ययं दद्यान्नित्यं चाह्निकमाहरेत् ।।

हाथ में ले जाने योग्य बोझ एवं भेड़-बकरी आदि क्षुद्र पशुओं की उतराई पर एक माषक, शिर या कन्धे पर ले जाने योग्य बोझ एवं गौ या अश्वों की उतराई पर दो माषक, ऊँट-भैंस पर चार माषक, क्षुद्र गाड़ी पर पाँच माषक, बड़ी गाड़ी पर छः माषक, शकट आदि पर सात माषक और पण्य सामग्री के एक भार पर चौथाई पण शुल्क लिया जाय। इस विश्लेषण से भैंस आदि पर ढोये जाने वाले भार की उतराई भी कह दी गई । उक्त शुल्क क्षुद्र नदियों की है, बड़ी नदियों की उतराई दुगनी होगी । जलमय प्रदेश के गाँवों में रहने वाले व्यक्ति नाविकों को भोजन एवं नियत भाड़ा दें । संतरण-कार्य वाले राजपुरुष व्यापारियों से आतिवाहिक और वर्तनी कर वसूल करेंगे । मुद्रा के बिना सामान लेकर उतरने वाले व्यापारी का सामान छीन लिया जाय । एक मनुष्य के वहन करने योग्य भार से अधिक लेकर जो मनुष्य निश्चित घाट को छोड़कर असमय में अन्य स्थान से नदी को पार करे तो उसका सामान छीन ले । यदि कोई राजकीय नाव पुरुषों या उपकरणों से रहित होने के कारण अथवा जीर्ण अवस्था में होने के कारण संकट-ग्रस्त हो

जाय तो उसके नष्ट हुए सामान की क्षतिपूर्ति नावध्यक्ष को करनी चाहिए। आषाढी पूर्णिमा से आगामी एक सप्ताह पर्यन्त एवं कार्तिकी पूर्णिमा से आगामी एक सप्ताह पर्यन्त के मध्य वाले समय में नाविकों को (वर्षाकालीन नदियों से) उतराई लेनी चाहिए। वे दैनिक प्राप्त भाड़े का धन एवं हिसाब भी नित्यप्रति नावध्यक्ष के पास भेजें।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

गोऽध्यक्ष के कर्त्तव्य

गोऽध्यक्षो वेतनोपग्राहिकं करप्रतिकरं भग्नोत्सृष्टकं भागानुप्रविष्टकं व्रजपर्यग्रं नष्टं विनष्टं क्षीरघृतसंजातं चोपलभेत। गोपालकपिण्डारकदोहकमन्थकलुब्धकाः शतशतं धेनूनां हिरण्यभृताःपालयेयुः। क्षीरघृतभृताहि वत्सानुपहन्युरिति वेतनोपग्राहिकम्।

गो-अध्यक्ष अर्थात् गवादि पशुओं के अधिकारी पर वेतनोपग्राहिक, करप्रतिकर, भग्नोत्सृष्टक, भागानुप्रविष्टक, व्रजपर्यग्र, नष्ट, विनष्ट और क्षीरघृत संजात नामक कार्यों का पूर्ण उत्तरदायित्व रहता है। गोपालक, पिंडारक, दोहक, मन्थक और लुब्धक संज्ञक भृत्यों को नकद वेतन अथवा अन्न-वस्त्र देते हुए सौ-सौ गायों के पालक के रूप में नियुक्त करना चाहिए। उन्हें वेतन के रूप में दूध-घृत न दिया जाय। क्योंकि दूध-घी को स्वयं लेने के लोभ में उन्हें बछड़ों के दुर्बल होने या मरने की परवाह नहीं होगी। गोरक्षा विषयक यह उपाय 'वेतनोपग्राहिक' कहे जाते हैं।

जरद्गुधेनुगर्भिणीपष्ठौहीवत्सतरीणां समविभागं रूपशतमेकः पालयेत्। घृतस्याष्टौ वारकान् पणिकं तुच्छं अङ्कचर्म च वार्षिकं दद्यादिति करप्रतिकरः। व्यधितान्यङ्गानन्यदोहीदुर्दोहापुत्रघ्नीनां च समविभागं रूपशतं पालयन्तस्तज्जातिकं भागं दद्युरिति भग्नो-

त्सृष्टकम् परचक्राटवीभयादनुप्रविष्टानां पशूनां पालनधर्मेण दशभागं दद्यु रिति भागानुप्रविष्टकम् ।

वृद्धा, दुग्धदा, सगर्भा, षष्ठौही (वृषकाम्या) और वत्सरी गायों को बीस-बीस के समूहों में बाँट कर एक भृत्य सौ गायों का पालन करे और गौओं के स्वामी को आठ वारक अर्थात् चौरासी कुडव घी प्रतिवर्ष, प्रत्येक पशु पर एक पण और मृत पशु को राजमुद्रा लगा हुआ चमड़ा दे। यह कार्य 'कर प्रतिकर' कहा गया है। रोगग्रस्त, भग्न अवयव अनन्यदोही (जो एक से ही दुह सके), दुर्दोहा (कठिनता से दोहनीय) और पुत्रघ्नी सौ गऊओं का पालन पाँच झुण्डों में करता हुआ पूर्वोक्त प्रकार से दुग्ध-घृत आदि दे तो यह रीति 'भग्नोत्सृष्टक' कही जाती है। शत्रुओं के षड्यन्त्र या भीलों द्वारा हरण किये जाने की आशंका से राज्य की गोशाला में रखे गये गवादि पशु के पालनार्थ पशु-स्वामी वेतन देने आदि के नियम से दुग्ध-घृत की आय का दसवाँ अंश राज्य को देगा। इस प्रकार को 'भागानुप्रविष्टक' कहा जाता है।

वत्सा वत्सतरा दम्या वहिनो वृषा उक्षाणश्च पुंगवाः। युगवाहनशकटवहा वृषभाः पृष्ठस्कन्धवाहिनश्च महिषाः। वत्सिका वत्सतरी पष्ठौही गर्भिणी धेनुश्चाप्रजाता वन्ध्याश्च गावो महिष्यश्च। मासद्विमासजातास्तासामुपजा वत्सा वत्सिकाश्च। मासद्विमासजातानङ्कयेत्। मासद्विमासपर्युषितमंकयेत्। अङ्कं चिह्नं वर्णं शृङ्गान्तरं च लक्षणम्। एवमुपजा निबन्धयेदिति व्रजपर्यग्रम्। चोरहृतमन्ययूथप्रविष्टमवलीनं वा नष्टम्।

वत्स (दुग्धपायी), वत्सतर (दुग्ध पीने से विरत), दम्य (कार्य सीखने योग्य), वहिन (भार वाहक), वृष और उक्षा (हल जोतने योग्य) के भेद से बैल छः प्रकार के है। महिष के युगवाहन, शकटवह, वृषभ एवं सूनामहिष नाम से चार भेद हैं। गाय-भैंस के सात प्रकार हैं— वत्सिका, वत्सतरी, षष्ठौही, गर्भिणी धेनु, अप्रजाता और वन्ध्या। दो

या एक मास के बछड़े-बछिया को 'उपजा' कहा जाता है। इन्हें तपायी हुई मुद्रा द्वारा चिन्हित कर दें। राज्य की गोशाला में मास-दो मास से रखे हुए अज्ञात स्वामी वाले बछड़ों का मुद्रांकन गवाध्यक्ष करा दे। अंक (कृतिम चिह्न) चिन्ह (स्वाभाविक), रङ्ग और सींग आदि की विशेष मुद्रा को गवाध्यक्ष निबन्ध पुस्तिका में लिखा दे। यही 'व्रज पर्यग्र' कार्य है। चोरहृत, अन्य यूथ प्रविष्ट अथवा अवलीन यानी अपने समूह से बिछुड़ जाने पर पशुधन नष्ट हो जाता है।

पङ्कविषमव्याधिजरातोयाहारावसन्नं वृक्षतटकाष्ठशिलाभिहतमीशानव्यालसंग्राहदावाग्निविपन्नं विनष्टं प्रमादादभ्यावहेयुः। एवं रूपाग्रं विद्यात्। स्वयं हन्ता घातयिता हर्ता हारयिता च वध्यः। परपशूनां राजाङ्केन परिवर्तयिता रूपस्य पूर्वं साहसदण्ड दद्यात्। स्वदेशीयानां चोरहृतं प्रत्यानीय पणिकं रूपं हरेत्। परदेशीयानां मोक्षयितार्धं हरेत्।

दलदल में फँसने, गढ़े आदि में गिरने, रोगी या वृद्ध होने, बाढ़ में बहने या दूषित आहार पाने से पशु संकट में पड़ जाते हैं। वृक्ष, कगार या वृक्षादि के गिरने, बिजली गिरने, हिंसक पशु या मगर आदि के आक्रमण अथवा दावानल में जलने से भी पशु नष्ट हो जाते हैं। उनकी यह विपत्ति 'विनष्ट' कही जाती है। गोपालकों को उन्हें इन विपत्तियों वाले स्थानों से बचाना चाहिए। गवाध्यक्ष पशुओं की सही गणना से जानकारी रखे। यदि पालक ही पशुओं को मारे, किसी अन्य से मरवाये या अपहरण करे-कराये तो उसे प्राणदण्ड दे। गवाध्यक्ष के नीचे का कोई अधिकारी किसी अराजकीय पशु को राजकीय चिन्ह से अंकित करके बदले तो प्रथम साहस दण्ड का भागी है। चोरी हुए स्वदेशी गवादि पशु को प्राप्त कराने वाले के लिए पशु स्वामी एक पण प्रति पशु पारितोषिक दे। किन्तु चोरी गये विदेशी पशु को कोई लाकर दे तो उसे आधा पुरस्कार देना उचित है।

बालवृद्धव्याधितानां गोपालकाः प्रतिकुर्युः । लुब्धकश्वगणिभिरपास्तस्तेनव्यालपरवाधभयमृतुविभक्तमरण्यं चारयेयुः । सर्पव्यालत्रासनार्थं गोचरानुपातज्ञानार्थं च त्रस्नूनां घण्टातूर्यं च बध्नीयुः । समव्यूढतीर्थमकर्दमग्राहमुदकमवतारयेयुः पालयेयुश्च । स्तेनव्यालसर्पग्राहगृहीतं व्याधिजरावसन्नं च आवेदयेयुरन्यथा रूपमूल्यं भजेरन् ।

वाल, वृद्ध एवं रोगी पशुओं का कष्ट दूर करना गोपालक का कर्त्तव्य है । लुब्धकों और श्वान पालकों की सहायता से हिंसक जीवों और शत्रुओं के उपद्रवों को दूर करके गोपालक जल और तृण की अधिकता वाले वनों में पशुओं को चरावें । पशुओं के कंठ में राजकीय घण्टा बाँध दें, जिससे कि हिंसक जीव उसकी ध्वनि सुनकर भाग जाँय । इस प्रकार चरने के स्थान को जाने हुए गोपालकगण स्नानादि के के लिए प्रशस्त घाट पर उतारें, जहाँ दल-दल या मगर आदि जीव न हों । उन्हें पशुओं की रक्षा सावधानी से करनी चाहिए । चोर, व्याघ्र, सर्प एवं नक्र आदि के द्वारा पशु के पकड़े जाने पर गोपालक तुरन्त ही गोऽध्यक्ष को सूचित करे । यदि न करे तो उससे मृत पशु का मूल्य दण्ड रूप में वसूल किया जाय ।

कारणमृतस्याङ्कचर्म गोमहिषस्य कर्णलक्षणमजाविकानां पुच्छमङ्कचर्म चाश्वखरोष्ट्राणां बालचर्मबस्तिपित्तस्नायुदन्तखुरशृङ्गास्थीनि चाहरेयुः । मांसमाममार्द्रं शुष्कं वा विक्रीणीयुः । उदश्वित् श्ववराहेभ्यो दद्युः । कूर्चिकां सेनाभक्तार्थमाहरेयुः । किलाटा घाणपिण्याकक्लेदार्थः । पशुविक्रेता पादिकं रूपं दद्यात् । वर्षाशरद्धेमन्तानुभयतः कालं दुह्युः । शिशिरवसन्तग्रीष्मानेककालम् । द्वितीयकाले दोग्धुरङ्गुष्ठच्छेदो दण्डः । दोहनकालमतिक्रामतस्तत्फलहानं दण्डः ।

पशु के मरने का विश्वास दिलाने के लिए भैंस का राजमुद्रांकित चर्म, भेड़ बकरी के कान और अश्व या ऊँट की पूँछ गवाध्यक्ष के

समक्ष प्रस्तुत करे। साथ ही उसके बाल, चर्म, वस्ति, पित्त, स्नायु, दांत, खुर एवं सींग भी एकत्र कर लावे। तब यह सब वस्तुएँ कुप्यागार को सौंपी जाँय। मृत पशु का कच्चा मांस गीला या सूखा ही तुरन्त वेच दे। पशु-दुग्ध से उत्पन्न तरल शूकरों को खिला दे। सेना के लिए जमाया हुआ मक्खन एकत्र करे। फटा दूध गाय-भैंसों के भक्षणार्थ प्रयुक्त खली का गोला बनाने के कार्य में ले। गवादि पशु के विक्रय पर प्रति पशु चौथाई पण गवाध्यक्ष ले। पशुओं का दोहन वर्षा, शरद् और हेमन्त ऋतुओं में प्रातः सायं दोनों समय एवं शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म में एक बार अर्थात् सायंकाल ही किया जाय, यदि दो बार दोहन करे तो उसका अंगूठा भिन्न कर दे। निश्चित समय के अतिरिक्त अन्य समय दोहन करे तो उसे उस दिन का पारिश्रमिक न दे।

एतेन नस्यदम्ययुगपिङ्गनवर्तनकाला व्याख्याताः। क्षीरद्रोणे गवां घृतप्रस्थः। पञ्चभागाधिको महिषीणाम्। द्विभागाधिकोऽजावीनाम्। मन्थो वा सर्वेषां प्रमाणम्। भूमितृणोदकविशेषाद्धि क्षीरघृतवृद्धिर्भवति। यूथवृषं वृषेणावपातयतः पूर्वः साहसदण्डः। घातयत उत्तमः। वर्णावरोधेन दशती रक्षा। उपनिवेशदिग्विभागो गोप्रचाराद्बलान्वयतो वा गवां रक्षासामर्थ्याच्च।

इस प्रकार नाक छेदना, नये बैलों को सिखाना, अशिक्षित पशु को शिक्षित पशु के साथ जुए में जोड़ना, चलना सिखाना आदि के समय को निकालने वाले को वेतन न देने का दंड दे। गौ के एक द्रोण दूध से एक प्रस्थ घी प्राप्त होता है और भैंस के दूध से पंचमांश अधिक निकलता है। भेड़-बकरी के दूध से, गौ के दूध से ड्योढ़ा घी मिलता है। अथवा मथने म प्राप्त घृत का परिणाम ही सर्वश्रेष्ठ प्रमाण होगा। क्योंकि भूमि, तृण और जल की विशेषता से दूध-घी की घट-बढ़ में अन्तर पड़ सकता है। पशु-समूह में रक्षित वृष को अन्य वृष के साथ कोई लड़ावे तो उसे प्रथम साहस और वृष के मारने वाले को उत्तम

साहस दण्ड दे। पशुओं के वर्ण भेद से दस-दस के यूथ में सौ पशुओं के पालन का भार एक व्यक्ति पर डाले। गवादि पशुओं के रहने एवं चरने के लिए दिशा-विभाग द्वारा वन में स्थान निश्चित करे और रहने तथा चरने के स्थानों की दूरी, यूथ का विस्तार एवं गोपालक की पालन-सामर्थ्य के अनुसार ही सब व्यवस्था करे।

अजावीनां षाण्मासिकीमूर्णां ग्राहयेत्। तेनाश्वखरोष्ट्रवराहव्रजा व्याख्याताः। बलीवर्दानां नस्याश्वभद्रगतिवाहिनां यवसस्यार्धभारः, तृणस्य द्विगुणं, तुला घाणपिण्याकस्य, दशाढकं कणकुण्डकस्य, पंचपलिकं मुखलवणं, तैलकुडुवो नस्यं, प्रस्थः पानम्। मांसतुला, दध्नश्चाढकं, यवद्रोणं, माषाणां वा पुलाकः। क्षीरद्रोणमर्धाढकं वा सुरायाः, स्नेहप्रस्थः, क्षारदशपलं शृङ्गिबेरपलं च प्रतिपानम्। पादोनमश्वतरगोखराणां द्विगुणं महिषोष्ट्राणां कर्मकरबलीवर्दानाम्। पायनार्थं च धेनूनाम्। कर्मकालतः फलतश्च विधादानम्। सर्वेषां तृणोदकप्राकाम्यम्। इति गोमण्डलं व्याख्यातम्।

पञ्चर्षभं खराश्वानामजावीनां दशर्षभम्।
शक्यं गोमहिषोष्ट्राणां यूथं कुर्याच्चतुर्वृषम्॥

भेड़-बकरियों से ऊन काटने का आदेश प्रति छः मास में देना चाहिए। इस प्रकार यह घोड़ा, गधा, ऊँट, शूकर आदि की व्याख्या हो गई। जिन बैलों को नाथ दिया हो और जो अश्व के समान दौड़ने और रथ खींचने में समर्थ हों, उनके लिए खाद्य की इस प्रकार व्यवस्था करे—हरी घास दस तुला, सामान्य घास बीस तुला, खली एक तुला, अन्न की किनकी का मांड दस आढक, सेंधव पांच पल, नासिका में डालने के लिए तेल एक कुडव तथा पीने के लिए तेल एक प्रस्थ दे। साथ ही मांस एक तुला, दही एक आढक, जौ और उड़द का सिक्थ एक-एक द्रोण दे। दूध एक द्रोण, मदिरा अर्ध आढक, घृत या तैल एक प्रस्थ, क्षार द्रव्य दस पल, और अदरक एक पल—इन सबको

एकत्र कर अग्नि प्रदीप्त करने के लिए पिलावे। सामान्य बैल, खच्चर या गधे के आहार में चौथाई कमी करे। भैंस, ऊँट और वहन कार्य में लगे बैलों एवं दूध देने वाली गौ को दुगना भोजन दे। दूध बढ़ाने के लिए गौ आदि के आहार की यथोचित व्यवस्था करे तथा सभी पशुओं के तृण, जल की प्रचुरता का ध्यान रखे। यह गो-मण्डल की व्याख्या हुई। जिन यूथों में एक सौ गर्दभियाँ या घोड़ियां हों, उनमें पाँच-पाँच नर पशु रखे और जिन समूहों में सौ-सौ भेड़-बकरियाँ हों उनमें दस-दस नर पशु रहें। सौ-सौ गाय, भैंस या ऊँटनियों के झुंडों में चार-चार नर पशु रहने चाहिए।

त्रिंशोऽध्यायः

अश्वाध्यक्ष के कर्त्तव्य

अश्वाध्यक्षः पण्यागारिकं क्रयोपागतमाहवलब्धमाजातं साहाय्यागतं पणस्थितं यावत्कालिकं वाश्वपर्यग्रं कुलवयोवर्ण-चिह्नकर्मवर्गागमैर्लेखयेत्। अप्रशस्तन्यंगव्याधितांश्चावेदयेत्। कोशकोष्ठागाराभ्यां च गृहीत्वा मासलाभमश्ववाहश्चिन्तयेत्। अश्वविभवेनायतामश्वायामद्विगुणविस्तारां चतुर्द्वारोपावर्तनमध्यां-सप्रग्रीवां प्रद्वारासनफलकयुक्तां वानरमयूरपृषतनकुलचकोरशुक-शारिकाभिराकीर्णां शालां निवेशयेत्।

अश्वाध्यक्ष को अपनी निबन्ध पुस्तिका में इन सात बातों का उल्लेख करना चाहिए—(१) बाजार में विक्रय हेतु प्रस्तुत घोड़े, (२) क्रीत, (३) शत्रु से छीने हुए, (४) अश्वशाला में उत्पन्न, (५) सहायता के बदले में प्राप्त, (६) धरोहर रूप में प्राप्त, (७) विशेष प्रयोजन से कुछ समय को माँग कर लाये गये अश्व। साथ ही उनकी जाति, आयु, वर्ण उत्पत्ति के अनुसार वर्ग एवं प्राप्ति स्थान भी लिखे। सदोष, अंगहीन एवं व्याधिग्रस्त घोड़ों के परिवर्तन या चिकित्सा आदि की बात राजा को बता दे। अश्ववाह अर्थात् सईस को एक मास के लिए

नकद, एवं भोजन-सामग्री आदि लेकर घोड़ों की परिचर्या आदि का कार्य चलाना चाहिए। अश्वों की संख्या के अनुपातानुसार लम्बी-चौड़ी एक अश्वशाला का निर्माण कराना अश्वाध्यक्ष का कार्य है। उस अश्वशाला का विस्तार घोड़ों की लम्बाई से द्विगुणित हो, उसमें चारों ओर चार बड़े द्वार रहें और द्वार से बाहर दोनों ओर बैठने के लिए चौकियाँ बनी हों, जहां वानर, मोर, मृग, न्यौला, चकोर, तोता मैना आदि विष आदि के परीक्षणार्थ रखे जाँय।

अश्वायामचतुरस्रश्लक्ष्णफलकास्तारं सखादनकोष्ठकं समूत्र-पुरीषोत्सर्गमेकैकशः पराङ्.मुखमुदङ्.मुखं वा स्थानं निवेशयेत्। शालावशेन वा दिग्विभागं कल्पयेत्। वडवावृषकिशोराणामेका-न्तेषु। वडवायाः प्रजातायास्त्रिरात्रं घृतप्रस्थपानम्। अत ऊर्ध्वं सक्तुप्रस्थः स्नेहभैषज्यप्रतिपादनं दशरात्रं, ततः पुलाको यवसमा-र्तवश्चाहारः।

प्रत्येक अश्व के लिए अश्वशाला में इस प्रकार स्थान बनवाने चाहिए, जिससे कि अश्वों के आकारानुसार चौकोर एवं स्वच्छ काष्ठ बिछा रहे, जिसमें तृणादि रखने के लिए खाने बने हों। वहाँ उनके मल-मूत्र त्याग की भी सुविधा रहे। अश्वशाला बनाने में दिशा-विभाग देख कर द्वार आदि बनवाये। घोड़ी, साँड, एवं शावक के लिये पृथक् स्थान रहे। प्रसवा घोड़ी को नित्य प्रति तीन दिन तक एक-एक प्रस्थ घृत पिलावे। तत्पश्चात् दस दिन तक नित्य प्रति एक एक प्रस्थ सत्तू एवं तैल-घृत से मिश्रित औषधि आदि का पान करावे। फिर उसे पुलाक, तृण एवं ऋतु के अनुसार आहार दे।

दशरात्रादूर्ध्वं किशोरस्य घृतचतुर्भागः सक्तुकुडुवः क्षीरप्रस्थ-श्चाहार आषण्मासादिति। ततः परं मासोत्तरमर्धवृद्धिर्यवप्रस्थ आत्रिवर्षाद्द्रोण आचतुर्वर्षादिति। अत ऊर्ध्वं चतुर्वर्षः पञ्चवर्षो वा कर्मण्यः पूर्णप्रमाणः। द्वात्रिंशदंगुलं मुखमुत्तमाश्वस्य, पंच-

खान्यायामः, विंशत्यंगुला जंघा, चतुर्जंघ उत्सेधः । त्र्यंगुलावरं मध्यमावरयोः । शतांगुलः परिणाहः । पंचभागावरं मध्यमावरयोः ।

प्रसव के दस दिन पश्चात् छः मास पर्यन्त घोड़े के बच्चे को नित्य-प्रति सत्तू एक कुडव में घृत चौथाई कुडव मिला कर खिलावे और दूध एक प्रस्थ पिलावे । फिर तीन वर्ष तक नित्य प्रति एक प्रस्थ जौ दे । यदि आवश्यक प्रतीत हो तो आधा प्रस्थ जौ प्रति मास बढ़ाता हुआ तीन वर्ष तक दे । और चार वर्ष की आयु तक एक द्रोण जौ की मात्रा कर दे । फिर चार-पांच वर्ष का होने पर वह सवारी के योग्य हो जायगा । श्रेष्ठ श्रेणी के अश्व का मुख बत्तीस अंगुल, उसके शरीर का विस्तार एक सौ साठ अंगुल, जंघा बीस अंगुल एवं ऊँचाई अस्सी अंगुल होती है । मध्यम श्रेणी के अश्व का परिमाण तीन अंगुल कम एवं अधम श्रेणी के अश्व का उससे भी तीन अंगुल कम होगा । श्रेष्ठ श्रेणी के अश्व की पीठ सौ अंगुल की, मध्यम श्रेणी के अश्व की अस्सी अंगुल की एवं अधम श्रेणी की चौसठ अंगुल की होनी चाहिये ।

उत्तमाश्वस्य द्विद्रोणं शालिव्रीहियवप्रियंगूणामर्धशुष्कमर्धसिद्धं वा मुद्गमाषाणां वा पुलाकः । स्नेहप्रस्थश्च । पंचपलं लवणस्य । मांसं पंचाशत्पलिकम् । रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिण्डक्लेदनार्थम् । क्षारः पंचपलिकः सुरायाः प्रस्थः पयसो वा द्विगुणः प्रतिपानम् । दीर्घपथभारक्लान्तानां च खादनार्थं स्नेहप्रस्थोऽनुवासनम् । कुडुवो नस्यकर्मणः । यवसस्यार्धभारः, तृणस्य-द्विगुणः, षडरत्निपरिक्षेपः पुंजीलग्राहो वा ।

श्रेष्ठ श्रेणी के अश्व के लिये शालि, व्रीहि अथवा ककुनी दो द्रोण अधपका या अध सूखा हो या मूंग-उड़द का सिक्थ दो द्रोण भोजन में दे । पानार्थ घृत या तैल एक प्रस्थ, नमक पाँच पल, मांस पचास पल और भक्ष्य के भिगोने के लिये मांस-रस एक आढक तथा यह न हो तो दही दो आढक खिलावे । अपराह्न में गुड़ आदि क्षार द्रव्य पाँच पल

और मदिरा एक प्रस्थ या दूध दो प्रस्थ दे। दीर्घ मार्ग तय करके या भारी बोझ वहन करके अधिक थके हुये अश्व को घृत या तैल एक प्रस्थ देना चाहिए। यह अनुवासन वस्ति कही गई है। नासिका में डालने के लिए घी या तैल एक कुडव दे। हरी घास दस तुला, सामान्य तृण बीस तुला अथवा हस्त परिक्षेप परिमाण मोटी तृण की गठरी आहारार्थ देनी चाहिये।

पादावरमेतन्मध्यमावरयोः । उत्तमसमो रथ्यो-वृषश्च मध्यमः। मध्यमसमश्चावरः। पादहीनं वडवानां पारशमानां च। अतोऽर्धं किशोराणाञ्च। इति विधायोगः। विधापाचकसूत्रग्राहकचिकित्सकाः प्रतिस्वादभाजः। युद्धव्याधिजराकर्मक्षीणाः पिण्डगोचरिकाः स्युः। असमरप्रयोज्याः पौरजानपदानामर्थेन वृषा वडवास्वायोज्याः। प्रयोज्यानामुत्तमाः काम्बोजसैन्धवारट्टजवानायुजाः। मध्यमा वाह्लीकपापेयकसौवीरकतैतलाः। शेषाः प्रत्यवराः।

श्रेष्ठ श्रेणी के घोड़ों के लिये जो खाद्य देना बताया है, उससे चौथाई कम मध्यम श्रेणी वालों को दे। रथ खींचने वाले अश्वों को उत्तम श्रेणी के समान और अधम श्रेणी के रथ खींचने वाले घोड़ों को मध्यम श्रेणी वालों के समान आहार देना चाहिए। घोड़ियों और खच्चरों को चौथाई कम तथा बालकों को उससे भी चौथाई कम दे। इस प्रकार घोड़ों के आहार बताये गये। अश्वों के लिए भोजन बनाने वाले, सईस और चिकित्सक भी राज्य से भोजन प्राप्त करेंगे। युद्ध, रोग या वृद्धावस्था के कारण निर्बल हुए एवं सवारी आदि के कार्य में अनुपयुक्त अश्वों को पेट भरने योग्य ही आहार दे। शक्तिशाली किन्तु युद्ध के लिए अनुपयुक्त घोड़ों को घोड़ी के साथ सांड रूप में प्रयोगार्थ लगावे। युद्ध आदि कार्यों में वे अश्व ही श्रेष्ठ माने जाते हैं, जो काम्बोज, सिन्ध, आरट्ट एवं वनायु देश में उत्पन्न हुए हों। बाह्लीक, पापेय, सौवीर और

तितल देशोत्पन्न अश्व मध्यम तथा शेष अन्यान्य देशों में उत्पन्न अधम माने गये हैं।

तेषां तीक्ष्णभद्रमन्दवशेन सान्नाह्यमौपवाह्यकं वा कर्म प्रयोजयेत्। चतुरस्रं कर्माश्वस्य सान्नाह्यम्। वल्गनो नीचैर्गतो लघनो घोरणो नारोष्ट्रश्चौपवाह्याः। तत्रौपवेणुको वर्धमानको यमक आलीढप्लुतः पूर्वंगस्त्रिकचाली च वल्गनः। स एव शिरःकर्णविशुद्धो नीचैर्गतः षोडशमार्गो वा। प्रकीर्णकः प्रकीर्णोत्तरो निषण्णः पार्श्वानुवृत्त ऊर्मिमार्गः शरभक्रीडितः शरभप्लुतः त्रितालो बाह्यानुवृत्ताः पंचपाणिः सिंहायतः स्वाधूतः क्लिष्टः श्लिङ्गितो बृंहितः पुष्पाभिकीर्णश्चेति नीचैर्गतमार्गाः।

उक्त अश्वों का तीव्र, भद्र या मन्द गति देख कर ही उन्हें सान्नाह्य एवं औपवाह्य कार्यों में लगावे। सामरिक कार्य सान्नाह्य कहे जाते हैं। और औपवाह्य के पाँच भेद हैं, यथा—वल्गन (मण्डलाकार गति), नीचैर्गति (अविकृत चाल), लंघन (छलाँग), घोरण (विविध गतियाँ), और नारोष्ट्र (संकेतानुसार गति)। वल्गन के भी छः भेद माने गये हैं—औपवेणुक (एक हाथ के घेरे में घूमना), वर्धमानक (निर्धारित सीमा में मण्डल बना कर घूमना) यमक (एक साथ दो गतियों में मण्डल बना कर घूमना), आलीढप्लुत (एक पाँव संकुचित कर दूसरे से फाँदना), पूर्वंग (देह के पूर्व भाग से घूमना) तथा त्रिकचाली (देह के पिछले भाग से भागना)। अपने सिर और कान को यथावत रखते हुए मण्डलाकार घूमने को नीचैर्गति कहते हैं। इसके सोलह भेद हैं—प्रकीर्णक (मिली-जुली अनेक गतियाँ), प्रकीर्णोत्तर (विशेष गति की प्रमुखता), निषण्ण (पूर्व भाग में स्थिर गति), पार्श्वानुवृत्त (तिर्यग् गति), ऊर्मिमार्ग (जल तरंग जैसी ऊँची नीची गति), शरभक्रीडित (शरभ जैसी) शरभप्लुति (शरभ जैसी छलांग), त्रिताल (तीन पाँवों से गति), बाह्यानुवृत (दाँये-बाँये घूमती हुई चाल), पंचपाणि (एक बार तीन पाँव और दो बार चौथा पाँव रख कर चलना), सिंहायत (सिंह मुद्रा युक्त), स्वाधूत (सहसा

तीव्रगति होना), क्लिष्ट (ढीली लगाम पर भागना), श्लिगित (देह के अगले भाग को झुका कर चलना), बृंहित (देह के अगले भाग को उभाड़ कर भागना) तथा पुष्पाभिकीर्ण (मुड़ी हुई रेखा के समान इधर-उधर मुड़ते हुए दौड़ना।

कपिप्लुतो भेकप्लुत एणप्लुतः एकपादप्लुतः कोकिलसंचार्युरस्यो बकचारी च लंघन। काङ्को वारिकाङ्को मायूरोऽर्धमायूरोनाकुलोऽर्धनाकुलो वाराहोऽर्धवाराहश्चेति धोरणः। संज्ञाप्रतिकारो नानोष्ट्र इति। षण्णव द्वादशेति योजनान्यध्वा रथ्यानाम्। पंचयोजनान्यर्धाष्टमानि दशेति पृष्ठबाह्यानामश्वानामध्वा। विक्रमो भद्राश्वासो भारबाह्य इति मार्गाः। विक्रमो वल्गितमुपकण्ठमुपजवो जवश्च धाराः।

लंघन के सात भेद हैं—कपिप्लुत (वानर के समान कूदना), भेकप्लुन (मंडूकवत कूदना), एणप्लुत (मृगवत कूदना), एकपादप्लुत (एक पांव से कूदना), कोकिलसंचारी (कोकिल जैसी कूद), उरस्य (पाँव समेट कर छाती के वल कूदना) और बकचारी (बगुले के समान मन्द और यकायक तीव्र छलांग भरना) धोरण के आठ भेद हैं—कांक, वारिकांक, मायूर, अर्धमायूर, नाकुल, अर्धनाकुल, वाराह एवं अर्धवाराह जिनमें क्रमशः कंकपक्षी, हंस,मोर,अर्ध मोर, न्योला, अर्ध न्योला वाराह और अर्धवाराह जैसी गति रहती है। ऊपर अर्ध का प्रयोग आधी गति से समझें। संकेतों के अनुसार चलना नारोष्ट्र कहा जाता है। उत्तम, मध्यम, अधम रथ वहन करने वाले घोड़े क्रमशः बाराह, नौ और छः योजन चलते हैं तथा जो पीठ पर भार वहन करते हैं उनकी चाल दस, साढ़े सात और पाँच योजन की रहती है। इनकी गति भी उत्तम, मध्यम और अधम के अनुसार तीन प्रकार की है—विक्रम (मंद), भद्रा—श्वास (मध्यम) तथा भारबाह्य (बोझ ढोने वाले मनुष्यों जैसी)। घोड़ों की पाँच प्रकार की गतिधाराः कही है—विक्रम, वल्गित, उपकण्ठ, उपजव एवं जव। जो कि क्रमशः

मन्दगति, मंडलाकार गति, उछलती हुई गति, पहिले तीव्र फिर मंद गति एवं पहिले मंद और फिर तीव्र गति समझनी चाहिए।

तेषां बन्धनोपकरणं योग्याचार्याः प्रतिदिशेयुः। सांग्रामिकं रथाश्वालंकारं च सूता। अश्वानां चिकित्सकाः शरीरह्रासवृद्धिप्रतीकारमृतुविभक्तं चाहारम्। सूत्रग्राहकाश्वबन्धकयावसिकविधापाचकस्थानपालकेशकारजाङ्गलीविदश्च स्वकर्मभिरश्वानाराधयेयुः।

योग्य अश्व-शिक्षक उन अश्वों के मुख आदि बाँधने के उपकरणों तथा सारथी, रथ और युद्धोपकरणों के विषय में बतावें। अश्व-चिकित्सक ह्रास-वृद्धि के उपायों के लिए उपयुक्त पथ्य निर्धारित करें। सईस, लगाम और जीन आदि बाँधने की परिचर्या करने वाले, ऋतु अनुसार तृणादि आहार की व्यवस्था करने वाले, चावल मूँग आदि पकाने वाले, स्थान की स्वच्छता आदि का प्रबंध करने वाले, घोड़ों के केश-नख आदि काटने वाले एवं विषविद्या के जानकार वैद्य अपने अपने कार्यों द्वारा अश्वों का परिपालन करें।

कर्मातिक्रमे चैषां दिवसवेतनच्छेदनं कुर्यात्। नीराजनोपरुद्धं वाहयतश्चिकित्सकोपरुद्धं वा द्वादशपणो दण्डः। क्रियाभैषज्यसंगेन व्याधिवृद्धौ प्रतीकारद्विगुणो दण्डः। तदपराधेन वैलोम्ये पत्रमूल्यं दण्डः। तेन गोमण्डलं खरोष्ट्रमहिषमजाविकं च व्याख्यातम्।

द्विरह्नः स्नानमश्वानां गन्धमाल्यं च दापयेत्।
कृष्णसन्धिसु भूतेज्याः शुक्लेषु स्वस्तिवाचनम् ॥१
नीराजनामाश्वयुजे कारयेन्नवमेऽहनि।
यात्रादाववसाने वा व्याधौ वा शान्तिके रतः ॥२

उक्त कर्मचारियों द्वारा ठीक कार्य न किये जाने पर उनका एक दिन का वेतन काट ले। जिन अश्वों को नजर लगने से बचाने के लिए दीप-दर्शन क्रियार्थ बाँध रखा हो या चिकित्सार्थ रोक रखा हो,

उनसे कार्य लेने वाले पर बारह पण दण्ड करे। चिकित्सा के अभाव में किसी अश्व का रोग बढ़ने पर उसकी चिकित्सा में जितना व्यय हो, उससे दुगना धन अश्वाध्यक्ष से वसूल किया जाय। दूषित औषधि के कारण अश्व की मृत्यु हो जाय तो अश्वाध्यक्ष उसका मूल्य जमा करे। इस प्रकार गो-मण्डल, गधे, ऊँट, भैंस और भेड़-बकरी आदि से सम्बन्धित व्याख्या पूर्ण हुई। शरद् और ग्रीष्म ऋतु में अश्वों को नित्य प्रति दो बार स्नान, सुगन्धित द्रव्य और माला धारण करावे। प्रत्येक अमावस्याओं को भूतबलि तथा पूर्णिमाओं को स्वस्तिवाचन कराना चाहिए। आश्विन शुक्ला नवमी को नीराजन कराये। यात्रा के प्रारम्भ और अन्त में या जब घोड़ा रोगी हो जाय, तब उपद्रव शान्ति के उपाय करता हुआ उसे दीप दर्शन कराना चाहिए ॥१-२॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

हस्त्यध्यक्ष के कर्त्तव्य

हस्त्यध्यक्षो हस्तिवनरक्षां दम्यकर्मक्षान्तानां हस्तिहस्तिनीकलभानां शालास्थानशय्याकर्मविधायवसप्रमाणं कर्मस्वायोगं बन्धनोपकरणं सांग्रामिकमलंकारं चिकित्सकानीकस्थोपस्थायुकवर्गं चानुतिष्ठेत्। हस्त्यायामद्विगुणोत्सेधविष्कम्भायामां हस्थिनीस्थानाधिकां सप्रग्रीवां कुमारीसंग्रहां प्राङ्.मुखीमुदङ्मुखीं. वा शालां निवेशयेत्।

हस्त्यध्यक्ष अर्थात् हाथियों के अधिकारी को हस्तवन की रक्षा-व्यवस्था करनी चाहिए। सिखाये हुए हाथी, हाथिनी एवं गज शिशुओं के लिए हस्तिशाला, शयन स्थान, बन्धन स्थान, साज-सामग्री, भोज्य-सामग्री और हरित चारे आदि की मात्रा स्वयं हस्त्यध्यक्ष को निश्चित करनी चाहिए। हाथियों को दम्यादि में शिक्षित करने के लिए उन्हें बलवान बनावे। उनके बन्धन, अंकुशादि उपकरण, युद्धोपयोगी अलंकरण आदि के साथ उनके चिकित्सक, शिक्षक, परिचर्याकारी आदि

सभी के कार्यविधानों को निश्चित करना हस्त्यध्यक्ष का कार्य है। हाथियों की अधिकतम ऊँचाई नौ हाथ होती है, उनके लिए जो शाला बने, वह दुगनी अर्थात् अठारह हाथ ऊँची हो। उस शाला में अति रिक्त स्थान भी रहे तथा कक्ष या बरामदे भी बड़े-बड़े हों। उसमें हाथी के कुमारी संज्ञक बन्धन के खम्भे पर तुला के आकार के दण्ड प्रचुर परिमाण में एकत्र किये जांय और शाला का मुख पूर्व या उत्तर की ओर रहे।

हस्त्यायामचतुरस्रश्लक्ष्णालानस्तम्भफलकान्तरकं मूत्रपुरीषोत्सर्गस्थानं निवेशयेत्। थानसमशय्यामर्धापाश्रयां दुर्गे सान्नाह्यौपवाह्यानां बहिर्दम्यव्यालानाम् प्रथमसप्तमावष्टमभागावह्नः स्नानकालौ, तदनन्तरं विधायाः। पूर्वाह्णे व्यायामकालः, पश्चाद्ह्नः प्रतिपानकालः। रात्रिभागौ द्वौ स्वप्नकालौ, त्रिभागः संवेशनोत्थानिकः।

हाथियों के मल-मूत्र त्याग के लिये एक स्थान पर नौ हाथ लम्बा एवं चिकना बन्धन स्तम्भ रखे, जिसमें भूमि को ढँकने के लिये काष्ठ का चौकोर एव आगे से उभड़े हुए सिरे वाला एक तख्ता रखा रहे। स्थान के अनुसार ही उनके लिए साढ़े चार हाथ ऊँची शय्या भी बनवाये। सान्नाह्य एवं उपवाह्य हाथियों के लिये शय्या-निर्माण दुर्ग या नगर के मध्य में किया जाय। सिखाये जाते हुये अथवा बिगड़ने वाले हाथी के लिये शय्या दुर्ग से बाहर ही रहे। दिनमान के आठ भागों में प्रथम और सप्तम भाग हाथियों के स्नानार्थ प्रयुक्त होता है। इस प्रकार दोनों काल स्नान के पश्चात् उन्हें भोजन दे। पूर्वाह्न काल मे उन्हें व्यायाम करावे अर्थात् शिक्षित करे और अपराह्न में कुछ पीने को दे। रात्रिकाल के तीन समान भाग में से दो भाग का समय उनके शयन के लिये और शेष भाग लेटने, उठने आदि के लिये निश्चित कर दे।

ग्रीष्मे ग्रहणकालः। विंशतिवर्षो प्राह्यः। विक्को मूढो मत्कुणो व्याधितो गर्भिणी धेनुका हस्तिनी चाग्राह्याः। सप्तारत्निरुत्सेधो नवायामो दश परिणाहः। प्रमाणतश्चत्वारिंशद्वर्षो भवत्युत्तमः। त्रिंशद्वर्षो मध्यमः। पंचविंशतिवर्षोऽवरः। तयोः पादावरो विधाविधिः। अरत्नौ तण्डुलद्रोणः, अर्धाढकं तैलस्य, सर्पिषस्त्रयः प्रस्थाः, दशपलं लवणस्य, मांसं पञ्चाशत्पलिकं, रसस्याढकं द्विगुणं वा दध्नः पिण्डक्लेदनार्थं, क्षारं दशपलिकं, द्विगुणं मद्यस्नाढकं वा पयसः प्रतिपानं, गात्रावसेकस्तैलप्रस्थः, शिरसोऽष्टभागः प्रादीपकश्च यवसस्य द्वौ सपादौ शष्पस्य शुष्कस्यार्धतृतीयो भारः, कडंकरस्यानियमः।

हाथियों को पकड़ने के लिये ग्रीष्म ऋतु उपयुक्त रहती है, क्योंकि उस समय उनमें बल की कमी रहती है। पकड़ने के समय उसकी आयु बीस वर्ष हो। विक्क (स्तनपायी), मूढ़ (हथिनी सदृश्य दाँत वाला), मत्कुण (दांत न निकला हुआ), रुग्ण, गर्भिणी या दूध पिलाने वाली हथिनी को नहीं पकड़ना चाहिये। हाथी वही श्रेष्ठ है जिसकी आयु चालीस वर्ष, ऊँचाई सात हाथ, लम्बाई नौ और मोटाई दस हाथ हो। तीस वर्ष का हाथी मध्यम और पच्चीस वर्ष का निम्न माना जाता है, जिन्हें भोजन चौथाई कम देना चाहिए। सात हाथ ऊँचाई वाले हाथी को प्रत्येक अरत्नि के अनुसार आहार दे। जैसे—चावल एक द्रोण, तेल अर्ध आढक, घृत तीन प्रस्थ, नमक दस पल, मांस पचास पल, भोजन को भिगोने के लिए मांसरस एक आढक या दही दो आढक और क्षार द्रव्य दस पल। मध्याह्न काल में पानार्थ मदिरा एक आढक या दूध दो आढक दे। मलने के लिये तैल एक प्रस्थ और माथे पर लगाने तथा रात्रि में जलाने के लिये तैल अर्ध कुडव एवं सवा दो भार हरा और उतना ही शुष्क चारा दे। डंठल आदि के विषय में कोई नियम नहीं है—दे, न दे या कितना दे ?

सप्तारत्निना तुल्यभोजनोऽष्टारत्निरत्यरालः । यथाहस्तमवमेषः षडरत्निः पंचारत्निश्च । क्षीरयावसिको विक्कः क्रीडार्थं ग्राह्यः । संजातलोहिता प्रतिच्छन्ना संलिप्तपक्षा समकक्ष्या व्यतिकीर्णमांसा समतल्पतला जातद्रोणिकेति शोभाः ।

शोभावशेन व्यायाम भद्रं मन्दं च कारयेत् ।
मृगसंकीर्णलिङ्गं च, कर्मस्वृतुवशेन वा ॥

उपर्युक्त सात हाथ वाले हाथी के समान ही आठ हाथ अर्थात् अत्यराल हाथी का भोजन होगा । इनके अतिरिक्त मध्यम श्रेणी के छः हाथ और अधम श्रेणी के पांच हाथ वाले हाथी को क्रमशः चौथाई कम और उससे भी चतुर्थांश कम देना चाहिए । यदि विक्क को क्रीड़ा के लिये पकड़ा गया हो तो उसे दूध और तृण का ही भोजन दे । सप्तवर्षीय हाथियों की शोभा सात प्रकार की होती है—संजातलोहिता (जिसमें चर्म और अस्थियाँ ही दिखाई दें तथा रक्त की उत्पत्ति होने को होती है), प्रतिच्छन्ना (माँस उत्पन्न होने से अस्थियाँ ढक जाँय), संलिप्तपक्षा (दोनों पार्श्व मांसल और चिकने दिखाई दें) समकक्ष्या (दोनों काँख मांस भरने से समान हो जाँय) व्यतिकीर्णमांसा (सब अंग मांस से परिपूर्ण हो जाँय), समतल्पतलता (माँस भर कर पीठ समतल हो जाय) और जातिद्रोणिका (पीठ का आकार छोटी नाव जैसा हो जाय) । उपर्युक्त शोभानुसार भद्र (श्रेष्ठ),मन्द (मध्यम) और मृग (अधम) हाथियों को व्यायाम करावे और इनके साथ मिश्रित जाति के हाथियों को भी सामरिक शिक्षा देने की व्यवस्था करे तथा इन कार्यों में ऋतु के अनुसार ही व्यवहार करे ।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

हस्तिप्रचार

कर्मस्कन्धाश्चत्वारः—दम्यः सान्नाह्य औपवाह्यो व्यालश्च । तत्र दम्यः पंचविधः—स्कन्धगतः स्तम्भगतो वारिगतोऽवपातम-

गतो यूथगतश्चेति । तस्योपचारो विक्ककर्म । सान्नाह्यः सप्तक्रियापथः—उपस्थानं संवर्तनं संयानं वधावघो हस्तियुद्धं नागरायणं सांग्रामिकं च । तस्योपविचारः कक्ष्याकर्म ग्रैवेयकर्म यूथकर्म च ।

दम्य, सन्नाह, उपवाह्य और व्याल के भेद से हाथी चार प्रकार के होते हैं। शिक्षा के द्वारा दमन करने योग्य को 'दम्य' युद्ध के लिए उपयोगी सिद्ध होने वाले को 'सन्नाह' सवारी के योग्य हो उसे 'उपवाह्य' और जो घातक स्वभाव का अर्थात् विगड़ैल हो उसे 'व्याल' कहते हैं। इनमें भी दम्य के पाँच प्रकार हैं—स्कन्धगत (सवारी के कंधे पर बैठने पर उपद्रव करने वाला), स्तम्भगत (स्तम्भ से बांधने पर अविरोध रहे, वारिगत (हाथीशाला) जाने के लिये स्वयं तत्पर रहे अथवा बाँधने में कोई झंझट न उत्पन्न करे). अवपातगत (तृणादि से आवृत्त गर्त्त में सहज ही जा गिरे) तथा यूथगत (शिक्षित हथनियों के यूथ में स्वयं आ फँसे)। दम्य हाथी को विक्क के समान दूध, तृण और ईख आदि का आहार दे ।सन्नाहगज के सात प्रकार होते हैं—उपस्थान (अगले-पिछले अंग को उठा या झुकाने तथा ध्वज, बाँस, रस्सी आदि को लाँघ जाने में अभ्यस्त), संवर्तन (धरती पर बैठने-सोने या गर्त्त आदि लाँघने में अभ्यस्त), संयान (सीधी, टेढ़ी या मंडलाकार गति में शिक्षित), वधावध (सूँड, दांत या शरीर के द्वारा ही मनुष्य, घोड़ा आदि को मार देने वाला), हस्तियुद्ध (दूसरे हाथियों से लड़ने वाला), नागरायण (नगर के गौरव, अट्टा या परिघ आदि को जोर लगा कर तोड़ दे) और सांग्रामिक (संग्राम में आगे रहे)। सन्नाहगज की सुश्रूषा और शिक्षा आदि को ठीक प्रकार करे । जिससे कि वह कक्ष्याकर्म, ग्रैवेय कर्म एवं यूथ कर्म में चतुर हो जाय ।

औपवाह्योऽष्टविधः--आचरणः कुञ्जरौपवाह्यः धोरणः आधानगतिकः यष्ट्युप वाह्यः तोत्रोपवाह्यः शुद्धोपवाह्यः मार्गायुक-

श्चेति । तस्योपविचारः शारदकर्म हीनकर्म नारोष्ट्रकर्म च । व्याल एकक्रियापथः । तस्योपविचार आयम्यैकरक्षः कर्मशंकितोऽवरुद्धो विषमः प्रभिन्नः प्रभिन्नविनिश्चयो मदहेतुविनिश्चयश्च । क्रियाविपन्नो व्यालः । शुद्धः सुव्रतो विषमः सर्वदोषप्रदुष्टश्च ।

उपवाह्यगज के आठ भेद हैं—आचरण (हाथियों की सब प्रकार की गतियों का ज्ञाता), कुंजरौपवाह्य (सवारी देने वाला), धोरण (बगल से चलने वाला), आधानगति (दो-तीन प्रकार की गति वाला), यष्ट्युपवाह्य (संकेतानुसार करने वाला), तोत्रोपवाह्य (मार खाने पर चलने वाला), शुद्धोपवाह्य (पाँव के संकेत पर चलने वाला), और मार्गायुक (आखेट कर्म में चतुर)। उपवाह्यगज की परिचर्या तीन प्रकार से होती है—शारदकर्म, हीनकर्म और नारोष्ट्रकर्म। इनमें से शारदकर्म में अधिक मोटे हाथी को कृश करना, कृश को मोटा करना, उदर की अग्नि मंद हो तो प्रदीप्त करना, और उसे स्वस्थ रखना सम्मिलित है। हीनकर्म अर्थात् सीखने से भागता हो तो उसे उपाय पूर्वक शिक्षा देना और व्याल अर्थात् उग्रकर्मा की एक ही गति होती है। उसे वश में करने के एक व्यक्ति ही नियुक्त रहे। उग्रकर्मा हाथियों के अनेक भेद हैं—कर्मशंकित (शिक्षा के समय प्रतिकूल कार्य करने वाला, अवरुद्ध (कार्य करने में असमर्थ या उपेक्षित), विषम (दुष्ट आचरण वाला), प्रभिन्न (मदोन्मत्त), प्रभिन्न-विनिश्चय (मदविह्वल या खराब भोजन से दुःखित) और मदहेतुविनिश्चय (मदयुक्त, किन्तु उसके मद के कारण का निश्चय न हो सके)। व्याल को सभी कार्यों में निशिद्ध मानते हैं। इसके भी शुद्ध, सुव्रत, विषम और सर्वदोषप्रदुष्ट के भेद से चार प्रकार हैं। शुद्ध व्याल वह है जो हस्तिशास्त्र के अट्ठारहों दोषों से युक्त एवं घातक हो। सुव्रत व्याल वह है जिसमें पन्द्रह दोष हों और दूषित गति वाला हो। विषम व्याल वह है जिसकी गति और स्वभाव दोनों ही दूषित हों तथा सर्वदोषप्रद में सब दोष ही दोष भरे हों।

तेषां बन्धनोपकरणमनीकस्थप्रमाणम् । आलानग्रैवेयकक्ष्यापारायणपरिक्षेपोत्तरादिकं बन्धनम् । अंकुशवेणुयंत्रादिकमुपकरणम् । वैजयन्तीक्षुरप्रमालास्तरणकुथादिकं भूषणम् । वर्मतोमरशरावापयंत्रादिक. सांग्रामिकालकारः । चिकित्सकानीकस्थारोहकाधोरणहस्तिपकौपचारिकविधापाचकयावसिकपादपाशिककुटीरक्षकौपशायिकादिरौपस्थ्यायिकवर्गः । चिकित्सककुटीरक्षविधापाचकाः प्रस्थौदनं स्नुहप्रसृतिं क्षारलवणयोश्च द्विपलिकं हरेयुः । दशपलं मांसस्यान्यत्र चिकित्सकेभ्यः ।

हाथियों के बाँधने या और आवश्यक उपकरणादि के विषय में उनके शिक्षकों का निर्णय ही सर्वमान्य होगा । आलान (पाँवों में बाँधने का सिक्का) ग्रैवेय (कण्ठ में बाँधने की जंजीर), कक्ष्या (कक्ष-बन्धन की रस्सी), पारायण (चढ़ने के लिए हाथी पर लटकती हुई रस्सी), परिक्षेप (पाँव में बाँधने की रस्सी) और उत्तार (कंठ में बाँधा गया अलंकार)—यह छः प्रकार के गज बन्धन हैं । अंकुश, वेणु और यन्त्रादि को उपकरण तथा पीठ पर फहराती हुई ध्वजा, क्षुरप्रमाला संज्ञक, माला, आस्तरण (पीठ का बिछावन) और कुथ अर्थात् झूल को अलंकार कहा जाता है । कवच, तोमर, तरकस एवं विविध शस्त्रास्त्र युद्ध के अलकरण हैं । चिकित्सक, शिक्षक, गजारोही, गजकर्मविद, गज रक्षक औपचारिक (परिचर्या करने वाला), विधापाचक (आहार बनाने वाला), यावसिक (तृणदाता), पादपाशिका, कुटीरक्षक और औपशायिक (शयन स्थान पर नियुक्त) आदि सेवक कर्मचारी हाथियों की परिचर्यार्थ नियुक्त रहते हैं चिकित्सक, कुटीरक्षक और विधापाचक को अधिकार है कि वे हाथी की भक्ष्य सामग्री से अन्न एक प्रस्थ, घृत या तैल एक प्रसृति, गुड़ आदि क्षारद्रव्य दो पल एवं आवश्यकतानुसार नमक ले लें । चिकित्सक के अतिरिक्त कुटीरक्षक और विधापाचक को दस पल मांस लेने का भी अधिकार है ।

पथिव्याधिकर्ममदजराभितप्तानां चिकित्सकाः प्रतिकुर्युः। स्थानस्याशुद्धिर्यवसस्याग्रहणं स्थले शायनमभागे घातः परारोहणमकाले यानमभूमावतीर्थेऽवतरण तरुषण्ड इत्यत्ययस्थानानि। तमेषां भक्तवतनादाददीत।

तिस्रो नीराजनाः कार्याश्चातुर्मास्यृतुसन्धिषु।
भूतानां कृष्णसन्धीज्याः सेनान्यः शुक्लसन्धिषु ॥१
दन्तमूलपरीणाहद्विगुण प्रोज्झच कल्पयेत्।
अब्दे द्वयर्धे नदीजानां पंचाब्दे पर्वतौकसाम् ॥२

हाथी यदि मार्ग में ही रोग, कर्म मद एवं जरा से पीडित हो जाय तो चिकित्सक को तुरन्त उसका उपाय करना चाहिए। हाथियों के निवास स्थान के अस्वच्छ रखने, उन्हें आहार न देने, सामान्य या कठिन भूमि पर शयन कराने, अताड़नीय मर्म स्थान पर प्रहार करने, हाथी पर किसी अनधिकारी को बैठाने, असमय में चलाने, विषम मार्ग पर भगाने, घाट-रहित स्थान नदी या सरोवर में उतारने और गहन झाड़ियों में ले जाने जैसे अपराध अत्यय अर्थात् दण्डनीय माने जाते हैं। इनमें जिन कर्मचारियों का दोष पाया जाय उनके वेतन या भत्ते से दण्ड रूप में द्रव्य काट लिया जाय। हाथियों की विघ्नशान्ति के लिए चातुर्मास की ऋतुसन्धि अर्थात् कार्तिकी, फाल्गुणी और आषाढ़ी पूर्णिमा में उनकी तीन बार आरती उतारे तथा प्रत्येक अमावस्या में भूतबलि और पूर्णिमा में स्वामी कार्तिकेय का पूजन करे। नदीचारी हाथी के दाँत ढाई-ढाई वर्ष में और पर्वतचारी के पाँच-पाँच वर्ष में दन्तमूल के परिमाण से दुगना भाग छोड़ कर काट ले ॥१-२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

रथाध्यक्ष, पत्त्यध्यक्ष एवं सेनापति के कार्य

अश्वाध्यक्षेण रथाध्यक्षो व्याख्यातः। स रथकर्मान्तान् कारयेत्। दशपुरुषो द्वादशान्तरो रथः। तस्मादेकान्तरावरा आषड-

न्तरादिति सप्त रथाः। देवरथपुष्परथसांग्रामिकपारियाणिकपर-पुराभियानिकवैनयिकांश्च रथान् कारयेत्।

अश्वाध्यक्ष प्रकरण में वर्णित कर्त्तव्यों से रथाध्यक्ष के कर्त्तव्य भी कहे जा चुके समझे। रथाध्यक्ष को नवीन रथ का निर्माण और जीर्ण रथ के उद्धारार्थ कारखाना स्थापित करे। बारह अंगुल पुरुष परिमाण से दस गुना ऊँचा एवं बारह गुना चौड़ा रथ श्रेष्ठ समझा जाता है। रथ सात परिमाण के बनते हैं—अर्थात् उक्त प्रकार के अतिरिक्त एक-एक पुरुष कम करके छ पुरुष परिमाण तक के छः परिमाण के और बन सकते हैं। देवरथ, पुष्परथ, सांग्रामिक, पारिमाणिक, परपुराभि-यानिक और वैनयिक के भेद से रथ छः प्रकार के होते हैं, जिनमें देव-रथ देवयात्रा आदि में, पुष्परथ मांगलिक यात्रा में, सांग्रामिक युद्ध में, पारिमाणिक परिभ्रमण में परपुरा-भियानिक शत्रु-दुर्ग आदि के विध्वंस-कार्य में तथा वैनयिक घोड़ों को शिक्षा देने के कार्य में आता है। रथा-ध्यक्ष को इन सब प्रकार के रथों का निर्माण कराना चाहिए।

इष्वस्त्रप्रहरणावरणोपकरणकल्पनाः सारथिरथिकरथ्यानां च कर्मस्वायोगं विद्यात्। आकर्मभ्यश्च भक्तवेतनं भृतानामभृतानां च योग्यारक्षानुष्ठानमर्थमानमध्वकर्म च। एतेन पत्त्यध्यक्षो व्या-ख्यातः। स मौलभृतश्रेणिमित्रामित्राटवीबलानां । सारफल्गुतां विद्यात्। निम्नस्थलप्रकाशकूटखनकाकाशदिवारात्रियुद्धव्यायामं च विद्यात्। आयोगमयोगं च कर्मसु।

धनुष-बाण आदि अस्त्र, भाले आदि प्रहरण, ढकने के वस्त्र आदि का निर्माण तथा सारथी, रथी और रथ्य (रथ में जुतने वाले घोड़े) आदि की नियुक्ति के विषय में पूर्ण जानकारी रखे। कार्य के पूर्ण होने तक रथाध्यक्ष भृत (स्थायी कर्मचारी) और अभृत (नवीन कर्मचारी) के वेतन-भत्ते आदि के विषय में जानकारी एवं उनके कार्यानुसार धन एवं मान प्रदान आदि का भी पूर्ण ज्ञान रखे। रथाध्यक्ष के इस कर्त्तव्य कथन द्वारा पत्त्यध्यक्ष के कर्त्तव्यों की भी व्याख्या हुई समझे। पत्त्यध्यक्ष

मौलबल (मूल अर्थात् केन्द्र स्थित सेना), भृतबल (वेतनभोगी सेना) श्रेणिगण (जनपद स्थित शस्त्रधारी), मित्रबल (मित्र-राज्यों की सेना), अमित्रबल [शत्रु-राज्यों की सेना] तथा अटवीबल अर्थात् वन्यपाल के अधीनस्थ सेना की शक्ति-अशक्ति से भले प्रकार जानकर रहे। उसे निम्नयुद्ध अर्थात् नीची भूमि में युद्ध, स्थल युद्ध, प्रकाशयुद्ध [सामने की लड़ाई], कूटयुद्ध, दिवायुद्ध और रात्रियुद्ध के रहस्यों से भी अवगत रहना चाहिए। सैनिकों की नियुक्ति, पदमुक्ति आदि से भी पत्त्यध्यक्ष परिचित रहे।

तदेव सेनापतिः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविनीतो हस्त्यश्वरथचर्यासंपुष्टश्चतुरंगस्य बलस्यानुष्ठानाधिष्ठानं विद्यात्। स्वभूमि युद्धकालं प्रत्यनीकमभिन्नभेदनं भिन्नसन्धानं संहतभेदनं भिन्नवधं दुर्गवधं यात्राकालं च पश्येत्।

तूर्यध्वजपताकाभिर्व्यूहसंज्ञाः प्रकल्पयेत्।
स्थाने याने प्रहरणे सैन्यानां विनये रतः॥

प्रधान सेनापति सभी सेनाओं के अध्यक्षों के कार्यों से अवगत रहे। वह सब प्रकार के युद्धों, शास्त्रास्त्रों, आन्वीक्षिकी आदि विद्याओं में पूर्ण पारंगत एवं गज, अश्व तथा रथ आदि के संचालन में भी चतुर हो। सैनिकों की व्यायामभूमि, युद्ध का समय, शत्रु-सेना में फूट उत्पन्न करना, निज सेना में एकता स्थापित करना, सुगठित एवं एकत्रित शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर देना, विघटित शत्रु-सैनिकों को मरवा देना, शत्रु-दुर्ग को नष्ट करना तथा युद्ध के लिए यात्रा विषयक समय का निश्चित करना आदि सब विषयों में उद्योगी रहे। सैनिकों को सिखाने, उनके अवस्थान, अभियान और आक्रमण आदि विषयक तूर्यध्वनि, ध्वजा-पताका आदि से व्यूह रचना आदि के संकेत में पारंगत करने की शिक्षा देना भी सेनापति का कर्त्तव्य है।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मुद्राध्यक्ष, विवीताध्यक्ष के कार्य

मुद्राध्यक्षो मुद्रां माषकेण दद्यात्। समुद्रो जनपदं प्रवेष्टं निष्क्रमितुं वा लभेत। द्वादशपणममुद्रो जानपदो दद्यात्। कूटमुद्रायां पूर्वः साहसदण्डः। तिरोजनपदस्योत्तमः। विवीताध्यक्षो मुद्रां पश्येत्। भयान्तरेषु च विवीतं स्थापयेत्। चोरव्यालभयान्निम्नारण्यानि शोधयेत्। अनुदके कूपसेतुबन्धोत्सेधान् स्थापयेत्, पुष्पफलवाटांश्च।

मुद्राध्यक्ष अर्थात् राज्यचिन्ह-अंकन वाले विभाग का अध्यक्ष राज्य में प्रवेश करने वाले और राज्य से बाहर जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को मुद्रा देने का शुल्क एक-एक माषक ले। जिनके पास मुद्रा हो, वही जनपद में आ-जा सकें। मुद्रारहित व्यक्ति से बारह पण दण्ड ले। जाली मुद्रा दिखावे तो उत्तम साहस का दण्ड करे। विवीताध्यक्ष अर्थात् तृण-सम्पन्न भू भाग का अधिकारी अपने यहाँ आने वालों की मुद्रा की परीक्षा करे और चोरों या गुप्तचरों की गति-विधियों पर नजर रखने के लिए विवीत (चौकियाँ) स्थापित करे। चोरों और हिंसक जीवों से बचने के लिए गर्त्त स्थानों—खड्डों या निर्जन स्थलों पर निगरानी रखे। कहीं जल की कमी हो तो कूप, नहर या झरने आदि से जल मँगाने का प्रबंध करे और स्थान-स्थान पर फल फूलों के उद्यान लगवा दे।

लुब्धकश्वगणिनः परिव्रजेयुररण्यानि। तस्करामित्राभ्यागमे शंखदुन्दुभिशब्दमग्राह्याः कुर्युः। शैलवृक्षाधिरूढा वा शीघ्रवाहना वा। अमित्राटवीसंचारं च राज्ञो गृहकपोतैर्मुद्रायुक्तैर्हारयेयुर्धूमाग्निपरम्परया वा।

द्रव्यहस्तिवनाजीवं वर्तनीं चोररक्षणम्।
सार्थातिबाह्यं गोरक्ष्यं व्यवहारं च कारयेत्॥

श्वानादि से युक्त लुब्धकगण चोरों और शत्रुओं से सतर्क रहने के लिए वन्य प्रदेशों या निर्जन स्थानों में भ्रमण करते रहें। यदि चोर या शत्रु दिखाई दें तो स्वयं पकड़ में न आकर शंख-दुन्दुभि आदि का शब्द करके चौकी-रक्षकों को सूचना दे दें और उनसे बचने के लिए पर्वतों या वृक्षों पर चढ़ जाँय अथवा शीघ्रगामी अश्वों द्वारा भाग कर अन्तपाल आदि अधिकारियों के पास चले जाँय, जो कि शत्रुओं या वन्यजातियों आदि की गतिविधियों से मुद्रायुक्त समाचार कपोतों द्वारा राजा को प्रेषित कर दें। यदि दिन के समय ऐसा कोई संकट प्रतीत हो तो धुँआ करके और रात्रिकाल में हो तो आग जला कर संकेत रूप में अधिकारिओं को सावधान कर दें। द्रव्यवन, और हस्तिवन में जीवनोपयोगी पदार्थों की सुलभता हेतु विवीताध्यक्ष उनकी प्राप्ति के लिए व्यापारिक केन्द्र स्थापित करावे तथा वर्तनी कर, चौररक्षण कर एवं गोरक्ष्य कर भी वसूल करे।

पंचत्रिंशोऽध्याय:

समाहर्ता, गृहपति, वैदेहक एवं तापस गुप्तचर

समाहर्ता चतुर्धा जनपदं विभज्य ज्येष्ठमध्यमकनिष्ठविभागेन ग्रामाग्रं परिहारकमायुधीयं धान्यपशुहिरण्यकुप्यविष्टिप्रतिकरमिदमेतावदिति निबन्धयेत् । तत्प्रदिष्टः पंचग्रामीं वा गोपश्चिन्तयेत् ।

समाहर्ता अर्थात् दुर्ग, खान, वन, नगर, जनपद आदि की सभी आय को एकत्र करने वाला प्रमुख अधिकारी समूचे जनपद को चार भागों में बाँट कर प्रत्येक भाग के ग्रामों को भी उत्तम, मध्यम और अधम कोटियों में विभक्त कर दे वह यह भी लिखवाये कि कौन-कौन गाँव करमुक्ति के हैं, कौन-कौन ग्राम प्रतिवर्ष कितने सशस्त्र सैनिक राज्य को देते हैं, कौन-कौन ग्राम कर के बदले में कितना गोधन, पशु, स्वर्ण, कुप्य और विष्टि आदि प्रदान करते हैं। समाहर्ता ने जिन गोप संज्ञक राज-

पुरुषों को नियुक्त किया हो, वे उत्तम कोटि के हों तो पाँचे-पाँच और अधम कोटि के हों तो दस-दस ग्रामों के समूह में लोक कल्याण की बातों का विचार करें

सीमावरोधेन ग्रामाग्रं कृष्टाकृष्टस्थलकेदारारामषण्डवाटवनवास्तुचैत्यदेवगृहसेतुबन्धश्मशानसत्रप्रपापुण्यस्थानविवीतपथसंख्यानेन क्षेत्राग्रं तेन सीम्नां क्षेत्राणां च मर्यादारण्यपथप्रमाणसम्प्रदानविक्रयानुग्रहपरिहारनिबन्धान् कारयेत्। गृहाणां च करदाकरदसंख्यानेन। तेषु चैतावच्चातुर्वर्ण्यमेतावन्तः कर्षकगोरक्षकवैदेहककारुकर्मकरदासाश्चैतावच्च द्विपदचतुष्पदमिदं च हिरण्यविष्टिशुल्कदंडं समुत्तिष्ठतीति।

उन गोपों को प्रत्येक ग्राम की भूमि का परिमाण एवं नदी आदि के द्वारा सीमा निर्धारण कर अपनी पुस्तिका में लिख लेना चाहिए। अमुक-अमुक स्थानों के विषय में निम्न विवरण निबंध पुस्तिका में स्पष्ट लिखा जाय—अमुक स्थान उपजाऊ है, अमुक अनुर्वर है, बिना बोये नीवार आदि उत्पन्न होती है, अमुक धरती ऊँची, धान उपजाने वाली, उद्यान युक्त, केले के उपवन रूप में, ईख-उपजाऊ, भवन निर्माण के योग्य अथवा अमुक में चैत्य अर्थात् बौद्ध विहार है। अमुक स्थान पर देवालय, सेतु, श्मसान, प्याऊ एवं अमुक स्थान पर तीर्थ क्षेत्र है। अमुक स्थान पर गोचरभूमि या बैलगाड़ी आदि का मार्ग है। साथ ही ग्राम की सीमा, खेत की सीमा, सम्बन्धित वन, मार्ग, पगडंडी, परिमाण, सम्प्रदान, विक्रय, अनुग्रहण परिहार एवं राजकर दाताओं के नामादि का उल्लेख करे। ग्राम में ब्राह्मण, वैश्य आदि वर्ण एवं किसान अथवा निम्न वर्ग वालों के कितने घर, कितनी जन संख्या, कितने पशु आदि हैं तथा किस गाँव से कितनी आय होती है। बेगार में कितने मनुष्य उपलब्ध हैं तथा कितना शुल्क एवं दंड रूप में धन प्राप्त होता है।

कलानां च स्त्रीपुरुषाणां बालवृद्धकर्मचरित्राजीवव्ययपरिमाणं विद्यात्। एवं च जनपदचतुर्भागं स्थानिकश्चिन्तयेत्। गोप-

स्थानिकस्थानेषु प्रदेष्टारः कार्यकरणं बलिप्रग्रहं च कुर्युः। समाहर्तृप्रदिष्टाश्च गृहपतिव्यंजना येषु ग्रामेषु प्रणिहितास्तेषां ग्रामणां क्षेत्रगृहकुलाग्रं विद्युः। मानसंजाताभ्यां क्षेत्राणि भोगपरिहाराभ्यां गृहाणि वर्णकर्मभ्यां कुलानि च। तेषां जंघ्राग्रमायव्ययौ च विद्युः। प्रस्थितागतानां च प्रवासावासकारणमनर्थ्यानां च स्त्रीपुरुषाणां चारप्रचारं च विद्युः।

गोपों को प्रत्येक परिवार के स्त्री, वालक, वृद्ध आदि की गणना रखनी चाहिए। ब्राह्मणादि वर्ण अपने-अपने धर्मानुसार कार्य करते हैं या नहीं। उनका चरित्र, आजीविका के साधन एवं व्यय विषयक जानकारी भी हो। स्थानिक संज्ञक अधिकारी गोपों के कार्यों का निरीक्षण करे। स्थानिक और गोपों के क्षेत्र में प्रदेष्टा को कंटकशोधन कार्य करना और राजकर न देने वालों से कर वसूल करना चाहिए। अब ग्राम एवं जनपद में समाहर्ता के अधीनस्थ वैदेहक एवं तपस्वी वेश वाले गुप्तचरों की नियुक्ति के विषय में कहेंगे। गृहपति वेश धारी गुप्तचर को अपने लिए सोंप गये ग्रामों की क्षेत्र संख्या, गृह संख्या, परिवार संख्या, क्षेत्र का परिमाण, अन्न का परिमाण, गृहस्वामी का परिचय एवं कर-मुक्ति का लाभ उठाने वाले व्यक्तियों के नाम आदि लिखे। किस परिवार में किस वर्ण के व्यक्ति, उनका व्यवहार, कृषिकर्म, आय एवं व्यय, परदेश गये व्यक्ति का नाम, परदेश से आये हुए का नामादि एवं आगमन का कारण, कुटनी या नर्तकी, धूर्त्त एवं ठग अथवा शत्रु पक्ष के गुप्तचर आदि के विषय में भी जानकारी एवं उल्लेख रहे।

एवं वैदेहकव्यंजनाः स्वभूमिजानां राजपण्यानां खनिसेतुवनकर्मान्तिक्षेत्रजानां परिमाणमर्घं च विद्युः। परभूमिजानां वारिस्थलपथोपयातानां सारफल्गुपण्यानां कर्मसु च शुल्कवर्तन्यातिवाहिकगुल्मतरदेयभागभक्तपण्यागारप्रमाणं विद्युः। एवं समाहर्तृप्रदिष्टास्तापसव्यंजनाः कर्षकगोरक्षकवैदेहकानामध्यक्षाणां च

शौचाशौचं विद्युः । पुराणचौरव्यंजनाश्चान्तेवासिनश्चैत्यचतुष्पथशून्यपदोदपाननदीनिपानतीर्थायतनाश्रमारण्यशैलवनगहनेषु स्तेनामित्रप्रवीरपुरुषाणां च प्रवेशस्थानगमनप्रयोजनान्युपलभेरन् ।

समाहर्ता जनपदं चिन्तयेदेवमुत्थितः ।
चिन्तयेयुश्च संस्थास्ताः संस्थाश्चान्याः स्वयोनयः ॥

समाहर्त्ता द्वारा नियुक्त वैश्य वेश वाले गुप्तचर को स्वदेश में उत्पन्न व्यापार योग्य वस्तुओं, खनिज रत्नादि, जल में अथवा वन में उत्पन्न वस्तुओं, कारखानों के उत्पादनों और खेती जन्य अन्नों आदि का परिमाण एवं मूल्य अवगत रहना चाहिए । परदेश से कितना-कितना सार एवं फल्गु द्रव्य, कितने मूल्य का जल मार्ग से राज्य में आयात हुआ ? यह भी जाने । इनके व्यापारियों ने व्यापारी कर, वर्तनी कर, आतिवाहिक कर, गुल्मदेय कर, तरदेय कर, पण्यपदार्थों पर षष्ठांश या क्रेता से राज्यभाग, सामान लाने वाले के बैल आदि का भोजन-व्यय एवं विक्रय योग्य वस्तुओं को रखने के स्थान आदि के प्रदत्त भाड़े के विषय में भी परिचित रहे । तापसवेशधारी गुप्तचरों के चोर वेश वाले शिष्यों को चैत्यों, चौराहों, जनहीन स्थानों, जल पीने के स्थानों, कुँए के निकटवर्ती पोखरों, पुण्य तीर्थों, आश्रमों, अरण्यों, पर्वतों एवं झाड़ियों में रहने वाले चोरों, शत्रुओं तथा शत्रुओं द्वारा भेजे हुए प्रवीर पुरुषों के आने, टिकने या जाने आदि विषयक अभिप्रायों से परिचित रहना चाहिए । इस प्रकार समाहर्त्ता जनपद का हित-चिन्तन करे तथा उसके द्वारा नियुक्त गुप्तचर भी जनपद से सम्बन्धित सब कार्यों को देखते रहें । उन संस्था संज्ञक गुप्तचरों पर नजर रखने के लिए भी वैसे ही गुप्तचरों की पृथक् संस्था और बनावे ।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

नागरिक के कार्य

समाहर्तृवन्नागरिको नगरं चिन्तयेत् । दशकुलीं गोपो विंश-

तिकुलीं चत्वा रिंशत्कुलीं वा। स तस्यां स्त्रीपुरुषाणां जातिगोत्र-नामकर्मभिः जंघाग्रमायव्ययौ च विद्यात्। एवं दुर्गचतुर्भागं स्थानिकश्चिन्तयेत्। धर्मावसायिनः पाषण्डपथिकानावेद्य वासयेयुः। स्वप्रत्ययाश्च तपस्विनः श्रोत्रियांश्च। कारुशिल्पिनः स्वकर्मस्थानेषु स्वजनं वासयेयुः वैदेहकाश्चान्योन्यं स्वकर्मस्थनेषु। पण्यानामदेशकालविक्रेतारमस्वकरणं च निवेदयेयुः।

नागरिक अर्थात् नगर प्रबन्धक भी समाहर्ता के ही समान नगर के विषय में ध्यान दे। नागरिक के अधीनस्थ गोप उत्तम कोटि के दस, मध्यम कोटि के बीस एवं अधम कोटि के चालीस परिवारों की निगरानी का कार्य अपने ऊपर लें। वे गोप अपने क्षेत्र के सब परिवारों स्थित स्त्री-पुरुषों के जाति, गोत्र, नाम, कार्य, संख्या, आय एवं व्यय का लेखा निबन्ध पुस्तिका में लिखें। इसी प्रकार स्थानिक संज्ञक अधिकारी को नगर के चारों ओर के चिन्तन का भार लेना चाहिये। इसके लिए नगर को चार भागों में बाँट कर प्रत्येक पर स्थानिक की नियुक्ति की जाय। वह उक्त प्रकार से अपने अधिकार क्षेत्र के व्यक्तियों की जाति, नाम, व्यवसाय आदि लिखे। नगर की धर्मशाला आदि में उनके प्रबंधक यात्रियों के विषय में पूरी सूचना उक्त अधिकारियों को देकर ही उन्हें स्थान दें तथा जिनसे परिचित हो उन्हीं को ठहरने दे। कर्मचारी जहाँ कार्य करें, वहीं अपने विश्वस्त संबंधियों या आगतों को टिका सकते हैं। व्यापारियों को भी विश्वस्त व्यापारियों के अपने यहाँ ठहराने की छूट है। जो किसी अनिर्दिष्ट देश काल में व्यापार करते हों, उन्हें गोप आदि अधिकारियों को सूचना देकर ही ठहराया जा सकता है।

शौण्डिकपाक्वमांसिकौदनिकरूपाजीवाः परिज्ञातमावासयेयुः। अतिव्ययकर्तारमत्याहितकर्माणं च निवेदयेयुः। चिकित्सकः प्रच्छन्नव्रणप्रतीकारकारयितारमपथ्यकारिण च गृहस्वामी च निवेद्य गोपस्थानिकयोर्मुच्यते। अन्यथा तुल्यदोषः स्यात्। प्रस्थितागतौ

च निवेदयेत् । अन्यथा रात्रिदोषं भजेत् । क्षेमरात्रिषु त्रिपणं दद्यात् ।

मद्य वेचने वाला, पका मांस बेचने वाला, पक्वान्न बेचने वाला एवं गणिका आदि परिचितों को अपने यहाँ ठहरा सकते हैं। किन्तु वे अधिक व्यय एवं अति सुरापान करने वालों की सूचना गोप या स्थानिक को अवश्य देते रहें। जो व्यक्ति अपराध छिपाने के लिए शस्त्रादि से हुये घाव आदि की चिकित्सा कराने आवे और जो मारक पदार्थों को बनावे या सेवन करे तो उसके नाम आदि की सूचना गोप या स्थानिक को चिकित्सक दे या जिसके घर पर ऐसे कृत्य हो रहे हों वह गृह स्वामी भी उसकी सूचना दे। ऐसा करने से चिकित्सक या गृहस्वामी दोषी नही रहेंगे। अपने घर आने जाने वालों की सूचना भी गृहस्वामी द्वारा गोप आदि को दी जानी चाहिये। अन्यशा आने वाले किसी व्यक्ति द्वारा कोई अपराध किये जाने का अपराधी गृहस्वामी भी होगा। रात्रि के निर्विघ्न रूप से व्यतीत हो जाने पर भी गृहस्वामी तीन पण के अर्थ दण्ड का अधिकारी होगा।

पथिकोत्पथिका वहिरन्तश्च नगरस्य देवगृहपुण्यस्थानवन-श्मशानेषु सव्रणमनिष्टोपकरणमुद्भाण्डीकृतमाविग्नमतिस्वप्नमध्व-क्लान्तमपूर्वं वा गृह्णीयुः। एवमभ्यन्तरे शून्यनिवेशावशनशौण्ड-कौदनिकपाक्वमांसिकद्यूतपाषण्डावसेषु विचयं कुर्युः। अग्निप्र-तीकारं च ग्रीष्मे मध्यमयोरह्नश्चतुर्भागयोः। अष्टभागोऽग्नि दण्डः। बहिरधिश्रयण वा कुर्युः।

श्रेष्ठ मार्ग के पथिक अथवा कुमार्ग के पथिक भी नगर के बाहर, भीतर, देवमन्दिर, तीर्थ, अरण्य अथवा श्मसान में यदि कोई आहत, शस्त्रधारी अधिक बोझ लादे हुए, भयाकुल, निद्रित, मार्ग पूरा करके थका हुआ अथवा अपरिचित व्यक्ति दिखाई दे तो उसे गोप या स्थानिक को पकड़ा दें। इसी प्रकार नगर के जनहीन गृह, शिल्पगृह, सुरागृह, भोज-नालय, पके मांस की दूकान, जुआघर एवं पाखंडावास (बौद्धमठ) आदि में

आहत या अपराधी चेष्टा के व्यक्ति मिलें तो गुप्तचर उन्हें पकड़वा दें। ग्रीष्मकाल में दोपहर या तीसरे पहर में आग जलाने पर रोक लगा दे। जो इस नियम को तोड़े उसे एक पण के आठवें अंश का दण्ड दे। किन्तु निवास के बाहर भोजनादि बनाने के लिए अग्नि प्रज्वलित की की जा सकेगी।

पादः पंचघटीनाम्। कुम्भद्रोणीनिःश्रेणीपरशूर्पांकुशकचग्रहणीदृतीनां चाकरणे। तृणकटच्छन्नान्यपनयेत्। अग्निजीविन एकस्थान् वासयेत्। स्वगृहप्रद्वारेषु गृहस्वामिनो वसेयुरसम्पातिनो रात्रौ। रथ्यासु कुटव्रजाः सहस्रं तिष्ठेयुः, चतुष्पथद्वारराजपरिग्रहेषु च। प्रदीप्तमनभिधावतो गृहस्वामिनो द्वादशपणो दण्डः। षट्पणोऽवक्रयिणः। प्रमादाद्दीप्तेषु चतुष्पंचाशत्पणो दण्डः। प्रादीपिकोऽग्निना वध्यः।

मध्याह्न काल में पाँच घड़ी तक अग्नि जलाये रखने वाले पर चौथाई पण दण्ड करे। जो गृहस्वामी ग्रीष्म ऋतु में अपने गृह में जलयुक्त घड़ा, नांद, सीढ़ी, कुठार, सूप, अंकुश, कचग्रहणी (चिमटा) और दृति अर्थात् मशक न रखे, उसे भी चौथाई पण से दण्डित किया जाय। गर्मी के दिनों में घास, फूस आदि के घर न रहने दे। अग्निजीवी अर्थात् आग के कार्य से जीविका करने वालों (जैसे हलवाई आदि) को एक ही स्थान पर रहना अनिवार्य किया जाय। गृहस्वामी रात्रि के समय अपने घर के द्वार पर ही रहें, अन्यत्र कहीं न जांय। जिन मार्गों पर रथ चलते हों उनके दोनों ओर जल से भरे हुए हजारों घड़े रखे रहने चाहिए। इसी प्रकार चौराहे, नगरद्वार, राजभवन, कोषागार, कुप्यागार आदि में भी प्रबन्ध रखे। किसी के घर में आग लगती हुई देख कर भी यदि कोई पड़ोसी गृहस्वामी उसकी ओर भाग कर न जाय तो उसे बारह पण से दण्डित करे। किसी घर में किरायेदार हो और वह गृहस्वामी के यहाँ लगी आग को बुझाने में सहायता न करे तो वह छः पण दण्ड का भागी होगा। यदि गृहपति प्रमाद से आग लगी हो तो उस

पर चौवन पण का दण्ड दे। जो किसी दूसरे के घर में आग लगावे तो उसे अग्नि में डाल कर भस्म कर दिया जाय।

पांसुन्यासे रथ्यायामष्टभागो दण्डः। पंकोदकसन्निरोधे पादः। राजमार्गे द्विगुणः। पुण्यस्थानोदकस्थानदेवगृहराजपरिग्रहेषु पणोत्तरा विष्ठादण्डाः। मूत्रेष्वर्धदण्डाः। भेषज्यव्याधिभयनिमित्तमदण्ड्याः। मार्जारश्वनकुलसर्पप्रेतानां नगरस्यान्तरुत्सर्गे त्रिपणो दण्डः। खरोष्ट्राश्वतराश्वपशुप्रेतानां षट्पणः। मनुष्यप्रेतानां पंचाशत्पणः। मार्गविपर्यासे शवद्वारादादन्यतः शवनिर्णयने पूर्वः साहसदण्डः। द्वाः स्थानामनिषेधे द्विशतम्। श्मशानादन्यत्र न्यासे दहने च द्वादशपणो दण्डः।

जिस मार्ग पर रथ चलते हों, उस पर धूल या कूड़ा-कर्कट डालने वाले को पण का अष्टमांश और कींच मिला हुआ जल फेंकने वाले को पण का चौथाई अर्थदण्ड दे। यदि यह वस्तुएं राजमार्ग पर फेंके तो दुगुना दण्ड देना चाहिये। यदि कोई राजमार्ग स्थित पुण्य स्थान जलाशय, देवमन्दिर एवं राजभवन आदि के समीप मल-त्याग करे तो उस पर क्रमशः एक-एक पण अधिक बढाता हुआ दण्ड दे। किन्तु, मूत्रत्याग पर आधा ही दण्ड देना चाहिये। यदि अतिसार रोग से या विरेचक प्रयोग से मलमूत्र त्यागे तो वह दोषी नहीं माना जायगा। यदि कोई मृत बिल्ली, श्वान या नेवले को मार्ग में डाले तो उस पर तीन पण और मृत गधा, अश्व, ऊंट, खच्चर आदि पशुओं के नगर में डालने पर छः पण दण्ड करे। मनुष्य के शव को नगर-मार्ग में फेंकने पर पचास पण का और निश्चित मार्ग को छोड़ कर अन्य मार्ग से (या नगर के अन्य द्वार से) श्मशान पर ले जाने पर प्रथम साहस का दण्ड दे। यदि नगर-द्वार का रक्षक उस शव को न रोके तो उसे दो सौ पण का और नियत श्मशान को छोड़ कर अन्य स्थान पर मृतक संस्कार करे तो बारह पण का दण्ड दे।

विषण्नालिकमुभयतो रात्रं यामतूर्यम् । तूर्यशब्दे राज्ञो गृहाभ्याशे सपादपणमक्षणताडनं प्रथमपश्चिमयामिकम्। मध्यमयामिकं द्विगुणं बहिश्चतुर्गुणम् । शंकनीये देशे पूर्वापदाने च गृहीतमनुयुंजीत। राजपरिग्रहोपगमने नगररक्षारोहणे च मध्यमः साहसदण्डः। सूतिका।चिकित्सकप्रेतप्रदीपयाननागरिकतूर्यं प्रेक्षाग्निमित्तमुद्राभिश्चाग्राह्याः । चाररात्रिषु प्रच्छन्नविपरीतवेषाः प्रव्रजिता दण्डशस्त्रहस्ताश्च मनुष्या दोषतो दण्ड्याः ।

रात्रि के प्रथम भाग से छः नालिक (छः घड़ी) रात्रि बीतने और छः नालिक रात्रि शेष रहने पर एक एक बार यामतूर्य (संचार निषेधक) घोष करे, जिससे कि उस समय के मध्य यातायात अथवा आवागमन बंद रहे । इस तूर्यघोष के पश्चात् प्रथम याम या अन्तिम याम में कोई व्यक्ति राजभवन के समीप घूमता मिले तो उसे सवा पण से दंडित किया जाय । मध्यम अर्थात् द्वितीय याम में ऐसा करता हुआ मिले तो उसे दूना दंड दे । नगर से बाहर ऐसा अपराध करने पर पाँच पण का दण्ड करे । यदि इस निषिद्ध काल में कोई किसी ऐसे स्थान पर घूमता मिले, जहाँ उसके चोर होने का आभास होता हो अथवा शरीर मुख छिपाये हुए पकड़ा जाय या पहिले से चोरी आदि का अपराधी समझा जाय तो उससे नाम, पता और वहाँ के आने का कारण आदि से संबंधित पूछताछ करनी चाहिए । यदि कोई राजभवन एवं कोषागार आदि में प्रवेश करे या नगर रक्षा वाली प्राकार आदि पर चढ़े तो मध्यम साहस का दण्ड दे । किन्तु सूतिका के कार्य से, चिकित्सक को बुलाने के उद्देश्य से अथवा शव को श्मशान ले जाते हुए लोगों को निषिद्ध काल में भी दंडित नहीं किया जा सकता । नागरिकों को एकत्र होने की घोषणा पर जाने वाले, राजाज्ञा से अभिनय आदि देख कर लौटने वाले, किसी घर में आग लगने पर बुझाने के लिए जाने-आने वाले या किसी अधिकारी द्वारा प्रदत्त मुद्रा या राजाज्ञा से कहीं जाने वाले मनुष्य दोषी नहीं माने जा

सकते। किसी उत्सव वाली रात्रि में चलने की छूट होने पर भी जो वेश बदल कर या विपरीत लिंगी के वेश में, संन्यासी के वेश में, या शस्त्रादि धारण किये हुए मार्ग पर चलें तो उन्हें पकड़ कर पूछताछ करनी चाहिए। फिर उनका जैसा दोष हो वैसा दण्ड विधान करे।

रक्षिणामवार्यं वारयतां वार्यंचावारयमतामक्षणद्विगुणो दण्डः। स्त्रियं दासीमधिमेहयतां पूर्वः साहसदण्डः । अदासीं मध्यमः । कृतावरोधामुत्तमः। कुलस्त्रियं वधः। चेतनाचेतनिकं रात्रिदोषमशंसतोनागरिकस्य दोषानुरूपो दण्डः। प्रमादस्थाने च। नित्यमुदकस्थानमार्गभूमिच्छन्नपथवप्राकाररक्षावेक्षणं नष्टप्रस्मृतापसृतानां च रक्षणम्। बन्धनागारे च बालवृद्धव्याधितानाथानां जातनक्षत्रपौर्णमासीषु विसर्गः। पुण्यशीलाः समयानुबद्धा वा दोषनिष्क्रयं दद्युः।

दिवसे पञ्चरात्रे वा बन्धनस्थान् विशोधयेत्।
कर्मणा कायदण्डेन हिरण्यानुग्रहेण वा ॥१
अपूर्वदेशाधिगमे युवराजाभिषेचने।
सुतजन्मनि वा मोक्षो बन्धनस्य विधीयते ॥२

निषिद्ध काल में भी अनुमति प्राप्त व्यक्तियों को रोकने और रोकने योग्यों को जाने देने वाले राज कर्मचारियों पर दुगना दंड करे। जो रक्षक दासी आदि स्त्रियों पर बलात्कार करे, उसे प्रथम साहस, वेश्या पर बलात्कार करे तो मध्यम साहस और विवाहिता महिला के साथ वैसा करे तो उत्तम साहस दण्ड दे। किसी कुलीन स्त्री के साथ बलात्कार करने वाले रक्षक राजपुरुष को मृत्युदंड देना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति रात्रि के समय किसी प्रकार का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अपराध देख कर भी अपराधी को सूचित न करे तो उसे उसके अपराधानुसार दंड देना चाहिए। नदी, कूप आदि जलस्थान, आवागमन-मार्ग, स्थल, सुरंग, प्राकारादि के आधार, प्राकार अथवा अन्यान्य रक्षा-स्थानों का निरीक्षण नागरिक को स्वयं करते रहना चाहिए। राजपुरुष खोई हुई या भूली हुई वस्तुओं को खोज कर

उनकी तब तक रक्षा करें, जब तक कि वे उसके स्वामी को न सौंप दी जाँय। कारागृह में बन्द बाल, वृद्ध, रोगी या असहाय व्यक्तियों को राजा के जन्म नक्षत्र अथवा पूर्णिमा के दिन मुक्त कर दे। यदि कोई पुण्यशील मनुष्य किसी सामान्य अपराध में कारावास के दंड का भागी हुआ हो तो भविष्य में अपराध न करने की प्रतिज्ञा करके और नियत दंड देकर छूट सकता है। नित्य प्रति अथवा प्रत्येक पाँच दिन के अन्तर पर कारागार में बन्द लोगों के आचरण की जाँच करके निष्क्रय-दंड के रूप में धन लेकर छोड़ दिये जाया करें। छोड़े जाने वाले व्यक्ति तीन प्रकार के हो सकते हैं—[१] शारीरिक परिश्रम करके अर्थ दंड चुकाने वाले [२] कारावास की अवधि पूरी करने वाले, [३] नकद धन देने वाले। बन्दियों की मुक्ति किसी देश पर विजय पाने के दिन, युवराज के अभिषेक के दिन अथवा राजपुत्र के जन्म के अवसर पर भी की जा सकती है ॥१-२॥

॥ द्वितीय अधिकरण समाप्त ॥

धर्मस्थीयं तृतीय अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

व्यवहारस्थापना एवं विवादपदनिबन्ध

धर्मस्थास्त्रयस्त्रयोऽमात्या जनपदसन्धिसंग्रहणद्रोणमुखस्थानीयेषु व्यावहारिकानर्थान् कुर्युः। तिरोहितान्तरगारनक्तारण्योपध्युपह्वरकृतांश्च व्यवहारान् प्रतिषेधयेयुः । कर्तुः कारयितुः पूर्वः साहसदण्डः । श्रोतृणामेकैकं प्रत्यर्धदण्डाः । श्रद्धेयानां तु द्रव्यव्यपनयः । परोक्षेणाधिकर्णग्रहणमवक्तव्यकरा वा तिरोहिताः सिद्धयेयुः ।

इस प्रकरण में व्यवहार अर्थात् धन विषयक वाद (दीवानी) एवं विवादपदनिबन्ध अर्थात् अपराध विषयक वाद (फौजदारी) के विवादों पर प्रकाश डालेंगे। अमात्य की योग्यता वाले तीन-तीन 'धर्मस्थ' संज्ञक अधिकारी जनपदों की सीमा पर, संग्रहण अर्थात् दस ग्रामों के अधिकारी के कार्यालय पर, द्रोणमुख अर्थात् चतुःशत ग्रामों के अधिकारी के कार्यालय पर अथवा स्थानीय के कार्यालय पर व्यवहाराधिकरण अर्थात् ऋणादि के लेन-देन विषय वादों को लिखने की व्यवस्था करें। उक्त धर्मस्थ इन परिस्थितियों में लेन देन को अनुचित घोषित करें, जिनमें कि प्रमाण का अभाव दिखाई दे। यथा—छिप कर या एकान्त में, घर के भीतर, रात्रि के समय या वन में किया गया लेन-देन। छलपूर्वक या साक्षी-रहित आदान-प्रदान भी प्रतिषिद्ध समझा जायगा। इस प्रकार के प्रतिषिद्ध व्यवहार करने वाले या व्यवहार में प्रोत्साहन देने वाले को प्रथम साहस दण्ड दे। इसमें उपेक्षा करने वाले अधिकारी को आधा दण्ड देना चाहिए। किन्तु कपटहीन

एवं श्रद्धेय व्यक्तियों पर प्रदत्त धन वसूली के अतिरिक्त कोई अन्य दण्ड नहीं देना चाहिए। यदि छिपकर किया हुआ लेन-देन भी आभूषण अथवा स्थान आदि बन्धक रख कर हुआ हो तो उसे प्रतिषिद्ध न मान कर, वास्तविक स्वीकार कर लिया जायगा।

दायनिक्षेपोपनिधिविवाहसंयुक्ताः स्त्रीणामनिष्कासिनीनां व्याधितानां चामूढसंज्ञानामन्तरगारकृताः। सिद्धयेयुः। साहसानुप्रवेशकलहविवाहराजनियोगयुक्ताः पूर्वरात्रव्यवहारिणां च रात्रिकृताः। सिद्धयेयुः। सार्थव्रजाश्रमव्याधचारणमध्येष्वरण्यचराणामरण्यकृताः सिद्धयेयुः। गूढाजीविषु चोपधिकृताः सिद्धयेयुः। मिथःसमवाये चोपह्वरकृताः सिद्धयेयुः।

घर के भीतर जो किया गया व्यवहार प्रतिषिद्ध है—किन्तु, घर से बाहर न निकलने वाली किसी स्त्री या सही चेतना वाले रोगी व्यक्ति द्वारा दिया गया धन अथवा किसी प्रकार की धरोहर एवं विवाह संयुक्त प्रकरण में कहे स्त्रीधन आदि से सम्बन्धित व्यवहार अवैध नहीं माना जा सकता। रात्रि में किया गया व्यवहार भी प्रतिषिद्ध माना गया है। किन्तु साहस पूर्वक किसी के घर में घुसना, विवाद करना, विवाह करना, राजाज्ञा से कोई कार्य करना अथवा वणिकों द्वारा रात्रि के पूर्व भाग में व्यापार-व्यवहार किया जाना वैद्य स्वीकार कर लिया जाता है। वन में किया गया प्रतिषिद्ध व्यवहार उस अवस्था में अवैध न होगा, जबकि वह व्यवसाइयों, ग्वालों, संन्यासियों, आश्रमवासियों लुब्धकों एवं चारणों के द्वारा सदैव वन में रहने वाले व्यक्तियों के साथ हुआ हो। छलयुक्त व्यवहार अवैध होते हुए भी किसी गुप्तचर द्वारा अपनी जीविका चलाने के लिए किया गया हो। एकान्त का व्यवहार प्रतिषिद्ध होने पर भी यदि कोई स्त्री-पुरुष गांधर्व विवाह आदि कर लें तो वह अमान्य नहीं हो सकता।

अतोऽन्यथा न सिद्धयेयुः। अपाश्रयवद्भिश्च कृताः, पितृमता पुत्रेण, पित्रा पुत्रवता, निष्कुलेन भ्रात्रा, कनिष्ठेनाविभक्तांशेन,

पतिगत्या पुत्रवत्या च स्त्रिया, दासाहितकाभ्याम्, अप्राप्तातीतव्यवहाराभ्याम् अभिशस्तप्रव्रजितव्यङ्गव्यसनिभिश्चान्यत्र निसृष्टव्यवहारेभ्यः। तत्रापि क्रुद्धेनार्तेन मत्तेनोन्मत्तेनावगृहीतेन वा कृता व्यवहारा न सिद्ध्येयुः। कर्तृकारयितृश्रोतॄणां पृथग्यथोक्ता दण्डः

उपर्युक्त के अतिरिक्त अन्यत्र किये हुए व्यवहार अवैध ही माने जांयगे। पराश्रितों द्वारा किये गये व्यवहार भी अमान्य होंगे। व्यवहार परायण पिता के रहते हुए पुत्र द्वारा एवं समर्थ तथा कार्यकुशल पुत्र के रहते व्यवहार से निवृत्त हुए पिता द्वारा किया गया व्यवहार पराश्रित की कोटि में आता है। इसी प्रकार कुल से पृथक् हुए भाई द्वारा, दायभाग के पूर्व पृथक् न हुए छोटे भाई द्वारा पालक पति या पुत्र के रहते हुए पत्नी या माता द्वारा, स्वामी के आश्रित दास द्वारा किसी को सम्पत्ति बंधक रखने के पश्चात् उसी सम्पत्ति पर पुनः बंधक रखने वाले के द्वारा, अवयस्क द्वारा, अत्यंत वृद्ध मनुष्य के द्वारा, निन्दित, परिव्राजक, मूक-बधिर एवं व्यसनी पुरुष द्वारा किया हुआ व्यवहार तब तक मान्य नहीं होता, जब तक कि किसी अधिकारी द्वारा उसकी अनुमति न ले ली गई हो। किन्तु अनुमति प्राप्त व्यक्तियों में भी क्रुद्ध, आर्त्त, मत्त, उन्मत्त और अपराध में दण्डित आदि का व्यवहार वैध नहीं होगा। प्रतिषिद्ध व्यवहार करने वाले, कराने वाले और सुन कर साक्षी बनने वाले दण्ड-भागी होंगे।

स्वे स्वे तु वर्गे देशे काले च स्वकरणकृताः सम्पूर्णचाराः शुद्धदेशा दृष्टरूपलक्षणप्रमाणगुणाः सर्वव्यवहाराः सिद्ध्येयुः। पश्चिमं चैषां करणमादेशाधिवर्जं श्रद्धेयुः। इति व्यवहारस्थापना।

संवत्सरमृतुं मासं पक्षं दिवसं करणमधिकरणमृणं वेदकावेदकयोः कृतसमर्थावस्थयोर्देशग्रामजातिगोत्रनामकर्माणि चाभिलिख्य वादिप्रतिवादिप्रश्नानर्थानुपूर्व्या निवेशयेत्। निविष्टांश्चावेक्षेत।

अपनी-अपनी जाति, देश, काल एवं कर्म के अनुसार विधिवत, अपरोक्षरूप से रूप, लक्षण, प्रमाण और गुण आदि की जांच में खरे सिद्ध होने वाले व्यवहार वैध होंगे। पूर्व कालीन लेख की उपेक्षा उत्तर-कालीन [अर्थात् बाद में लिखा गया] लेख अधिक मान्य होगा। किन्तु आदेश [क्रय-विक्रय में प्राप्त धन] एवं आधि के विषय में इसका महत्व नहीं होगा। यह व्यवहार स्थापना विषयक प्रकाश डाला गया। अब वाद विषय पर कहते हैं—वादी-प्रतिवादी द्वारा वाद प्रस्तुत करने पर धर्मस्थ उनके देश, ग्राम, जाति गोत्र, नाम एवं व्यवसाय का विवरण लिख कर प्रदत्त ऋण, देने का संवत्, ऋतु, मास, पक्ष, दिवस, करण [साधन], एवं अधिकरण [साधन की जानकारी] आदि भी लिखले। फिर वादी-प्रतिवादी के कथन [बयान] एवं प्रश्नों के छोटे-बड़े उत्तर लिख कर सभी लेखों (मिसल) का मिलान करते हुए वाद की जांच करे।

निबद्धं पादमुत्सृज्यान्यं पादं संक्रामति पूर्वोक्तं पश्चिमेनार्थेन नाभिसन्धत्ते। परवाक्यमनभिग्राह्यमभिग्राह्यावतिष्ठते। प्रतिज्ञाय देशं 'निर्दिश' इत्युक्ते न निर्दिशति। निर्दिष्टोद्देशादन्यदेशमुपस्थापयति। उपस्थिते देशेऽर्थवचनं 'नैवम्' इत्यपव्ययते। साक्षिभिरवधृतं नेच्छति। असम्भाष्ये देशे साक्षिभिर्मिथः संभाषते। इति परोक्तहेतवः। परोक्तदण्डः पंचबन्धः। स्वयंवादिदण्डो दशबन्धः। पुरुषभृतिरष्टांशः। पथि भक्तमर्घविशेषतः तदुभयं नियम्यो दद्यात्।

जो विवाद के पूर्व निश्चित विषय में अन्तर करे, जो पूर्व कथन का पश्चात् कथन से मेल न मिला सके, जो अन्य व्यक्ति के निर्दोष कथन को दूषित बता कर दोष सिद्ध न कर सके, जो स्थान एवं साक्षी बताने की बात कह कर भी न बता सके, जो पूर्व कथित साक्षी के स्थान पर अन्य साक्षी का नाम बताने लगे या अन्य साक्षी को अन्य के स्थान पर प्रस्तुत करे, जो अपने ही गवाह की बात को मिथ्या

बतावे, जो साक्षी के कथन से विषय के निर्णय में बाधा उत्पन्न करे और जो साक्षियों से एकान्त में मन्त्रणा करे, वह अपने ही वाक्यविपर्यय से पराजित होता है। ऐसे विपरीत कर्मा अपराधी पर देय धन का पंचमांश दंड करना चाहिए। जो व्यक्ति साक्षी के बिना ही अपना वाद चलाये, उससे पराजित पक्ष से प्राप्य धन का दशांश दण्ड ले। साक्षियों या न्यायाधीश के कर्मचारियों का वेतन पराजित पक्ष से प्राप्य धन का अष्टमांश होना चाहिए। वस्तुओं के मूल्यभेद के अनुसार साक्षियों का भोजन और मार्गव्यय भी दिलाना चाहिए। यह सभी व्यय पराजित पक्ष के जिम्मे होते हैं।

अभियुक्तो नप्र त्यभियुंजीत, अन्यत्र कलहसाहससार्थसमवायेभ्यः। न चाभियुक्तेऽभियोगोऽस्ति। अभियोक्ता चेत्प्रत्युक्तस्तदहरेव न प्रतिब्रूयात्, परोक्तः स्यात्। कृतकार्यविनिश्चयो ह्यभियोक्ता, नाभियुक्तः। तस्याप्रतिब्रुवतस्त्रिरात्रं सप्तरात्रमिति। अत ऊर्ध्वं त्रिपक्षात्राद्ध्र्यं द्वादशपणपरं दण्डं कुर्यात्। त्रिपक्षादूर्ध्वमप्रतिब्रुवतः परोक्तदण्डं कृत्वा यान्यस्य द्रव्याणि स्युस्ततोऽभियोक्तारं प्रतिपादयेदन्यत्र प्रत्युपकरणेभ्यः। तदेव निष्पततोऽभियुक्तस्य कुर्यात्। अभियोक्तुर्निष्पातसमकालः परोक्तभावः। प्रेतस्य व्यसनिनो वा साक्षिवचनाः सारम्। अभियोक्ता दण्डं दत्त्वा कर्म कारयेत्। आधिं वा स यथाकामं प्रवेशयेत्। रक्षोघ्नरक्षितं वा कर्मणा प्रतिपादयेदन्यत्र ब्राह्मणादिति।

अभियोक्ता पर कोई भी अभियुक्त अन्य कोई विवाद तब तक प्रस्तुत नहीं कर सकेगा, जब तक कि प्रस्तुत वाद का निर्णय न हो जाय। किन्तु कलह, साहस एवं सार्थ रूप में प्रत्यभियोग चला सकेगा। यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति पर किसी विषय का अभियोग चलावे तो अन्य व्यक्ति उस पर उसी विषय का अभियोग नहीं चला सकता। यदि अभियुक्त के उत्तर देने पर अभियोक्ता उसी दिन प्रत्युत्तर न दे तो वह अपने पक्ष की औचित्य सिद्धि में दोषी समझा जाकर पराजय को

प्राप्त होगा। किन्तु अभियुक्त को छूट है कि वह दूसरे दिन या तीन से सात दिन तक उत्तर दे सके। यदि सात दिन तक भी उत्तर न दे तो उससे प्रतिदिन तीन पण से बारह पण तक का हर्जा वसूल किया जाय। इस प्रकार तीन पक्ष से अधिक समय व्यतीत होने पर भी उत्तर न दे तो उसे अपराधी या पराजित मान लेना चाहिये। तब उसकी जीविका के साधन छोड़ कर शेष सम्पत्ति कुर्क की जा सकती है। अभियुक्त के भाग जाने पर भी कुर्की करना उचित होगा। यदि वाद के चलते हुए अभियोक्ता ही भाग जाय या (न्यायालय में उपस्थित न हो) तो वह भी दण्डभागी होगा। किसी अभियुक्त के मरने पर, साक्षियों द्वारा योग्य सिद्ध किया गया उसका पुत्र अपने पिता के धन का अधिकारी होता हुआ, उसके ऋण को भी चुकायेगा। यदि कोई ऋणी व्यक्ति पराजित होकर भी ऋण न चुकावे तो अभियोक्ता न्यायालय के आदेश से उससे या उसके बन्धु-बान्धव से कार्य करा कर अपना धन वसूल कर सकता है। यदि उसे अपने अकल्याण की आशंका हो तो अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करके पराजित अभियुक्त या उसके द्वारा प्रस्तुत अन्य पुरुष से कार्य करावे, किन्तु यदि वह ब्राह्मण हो तो उससे कार्य नहीं कराया जा सकता।

चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकस्याचाररक्षणात्।
नश्यतां सर्वधर्माणां राजधर्मप्रवर्तकः ॥१
धर्मश्च व्यवहारश्च चरित्रं राजशासनम्।
विवादार्थश्चतुष्पादः पश्चिमः पूर्वबाधकः ॥२
अत्र सत्ये स्थितो धर्मो व्यवहारस्तु साक्षिषु।
चरित्रं संग्रहे पुंसां राज्ञामाज्ञा तु शासनम् ॥३
राज्ञः स्वधर्मः स्वर्गाय प्रजा धर्मेण रक्षितुः।
अरक्षितुर्वा क्षेप्तुर्वा मिथ्यादण्डमतोऽन्यथा ॥४
दण्डो हि केवलो लोकं परं चेमं च रक्षति।
राजा पुत्रे च शत्रौ च यथादोषं समं धृतः ॥५

चारों वर्णों और चारों आश्रमों के लोगों का रक्षक होने के कारण राजधर्म नष्ट होते हुए सब धर्मों का प्रवर्त्तक होता है। धर्म, व्यवहार, चरित्र एवं राजशासन इन चारों में पूर्व तीनों की अपेक्षा अन्तिम अर्थात् राजशासन (राजाज्ञा) श्रेष्ठ है। धर्म-सत्य पर और व्यवहार साक्षियों पर प्रतिष्ठित है। चरित्र की स्थिति परम्परा से प्राप्त आचार पर और शासन की स्थिति न्याय संगत उचित दण्ड पर रहती है। धर्म पूर्वक प्रजापालन और अपने धर्म में रत रहना ही राजा को स्वर्ग का अधिकारी बनाता है और जो राजा प्रजापालन से विमुख एवं अत्याचार करने वाला होता है। वह नरक में पड़ता है। पुत्र हो या शत्रु—दोनों को समान रूप से देखते हुए राजा द्वारा दिया हुआ उचित दण्ड ही राजा के इहलोक-परलोक की रक्षा करता है।

अनुशासद्धि धर्मेण व्यवहारेण संस्थया।
न्यायेन च चतुर्थेन चतुरन्तां महीं जयेत् ॥६
संस्थया धर्मशास्त्रेण शास्त्रं वा व्यावहारिकम्।
यस्मिन्नर्थे विरुद्धयेत धर्मेणार्थं विनिर्णयेत् ॥७
शास्त्रं विप्रतिपद्येत धर्मन्यायेन केनचित्।
न्यायस्तत्र प्रमाणं स्यात्तत्र पाठो हि नश्यति ॥८
दृष्टदोषः स्वयंवादः स्वपक्षपरपक्षयोः।
अनुयोगार्जवं हेतुः शपथश्चार्थसाधकः ॥९
पूर्वोत्तरार्थव्याघाते साक्षिवक्तव्यकारणे।
चारहस्ताच्च निष्पाते प्रदेष्टव्यः पराजयः ॥१०

धर्म, व्यवहार, संस्था एवं न्याय के आश्रय से शासन चलाने वाला राजा चारों समुद्रों से युक्त पृथिवी को जीत लेता है। संस्था, धर्मशास्त्र, एवं व्यावहारिक शास्त्र में विरोध प्रतीत हो तो धर्मशास्त्र के अनुसार ही निर्णय करना चाहिये। व्यावहारिक शास्त्र या धर्मशास्त्र या धर्मशास्त्र के न्याय में विरोध उपस्थित होनेपर राजा का न्याय ही प्रमाण रहेगा, क्योंकि देश-काल के अनुसार उसका निर्णय सामयिक होता है। देखे हुए दोष,

अभियुक्त द्वारा वाद की स्वीकृति, वादी-प्रतिवादी के प्रश्नोत्तर, युक्तियों द्वारा अपने-अपने पक्ष का समर्थन एवं शपथ—यह पाँच बातें निर्णय में सहायक हो सकती हैं। वादी-प्रतिवादी के पहिले कहे और बाद में कहे वचनों में विरोधाभास हो अथवा साक्षियों पर मिथ्या कथन का दोष उपस्थित होता हो या उनमें से कोई राजपुरुषों के हाथ से निकल कर भाग जाय तो प्रतिवादी की हार मानी जा सकती है।

द्वितीयोऽध्यायः

विवाहधर्म एवं स्त्रीधनकल्प

विवाहपूर्वो व्यवहारः। कन्यादानं कन्यामलंकृत्य ब्राह्मो विवाहः। सहधर्मचर्या प्राजापत्यः। गोमिथुनादानादार्षः। अन्तर्वेद्यामृत्विजे दानाद्दैवः। मिथःसमवायाद्गान्धर्वः। शुल्कादानादासुरः। प्रसह्यदानाद्राक्षसः। सुप्तादानात्पैशाचः। पितृप्रमाणाश्चत्वारः पूर्वे धर्म्याः। मातृपितृप्रमाणाः शेषाः। तौ हि शुल्कहरौ दुहितुः। अन्यतराभावेऽन्यतरो वा। द्वितीयं शुल्कं स्त्री हरेत्। सर्वेषां प्रीत्यारोपणमप्रतिषिद्धम्। वृत्तिराबन्ध्यं वा स्त्रीधनम्। परद्विसाहस्रा स्थाप्या वृत्तिः। आबन्ध्यानियमः।

विवाह के पश्चात् गृहस्थ सम्बधी सब प्रकार के व्यवहारों का आरम्भ होता है। कन्या को आभूषणादि से सुसज्जित करके योग्य वर को दे देना 'ब्राह्म विवाह', वर-कन्या द्वारा स्वयं ही धर्माचरण की प्रतिज्ञा करके विवाह-बन्धन में बँध जाना 'प्राजापत्य विवाह' वर से दो गायें लेकर कन्या देना 'आर्ष विवाह', यज्ञवेदी के समक्ष ऋत्विज की उपस्थित में कन्या प्रदान करना 'दैव विवाह', माता-पिता की इच्छा के बिना स्वेच्छा से ही एक दूसरे को पति-पत्नी मान लेना 'गांधर्व विवाह', कन्या या कन्या के पिता को धन देकर कन्या प्राप्त करना 'आसुर-विवाह' कन्या का बलपूर्वक हरण कर लेना 'राक्षस विवाह' और सोती हुई कन्या को बलात् उठा ले जाना 'पैशाच विवाह' कहा जाता है।

इस प्रकार यह जो आठ प्रकार के विवाह कहे गये हैं, इनमें पूर्व चार प्रकार के विवाह पिता-माता द्वारा अनुमोदित होने के कारण धर्ममय कहे गये हैं। यदि शेष चार को भी पिता-माता का अनुमोदन मिल जाय तो वे भी धर्म-संगत समझे जा सकते हैं, क्योंकि उनमें वर से शुल्क पिता आदि लेते हैं। यदि पिता या माता में से कोई एक ही हो तो शुल्क भी उसी को मिल जाता है। पिता-माता को प्रदत्त शुल्क के अतिरिक्त कोई अन्य शुल्क कन्या ही ग्रहण कर सकती है। वर के बन्धु-बांधवादि यदि कन्या को कुछ उपहार या भेंट देना चाहें तो दे सकते हैं, जिस पर कन्या का ही अधिकार हो सकता है। कन्या को मिलने वाला स्त्री धन जीविका के लिए प्रदत्त पृथिवी अथवा नकद द्रव्य एवं अलंकार आदि के रूप में हो सकता है। किन्तु वह धन कितना हो, इसका कोई बन्धन नहीं है।

तदात्मपुत्रस्नुषाभर्मणि प्रवासाप्रतिविधाने च भार्याया भोक्तुमदोषः। प्रतिरोधकव्याधिदुर्भिक्षभयप्रतीकारे धर्मकार्ये च पत्युः। सम्भूय वा दम्पत्योर्मिथुनं प्रजातयोस्त्रिवर्षोपभुक्तं च धर्पिष्ठेषु विवाहेषु नानुयुञ्जीत। गान्धर्वासुरोपभुक्तं सवृद्धिकमुभयं दाप्येत। राक्षसपैशाचोपभुक्तं स्तेयं दद्यात्। इति विवाहधर्मः।

पति के प्रवासी होने पर जीविका का कोई साधन न हो और पुत्र-पुत्रवधु आदि के भरण-पोषणार्थ गृहस्वामिनी स्त्रीधन को व्यय करने लगे तो इसमें उसे कोई दोष नहीं दिया जा सकता। चोरों या दस्युओं द्वारा पकड़े जाने पर, रोग, दुर्भिक्ष या किसी अन्य प्रकार की विपत्ति के उपस्थित होने पर या किसी धर्मकार्य के लिये आवश्यक हो तो पति द्वारा स्त्रीधन के उपयोग किये जाने में भी कोई दोष नहीं होगा। यदि दो पुत्रों की उत्पत्ति के पश्चात् स्त्रीधन का व्यय हो जाय तो भी अनुचित नहीं है। यह नियम पूर्व चार प्रकार के विवाहों द्वारा विवाहित दम्पतियों के लिये ही मान्य है। पश्चात् की गांधर्व और आसुर विधियों से विवाहितों को स्त्रीधन व्यय करने पर उसे व्याज सहित लौटाने का

विधान है। किन्तु राक्षस और पैशाच विधि से विवाहितों द्वारा—स्त्री-धन के व्यय के लिये वही दण्ड निर्धारित है जो चोरी करने वाले को दिया जाना चाहिए। यह विवाह धर्म की व्याख्या हुई।

मृते भर्तरि धर्मकामा तदानीमेवास्थाप्याभरणं शुल्कशेषं च लभेत। लब्ध्वा वा विदमाना सवृद्धिकमुभयक दाप्येत। कुटुम्ब-कामा तु श्वशुरपतिदत्तं निवेशकाले लभेत। निवेशकालं हि दीर्घप्रवासे व्याख्यास्यामः। श्वशुरप्रातिलोम्येन वा निविष्टा श्वशुरपतिदत्तं जीयेत। ज्ञातिहस्तादभिमृष्टाया ज्ञातयो यथागृहीतं दद्युः। न्यायोपगतायाः प्रतिपत्ता स्त्रीधनं गोपायेत्। प्रतिदायं विन्दमाना जीयेत। धर्मकामा भुंजीत। पुत्रवती विन्दमाना स्त्रीधनं जीयेत। तत्तु स्त्रीधनं पुत्रा हरेयुः। पुत्रभरणार्थं वा विन्दमाना पुत्रार्थं स्फीतीकुर्यात्।

पति की मृत्यु होने पर धर्म की इच्छा वाली पत्नी उसके द्वारा संचित आभूणादि तथा पतिधन से प्राप्य आय की पूर्ण स्वामिनी होगी। दोनों प्रकार के स्त्रीधनों की स्वामिनी हुई स्त्री यदि किसी अन्य को पति बना कर उसके पास रहने लगे तो उसे उक्त धनों को व्याज सहित लौटना होगा। किन्तु पति के मरने पर सन्तान की इच्छा वाली स्त्री श्वसुर की अनुमति नियोगार्थ कुछ समय के लिए अन्य पति के साथ रह सकती और स्त्रीधनों को अपने साथ रख सकती है। चतुर्थ अध्याय में इस निवेश काल और दीर्घ प्रवास के विषय में कहेंगे। यदि श्वसुर की बिना आज्ञा के वह अन्य पति के पास जाकर रहे तो श्वसुर-प्रदत्त स्त्री-धन को नहीं ले जा सकेगी। श्वसुर की अनुज्ञा बिना उस विधवा को आक-र्षित करके यदि कोई पुरुष उससे विवाह कर ले तो वह पूर्व पतिपक्ष का सम्पूर्ण धन लौटा देगा। न्याययुक्त विवाह के हेतु प्राप्त हुए स्त्रीधन की रक्षा नया पति करेगा। द्वितीय पत्नी पति को मिलने वाले दाय भाग अर्थात् परिवार से बंटवारे में मिलने वाली सम्पत्ति को प्राप्त नहीं करेगी। किन्तु पति की मृत्यु के पश्चात् धर्मपालन पूर्वक घर में रही आवे तो

पति के दाय भाग की प्राप्ति और उपभोग की अधिकारिणी रहेगी। यदि कोई विधवा स्त्री पुत्र के होते हुए भी अन्य पति बना ले तो उसे भी स्त्रीधन से वञ्चित रहना होगा। यदि किसी विधवा को पुत्र के पालन-पोषणार्थ अन्य पति बनाना पड़े तो पुत्र के लिए उस धन की वृद्धि व्यवसाय या ब्याज से करनी होगी।

बहुपुरुषप्रजातानां पुत्राणां यथापितृदत्तं स्त्रीधनमवस्थापयेत्। कामकारणीयमपि स्त्रीधनं विन्दमाना पुत्रसंस्थं कुर्यात्। अपुत्रा पतिशयनं पालयन्ती गुरुसमीपे स्त्रीधनमाआयु क्षयाद्भुञ्जीत। आपदर्थं हि स्त्रीधनम्। ऊर्ध्वं दायादं गच्छेत्। जीवति भर्तरि मृतायाः पुत्रा दुहितरश्च स्त्रीधनं विभजरेन्। अपुत्राया दुहितरः। तदभावे भर्ता। शुल्कमन्वाधेयमन्यद्वा बन्धुभिर्दत्तं बान्धवा हरेयुः। इति स्त्रीधनकल्पः।

अनेक पुरुषों के संसर्ग से बनी हुई अनेक पुत्रों की माता को विभिन्न पुरुषों से प्राप्त स्त्रीधन की रक्षा उन-उन से उत्पन्न पुत्रों के लिए करनी चाहिए। स्त्री को जो धन स्वेच्छा पूर्वक व्यय करने लिए प्राप्त हुआ हो, उसे भी वह धन अन्य पति बना लेने पर पूर्व पति के पुत्रों को दे देना पड़ेगा। पुत्रहीना विधवा पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई अपने बड़ों की रक्षा में रहे तो वह जीवन पर्यन्त उस स्त्रीधन का उपभोग स्वयं करने की अधिकारणी होगी। क्योंकि स्त्रीधन विपत्ति काल के लिए रखा जाता है। उस स्त्री की मृत्यु के पश्चात् सब धन दायादों (उत्तराधिकारियों) को प्राप्त हो जायगा। पति के सामने ही पत्नी की मृत्यु हो जाय तो उसका स्त्रीधन उसके पुत्र-पुत्रियों में समान रूप से बाँट दिया जायगा। पुत्र के अभाव में पुत्रियाँ सब धन की अधिकारिणी होंगी। पुत्र पुत्री कोई न हो तो वह धन पति ले लेगा। किन्तु मृत स्त्री के पितृगृह से प्राप्त एवं बांधवों से मिले उपहार रूप धन का अधिकार उसके भाइयों को होगा। यह स्त्रीधन विषयक व्याख्या हुई।

वर्षाण्यष्टावप्रजायमानामपुत्रां वन्ध्यां चाकांक्षेत दश बिन्दुम्। द्वादश कन्याप्रसविनीम्। ततः पुत्रार्थी द्वितीयां विन्देत। तस्यातिक्रमे शुल्कं स्त्रीधनमर्धं चाधिवेदनिकं दद्यात्। चतुर्विंशतिपणपरं च दण्डम्। शुल्कस्त्रीधनमशुल्कस्त्रीधनायास्तत्प्रमाणमाधिवेदनिकमनुरूपां च वृत्तिं दत्त्वा इह्वीरपि विन्देत। पुत्रार्था हि स्त्रियः। तीर्थसमवाये चासां यथाविवाहं पूर्वोढां जीवत्पुत्रां वा पूर्वं गच्छेत्।

जो स्त्री वन्ध्या हो, उसका पुरुष आठ वर्ष तक सन्तान होने की प्रतीक्षा करे। यदि वह मृत पुत्रों का प्रसव करती हो तो दस वर्ष तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि कन्या ही उत्पन्न करती हो तो बारह वर्ष तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् चाहे तो पुत्र की कामना से द्वितीय विवाह कर ले। यदि उक्त निश्चित अवधि से पूर्व ही विवाह कर ले तो उसे उस पूर्व पत्नी को उसके विवाह में प्राप्त स्त्रीधन और आधिवेदनिक धन अर्थात् क्षतिपूर्ति हेतु धन देना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त चौबीस पण राजदण्ड के रूप में राजा को देय होगा। इस प्रकार पति पहिले ब्याही हुई स्त्रियों को उनके विवाह में मिला स्त्रीधन एवं आधिवेदनिक धन आदि देकर छोड़ सकेगा और विवाह करने का अधिकारी होगा। क्योंकि स्त्री का होना पुत्र जन्म के लिये ही सार्थक है। जब उनके पुत्र ही न हो तो अन्य विवाह कर लेना अन्याय नहीं हो सकता। यदि अनेक स्त्रियों का स्वामी है और एक समय में ही कई स्त्रियाँ ऋतुमती हो जांय तो संगति की प्राथमिकता उच्च श्रेणी की स्त्री को देनी चाहिये। यदि सभी समान हों तो सब से पहिले विवाही हुई को और यदि उनमें कोई जीवित पुत्र वाली हो तो उसी को प्राथमिकता दे।

तीर्थगूहनागमने षण्णवतिर्दण्डः। पुत्रवतीं धर्मकामां वन्ध्यां बिन्दुं नीरजस्कां वा नाकामामुपेयात् न चाकामः पुरुषः। कुष्ठिनीमुन्मत्तां वा न गच्छेत्। स्त्री तु पुत्रार्थमेवंभूतं वोपगच्छेत्।

नीचत्वं परदेशं वा प्रस्थितो राजकिल्बिषी।
प्राणाभिहन्ता पतितस्त्याज्यः क्लीबोऽपि वा पतिः॥

यदि पति ऋतुकाल में स्त्री के पास न जाय तो वह छियानवे पण के अर्थदण्ड का भागी होगा। समागम की अनिच्छा वाली पुत्रवती, धर्मकाम्या, मृतवत्सा एवं ऋतु से निवृत्त हुई स्त्री के पास पुरुष कभी न जाय। पुरुष में संगमेच्छा न हो तो संगम की अभिलाषा वाली स्त्री के समीप भी नहीं जाना चाहिए। कुष्टी या उन्मादिनी स्त्री से समागम नहीं करे। पुत्र प्राप्ति की इच्छा वाली स्त्री यदि चाहे तो कुष्टी या उन्मत्त पुरुष के पास जाने में स्वतन्त्र है। नीच आचरण वाले, प्रवासी, राजद्रोही, प्राणघाती, जाति और धर्म से गिरे हुए एवं नपुंसक पति को स्त्री त्याग सकती है।

तृतीयोऽध्यायः

वैवाहिक शुश्रूषा, धर्म, पारुष्य आदि का कथन

द्वादशवर्षा स्त्री प्राप्तव्यवहारा भवति। षोडशवर्षः पुमान्। अत ऊर्ध्वमशुश्रूषायां द्वादशपणः स्त्रिया दण्डः पुंसो द्विगुणः। भर्मण्यायामनिर्दिष्टकालायां ग्रासाच्छादनं वाधिकं यथापुरुषपरिवापं सविशेषं दद्यात। निर्दिष्टकालायां तदेव संख्याय बन्धं च दद्यात्। शुल्कस्त्रीधनाधिवेदनिकानामनादाने। च श्वशुरकुल प्रविष्टायां विभक्तायां वा नाभियोज्यः पतिः। इति भर्म।

बारह वर्ष की आयु होने पर स्त्री प्राप्त व्यवहारा तथा सोलह वर्ष की आयु का पुरुष प्राप्तव्यवहार कहा जाता है। इस आयु के उपरान्त राजनियम तोड़ने वाले को, स्त्री हो तो बारह पण और पुरुष हो तो चौबीस पण का दण्ड दे। यह वैवाहिक शुश्रूणा का वर्णन हुआ। यदि स्त्री के भरण-पोषण की सीमा अनिश्चित हो तो उस स्त्री को भोजन-वस्त्र देना चाहिये। या पारिवारिक व्यय को यथावत् रखते हुए कुछ अधिक भी दिया जा सकता है। यदि भरण-व्यय निश्चित हो

चुका हो तो उसी के अनुसार देता हुआ उस विषयक प्रतिज्ञापत्र भी लिखे। यदि स्त्री स्त्रीधन और आधिवेदनिबन्धन आदि न लेना चाहे तो भी उसे भोजन-वस्त्रादि मिलना ही चाहिए। परस्पर झंझट होने पर भी स्त्री श्वसुर के घर में ही रहे अथवा कहीं पृथक् ही रहने लगे तो भी वह पति के विरुद्ध अभियोग नहीं चला सकती। यह भर्म अर्थात् स्त्री के भरण पोषण के व्यय की व्याख्या हुई।

नग्ने विनग्ने न्यङ्गे अपितृके अमातृके इत्यनिर्देशेन विनयग्राहणम्। वेणुदलरज्जुहस्तानामन्यतमेन वा पृष्ठे त्रिराघातः। तस्यातिक्रमे वाग्दण्डपारुष्यदण्डाभ्यामर्धदण्डाः। तदेव स्त्रिया भर्तरि प्रसिद्धमदोषाया ईर्ष्याया बाह्यविसारेषु द्वारेषु अत्ययो यथानिर्दिष्टः। इति पारुष्यम्।

हे नग्ने! हे विनग्ने! हे न्यंगे! हे पितृहीने! हे मातृहीने! आदि क्रोधयुक्त वचनों से स्त्री को विनय की सीख नहीं दी जा सकती। यदि समझाने से भी न समझे तो उस पर बेंत, रस्सी या हाथ से उसकी पीठ पर तीन बार प्रहार किये जा सकते हैं। वचन-प्रयोग या प्रहार के नियमों को न मान कर कर्कशता का व्यवहार करे तो वाक्पारुष्य एवं दण्डपारुष्य प्रकरणोक्त दण्ड का आधा दण्ड दे। यदि स्वामी परनारी-विहार में सलग्न हो और दोषरहित पत्नी पति के साथ ईर्ष्या से उसी के समान व्यवहार करने लगे तो भी उक्त नियम ही मान्य होगा। यदि स्त्री उपर्युक्त नियम को न माने तो उस पर आधा दण्ड न करके पूरा दण्ड किया जाना चाहिये। यह पारुष्य की व्याख्या हुई।

भर्तारं द्विषती स्त्री सप्तार्तवान्यमण्डयमाना तदानीमेव स्थाप्याभरणं निधाय भर्तारमन्यया सह शयानमनुशयीत। भिक्षुकान्वाधिज्ञातिकुलानाञ्चमन्यतमे वा भर्ता द्विषन् स्त्रियमेकामनुशयीत। दृष्टलिङ्गे मैथुनापहारे सवर्णापसर्पोपगमे वा मिथ्यावादी द्वादशपणं दद्यात्। अमोक्ष्या भर्तुरकामस्य द्विषती भार्या भार्यायाश्च भर्ता। परस्परं द्वेषान्मोक्षः। स्त्रीविप्रकाराद्वा पुरुषश्चे-

न्मोक्षमिच्छेमिच्छेद्यथागृहीतमस्यै दद्यात्। पुरुषविप्रकाराद्वा स्त्री चेन्मोक्षमिच्छेत्, नास्यै यथागृहीतं दद्यात्। अमोक्षो धर्मविवाहानाम्। इति द्वेषः।

परनारी के पास जाने वाले पति से द्वेष के कारण स्त्री सात ऋतु समयों तक भी उसके पास संगमार्थ न जाय तो वह अपने सब अलंकारादि धन को पति के पास रख कर पश्चात्ताप करती हुई उसके समीप जाय। यदि पति उसे न चाहता हो तो वह उसे संन्यासिनी बनने या किसी स्त्रीधन की रक्षा करने वाले पुरुष अथवा बांधवों के साथ रहने की छूट दे दे। यदि पुरुष परस्त्री से अथवा किसी सवर्णा से समागम करता पाया जाय और तब भी उसे झुठलावे तो उस पर बारह पण का दण्ड करे। पति से द्वेष करने वाली स्त्री को भी पति न त्यागे तो पत्नी उसे त्यागने के लिये विवश नहीं कर सकेगी। इसी प्रकार पति अपनी दोष-रहित पत्नी का त्याग करना चाहे और पत्नी उसका त्याग न करना चाहे तो पति वैसा नहीं कर सकता। यदि दोनों ही परस्पर में द्वेष करते हों और पृथक् होना चाहते हों तो हो सकते हैं। यदि पति निर्दोष पत्नी को छोड़ना चाहता हो तो सम्पूर्ण स्त्रीधन उस स्त्री को देना होगा। यदि स्त्री अपने पति को छोड़े तो वह स्त्रीधन का अंश भी नहीं ले सकती। धर्मयुक्त विवाह का विच्छेद नहीं किया जा सकता। यह द्वेष की व्याख्या पूर्ण हुई।

प्रतिषिद्धा स्त्री दर्पमद्यक्रीडायां त्रिपणं दण्डं दद्यात्। दिवा स्त्रीप्रेक्षाविहारगमने षट्पणो दण्डः। पुरुषप्रेक्षाविहारगमने द्वादशपणः। रात्रौ द्विगुणः। सुप्तमत्तप्रव्रजने भर्तुरदाने च द्वारस्य द्वादशपणः। रात्रौ निष्कासने द्विगुणः। स्त्रीपुंसयोर्मैथुनार्थेऽनङ्गविचेष्टायां रहोऽश्लीलसंभाषायां वा चतुर्विंशतिपणः स्त्रिया दण्डः। पुंसो द्विगुणः।

पति के रोकने पर भी किसी के साथ सुरापान करती हुई स्त्री उच्छृंखल क्रीड़ा करे तो वह तीन पण का दंड पावेगी। यदि पति

के रोकने पर भी दिन में स्त्रियों का अभिनय देखने या उद्यानादि में भ्रमण करने चली जाय तो छः पण और पुरुषों का अभिनय या विहारादि देखने जाय तो बारह पण से दंडित होगी। यदि रात्रिकाल में ऐसा करे तो दुगने दंड की अधिकारिणी है। यदि सोते हुए या सुरा की मत्त दशा में अचेत् पुरुष को छोड़ कर स्त्री से घर से कहीं चली जाय अथवा पति के द्वार पर खड़े रहने पर भी द्वार न खोले तो उस पर बारह पण का दंड करे। यदि रात्रिकाल में पति को मार कर घर से बाहर निकाल दे तो उस पर चौबीस पण और किसी पुरुष से अवैध इच्छा से अश्लील संभाषण करती हुई मिले तो उस स्त्री पर चौबीस पण और जिससे बात कर रही हो उस पुरुष पर अढ़तालीस पण का दण्ड करना चाहिए।

केशनीवीदन्तनखावलम्बनेषु पूर्वः साहसदण्डः । पुंसो द्विगुणः। शंकितस्थाने संभाषायां च पणस्थाने शिफादण्डः। स्त्रीणां ग्राममध्ये चण्डालः पक्षान्तरे पंच शिफा दद्यात्। पणिकं वा प्रहारं मोक्षयेत्। इत्यतिचारः। प्रतिषिद्धयोः स्त्रीपुंसोरन्योन्योपकारे क्षुद्रकद्रव्याणां द्वादशपणो दण्डः। स्थूलकद्रव्याणां चतुर्विशतिपणः, हिरण्यसुवर्णयोश्चतुष्पंचाशत्पणः स्त्रिया दण्डः, पुंसो द्विगुणः। त एवागम्ययोरर्धदण्डाः। तथा प्रतिषिद्धपुरुषव्यवहारेषु च। इति प्रतिषेधः।

राजद्विष्टातिचाराभ्यामात्मापक्रमणेन च।
स्त्रीधनानीतशुल्कानामस्वाम्यं जायते स्त्रियः॥

केश और नीवी पकड़ने, दन्तक्षत और नखक्षत बनाने पर स्त्री को प्रथम साहस और पुरुष को मध्यम साहस का अर्थ दंड दे। यदि कोई स्त्री-पुरुष किसी संदेहास्पद स्थल में वार्तालाप करते हुए मिलें तो उन्हें कोड़ों का दण्ड देना उचित है। यह दंड चाण्डाल द्वारा नगर के बीच में जनता के समक्ष स्त्री के दोनों पार्श्वों में पाँच-पाँच कोड़े मार कर दिया जायगा। यदि प्रत्येक कोड़े के बदले एक-एक पड़ अदा करे

तो वह स्त्री कोड़े के दंड से बच सकेगी। यह अतिचार की व्याख्या हुई। यदि रोके जाने पर भी कोई स्त्री-पुरुष माल्य-गंध आदि क्षुद्र द्रव्यों का परस्पर लेन-देन करें तो स्त्री को बारह पण, वस्त्रादि स्थूल पदार्थों का आदान-प्रदान करें तो चौवीस पण और सोना-चाँदी नकदी आदि के लेन-देन पर चौवन पण का दंड दे। पुरुष इससे दुगने दंड का भागी होगा। यदि अगम्य स्त्री-पुरुष (बहिन-भाई या शिष्य गुरुपत्नी आदि) इस दोष में लिप्त पाये जांय तो आधा दण्ड पायेंगे। उपर्युक्त प्रतिषिद्ध व्यवहार वाली दण्ड व्यवस्था पुरुषों पर भी वैध होगी। यह प्रतिषेध की व्याख्या पूर्ण हुई। राजद्रोह, अतिचार, पतिगृह से चला जाना आदि दोष में स्त्रियों को स्त्रीवन तथा दहेज आदि में पितृगृह से प्राप्त धन पर कोई अधिकार न होगा ॥१॥

चतुर्थोऽध्यायः

विवाहसंयुक्त में निष्पतन पथ्यनुसरण का वर्णन

पतिकुलान्निष्पतितायाः स्त्रियाः षट्पणो दण्डोऽन्यत्र विप्रकारात्। प्रतिषिद्धायां द्वादशपणः। प्रतिवेशगृहातिगायाः षट्पणः। प्रातिवेशकभिक्षुकवैदेहकानामवकाशभिक्षापण्यादाने द्वादशपणो दण्डः। प्रतिषिद्धानां पूर्वः साहसदण्डः। परगृहातिगायाश्चतुर्विंशतिपणः। परभार्यावकाशदाने शत्यो दण्डोऽन्यत्रापद्भ्यः। वारणाज्ञानयोर्निर्दोषः। पतिविप्रकारात् पतिज्ञातिसुखावस्थग्रामिकान्वाधिभिक्षुकीज्ञातिकुलानामन्यतमं पुरुषं गन्तुमदोष इत्याचार्याः।

व्यवहारावस्था को प्राप्त स्त्री यदि पतिगृह से चली जाय तो छः पण का दंड भुगतेगी। यदि पति के किसी दोष से अथवा अपमानित होकर निकले तो वह निर्दोषी मानी जायगी। यदि रोके जाने पर भी न रुके तो बारह पण और किसी पड़ौसी के घर में जा पहुंचे तो छः

पण से दंडित होगी। यदि किसी पड़ोसी, भिक्षुक या व्यवसायी को अपने घर में ठहरावे या भिक्षा दे अथवा कुछ क्रय करे तो बारह पण और किसी प्रतिषिद्ध व्यक्ति के साथ उक्त व्यवहार करे तो प्रथम साहस दंड की भागी होगी। यदि स्त्री घर से कहीं दूर चली जाय तो उसे चौबीस पण का और कोई पुरुष परस्त्री को अपने यहां ठहरावे तो उसे सौ पण का दण्ड दिया जाय। यदि विपत्ति के समय रक्षार्थ ऐसा करे तो कोई दोष नहीं है। यदि गृहस्वामी की इच्छा के बिना ही कोई स्त्री घर में प्रविष्ट हो जाय तो गृहस्वामी निर्दोष समझा जायगा। अन्यान्य आचार्यों के मत में यदि कोई स्त्री अपने पति द्वारा तिरस्कृत होकर पति के बांधव, सुख-सम्पन्न पुरुष, ग्रामाधिपति, स्त्रीधनरक्षक, भिक्षुकी या अपने जाति-कुल के किसी अन्य पुरुष के घर में जाकर आश्रय ले तो वह निर्दोष होगी।

सपुरुषं वा ज्ञातिकुलम्। कुतो हि साध्वीजनस्य छलं सुखमेतदववाद्धुम्। इति कौटिल्यः। प्रेतव्याधिव्यसनगर्भनिमित्तमप्रतिषिद्धमेव ज्ञातिकुलगमनम्। तन्निमित्तं वारयतो द्वादशपणो दण्डः। तत्रापि गूहमाना स्त्रीधनं जायेत। ज्ञातयो वा छादयन्तः शुल्कशेषम्। इति निष्पतनम्। पतिकुलान्निष्पत्य ग्रामान्तरगमने द्वादशपणो दण्डः स्थाप्याभरणलोपश्च। गम्येन वा पुंसा सह प्रस्थाने चतुर्विंशतिपणः। सर्वधर्मलोपश्चान्यत्र भर्मदानतीर्थगमनाभ्यां पुंसः पूर्वः साहसदण्डः। तुल्यश्रेयसः पापीयसो मध्यमः। बन्धुरदण्ड्यः। प्रतिषेधेऽर्धदण्डः।

आचार्य कौटिल्य के मतानुसार पति के द्वारा तिरस्कृत हुई स्त्री अपने भाई आदि के घर में कोई अन्य पुरुष रहता हो तब भी रह सकती है। क्योंकि स्त्री साध्वी है तो उसके द्वारा छल की संभावना नहीं होती, यदि छल करे तो भी उसका पता लगे बिना नहीं रह सकता। इसलिए मृत्यु रोग, संकट एवं प्रसवकाल की उपस्थिति के समय अपने बांधवों के घर जाती हुई स्त्री को जो रोके उस पर बारह

पण दंड किया जाय। यदि कोई स्त्री छलपूर्वक किसी बांधव के घर में छिपी रहे तो वह स्त्रीधन से वंचित हो जायगी। यदि बाँधवगण ही उसे छल से छिपा रखें तो उन्हें वैवाहिक धन नहीं मिलेगा। यह विवाहिता के घर से निकलने के विषय में कहा गया। पति की आज्ञा के बिना अन्य ग्राम में जाने वाली स्त्री बारह पण से दंडित और पति के पास सुरक्षित अलंकारादि से वंचित होगी। किसी युवक के साथ अन्य ग्राम को जाने वाली स्त्री चौबीस पण से दण्डित होती हुई, पति के साथ धार्मिक कर्मों के करने के अधिकार से वंचित होगी। यदि कोई स्त्री अपने अन्य ग्राम में स्थित पति के पास भरण-पोषण आदि के लिए जाय तो कोई दोष नहीं है। किसी महिला को कोई सजातीय पुरुष भगा ले जाय तो पूर्व साहस और स्त्री से नीची जाति का ले जाने वाला पति का भाई अदण्डनीय माना जायगा, किन्तु वह भी पति के निषेध करने पर अपने साथ ले जाय तो आधा दण्ड भोगेगा।

पथि व्यन्तरे गूढदेशाभिगमने मैथुनार्थेन अंकितप्रतिषिद्धाभ्यां वा पथ्यनुसारेण संग्रहणं विद्यात्। तालावचरचारणमत्स्यबन्धकलुब्धकगोपालकशौण्डिकानामन्येषां च प्रसृष्टस्त्रीकाणां पथ्यनुसरणमदोषः। प्रतिषिद्धे वा नयतः पुंसः स्त्रिया वा गच्छन्त्यास्त एवार्धदण्डाः। इति पथ्यनुसरणम्।

यदि कोई स्त्री सहवास की इच्छा से वार्तालाप करती हुई मार्ग में या मार्ग से पृथक् किसी दूरस्थ स्थान में चली जाय अथवा पति द्वारा प्रतिषिद्ध पुरुष के साथ जाय उस स्त्री तथा उसके साथी पुरुष पर संग्रहण विषयक कन्याप्रकर्म के अन्तर्गत बताये हुए नियम से दण्ड किया जायगा। नट, चारण मत्स्यबन्धक, लुब्धक, गोपालक, सुरा-विक्रेता आदि के साथ यदि उनकी स्त्री हो तो किसी अन्य स्त्री का उनके साथ मार्ग में चलना अपराध नहीं होगा। निषेध करने पर भी कोई स्त्री उनके साथ जाय या वे साथ ले जाँय अथवा उनमें से ही किसी की स्त्री किसी अन्य पुरुष के साथ चली जाय तो स्त्री-पुरुष दोनों ही पूर्व वर्णित

दण्ड से आधे के भागी होंगे। यह मार्ग में स्त्री के अन्य पुरुष के साथ जाने की व्याख्या पूर्ण हुई।

ह्रस्वप्रवासिनां शूद्रवैश्यक्षत्रियब्राह्मणानां भार्याः संवत्सरोत्तरं कालमाकांक्षेरन्। अप्रजाताः संवत्सराधिकं, प्रजाताः प्रतिविहिता द्विगुणं कालम्। अप्रतिविहिताः सुखावस्था बिभृयुः। परं चत्वारि वर्षाण्यष्टौ वा ज्ञातयः। ततो यथादत्तमादाय प्रमुंचेयुः। ब्राह्मणमधीयानं दशवर्षाण्यप्रजाता, द्वादश प्रजाता। राजपुरुषमाआयुः क्षयादाकांक्षेत। सवर्णतश्च प्रजाता नापवादं लभेत। कुटुम्बर्द्धिलोपे वा सुखावस्थैर्विमुक्ता यथेष्टं विन्देत जीवितार्थमापद्गता वा।

कुछ समय के लिए देशान्तर गमन वाले शुद्र की पत्नी एक वर्ष, वैश्य की दो वर्ष, क्षत्रिय की तीन वर्ष एवं ब्राह्मण की चार वर्ष तक अपने पति के घर लौट कर आने की प्रतीक्षा करे। सन्तान-हीन एक वर्ष और, तथा सन्तानवती दो वर्ष अधिक प्रतीक्षा करे। यदि पति द्वारा उनके खान-पान की समुचित व्यवस्था कर रखी हो तो दुगने समय तक प्रतीक्षा करनी उचित है। यदि वह कोई व्यवस्था न क· गया हो तो पति के सुख-सम्पन्न बन्धु उनका चार या आठ वर्ष तक भरण-पोषण करें। तत्पश्चात् स्त्रीधन से अपना व्यय वसूल करके उन्हें स्वेच्छापूर्वक छोड़ दे। यदि कोई ब्राह्मण पति विद्याध्ययन के लिए परदेश चला जाय तो उसकी पुत्रहीना स्त्री दस वर्ष और पुत्रवती स्त्री बारह वर्ष तक उसके लौटने की प्रतीक्षा करे। राज-कार्य से गये हुए पुरुष की पत्नी को जीवन-पर्यन्त उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। इस मध्य में यदि पति के सजातीय पुरुष से वह कोई सन्तान उत्पन्न करे तो निन्दा के योग्य नहीं होगी, कुटुम्ब के धन-नाश अथवा पति के बांधवों के तिरस्कार से पीड़ित हुई स्त्री आजीविका के लिए अन्य पति बना सकेगी।

धर्मविवाहात्कुमारी परिग्रहीतारमनाख्याय प्रोषितमश्रूयमाणं सप्त तीर्थान्याकांक्षेत । संवत्सरं श्रूयमाणम् । आख्याय प्रोषितमश्रूयमाणं पंच तीर्थान्याकांक्षेत । दश श्रूयमाणम् । एकदेशदत्तशुल्कं त्रीणि तीर्थान्यश्रूयमाणम्, श्रूयमाणं सप्त तीर्थाण्याकांक्षेत । दत्तशुल्कं पंच तीर्थान्यश्रूयमाणम् । दश श्रूयमाणम् । ततः परं धर्मस्थैर्विसृष्टं यथेष्टं विन्देत । तीर्थोपरोधो हि धर्मवध इति कौटिल्यः । दीर्घप्रवासिनः प्रव्रजितस्य प्रेतस्य वा भार्या सप्त तीर्थान्याकांक्षेत । संवत्सरं प्रजाता । ततः पतिसोदर्यं गच्छेत् । बहुषु प्रत्यासन्नं धार्मिकं भर्मसमर्थं कनिष्ठमभार्यं वा । तदभावेऽप्यसोदर्यं सपिण्डं कुल्यं वा । आसन्नमेतेषामेष एव क्रमः ।

एतानुत्क्रम्य दायादान् वेदने जातकर्मणि ।
जारस्त्रीदातृवेत्तारः संप्राप्ताः संग्रहात्ययम् ॥

धर्मानुसार विवाहिता का पति बिना कहे कहीं चला जाय तो उस अज्ञात स्थान पर गये हुए की सात ऋतुकाल पर्यन्त प्रतीक्षा करे । यदि उसके प्रवास का स्थान ज्ञात हो तो एक वर्ष तक और कह कर गये हुए पति के समाचार न मिलने पर पाँच मास तक प्रतीक्षा करे । यदि उसका समाचार मिल जाय तो दस मास तक करे । यदि व्यय के लिए धन देकर गया हो और फिर कोई खबर न ले तो तीन मास तक और समाचार मिल जाय तो सात मास तक प्रतीक्षा करे । पूरा व्यय देकर गये पति का कोई समाचार न मिले तो पाँच मास और समाचार मिल जाय तो दस मास तक मार्ग देखे । यदि उक्त समय निकल जाय तो धर्मस्थ की आज्ञा से अन्य पति बनाने में स्वतन्त्र होगी । आचार्य कौटिल्य के मत में ऋतुकाल का उल्लंघन धर्मवध के समान अपराध है । यदि पति दीर्घकाल के लिए प्रवास में हो, परिव्राजक हो गया हो, मर गया हो तो पुत्रहीना भार्या को सात मास तक और पुत्रवती को

एक वर्ष तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। तत्पश्चात् धार्मिक एवं पोषण समर्थ, पति के छोटे सहोदर बन्धु के साथ प्रणय-बन्धन कर ले। या पति के सबसे छोटे पत्नी-विहीन भाई से पुनर्विवाह करे। सहोदर न हो तो सपिण्ड अथवा कुल के किसी पुरुष को ही पति बना ले। किन्तु वह पति का निकट सम्बन्धी हो। यही क्रम उचित माना गया है। पति के बन्धु या कुटुम्ब के पुरुष के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से स्त्री द्वारा विवाह कर लेने पर अथवा किसी जार पुरुष से सम्बन्ध स्थापित कर लेने पर वे स्त्री-पुरुष दोनों ही स्त्रीसंग्रह में वर्णित दण्ड के भागी होंगे।

पञ्चमोऽध्यायः

दायविभाग, दायक्रम

अनीश्वराः पितृमन्तः स्थितपितृमातृकाः पुत्राः। तेषामूर्ध्वं पितृतो दायविभागः पितृद्रव्याणाम्। स्वयमर्जितमविभाज्यम्। अन्यत्र पितृद्रव्यादुत्थितेभ्यः। पितृद्रव्यादविभक्तोपगतानां पुत्राः पौत्रा वा आचतुर्थादित्यंशभाजः। तावदविच्छिन्नः पिण्डो भवति। विच्छिन्नपिण्डाः सर्वं समं विभजेरन्। अपितृद्रव्या विभक्तपितृद्रव्या वा सहजीवन्तः पुनर्विभजेरन्। यतश्चोत्तिष्ठेत स द्व्यंशं लभेत।

माता-पिता के मरणोपरान्त पितामह आदि की परम्परागत सम्पत्ति एवं पिता के धन को पुत्र परस्पर में विभाजित कर लें। पिता द्वारा स्वयं अर्जित धन अविभाज्य माना गया है। यदि पिता के धन के द्वारा सम्पत्ति अर्जित हुई हो तो वह बाँटी जा सकती है। अपने पिता के द्रव्य को बाँटे विना ही मृत व्यक्तियों के पुत्र-पौत्रादि के रूप में चार पीढ़ी तक के व्यक्ति अपना भाग ले सकते हैं, क्योंकि चार पीढ़ियों तक पिण्ड अविच्छिन्न रहता है। चौथी पीढ़ी के पश्चात् पिण्ड के विच्छिन्न हो जाने पर जो व्यक्ति जीवित हों, वे सम्पूर्ण सम्पत्ति का समान विभाजन करके अपना भाग लेंगे। जिनके पिता का द्रव्य न हो या जिन्होंने पिता की

सम्पत्ति का बटवारा कर लिया हो अथवा जो एक रसोई में भोजन करने वाले हों, वे चाहें तो सम्पत्ति को पुनः बांट सकते हैं। किन्तु जिसने धन के बढ़ाने का प्रयत्न किया हो वह उस धन का आधा भाग पायेगा तथा शेष आधे भाग में अन्यान्य सभी भागीदार होंगे।

द्रव्यमपुत्रस्य सोदर्या भ्रातरः सहजीविनो वा हरेयुः कन्याश्च। रिक्थं पुत्रवतः पुत्रा दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जायाः तदभावे पिता धरमाणः। पित्रभावे भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च। अपितृका बहवोऽपि च भ्रातरो भ्रातृपुत्राश्च पितुरेकमंशं हरेयुः। सोदर्याणामनेकपितृकाणां पितृतो दायविभागः। पितृभ्रातृपुत्राणां पूर्व विद्यमाने नापरमवलम्बते, ज्येष्ठे च कनिष्ठमर्थग्राहिणम्।

पुत्रहीन की मृत्यु के पश्चात् उसके धन के अधिकारी सहोदर बन्धु होंगे। यदि उसकी पुत्रियाँ हैं तो वे भी विवाह आदि के रूप में धन प्राप्ति की अधिकारिणी होंगी। पुत्रवान पिता के मरने पर पुत्र ही उसके धन का स्वामी होगा। पुत्र के अभाव में किसी धर्मानुकूल विवाह-विधि से विवाहिता पुत्रियों का अधिकार हो सकता है। पुत्रियाँ न हों तो मृतक का पिता, पिता न हो तो भाई और भाई भी न हो तो भाई के पुत्र उस धन के अधिकारी होंगे। मृत पिता के अनेक पुत्र, सहोदर हों या विमाता से उत्पन्न हों अथवा भाइयों के पितृहीन अनेक पुत्र, सहोदर या असहोदर तो वे उस धन के समान अधिकारी माने जाँयगे। अनेक सहोदर भाइयों में यदि भिन्न पिता से भी उत्पन्न हों तो सम्पत्ति का विभाजन करते समय उनके पिता की सम्पत्ति को ध्यान में रखना होगा अर्थात् उनमें जिसके पिता की जो सम्पत्ति होगी, वह उसी को मिलेगी। यदि किसी के पिता, भाई या भतीजे मौजूद हों और उसे कुटुम्ब के पालनार्थ ऋण लेना पड़े तो ऋण देने वाला लेने वाले के जीवित रहते हुए अन्य व्यक्तियों को ऋण वसूल करने के लिए विवश नहीं कर सकता। पुत्रों में भी यदि ज्येष्ठ पुत्र जीवित है तो छोटे पुत्र से ऋण वसूल नहीं किया जा सकता।

जीवद्विभागे पिता नैकं विशेषयेत् । न चैकमकारणान्निर्विभज्येत । पितुरसत्यर्थे ज्येष्ठाः कनिष्ठाननुगृह्णीयुः । अन्यत्र मिथ्यावृत्तेभ्यः । प्राप्तव्यवहाराणां विभागः । अप्राप्तव्यवहाराणां देयविशुद्धं मातृबन्धुषु ग्रामवृद्धेषु वा स्थापयेयुर्व्यवहारप्रापणात् । प्रोषितस्य वा । सन्निविष्टमसन्निविष्टेभ्यो नवेशनिकं दद्युः । कन्याभ्यश्च प्रादानिकम्

यदि पिता अपने जीवन काल में ही अपना धन बाँटने की इच्छा करे तो वह किसी पुत्र को अधिक या किसी को कम नहीं देगा । वह अकारण ही किसी पुत्र को धन-भाग से वंचित नहीं करेगा । पिता के पास धन न होने की दशा में बड़ा भाई छोटे भाई का कृपापूर्वक पालन करे, किन्तु बड़ा भाई बुरे व्यवहार वाले छोटे भाई का पोषण न करे तो उसे विवश नहीं किया जा सकता । प्राप्त व्यवहार अर्थात् सोलह वर्ष की आयु वाले पुत्रों द्वारा पितृधन के बाँटने की माँग की जा सकती है । अवयस्क पुत्र हों तो ऋण आदि के चुकाने पर शेष बचे हुए धन को उनके मामा आदि या ग्राम के वृद्ध पुरुषों में से किसी के पास जमा कर दे, जिससे कि वयस्क होने पर उन्हें मिल सकें । विदेश गये पुत्र का धन भी इसी प्रकार जमा किया जाना चाहिए । विवाहित भाइयों के विवाहादि में जितने धन का व्यय हुआ हो, उतना ही धन अविवाहित भाइयों के विवाहादि में व्यय के लिए दिया जाय । कन्या के विवाहार्थ भी उचित धन देना व्यावहारिक होगा ।

ऋणरिक्थयोः समो विभागः । 'उदपात्राण्यपि विभजेरन् निष्किंचनाः' इत्याचार्याः । छलमेतदिति कौटिल्यः । सतोऽर्थस्य विभागो नासतः । एतावानर्थः सामान्यस्तस्यैतावान् प्रत्यंश इत्यनुभाष्य ब्रुवन् साक्षिषु विभागं कारयेत् । दुर्विभक्तमन्योन्यापहृतमन्तर्हितमविज्ञातोत्पन्नं वा पुनर्विभजेरन् । अदायादकं राजा हरेत् । स्त्रीवृत्तिप्रेतकार्यवर्जमन्यत्र श्रोत्रियद्रव्यात् । तत् त्रैवि-

द्यंभ्यः प्रयच्छेत् । पतितः पतिताज्जातः क्लीबश्चानंशः । जडोन्मत्तान्धकुष्ठिनश्च । सति भार्यार्थे तेषामपत्यमतद्विधं भागं हरेत् । ग्रासाच्छादनमितरे पतितवर्जाः ।

तेषां च कृतदाराणां लुप्ते प्रजनने सति ।
सृजेयुर्बान्धवाः पुत्रांस्तेषामंशान् प्रकल्पयेत् ॥

पिता द्वारा लिया हुआ ऋण और धन सब पुत्रों में समान रूप से विभाजित होगा। प्राचीन आचार्य धनहीन लोगों को जलपात्र को भी बाँट लेने का आदेश देते हैं, किन्तु आचार्य कौटिल्य इस विचार को विडम्बना मानते हैं। क्योंकि किसी वस्तु के होने पर ही तो उसका विभाजन होगा, किन्तु कुछ होगा ही नहीं तो क्या बँटेगा ? इसलिए साक्षियों के समक्ष 'यह वस्तु सामान्यतः विभाजन योग्य है' कह कर बाँट दे। विषम रूप से विभाजित पितृधन, अंशियों में छिपा हुआ धन, देश-काल द्वारा गुप्त हुआ धन या बांटने के समय अज्ञात रहा धन, जिसकी जानकारी बाद में हुई हो, पुनः बाँटा जा सकता है। जिस सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी न हो तो मृतक के संस्कार और उसकी स्त्री के जीवनयापन योग्य धन को छोड़कर शेष धन राजा द्वारा ले लिया जाय। किन्तु किसी श्रोत्रिय ब्राह्मण के धन को राजा स्वयं न लेकर किसी त्रैविद्य अर्थात् तीनों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण को दे दे। पतित, पतित से उत्पन्न, नपुंसक, जड़, उन्मत्त, अन्धे एवं कुष्ठी व्यक्ति दायभाग के अधिकारी नहीं होते। उक्त में से जो विवाहित एवं पुत्रवान हो गये हों, उनके विद्वान, उन्मत्तता-रहित, नेत्रयुक्त एवं कुष्ठादि से रहित पुत्र अपने पिता की पत्नी (माता) को मिलने वाले धन के अधिकारी होंगे। जो पुत्र जड आदि हों, वे भोजन-वस्त्र पा सकते हैं, किन्तु पतित पुत्र वह भी प्राप्त नहीं कर सकता। उक्त जड़ादि के विवाह होने पर भी प्रजनन-सामर्थ्य न होने के कारण कोई सन्तान न हुई हो तो उनके बांधवादि उनकी भार्याओं से नियोग विधि

द्वारा क्षेत्रज्ञ पुत्रों की उत्पत्ति करा कर, उन पुत्रों को धन-भाग प्राप्त करावें

षष्ठोऽध्याय:

दायविभाग, अंशविभाग

एकस्त्रीपुत्राणां ज्येष्ठांशः। ब्राह्मणानामजाः, क्षत्रियाणामश्वाः, वैश्यानां गावः, शूद्राणामवयः। काणलिङ्गास्तेषां मध्यमांशः। भिन्नवर्णा कनिष्ठांशः। चतुष्पदाभावे रत्नवर्जानां दशानां भागं द्रव्याणामेकं ज्येष्ठो हरेत्। प्रतिमुक्त स्वधापाशो हि भवति। इत्यौशनसो विभागः। पितुः परिवापाद्यानमाभरणं च ज्येष्ठांशः, शयनासनं भुक्तकांस्यं च मध्यमांशः, कृष्णधान्यायसं गृहपरिवापो गोशकटं च कनिष्ठांशः। शेषद्रव्यस्य वा समो विभागः। अदायादा भगिन्यः। मातुः परिवापाद्भुक्तकांस्याभरणभाजिन्यः। मानुषहीनो ज्येष्ठस्तृतीयांशं ज्येष्ठांशाल्लभेत। चतुर्थमन्यायवृत्तिर्निवृत्तधर्मं कार्यो वा। कामचारः सर्वं जीयेत। तेन मध्यमकनिष्ठौ व्याख्यातौ। तयोर्मानुषोपेतो ज्येष्ठांशादर्धं लभेत।

एक स्त्री से अनेक पुत्र हुए हों तो उन सहोदरों में से ज्येष्ठ पुत्र का अंश इस प्रकार मिलता है—ब्राह्मण के ज्येष्ठ पुत्र को (यज्ञ के लिए) बकरा, क्षत्रिय के ज्येष्ठ पुत्र को अश्व, वैश्य के ज्येष्ठ पुत्र को गौ और शूद्र के बड़े पुत्र को मेढा। उक्त पशुओं में काने या लूले होंगे वे मझले पुत्रों को मिलेंगे और भिन्न वर्णादि से निकृष्ट छोटे पुत्र को। यदि चौपाये पशु न हों तो रत्नादि के अतिरिक्त अन्य सब पदार्थों का दशवां अंश बड़े पुत्र को अधिक प्राप्त होना चाहिये। क्योंकि बड़े पुत्र के कण्ठ में पितरों के पिण्ड-दान आदि रूपी फंदा सदैव पड़ा रहता है। यह विभाजन के विषय में कहा गया। पिता द्वारा छोड़े हुये अपने परिच्छदादि में से बड़े पुत्र को यान और अलं-

कार, बीच के पुत्र को शय्या, आसन और काँसे के भोजन पात्र तथा कनिष्ठ को काले धान्य, लौहमय पदार्थ, रसोई के अन्य उपकरण एवं बैलगाड़ी आदि लेने का अधिकार होगा। इनके अतिरिक्त जो बचे उसे सब परस्पर बाँट लें। उनकी बहनों को पिता के धन से कोई अंश नहीं मिलेगा। किन्तु माता की वस्तुओं में से पहिनने के वस्त्र, काँसे के भोजनपात्र एवं आभूषणों का कुछ अंश अवश्य प्राप्त कर सकेंगी। यदि ज्येष्ठ पुत्र पुंसत्वहीन हो तो जो उसे मिलना चाहिये था, उसका तिहाई ही मिलेगा। यदि वह अन्याय कर्म द्वारा जीविकोपार्जन करता हो और धर्म कार्यों से विमुख हो तो चौथाई भाग ही प्राप्त करेगा। यदि स्वेच्छाचार में प्रवृत्त हो तो कुछ भी नहीं पा सकेगा। इसी प्रकार मध्यम और कनिष्ठ पुत्रों के विषय में समझें मध्यम और कनिष्ठ भाइयों में भी जो पुंसत्व शक्ति से युक्त हो वह बड़े भाई के भी आधे अंश को प्राप्त कर लेगा।

नानास्त्रीपुत्राणां तु संस्कृतासंस्कृतयोः कन्याकृतक्रिययोरभावे च एकस्याः पुत्रयोर्यमयोर्वा पूर्वजन्मना ज्येष्ठभावः सूतमागधव्रात्यरथकाराणामैश्वर्यतो विभागः। शेषास्तमुपजीवेरन्। अनीश्वराः समविभागा इति। चातुर्वर्ण्यपुत्राणां ब्राह्मणीपुत्रश्चतुरोंऽशान् हरेत्। क्षत्रियापुत्रस्त्रीनंशान्, वैश्यापुत्रो द्वावंशौ, एकं शूद्रापुत्रः। तेन त्रिर्णद्विवर्णपुत्रविभागः क्षत्रियवैश्ययोर्व्याख्यातः ब्राह्मणस्यानन्तरापुत्रस्तुल्यांशः। क्षत्रियवैश्ययोरर्धांशः तुल्यांशो वा भानुषोपेतः।

यदि किसी पुरुष की अनेक स्त्रियों के अनेक पुत्र हों तो उनमें सबसे बड़ा वही मान्य होगा, जिसका जन्म सब से पहिले हुआ होगा। किन्तु एक पत्नी संस्कृता (ब्राह्मादि विधियों द्वारा विवाहिता) और दूसरी असंस्कृता (गांधर्वादि विधियों द्वाराविवाहिता) अथवा एक अक्षत योनि कुमारी के रूप में विवाहिता और दूसरी क्षत योनि रूप में ब्याह कर आई हुई हो तो इस प्रकार के भेदों का प्रभाव उनके पुत्रों पर भी

पड़ेगा। अर्थात् संस्कृता या अक्षतयोनि वाली विवाहिता का पुत्र छोटा होने पर भी बड़े के समान अधिकार प्राप्त करेगा। यदि किसी एक स्त्री के एक साथ दो पुत्र हुए हों तो उन में बड़ा वही मान्य होगा जो पृथ्वी पर पहिले आयेगा। सूत, मागध, व्रात्य, रथकार आदि असंस्कृत जाति की स्त्रियों के पुत्रों का धन विभाग उन पुत्रों की शक्ति एवं सामर्थ्यादि देख कर ही किया जायगा। यदि वे सभी ऐश्वर्य रहित अर्थात् एक समान हों तो पितृ धन को समान रूप से बांट लेंगे यदि ब्राह्मण की चारों वर्ण की पत्नियाँ हों और सभी के पुत्र हों तो पित्र-धन में से ज्येष्ठ पुत्र का अंश छोड़ कर बचे हुए धन को दस भागों में बाँट कर ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र को चार, क्षत्रिया से उत्पन्न को तीन, वैश्या से उत्पन्न को दो और शूद्रा से उत्पन्न को एक भाग मिलना चाहिए। इसी नियम से त्रिवर्ण (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) एवं द्विवर्ण [वैश्य, शूद्र] से उत्पन्न पुत्रों का विधान होगया समझें। ब्राह्मणी के अनन्तर अर्थात् क्षत्रिया का पुत्र ब्राह्मणी से उत्पन्न के समान ही अंश भागी होगा। इसी प्रकार क्षत्रिय आदि के क्षत्रिया और वैश्या से उत्पन्न पुत्र के विषय में समझे। प्रत्येक से इतर क्रमशः अर्धांश मिलेगा। किन्तु उनमें भी जो अधिक ऐश्वर्यमान अर्थात् पुंसत्वशक्ति से सम्पन्न होगा, वह समान भाग प्राप्त कर सकेगा।

तुल्यातुल्ययोरेकपुत्रः सर्वं हरेद्बन्धूंश्च बिभृयात्। ब्राह्मणानाँ तु पारशवस्तृतीयमंशं लभेत्। द्वावंशौ सपिण्डः कुल्यो वाऽऽसन्नः स्वधादानहेतोः। तदभावे पितुराचार्योऽन्तेवासी वा

क्षेत्रे वा जनयेदस्य नियुक्तः क्षेत्रजं सुतम्।
मातृबन्धुः सगोत्रो वा तस्मै तत्प्रदिशेद्धनम्

सवर्णा और असवर्णा के मध्य यदि एक ही पुत्र हो तो वही सब सम्पत्ति को पायेगा और उसी को अपने बांधवादि का भरण-पोषण करना होगा। किन्तु ब्राह्मण का शूद्रा जात पुत्र एक ही हो, तो भी पूरी सम्पत्ति न पाकर केवल तिहाई भाग ही पा सकेगा। शेष दो भाग का

अधिकारी वह होगा पिता का सपिण्ड हो अथवा ऐसा व्यक्ति हो जो उसे पिण्ड देने का अधिकारी हो। सपिण्ड आदि के अभाव में पिता का आचार्य या उसका शिष्य उन दोनों भाग के धन को प्राप्त कर सकेगा। यदि किसी प्रकार का भी पुत्र न हो तो उस ब्राह्मण की सवर्णा पत्नी में किसी मातृकुल के बान्धव या सगोत्रीय पुरुष के नियोग से पुत्रोत्पत्ति करा कर सम्पूर्ण धन उसी को दे दिया जाय।

सप्तमोऽध्यायः

पुत्रविभागः

'परपरिग्रहे बीजमुत्सृष्टं क्षेत्रिण' इत्याचार्याः। 'माता भस्त्रा यस्य रेतस्तस्यापत्यमि'त्यपरे। 'विद्यमानमुभयमि ति कौटिल्यः। स्वयंजातः कृतक्रियायामौरसः। तेन तुल्यः पुत्रिकापुत्रः। स गोत्रेण वा नियुक्तेन क्षेत्रजातः क्षेत्रजः पुत्रः। जनयितुरसत्यन्यस्मिन् पुत्रे स एव द्विपितृको द्विगोत्रो वा द्वयोरपि स्वधारिक्थभाग्भवति। तत्सधर्मा बन्धूनां गृहे गूढजातस्तु गूढजः। बन्धुनोत्सृष्टोऽपविद्धः संस्कर्तुः पुत्रः। कन्यागर्भः कानीनः। सगर्भोढायाः सहोढः। पुनर्भूतायाः पौनर्भवः। स्वयं जातः पितृबन्धूनां च दायादः। परजातः संस्कर्तुरेव न बन्धूनाम्। तत्सधर्मा मातृपितृभ्यामद्भिर्दत्तो दत्तः। स्वयं बन्धुभिर्वा पुत्रभावो पगत उपगतः।

आचार्यों का मत है कि कोई पुरुष अपनी स्त्री में किसी अन्य के द्वारा पुत्र उत्पन्न करावे यो वह क्षेत्रीय संज्ञक पुत्र उसी पुरुष का पुत्र कहा जायेगा। किन्तु कुछ आचार्य स्त्री को धोंकनी स्वरूप कहते हुए पर पुरुष से उत्पन्न पुत्र को क्षेत्री पुरुष का पुत्र न मान कर बीजी पुरुष का ही पुत्र मानते हैं। आचार्य कौटिल्य इसके विपरीत इस प्रकार कहते हैं कि पुत्र की उत्पत्ति वीर्य और क्षेत्र दोनों के ही संयोग

से होती है। इसलिए वह क्षेत्री और बीजी दोनों का ही पुत्र माना जायगा। अपनी विवाहिता स्त्री से उत्पन्न किया पुत्र 'औरस' कहा जाता है। पुत्रिकापुत्र अर्थात् अपनी उस पुत्री का पुत्र जो अपने पुत्र रूप से रखा जाय, वह औरस के ही समान समझा जायगा। सगोत्र या अन्य गोत्र के पुरुष के नियोग से उत्पन्न पुत्र 'क्षेत्रज' होगा। यदि नियुक्त पुरुष के कोई औरस पुत्र न हो तो वही क्षेत्रज पुत्र द्विपितृक [दो पिताओं का] या द्विगोत्री (दो गोत्रों वाला) माना जाकर दोनों पिताओं को पिण्ड देगा और दोनों के ही धन का अधिकारी होगा। यदि स्त्री के अपने पितृगृह में ही किसी परपुरुष से पुत्र होजाय तो वह 'गूढज' कहा जायगा तथा उसकी समानता क्षेत्रज से होगी। मातापिता आदि से त्यागे हुए पुत्र का संस्कार एवं भरण-पोषण आदि कोई अन्य पुरुष करे तो वह उसी का पुत्र माना जाकर 'अपविन्द' कहलायेगा। कुंवारी कन्या का पुत्र 'कानीन', गर्भवती कन्या का विवाहोपरान्त उत्पन्न पुत्र 'सहोढ' और स्त्री के पुनर्विवाह से पैदा हुआ पुत्र 'पौनर्भव' कहा जायगा। औरस पुत्र पिता एवं उसके बान्धवादि का दायाद होगा, किन्तु परपुरुष से उत्पन्न पुत्र संस्कार करने वाले का ही पुत्र माना जाकर उसका दायाद हो सकता है, किन्तु वह पिता के बान्धवों के धन का भागी नहीं हो सकता। धर्मपूर्वक किसी को दिया गया पुत्र उसका 'दत्तक' पुत्र माना जाकर 'औरस' पुत्र के समान ही समझा जायगा। जो पुत्र स्वयं ही किसी अन्य पुरुष का पुत्र बन जाय अथवा उसके बान्धवादि उसे किसी अन्य पुरुष को पुत्र रूप में दे दें तो वह 'उपगत' संज्ञक पुत्र होगा।

पुत्रत्वेऽधिकृतः कृतकः। परिक्रीतः क्रीत इति। औरसे तूत्पन्ने सवर्णास्तृतीयांशहराः। असवर्णा ग्रासाच्छादनभागिनः। ब्राह्मणक्षत्रिययोरनन्तरा पुत्राः सवर्णाः। एकान्तराः असवर्णा। ब्राह्मणस्य वैश्यायामम्बष्ठः। शूद्रायां निषादः पारशवो वा। क्षत्रियस्य शूद्रायामुग्रः। शूद्र एव वैश्यस्य। सवर्णासु चैषामचरितव्रतेभ्यो जाता व्रात्याः। इत्यनुलोमाः। शूद्रादायोगवक्षत्तृचण्डालाः।

वैश्यान्मागधवैदेहकौ । क्षत्रियात्सूतः । पौराणिकस्त्वन्यः सूतो मागधश्च । ब्रह्मक्षत्राद्विशेषतः । त एते प्रतिलोमाः स्वधर्मातिक्रमाद्राज्ञः संभवन्ति ।

जिसे पुत्र रूप में स्वीकार किया जाय वह कृतक और माता-पिता को मूल्य देकर खरीदा जाय वह क्रीत कहा जाता है । इस प्रकार के सवर्ण पुत्रों के होते हुए भी यदि कोई औरस पुत्र उत्पन्न होजाय तो पूर्व पुत्र पितृधन का तिहाई भाग और औरस पुत्र दो भाग प्राप्त करेगा । यदि पूर्व पुत्र असवर्ण हों तो वे केवल भोजन-वस्त्र ही प्राप्त कर सकेंगे । ब्राह्मण-क्षत्रिय पुरुषों की अन्तर्जाति वाली स्त्रियों (ब्राह्मण की क्षत्रिया पत्नी और क्षत्रिय की वैश्या पत्नी) के पुत्र सवर्ण, किन्तु एकान्तर्जाति की स्त्रियों (ब्राह्मण की वैश्या पत्नी और क्षत्रिय की शूद्रा पत्नी) के पुत्र असवर्ण कहे जायँगे । ब्राह्मण की वैश्या पत्नी से उत्पन्न अम्बष्ठ तथा शूद्रा से उत्पन्न निषाद या पारशव संज्ञक होंगे । क्षत्रिय का शूद्राजात उग्र और वैश्य का शूद्राजात पुत्र शूद्र ही रहेगा । उपनयनादि से हीन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में से किसी के अपनी विवाहिता सवर्णा से उत्पन्न सुत व्रात्य कहे जाते हैं । यह अनुलोम अर्थात् उच्च जाति का पुरुष और नीच जाति की स्त्री का विवेचन हुआ, अब प्रतिलोम के विषय में कहते हैं शूद्र पुरुष की वैश्या पत्नी से अयोगव, क्षत्रिया से क्षत्ता तथा ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र चाण्डाल कहा जायगा । वैश्य द्वारा क्षत्रिया से उत्पन्न 'मागध' और ब्राह्मणी से उत्पन्न सुत 'वैदेहक' होगा । क्षत्रिय का ब्राह्मणी से उत्पन्न पुत्र 'सूत' कहलायेगा । किन्तु पुराणों में कहे हुए सूत और मागध इनसे भिन्न तथा ब्राह्मण-क्षत्रियों से भी विशिष्ट थे । उपरोक्त प्रतिलोम पुत्रों की उत्पत्ति का कारण अपने धर्म का उल्लंघन ही समझना चाहिए ।

उग्रान्नैषाद्यां कुक्कुटकः, विपर्यये पुल्कसः । वैदेहिकायामम्बष्ठाद्वैणः, विपर्यये कुशीलवः । क्षत्तायामुग्राच्छ्वपाकः । इत्येतेऽन्ये चान्तरालाः । कर्मणा वैण्यो रथकारः । तेषां स्वयोनौ

विवाहः। पूर्वावरगामित्वं वृत्तानुवृत्तं च स्वधर्मान् स्थापयेत्। शूद्रसधर्माणो वा अन्यत्र चण्डालेभ्यः। केवलमेवं वर्तमानः स्वर्गमाप्नोति राजा नरकमन्यथा। सर्वेषामन्तरालानां समो विभागः।

देशस्य जात्या संघस्य धर्मो ग्रामस्य वापि यः।
उचितस्तस्य तेनैव दायधर्मं प्रकल्पयेत्॥

उक्त उग्र और नैषादी के संयोग से 'कुक्कुटक' संज्ञक पुत्र होता है। इसके विपरीत निषाद और उग्र-कन्या के योग से 'पुल्कस' एवं अम्बष्ठ और वैदेहकी के द्वारा 'वैण' की उत्पत्ति होती है। यदि वैदेहक और अम्बष्ठा कन्या के संयोग से सुत हो तो उसे 'कुशीलव' कहेंगे। उग्र और क्षत्ता कन्या से श्वपाक की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार विभिन्न वर्ण-संकर जातियाँ हुईं। गौण जाति वाले अपने कर्म के अनुरूप 'रथकार' कहे जाते हैं। इन जातियों के मनुष्य स्वजाति में विवाह-संबंध कर सकते हैं। उनमें भी यदि उच्च जाति का पुरुष निकृष्ट स्त्रियों से विवाह करले और आचार का पालन करे स्वधर्म ही समझा जायगा। चाण्डाल के अतिरिक्त और उक्त सभी जातियों का स्वधर्म शूद्रवत ही होगा। इस प्रकार से व्यवस्था बनाये रखने वाले राजा को स्वर्ग और वर्णाश्रम धर्म को नष्ट करने वाले राजा को नरक की प्राप्ति होती है। इन सब अन्तर्जाति में उत्पन्न हुए व्यक्तियों की सम्पत्ति का बँटवारा समान अंश में किया जाना चाहिए। देश, जाति, समाज और ग्राम के धर्मानुकूल आचार के अनुसार ही उनके दायभाग की व्यवस्था करना उचित है।

अष्टमोऽध्यायः

गृहवास्तुक विचार

सामन्तप्रत्यया वास्तुविवादाः। गृह क्षेत्रमारामः सेतुबन्धस्तटाकमाधारो या वास्तुः : कर्ण कीलायससम्बन्धोऽनुगृहं सेतुः।

यथासेतुभोगं वेश्म कारयेत् । अभूतं वा परकुड्यादपक्रम्य द्वावरत्नी त्रिपदीं वा पादे बन्ध कारयेत् । अवस्करं भ्रममुदपानं पानगृहोचितमन्यत्र सूतिकाकूपादानिर्दशाहादिति । तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः ।

अब गृह वास्तुक अर्थात् अचल सम्पत्ति के विषय में कहते हैं । इस विषयक विवाद के उपस्थित होने पर उसका निर्णय पड़ौसियों की साक्षी पर निर्भर करता है । घर, क्षेत्र, उद्यान सेतुबन्ध और तड़ाग आदि सब वास्तु संज्ञक हैं । घर के चारों ओर कील आदि गाढ़ कर या तार का घेरा बना कर सीमा निर्धारित कर लेना सेतु कहा जाता है । उसी सीमा में गृह आदि का निर्माण किया जाना चाहिए । क्योंकि सीमा खिचने से दूसरे की पृथ्वी दबने का अवसर नहीं रहता । किसी अन्य कीं भित्ति न दवे, इस प्रकार अपनी छत आदि बनवानी चाहिए । मकान की नींव दो हाथ से कम या तीन पाद प्रमाण बनावे । केवल दस दिनों तक काम में आसके ऐसे सूतिकागृह के अतिरिक्त अन्य स्थान अर्थात् शोचस्थान, कूप एवं जल घर आदि के स्थान निश्चित करे । ऐसा न करने वाले गृहस्वामी को पूर्व साहस दण्ड देना चाहिए ।

तेनेन्धनाववातनकृतं कल्याणकृत्येष्वाचामोदकमार्गाश्च व्याख्याताः । त्रिपदीप्रतिक्रान्तमध्यर्धमरत्निं वा प्रवेश्य गाढप्रसृतमुदकमार्गं प्रस्रवणं प्रपातं वा कारयेत् । तस्यातिक्रमे चतुष्पंचाशत्पणो दण्डः । एकपदीप्रतिक्रान्तमरत्निं वा चक्रिचतुष्पदस्थानमग्निष्ठमुदञ्जरस्थानं रोचनीं कुट्टनीं वा कारयेत् । तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः ।

इसी प्रकार उपनयनादि माँगलिक कार्यों में काम आने वाले ईंधन को चीरने-फाड़ने के लिए उपयुक्त स्थान रहे । स्नान-आचमन आदि के जल को निकालने के लिए नाली एवं तीन पाद अथवा डेढ़ हाथ चौड़ा परनाला भी बना दे । ऐसा न करने पर चौवन पण दण्ड दे । एक पाद अथवा हाथ चौड़ी अन्य नाली के साथ चार स्तंभों के आधार पर

निर्मित पाकशाला जल, आटा-चक्की ओखली आदि के सहित रखे। जो इस नियम का अतिक्रमण करे उस पर चौबीस पण का दण्ड किया जाय।

सर्ववास्तुकयोः प्राक्षिप्तकयोर्वा शालयोः किष्कुरन्तरिका त्रिपदी वा। तयोश्चतुरंगुलं नीप्रान्तरं समारूढकं वा। किष्कुमात्रमाणिद्वारमन्तरिकायां खण्डफुल्लार्थमसम्पातं कारयेत्। प्रकाशार्थमल्पमूर्ध्वं वातायनं कारयेत्। संभूय वा गृहस्वामिनो यथेष्टं कारयेयुरनिष्टं वारयेयुः। वानलटचाश्चोर्ध्वमावार्यभागं कटप्रच्छन्नमवमर्शभित्तिं वा कारयेद्वर्षबाधभयात्। तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डः। प्रतिलोमद्वारवातायनबाधायां च अन्यत्र राजमार्गरथ्याभ्यः। खातसोपानप्रणालीनिश्रेण्यवस्करभागैर्बहिर्बाधायां भोगनिग्रहे च।

सब प्रकार के घरों के मध्य अथवा एक साथ मिले हुए दो मकानों के बीच एक किष्कु (एक हाथ से अधिक स्थान एवं तीन पाद चौड़ी अन्तरिका अर्थात् वीथि रखी जाय। उन दोनों मकानों में चार-चार अंगुल के झरोखे रहें। यदि दोनों गृहस्वामी चाहें दोनों मकानों से लगी हुई सीढ़ियाँ बना दें। गली में एक हाथ से अधिक चौड़ी खिड़की भी बननी चाहिए। उसे खोलने-बन्द करने का भी साधन रहे, पर उसके द्वारा आना-जाना न रखे। प्रकाश के निमित्त भी भित्ती या छत में वातायन आदि की व्यवस्था करे। सभी पड़ोसियों को पारस्परिक सुविधाओं का ध्यान रखकर ही मकान बनाने चाहिए। मकान की सर्वोच्च छत को चाहे तो चटाई आदि से छववा दे, जिससे कि वर्षाकाल में छत पर सोवे तो भीगने से बच सके। इस विधान का अतिक्रमण करने पर पूर्व साहस दण्ड निश्चित करे। यदि खिड़की या द्वार आदि मनमाने ढंग से, बिना पारस्परिक सुविधा का ध्यान रखे ही बना ले तो प्रथम साहस दंड का भागी होगा। किन्तु राजमार्ग की ओर खिड़की

या द्वार बना लेने में कोई दोष नहीं है। यदि गर्त्त, सीढ़ी, नाली, काष्ठ की नसेनी और कूड़ा डालने का स्थान ऐसे स्थान पर बनाया हो, जिनसे पड़ौसियों को कष्ट पहुंचे तो वह व्यक्ति प्रथम साहस दण्ड पायेगा। ।

परकुडयमुदकेनोपघ्नतो द्वादशपणो दण्डः। मूत्रपुरीषोपघाते द्विगुणः। प्रणालीमोक्षो वर्षति अन्यथा द्वादशपणो दण्डः। प्रतिषिद्धस्य च वसतो निरस्यतश्चावक्रयणम्। अन्यत्र पारुष्यस्तेयसाहससंग्रहणमिथ्याभोगेभ्यः। स्वयमभिप्रस्थितो वर्षावक्रयशेषं दद्यात्। सामान्ये वेश्मनि साहाय्यमप्रयच्छतः सामान्यमुपरुन्धतो भोगानिग्रहे च द्वादशपणो दण्डः। विनाशयतस्तद्द्विगुणः।

कोष्ठकाङ्गणवर्जानामग्निकुट्टनशालयोः।
विवृतानां च सर्वेषां सामान्यो भोग इष्यते ॥

यदि किसी के दोष से अन्य मकान में जल के प्रविष्ट होने से उसे क्षति पहुँचे तो बारह पण और यदि दूसरे मकान पर मलमूत्रादि पहुंचता या स्पर्श करता हो तो चौबीस पण दंड दोषी गृहस्वामी को दिया जाय। वर्षाकाल में परनाला खोल कर जल को निकलने दे, अन्यथा उस दोष पर बारह पण दण्ड करे। यदि मकान का स्वामी अपने किरायेदार को गृह छोड़ने को कहे और वह न छोड़े तो किरायेदार पर बारह पण और मकानमालिक पर किराया लेकर भी किरायेदार को निकाले तो उसपर भी बारह पण ही दंड होगा। यदि किरायेदार कुवाक्य कहे, चोरी, डकैती, व्यभिचारादि करे या बल पूर्वक मकान को न छोड़े तो उससे मकान खाली कराया जा सकेगा, किन्तु दण्ड नहीं दिया जा सकेगा। यदि किरायेदार निश्चित समय पूर्व मकान को खाली करदे तो उसे उस अवधि तक का किराया देना होगा, जिस निश्चित समय तक के लिए लिया है। जिस मकान में दो से अधिक व्यक्ति हों और वे पारस्परिक संकट में सहायक न हों अथवा एक दूसरे के सुख में बाधक हों तो वे बारह पण से तथा परस्पर में किसी को क्षति

पहुंचावे तो चौबीस पण से दंडित होंगे। जिस मकान में अधिक व्यक्ति हों तो उन्हें वहां के कोठार, आंगन, मल-मूत्रस्थान, अग्निशाला, धानादि कूटने के स्थान या खुले हुए स्थान का उपभोग सभी समान रूप से कर सकेंगे

नवमोऽध्यायः

वास्तु विक्रय

ज्ञातिसामन्तधनिकाः क्रमेण भूमिपरिग्रहान् क्रेतुमभ्याभवेयुः। ततोऽन्ये बाह्याः। सामन्तचत्वारिंशत्कुल्या गृहप्रतिमुखे वेश्म श्रावयेयुः। सामन्तग्रामवृद्धेषु क्षेत्रमारामं सेतुबन्धं तटाकमाधारं वा मर्यादासु यथासेतुभोगम्। 'अनेनार्घेण कः क्रेता' इति त्रिराघुषितमव्याहतं क्रेता क्रेतुं लभेत। स्पर्धया वा मूल्यवर्धने मूल्यवृद्धिः सशुल्का कोशं गच्छेत्। विक्रयप्रतिक्रोष्टा शुल्कं दद्यात्।

स्वजाति, पड़ौसी और ऋण देने वाले व्यक्ति ही पृथिवी एवं घर आदि खरीद सकते हैं। बिकने वाले मकान के समीपस्थ निवासी चालीस व्यक्ति वहां आकर उच्च स्वर से मकान के बिकने की घोषणा करें। वे सब पड़ौसियों और ग्राम-वृद्धों को उस मकान का क्षेत्रफल आदि सब घुमा कर दिखावें और फिर तीन बार घोषित करें कि इसका कौन कितने में खरीदार है। यदि उक्त घोषणा के पश्चात् कोई सवर्ण अथवा पड़ौसी विरोध न करे तो उस मकान को चाहे जो खरीद ले। यदि मकान की बोली बुलने में स्पर्द्धावश उसका मूल्य विक्रेता द्वारा बताये हुए मूल्य से भी अधिक हो जाय तो उस बढ़े हुए मूल्य को शुल्क सहित राजकोष में जमा करना होगा। इस प्रकार के क्रय-विक्रय में जो सब से ऊँचा मूल्य लगाये, वही राज्य का शुल्क भी देगा।

अस्वामिप्रतिक्रोशे चतुर्विंशतिपणो दण्डः। सप्तरात्रादूर्ध्वमनभिसरतः प्रतिक्रुष्टो विक्रीणीत। प्रतिक्रुष्टातिक्रमे वास्तुनि

द्विशतो दण्डः । अन्यत्र चतुर्विंशतिपणो दण्डः । इति वास्तु-विक्रयः । सीमाविवादं ग्रामयोरुभयोः सामन्ताः पञ्चग्रामी दशग्रामी वा सेतुभिः स्थावरैः कृत्रिमैर्वा कुर्यात् । कर्षकगोपालवृद्धकाः पूर्वभुक्तिका वा अबाह्याः सेतूनामभिज्ञा बहव एको वा निर्दिश्य सीमसेतून् विपरीतवेषा सीमानं नयेयुः । उद्दिष्टानां सेतूनामदर्शने सहस्रदण्डः । तदेव नीते सीमापहारिणां सेतुच्छिदां च कुर्यात् । प्रनष्टसेतुभोगं वा सीमानं राजा यथोपकारं विभजेत् । क्षेत्र-विवादं सामन्तग्रामवृद्धाः कुर्युः । तेषां द्वैधीभावे यतो बहवः शुचयोऽनुमता वा ततो नियच्छेयुः । मध्यं वा गृह्णीयुः । तदुभयं परोक्तं वास्तु राजा हरेत् । प्रनष्टस्वामिकं यथोपकारं विभजेत् ।

गृहस्वामी की अनुपस्थिति में इस प्रकार मूल्य बढ़ाने वाले पर चौबीस पण दण्ड करे । मूल्य लगाने के पश्चात् वह मूल्य बढ़ाने वाला व्यक्ति यदि विक्रेता के पास सात रात्रि व्यतीत होने पर भी न आवे तो वह किसी अन्य को वेचने में स्वतन्त्र है । किन्तु यदि स्वयं विक्रेता उस मूल्य बढ़ाने वाले को न देकर अन्य को बेचे तो दो सौ पण से दंडित हो । वास्तु के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ अर्थात् पशु आदि के विक्रय-विषय में नियम तोड़ने पर विक्रेता को चौबीस पण का दण्ड दे । वास्तु विक्रय का विषय पूर्ण हुआ । दो ग्रामों की सीमा विषयक विवाद उपस्थित होने पर समीपवर्ती पंचग्रामी, दशग्रामी आदि व्यवहार कुशल व्यक्ति पर्वत, नदी या अस्थायी चिन्हादि के द्वारा सीमा-निर्धारण कर दें । किन्तु मिथ्या सीमा-निर्धारण के दोष में सहस्रपण दण्ड दिया जाय । जिन खेत आदि की सीमा अस्पष्ट हो गई हो उनका सीमा-निर्धारण स्वयं राजा करे । यदि खेत विषयक विवाद हो तो पड़ौसी ग्रामवृद्ध उसका निपटारा कर दें और यदि उन वृद्धों में भी मतैक्य न हो तो सदाचारी एवं श्रद्धेय पुरुषों का बहुमत जिधर हो, वही निर्णय मान्य हो । या वादी-प्रतिवादी मिल कर किसी के मध्यस्थ

बना कर उससे निर्णय करा लें। यदि उक्त उपायों से भी विवाद की समाप्ति न हो अथवा वादी-प्रतिवादी उक्त प्रकार से हुए निर्णय को स्वीकार न करें तो राजा उस खेत आदि को स्वयं ले ले अथवा अनाथ या दायभाग के अधिकारियों पर अनुग्रह करके उनमें बाँट दे।

प्रसह्यादाने वास्तुनि स्तेयदण्डः। कारणादाने प्रयासमाजीवं च परिसंख्याय बन्धं दद्यात्। मर्यादापहरणे पूर्वः साहसदण्डः। मर्यादाभेदे चतुर्विंशतिपणः। तेन तपोवनविवीतमहापथश्मशानदेवकुलयजनपुण्यस्थानविवादा व्याख्याता। इति मर्यादास्थापनम्।

दूसरे के खेत या घर आदि पर बलपूर्वक अधिकार करने पर चोरी के समान दण्ड दे। यदि ऋण आदि की वसूली के लिए अधिकार करे तो उस सम्पत्ति के सुधार में लगे श्रम और आय का हिसाब करके ऋण का धन वसूल कर ले और जो धन शेष बचे उसे भूस्वामी को दे दे। यदि कोई दूसरे की सीमा अपने खेत में मिलावे तो प्रथम साहस और सीमा के चिन्ह को नष्ट करे तो चौबीस पण से दण्डित करे। इससे तपोवन, गोचरभूमि, महापथ, श्मशान, देवालय, यज्ञ स्थान एवं अन्य पुण्यस्थलों का भी वर्णन हुआ समझे। यह सीमा स्थापन विषयक वर्णन पूर्ण हुआ।

सर्व एव विवादाः सामन्तप्रत्ययाः। विवीतस्थलकेदारषण्डखलवेश्मवाहनकोष्ठानां पूर्वं पूर्वमाबाधं सहेत। ब्रह्मसोमारण्यदेवयजनपुण्यस्थानवर्जाः स्थलप्रदेशाः। आधारपरिवाहकेदारोपभोगैः परक्षेत्रकृष्टबीजहिंसायां यथोपघातं मूल्यं दद्युः। केदारारामसेतुबन्धानां परस्परहिंसायां हिंसाद्विगुणो दण्डः। पश्चान्निविष्टमधरतटाकं नोपरि तटाकस्य केदारमुदकेनाप्लावयेत्। उपरि निविष्टं नावरतटाकस्य पूरास्रावं वारयेदन्यत्र त्रिवर्षोपरतकर्मणः। तस्यातिक्रमे पूर्वः साहसदण्डस्तटाकवामनं च।

सभी विवाद पड़ोसियों के द्वारा ही प्रमाणित हो सकते हैं। गोचर-भूमि, स्वच्छ स्थल, खेत, केले का उद्यान, खल, घर, वाहनों का नौहरा आदि के विषय में विवाद हो तो पूर्व की अपेक्षा बाद के स्थलों का निर्णय पहिले करे। ब्रह्मारण्य (जिस वन में ब्राह्मण रहते हों), सोमारण्य (जहाँ सोम उत्पन्न होता हो), देवस्थल, यज्ञस्थल एवं पुण्यस्थल के अतिरिक्त शेष सब भूभाग कृषियोग्य प्रदेश समझा जाता है। यदि कोई अपने आधार, परिवाह (नाली) और केदार (खेत) के द्वारा अन्य व्यक्ति के बोये हुए बीज को क्षति पहुँचावे तो वह बीज का मूल्य देने के लिए बाध्य होगा। केदार, उद्यान और सेतुबंध को क्षति पहुंचाने विषयक विवाद हो तो क्षति पूर्ति के रूप में दुगना मूल्य वसूल किया जाय। नीचे के जलाशय से ऊपर की ओर जाने वाली नाली में जल नहीं ले जाया जा सकता। ऊपर के जलाशय से नीचे वाले जलाशय को न भरे। यदि नीचे वाला जलाशय तीन वर्ष तक भी शुष्क रहे तो ऊपर के जल से उसे भर दे। जो इन नियमों का पालन न करे उसके जलाशय का जल निकलवा दे और साथ ही पूर्व साहस दण्ड भी दे।

पंचवर्षोपरतकर्मणः सेतुबन्धस्य स्वाम्यं लुप्येतान्यत्रापद्भ्यः। तटाकसेतुबन्धानां नवप्रवर्तने पांचवार्षिकः परिहारः। भग्नोत्सृष्टानां चातुर्वर्षिकः। समुपारूढानां त्रैवर्षिकः। स्थलस्य द्वैवर्षिकः स्वात्माधाने विक्रये च। खातप्रवृत्तिमनदीनिबन्धायतनतटाककेदारारामषण्डवापानां सस्यपर्णभागोत्तरिकम्। अन्येभ्यो वा यथोपकारं दद्युः प्रक्रयावक्रयाधिभागभोगनिसृष्टोपभोक्तारश्चैषां प्रतिकुर्युः। अप्रतीकारं हीनद्विगुणो दण्डः।

सेतुभ्यो मुञ्चतस्तोयमवारे षट्पणो दमः।
वारे वा तोयमन्येषां प्रमादेनोपरुन्धतः॥

सिंचाई के लिए बनाया हुआ जलाशय यदि पाँच वर्ष तक सिंचाई के कार्य में न लिया हो तो उस पर उसके स्वामी का अधिकार नहीं

रहता। यदि शत्रु के आक्रमण आदि के कारण उससे काम न लिया गया हो तो अधिकार नष्ट नहीं होगा। नया तड़ाग बनवाने वाला व्यक्ति पांच वर्ष पर्यन्त कर-मुक्ति का लाभ ले सकता है। यदि कोई जीर्ण तड़ाग की मरम्मत करावे तो उससे चार वर्ष तक कर नहीं लिया जायगा। झाड़ी आदि से युक्त वन को साफ़ करके कृषि-योग्य बना लेने पर तीन वर्ष तक कर मुक्ति का लाभ ले। स्थल प्रदेश को बंधक रखने या बेचने पर खरीदने और बेचने वाले दोनों ही कर-मुक्त रहेंगे। केदार, उद्यान, षण्डवाप एवं जल प्राप्त कर राजा उन कृषि-क्षेत्रों को अधिक अन्न-उत्पादन में कुशल किसानों को दे दे। क्रीत भूमि का उपभोक्ता, बंधक भूमि का उपभोक्ता, खेत में पैदा होने वाले अन्न के विशेष अंश का उपभोक्ता तथा उपज के अनुसार अन्न भाग का उपभोक्ता आदि खेत या तड़ाग आदि की क्षति के अनुसार, उसका दुगना निर्माण करावे। यदि ऐसा न करे तो दुगना दण्ड दे। अपनी पारी के बिना ही राज्य के जल को लेने वाले पर छः पण और अन्य की पारी हो तो भी प्रमाद से उसे जल न लेने देने पर छः पण का दण्ड दोषी व्यक्ति को देना चाहिए।

दशमोऽध्यायः

वास्तुक, विवीतक्षेत्रपथ का अवरोध एवं नियमोल्लंघन

कर्मोदकमार्गमुचितं रुन्धतः कुर्वतोऽनुचितं वा पूर्वः साहस-दण्डः। सेतुकूपपुण्यस्थानचैत्यदेवायतनानि च परभूमौ निवेशयतः पूर्वानुवृत्तं धर्मसेतुमाधानं विक्रयं वा नाययतो वा मध्यमः साहस-दण्डः। श्रोतॄणामुत्तमः। अन्यत्र भग्नोत्सृष्टात्। स्वाम्यभावे ग्रामाः पुण्यशीला वा प्रतिकुर्युः।

विविध कर्मों का अथवा जल का मार्ग रोकने या ज़ल को व्यर्थ निकालने वाले प्रथम साहस दण्ड दे। अन्य की भूमि-सीमा, कूप, पुण्य-स्थल, चैत्य एवं देव मन्दिर को अन्य की भूमि मिलाने, बंधक रखने,

बेच देने अथवा किसी अन्य के द्वारा बिकवाने वाले को मध्यम साहस का दण्ड दे। जो व्यक्ति किसी के द्वारा कुकर्म होता हुआ देख-सुन कर भी मौन धारण कर ले तो उसे उत्तम साहस दण्ड दे। यदि कोई जीर्ण धर्म स्थान को बनवाये तो उसका वह कृत्य दण्ड के योग्य नहीं है। यदि किसी के सेतु आदि का कोई स्वामी न हो तो उसका जीर्णोद्धार अपने ग्राम के या अन्य ग्राम के व्यक्ति करा सकते हैं।

पथप्रमाणं दुर्गनिवेशे व्याख्यातम्। क्षुद्रपशुमनुष्यपथं रुन्धतो द्वादशपणो दण्डः। महापशुपथं चतुर्विंशतिपण.। हस्तिक्षेत्रपथं चतुष्पंचाशत्पणः। सेतुवनपथं षट्शतः। श्मशानग्रामपथं द्विशतः। द्रोणमुखपथं पंचशतः। स्थानीयराष्ट्रविवीतपथं साहस्रः। अतिकर्षणे चैषां दण्डचतुर्था दण्डाः। कर्षणे पूर्वोक्ताः। क्षेत्रिकस्याक्षिपतःक्षेत्रमुपवासस्य वा त्यजतो बीजकाले द्वादशपणो दण्डः। अन्यत्र दोषोपनिपाताविषह्येभ्यः। करदाः करदेष्वाधानंविक्रयं वा कुर्युः। ब्रह्मदेयिका ब्रह्मदेयिकेषु अन्यथा पूर्वः साहसदण्डः। करदस्य वाऽकरदग्रामं प्रविशतः।

क्षुद्र पशुओं और मनुष्यों के मार्ग को अवरुद्ध करने वाला बारह पण का तथा बड़े पशुओं के मार्ग को रोकने वाला चौबीस पण का दण्डभागी होगा। हाथी का या खेतों का मार्ग रोकने पर चौवन पण, सेतु एवं वनमार्ग रोकने पर छः सौ पण, श्मशान-मार्ग या ग्राम-मार्ग रोकने पर दो सौ पण, द्रोणमुख का मार्ग रोकने पर पाँच सौ पण, स्थानीय, जनपद और विवीत का मार्ग रोकने पर एक हजार पण का दण्ड दे। यदि उपर्युक्त मार्गों को संकुचित कर दे तो उक्त दण्डों का चौथाई दण्ड दे। पूरे मार्ग को अपने खेत में मिलाने पर भी ऊपर कहे दण्डों के अनुसार व्यवस्था करे। यदि कोई दूसरे के खेत को बीज वपन करने के समय भी कृषि कर्म के लिए न दे या खेत देने का वचन देकर भी न दे तो बारह पण का दण्ड दे। किन्तु किसी दोष, बाध, रोग आदि के कारण संकटग्रस्त होने पर खेत न देने वाला दोषी नहीं

होगा। कर देने वाला व्यक्ति करदाता को ही अपना खेत बेच सकेगा या बंधक रखेगा। जो ब्राह्मणों के उपभोग्य खेत का उपभोग करें, वे वैसे ही व्यक्तियों को उसे दें। यदि कोई इस नियम को न माने तो प्रथम साहस से दण्डित हो। यदि कोई करदाता पुरुष करमुक्त ग्राम में जा बसे तो वह भी प्रथम साहस का दण्डभागी होगा।

करदं तु प्रविशतः सर्वद्रव्येषु प्राकाम्यं स्यादन्यत्रागारात्। तदप्यस्मै दद्यात्। अनादेयमकृषतोऽन्यः पंच वर्षाण्युपभुज्य प्रयासनिष्क्रयेण दद्यात्। अकरदाः परत्र वसन्तो भोगमुपजीवयेयुः। ग्रामार्थेन ग्रामिकं व्रजन्तमुपवासाः पर्यायेणा नुगच्छेयुः। अननुगच्छन्तः पणार्धपणिकं योजनं दद्युः। ग्रामकस्य ग्रामादस्तेनपारदारिकं निपस्यतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः। ग्रामस्योत्तमः। निरस्तस्य प्रवेशो ह्यधिगमेन व्याख्यातः। स्तम्भैः समन्ततो ग्रामाद्धनुः शतापकृष्टमुपशालं कारयेत्।

कर देने वाले ग्राम में बसने वाले करदाता का स्वामित्व घर के अतिरिक्त शेष सब अन्न एवं पशु आदि पर रहेगा। खेत बेचने वाला चाहे तो उसे घर भी दे सकेगा। यदि कोई अपनी भूमि परती ही रहने दे तो अन्य पुरुष पाँच वर्ष तक उसका उपयोग करके उसके स्वामी को पुनः लौटा दे। किन्तु भूस्वामी से खेत को उर्वर बनाने का पारिश्रमिक लेने का उसे अधिकार होगा। किन्तु ब्रह्मदेय करमुक्त भूमि का स्वामी दूसरे गाँव में रहता हुआ भी उस भूमि के अधिकार से वंचित नहीं हो सकता। ग्राम-प्रमुख यदि ग्राम के कार्य से अन्य ग्राम में जाय तो उस ग्राम के रहने वाले उपजीविकार्थ उसके साथ गमन करें। यदि साथ न दें तो प्रति योजन डेढ़ पण दण्ड दें। ग्राम-प्रमुख व्यभिचारी व्यक्ति के अतिरिक्त किसी सज्जन व्यक्ति को ग्राम से निष्कासित कर दे तो चौबीस पण दण्ड रूप में देगा। उसके साथ ही उस ग्राम में रहने वालों को भी उत्तम साहस का दण्ड सामूहिक रूप मे देना होगा। ग्राम से निकाले हुए व्यक्ति के ग्राम में पुनः प्रवेश की दण्ड व्यवस्था भी इसी

प्रकार समझे। ग्राम के चारों ओर सौ धनुष दूर पाषाण या काष्ठ के स्तम्भों का बाड़ा पशुओं के रहने के लिये बनाया जाय।

पशुप्रचारार्थं विवीतमालवनेनोपजीवयेयुः। विवीतं भक्षयित्वाऽपसृतानामुष्ट्रमहिषाणां पादिकं रूपं गृह्णीयुः। गवाश्वखराणां चार्धपादिकम्। क्षुद्रपशूनां षोडशभागिकम्। भक्षयित्वा निषण्णानां द्विगुणा दण्डाः। परिवसतां चतुर्गुणाः। ग्रामदेववृषा वा अनिर्दशाहा वा धेनुरुक्षाणो गोवृषाश्चादण्डयाः। सस्यभक्षणे सस्योपघातं निष्पत्तितः परिसंख्याय द्विगुणं दापयेत्। स्वामिनश्चानिवेद्य चारयतो द्वादशपणो दण्डः। प्रमुंचतश्चतुर्विंशतिपणः। पालिनामर्धदण्डः। तदेव षण्डभक्षणे कुर्यात्। वाटभेदे द्विगुणः। वेश्मखलवलयगतानां च धान्यानां भक्षणे हिंसाप्रतीकारं कुर्यात्।

ग्राम के रहने वाले लोग अपने पशुओं को चराने के लिये विवीत, माल (उच्च) एवं वन की भूमि का उपभोग कर सकेंगे। गोचरभूमि में चर कर जाने वाले ऊँट, महिष आदि पशुओं की चराई चौथाई पण, गौ, अश्व, गर्दभ आदि की अष्टमांश पण तथा भेड़-बकरी आदि की शोडशांश पण विवीताध्यक्ष ले। चरने के पश्चात् भी पशु वहीं बैठे रहें तो दुगुना और अहोरात्र बैठे रहें तो चौगुना शुल्क वसूल करे। किन्तु ग्रामदेवता के उद्देश्य से परित्यक्त वृषभ और प्रसवोपरान्त दस दिन तक गौ पर अथवा छोड़े हुए साँड़ पर भी कोई शुल्क नहीं लिया जायगा। किसी का पशु किसी अन्य के खेत को चर जाय तो सब ग्रामवासी उसकी क्षति पर विचार करके दुगुना धन उसे दिला दें, जिसकी क्षति हुई हो। क्षेत्रस्वामी की अनुमति के बिना उसका खेत चराने पर बारह पण और खेत पर पशुओं को बन्धन-रहित छोड़े रखने पर चौबीस पण का दण्ड दे। किन्तु खेत-रक्षक के पशु ही उसके खेत में पड़े रहें तो दण्ड का प्रश्न ही नहीं उठता। यही दण्ड-विधान केले आदि के उद्यान में पशु चरने पर मान्य होगा। खेत का बाड़ा तोड़ कर चराने के लिए पशुओं को घुसाने वाले पर दुगुना दण्ड करे। घर या खलिहान स्थित अन्न को

चराने वाला भी दुगुने दण्ड का भागी होगा। उक्त सब दशाओं में क्षेत्रस्वामी की हुई क्षति की पूर्ति पशुस्वामी से कराई जायगी।

अभयवनमृगाः परिगृहीता वा भक्षयन्तः स्वामिनो निवेद्य यथाऽवध्यास्तथा निषेद्धव्याः। पशवो रश्मिष्टतोदाभ्यां वारयितव्याः। तेषामन्यथा हिंसायां दण्डपारुष्यदण्डाः। प्रार्थयमाना दृष्टापराधा वा सर्वोपायैर्नियन्तव्याः। इति क्षेत्रपथहिंसा।

अभयवन के मृगों को मारे या कष्ट दिये बिना ही उनके स्वामी को सूचित करके खेत में आने से रोके। यदि वे रस्सी से बँधे या खुलें हों तो छड़ी से इस प्रकार मारते हुए रोकें, जिससे कि उन्हें कष्ट न हो मृगों के प्रति इससे भिन्न व्यवहार अर्थात् हिंसा आदि के दोषी को दण्डपारुष्य-प्रकरणोक्त दण्ड देना चाहिए। किन्तु जो पशु रोकने पर आक्रमण करने लगें और जिन्होंने पहिले भी रक्षकों पर आक्रमण किये हों, उन पशुओं के दमन का उपाय करना उचित है। यह क्षेत्र-मार्ग की क्षति विषयक व्याख्या पूरी हुई।

कर्षकस्य ग्राममभ्युपेत्याकुर्वतो ग्राम एवात्ययं हरेत्। कर्माकरणे कर्मवेतनाद्द्विगुणं, हिरण्यादाने प्रत्यंशद्विगुणं, भक्ष्यपेयादाने च प्रवहणेषु द्विगुणमशं दद्यात्। प्रेक्षायामनशदः सस्वजनो न प्रेक्षेत। प्रच्छन्नश्रवणेक्षणे च सर्वहिते च कर्मणि निग्रहे द्विगुणमंशं दद्यात्। सर्वहितमेकस्य ब्रुवतः कुर्युराज्ञाम्। अकरणे द्वादशपणो दण्डः। तं चेत्संभूय वा हन्युः पृथगेषामपराधद्विगुणो दण्डः। उपरन्तृषु विशिष्टः। ब्राह्मणतश्चैषां ज्यैष्ठ्यं नियम्येत। प्रवहणेषु चैषां ब्राह्मणेनाकामाः कुर्युः। अंशं च लभेरन्। तेन देशजातिकुलसंघानां समयस्यानपाकर्म व्याख्यातम्।

राजा देशहितान्सेतून् कुर्वतां पथि संक्रमान्।
ग्रामशोभाश्च रक्षाश्च तेषां प्रियहितं चरेत्॥

यदि कोई कृषक (हल चलाने वाला) ग्राम-समाज का कार्य करना स्वीकार करके न करे उस पर ग्राम की जनता दण्ड लगावे। यदि वह

कार्य न करता हुआ अपने भाग का चन्दा अथवा सामूहिक गोष्ठी या उत्सव का चन्दा न दे तो उस पर दुगुना दण्ड करना चाहिए। यदि किसी अभिनय आदि का चन्दा न दे तो उसे उसके देखने के आनन्द से सपरिवार वंजित कर दे। छिप कर देखने वाले या समाज के हितकारी कार्यों में द्रव्य न देने वाले भी दुगुने दण्ड के भागी होंगे। सर्वहित का उपदेश करने वाले की बात सभी ग्रामवासियों को माननी चाहिए। उसकी बात न मानने वाले पर बारह पण का दण्ड किया जाय। यदि बहुत-से व्यक्ति मिल कर उसका आदेश-पालन न करें तो पृथक्-पृथक् रूप से प्रत्येक पर दुगुना दण्ड करे और उनके नेता को भी अवश्य दण्डित करे, जिससे कि ब्राह्मणादि सब उच्च लोगों पर भी नियन्त्रण किया जा सके। यदि ब्राह्मण किसी सामूहिक कार्य में योग न दे तो दोषी नहीं माने जाँयगे। इस प्रकार देश, जाति एवं कुलों से सम्बधित नियमों के न मानने पर दण्ड की व्यवस्था कह दी गई। सभी कार्य करने वालों को सामूहिक रूप से संगठित कर देश के लिए कल्याणकारी सेतु, मार्ग, ग्राम की शोभा और रक्षा की व्यवस्था करता हुआ राजा सब के प्रिय और हितकारी कार्यों को करे।

एकादशोऽध्यायः

ऋणादान

सपादपणा धर्म्या मासवृद्धिः पणशतस्य। पंचपणा व्यावहारिकी। दशपणा कान्तारगाणाम्। विंशतिपणा सामूद्राणाम्। ततः परं कर्तुः कारयितुश्च पूर्वः साहसदण्डः। श्रोतृणामेकैकं प्रत्यर्धदण्डः। राजन्ययोगक्षेमवहे तु धानकधारणिकयोश्चरित्रमवेक्षेत। धान्यवृद्धिः सस्यनिष्पत्तावुपार्धा, परं मूल्यकृता वर्धेत। प्रक्षेपवृद्धिरुदयादर्धम्। सन्निधानसन्ना वार्षिकी देया। चिरप्रवासः संस्तम्भप्रविष्टो वा मूल्यद्विगुणं दद्यात्। अकृत्वा वृद्धिं

साधयतो वर्धयनो वा मूल्यं वा वृद्धिमारोप्य श्रावयतो बन्धचतुर्गुणो दण्डः। तुच्छश्रावणायामभूतचतुर्गुणः। तस्यत्रिभागमादाता दद्यात्। शेषं प्रदाता।

अब ऋण के आदान प्रदान की विधि कहते हैं। सौ पण मूल पर सवा पण ब्याज धर्मसगत है। क्रय-विक्रय विषयक व्यवहार पर पाँच प्रतिशत उचित है। वन या दुर्गम मार्गों द्वारा व्यापार करने वालों में दश प्रतिशत ब्याज व्यावहारिक है। समुद्री मार्ग के व्यापार में ब्याज बीस प्रतिशत उचित माना गया है। उक्त नियम के न मानने पर प्रथम साहस और अनियमित ब्याज के आदान-प्रदान से साक्षी होने वालों पर आधा दण्ड करे। यदि राजा ऋणदाता और लेने वाले दोनों को किसी व्यसनवश असमर्थ समझे तो उनकी परिस्थिति के अनुसार ऋण के देन-लेन की सीमा निर्धारित कर दे। अन्न का आदान-प्रदान ब्याज पर हो तो खेत में अन्न पकने तक की अवधि का ब्याज अर्धांश से अधिक नहीं होगा (अर्थात् जितना अन्न लिया है उसका डयौढ़ा हो सकता हैं) खेत से अन्न उठने के पश्चात् मूलभूत अन्न का ब्याज अन्न के मूल्य पर लगेगा अर्थात् डयौढ़े अनाज का मूल्य निश्चित होने पर आगे का ब्याज चलेगा। यदि बिके हुए अन्न को खरीददार अपने पास रख कर आगे कभी बिकने के पश्चात् देना चाहे तो उसका ब्याज विक्रय से प्राप्त लाभ से आधे तक देय हो सकेगा। यदि यह धन समय-समय पर न दी जाय तो पूरा अन्न बिकने पर पूर्ण धनराशि देनी होगी। यदि कोई व्यक्ति पर देश में रहने अथवा अन्यान्य कारण से ऋण का धन दे सके तो उसे मूल अन्न अथवा नकद का द्विगुणित देना चाहिए। यदि ऋणदाता ब्याज निश्चित न होने पर भी ब्याज ले, या कम ब्याज पर देकर अधिक ले या ब्याज जोड़ कर ऋण लेने वाले को मूल धन बतावे तो उस पर चौगुना दण्ड करे। उसमें जो मिथ्या साक्षी हो, वह भी चौगुने ही दण्ड का भागी होगा। इस दण्ड

के तीन भाग ऋण लेने वाला और एक भाग ऋण प्रदान करने वाला देगा।

दीर्घसत्रव्याधिगुरुकुलोपरुद्धं बालमसारं वा नर्णमनुवर्धेत। मुच्यमानमृणमप्रतिगृह्णतो द्वादशपणो दण्डः। कारणापदेशेन निवृत्तवृद्धिकमन्यत्र तिष्ठेत्। दशवर्षोपेक्षितमृणमप्रतिग्राह्यमन्यत्र बालवृद्धव्याधितव्यसनिप्रोषितदेशत्यागराज्यविभ्रमेभ्यः।

यदि कोई अवयस्क द्वादशवर्ष की अवधि के यज्ञ, रोग अथवा अध्ययनार्थ गुरुकुल में ही रहे, या कोई वयस्क भी अशिक्षित हो तो ऐसे व्यक्तियों पर ऋण के मूलधन ब्याज की वृद्धि नहीं होगी। यदि कोई ऋण लेने वाला दाता के धन को चुकता कर ऋणमुक्त होना चाहे, किन्तु ऋणदाता लेना स्वीकार न करे तो वह बारह पण से दंडभागी होगा यदि ऋणदाता उस धन को अपर्याप्त समझे तो उस ऋण को वृद्धि सहित अथवा बिना ब्याज हो तो मूल धन को किसी मध्य के पास रख दे। यदि ऋणदाता दस वर्ष तक अपना धन न ले तो ऋण लेने वाले से धन वसूल नहीं कर सकेगा। किन्तु यदि वह धन बालक, वृद्ध, व्याधिग्रस्त, संकटग्रस्त, प्रवासी, देशत्यागी या राज्य विप्लव में फँसे हुये व्यक्तियों पर हो तो दस वर्षों के पश्चात् भी वसूल किया जा सकता है।

प्रेतस्य पुत्राः कुसीदं दद्युः। दायादा वा रिक्थहराः सहग्राहिणः प्रतिभुवो वा। न प्रतिभाव्यमन्यत्। असारं बालप्रातिभाव्यम्। असंख्यातदेशकालं तु पुत्राःपौत्रादायादा वा रिक्थ हरमाणा दद्युः। जीवितविवाहभूतिप्रातिभाव्यमसंख्यातदेशकालं तु पुत्राः पौत्रा वा वहेयुः। नानर्णसमवाये तु नैकं द्वौ युगपदभिवदेयाताम्। अन्यत्र प्रतिष्ठमानात्। तत्रापि गृहीतानुपूर्व्या राजश्रोत्रियद्रव्यं वा पूर्वं प्रतिपादयेत्। दम्पत्योः पितृपुत्रयोर्भ्रातॄणां चाविभक्तानां परस्परकृतमृणमसाध्यम्।

मृत ऋणी के पुत्रों का कर्त्तव्य है कि वे अपने पिता के ऋण को ब्याज सहित अदा करें। अथवा जिन दायभागियों ने मृतक की सम्पत्ति प्राप्त की हो अथवा जिसने उसके मरण काल में ऋण चुकाने का दायित्व अपने ऊपर लिया हो अथवा जो उस ऋण में प्रतिभू (जमानतदार) हों, वे उस ऋण को चुकाने के जुम्मेदार होंगे। ऋण चुकाने के विषय में अन्य किसी प्रकार की जमानत नहीं मानी जा सकती। बालक की जमानत किसी प्रकार के भी ऋण के विषय में वैध नहीं होगी। जो ऋण किसी निश्चित अवधि या स्थान विषय पर चुकाने के लिए न दिया गया हो तो मृतक ऋणी की सम्पत्ति लेने वाले पुत्र, पौत्र या उत्तराधिकारी उसे चुकता करेंगे। किसी के जीवन, विवाह और पृथिवी के विषय में यदि देश-काल की अवधि निश्चित न हुई और उसमें जो प्रतिभू (जमानतदार) हों उसके मरने पर, उसके पुत्र-पौत्रादि अपने पूर्वज के समान ही प्रतिभू रहेंगे, वे उस उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो सकते। जिस किसी ने अनेक व्यक्तियों से ऋण ले रखा हो उस पर एक साथ दो ऋणदाता धनिक अभियोग नहीं चला सकते। किन्तु ऋणी के प्रवासी होने पर ऐसा कर सकते हैं। जिस किसी ने अनेक प्रकार के ऋण ले रखे हों, वह पूर्व और अपर के क्रम से ऋण चुकता करेगा। उमे सर्व प्रथम, राजा और श्रोत्रिय का ऋण चुकाना होगा। दम्पत्ति, पिता, पुत्र तथा सम्मिलित रूप से रहने वाले बन्धुगण द्वारा परस्पर लिया हुआ ऋण निर्णय में साध्य नहीं होता अर्थात् इसका निर्णय नहीं हो सकता।

अग्राह्याः कर्मकालेषु कर्षका राजपुरुषाश्च। स्त्री वाऽप्रतिश्राविणी प्रतिकृतमृणमन्यत्र गोपालकार्धसीतिकेभ्यः। पतिस्तु ग्राह्यः। स्त्रीकृतमृणमप्रतिविधाय प्रोषित इति सम्प्रतिपत्तावुत्तमः। असम्प्रतिपत्तौ तु साक्षिणः प्रमाणम्। प्रात्ययिकाः शुचयोऽनुमता वा त्रयोऽवरार्ध्याः पक्षानुमतौ वा द्वौ ऋणं प्रति न त्वेवैकः।

कार्यरत कृषक एवं राजकर्मचारियों को ऋण न चुकाने के अभियोग में नहीं पकड़ा जा सकता। जिस पत्नी ने ऋण चुकाने का उत्तरदायित्व न लिया हो वह भी पति द्वारा लिये गये ऋण के अभियोग में नहीं पकड़ी जा सकती। किन्तु स्त्री की प्रमुखता वाले गोपालक या आधी फसल प्राप्त करने वाले की पत्नी पति के कर्ज में पकड़ी जा सकती है। यदि पत्नी द्वारा लिये गये ऋण को चुकाने से पूर्व ही उसका पति देशान्तर में चला जाय तो उसे पकड़ सकते हैं। यदि ऋणी उस धन का लेना स्वीकार कर ले तो वाद का निर्णय सरल होगा, किन्तु यदि अस्वीकार करे तो साक्षी ही उसमें प्रमाण होंगे। उन साक्षियों का गिनती में तीन विश्वसनीय, सरल चित्त एवं वादी-प्रतिवादी द्वारा मान्य होना चाहिये। यदि दोनों पक्ष दो-दो साक्षी प्रस्तुत करें तो भी निर्णय लिया जा सकता है। किन्तु एक साक्षी से कार्य नहीं चलता।

प्रतिषिद्धाः श्यालसहायान्वर्थिधनिकधारणिकवैरिन्यङ्गधृतदण्डाः। पूर्वे चाव्यवहार्याः राजश्रोत्रियग्रामभृतककुष्ठिव्रणिनः पतितचण्डालकुत्सितकर्माणोऽन्धबधिरमूकाहंकारवादिनः स्त्रीराजपुरुषाश्च। अन्यत्र स्ववर्ग्येभ्यः। पारुष्यस्तेयसंग्रहणेषु तु वैरिश्यालसहायवर्जाः। रहस्यव्यवहारेष्वेका स्त्री पुरुष उपश्रोता उपद्रष्टा वा साक्षी स्याद्राजतापसवर्जम्।

श्यालक, सहायक, अन्वर्थी, ऋणदाता, ऋणी, वैरी, अंग-रहित और दण्डित व्यक्ति साक्षी के योग्य नहीं माने जाते। जो व्यक्ति व्यवहार के अयोग्य कहे गये हैं वे तथा राजा, श्रोत्रिय, ग्राम-भृत्य, कुष्ठी, व्रणी, पतित, चण्डाल, कुत्सित कर्मवाला, अन्धा, बहरा, गूंगा, अहंकारी स्त्री एवं राजपुरुष भी गवाही देने में उपयुक्त नहीं माने जाते। किन्तु उन्हें अपने-अपने वर्ग के विवाद में साक्षी होने से नहीं रोका जा सकता। पारुष्य, स्तेय और संग्रहण अर्थात् व्यभिचार विषयक विवाद में वैरी श्यालक एवं सहायक के अतिरिक्त शेष सभी साक्षी स्वीकार किये जा सकते हैं। गुप्त विवादों में किसी एक ही स्त्री या पुरुष का साक्ष्य माना

जा सकता है। अथवा एक उपश्रोता अर्थात् घटना विषयक वार्ता को स्वयं सुनने वाले या उपद्रष्टा अर्थात् घटना के प्रत्यक्षदर्शी का साक्ष्य स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु राजा या तपस्वी की साक्षी वर्जित है।

स्वामिनो भृत्यानामृत्विगाचार्याः शिष्याणां मातापितरौ पुत्राणां चानिग्रहेण साक्ष्यं कुर्युः। नेषामितरे वा। परस्पराभियोगे चैषामुत्तमाः। परोक्ता दशबन्धं दद्युरवराः पंचबन्धम्। इति साक्ष्यधिकारः।

ब्राह्मणोदकुम्भाग्निसमीपे साक्षिणः परिगृह्णीयात्। तत्र ब्राह्मणं ब्रूयात्—'सत्यं ब्रूहीति'। राजन्यं वैश्यं वा—'मा तवेष्टापूर्तफलं कपालहस्तः शत्रुकुलं भिक्षार्थी गच्छेरिति'। शूद्रं—'जन्मजन्मान्तरे यद्वः पुण्यफलं तद्राजानं गच्छेत्। राज्ञश्च किल्बिषं युष्मानन्ययावादे। दण्डश्चानुबन्धः। पश्चादपि ज्ञायेत यथा दृष्टश्रुतम्। एकमंत्राः सत्यमवहरते'ति।

बाधा न होने पर स्वामी भृत्य की, ऋत्विक या आचार्य शिष्य की, माता-पिता पुत्र की या इसके विपरीत अर्थात् भृत्य स्वामी की या शिष्य, पुत्र आदि अपने गुरु या माता पिता की साक्षी हो सकते हैं। किन्तु स्वामी-सेवक आदि के विवादों में श्रेष्ठ पुरुषों की पराजय होजाय तो उसे देय धन से दस गुणा अधिक धन विजयी व्यक्ति को देना होगा। यदि भृत्यादि निम्न श्रेणी के व्यक्ति पराजित हो जाँय तो देय धन से पँचगुणा अधिक देने को बाध्य होंगे। यह साक्षी के अधिकार का विवेचन पूर्ण हुआ। साक्षियों को ब्राह्मण, जलघट एवं अग्नि के निकट ले जाकर यदि ब्राह्मण साक्षी हो तो उस से कहना चाहिए—सत्य बोलना। क्षत्रिय एवं वैश्य साक्षियों से कहा जाय—यदि मिथ्या कहोगे तो तुम्हारी इष्टापूर्ति का फल नष्ट होजायगा और तुम्हें शत्रु के द्वार पर जाकर भिक्षा मांगनी होगी। शूद्र साक्षी हो तो उससे कहे—तुम्हारे जन्म-जन्मांतर के सभी पुण्यफल मिथ्या भाषण करने पर राजा को प्राप्त

होंगे और राजा के सभी पाप तुम्हारे ऊपर आ लदेंगे। मिथ्या कहने के अपराध में भविष्य में दण्ड मिल सकता है। देखी-सुनी घटना छिपाना चाहोगे तो भी कभी प्रकट होगी ही, इसलिए तुम एक साथ विचार करके सत्य को प्रकट करो

अनवहरतां सप्तरात्रादूर्ध्वं द्वादशपणो दण्डः। त्रिपक्षादूर्ध्वं-मभियोगं दद्युः। साक्षिभेदे यतो बहवः शुचयोऽनुमता वा ततो नियच्छेयुः। मध्यं वा गृह्णीयुः। यद्वा द्रव्य राजा हरेत्। साक्षिणश्चेदभियोगादूनं ब्रूयुरतिरिक्तस्याभियोक्ता बन्धं दद्यात्। अतिरिक्तं वा ब्रूयुस्तदतिरिक्तं राजा हरेत्। बालिश्यादभियोक्तुर्वा दुःश्रुतं दुर्लिखितं प्रेताभिनिवेशं वा समीक्ष्य साक्षिप्रत्ययमेव स्यात्। साक्षिबालिश्येष्वेव पृथगनुयोगे देशकालकार्याणां पूर्वमध्यमोत्तमा दण्डा इत्यौशनसाः।

साक्षी गण सात दिन में भी सत्य प्रकट न करे तो सात दिनों के पश्चात् उन पर बारह पण से नित्यप्रति दंडित करे। यदि तीन पक्ष व्यतीय हो जांय तो वादी की जीत मानी जायगी और प्रतिवादी सम्पूर्ण धन (व्यय एवं दंड सहित) अदा करेगा। यदि साक्षियों की बातों में साम्य न हो तो धर्मस्थ मत लेकर पवित्र एवं सम्मानित साक्षियों के बहुमत के अनुसार निर्णय दे। यदि दोनों पक्ष के साक्षियों में साम्य प्रतीत हो निर्णयार्थ कोई मध्यमार्ग निश्चित करे। यदि ऐसा भी न हो सके तो सभी विवास्पद धन पर राजा का अधिकार हो। वादी जितना धन बताये, उससे कम का साक्ष्य मिलने पर वादी को अधिक बताये धन से पंचगुने धन से दण्डित करे। यदि वादी द्वारा माँगे हुए धन से अधिक धन साक्ष्य द्वारा प्रमाणित हो तो उस अधिक धन का अधिकारी राज्य होगा। यदि वादी के दोष से ऋण-लेखक कुछ का कुछ सुन कर लिख दे या किसी प्रियजन की मृत्यु आदि के शोक में व्याकुल होने के कारण अन्यथा लिख दे तो साक्षी के आधार पर इस सब का निर्णय किया जाय। शुक्राचार्य के मत वालों के अनुसार

यदि साक्षीगण अपने अज्ञानवश देश, काल एव कार्य विषयक बातों में विभिन्नता व्यक्त करें तो उन्हें प्रथम, मध्यम एवं उत्तम साहस का दण्ड दे।

कूटसाक्षिणो यमर्थमभूतं वा कुर्युर्भूतं वा नाशयेयुस्तद्दशगुणं दण्डं दद्युरिति मानवाः। बालिश्याद्वा विसंवादयतां चित्रो घात इति बार्हस्पत्याः। नेति कौटिल्यः। ध्रुवा हि साक्षिणः श्रोतव्याः। अश्रृण्वतां चतुर्विंशतिपणो दण्डः। ततोऽधर्मध्रुवाणाम्।

देशकालाविदूरस्थान् साक्षिणः प्रतिपादयेत्।
दूरस्थानप्रसारान् वा स्वामिवाक्येन साधयेत्॥

मनु के मतानुयायी कहते हैं कि यदि कपटी साक्षी धन विषयक कल्पित बात कहते हों या यथार्थ को छिपाते हों तो उनके द्वारा कल्पित या हीन हुए दोनों प्रकार के धन का दस गुना दंड दे। आचार्य वृहस्पति के अनुसार जो साक्षी अपनी मूर्खता से विवाद में व्यभिधान उपस्थित करे उसे विचित्र वध का दण्ड दे। आचार्य कौटिल्य उक्त मत का अनुमोदन नही करते। उनके अनुसार निश्चित एवं यथार्थ बात कहने वाले साक्षियों की बातें धर्मस्थ को ध्यान से सुननी चाहिए। यदि वे साक्षी निश्चित तिथि पर न्यायालय में उपस्थित न हों, तो उन्हें चौबीस पण का दण्ड दे। अयथार्थवादी बारह पण से दण्डित होंगे। अभियोक्ता को देश-काल से निकट सम्पर्क वाले साक्षी उपस्थित करने चाहिए। जो दूर या निकट रह कर बुलाने पर भी उपस्थित न हों, उन्हें साक्ष्य देने के लिए न्यायाधीश के आदेश से बाध्य करे।

द्वादशोऽध्यायः

औपनिधिक (धरोहर)

उपनिधिः ऋणेन व्याख्यातः। परचक्राटविकाभ्यां दुर्गराष्ट्रविलोपे वा, प्रतिरोधकैर्वा ग्रामसार्थव्रजविलोपे, चक्रयुक्ते नाशे

वा, ग्रामभव्याग्न्युदकाबाधे वा, किंचिदमोक्षणे कुप्यमनिर्हार्यंव-र्जमेकदेशमुक्तद्रव्ये वा, ज्वालावेगोपरुद्धे वा नावि निमग्नायां मुषितायां वा स्वयमुपरूढो नोमनिधिमभ्याभवेत् ।

उक्त ऋणशोधन वाली व्यवस्था ही उपनिधि अर्थात् धरोहर के विषय में लागू होती है। धरोहर रखने वाला व्यक्ति निम्न संकटों के उपस्थित होने के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से धरोहर को किसी अन्य व्यक्ति को न दे। शत्रुओं या वन्य जतिओं द्वारा दुर्ग अथवा राष्ट्र के नष्ट होने पर प्रतिरोध करने वाले दस्युओं द्वारा ग्रामीणों, वणिकों या गोपालकों के क्षय होने पर, राज्य या देश के नष्ट होने पर, ग्राम के दहन होने अथवा बाढ़ग्रस्त होने पर, कुप्यादि के बचाने के पश्चात् अग्नि का शमन होने पर, नौका के डूबने या सब सामान के चुरा लिए जाने पर यदि धरोहर रक्षक अपनी प्राण-रक्षा ही किसी प्रकार कर पाये और उस कारण धरोहर की रक्षा न कर सके तो उसका कुछ दोष नहीं होगा।

उपनिधिभोक्ता देशकालानुरूपं भोगवेतनं दद्यात् । द्वादशपणं च दण्डम् । उपभोगनिमित्तं नष्टं विनष्टं याभ्यावहेत्, चतुर्विंश-तिपणश्च दण्डः । अन्यथा वा निष्पतने । प्रेतं व्यसनगतं वा नोप-निधिमभ्यावहेत् । आधानविक्रयापव्ययनेषु चास्य चतुर्गुणपच-वन्धो दण्डः । परिवर्तने निष्पाते वा मूल्यसमः । तेन आधिप्रणा शोपभोगविक्रयाधानापहारा व्याख्याताः ।

बिना अनुमति के यदि कोई रक्षक उस धरोहर को अपने काम में लावे तो वह उसके स्वामी को भोग-वेतन के रूप में धन देगा और उसे बारह पण का राजदण्ड भी देना होगा। यदि भोगने के समय वह धरोहर खो जाय या नष्ट होजाय तो वह उस धरोहर को अपने धन से उपलब्ध करके उसके स्वामी को लौटायेगा और यदि न्यायालय में इस इस विषय का वाद प्रस्तुत हो तो चौबीस पण दण्ड में भी देगा। किसी भी प्रकार से धरोहर के चले जाने पर चौबीस पण का राजदंड देना

होगा। धरोहर रक्षक के मरने या संकट-ग्रस्त होने पर कोई अभियोग नहीं चलाया जा सकेगा। यदि रक्षक धरोहर को कहीं बंधक रख दे, वेचदे या अपव्यय में क्षीण कर दे तो चौगुना भूल्य देने को वाध्य होगा ओर उसका पंचमांश राजदण्ड भी देगा। किन्तु धरोहर को बदलने आदि के दोष में उसे धरोहर का यथार्थ मूल्य ही देना होगा। धरोहर विषयक उक्त नियम ही बंधक वस्तु के नाश, उपभोग, विक्रय या दूसरे के पास वंधक रखने अथवा छिपा लेने पर भी लागू हुए समझे।

नाधिः सोपकारः सीदेत्। न चास्य मूल्यं वर्धेत। निरुपकारः सोदेन्मूल्यं चास्य वर्धेतान्यत्र निसर्गात्। उपस्थितस्याधिमप्रयच्छतो द्वादशपणो दण्डः। प्रयोजकासन्निधाने वा ग्रामवृद्धेषु स्थापयित्वा निष्क्रयमाधिं प्रतिपद्येत। निवृत्तवृद्धिको वाधिस्तत्कालकृतमूल्यस्तत्रैवावतिष्ठेत, अनाशविनाशकरणाधिष्ठितो वा। धारणकसन्निधाने वा विनाशभयादुद्गतार्थं धर्मस्थानुज्ञातो विक्रीणीत। आधिपालप्रत्ययो वा।

आभूषणादि बंधक वस्तुओं को तुड़वा नहीं सकते। उनकी व्याज वृद्धि भी नहीं होती। उन्हें व्यापार के कार्य में ला सकते हैं ओर तब उनका मुल्य या व्याज भी वढ़ सकता है। जिसके पास ऐसी वस्तु रखी गई हो, वह उस न लौटावे तो बारह पण से दण्डित किया जाय। यदि धरोहर का स्वामी प्रवास में हो और वहाँ से अपनी वस्तु माँगे या माँग कर सहसा परदेश चला गया हो तो धरोहर रक्षक को वह धरोहर या मूलधन ग्रामवृद्धों के पास रख देनी चाहिए। आभूषणों पर चलते हुए व्याज के बन्द होने के समय ही व्याज सहित मूलधन चुकता होना चाहिए। धन न चुकाने की स्थिति में आभूषण धनिक के पास ही छोड़ना होगा। बन्धक आभूषणादि को वेचने या गलवाने का अधिकार धनिक को नहीं होता, फिर भी यदि अधिक व्याज चढ़ने के कारण आभूषण के डूबने का भय हो तो धर्मस्थ की आज्ञा से धनिक वैसा कर सकता है। अधिपाल अर्थात् वंधक वस्तुओं के निरीक्षक राजपुरुष की

अनुमति से भी बंधक वस्तु बेची, गलाई अथवा अन्यत्र बन्धक रखी जा सकती है।

स्थावरस्तु प्रयासभोग्य फलभोग्यो: वा। प्रक्षेपवृद्धिमूल्यशुद्धमाजीवममूल्यक्षयेणोपनयेत्। अनिसृष्टोपभोक्ता मूल्यमाजीवं बन्धं च दद्यात्। शेषमुपनिधिना व्याख्यातम्। एतेनादेशोऽन्वाधिश्च व्याख्यातौ। सार्थेनान्वाधिहस्तो वा प्रविष्टां भूमिमप्राप्तश्चौरैर्भग्नोत्सृष्टो वा नान्वाधिमभ्यावहेत। अन्तरे वा मृतस्य दायादोऽपि नाभ्यावहेत। शेषमुनिधिना व्याख्यातम्।

खेत आदि बंधक रखने पर धनिक उसे अपने परिश्रम से जोत-बो सकता और उपभोग कर सकता है। उसे बंधक रखने वाले द्वारा जोते-बोये फल अथवा अन्न के उपभोग का भी अधिकार है। यदि धनिक उससे लाभ कमाये तो इस बात का ध्यान न रखते हुए कि सम्पत्ति को किसी प्रकार की क्षति न पहुंचे, अपने उपयोग में लाता हुआ व्यापार करे। किन्तु उस स्थिति में वह उसके स्वामी को बिना ब्याज लिए ही, केवल मूलधन लेकर उसे लौटा दे। यदि स्वामी की अनुमति के बिना ही धनिक उसकी सम्पत्ति से लाभ उठाये तो वह सम्पत्ति उपलब्ध लाभ सहित लौटानी होगी तथा राजदंड भी देना होगा। बंधक के अन्य नियम धरोहर के अनुसार ही हैं। इसी से आदेश अर्थात् किसी को देने का आदेश होने पर भी अन्य को दे दे। तथा 'अन्वाधिकी' (अर्थात् कुछ दिन एक के पास रख कर फिर दूसरे के पास रख दे) की भी व्याख्या पूर्ण होगई समझे। यदि अन्वाधिकी लिए हुए जाने वाला व्यक्ति मार्ग में ही लुट जाय तो अन्वाधिकी का स्वामी उसे अपनी वस्तु लौटाने को बाध्य नहीं कर सकता। अथवा अन्वाधि लेकर गये व्यक्ति की मार्ग में मृत्यु होने पर उसके पुत्रादि उत्तराधिकारी वस्तु को लौटाने के लिए विवश नहीं किये जा सकते। आदेश और अन्वाधि विषयक अन्य नियम बंधक के समान ही हैं।

याचितकमवक्रीतकं वा यथाविधं गृह्णीयुस्तथाविधमेव अर्पयेयुः । भ्रेषोपनिपाताभ्यां देशकालोपरोधि दत्तं नष्टं विनष्टं वा नाभ्याभवेयुः । शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् । वैयावृत्यविक्रयस्तु वैयावृत्यकरा यथादेशकालं विक्रीणानाः पण्यं यथाजातमूल्यमुदयं च दद्युः। शेषमुपनिधिना व्याख्यातम्। देशकालातिपातने वा परिहीणं सम्प्रदानकालिकेन अर्घेण मौल्यमुदयं च दद्युः ।

याचित अथवा भाड़े पर ली हुई वस्तु को ज्यों की त्यों लौटानी चाहिए । यदि मांगी हुई वस्तु किसी आकस्मिक विपत्ति या देश-काल की स्थिति के कारण खो जाय अथवा नष्ट हो जाय तो मांग कर लेने वाले व्यक्ति द्वारा वह देय नहीं होगी । शेष नियम धरोहर वस्तु के समान ही हैं । अब विभिन्न वस्तुओं के विक्रय-विषयक नियमों को कहते है । उनके व्यापारी देशकालानुसार मूल्य एवं ब्याज उन थोक व्यवसाइयों को भेजते रहें, जिनसे खरीदी गई हों । धरोहर के प्रकरण में इसके भी शेष नियम बता दिये गये हैं । यदि देश-काल के अनुमार मूल्य देने के वचन पर यदि कोई वस्तु ली गई हो और उसका भाव सहसा घट जाय तो मूल्य का भुगतान करते समय वाले भाव से ही धन चुकाया जायगा ।

यथासंभाषितं वा विक्रीणाना नोदयमधिगच्छेयुः । मूल्यमेव दद्युः। अर्घपतने वा परिहीणं यथापरिहीणं मूल्यमूनं दद्युः। सांव्यावहारिकेषु वा प्रात्ययिकेष्वराजवाच्येषु भ्रेषोपनिपाताभ्यां नष्टं विनष्टं वामूल्यमपि न दद्युः।देशकालान्तरितानां तु पुण्यानांक्षयव्ययविशुद्धं मूल्यद्रव्यं च दद्युः। पण्यसमवायानां च प्रत्यंशम्' शेषमुपनिधिना व्याख्यातम् । एतेन वैयावृत्यविक्रयो व्याख्यातः ।

सौदा निश्चित होने पर माल उठा लिया जाय और तब उसके भाव चढ़ जाँय तो उस माल पर मूल्यवृद्धि लागू नहीं होगी । किन्तु किन्तु भाव कम होने पर बाजार भाव की दर से ही मूल्य दिया जायगा । यदि सांव्यावहारिक (आढ़तिया) विश्वस्त हो और उस

पर राज्य की कोई निषेधाज्ञा लागू न हुई हो और किसी आकस्मिक संकट के कारण उसके द्वारा माल खो जाय या नष्ट हो जाय तो उसे माल का मूल्य देना आवश्यक नहीं होगा। किन्तु देश या काल के अंतर से वेचने के लिए प्राप्त माल के मूल्य एवं लाभ से क्षय तथा कर्मचारियों के वेतन-भत्ते आदि के व्यय को निकाल कर शेष धन माल के स्वामी को देना अनिवार्य होगा। अथवा अन्यान्य प्रकार के मालों का क्रय-विक्रय करने वाला व्यापारी सब वस्तुओं मे मिलने वाले लाभ का अंश माल के स्वामी को देगा। व्यापारियों से सम्वन्धित शेष नियम धरोहर वाले प्रकरण के अनुसार ही समझे। इस प्रकार यह वैयावृत्य अर्थात् व्यापारियों से संबन्धित व्याख्या पूर्ण हुई।

निक्षेपश्चोपनिधिना। तमन्येन निक्षिप्तमन्यस्यार्पयतो हीयेत। निक्षेपापहारे पूर्वापादानं निक्षेप्तारश्च प्रमाणम्। अशुचयो हि कारवः, नैषां करणपूर्वो निक्षेपधर्मः। करणहीनं निक्षेपमपव्ययमानं गूढभित्तिन्यस्तान् साक्षिणो निक्षेप्ता रहस्यप्रणिपातेन प्रज्ञापयेत्, वानान्ते वा व्ययप्रहवणविश्वासेन। रहसि वृद्धो व्याधितो वा वंदेहकः कश्चित् कृतलक्षणं द्रव्यमस्य हस्ते निक्षिप्यापगच्छेत्। तस्य प्रतिदेशेन पुत्रो भ्राता वाऽभिगम्य निक्षेपं याचेत। दाने शुद्धिः। अन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात्।

निक्षेप अर्थात् आभूषणादि के निर्माणार्थ स्वर्णकार को दिये गए स्वर्णादि की विवेचना भी धरोहर के नियमों से हो गई। यदि किसी ने अपना स्वर्ण किसी स्वर्णकार को दिया है और वह स्वर्णकार उसे किसी अन्य को दे दे तो उसके लौटाने या क्षतिपूर्ति करने का उत्तरदायित्व उसी स्वर्णकार पर होगा, जिसे बनवाने वाले ने दिया था। इसी प्रकार आभूषण बनाने को दिये हुए सोने की उसके पास से चोरी हो जाय तो इस विवाद में आभूषण निर्माता का पूर्व आचरण आदि देख कर ही निर्णय किया जा सकेगा। क्योंकि स्वर्णकार मिथ्या कह

सकता है। उसे मिले हुए सोने का न तो कोई साक्षी रहता है और न कोई लिखित प्रमाण होता है। इसलिए निक्षेप उड़ाने वाले सुनार के किसी पड़ोसी को, जिसने उस रहस्य को सुनार की भीत के पीछे से सुना या देखा हो, साक्षी रूप में उपस्थित करके सिद्ध करे। या कहीं सुरापानार्थ गोष्ठी आयोजित कर उसमें उस सुनार को सुरा पिला कर उस चोरी का रहस्य जानने की चेष्टा करे। अथवा कोई वृद्ध, व्याधिग्रस्त या व्यवसायी उसके हाथ में कोई विशिष्ट चिन्ह युक्त द्रव्य धरोहर रूप में देकर चला जाय और फिर उस निक्षेप्ता का कोई पुत्र या बन्धु उस सुनार के पास जाकर उस धरोहर को वापस माँगे। यदि वह तुरन्त दे दे तो शुद्ध चित्त होगा। यदि बहाने बनावे तो बेईमान होगा, जिससे निक्षिप्त वस्तु को लौटाने के साथ ही चोर जैसा दंड भी भोगना होगा।

प्रव्रज्याऽभिमुखो वा श्रद्धेयः कश्चित् कृतलक्षणं द्रव्यमस्य हस्ते निक्षिप्य प्रतिष्ठेत। ततः कालान्तरागतो याचेत। दाने शुचिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात्। कृतलक्षणेन वा द्रव्येण प्रत्यानयेदेनम्। बालिशजातीयो वा रात्रौ राजदायिकांक्षणभीतः सारमस्य हस्ते निक्षिप्यापगच्छेत्। स एनं बन्धनागारगतो याचेत। दाने शुद्धिरन्यथा निक्षेपं स्तेयदण्डं च दद्यात्।

या कोई व्यक्ति संन्यास लेने के बहाने से कोई चिन्हित वस्तु उस सुनार के हाथ में धरोहर रूप में रख कर कालान्तर में उससे अपनी वस्तु लौटाने को कहे। यदि वह तुरन्त दे दे तो सत्यनिष्ठ और न दे तो वस्तु देने के साथ ही चोरी का दंड भी भुगतेगा। अथवा कोई मनुष्य रात्रिकाल में रत्न आदि की पोटली लेकर भागता हुआ उस सुनार के पास जाय और यह भाव प्रदर्शित करता हुआ कि राजपुरुष पकड़ने को पीछे लगे हैं, उस पोटली को रख कर भागे और अपराधी का अभिनय करता हुआ कारागृह में बन्द होकर वहीं सुनार को बुलावे और अपनी धरोहर लौटाने को कहे। यदि वह तुरन्त दे दे तो सच्चा

अन्यथा चोर के समान दंड पाता हुआ उस धरोहर को भी लौटाने को विवश होगा ।

अभिज्ञानेन चास्य गृहे जनमुभयं याचेत । अन्यतरादाने यथोक्तं पुरस्तात् । द्रव्यभोगानामागमं चास्यानुयुंजीत । तस्य चार्थस्य व्यवहारोपलिंगनमभियोक्तुश्चार्थसामर्थ्यम् । एतेन मिथः समवायो व्याख्यातः ।

तस्मात्साक्षिमदच्छन्नं कुर्यात्सम्यग्विभाषितम् ।
स्वे परे वा जने कार्यं देशकालाग्रवर्णतः ।।

धरोहर वाले दो व्यक्ति उस सुनार के घर जाकर अपनी-अपनी धरोहर लौटाने को कहें । यदि उन दोनों की वस्तुओं में से एक की वस्तु भी न देना चाहे तो वह वस्तु तो देगा ही, साथ ही चोरी का दण्ड भी पायेगा । धर्मस्थ को उस सुनार के आय व्यय एवं द्रव्य विषयक व्यावहारिक ज्ञान की भीं जानकारी करनी चाहिए । साथ ही अभियोग प्रस्तुत करने वाले की आर्थिक स्थिति को भी जाने । तदनन्तर निक्षेप न देने विषयक दण्ड विधानादि के अनुसार सोच समझ कर निर्णय दे । इस प्रकार यह निक्षेप विषयक व्याख्या हुई । इसी लिए किसी भी अपने या पराये व्यक्ति के साथ व्यवहार साक्षियों के समक्ष और लिखित रूप में करे । वे साक्षी भी देश-काल से परिचित उच्च वर्ण के होने चाहिए ।

त्रयोदशोऽध्यायः

दास-कर्मकर-कल्प

उदरदासवर्जमार्यप्राणमप्राप्तव्यवहारं शूद्रं विक्रयाधानं नयतः स्वजनस्य द्वादशपणो दण्डः । वैश्यं द्विगुणः । क्षत्रियं त्रिगुणः । ब्राह्मणं चतुर्गुणः । परजनस्य पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः क्रेतृश्रोतृणां च । म्लेच्छानामदोषः प्रजां विक्रेतुमाधातुं वा न त्वेवार्यस्य दासभावः । अथवाऽऽर्यमाधाय कुलबन्धन आर्या-

णामापदि निष्क्रयं चाधिगम्य बालं साहाय्यदातारं वा पूर्वं निष्क्रीणीरन् ।

अब दास अर्थात् भृत्य या कर्मकारों के विषय में कहते हैं । अपनी उदरपूर्ति के लिए किसी के दास बने हुए अवयस्क शूद्र को यदि उसका कोई स्वजन किसी अन्य के हाथ बेच दे या बन्धक रख दे तो वह बारह पण से और कोई वैश्य-बालक का स्वजन वैसा करे तो चौबीस पण से दण्डित हो । क्षत्रिय-बालक को बेचने वाले पर छत्तीस पण और ब्राह्मण-बालक को बेचने वाले पर अढ़तालीस पण का दण्ड करे । यदि बालक को बेचने वाला स्वजन न हो तो शूद्र का बालक बेचने पर प्रथम, वैश्य-बालक बेचने पर मध्यम और क्षत्रिय बालक बेचने पर उत्तम साहस का दण्ड दे । यदि ब्राह्मण-बालक को बेचे तो मृत्यु दण्ड का अधिकारी होगा । उन बालकों का क्रय करने या साक्ष्य बनाने वाले को भी उपर्युक्त दण्ड उचित होगा । म्लेच्छ जाति वाला अपनी सन्तति बेचने पर दोषी नहीं माना जायगा । किन्तु आर्यजाति का कोई व्यक्ति दास नहीं बनाया जा सकेगा । अथवा अपने कुल के लोगों के बन्धन में पड़ने या संकटग्रस्त हो जाने पर वे आर्य-बालक भी बन्धक रह सकेंगे । यदि बन्धक की वापसी का अवसर प्राप्त हो जाय तो बन्धक हुआ बालक स्वयं या उसके सहायक धनिक को निष्क्रमण मूल्य देने को बाध्य होंगे ।

सकृदात्माधाता निष्पतितः सीदेत् । द्विरन्येनाहितकः । सकृदुभौ परविषयाभिमुखौ । वित्तापहारिणो वा दासस्यार्यभावमपहरतोऽर्धदण्डः । निष्पतितप्रेतव्यसनिनामाधाता मूल्यं भजेत् ।

प्रेतविण्मूत्रोच्छिष्टग्राहणमाहितस्य नग्नस्नापनं दण्डप्रेषणमतिक्रमणं च स्त्रीणां मूल्यनाशकरम् । धात्रीपरिचारिकार्धसीतिकोपचारिकाणां च मोक्षकरम् । सिद्धमुपचारकस्याभिप्रजातस्य अपक्रमणम् । धात्रीमाहितिकां वाकामां स्ववशामभिगच्छतः पूर्वः साहसदण्डः । परवशां मध्यमः । कन्यामाहितिकां वा स्वयमन्येन वा दूषयतो मूल्यनाशः शुल्कं तद्द्विगणश्च दण्डः ।

जो धन आदि लेकर स्वयं ही बन्धक बन गया हो, वह यदि एक बार भी निकल कर भागने लगे तो उसे सदा ही दास बना रहना होगा। जो किसी दूसरे द्वारा बन्धक रखा गया हो, वह दो बार निकल भागने पर सदैव के लिए दास बन जायगा। यदि उक्त दोनों प्रकार के ही बंधक भाग कर परदेश चले जाँय तो दासता से सदा के लिए मुक्त हो जाँयगे। अपने स्वामी का धन चुराने वाले दास को उससे आधा दण्ड दिया जायगा, जो किसी आर्य का वित्त हरण करने वाले साधारण चोर को दिया जाता है। जो दास धनिक के घर से निकल भागे, मर जाय या द्यूत-मद्य आदि दुष्कर्म करे, उसका मूल्य उसे लाकर बन्धक रखाने वाला व्यक्ति देगा। यदि धनिक किसी दास से शव, मल-मूत्र या जूठन उठवाये अथवा दासियों से नग्न पुरुषों को स्नान करवाये, दण्डित कराये या अनाचार करे-कराये तो उसने जो धन बंधक रखने में दिया है, वह नष्ट समझा जायगा। यदि धाय, पारिचारिका, अर्धसीतिका (अपना खेत अधबटाई पर देकर अन्न पाने वाली) और उपचारिका आदि के साथ ऐसा आचरण करे तो वह सदा के लिए मुक्त हो जाँयगी। यदि कोई उपचार (दास) अपने स्वामी की किसी दासी से सन्तान उत्पन्न करे तो उसके साथ भागे हुए के समान व्यवहार किया जायगा। यदि धनिक अपने यहाँ बन्धक किसी धाय से स्वय अनाचार करे तो प्रथम साहस का और यदि दूसरे से करावे तो मध्यम साहस का दंड-भागी होगा। यदि बन्धक हुई किसी कन्या के साथ धनिक व्यभिचार करे या अन्य से कराये तो वह अपने धन से वंचित होने के साथ ही कन्या को शुल्क एवं शुल्क से दुगुना दंड राजा को देगा।

आत्मविक्रयिणः प्रजामार्यां विद्यात्। आत्माधिगतं स्वामिकर्माविरुद्धं लभेत, पित्र्यं च दायम्। मूल्येन चार्यत्वं गच्छेत्। तेनोदरदासाहितकौ व्याख्यातौ। प्रक्षेपानुरूपश्चास्य निष्क्रयः। दण्डप्रणीतः कर्मणा दण्डमुपनयेत्। आर्यप्राणो ध्वजाहृतः कर्मका-

लानुरूपेण मूल्यार्धेन वा विमुच्येत । गृहजातदायागतलब्धक्रीता-नामन्यतमं दासमूनाष्टवर्षं विबन्धुमकामं नीचे कर्मणि विदेशे दासीं वा सगर्भामप्रतिविहितगर्भभर्मण्यां विक्रयाधानं नयतः पूर्वः साहसदण्डः । क्रेतृश्रोतृणां च ।

अपने को स्वय वेचने वाले पुरुष की सन्तान भी आर्य कही जायगी। यदि वह स्वामी के कार्य को क्षीण न करता हुआ अधिक परिश्रम द्वारा कुछ धन अर्जित करे तो उसे उस धन का तथा पैतृक सम्पत्ति का अधिकार रहेगा और वह धनिक का धन अदा करके पुनः आर्य वन सकेगा। इस नियम का लाभ उदरदास और बंधक दोनों ही उठा सकते हैं। निष्क्रमण मूल्य का निर्धारण बन्धक के समय लिए हुए मूल्य के अनुसार होगा। धन न लौटाने के फल स्वरूप जो व्यक्ति दण्डित हों, वे परिश्रम के द्वारा का मूल्य दे सकते हैं। जो आर्य पुरुष युद्ध बन्दी हुआ हो, वह भी कर्म कालानुसार धन-प्रदान द्वारा अपने ऊपर हुए व्यय का आधा देकर ही मुक्त हो सकता है। अपने घर से उत्तराधिकार में या अन्य किसी प्रकार प्राप्त अथवा क्रीत दासों में से किसी आठ वर्ष से भी कम अवस्था के तथा बान्धव-रहित बालक को देशान्तर में ले जाकर बेचे या अपने पास रखे अथवा किसी गर्भवती दासी की परिचर्या की व्यवस्था करने की अपेक्षा, उसे अन्य को वेच दे या कहीं बन्धक रख दे तो प्रथम साहस दण्ड का भागी हो। इस प्रकार से क्रय या बन्धक रखने वाले धनिक और साक्षी आदि भी वैसा ही दण्ड प्राप्त करेंगे।

दासमनुरूपेण निष्क्रयेणार्यमकुर्वतो द्वादशपणो दण्डः । संरोधश्चाकारणात् । दासद्रव्यस्य ज्ञातयो दायादाः । तेषामभावे स्वामी । स्वामिनः स्वस्यां दास्यां जातं समातृकमदासं विद्यात् । गृह्या चेत्कुटुम्बार्थचिन्तनी माता भ्राता भगिनी चास्या अदासाः स्युः । दासं दासीं वा निष्क्रीय पुनर्विक्रयाधानं नयतो द्वादशपणो दण्डः । अन्यत्र स्वयंवादिभ्यः । इति दासकल्पः ।

निष्क्रय मूल्य पाकर भी जो धनिक दास को आर्य न बनने दे तो बारह पण का और अकारण ही दास को मुक्त न करे तो कारागृह का दंड दे। दास के धन का अधिकार उसके परिवारीजनों को होगा। यदि कोई परिवारी न हो तो दास का स्वामी ही उसका अधिकारी होगा। यदि धनिक अपनी दासी से सन्तानोत्पत्ति करे तो वह दासी और उसकी सन्तान भी दासता से मुक्त हो जायगी। यदि वह पुत्रवती दासी पत्नी के रूप में रहने लगे तो उस दासी के भाई-बहिन भी दासता से छूट जाँयगे। एक बार बिके या बन्धक हुए दास-दासी को पुनः बेचने या बन्धक रखने पर बारह पण का दण्ड होगा। यह मुक्त हुए दास-दासी पुनः स्वयं को बेचें या बंधक रखें तो वे अपराधी नहीं माने जाँयगे। इस प्रकार यह दासकल्प पूर्ण हुआ।

कर्मकरस्य कर्मसम्बन्धमासन्ना विद्युः। यथासम्भाषितं वेतनं लभेत। कर्मकालानुरूपसम्भाषितवेतनम्। कर्षकः सस्यानां गोपालकः सर्पिषां वैदेहकः पण्यानामात्मना व्यवहृतानां दशभागमसम्भाषितवेतनो लभेत। सम्भाषितवेतनस्तु यथासम्भाषितम्। कारुशिल्पिकुशीलवचिकित्सकवाग्जीवनपरिचारकादिराशाकारिकवर्गस्तु यथान्यस्तद्विधः कुर्यात्। यथा वा कुशलाः कल्पयेयुस्तथा वेतनं लभेत। साक्षिप्रत्ययमेव स्यात्। साक्षिणामभावे यतः कर्म ततोऽनुयुञ्जीत।

निकटवर्ती कर्मकारों (श्रमिकों) के विषय में पूरी जानकारी रहनी चाहिए। उन्हें रखते समय जो पारिश्रमिक तय होगा, वही मिलेगा। तय न हुआ पारिश्रमिक कार्य और समय के अनुसार दिया जाय। तय न हुआ वेतन कर्षक उत्पन्न अन्नों का, गोपालक उत्पादित दूध-दही घृतादि का तथा श्रमिक उत्पादित माल का दस प्रतिशत वेतन रूप में प्राप्त करेगा। कारु, शिल्पी, कुशीलव, चिकित्सक, वाग्जीवी एवं परिचारक आदि का वेतन अनिर्धारित हो तो उस कार्य के अनुभवी जानकारों द्वारा निर्धारित प्रदान करे। वेतन विषयक विवाद

का निपटारा साक्षी आदि के आधार पर किया जाना चाहिए। साक्षी के अभाव में कार्यादि के विषय में पूछताछ द्वारा जानकारी करके ही निर्णय दे।

वेतनादाने दशबन्धो दण्डः षट्पणो वा। अपव्ययमाने द्वादशपणो दण्डः पंचबन्धो वा। नदीवेगज्वालास्तेनव्यालास्तेनव्यालोपरुद्धः सर्वस्वपुत्रदारात्मदानेनार्तस्त्रातारमाहूय निस्तीर्णः कुशलप्रदिष्टं वेतनं दद्यात्। तेन सर्वत्रार्तवानानुशया व्याख्याताः।

लभेत पुंश्चली भोगं संगमस्योपलम्भनात्।
अतियाञ्चा तु जोयेत दौर्मत्याविनयेन वा॥

समय पर वेतन न देने के दोष में स्वामी वेतन का दसवाँ भाग या छः पण का दण्ड देगा। वेतन प्राप्त करके अप्राप्त बताने वाला कर्मचारी वेतन का पंचमांश या बारह पण दण्ड दे। नदी में बाढ़ आने, आग लगने, चोर या व्याल द्वारा संकटग्रस्त होने पर यदि कोई व्यक्ति अपना सर्वस्व, पुत्र, स्त्री या स्वयं को देने का वचन देता हुआ जिस किसी को पुकारे और उसके द्वारा उसकी रक्षा भी हो जाय तो उसके वेतन का निर्धारण कुशल पुरुषों के निर्देश से किया जायगा। यह आर्तजनों की दान विधि कही गई। यदि वेश्या से संगागम होना सिद्ध हो जाय तो भोगकर्त्ता से उसे भोगशुल्क दिलवाया जाय। यदि दुर्मति के वशीभूत हुई वेश्या अधिक धन माँगे तो नहीं देना चाहिये।

चतुर्दशोऽध्यायः

कर्मकरकल्प, सम्भूयसमुत्थान

गृहीत्वा वेतनं कर्म अकुर्वतो भृतकस्य द्वादशपणो दण्डः। संरोधश्चाकारणात्। असक्तः कुत्सिते कर्मणि व्याधौ व्यसने वा अनुशयं लभेत, परेण वा कारयितुम्। तस्य व्ययं कर्मणा लभेत। भर्ता वा कारयितुम्। नान्यस्त्वया कारयितव्यो मया वा नान्यस्य

कर्तव्यमित्यवरोधे भर्तुरकारयतो भृतकस्याकुर्वतो वा द्वादशपणो दण्डः। कर्मनिष्पादने भर्तुरन्यत्र गृहीतवेतनो नासकामः कुर्यात्।

अब संयुक्त कार्य के पारिश्रमिक का विभाग करने के विषय में कहते हैं। जो पारिश्रमिक लेकर भी कार्य न करे, उस श्रमिक पर बारह पण दंड करे। यदि अकारण कार्य न करे तो उससे बलपूर्वक कार्य लिया जाय। यदि कर्मचारी कार्य करने में समर्थ न हो, किसी रोग से पीडित हो अथवा उसे बताया हुआ कार्य कुत्सित हो वह दोषी नहीं माना जायगा। अथवा स्वामी चाहे तो उसके स्थान पर किसी अन्य से काम ले ले। परस्पर कार्य करने-कराने का जिनमें अनुबंध हो गया हो, ऐसे कर्मचारी और स्वामी कार्य न करें या न करायें तो वे बारह पण के दण्डभागी हो सकते हैं। पूर्व स्वामी का कार्य पूर्ण किये बिना ही कोई श्रमिक अन्य से पेशगी ले ले और उसका कार्य करना चाहे तो वैसा नहीं कर सकेगा। उसे पूर्व स्वामी का कार्य पूर्ण करना होगा।

उपस्थितमकारयतः कृतमेव विद्यादित्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। कृतस्य वेतनं, नाकृतस्यास्ति। स चेदल्पमपि कारयित्वा न कारयेत्, कृतमेवास्य विद्यात्। देशकालातिपातनेन कर्मणामन्यथाकरणे वा नासकामः कृतमनुमन्येत। सम्भाषितादधिकक्रियायां प्रयासं न मोघं कुर्यात्। तेन संघभृता व्याख्याताः। तेषामाधिः सप्तरात्रमासीत। ततोऽन्यमुपस्थापयेत्। कर्मनिष्पाकं च। न चानिवेद्य भर्तुः संघः कंचित्परिहरेदुपनयेद्वा। तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः। संघेन परिहृतस्यार्धदण्डः। इति भृतकाधिकारः।

पूर्वाचार्यों के अनुसार यदि अनुबंध के अनुसार उपस्थित कर्मचारी से स्वामी कार्य न कराना चाहे तो कर्मचारी द्वारा कार्य पूरा कर दिया माना जायगा। किन्तु कौटिल्य के मत में कार्य करने पर ही पारि-

श्रमिक मिलेगा, न करने पर नहीं। यदि कोई श्रमिक थोड़ा कार्य कर दे और फिर स्वामी उससे कार्य न कराना चाहे तो यह माना जा सकता है कि श्रमिक ने कार्य किया है। किन्तु निर्दिष्ट काल और स्थान का उल्लंघन करने वाले या स्वामी को इच्छानुसार कार्य न करने वाले कर्मचारी के कार्य को न किया हुआ ही समझा जा सकता है। स्वामी द्वारा निर्दिष्ट ढंग के अतिरिक्त कुछ अधिक कार्य करने पर अपनी इच्छा के विपरीत समझ कर श्रमिक के परिश्रम को व्यर्थ न माने और उसे कुछ पारिश्रमिक अवश्य दे। मिल कर कार्य करने वाले कर्मचारियों के विषयक में भी ऐसा ही समझे। किन्तु मिल कर कार्य करने वालों को सात दिन के परीक्षण पर रखे और फिर कार्य ठीक न हो तो उनके स्थान पर अन्य व्यक्तियों को नियुक्त करे। परीक्षण पर रखे व्यक्तियों का वेतन उन्हें देना चाहिए। समूहबद्ध कर्मचारी स्वामी की आज्ञा के बिना कोई तोड़-फोड़ न करें और न उसकी किसी वस्तु को ही उठा ले जाँय। नियम तोड़ने वाले समूह पर चौबीस पण और वस्तु चुराने के अपराध में बारह पण दण्ड दे। यह भृतिकाधिकार कहा गया।

संघभृताः सम्भूयसमुत्थातारो वा यथा सम्भाषितं वेतनं समं वा विभजेरन्। कर्षकवैदेहका वा सस्यपण्यारम्भपर्यवसानान्तरे सन्नस्य यथाकृतस्य कर्मणः प्रत्यंशं दद्युः। पुरुषोपस्थाने समग्रमंशं दद्युः। संसिद्धे तूद्धृतपण्ये सन्नस्य तदानामेव प्रत्यंशं दद्युः। सामान्या हि पथि सिद्धिश्चासिद्धिश्च। प्रक्रान्ते तु कर्मणि स्वस्थस्यापक्रमतो द्वादशपणो दण्डः। न च प्राकाम्यमपक्रमणे।

समूहबद्ध कर्मचारी यदि मिल कर व्यापारादि करें तो पूर्व निश्चय के अनुसार लाभांश को बाँट लें या समान भाग लाभ लें। कृषक एवं व्यवसायी विक्रय योग्य सामग्री के प्रारम्भ से अन्त तक के कार्यों में सहयोग देने वाले कर्मचारी के सहसा रोगग्रस्त हो जाने पर उसका अंश अवश्य दे दें। यदि वह अपने बदले में किसी अन्य कर्म-

कार को लगा कर कार्य करावे तो वह पूर्ण अंश प्राप्त करेगा। यदि सामान तैयार होने के पश्चात् वेचा जा चुका हो तो भी उस रोगी भागीदार कर्मकार को पूर्ण लाभांश मिलना उचित है। भविष्य की आशा पर किसी के लाभांश को रोकना अव्यावहारिक है, क्योंकि भविष्य की सफलता का निश्चय नहीं हो सकता। समूहबद्ध कार्य करने में वचनबद्ध हुआ कोई कर्मकार स्वस्थ दशा में भी कार्य छोड़ कर चला जाय तो वह बारह पण से दंडित होना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार चला जाना अनुचित है।

चोरं त्वभयपूर्वं कर्मणः प्रत्यंशेन ग्राहयेत्। दद्यात्प्रत्यंशमभयं च। पुनः स्त्येये प्रवासनमन्यत्र गमने च। महापराधे तु दूष्यवदाचरेत्। याजकाः स्वप्रचारद्रव्यवर्जं यथासम्भाषितं वेतनं समं विभजेरन्। अग्निष्टोमादिषु च क्रतुषु दीक्षणादूर्ध्वं याजकः सन्नः पञ्चमंशं लभेत। सोमविक्रयादूर्ध्वं चतुर्थमंशम्। मध्यमोपसदः प्रवर्ग्योद्वासनादूर्ध्वं तृतीयमंशम्। मध्यादूर्ध्वमर्धमंशम्। सुत्ये प्रातःसवनादूर्ध्वं पादोनमंशम्। माध्यन्दिनात्सवनादूर्ध्वं समग्रमंशं लभेत। नीता हि दक्षिणा भवन्ति। बृहस्पतिसवनवर्जं प्रतिसवनं हि दक्षिणा दीयन्ते। तेनाहर्गणदक्षिणा व्याख्याताः। सन्नानामादशाहोरात्राच्छेषभृताः कर्म कुर्युः। अन्ये वा स्वप्रत्ययाः।

किसी समूहगत कर्मकार ने चोरी की हो तो उसे अभय देकर निश्चित अंश देने के अश्वासन पर बुलाले और अंश देकर मुक्त कर दे। किन्तु फिर कभी चोरी करे या कार्य छोड़ कर भाग जाय तो उसे समूह से निष्काषित कर दे। कोई कर्मकार भारी अपराध करे तो उसके साथ दूषित के समान व्यवहार करे। किसी यज्ञ में ऋत्विजों को जो दक्षिणा, अतिरिक्त धन मिले, उसे वे परस्पर में समान अंश में बाँट लें। यदि कोई याजक अग्निष्टोम आदि यज्ञों में दीक्षाकर्म सम्पन्न करने के पश्चात् रोग-ग्रस्त हो जाय तो यज्ञ में मिलने वाले अपने अंश का पंचमांश

प्राप्त करेगा। सोमविक्रय के पश्चात् रोगी होने आदि कारणों से चले जाने पर याजक चतुर्थांश का अधिकारी होगा। प्रवर्ग्योद्वासन के उपरान्त तृतीयांश, मध्योपसवन के उपरान्त अर्धांश और सोमाभिषव में प्रातः सवन के पश्चात् चला जाय तो पौन अंश पायेगा। यदि माध्यन्दिन सवन के अनन्तर जाय तो पूर्ण अंश का अधिकारी होगा। क्योंकि तभी सबको दक्षिणा प्राप्त होती है। बृहस्पतिसवन के अतिरिक्त अन्य सब सवनों में दक्षिणा-प्रदान का नियम है। इस विधान से अहर्गण दक्षिणा का भी विवेचन हो गया। रुग्ण याजक शेष कार्य अन्य याचक अवशिष्ट दक्षिणा लेकर दस दिन करेंगे। या अपने विश्वस्त याजकों द्वारा भी उस कार्य को पूर्ण करा सकते हैं।

कर्मण्यसमाप्ते तु यजमानः सीदेत्, ऋत्विजः कर्म समापय्य दक्षिणां हरेयुः। असमाप्ते तु कर्मणि याज्यं याजकं वा त्यजतः पूर्वः साहसदण्डः।

अनाहिताग्निः शतगुरयज्वा च सहस्रगुः।
सुरापो वृषलीभर्ता ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥१
असत्प्रतिग्रहे युक्तः स्तेनः कुत्सितयाजकः।
अदोषस्त्यक्तुमन्योऽन्यं कर्मसंकरनिश्चयात् ॥२

यज्ञकर्म के समाप्त न होने की अवस्था में यजमान के स्वयं अस्वस्थ हो जाने पर ऋत्विज ही यज्ञविषयक कार्य को सम्पन्न करके दक्षिणा प्राप्त कर सकेंगे। यह पूर्ण होने से पूर्व ही यजमान या याजक में से कोई किसी को छोड़ दे तो उसे पूर्व साहस दण्ड भुगतना होगा। निम्न दशा में यजमान-याजक के पारस्परिक त्याग में कोई दोष नहीं माना जाता। यथा—या सहस्र सौ या सहस्र गौवें रख कर भी यज्ञ न करने वाला, सुरा पीने वाला, शूद्रा पत्नी का पति, ब्रह्महत्यारा, गुरुतल्पगामी, नीचों से दान लेने वाला तथा चोर अथवा निंदनीय व्यक्तियों का यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण यज्ञ में त्याज्य होता है।

पञ्चमोध्यायः

क्रय-विक्रय एवं अनुशय

विक्रीय पण्यमप्रयच्छतो द्वादशपणो दण्डः। अन्यत्र दोषोपनिपाताविषह्येभ्यः। पण्यदोषो दोषः। राजचोराग्न्युदकबाध उपनिपातः। बहुगुणहीनमार्तकृतं वाऽविषह्यम्। वैदेहकानामेकरात्रमनुशयः। कर्षकाणां त्रिरात्रम्। गोरक्षकाणां पंचरात्रम्। व्यामिश्राणामुत्तमानां च वर्णानां वृत्तिविक्रये सप्तरात्रम्।

यदि कोई विक्रेता किसी वस्तु का विक्रय करके भी न दे तो उस पर बारह पण का दण्ड होगा। किन्तु उस वस्तु में कोई दोष हो अथवा उपनिपात अर्थात् राजा, अग्नि, जल अथवा चोर आदि कारणों से बाधा उत्पन्न हो जाय या अविषह्य अर्थात् वह निकृष्ट गुण वाली हो तो विक्रेता को वस्तु न देने के अपराध का अपराधी नहीं मान सकते। क्रय-विक्रय करने वाले व्यापारियों के पारस्परिक विवाद के निपटारे के लिए एक दिन का समय पर्याप्त है। कृषकों के विवाद में निपटारे का समय तीन दिन हो सकता है। ग्वालों के लिए यह अवधि पांच दिन की और वर्णसंकर एवं श्रेष्ठ वर्ण वालों की जीवनवृत्ति स्वरूपा भूमि आदि के विक्रय-विवाद को निपटाने की अवधि सात दिन की होगी।

आतिपातिकानां पण्यानामन्यत्राविक्रेयमित्यविरोधेनानुशयो देयः। तस्यातिक्रमे चतुर्विंशतिपणो दण्डः। पण्यदशभागो वा। क्रीत्वा पण्यमप्रतिगृह्णतो द्वादशपणो दण्डः। अन्यत्र दोषोपनिपाताविषह्येभ्यः। समानश्चानुशयो विक्रेतुरनुशयेन। विवाहानां तु त्रयाणां पूर्वेषां वर्णानां पाणिग्रहणासिद्धमुपावर्तनम्। शूद्राणां च प्रकर्मणः। वृत्तपाणिग्रहणयोरपि दोषमौपशायिकं दृष्ट्वा सिद्धमुपावर्तनम्। न त्वेवाभिप्रजातयोः।

दूध, फल, फूल आदि वस्तुएं शीघ्र बिगड़ सकती हैं और फिर अन्यत्र भेज कर विक्रय-योग्य नहीं होतीं, उनके विषय में अनुशय की अवधि स्वयं निश्चित करनी चाहिए। उसका अतिक्रमण करने पर चौवीस पण या वस्तु के मूल्य का दशांश और यदि क्रेता सौदा होने के पश्चात् न ले तो उस पर बारह पण दण्ड करे। किन्तु वस्तु में कोई दोष, उपनिपात या अविषह्यता दिखाई देने पर क्रेता लेने से मना करे तो वह दोषी नहीं हो सकता। विक्रेता विषयक अनुशय ही क्रेता पर लागू होता है। चारों वर्णों में से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जातियों के विवाह सम्बन्धों का भंग होना विवाह होने से पहिले ही व्यवहार्य है, किन्तु विवाह के पश्चात् भंग नहीं हो सकता। किन्तु शूद्रों में विवाह के पश्चात् भी कन्या रजोदर्शनकाल तक विच्छेद हो सकता है। रजोदर्शन के पश्चात् उसका विच्छेद भी अमान्य होगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में पति-पत्नी के प्रथम मिलन में कन्या का क्षतयोनि या पुरुष का नपुंसक होना दिखाई दे तो विवाह-विच्छेद हो सकता है, किन्तु सन्तान होने पर नहीं हो सकता।

कन्यादोषमौपाशयिकमनाख्याय प्रयच्छतः षण्णवतिर्दण्डः। शुल्कस्त्रीधनप्रतिदानं च। वारयितुर्वा वरदोषमनाख्याय विन्दतो द्विगुणः। शुल्कस्त्रीधननाशश्च। द्विपदचतुष्पदानां तु कुष्ठव्याधिताशुचीनामुत्साहस्वास्थ्यशुचीनामाख्याने द्वादशपणो दण्डः। आत्रिपक्षादिति चतुष्पदानामुपावर्तनम्। आसंवत्सरादिति मनुष्याणाम्। तावता हि कालेन शक्यं शौचाशौचौ ज्ञातुमिति।

दाता प्रतिग्रहीता च स्यातां नोपहतौ यथा।
दाने क्रये वानुशयं तथा कुर्युः सभासदः॥

कन्या का दोष छिपा कर उसका दान कर देने वाले पर छियानवे पण और वर के नपुंसकत्व आदि दोषों को छिपा कर विवाह करने वाले पर उसका दुगना दण्ड होगा। इसके अतिरिक्त कन्या के दोष में कन्या पक्ष शुल्क और स्त्रीधन वापिस करेगा और वर के दोष में, कन्या

को दिया गया शुल्क और स्त्रीधन वरपक्ष को वापिस नहीं मिलेगा। दास-दासी आदि द्विपद और पशु आदि चतुष्पद के विक्रय में उनके कुष्ठ आदि दोषों को छिपा कर और उनकी प्रशंसा करके विक्रय करे तो बारह पण दण्ड देना होगा। दोष दिखाई देने पर गवादि पशु क्रय करने पर तीन पक्ष तक और दास-दासी आदि मनुष्य एक वर्ष तक लौटाये जा सकते हैं। क्योंकि उनके गुण-दोषों का ज्ञान इतने समय में ही हो सकता है। देने वाले और लेने वाले दोनों को ही किसी प्रकार का कष्ट न हो, वैसी दान एवं क्रय-विक्रय सम्बन्धी व्यवस्था राजा के सभासदादि अधिकारियों को करनी चाहिए।

षोडशोऽध्यायः

अस्वामितिक्रह, एवं स्वस्वामिसम्बन्ध

दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातम्। दत्तमव्यवहार्यमेकत्रानुशये वर्तेत। सर्वस्वं पुत्रदारमात्मानं प्रदायानुशायिनः प्रयच्छेत्। धर्मदानमसाधुषु कर्मसु चापघातिकेषु वा। अर्थदानमनुपकारिषु अपकारिषु वा। कामदानमनर्हेषु च। यथा वा दाता प्रतिग्रहीता च नोपहतौ स्यातां तथानुशयं कुशलाः कल्पयेयुः।

अब देने का वचन देकर न देने या मिथ्या दान या विक्रय आदि करने से सम्बन्धित व्याख्या करते हैं। यदि कोई देने की बात कह कर भी न दे तो जो व्यवस्था ऋण देने का वचन देकर न देने वाले के प्रति की जाती है, वही इस पर लागू होगी। किसी वस्तु के देने विषयक विवाद उपस्थित होने पर प्रदत्त वस्तु व्यवहार के अयोग्य हो तो उसे किसी अन्य के पास रखे। यदि कोई व्यक्ति अपने स्त्री-पुरुष एवं स्वयं अपने सहित सर्वस्व दान का वचन दे चुका हो तो उससे फिरना नहीं चाहिए। यदि कोई दानी पुरुष किसी व्यक्ति को सुपात्र समझ कर दान का वचन दे, किन्तु कालान्तर में उसके धूर्त सिद्ध होने पर अनुशय उपस्थित हो जाय और यह प्रतीत हो कि दानदाता का धन

अधर्म कार्यों में लग सकता है तो वह धनराशि किसी सज्जन पुरुष के पास रखी जा सकती है। इसी प्रकार ऐसे पुरुष को धर्मार्थ दान करने की प्रतिज्ञा हो जाय जो दाता का अपकार सिद्ध करने वाला सिद्ध होने लगे तो वह धन भी अन्यत्र रखा जा सकता है। यही नियम अयोग्य व्यक्ति को दिये गये दान-वचन के विषय में मान्य होगा। इस प्रकार के विवादों का निपटारा इस प्रकार से किया जाय, जिससे कि दाता और प्रतिग्रहीता दोनों में से किसी को क्षति न पहूँचे।

दण्डभयादाक्रोशभयादनर्थभयाद्वा भयदानं प्रतिगृह्णतः स्तेयदण्डः। प्रयच्छतश्च। रोषदानं परहिंसायाम्। राज्ञामुपरि दर्पदानं च। तत्रोत्तमो दण्डः। प्रातिभाव्यं दण्डशुल्कशेषमाक्षिकं सौरिकं कामदानं च नाकामः पुत्रो दायादो रिक्थहरो दद्यात्। इति दत्तस्यानपाकर्म।

दण्ड, आक्रोश और अनर्थ के भय से यदि कोई दान दे या ले तो देने-लेने वालों को चोर का दण्ड दे। यदि कोई किसी की हत्या के लिए दान दे या ले तो भी उपर्युक्त दण्ड के भागी होंगे। यदि कोई व्यक्ति अभिमानवश राजाकृत दान से भी अधिक दान दे तो दाता और ग्रहीता दोनों उत्तम साहस का दण्ड पावें। पिता की मृत्यु के पश्चात् पिता के प्रातिभाव्य, दण्डधन, शेष शुल्क, द्यूत या सुरापान का शेष ऋण, नट-नर्तकादि का पुरस्कार आदि के पिता द्वारा दिये हुए वचनों को उसका पुत्र या अन्य उत्तराधिकारी अमान्य कर सकता है। यह दान के अप्रदत्त धन की व्याख्या हुई।

अस्वामिविक्रयस्तु नष्टापहृतमासाद्य स्वामी धर्मस्थेन ग्राहयेत्, देशकालातिपत्तौ वा स्वयं गृहीत्वोपहरेत्। धर्मस्थश्च स्वामिनमनुयुंजीत। कुतस्ते लब्धमिति। स चेदाचारक्रमं दर्शयेत्, न विक्रेतारं तस्य द्रव्यस्यातिसर्गेण मुच्येत। विक्रेता चेद्दृश्येत, मूल्यं स्तेयदण्डं च। स चेदपसारमधिगच्छेदपसरेदपसारक्षयादिति। क्षये मूल्यं स्तेयदण्डं च दद्यात्।

किसी की कोई वस्तु खोने या चोरी जाने पर किसी अन्य के पास मिले तो वह व्यक्ति पकड़ा जा सकता है। देशकाल विषयक बाधा के कारण राजपुरुष उसे पकड़ने न आ सकें तो उस वस्तु का स्वामी स्वयं ही वस्तु सहित पकड़ कर उस लेने वाले व्यक्ति को धर्मस्थ के समक्ष ले जाय। तब धर्मस्थ वस्तु के स्वामी से प्रश्न करे कि यह तुम्हें कहाँ मिली ? यदि वह उसके उत्तर में प्राप्ति के विवरण सहित विक्रेता को उपस्थित न कर पावे तो फिर उसका जो स्वामी पाया जाय उसे उस वस्तु को देकर पकड़े गये व्यक्ति को धर्मस्थ मुक्त कर दे। किन्तु यदि कोई वेचता हुआ पकड़ा जाय तो उसी से वस्तु के स्वामी को मूल्य दिला कर राजदण्ड भी उसी को दे। किन्तु वेचने वाला यदि यह सिद्ध कर दे कि वह वस्तु अमुक से खरीदी है तो उसे निरपराध मान कर छोड़ दे। किन्तु जब तक यह पता न चले कि उस दूसरे विक्रेता को वस्तु कहाँ से मिली, तब तक उस विषय में जाँच की की जानी चाहिए। प्रथम विक्रेता का पता लगाने पर क्षय हुई वस्तु का मूल्य और राजदंड भी वही देगा।

नाष्टिकं च स्वकरणं कृत्वा नष्टप्रत्याहृतं लभेत। स्वकरणाभावे पञ्चबन्धो दण्डः। तच्च द्रव्यं राजधर्म्यं स्यात्। नष्टापहृतमनिवेद्योत्कर्षतः स्वामिनः पूर्वः साहसदण्डः। शुल्कस्थाने नष्टापहृतोत्पन्नं तिष्ठेत्। त्रिपक्षादूर्ध्वमनभिसारं राजा हरेत् स्वामी वा स्वकरणेन पंचपणिकं द्विपदरूपस्य निष्क्रयं दद्यात्। चतुष्पणिकमेकखुरस्य। द्विपणिकं गोमहिषस्य। पादिकं क्षुद्रपशूनाम्। रत्नसारफल्गुकुप्यानां पंचकं पणं दद्यात्।

यदि खोई या चोरी हुई वस्तु का कोई लिखित प्रमाण या साक्ष्य देकर उसे अपनी सिद्ध कर दे तो वह वस्तु उसे मिल जायगी। यदि अपनी सिद्ध करने में विफल हुआ तो पंचमांश दंड देगा और वह वस्तु राजा की हो जायगी। यदि अपनी वस्तु को किसी अन्य के पास देख कर धर्मस्थ को सूचित किये बिना स्वयं ही उससे छीने तो प्रथम साहस

का दंडभागी होगा। किसी को कोई वस्तु मिले तो उसे शुल्क स्थान में जमा करना उसका कर्त्तव्य होगा। जिसकी वह वस्तु है, उसका स्वामी डेढ़ महीने तक खोज-खबर न ले तो फिर राजा ही उसका स्वामी होगा। वस्तु स्वामी द्वारा अपना स्वत्व सिद्ध किये जाने पर वस्तु उसे मिलनी चाहिए। खोये या अपहृत दास-दासी आदि को छुड़ाने का शुल्क पाँच पण और एक खुर के पशुओं को छुड़ाने का चार पण शुल्क होगा। गाय-भैंस आदि के लिए दो पण, भेड़-बकरी आदि के लिए चौथाई पण तथा सारद्रव्य और फल्गु द्रव्य के लिए पाँच पण निष्क्रय शुल्क होता है।

परचक्राटवीहृतं तु प्रत्यानीन राजा यथास्वं प्रयच्छेत्। चोरहृतमविद्यमानं स्वद्रव्येभ्यः प्रयच्छेत्प्रत्यानेतुमशक्तो वा स्वयंग्राहेणाहृतं प्रत्यानीय तन्निष्क्रयं वा प्रयच्छेत्। परविषयाद्वा विक्रमेणानीतं यथाप्रदिष्टं राज्ञा भुंजीतान्यत्रार्यप्राणद्रव्येभ्यो देवब्राह्मणतपस्विद्रव्येभ्यश्च। इत्यस्वामिविक्रयः।

शत्रु या दस्युओं द्वारा अपहृत पदार्थों को लाकर राजा उनके यथार्थ स्वामियों को प्रदान करे। चोरी गये सामान का पता लगाने में असमर्थ राजा अपने भण्डार से वैसा ही सामान उसके स्वामी प्रजाजनों को दे दे। चोर पकड़ने वाले राजपुरुष भी सामान की खोज में सफल न हों तो राज्य के भण्डार से ही उन लोगों को समान दिया जाय, जिनकी चोरी हुई हो। यदि भंडार में वैसा सामान न हो तो उसका मूल्य दिया जाय। शत्रुदेश से बल पूर्वक प्राप्त पदार्थों का उपभोग राजाज्ञा से सब सैनिक या अधिकारी कर सकते हैं। किन्तु उसमें से श्रेष्ठ पुरुषों, देवताओं, ब्राह्मणों या तपस्वियों की सम्पत्ति उन्हीं को लौटा दी जाय। यह अस्वामि विक्रय की व्याख्या पूर्ण हुई।

स्वस्वामिसम्बन्धस्तु भोगानुवृत्तिरुच्छिन्नदेशानां यथास्वं द्रव्याणाम्। यत्स्वं द्रव्यमन्यैर्भुज्यमानं दशवर्षाण्युपेक्षेत, हीयेतास्य अन्यत्र बालवृद्धव्याधितव्यसनिप्रोषितदेशत्यागराज्यविभ्र-

भेभ्यः । विंशतिवर्षोपेक्षितमनुवसितं चास्तु नानुयुंजीत । ज्ञातयः श्रोत्रियाः पाषण्डा वा राज्ञामसन्निधौ परवास्तुषु निवसन्तो न भोगेन हरेयुः । उपनिधिमाधिं निधिं निक्षेपं स्त्रियं सीमानं राजश्रोत्रियद्रव्याणि च ।

अब दव्य एवं उसके स्वामी के प्रमाण के विषय में कहते हैं । स्वामित्व के निर्णय में देश साक्षी आदि का अभाव होने पर उसका भोग ही प्रमाण होगा । जिस सम्पत्ति को कोई अन्य पुरुष अधिकार में रखे हुए हो, और उसका स्वामी फिर भी उसकी ओर ध्यान न दे तो उसका स्वामित्व समाप्त हो जायगा । किन्तु बालक, वृद्ध, व्याधि या विपत्तिग्रस्त, प्रवासी, देश-त्यागी, विप्लव में योग देने के कारण कहीं छिपे हुए व्यक्ति अपनी-अपनी सम्पत्ति का दस वर्ष तक भोग न करने पर भी अपने अधिकार से वंचित नहीं हो सकते । यदि गृहस्वामी से उपेक्षित गृह का उपभोग कोई अन्य व्यक्ति बीस वर्ष तक निरन्तर करता रहे तो गृहस्वामी उसे पुनः प्राप्त नहीं कर सकता । गृहस्वामी के बान्धव, श्रोत्रिय या पाषण्डी मनुष्य राजा से दूर निवास करने पर यदि किसी अन्य के गृह में निवास करने लगें तो उसके स्वामी नहीं बन सकते । इसके अतिरिक्त कोई व्यक्ति किसी की धरोहर, द्रव्य, बन्धक, स्त्री, सीमा, राजा का द्रव्य और श्रोत्रिय का द्रव्य भोगने पर भी उसका स्वामी नहीं हो सकता ।

आश्रमिणः पाषण्डा वा महत्यवकाशे परस्परमबाधमाना वसेयुः, अल्पां बाधां सहेरन् । पूर्वागतो वा वासपर्यायं दद्यात् । अप्रदाता निरस्येत । वानप्रस्थयतिब्रह्मचारिणामाचार्यशिष्यधर्मभ्रातृसमानतीर्थ्या रिक्थभाजः क्रमेण । विवादपदेषु चैषां यावन्तः पणा दण्डाः तावती रात्रीः क्षपणाभिषेकाग्निकार्यमहाकृच्छ्रवर्तनानि राज्ञश्चरेयुः । अहिरण्यसुवर्णाः पाषण्डाः साधवः । ते यथास्वमुपवासव्रतैराराधयेयुः । अन्यत्र पारुष्यस्तेयसाहससंग्रहणेभ्यः । तेषु यथोक्ता दण्डाः कार्याः ।

प्रव्रज्यासु वृथाचारान् राजा दण्ड न वारयेत् ।
धर्मो ह्यधर्मोपहतः शास्तारं हन्त्युपेक्षितः ॥

आश्रम के रहने वाले और पाखण्डी मनुष्य परस्पर किसी को कोई हानि न पहुंचाते हुए विस्तृत स्थानों पर रहें। इसमें एक-दूसरे से कुछ हानि भी होती हो तो उसे सहन कर लें। जो पहिले से वहां रह रहे हों, वे नवागन्तुओं को स्थान देते रहें। जो उन्हें वहाँ रहने से रोकें, उनको निष्कासित किया जाय। वानप्रस्थ, यति और ब्रह्मचारी की सम्पत्तियों पर क्रमशः उनके आचार्य, शिष्य, धर्मभाई या सहपाठी ही अधिकारी होते हैं। सम्पत्ति विषयक विवाद होने पर उनमें जो हारे और जितने पण के लिए दण्डित हो, उसे उतनी ही रात्रि पर्यन्त राज-कल्याण के लिए उपवास, स्नान, हवन, तथा चान्द्रायणादि महाकृच्छ व्रतों को करना होगा। पाषण्डी साधु वे हैं जो धनहीन, स्वर्णहीन एवं विभिन्न मतों के अनुयायी हैं। किसी विवाद में हारा हुआ ऐसा साधु जितने पण से दण्डित हुआ हो उसी के अनुसार राजकल्याणार्थ व्रत-आराधन आदि करे। किन्तु पारुष्य, चोरी, साहस और अनैतिक कार्यों में दण्डित साधु मुक्त न होकर यथोक्त दण्ड प्राप्त करेंगे। संन्यास धारण करने पर मिथ्याचार करने वालों को राजा अपने दण्ड से रोके। क्योंकि अधर्म द्वारा उपेक्षित राजा को ही धर्म नष्ट कर डालता है।

सप्तदशोऽध्यायः

साहसकर्म

साहसमन्वयवत्प्रसभकर्म । निरन्वये स्तेयमपव्ययने च । रत्नसारफल्गुकुप्यानां साहसे मूल्यसमो दण्डः इति मानवाः । मूल्यद्विगुण इत्यौशनसाः । यथापराध इति कौटिल्यः । पुष्पफल-शाकमूलकन्दपक्वान्नचर्मवेणुमृद्भाण्डादीनां क्षुद्रकद्रव्याणां द्वादश-पणावरश्चतुर्विंशतिपणरो दण्डः ।

बलात् अपहरण आदि कर्म 'साहस' कहे जाते हैं। छिप कर ग्रहण किया हुआ परधन 'चोरी' है। मनु के अनुयायियों के मत में सारद्रव्य, फल्गुद्रव्य और कुप्यादि विषयक साहस कर्म में उन वस्तुओं के मूल्य के अनुसार दण्ड देना चाहिए। शुक्राचार्य के अनुयायी कहते हैं कि साहस कर्म वाले अपराधी को वस्तु के मूल्य से दुगुना दण्ड दे। किन्तु कौटिल्य के मत में अपराधी को उसके अपराध के अनुरूप दण्ड दिया जाय। पुष्प, फल, शाक, मूल, कन्द, पका हुआ अन्न, चर्म और मिट्टी के भाण्ड आदि के लिए साहस कर्म पर बारह से चौबीस पण तक का दण्ड देना उचित होगा।

कालायसकाष्ठरज्जुद्रव्यक्षुद्रपशुवाटादीनां स्थूलकद्रव्याणां चतुर्बिंशतिपणावरोऽष्टचत्वारिंशत्पणरो दण्डः। ताम्रवृत्तकंसकाचदन्तभाण्डादीनां स्थूलकद्रव्याणामष्टचत्वारिंशत्पणावरः षण्णवतिपरः पूर्वः साहसदण्डः। महापशुमनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णसूक्ष्मवस्त्रादीनां स्थूलकद्रव्याणां द्विशतावरः पंचशतपरो मध्यमः साहसदण्डः।

लौह, काष्ठ और रस्सी से निर्मित पदार्थ, क्षुद्र पशु और वस्त्रादि स्थूल पदार्थों से सम्बन्धित साहस में चौबीस से अढ़तालीस पण और ताम्बा, पीतल, कांसा या हाथी दांत आदि से निर्मित पदार्थों पर अढ़तालीस से छियानवे पण तक दण्ड दे। यह दंड पूर्व साहस दण्ड कहा जाता है। बड़े पशु, मनुष्य, खेत, गृह, हिरण्य (द्रव्य), स्वर्ण एवं सूक्ष्म वस्त्रादि के साहस-अपराध में दो सौ से पाँच सौ पण का दण्ड देना चाहिए। यह मध्यम साहस दण्ड हुआ।

स्त्रियं पुरुषं वाभिषह्य बध्नतो बन्धयतो बन्धं वा मोक्षयतः पंचशतावरः सहस्रपर उत्तमसाहसदण्ड इत्याचार्याः। यः साहसं प्रतिपत्तेति कारयति स द्विगुणं दद्यात्। यावद्धिरण्यमुपभोक्ष्यते तावद्दास्यामीति स चतुर्गुणं दण्डं दद्यात्। य एतावद्धिरण्यं दास्यमीति प्रमाणमुद्दिश्य कारयति स यथोक्तं हिरण्यं दण्डं च

दद्यादिति बार्हस्पत्याः । स चेत्कोपं मदं चोहं वापदिशेद्यथोक्तव-द्दण्डमेनं कुर्यादिति कौटिल्यः ।

दण्डकर्मसु सर्वेषु रूपमष्टपणं शतम् ।
शतावरेषु व्याजीं च विद्यात्पञ्चपणं शतम् ॥
प्रजानां दोषबाहुल्याद्राज्ञां वा भावदोषतः ।
रूपव्याजावधर्मिष्ठे धर्म्या तु प्रकृतिः स्थिता ॥

स्त्री या पुरुष को बलपूर्वक बाँधने, बँधवाने या राज्य द्वारा वन्दी को छुड़ाने विषयक अपराध में पाँच सौ से एक हजार पण तक दंड दे। इस प्रकार उत्तम साहस दंड देना पूर्ववर्त्ती आचार्यों द्वारा कहा गया है। 'मैं यह करूँगा' ऐसा कह कर अपराध करने वाले पर दुगुना दंड करे। 'इस कार्य में आवश्यकतानुसार धन दूँगा' कह कर जो दूसरों से साहस कर्म कराये उस पर चौगुना दंड किया जाय। 'मैं इतना धन दूँगा' कह कर साहस कर्म कराने वाले से उतना ही धन वसूल करता हुआ उक्त दंड भी दे। यह बृहस्पति के अनुयायियों का कथन है। किन्तु आचार्य कौटिल्य के मतानुसार साहसकर्मी यदि क्रोध, मद या मोह के वशीभूत होकर अपराध करता है तो गोपनीय ढंग से पता लगावे और अपराधी सिद्ध होने पर ऊपर कहे हुए साहसिक कार्यों के अनुसार ही दण्ड दे। सब प्रकार के अर्थदण्डों में आठ प्रतिशत पण 'रूप' संज्ञक अतिरिक्त अर्थदंड देय है। सौ से कम का दंड हो तो पाँच प्रतिशत 'व्याजी' संज्ञक दंड देना होगा। प्रजा में अपराध-वृद्धि होने तथा राजाओं के मनोभाव दूषित होने के कारण ही रूप और व्याजी कर की सृष्टि हुई है, जो धर्मसंगत नहीं माना जा सकता। इसलिए धर्मसंगत दंड की ही व्यवस्था करे।

अष्टादशोऽध्यायः

वाक्पारुष्य

वाक्पारुष्यमुपवादः कुत्सनमभिभर्त्सनमिति। शरीरप्रकृति-श्रुतवृत्तिजनपदानां शरीररोपवादेन काणखंजादिभिः सत्ये त्रिपणो

दण्डः। मिथ्योपवादे षट्पणो दण्डः। शोभनाक्षिदन्त इति काणखंजादीनां स्तुतिनिन्दायां द्वादशपणो दण्डः। कुष्ठोन्मादक्लैब्यादिभिः कुत्सायां च सत्यमिथ्यास्तुतिनिन्दासु द्वादशपणोत्तरा दण्डास्तुल्येषु। विशिष्टेषु द्विगुणः। हीनेष्वर्धदण्डः। परस्त्रीषु द्विगुणः। प्रमादमदमोहादिभिरर्धदण्डाः।

वाक्पारुष्य तीन प्रकार के हैं—उपवाद, कुत्सन एवं अतिसर्जन। इनमें अंग-दोष बताते हुए किसी को अपशब्द कहना उपवाद, उन्मत्त या मूर्ख आदि कह कर गाली देना कुत्सन और मारने का डर दिखा कर भयभीत करना अतिसर्जन है। देह, प्रकृति, श्रुत, वृत्ति एवं जनपद वाक्पारुष्य के आधार माने गये हैं। वास्तव में किसी काने, अन्धे या लंगड़े आदि को वैसी गाली देने पर तीन पण और काना, अन्धा आदि न हो और मिथ्या अंगदोष सूचक गाली दी जाय तो छः पण का दंड दे। यदि व्याज स्तुति (एक अंग-दोषी को देख कर उसे सुनाते हुए दूसरे की प्रशंसा) द्वारा गाली दे तो बारह पण और कोढ़ी, नपुंसक, उन्मत्त आदि कह कर निन्दा करे तो भी इतना दण्ड दे। यदि किसी विशिष्ट व्यक्ति को अंगहीन देख कर व्याज स्तुति करे तो बारह पण और अपने से आयु में बड़े के साथ ऐसा करे तो दूना दण्ड दे। अपने से छोटे या हीन व्यक्ति की निन्दा करने पर आधा दण्ड और किसी विवाहिता का अपमान करे तो दुगुना दण्ड दे। किन्तु प्रमाद, मद या मोह वश वैसा करने वाले को आधे दण्ड से ही प्रभावित करे।

कुष्ठोन्मादयोश्चिकित्सकाः संनिकृष्टाः पुमांसश्च प्रमाणम्। क्लीबभावे स्त्रियः मूत्रफेनः अप्सु विष्ठानिमज्जनं च। प्रकृत्युपवादे ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रान्तावसायिनामपरेण पूर्वस्य त्रिपणोत्तरा दण्डाः। पूर्वेणापरस्य द्विपणाधराः। कुब्राह्मणादिभिश्च कुत्सायाम्। तेन श्रुतोपवादो वाग्जीवनानां, कारुकुशीलवानां, वृत्त्युपवादः, प्राग्घूणकगन्धारादीनां च जनपदोपवादा व्याख्याताः।

कुष्ठी या उन्मादी होने का प्रमाण चिकित्सक द्वारा और नपुंसक होने का प्रमाण स्त्री द्वारा मिल सकता है। या मूत्र में फेन न होना या विष्ठा का जल में डूब जाना भी नपुंसकता का प्रमाण हो सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि अन्तावसाइयों में से यदि परवर्ती जाति वाला पूर्ववर्ती जाति वाले की निन्दा करे तो क्रमशः तीन-तीन पण अधिक दण्ड देना चाहिए। इसके विपरीत पूर्ववर्ती जाति वाला परवर्ती जाति के मनुष्य की निन्दा करे तो उन्हें क्रमशः दो-दो पण कम करके दण्ड दे। इसी प्रकार 'कुब्राह्मण' आदि जातिसूचक निन्दा के अपराध में भी यही दण्ड उचित होगा। वाग्जीवी की विद्या, कारु या कुशीलव की वृत्ति, प्राग्घूणक और गान्धार वासियों के जनपद आदि के उपहास में भी जातीय निन्दा जैसी ही दण्ड दे।

यः परं 'एवं त्वां करिष्यामि' इति करणेनाभिभर्त्सयेदकरणे यस्तस्य करणे दण्डस्ततोऽर्धं दण्डं दद्यात्। अशक्तः कोपं मदं मोहं वाऽपदिशेत् स द्वादशपणं दद्यात्। जातवैराशयः शक्तश्चापकर्तुं यावज्जीविकावस्थं दद्यात्।

स्वदेशग्रामयोः पूर्वं मध्यमं जातिसंघयोः।
आक्रोशाद्देवचैत्यानामुत्तमं दण्डमर्हति॥

यदि कोई व्यक्ति कमर तोड़ दूँगा, नाक काट लूँगा आदि वाक्यों द्वारा धमकावे तो उसे वैसा अपराध करने वालों से आधा दण्ड दे। यदि वह उस कार्य को करने में समर्थ नहीं है और क्रोध, मद या मोह के वशीभूत होकर कह बैठा है तो वह केवल बारह पण से ही दंडित होना चाहिए। यदि शत्रुतावश वैसा कहे और वह उस कर्म में समर्थ भी हो तो उसे उसकी आय के अनुरूप ही दण्ड देना उचित है। अपने देश या ग्राम के निन्दक को प्रथम साहस, जाति और संघ के निन्दक को मध्यम साहस तथा देवालय आदि धर्म-स्थानों के निन्दक को उत्तम साहस का दंड देना चाहिए।

एकोनविंशोऽध्यायः

दण्डपारुष्य

दण्डपारुष्यं स्पर्शनमवगूर्णं प्रहृतमिति । नाभेरधःकायं हस्तपंकभस्मपांसुभिरिति स्पृशतस्त्रिपणो दण्डः । तैरेवामेध्यैः पादष्ठीविकाभ्यां च षट्पणः । छर्दिमूत्रपुरीषादिभिर्द्वादशपणः । नाभेरुपरि द्विगुणाः । शिरसि चतुर्गुणाः समेषु । विशिष्टेषु द्विगुणाः । हीनेषु अर्धदण्डाः । परस्त्रीषु द्विगुणाः । प्रमादमदमोहादिभिरर्धदण्डाः । पादवस्त्रहस्तकेशावलम्बनेषु षट्पणोत्तरा दण्डाः ।

दण्डपारुष्य के इस विवेचन में तीन प्रकार की मारपीट बताई गई है—स्पर्शन, अवगूर्ण और प्रहृतमिति । स्पर्शन अर्थात् छूने के साथ ही किसी के देह के निम्नभाग में हाथ, कीच, राख या धूल लगा देने पर तीन पण से और अपवित्र हाथ, पाँव या थूक लगाने पर छः पण से दण्डित करे । यदि वमन, मूत्र या मल लगा दे तो बारह पण और नाभि के ऊपर लगावे तो दुगुना दंड दे । यदि मस्तक पर लगावे तो चौगुना और किसी विशिष्ट व्यक्ति के लगावे तो स्थानानुसार दण्ड का दुगुना दंड होगा । किन्तु अपने से हीन मर्यादा वाले के साथ वैसा व्यवहार करना आधा दंड ही देने के योग्य है । परनारी के साथ किये गये उक्त व्यवहारों में दुगुना तथा प्रमाद, मद या मोह से वैसा करने पर आधा दंड दे । यदि किसी के पाँव, वस्त्र, हाथ या केश को हाथ लगाये या पकड़े तो क्रमशः छः पण बढ़ाकर छः से चौबीस पण तक दण्ड दे ।

पीडनावेष्टनाञ्जनप्रकर्षणाध्यासनेषु पूर्वःसाहसदण्डः। पातयित्वाऽपक्रमतोऽर्धदण्डः । शूद्रो येनाङ्गेन ब्राह्मणमभिहन्यात्तदस्य छेदयेत् । अवगूर्णो निष्क्रयः स्पर्शेऽर्धदण्डः । तेन चाण्डालाशुचयो व्याख्याताः । हस्तेनावगूर्णे त्रिपणावरो द्वादशपणपरो दण्डः ।

पादेन द्विगुणः। दुःखोत्पादनेन द्रव्येण पूर्वः साहसदण्डः। प्राणावधिकेन मध्यमः।

किसी को नीचे डाल ले, हाथों में पकड़ ले, मुख पर काजल लगा दे, भूमि पर घसीटे अथवा नीचे डाल कर उस उस पर चढ़ जाय तो उत्तम साहस और भूमि पर डाल कर चला जाय तो उसे आधा दण्ड दे। यदि शूद्र किसी ब्राह्मण पर प्रहार करे तो उसने जिस अंग से प्रहार किया है, उसी को कटवा दे। यदि शूद्र ब्राह्मण को मारने के लिए तत्पर हो तो उसे एकांगवध निष्क्रय में कहे विधान से दडित करे। यदि शूद्र उठे हुए हाथ से ब्राह्मण को छू ले तो अर्ध-निष्क्रय दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार चण्डाल आदि अपवित्र व्यक्तियों का भी दण्ड विधान समझे। यदि कोई मारने के लिए किसी पर हाथ उठावे तो उसे तीन से बारह पण तक का दण्ड दे। यदि पाँव उठावे तो दुगुना और नोंकदार शस्त्र से प्रहार कर बैठे तो प्रथम साहस का दण्ड उपयुक्त है। प्राणघातक शस्त्रों से प्रहार करने पर मध्यम साहस का दण्ड दे।

काष्ठलोष्ठपाषाणलौहदण्डरज्जुद्रव्याणामन्यतमेन दुःखमशोणितमुत्पादयतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः। शोणितोत्पादने द्विगुणः। अन्यत्र दुष्टशोणितात्। मृतकल्पमशोणितं घ्नतो हस्तापदपारञ्चिकं वा कुर्वतः पूर्वः साहसदण्डः। पाणिपाददन्तभङ्गे कर्णनासाच्छेदने व्रणविदारणे च, अन्यत्र दुष्टव्रणेभ्यः।

सक्थिग्रीवाभंजने नेत्रभेदने वा वाक्यचेष्टाभोजनोपरोधेषु च मध्यमः साहसदण्डः। समुत्थानव्ययश्च। देशकालातिपत्तौ कण्टकशोधनाय नीयेत। महाजनस्यैकं घ्नतः प्रत्येकं द्विगुणो दण्डः। पर्युषितः कलहोऽनुप्रवेशो वा नाभियोज्य इत्याचार्याः। नास्त्यपकारिणो मोक्ष इति कौटिल्यः। कलहे पूर्वागतो जयति, अक्षममाणो हि प्रधावति इत्याचार्याः।

लाठी, लोष्ठ, पाषाण, लौहदण्ड एवं रस्सी प्रभृति द्वारा मारने पर रक्त न निकले तो चौबीस पण और रक्त निकल आवे तो अढ़-

तालीस पण का दण्ड दे। किन्तु किसी दुष्ट फोड़े या पहिले से बने हुए व्रण आदि से रक्त निकले तो दूना नहीं होगा। यदि रक्त न निकालते हुए ही अधमरा कर दे या प्रहार से हाथ-पाँव टेढ़े कर दे अथवा हाथ, पांव, दाँत, नाक या कान काटे तो उस पर अतिरिक्त घाव करने के समान प्रथम साहस का ही दण्ड करे। किसी का पाँव, ग्रीवा या नेत्र भंग करे अथवा वाणी, देह चालन या भोजन में बाधा उत्पन्न कर दे तो उसे मध्यम साहस का दण्ड तथा शरीर के पुनः पूर्ववत् समर्थ न होने तक उसकी जीविका, चिकित्सा आदि सम्पूर्ण व्यय भुगतना होगा। यदि आहत व्यक्ति की मृत्यु हो जाय तो अपराधी कंटकशोधन न्याय के सुपुर्द किया जाय। यदि अनेक व्यक्ति मिल कर किसी को मारें तो एक व्यक्ति द्वारा मारने पर जो दण्ड दिया जाना चाहिए, उससे दुगुना दंड उनमें से प्रत्येक पर करे पूर्व आचार्यों के अनुसार बहुत समय तक चले आते कलह एवं पहिले कभी चोरी गये धन के लिए अभियोग न चलावे। किन्तु आचार्य कौटिल्य के मत में अपकार करने वाला व्यक्ति दोष से कभी नहीं छूटता, इसलिए पुराने कलह पर भी अभियोग चलना ही चाहिए। अनेक आचार्यों का मत है कि जो व्यक्ति कलह विषयक वाद को सर्व प्रथम प्रस्तुत करे, उसी की विजय होनी चाहिए। क्योंकि वह किसी अन्य द्वारा किये गये अत्याचार को सहन करने में अक्षम होने के कारण ही राज-न्याय के लिए भागता है।

नेति कौटिल्यः। पूर्वं पश्चाद्वा गतस्य साक्षिणः प्रमाणम्। असाक्षिके घातः कलहोपलिङ्गनं वा। घाताभियोगमप्रतिब्रुवतः तदहरेव पश्चात्कारः। कलहे द्रव्यमपहरतो दशपणो दण्डः। क्षुद्रकद्रव्यहिंसायां तच्च तावच्च दण्डः। स्थूलकद्रव्यहिंसायां यच्च द्विगुणश्च दण्डः। वस्त्राभरणहिरण्यसुवर्णभाण्डहिंसायां तच्च पूर्वश्च साहसदण्डः। परकुड्यमभिघातेन क्षोभयतस्त्रिपणो दण्डः। छेदनभेदने षट्पणः। पातनभंजने द्वादशपणः प्रतीकारश्च।

किन्तु कौटिल्य इससे असहमत हैं। उनके मत में कोई पहिले दौड़े या पीछे, अपराध सिद्ध होने में साक्षी ही प्रमाण होंगे। साक्षी के अभाव में व्रण आदि का भी अभाव हो तो विवाद का कारण खोजने की चेष्टा करे। मार-पीट के अभियोग में अपराधी उसी दिन उत्तर दे, अन्यथा वह हार जायगा। दो व्यक्तियों के परस्पर लड़ते समय यदि तीसरा व्यक्ति सामान चुरा ले तो उसे दस पण दण्ड दे। कलहकर्त्ताओं में से कोई व्यक्ति यदि क्षुद्र सामान को क्षति पहुंचाये तो वह उस क्षति की पूर्ति के साथ उतना ही अर्थदण्ड राजा को देगा। किन्तु यदि किसी बड़ी वस्तु को हानि पहुँचावे तो क्षतिपूर्ति के पूर्ण धन के साथ ही दुगुना अर्थदण्ड देना होगा। वस्त्र, अलंकार, नकदी, स्वर्ण या अन्यान्य मूल्यवान पदार्थों का मूल्य देने के साथ प्रथम साहस दण्ड भोगना होगा। किसी के द्वार को धक्का देकर हिलाने पर तीन पण, कपाट निकाल कर फेंकने या तोड़ डालने पर छः पण और गिरा कर पूर्ण नष्ट करने पर ग्यारह पण दण्ड के साथ उसे यथावत ठीक कराना होगा।

दुःखोत्पादनं द्रव्यमन्यवेश्मनि प्रक्षिपतो द्वादशपणो दण्डः। प्राणाबाधिकं पूर्वः साहसदण्डः। क्षुद्रपशूनां काष्ठादिभिर्दुःखोत्पादने पणो द्विपणो वा दण्डः। शोणितोत्पादने द्विगुणः। महापशूनामेतेष्वेव स्थानेषु द्विगुणो दण्डः समुत्थानव्ययश्च। पुरोपवनवनस्पतीनां पुष्पफलच्छायावतां प्ररोहच्छेदने षट्पणः। क्षुद्रशाखाच्छेदने द्वादशपणः। पीनशाखाच्छेदने चतुर्विंशतिपणः। स्कन्धवधे पूर्वः। साहसदण्डः। समुच्छित्तौ मध्यमः। पुष्पफलच्छायावद्गुल्मलतास्वर्धदण्डः। पुण्यस्थानतपोवनश्मशानद्रुमेषु च।

सोमवृक्षेषु चैत्येषु द्रुमेष्वालक्षितेषु च।
त एव द्विगुणा दण्डाः कार्या राजवनेषु च॥

दुःखदायी वस्तु किसी के घर में फेंकने पर बारह पण और प्राणनाशक वस्तु फेंकने पर प्रथम साहस दण्ड दे। लाठी से क्षुद्र पशु को

मारने पर एक पण मारने पर रक्त निकल आये तो दो पण तथा गवादि बड़े पशु के मारने पर दुगुना दंड करे और उसे स्वस्थ कराने का व्यय भी उसी से दिलावे । नगर के उपवन से पुष्प, फल एवं छायादार वृक्षों के पत्र तौड़ने पर नौ पण, पतली टहनी तोड़ने पर बारह पण, स्थूल शाखा काटने पर चौबीस पण, स्कंध प्रदेश काटने पर प्रथम साहस तथा पूरा वृक्ष काटने पर मध्यम साहस का दंड दे । अन्यत्र पुष्प, फल एवं छाया वाले गुल्म, लता आदि तोड़े तो आधा दण्ड देना चाहिए । पुण्यस्थान, तपोवन और श्मशान स्थित वृक्षों से अवयवादि तोड़ने पर आधा दण्ड दिया जाय । सीमा के वृक्ष चैत्य के वृक्ष, राजचिन्ह युक्त वृक्ष एवं राजा के उपवनादि के वृक्षों के प्रति उपर्युक्त अपराध करने पर दुगुना दण्ड देना चाहिए ।

विंशोऽध्यायः

द्यूतसमाह्वय एवं प्रकीर्ण

द्यूताध्यक्षो द्यूतमेकमुखं कारयेत् । अन्यत्र दीव्यतो द्वादशपणो दण्डः । गूढाजीविज्ञापनार्थम् । द्यूताभियोगे जेतुः पूर्वः साहस-दण्डः । पराजितस्य मध्यमः । बालिशजातीयो ह्येष जेतुकामः पराजयं न क्षमत इत्याचार्याः । नेति कौटिल्यः । पराजितश्चेद्-द्विगुणदण्डः क्रियेत । न कश्चन राजानमभिसरिष्यति । प्रायशो हि कितवाः कूटदेविनः ।

अब द्यूत-व्यवस्था एवं क्षुद्र विवादों के विषय में कहेंगे । द्यूताध्यक्ष द्यूत क्रीड़ा का एकमुखी प्रबन्ध करे । एकमुख अर्थात् निश्चित स्थान से अन्यत्र जुआ खेलने पर बारह पण का दण्ड दे, जिससे कि एक स्थान पर ही जुआ खेलने की विवशता रहे और उसमें जो चोर आदि भाग लेते हैं, वे भी शीघ्र पहिचाने जा सकें । द्यूत विषयक विवाद की उपस्थिति पर द्यूत में विजयी जुआरी को प्रथम साहस और पराजित को मध्यम साहस से दण्डित करे । क्योंकि पराजित जीत की आशा

में हार को सहन न करने के कारण झगड़ा करता है, यह पूर्व आचार्यों का मत है। किन्तु कौटिल्य इसे न मानते हुए कहते हैं कि पराजित पर दुगना दंड होने से विजयी जुआरी दोषी होकर भी राजा के सामने उपस्थित न होगा, जिससे कि वह अधिक अनर्थकारी सिद्ध होगा। क्यों कि सभी जुआरी प्रायः धूर्त और कपट युक्त चाल चलने वाले होते हैं।

तेषामध्यक्षाः शुद्धाः काकणीरक्षांश्च स्थापयेयुः। काकण्यक्षाणामन्योपधाने द्वादशपणो दण्डः। कूटकर्मणि पूर्वः साहसदण्डः। जितप्रत्यादानम्। उपधौ स्तेयदण्डश्च। जितद्रव्यादध्यक्षः पंचकं शतमाददीत। काकण्यक्षारलशलाकावक्रयमुदकभूमिकर्मक्रयं च। द्रव्याणामाधानं विक्रयं च कुर्वात्। अक्षभूमिहस्तदोषाणां चाप्रतिषेधने द्विगुणो दण्डः।

जुआघर में आने वाले धूर्त व्यक्तियों पर नजर रखने के लिए द्यूताध्यक्ष को शुद्ध कौड़ी और पाँसे रखने चाहिए। उन कौड़ी-पांसों के अतिरिक्त अन्य कौड़ी-पाँसों का उपयोग करने वाले पर बारह पण दण्ड करें। यदि कोई छल युक्त खेल खेले तो प्रथम साहस दण्ड देकर उसका सर्वस्व हरण करले। यदि पांसों की रेखा विषयक गड़बड़ी पकड़ी जाय तो प्रथम साहस दण्ड के साथ उसे स्तेयदण्ड भी दे। जेता जुआरी से पांच प्रतिशत अध्यक्ष स्वयं ले तथा कौड़ी, पांसे, अरल और शलाका का भाड़ा तथा जल एवं जुआघर की भूमि का भाड़ा भी उसी से लिया जाय। जुआरी जिन वस्तुओं को द्यूतक्रीड़ार्थ धन लेने के लिए साथ लाते हैं, उनको बन्धक रखने की व्यवस्था भी अध्यक्ष को रखनी चाहिए। यदि कोई जुआरी अपनी किसी वस्तु को बेचना चाहे तो द्यूताध्यक्ष उसको क्रय करने की छूट दे। यदि जुआघर में पाँसे के छल, भूमि के छल और क्रीड़ा के समय हस्तलाघव को रोकने में अध्यक्ष असमर्थ रहें तो उस पर भी उसकी आय से दुगना अर्थ दण्ड दिया जा सकता है।

तेन समाह्वयो व्याख्यातः। अन्यत्र विद्याशिल्पसमाह्वया-दिति। प्रकीर्णकं तु याचितकावक्रीतकाहितकनिक्षेपकाणां यथा-देशकालमदाने, यामच्छायासमुपवेशसंस्थितीनां वा देशकालाति-पातने, गुल्मतरदेयं ब्राह्मणं साधयतः प्रतिवेशानुप्रवेशयोरुपरि निमंत्रणे च द्वादशपणो दण्डः। सन्दिष्टमर्थमप्रयच्छतो भ्रातृ-भार्यां हस्तेन लंघयतो रूपाजीवामन्योपरुद्धां गच्छतः परवक्तव्यं पण्यं क्रीणानस्य समुद्रं गृहमुद्भिन्दतःसामन्तचत्वारिंशत्कुल्याबाधा-माचरतश्चाष्टचत्वारिंशत्पणो दण्डः।

इसी विधि से समाह्वय (मेढ़, मुर्गे, का युद्ध तथा घुड़ दौड़ पर बाजी) का भी विवेचन होगया। किन्तु विद्या और शिल्प के विषय में यह नियम मान्य नहीं हो सकते। अब प्रकीर्ण अर्थात् विविध विषयों पर प्रकाश डालते हैं। यदि कोई किसी वस्त्र को उधार ले, भाड़े पर ले, बन्धक रखले या अन्य वस्तु बनाने के लिए धरोहर रूप में रखले और निश्चित स्थान या समय पर वापिस न करे तो उस पर बारह पण का दंड होना चाहिए। सैनिक शिविरों या नौकाओं पर जो राजपुरुष शुल्क लें उन पर भी बारह पण दण्ड करे। अपने गृह के समक्ष या पड़ौस में निवास करने वाले श्रोत्रियों को छोड़ कर अन्य ब्राह्मणों को निमंत्रित करने वालों को भी बारह पण का ही दण्ड करे। जो किसी को कुछ देने का वचन देकर भी न दे, जो अपनी भ्रातृ पत्नी का अशिष्टतापूर्वक हाथ पकड़ ले, जो किसी अन्य की रखैल वेश्या से संसर्ग करे, जो किसी से निन्दित वस्तु क्रय करे, जो किसी के मुद्रांकित घर को खोल ले या जो अपने पड़ौसियों को दुःखित करे उसे अढ़तालीस पण से दंडित करे।

कुलनीवीग्राहकस्यापव्ययने, विधवां चन्दवासिनीं प्रसह्याधि-चरतः, चण्डालस्यार्यां स्पृशतः, प्रत्यासन्नमापद्यनभिधावतो, निष्का-रणमभिधावनं कुर्वतः, शाक्यजीवकादीन् वृषलप्रव्रजितान् देवपि-तृकार्येषु भोजयतः शत्यो दण्डः। शपथवाक्यानुयोगमनिसृष्टं कुर्वतो युक्तकर्मणि चायुक्तस्य क्षुद्रपशुवृषाणां पुंस्त्वोपघातिनो दास्या

गर्भमौषधेन पातयतश्च पूर्वः साहसदण्डः। पितापुत्रयोर्दम्पत्योर्भ्रातृभगिन्योर्मातुलभागिनेययोः शिष्याचार्ययोर्वा परस्परमपतितं त्यजतः सार्थाभिप्रयातं ग्राममध्ये वा त्यजतः पूर्वः साहसदण्डः। कान्तारे मध्यमः। तन्निमित्तं भ्रेषयत उत्तमः। सहप्रस्थायिष्वन्येष्वर्धदण्डः।

जो अपने कुल की सम्पत्ति नष्ट करे, जो किसी स्वच्छन्द विधवा से अनाचार करे, जो चण्डाल होकर भी आर्य नारी का स्पर्श करे, जो संकट काल में पड़ौसियों की सहायता न करे, जो अकारण ही किसी के घर दौड़े तथा जो शाक्य, आजीविक, वृषल और सन्यासी को पितृ या देवकार्य में भोजनादि के लिये निमंत्रित करे, उसे सौ पण से दण्डित करे। जो धर्मस्थ की आज्ञा के बिना ही लोगों को शपथ दिलावे अथवा पूछताँछ करे, जो अनधिकृत रूप से ही किसी राजनियुक्त अधिकारी का कार्य करने लगे, जो क्षुद्र पशुओं को पुंसत्वहीन करे या जो औषधादि के द्वारा दासी का गर्भपात करावे, उसे प्रथम साहस दण्ड दे। पिता, पुत्र, दम्पति, भाई, बहिन, मामा, भाँजा, गुरु अथवा शिष्य में से यदि कोई पतित न हो तो भी इनमें से बिना कारण के ही किसी को छोड़ दे या एक साथ मिल कर चले हुए व्यापारियों में से किसी एक को किसी ग्राम में छोड़ दे तो उन छोड़ने वाले लोगों में से प्रत्येक प्रथम साहस दण्ड का भागी होगा। यदि निर्जन वन में छोड़ दे तो मध्यम साहस का और यदि भयभीत करके मार दे तो उस पर उत्तम साहस का दण्ड करे। हत्या करने वाले के जितने सहयोगी हों, उन सब को भी आधा दण्ड देना उचित होगा।

पुरुषमबन्धनीयं बध्नतो बन्धयतो बन्धं वा मोक्षयतो बालमप्राप्तव्यवहारं बध्नतो बन्धयतो वा सहस्रदण्डः। पुरुषापराधविशेषेणदण्डविशेषः कार्यः। तीर्थकरस्तपस्वी व्याधितः क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तस्तिरोजानपदो दण्डखेदी निष्किंचनश्चानुग्राह्याः। देवब्राह्मणतपस्विस्त्रीबालवृद्धव्याधितानामनाथानामनभिसरतां धर्म-

स्थाः कार्याणि कुर्युः। न च देशकालभोगच्छलेनातिहरेयुः। पूज्या विद्याबुद्धि पौरुषाभिजनकर्मातिशयतश्च पुरुषाः।

एवं कार्याणि धर्मस्थाः कुर्युरच्छलदर्शिनः।
समाः सर्वेषु भावेषु विश्वास्या लोकसंप्रियाः ॥

जो किसी न बाँधने योग्य को बांधे या बँधवाये अथवा राज-बन्धन में पड़े अपराधी को छुड़ा ले या जो अवयस्क बालक को बाँधे या बँधवाये तो इन अपराधों में एक सहस्र पण का दंड करे। अपराध की गुरुता देख कर विशेष दंड भी दिया जा सकता है। तीर्थयात्रा करने वाले, तपस्वी, व्याधिग्रस्त, बुभुक्षित, पिपासु, थकित, अन्य जनपद से समागत, अनेक बार दडित एवं धनहीन मनुष्य कृपा प्राप्त करने के योग्य समझे जाते हैं। देवता, विप्र, तापस, स्त्री, बालक, वृद्ध, व्याधिग्रस्त एवं असहाय आदि जो अपनी पुकार राजद्वार तक न पहुँचा सकें, उनके कार्य धर्मस्थों को पूरे करने चाहिए। देश, काल और भोग के लोभ में पड़ कर धर्मस्थ उनके अधिकार को नष्ट न होने दें। क्योंकि विद्या, बुद्धि, पुरुषार्थ, कुल एवं कर्म की विशेषता के कारण धर्मस्थ गौरवशाली एवं पूज्य समझे जाते हैं। इस प्रकार धर्मस्थों को कपट-रहित भाव से कार्य करना चाहिए, जिससे कि वे समदर्शी सिद्ध हो सकें तथा वे सबके लिये विश्वसनीय और लोकप्रिय बनने में सफलता प्राप्त करें।

॥ धर्मस्थीय तृतीयअधिकरण समाप्त ॥

कंटकशोधन चतुर्थ अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

कारुक-रक्षण (शिल्पियों से प्रजा-रक्षण)

प्रदेष्टारस्त्रयोऽमात्याः कण्टकशोधनं कुर्युः । अर्थ्यप्रकाराः कारुशासितारः सन्निक्षेप्तारः स्ववित्तकारवः श्रेणीप्रमाणा निक्षेपं गृह्णीयुः । विपत्तौ श्रेणी निक्षेपं भजेत । निर्दिष्टदेशकालकार्यं च कर्म कुर्युः । अनिर्दिष्टदेशकालकार्यापदेशम् । कालातिपातने पादहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः । अन्यत्र भ्रेषोपनिपाताभ्यां नष्टं विनष्टं वाऽभ्यावहेयुः । कार्यस्यान्यथाकरणे वेतननाशस्तद्द्विगुणश्च दण्डः ।

कंटक उन्हें कहते हैं जो भले व्यक्तियों को सताते रहते हैं, उनके लिए वर्तमान बोलचाल में 'गुण्डा' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इन प्रजा को सताने वालों में कारुक अर्थात् शिल्पी की भी गणना की गई है। यहाँ कंटकों से प्रजा-रक्षण के विषय में कहते हैं। इसके लिए तीन प्रदेष्टा अर्थात् कंटक निवारणार्थं नियुक्त अधिकारी एवं तीन अमात्य मिल कर प्रजा की रक्षा में तत्पर हों। जिन कारीगरों को दूसरों की धरोहर अपने पास रखने के योग्य समझा जाता है, वे शुद्ध एवं न्यायोचित व्यवहार वाले हों, उन्होंने अनेक नवीन कारीगरों को अपने कार्य में शिक्षित किया हो, उन्होंने ग्राहक से सबके सामने लेकर यथा समय कार्य पूरा कर माल लौटा दिया हो, वे अपने द्रव्य से ग्राहक की इच्छित वस्तु बना देने में समर्थ हों, उन पर कारीगर विश्वास करते हों और वे जो सामाजिक नियमों का पूर्णरूपेण पालन करते हों। जिस कारीगर ने ग्राहक से आभूषण बनाने के लिए सोना-चाँदी आदि लिया हो, उसके मरने या दीर्घकाल के लिए प्रवासी होने की दशा में कारी-

गरों का संघ मिल कर सब कारीगरों से कुछ-कुछ द्रव्य ले और ग्राहक का माल उसे दे दें। देश, काल एवं कार्य के अनुरूप निश्चय होने पर ही कारीगरों को ग्राहक से कार्य लेना चाहिए। यदि कोई कारीगर इस नियम को न माने और ग्राहक का माल रख कर बहाने बनाता रहे तो किसी प्रकार उससे माल निकलवा कर उसे पौन पारिश्रमिक दे। जितना पारिश्रमिक कटे उसका दुगुना दंड राजा को भी देना होगा। किन्तु किसी हिंसक पशु या रोग आदि विपत्ति में कारीगर के फँसने पर उसे दोषी नहीं मान सकते। माल को नष्ट करने या किसी प्रकार क्षीण करने पर कारीगर उसकी क्षति पूरी करेगा। यदि कार्य को ग्राहक की इच्छा के अनुरूप न बना कर स्वेच्छा पूर्वक बनावे या बिगाड़ दे तो पारिश्रमिक नहीं मिलेगा, साथ ही उसे पारिश्रमिक से दुगुना राजदंड भी देना होगा।

तन्तुवया दशेकादशिकं सूत्रं वर्धयेयुः। वृद्धिच्छेदे। छेदद्विगुणो दण्डः। सूत्रमूल्यं वानवेतनम्। क्षौमकौशेयानामध्यर्धगुणम्। पत्रोर्णाकिम्बलदुकूलानां द्विगुणम्। मानहीने हीनावहीनं वेतनं तद्द्विगुणश्च दण्डः। तुलाहीने हीनचतुर्गुणो दण्डः। सूत्रपरिवर्तने मूल्यद्विगुणः। तेन द्विपटवानं व्याख्यातम्। ऊर्णातुलायाः पंचपलिको विहननच्छेदो रोमच्छेदश्च।

वस्त्र बुनने वाला दस पल सूत लेकर उसे माड़ी चढ़ने से प्रवर्द्धित हुए भार के अनुसार बुन कर ग्राहक को लौटावे। वह इस वृद्धि में जितना कम दे, उससे दुगुने से उसे दंडित करना चाहिए। सूत के मूल्य के बराबर ही जुलाहे की बुनाई का पारिश्रमिक होगा। रेशमी वस्त्र की बुनाई ड्योढ़ी और ऊनी वस्त्र की दुगुनी होगी। जितना वस्त्र मिलना चाहिए उससे कम नाप में दे तो उस कमी के अनुसार ही उसका पारिश्रमिक काट ले और उससे दुगुना अर्थदण्ड भी करे। वस्त्र का भार कम हो तो उस कमी के मूल्य का चौगुना दण्ड देना चाहिए। यदि हुए सूत को बदल कर अन्य सूत से बुने तो सूत के मूल्य का दुगुना दण्ड होगा।

इसी प्रकार दुसूती के विषय में समझे। सौ पल ऊन को धुना जाय तो उसमें से पाँच पल छीजन में घटेगा और बुनने में रोंयें झड़ने के कारण से भी पाँच पल घट जायगा।

रजकाः काष्ठफलकश्लक्ष्णशिलासु वस्त्राणि नेनिज्युः। अन्यत्र नेनिजतो वस्त्रोपघातं षट्पणं च दण्ड दद्युः। मुद्गराङ्कादन्यद्वासः परिदधानास्त्रिपणं दण्डं दद्युः। परवस्त्रावक्रयाधानेषु च द्वादशपणो दण्डः। परिवर्तने मूल्यद्विगुणो वस्त्रदानं च। मुकुलावदातं शिलापट्टशुद्धं धौतसूत्रवर्ण प्रमृष्टश्वेततरं चैकरात्रोत्तरं दद्युः।

रजक को वस्त्रों की धुलाई चिकने काष्ठ या पाषाण पर करनी चाहिए। यदि अन्य टेढ़ी-मेढ़ी या कठोर शिला पर मार-मार कर वस्त्र धोवे और उससे वह फट जाय तो वस्त्र स्वामी की क्षति पूर्ति के साथ ६ पण राजदंड देना होगा। धोबी को मुद्गर चिन्ह से अंकित वस्त्र पहिनने चाहिए। यदि अन्य के प्रकार के पहिने तो तीन पण से दंडित हो। यदि ग्राहक के वस्त्रों को बेच दे, किराये पर दे दे या बन्धक रख दे तो उस रजक पर बारह पण का दंड करे। यदि वह किसी का कपड़ा किसी से बदल दे तो वस्त्र का दूना मूल्य राजदंड के रूप में दे और ग्राहक को वस्त्र लाकर लौटावे। पुष्पकलिका जैसे श्वेत वसन एक दिन में ही धोकर दे दे। यदि स्फटिक शिला के समान सफेद है तो उसे धोने के लिए एक दिन का समय और ले सकता है। धौत सूत जैसे वस्त्र तीन दिन में और अत्यन्त श्वेत वस्त्र चार दिन में धुल जाने चाहिये।

पञ्चरात्रिकं तनुरागं, षड्रात्रिकं नीलं, पुष्पलाक्षामंजिष्ठारक्तं, गुरुपरिकर्म यत्नोपचार्यं जात्यं वासः सप्तरात्रिकम्। ततः परं वेतनहानिं प्राप्नुयुः। श्रद्धेया रागविवादेषु वेतनं कुशलाः कल्पयेयुः। परार्ध्यानां पणो वेतनं मध्यमानामर्धपणः प्रत्यवराणां पादः। स्थूलकानां माषद्विमाषिकं द्विगुणं च रक्तकानाम्। प्रथमनेजने चतुर्भागः क्षयः। द्वितीये पंचभागः। तेनोत्तरं व्याख्यातम्। रजकैस्तुन्नवाया व्याख्याताः।

रङ्गरेज हल्के रंग के वसन पाँच दिन में, नीला एवं लाख या मंजीठ से रङ्गने वाला छः दिन में तथा अधिक कौशल से रंगा जाने वाला वसन सात दिन में रङ्ग कर लौटा दे। उपरोक्त नियम का अतिक्रमण करने पर उसे पारिश्रमिक न दिया जाय। यदि कोई पारिश्रमिक विषयक विवाद उपस्थित हो तो रङ्गने के सभी कार्यों में निपुण एवं श्रद्धेय व्यक्तियों द्वारा रङ्गाई का शुल्क निश्चित करावे। उत्तम श्रेणी के वसन एक पण में, मध्यम श्रेणी के आधे पण में और निम्न श्रेणी के चौथाई पण में रँगे जाने चाहिए। स्थूल वस्त्रों की रंगाई एक या दो माषिक तथा लाल रङ्ग के वस्त्रों की रङ्गाई दुगुनी दे। वसन के प्रथम बार धुलने में उसका चतुर्थांश मूल्य तथा दूसरी बार धुलने में पंचमांश मूल्य कम हो जाता है। मूल्य कम होने विषयक यह बात कह दी गई। रजक जैसे नियम ही तुन्नवाय अर्थात् दर्जी के लिए भी निश्चित हैं।

सुवर्णकाराणामशुचिहस्ताद्रूप्यं सुवर्णमनाख्याय सरूपं क्रीणतां द्वादशपणो दण्डः। विरूपं चतुर्विंशतिपणः। चोरहस्तादष्टचत्वारिंशत्पणः। प्रच्छन्नविरूपं मूल्यहीनक्रयेषु स्तेयदण्डः। कृतभाण्डोपधौ च। सुवर्णान्माषकमपहरतो द्विशतो दण्डः। रूप्यधरणान्माषकमपहरतो द्वादशपणः। तेनोत्तरं व्याख्यातम्। वर्णोत्कर्षमसाराणां योगं वा साधयतः पंचशतो दण्डः। तयोरपचरणे रागस्यापहारं विद्यात्। माषको वेतनं रूप्यधरणस्य। सुवर्णस्याष्टभागः। शिक्षाविशेषेण द्विगुणा वेतनवृद्धिः। तेनोत्तरं व्याख्यातम्।

अब स्वर्णकारों के छल से संबंधित नियम कहते हैं। स्वर्णाध्यक्ष को सूचना दिये बिना जो स्वर्णकार दास-दासी जैसे निम्न श्रेणी के लोगों से सोना या चाँदी क्रय करे उस पर बारह पण, आभूषणादि को गला कर पांसे के रूप में बने सोने चाँदी को क्रय करे उस पर

चौवीस पण और चोरों से क्रय करे उस पर अढ़तालीस पण का दंड करे। यदि चोरी के आभूषणों को गला कर सस्ते मूल्य में खरीदता हुआ पकड़ा जाय तो उसे चोरी का ही दंड दे। बने हुए अलंकारों के माल को बदल दे तो भी चोर जैसे दंड का भागी है। यदि राजा की सुवर्ण नामक मुद्रा से एक माषक स्वर्ण निकाल ले तो दो सौ पण और यदि चाँदी के सिक्के से एक माषक निकाले तो उसे बारह पण का दण्ड दे। इस प्रकार अन्यान्य प्रचलित सिक्कों से निकालने पर उनके ही अनुरूप दण्ड बढ़ेगा। किसी निकृष्ट धातु पर सोना चाँदी चढ़ा कर या सोने-चाँदी मे कोई निकृष्ट धातु मिला कर छल करने पर पांच सौ पण दण्ड दे। इसकी परीक्षा अग्नि पर तपाने से हो सकती है। तपाने पर रङ्ग बदल कर विवर्ण हो जाय तो चोरी हुई समझ ले। एक रूप्यधरण के भार वाले रजताभूषण की बनाई रूप्य का सोलहवां अंश और एक सुवर्ण भार के स्वर्णाभूषण की बनाई रूप्य आठवाँ अंश होती है। यदि स्वर्णकार विशेष चतुर हो तो दुगुनी मजदूरी ले सकता है, यह बात कार्य की विशिष्टता-वृद्धि के उद्देश्य से कही गई है।

ताम्रवृत्तकंसवैकृन्तकारकूटानां पंचकं शतं वेतनम्। ताम्रपिण्डो दशभागः क्षयः। पलहीने हीनद्विगुणो दण्डः। तेनोत्तरं व्याख्यातम्। सीसत्रपुपिण्डो विंशशतिभागः क्षयः। काकणी चास्य पलवेतनम्। कालायसपिण्डः पचभागक्षयः। काकणीद्वयं चास्य वेतनम्। तेनोत्तरं व्याख्यातम्। रूपदर्शकस्य स्थितां पणयात्रामकोप्यां कोपयतः कोप्यामकोपयतो द्वादशपणो दण्डः। व्याजीपरिशुद्धा पणमात्रा। पणान्माषकमुपजीवतो द्वादशपणो दण्डः। तेनोत्तरं व्याख्यातम्। कूटरूपं कारयतः प्रतिगृह्णतो निर्यापयतो वा सहस्रं दण्डः। कोशे प्रक्षिपतो वधः।

तांबा, सीसा, कांसा और पीतल की वस्तुओं का पारिश्रमिक पांच प्रतिशत दे। तांबे के गोला को गलाने में दशांश छीजन होती है। बने

हुए सामान में एक पल की कमी होने पर दो पल दंड दिया जाय। इस प्रकार कमी के अनुसार दंड भी बढ़ता जायगा। सीसा और लाख के गलाने में बीस अंश छीजता है। उनसे निर्मित होने वाली एक पल वस्तु का पारिश्रमिक एक काकणी (कौड़ी) होगा। लोहे को गलाने में पांच प्रतिशत छीजन और एक पल की बनाई दो काकणी होती है। अधिक भार की वस्तु बनने पर इसी अनुपात से बनाई देय होगी। यदि रूपदर्शक (मुद्रा निरीक्षक) दोष-रहित मुद्रा को दूषित और दूषित को दोष-रहित कह कर चलावे तो वह बारह पण का दंडभागी होगा। इसी से ऊंचे मूल्य की मुद्राओं के विषय में भी व्याख्या हो गई समझे। सिक्कों को ढाल कर चलाने वाले व्यक्ति पाँच प्रतिशत ब्याजी कर पर उसे चला सकते हैं। यदि मुद्रानिरीक्षक प्रत्येक पण पर एक माषक अपना लेकर चलाने की आज्ञा दे दे तो बारह पण से दण्डित हो। अन्यान्य छल वाले कार्यों में जैसा अपराध पाया जाय वैसा ही दण्ड देना बताया गया है। बनावटी सिक्के ढालने या चलाने वाले को सहस्र पण का दण्ड और राजकोष के असली सिक्कों में नकली सिक्के मिलाने वाले को प्राणदण्ड दे।

सरकपांसुधावकाः सारत्रिभागं लभेरन्। द्वौ राजा रत्नं च। रत्नापहार उत्तमो दण्डः। खनिरत्ननिधिवदनेषु षष्ठमंशं निवेत्ता लभेत। द्वादशमंशं भृतकः। शतसहस्रादूर्ध्वं राजगामी निधिः। ऊने षष्ठमंशं दद्यात्। पूर्वपौरुषिकं निधिं जानपदः शुचिः स्वकरणाभावे पंचशतो दण्डः। प्रच्छन्नादाने सहस्रम्। भिषजः प्राणाबाधिकमनाख्यायोपक्रममाणस्य विपत्तौ पूर्वः साहस-दण्डः। कर्मापराधेन विपत्तौ मध्यमः। मर्मवधवैगुण्यकरणे दण्ड-पारुष्यं विद्यात्।

मार्ग को झाड़ कर स्वच्छ करने वाले को यदि मार्ग में चाँदी-सोना पड़ा मिले तो उसे उसका तृतीयाँश मिलेगा और शेष दो अंश पर राजा का अधिकार होगा। यदि रत्न मिले तो उसका अधिकारी राजा

ही होगा । यदि पड़े हुए रत्न को कोई छिपा ले तो उत्तम साहस दण्ड का भागी होगा । यदि कोई प्रजाजन किसी खान, रत्न या भूमि में गढ़े हुए धन के विषय में राजा को सूचित करे तो उसे षष्ठांश और यदि राजकर्मचारी सूचित करे तो उसे द्वादशांश ही मिलेगा । यदि एक लाख पण से अधिक धन हो तो वह पूरा धन राजकोष में जमा होगा । यदि इससे कम मूल्य का धन है तो निवेदन करने वाला उसमें से षष्ठांश राजा को देगा और शेष सब स्वयं ले लेगा । यदि जनपद का रहने वाला कोई सदाचारी व्यक्ति भूमि में गढ़े धन को पा कर उसे अपने पूर्वजों का होना सिद्ध करदे तो वह एक लाख अधिक मूल्य का ही क्यों न हो, उसी को मिलेगा । किन्तु लेख या साक्ष्य के अभाव में अप्रमाणित धन को स्वयं रख लेने पर पाँच सौ पण का दंड भोगना होगा । यदि राजा को सूचित किये बिना मौन पूर्वक छिपा कर रखले तो पता लगने पर एक सहस्र पण से दंडित हो । किसी प्राण नाशक रोग के रोगी की चिकित्सा राजा को सूचित किये बिना ही यदि चिकित्सक प्रारंभ करदे और रोगी मर जाय तो चिकित्सक पूर्ण साहस दंड प्राप्त करेगा । यदि चिकित्सा-विधि के दोष से किसी की मृत्यु हो तो मध्यम साहस दण्ड होगा । यदि चिकित्सक का कोई उपकरण मर्मस्थान में लगने से रोगी संकटग्रस्त होजाय तो वैद्य को दण्डपारुष्य के विधान से दण्डित किया जाय ।

कुशीलवा वर्षारात्रमेकस्थाने वसेयुः । कामदानमतिमात्रमेकस्यातिपातं च वर्जयेयुः । तस्यातिक्रमे द्वादशपणो दण्डः । कामं देशजातिगोत्रचरणमैथुनापहाने नर्मयेयुः । कुशीलवैश्चारणा भिक्षुकाश्च व्याख्याताः । तेषामयः शूलेन यावतः पणानभिवदेयुः, तावन्तः शिफाप्रहारा दण्डाः । शेषाणां कर्मणां निष्पत्तिवेतनं शिल्पिनां कल्पयेत् ।

एवं चोरानचोराख्यान् वणिक्कारुकुशीलवान् ।
भिक्षुकान् कुहकांश्चान्यान् वारयेद्देशपीडनात् ॥

वर्षाऋतु में कुशीलवों को को एक ही स्थान में रहना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति उनकी क्रीड़ा से अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने सामर्थ्य से अधिक पारितोषिक देना चाहे तो कुशीलव वैसा न होने दें। इस नियम का अतिक्रमण करने पर उन्हें बारह पण से दण्डित किया जाय। वे किसी भी स्थान पर देश, जाति, गोत्र, चरण तथा मैथुन विषयक उपहास को न करते हुए श्रेष्ठ क्रीड़ा प्रदर्शन द्वारा जन साधारण को प्रसन्न करें। यही विधान चारणों और भिक्षुकों पर भी लागू है। उनके किसी उद्दण्डतायुक्त कार्य से यदि किसी का हृदय पीड़ित हो और उसके दण्ड स्वरूप धर्मस्थ द्वारा जितने पण लेने का निर्णय दिया जाय, यदि वे उतना अर्थदण्ड न दे सकें तो उनमें से प्रत्येक को बेंतों का दण्ड दिया जाय। यदि कोई कारीगर निश्चित से अधिक कार्य करे तो उसके अनुरूप पारिश्रमिक विचार पूर्वक दिया जाना चाहिए। इस प्रकार चोर न होते हुए भी चोर जैसा कार्य करने वाले कर्मचारी, वणिक्, कारीगर, कुशीलव, भिक्षुक, कुहक एवं अन्याय के द्वारा दिये जाने वाले सन्ताप से प्रजाजनों की रक्षा राजा को करनी चाहिए।

द्वितीयोऽध्यायः

वैदेहकरक्षण (व्यापारियों से रक्षा)

संस्थाध्यक्षः पण्यसंस्थायां पुराणभाण्डानां स्वकरणविशुद्धानामाधानं विक्रयं वा स्थापयेत्। तुलामानभाण्डानि चावेक्षेत। पौतवापचारात्। परिमाणीद्रोणयोरर्धपलहीनातिरिक्तमदोषः। पलहीनातिरिक्ते द्वादशपणो दण्डः। तेन पलोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता। तुलायाः कर्षहीनातिरिक्तमदोषः। द्विकर्षहीनातिरिक्ते षट्पणो दण्डः। तेन कर्षोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता।

आढकस्यार्धकर्षहीनातिरिक्तमदोषः। कर्षहीनातिरिक्ते त्रिपणो दण्डः। तेन कर्षोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता। तुलामानविशेषाणामतोऽन्येषामनुमानं कुर्यात्। तुलामानाभ्यामतिरिक्ताभ्यां

क्रीत्वा हीनाभ्यां विक्रीणानस्य त एव द्विगुणा दण्डाः । गण्य पण्येष्वष्टभागं पण्यमूल्येष्ववहरतः षण्णवतिर्दण्डः । काष्ठलोहमणिमयं रज्जुचर्ममृन्मयं सूत्रवल्करोममयं वा जात्यमित्यजात्यं विक्रयाधानं नयतो मूल्याष्टगुणो दण्डः ।

संस्थाध्यक्ष को अपने लेख आदि से प्रमाणित वस्तुओं को भन्डार में भरने या बाजार में बेचने की व्यवस्था करनी चाहिए। वह व्यापारियों के तराजू-बाँट का भी समय-समय पर निरीक्षण करता रहे, जिससे कि तोल में कमी-बेशी की सम्भावना न रहे। परिमाणी और द्रोण की नाप में आधे पल का अन्तर रहे तो कोई दोष नहीं है। एक पल का अन्तर रहने पर बारह पण का दण्ड और अधिक अन्तर हो तो उसी के अनुरूप दण्ड निश्चित करे। तराजू में भी एक कर्ष के पासंग की छूट है, किन्तु इससे अधिक दो कर्ष होने पर छः पण और विशेष अन्तर में इसी के अनुपात से दण्ड दे । आढक में आधे कर्ष की छूट है। यदि एक कर्ष का अन्तर हो तो तीन पण और अधिक हो तो इसी अनुपात में दण्ड दे। तुला-मान विषयक जो उल्लेख यहां न हुआ हो, उसके विषय में उपर्युक्त प्रमाण में दण्ड निश्चित करे। जो व्यापारी खरीदने में भारी बाँटों का और बेचने में हल्के बाँटों का प्रयोग करे उस पर चौबीस पण तथा जो गिनती की वस्तुओं में से अष्टमांश चोरी करले उस पर छियानवे पण दण्ड करे। काष्ठ, लौह, मणि, रज्जु, चर्म, मृत्तिका के सामान, सूत्र, वृक्ष की छाल या ऊन की निम्न कोटि की वस्तुओं को उच्च कोटि की कह कर जो व्यापारी बेचे या अपने भंडार में रखे तो उसे उन वस्तुओं के मूल्य से अठगुना दंड दे।

सारभाण्डमित्यसारभाण्ड, तज्जातमित्यतज्जातं, राढायुक्तमुपधियुक्त समूद्गपरिवर्तिमं वा विक्रयाधानं नयतो हीनमूल्यं चतुष्पंचाशत्पणो दण्डः, पणमूल्य द्विगुणः, द्विपणमूल्य द्विशतः। तेनार्धवृद्धौ दण्डवृद्धिर्व्याख्याता। कारुशिल्पिना कर्मगुणापकर्षमाजीवं विक्रयक्रयोपघातं वा सम्भूय समुत्थापयतां सहस्रं दण्डः ।

निकृष्ट सारहीन वस्तु को उत्कृष्ट, अल्प मूल्य की वस्तु को बहु-मूल्य या अन्य देश की वस्तु को अन्य देश की बता कर घटिया रत्न आदि को कृत्रिम रूप से चमका कर अधिक मूल्य के रत्नादि के समान, निकृष्ट द्रव्य को उत्कृष्ट में मिला कर अथवा इसी प्रकार मिथ्या कह कर अधिक मूल्य वाली वस्तु के बदले में कम मूल्य की दे तो उसे चौवन पण से दण्डित करे। उक्त प्रकार के माल के एक पण विक्रय मूल्य का दुगना अर्थदण्ड वसूल किया जाय। यदि वही वस्तु एक पण के स्थान पर दो पण में बेचे तो दो सौ पण वसूल करे। इसी प्रकार तीन, चार या अधिक की विक्री पर दो पण वाली बिक्री के अनुपात से दण्ड वृद्धि करे। यदि अनेक कारीगर मिल कर सामान बनावें और गुणहीन वस्तु पर पारिश्रमिक से भी अधिक लाभ कमावें और अधिक मूल्य लेकर क्रयकर्त्ता को या कम मूल्य देकर बिक्रेता को हानि पहुंचावें तो उनमें से प्रत्येक को एक हजार पण से दण्डित करे।

वैदेहकानां वा सम्भूय पण्यमवरुन्धतामनर्घेण विक्रीणतां क्रीणतां वा सहस्रं दण्डः। तुलामानान्तरमर्घवर्णान्तरं वा धरकस्य मापकस्य वा पणमूल्यादष्ठभागं हस्तदोषेणाचरतो द्विशतो दण्डः। तेन द्विशतोत्तरा दण्डवृद्धिर्व्याख्याता। धान्यस्नेहक्षारलवणगन्धभेषज्यद्रव्याणां समवर्णोपधाने द्वादशपणो दण्डः। यन्निसृष्टमुपजीवेयुः, तदेषां दिवससजातं सख्याय वणिक् स्थापयेत्। क्रेतृविक्रेत्रोरन्तरपतितमदायादन्यद्भवति। तेन धान्यपण्यनिचयांश्चानुज्ञाताः कुर्युः। अन्यथा निचितमेषां पण्याध्यक्षो गृह्णीयात्। तेन धान्यपण्यविक्रये व्यवहरेतानुग्रहेण प्रजानाम्। अनुज्ञातक्रयादुपरि चैषां स्वदेशीयानां पण्यानां पंचकं शतमाजीवं स्थापयेत्।

यदि व्यापारीगण एक मत होकर माल को एकत्र कर न बेचें या अनुचित मूल्य पर खरीद-बेच करें तो उनमें से प्रत्येक पर एक हजार पण दण्ड करे। यदि कोई तोलने-नापने वाला व्यक्ति हस्तलाघव से

या बाँट आदि बदल कर अथवा निश्चित मूल्य को गलत बता कर एक पण के अष्टमांश तक ग्राहक से अधिक वसूल करे तो उसको दो सौ पण का दण्ड दे। इससे यह भी कहा गया समझे कि अधिक क्षति पहुंचाने वाले को इसी अनुपात से अधिक दण्ड दे। अन्न, स्नेहद्रव्य, क्षारद्रव्य, लवण, गन्धद्रव्य एवं औषधादि में वैसे ही रंग-रूप की अन्य वस्तुएं मिश्रित कर वेचने वाले को बारह पण से दंडित करे। कर्मचारीगण जितना लाभाँश प्राप्त कर सकते हों या उन्हें नित्य प्रति जितना मिलता है, उसका हिसाब स्वामी नित्य ही दे दें। यदि संघाध्यक्ष स्वयं भी क्रय-विक्रय का कार्य करे तो उसका लाभ राजकोषागार में जमा किया जाय। अन्न एवं अन्यान्य व्यापारिक वस्तुओं का संग्रह व्यापारीगण संघाध्यक्ष की अनुमति से ही करें। क्योंकि अनुमति के विना संग्रहीत माल को संघाध्यक्ष अपने भंडार में रखवायेगा, जो कि राज्य का हो जायगा। इसीलिए संघाध्यक्ष को वस्तु-संग्रह द्वारा उपभोक्ताओं के लाभ की व्यवस्था करनी चाहिए। अनुमति लेकर स्वदेशी माल खरीदने वाला व्यापारी क्रय-मूल्य पर पाँच प्रतिशत लाभ ले सकेगा।

पपदेशीयानां दशकम्। ततः परमर्घं वर्धयतां क्रये विक्रये वा भावयतां पणशते पंचपणाद्द्विशतो दण्डः। तेनार्धवृद्धौ दण्डवृद्धिर्व्याख्याता। सम्भूयक्रमे चैषामविक्रीते नान्यं संभूयक्रयं दद्यात्। पण्योपघाते चैषामनुग्रहं कुर्यात् पण्यबाहुल्यात्। पण्याध्यक्षः सर्वपण्यान्येकमुखानि विक्रीणीत। तेष्वविक्रीतेषु नान्ये विक्रीणीरन्। तानि दिवसवेतनेन विक्रीणीरन् अनुग्रहेण प्रजानाम् देशकालान्तरितानां तु पण्यानां—

प्रक्षेपं पण्यनिष्पत्तिं शुल्कं वृद्धिमवक्रयम्।
व्ययानन्यांश्च संख्याय स्थापयेदर्घमर्घवित्॥

विदेशी माल पर दश प्रतिशत लाभ ले सकते हैं। अधिक मूल्य वृद्धि द्वारा अनुचित लाभ कमाने वालों पर दो सौ पण का दंड करे।

अधिक दाम बढ़ाने पर उसी के अनुपात से दंड दिया जाय। इस पर ध्यान रखा जाय कि अनेक व्यापारी एक साथ मिल कर माल का क्रय-विक्रय न कर पावें। यदि अधिक माल वाले व्यापारियों पर अग्नि-जल सम्बन्धी कोई संकट आ उपस्थित हो तो संघाध्यक्ष को उनकी सहायता करनी चाहिए। राजकीय व्यापारिक सामान की बहुलता होने पर पण्याध्यक्ष को उसे एक ही व्यापारी के हाथ बेच देना चाहिए। यदि वह व्यापारी न बेच पावे तो अन्य व्यापारी उससे वह माल लेकर नहीं बेच सकेंगे। अनुमति प्राप्त व्यापारी अपना दैनिक पारिश्रमिक वसूल करते हुए इस प्रकार क्रय-विक्रय करें जिससे कि जनता का हित-साधन हो सके। किन्तु विदेश से दीर्घकाल में प्राप्त हुए माल के विषय में प्रक्षेप, निर्माण काल का व्यय, राज्यशुल्क, ब्याज, अवक्रय एवं अन्यान्य खर्चे जोड़ कर मूल्य शास्त्र को जानने वाला संघाध्यक्ष उनका मूल्य निश्चित करे।

तृतीयोऽध्यायः

दैवी संकटों का प्रतीकार

दैवान्यष्टौ महाभयानि—अग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मूषिका व्यालाः सर्पा रक्षांसीति। तेभ्यो जनपदं रक्षेत्। ग्रीष्मे बहिरधिश्रयणं ग्रामाः कुर्युः। दशकुलीसंग्रहेणाधिष्ठिता वा। नागरिकप्रणिधावग्निप्रतिषेधो व्याख्यातः। निशान्तप्रणिधौ राजपरिग्रहे च। बलिहोमस्वस्तिवाचनैः पर्वसु चाग्निपूजाः कारयेत्। वर्षारात्रमनूपग्रामाः पूरवेलामुत्सृज्य वसेयुः। काष्ठवेणुनावश्चावगृह्णीयुः।

अब दैवी संकटों से प्रजा रक्षण के विषय में कहते हैं, जो कि आठ प्रकार के महाभय कहे जाते हैं—अग्नि, जल, रोग, दुर्भिक्ष, मूषक, व्याल, सर्प और राक्षस। ग्रामवासियों को ग्रीष्म काल में भोजन बनाने के लिए चूल्हा घर से बाहर जलाना चाहिए अथवा गोप के परामर्शानुसार जलावे। अग्निभय के शमनार्थ नागरिक प्रणिधि में बहुत

कुछ कह दिया गया है। निशान्तप्रणिधि में जो राजपरिग्रह के विषय में कहा है, उनमें अनेक अग्निशामक उपाय कह दिये हैं। पर्वकालों में बलि, होम, और स्वस्तिवाचन द्वारा राजा अग्निपूजन कराता रहे। वर्षाकाल में नदी तट वासी लोग जल वाले स्थानों से दूर जाकर रहें और समय पर बचाव के लिए काष्ठ या बाँस आदि से निर्मित नावें पास रखें।

उह्यमानमलाबुदृतिप्लवगण्डिकाभिस्तरेयुः। अनभिसरतां द्वादशपणो दण्डः। अन्यत्र प्लवहीनेभ्यः। पर्वसु च नदीपूजाः कारयेत्। मायायोगविदो वेदविदो वर्षमभिचरेयुः। वर्षावग्रहे शचीनाथगङ्गापर्वतमहाकच्छपूजाः कारयेत्। व्याधिभयमौपनिषदिकैः प्रतिकुर्युः। औषधैश्चिकित्सकाः शान्तिप्रायश्चित्तैर्वा सिद्धतापसाः।

जल में बहने वाले व्यक्तियों को तुम्बा, मशक, डोंगी, वेणिका प्रभृति तैरने वाली वस्तुओं की सहायता से निकालें। जो ऐसी सहायता न करें उन पर बारह पण का दण्ड करे। जिन पर तम्बा आदि के साधन न हों वे दोषी नहीं माने जाँयगे। जल संकट से रक्षा के लिए राजा पर्वकालों में नदी-पूजन करावे। मायायोग के ज्ञाता तथा वेद निपुण विद्वान् अतिवृष्टि रोकने के लिए अभिचार-कर्म करे। अनावृष्टि से बचने के लिए इन्द्र, गंगा, पर्वत और वरुण का पूजन करावे। यदि मानवीय व्याधि भय उपस्थित हो तो औपनिषदिक प्रकरण के अनुसार उपाय करे। सामान्य रोगों की औषधि चिकित्सक करें और सिद्ध एवं तापसजन शान्तिकर्म या प्रायश्चित्तों द्वारा भयों को दूर करने का प्रयत्न करें।

तेन मरको व्याख्यातः। तीर्थाभिषेचन महाकच्छवर्धनं गवां श्मशानावदोहनं कबन्धदहनंदेवरात्रिं च कारयेत्। पशुव्याधिमारके स्थानान्यर्थं नीराजनं स्वदैवतपूजनं कारयेत्। दुर्भिक्षे राजा बीज-भक्तोपग्रह कृत्वाऽनुग्रहं कुर्यात्। दुर्गसेतुकर्म वा भक्तानुग्रहेण। भक्त-

संविभागं वा। देशनिक्षेपं वा। मित्राणि वा व्यपाश्रयेत। कर्शनं वमनं वा कुर्यात्।

इसी कथन से महामारी का उपाय भी कह दिया गया। इसके लिए राजा द्वारा प्रजाजनों को तीर्थस्नान, समुद्र या वरुण का पूजन, श्मशान में गोदोहन, पुतलों का दहन तथा देवोपासना के निमित्त रात्रि जागरण की आज्ञा दी जानी चाहिए। पशुओं में रोग या महामारी फैलने पर वहाँ से पशुओं को अन्य स्थान पर पहुंचादे और नीराजन कराता हुआ जिस-जिस पशु के जो-जो देवता हों, उनकी पूजा करावे। दुर्भिक्ष पड़ने पर राजा बीज एवं अन्न के प्रदान द्वारा राजा प्रजाजनों पर कृपा प्रदर्शित करे। या जीविका के लिए प्रजा को दुर्ग या सेतु के बनाने में लगा दे। ऐसा न हो सके तो उनके भोजन की ही व्यवस्था कर दे या प्रजा को अन्न की प्रचुरता वाले समीपवर्ती स्थान पर भेज दे। यह भी न हो पावे तो प्रजाजनों की रक्षा के निमित्त राजा अपने मित्रों की सहायता प्राप्त करे। अथवा धनिकों से कर द्वारा धन ले या जिनके पास संचित द्रव्य हो उसे ग्रहण कर ले।

निष्पन्नसस्यमन्यविषयं वा सजनपदो यायात्। समुद्रसरस्तटाकानि वा संश्रयेत। धान्यशाकमूलफलावापान् सेतुषु कुर्वीत। मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यारम्भान् वा। मूषिकभये मार्जारनकुलोत्सर्गः। तेषां ग्रहणहिंसायां द्वादशपणो दण्डः। शुनामनिग्रहे च अन्यत्रारण्यचरेभ्यः। स्नुहीक्षीरलिप्तानि धान्यानि विसृजेत्। उपनिषद्योगयुक्तानि वा। मूषिककरं वा प्रयुंजीत। शान्तिं वा सिद्धतापसाः कुर्युः। पर्वसु च मूषिकपूजाः कारयेत। तेन शलभपक्षिक्रिमिभयप्रतीकारा व्याख्याताः।

या अपने जनपद वासियों के साथ किसी प्रचुर अन्न वाले प्रदेश में राजा स्वयं भी चला जाय। अथवा समुद्र, सरोवर, तड़ाग आदि के समीप जाकर रहे। या जहाँ सेतु हो वहाँ अन्न, शाक, मूल, या फल आदि बुवादे। साथ ही मृग, पशु, पक्षी, व्याल एवं मत्स्यादि को पकड़वा

ले। यदि चूहे हों तो वहाँ बिल्लियाँ और न्यौले रखे। यदि इन बिल्ली या न्यौलों को कोई मारे तो उस पर बारह पण का दंड करे। यदि कोई अपने पालतू श्वान को नियन्त्रण में न रख कर दूसरों को कष्ट पहुंचावे तो उनको भी बारह पण का दंड दे। किन्तु वनचर जाति वालों को कुत्तों के कारण दंडित न करे। चूहे को नष्ट करने लिए स्नुहीक्षीर (थूहर के दूध) में अन्न लपेट कर डलवाये अथवा औपनिषदिक प्रकरण के अनुसार औषधि प्रयोग करे। या चूहा-कर ही लगा दे अथवा सिद्ध और तपस्वी-गण चूहों के शमनार्थ शान्ति कर्म करें या पर्वकाल में मूषकपूजा करावें। इसी प्रकार शलभ, पक्षी एवं कृमि आदि के भय का प्रतीकार भी कह दिया समझे।

व्यालभये मदनरसयुक्तानि पशुशवानि प्रसृजेत्। मदनकोद्रव-पूर्णान्यौदर्याणि वा। लुब्धकाः श्वगणिनो वा कूटपंजरपाशावपातैं-श्चरेयुः। आवरणिनः शस्त्रपाणयो व्यालानभिन्यः। अनभिसर्तु-र्द्वादशपणो दण्डः। स एव लाभो व्यालघातिनः। पर्वसु च पर्वत-पूजाः कारयेत्। तेन मृगपक्षिसंघग्राहप्रतीकारा व्याख्याताः।

व्याल आदि हिंसक जीवों के उपद्रव से बचने के लिये किसी मरे हुए पशु के शरीर में धतूरे का रस या धतूरा और कोंदो भर कर उनके भोजन रूप डलवादे। या उन्हें पकड़ने के लिए लुब्धक और चंडाल झाड़ियों में पिंजरे छिपा दें या गहरे गढ़े खोद कर घास-फूस से आवृत्त करें। अथवा कवच से अपने देह को सुरक्षित किये हुए लुब्धक उन्हें सामने जाकर शस्त्रास्त्रों से मार दें। किसी हिंसक जीव के चंगुल में आये हुए मनुष्य की सहायता न करने वाले पर बारह पण दंड और हिंसक जीव को मार कर राजा के पास लावे उसे इतना ही पुरस्कार दिया जाय। पर्वकाल में राजा को पर्वत-पूजन भी करना चाहिये। इस नियम से यूथ वाले मृगों और पक्षियों के उपद्रवों का उपाय भी कह दिया गया।

सर्पभये मंत्रैरोषधिभिश्च जांगलीविदश्चरेयुः। सम्भूय वोपसर्पान् हन्युः। अथर्ववेदविदो वाभिचरेयुः। पर्वसु च नागपूजाः कारयेत्। तेनोदकप्राणिभयप्रतीकारा व्याख्याताः। रक्षोभये रक्षोघ्नान्यथर्ववेदविदो वा मायायोगविदो कर्माणि कुर्युः। पर्वसु च वितर्दिच्छत्रोल्लोपिकाहस्तपताकाच्छागोपहारैश्चैत्यपूजाः कारयेत्। चरुं वश्चराम इत्येवं सर्वभयेष्वहोरात्रं चरेयुः। सर्वत्र चोपहतान् पितेवानगृह्णीयात्।

मायायोगविदस्तस्माद्विषये सिद्धतापसाः।
वसेयुः पूजिता राजा दैवापत्प्रतिकारिणः॥

सर्पभय का उपचार मन्त्र और औषधियों द्वारा करे। या मनुष्यों के समूह एकत्र होकर घूमें और जहाँ सर्प दिखाई दें, वहीं उन्हें मार दें। अथवा अथर्ववेद के ज्ञाताजन अभिचार-कर्म द्वारा सर्पों को नष्ट कर दें। पर्वों पर नागपूजन किया जाय। इसी के द्वारा जलचरों के भय का प्रतीकार भी कह दिया गया। राक्षसभय से बचने के लिए अथर्ववेदविज्ञ अभिचार कर्म और मायायोगविद अपने उपायों को करें। पर्वों पर राजा वेदिका, छत्र, खाद्यान्न, हस्तपताका एवं छाग के मांस के उपहार से पूजा करावे। यदि सब भय सम्मिलित रूप से आ खड़े हों तो 'तुम्हारे लिए चरु तैयार करते हैं' यह कहते हुए दिन-रात घूमते रहें। उस समय डरी हुई प्रजा पर राजा को पिता के समान अनुग्रह करना चाहिये। दैवी विपत्तियों के उपायों में सिद्ध एवं मायायोग के ज्ञाता तपस्वीजन राजा के द्वारा सदैव पूजित होते हुए राज्य में ही रहें।

चतुर्थोऽध्यायः

गूढाजीवियों से रक्षा

समाहर्तृप्रणिधौ जनपदरक्षणमुक्तम्। तस्य कंटकशोधनं वक्ष्यामः। समाहर्ता जनपदे सिद्धतापसप्रव्रजितचक्रचरचारणकुहकप्रच्छन्दककार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकचिकित्सकोन्मत्तमूकबधिर-

रजडान्धवैदेहककारुशिल्पिकुशीलववेशशौण्डिकापूपिकपक्वमांसिकौदनिकव्यंजनान् प्रणिदध्यात् । ते ग्रामाणामध्यक्षाणां च शौचाशौचं विद्युः । यं चात्र गूढाजीविनं शंकेत, सत्रिसवर्णेनापसर्पयेत् । धर्मस्थं प्रदेष्टारं वा विश्वासोपगतं सत्री ब्रूयात्—'असौ मे बन्धुरभियुक्त । तस्यायमनर्थः प्रतिक्रियताम् । अयं चार्थः प्रतिगृह्यताम्' इति । स चेत्तथा कुर्यात् 'उपदाग्राहक' इति प्रवास्येत । तेन प्रदेष्टारो व्याख्याताः ।

समाहर्तृ प्रणिधि प्रकरण में जनपद रक्षण के विषय में कह चुके हैं। अब जनपद में ही स्थित कंटक अर्थात् अवांछनीय तत्वों के प्रतीकार को कहते हैं। समाहर्ता का कर्त्तव्य है कि वह उन्हें खोजने के लिए सिद्ध, तापस, संन्यासी, चक्रचर, चारण, कुहक, प्रच्छन्दक, कार्तान्तिक, नैमित्तिक, मौहूर्तिक, वैद्य, उन्मत्त, मूक, बधिर, जड़, अन्ध, वैदेहक, कारु, कुशीलव, वेश, शौण्डिक, आपूपिक, पक्वमांसिक और औदनिक आदि के वेश वाले गुप्तचरों को लगा दे, जोकि ग्रामीणों और ग्राम-प्रमुखों आदि के द्वारा उनके शुद्ध, अशुद्ध आचरण की जानकारी करें। उनमें से जो व्यक्ति गुप्तरीति से जीविकोपार्जन करने वाले प्रतीत हों, उनके सजातीय सत्रि संज्ञक गुप्तचर को उनकी विशेष गतिविधियों पर नजर रखने के लिए नियुक्त करदे। यदि कोई धर्मस्थ भ्रष्टाचार में लिप्त हो तो सत्रि उससे मेल जोल बढ़ा कर उसका विश्वासपात्र बन जाय और फिर किसी एक दिन उससे कहे—मेरा भाई अभियुक्त बना लिया गया है, उसे इस संकट से बचाने की कृपा कीजिए और इसके लिए यह द्रव्य ले लीजिए। यदि वह उसे स्वीकार करले तो भ्रष्ट जान कर राजा उसे निष्कासित या पदच्युत करदे। इस प्रकार प्रदेष्टाओं के विषय में भी कह दिया गया।

ग्रामकूटमध्यक्षं वा सत्री ब्रूयात्—'असौ जाल्मः प्रभूतद्रव्यः, तस्यायमनर्थः । तेनैनमहारयस्व' इति प्रवास्येत । कृतकाभियुक्तो वा कूटसाक्षिणोऽभिज्ञातानर्थवैपुल्येन आरभेत । चेत्तथा

कुर्युः, कूटसाक्षिण इति प्रवास्येरन्। तेन कूटश्रावणकारकाः। व्याख्याताः यंवा मंत्रयोगमूलकर्मभिः श्मशानिकैर्वा संवननकारकं मन्तये,तंसत्री ब्रूयात्-'अमुष्य भार्यां स्नुषां दुहितरं वा कामये। सा मां प्रतिकामयताम्. अयं चार्थः प्रतिगृह्यताम्' इति। सचेत्तथा कुर्यात् संवननकारक इति प्रवास्येत। तेन कृत्याभिचारशीलौ व्याख्यातौ।

ग्राम प्रमुख के पास जाकर सत्रि कहे—अमुक दुष्कर्मी के पास प्रभूत द्रव्य है। किन्तु अब उस पर संकट उपस्थित है, इस अवसर पर आप उसका धन छीन लीजिये। तब वह सत्रि के कथनानुसार करे तो उसे भ्रष्ट जान कर राजा देश से निष्कासन करा दे। जो मनुष्य मिथ्या साक्ष्य देने में प्रसिद्ध हो उसके पास अभियुक्त बना हुआ गुप्तचर जाकर झूंठी गवाही देने के लिए धन का लोभ दे। यदि वह वैसा करना स्वीकार करले तो उसे भ्रष्ट जान कर देश से निकाल दे। इस प्रकार झूंठी गवाही के लिए प्रोत्साहन देने वाले का भी विवेचन हो गया। मंत्र प्रयोग, औषधोपचार या श्मशान में जा कर वशीकरण आदि की सिद्धि करता हो उसके पास जाकर सत्री कहे—में अमुक की भार्या, पुत्रवधु या कन्या को चाहता हूँ। यदि आप उसे मेरे वश में करा सकें तो यह धन स्वीकार करिये। यदि वह वैसा करे तो राजा उसे भी देश से बाहर कर दे। इस प्रकार कृत्यशील अभिचारशील पुरुषों का भी विवेचन होगया।

यं वा रसस्य वक्तारं क्रेतारं विक्रेतारं भैषज्याहारव्यवहारिणं वा रसदं मन्येत, तं सत्री ब्रूयात्—'असौ मे शत्रुस्तस्योपघातः क्रियताम्, अयं चार्थः प्रतिगृह्यताम्' इति। स चेत्तथा कुर्याद्रसद इति प्रवास्येत। तेन मदनयोगव्यवहारो व्याख्यातः। यं वा नाना लोहक्षाराणामङ्गारभस्त्रासन्दंशमुष्टिकाधिकरणीविटंकमूषाणामभीक्ष्णं क्रेतारं मषीभस्मधूमदिग्धहस्तवस्त्रलिङ्गं कर्मारोपकरणसंवर्गं कूटरूपकारकं मन्येत, तं सत्री शिष्यत्वेन संव्यंहारेण चानुप्रविश्य प्रज्ञापयेत्। प्रज्ञातः कूटरूपकारक इदि प्रवास्येत। तेन रागस्यापहर्ता कूटसुवर्णव्यवहारी च व्याख्यातः।

आरब्धारस्तु हिंसायां गूढाजीवास्त्रयोदश ।
प्रवास्या निष्क्रयार्थं वा दद्यु र्दोषविशेषतः ।।

जो विप बनाने वाला, खरीदने वाला, वेचने वाला, औषधि या खाद्य वस्तु वेचने वाला अथवा विष देने वाला प्रतीत हो उसके पास जाकर सत्री कहे—मेरे अमुक शत्रु को विष देकर मार दो और यह धन ले लो। यदि वह वैसा करे तो उसे देश से निकाल दिया जाय। इसी प्रकार से धतूरे के योग से मारने या वेहोश कर देने वालों की भी व्याख्या हुई समझे। यदि कोई व्यक्ति लौह, क्षार, ऊपले, धौंकनी, सँडासी, हथौड़ा, घन, साँचे, छेनी और मूषा आदि अधिक परिमाण में क्रय करता हुआ पावे या मूषा की भस्म एवं धुँए आदि से खराव हुए वस्त्र धारण किये मिले या जिसके पास लोहारों के उपकरण आदि हों और जिसे देखने से जाली सिक्के बनाने की शंका होने लगे तो सत्रि उसका शिष्य वनकर और उसके स्थान में घुस कर सब रहस्य जान ले। तव राजा उसे जाली सिक्के वनाने वाला जान कर देश निकाला दे दे। यही विधान सोने का रंग उड़ाने या नकली सोना निर्माण करने वालों के विषय में भी कह दिया समझे। गूढाजीवी अर्थात् छिपी आजीविका वालों के धर्मस्थ, प्रदेष्टा, ग्रामकूट, ग्रामाध्यक्ष, कूटसाक्षी, कूठश्रावक, वशीकर्मकर्त्ता, कृत्याकर्त्ता, अभिचारकर्त्ता, विषदाता, धतूरादाता, कूटरूपकार और कूटसुवर्णव्यवहारी आदि तेरह प्रकार माने जाते हैं (जिनके विषय में ऊपर वता चुके हैं)। यह सव प्रजाजनों को सताते रहते हैं। इसलिए प्रजा को सुखी बनाने के उद्देश्य से राजा उन सब को (भ्रष्टाचारी पाये जाने पर) अपने देश से निष्कासित कर दे ।।१।।

पञ्चमोऽध्यायः

सिद्ध गुप्तचरों द्वारा अपराधियों की खोज

सत्रिप्रयोगादूर्ध्वं सिद्धव्यंजना माणवा माणवविद्याभिः प्रलो-

भयेयुः । प्रस्वापनान्तर्धानद्वारापोहमंत्रेण प्रतिरोधकान्, संवनन-मंत्रेण पारतल्पिकान् । तेषां कृतोत्साहानां महासंघमादाय रात्रावन्यं ग्राममुद्दिश्यान्यं ग्रामं कृतकस्त्रीपुरुषं गत्वा ब्रूयुः—'इहैव विद्याप्रभावो दृश्यताम् । कृच्छ्रः परग्रामो गन्तुम्' इति । ततो द्वारापोहमंत्रेण द्वाराण्यपोह्य 'प्रविश्यताम्' इति ब्रूयुः । अन्तर्धान-मंत्रेण जाग्रतामारक्षिणां मध्येन माणवानतिक्रामयेयुः । प्रस्वापन-मंत्रेण प्रस्वापयित्वा रक्षिणः शय्याभिर्माणवैः सचारयेयुः । संवन-नमंत्रेण भार्याव्यंजनाः परेषां माणवैः संमोदयेयुः । उपलब्धविद्या-दिशेयुरभिज्ञानार्थम् ।

सिद्ध वेशधारी गुप्तचरों के कार्य पर प्रकाश डालते हैं । सत्री संज्ञक गुप्तचरों के पश्चात् सिद्ध पुरुष का वेश धारण करने वाले गुप्तचर अपराधी तत्वों से मेल जोल बढ़ावें । वह सम्मोहन, वशीकरण आदि के चमत्कार दिखाने के बहाने से अपराधियों को प्रलोभन में डाले रहें । जब वे लोग उस सिद्ध वेशधारी पर विश्वास करते हुए उसकी आज्ञा मानने लगें तब रात्रि के समय उनके बड़े समूह को साथ ले और किसी ग्राम में जाकर वहाँ एकत्रित स्त्री-पुरुषों से कहे—अब दूसरे ग्राम में तो पहुँचा नहीं जा सकता, अतः यहीं मेरी विद्या का चमत्कार देखो । फिर वह द्वार खोलने का मन्त्र पढ़ कर किसी के घर का द्वार खोले और सब से कहे कि 'इसमें प्रवेश करो' । फिर अन्तर्धान मन्त्र का उच्चारण करता हुआ उन चोरों आदि को उन रक्षक पुरुषों के मध्य से निकाल दे (क्योंकि रक्षक पुरुष पहिले से सधे होने के कारण कुछ न कहेंगे। तदनन्तर प्रस्वापन मन्त्र पढ़े और वे रक्षक आदि ऊँघने लगें तब उन दुष्कर्मियों को उनकी शय्याओं पर लिटा दे । फिर संवनन मन्त्र के उच्चारण करते ही पर-स्त्री के छद्मवेश में उपस्थित गुप्तचर उनका मनोरंजन करे । जब वे इस चमत्कार से चकित हो जाँय तब उन्हें विद्या सिखाने की बात कह कर पुरश्चरण आदि के लिए प्रेरित करे ।

कृतलक्षणद्रव्येषु वा वेश्मसु कर्म कारयेयुः। अनुप्रविष्टान् वैकत्र ग्राहयेयुः। कृतलक्षणद्रव्यक्रयविक्रयाधानेषु योगसुरामत्तान् वा ग्राहयेयुः। प्रग्रहीतान् पूर्वंपदानसहायाननुयुंजीत। पुराणचौर-व्यंजना वा चोराननुप्रविष्टास्तथैव कर्म कारयेयुर्ग्राहयेयुश्च। गृहीतान्समाणर्ता पौरजानपदानां दर्शयेत्—'चोरग्रहणी विद्यामधीते राजा। तस्योपदेशादिमे चोरा गृहीताः। भूयश्च ग्रहीष्यामि। वारयितव्यो वः स्वजनः पापाचार' इति। यं चात्रापसर्पोपदेशेन शम्याप्रतोदादीनामपहर्त्तारं जानीयात्तमेषां प्रत्यादिशेत्-'एष राज्ञः प्रभाव' इति।

अथवा उनके द्वारा उस गृह में चोरी करावे, जिसमें कि विशेष चिन्ह वाली वस्तुएँ रखी गई हों। प्रथम तो उस घर में प्रविष्ट होते ही पहिले से उपस्थित राजपुरुष उन्हें पकड़ लें। या जब वे चोर उन चिन्हित वस्तुओं का क्रय-विक्रय करें या बन्धक रखें तब पकड़वा लिये जाँय और फिर पूर्वकृत चौर कर्म के विषय में भी उनसे और उनके साथियों से पूछ-ताछ की जाय। या चोर के वेश में मिले हुए गुप्तचर उन्हें चोरी करते समय ही पकड़वा दें। उन पकड़े हुए चोरों को नगर और जनपद के लोगों के सामने उपस्थित करके समाहर्त्ता कहे—हमारे राजा चोरग्रहण विद्या सीख रहे हैं और उन्हीं के उपदेश से इन चोरों को पकड़ा गया है। आगे भी ऐसे लोग पकड़े जाँयगे। इसलिये यदि आपके स्वजनादि भी इस पापाचार में लगे हों तो उन्हें रोकना चाहिए। तभी गुप्तचरों के कहे अनुसार वे व्यक्ति भी जनता को दिखा दिये जाँय, जो कि शम्या (जुआरे की कील) या प्रतोद जैसी तुच्छ वस्तुएँ चुराते पकड़े गये हों। फिर कहे—ऐसी तुच्छ वस्तुएँ चुराने के विषय में भी जानकारी होना हमारे राजा का ही प्रभाव है।

पुराणचोरगोपालकव्याधश्वगिणिनश्च, वनचोराटविकाननुप्रविष्टाः प्रभूतकूटहिरण्यकुप्यभाण्डेषु सार्थव्रजग्रामेष्वेनानभियोजयेयुः। अभियोगे गूढबलैर्घातयेयुः, मदनरसयुक्तेन वा पथ्यादनेन।

अनुगृहीतलोप्तृभारानायतगतपरिश्रान्तान् प्रस्वपतः प्रहवणेषु योगसुरामत्तान् वा ग्राहयेयुः।

पूर्ववच्च गृहीत्वैतान् समाहर्ता प्ररूपयेत्।
सर्वज्ञख्यापनं राज्ञः कारयन् राष्ट्रवासिषु॥

इसी प्रकार पुराने चोर, गोप एवं आखेटक श्वान पालने वालों में उन्हीं का वेश धारण किये हुये गुप्तचर जा मिलें और उन्हें प्रभूत स्वर्ण और तांबे के बर्तनों से सम्पन्न व्यापारियों, गौशालाओं या ग्रामों में चोरी करने के लिये उकसावें। जब वे सदल बल चोरी आदि के लिये आक्रमण करें तब वहाँ पहले उपस्थित सेना द्वारा अथवा धतूरे आदि से मिश्रित पदार्थों एवं विषोषधियों को अन्न में मिला कर खिलाने के द्वारा मरवा दें। या चोरी का भारी सामान लेकर चलने के कारण थक कर सो जाँय अथवा तीक्ष्ण सुरा पीकर बेहोश हो जाँय तब उन्हें पकड़वा दिया जाय। फिर समाहर्त्ता उन चोरों को भी पूर्ववत जनता के समक्ष उपस्थित करके राजा की सर्वज्ञता जता कर देशवासियों को प्रभावित करें।

षष्ठोऽध्यायः

शङ्कारूपकर्माभिग्रह

सिद्धप्रयोगादूर्ध्वं शंकारूपकर्माभिग्रहः। क्षीणदायकुटुम्बमल्पनिर्वेशं विपरीतदेशजातिगोत्रनामकर्मापदेशं प्रच्छन्नवृत्तिकर्माणं मांससुराभक्ष्यभोजनगन्धमाल्यवस्त्रविभूषणेषु प्रसक्तमतिव्ययकर्तारं पुंश्चलीद्यूतशौण्डिकेषु प्रसक्तमभीक्ष्णप्रवासिनमविज्ञातस्थानगमनमेकान्तारण्यनिष्कुटकालचारिणं प्रच्छन्ने सामिषे वा देशे बहुमंत्रसन्निपातं सद्यः क्षतव्रणानां गूढप्रतीकारयितारमन्तर्गृहनित्यमभ्यधिगन्तारं कान्तापरं परपरिग्रहाणां परस्त्रीपरद्रव्यवेश्मनाम नीक्षणप्रष्टारं कुत्सितकर्मशास्त्रोपकरणसंसर्गं विरात्रे छन्नकुड्यच्छायासंचारिणं विरूपद्रव्याणामदेशकालविक्रेतारं जात-

वैराशयं हीनकर्मजातिं विगूहमानरूपं लिङ्गे नालिङ्गिनं लिङ्गिनं वा भिन्नाचारं पूर्वंकृतापदानं स्वकर्मभिरपदिष्टं नागरिकमहामात्रदर्शने गूहमानमपसरन्तमनुच्छ्वासोपवेशिनमात्रिग्नं शुष्कभिन्नस्वरमुखवर्णं शस्त्रहस्तमनुष्यसम्पातत्रासिनं हिंस्रस्तेननिधिनिक्षेपापहारप्रयोगगूढाजीविनामन्यतमं शङ्केतेति शङ्काभिग्रहः ।

सिद्ध वेशधारी गुप्तचर इतना करने पर भी चोरों को पकड़ने में सफल न हों तो शंका के आधार पर लोगों को पकड़ सकते हैं। शंका में इन्हें पकड़ा जा सकता है—जिसका वंश परम्परागत धन, कुटुम्ब या जीविका घट जाय, जिसकी आय कम और व्यय अधिक हो, जो देश, जाति, गोत्र, नाम और व्यवसाय का झूँठा परिचय दे या आजीविका हेतु छिप कर कार्य करे, जो मांस, सुरा, भक्ष्य, भोजन, गन्ध, माल्य, वस्त्र या आभूषणादि की विशेषता का इच्छुक हो, जो अत्यधिक व्यय करे, जिसका वेश्याओं, जुआ खेलने वालों या सुरापान करने वालों से अधिक मेल हो, जिसका आवागमन बार-बार रहता हो या जो अपने रहने, जाने आदि के स्थान को छिपाता हो, जो निर्जन स्थान में अधिक घूमता हो, जो दूसरों के छिपे स्थानों आदि पर जाकर विशेष हाव-भाव दिखाता हो, जो अपने व्रण का छिप कर उपचार करता हो, जो सदा घर में छिपा रहता हो, जो किसी को आता हुआ देख कर लौट जाता हो, जो स्त्री के वशीभूत रहता हो, जो पराये परिग्रह, परस्त्री, परद्रव्य एवं घर आदि के विषय में पूछता हो, जो कुत्सित कर्म के लिये उपयोगी उपकरणादि का ज्ञान रखता हो, जो अर्द्धरात्रि के समय परकोटे की छाया में घूमता हो, जो किसी श्रेष्ठ वस्तु का रङ्ग रूप बिगाड़ कर बेचता हो, जिसके मनोभाव शत्रुता पूर्ण प्रतीत हों, जो निकृष्ट व्यवसाय करे या अपने देह को छिपाता हुआ चले। जो अलिंगी होकर भी संन्यासी आदि के चिन्ह धारण करे, जो कभी चोरी आदि कर चुका हो, जो अपने कुत्सित कर्म के कारण कुख्यात हो, जो नागरिक को देखकर भाग जाय, जो प्राणायाम लगाकर एकान्त में बैठता हो, जो सदा भयभीत-सा

प्रतीत हो, जो भिन्न कंठध्वनि या भिन्न मुखाकृति से युक्त हो और किसी शस्त्रधारी को देखते ही घबरा जाय। एसे व्यक्ति हिंसक, चोर धनहरण-कर्ता, धरोहर पचाने वाले तथा क्रोधावेश युक्त बुरे कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले होते हैं। ऐसे सब व्यक्तियों के प्रति शंका हो सकती है।

रूपाभिग्रहस्तु नष्टापहृतमविद्यमानं तज्जातव्यवहारिषु निवेदयेत्। तच्चेन्निवेदितमासाद्य प्रच्छादयेयुः साचिव्यकरदोषमाप्नुयुः। अजानन्तोऽस्य द्रव्यस्यातिसर्गेण मुच्येरन्। न चानिवेद्य संस्थाध्यक्षस्य पुराणभाण्डानामाधानं विक्रयं वा कुर्युः। तच्चेन्निवेदितमासाद्येत, रूपाभिगृहीतमागमं पृच्छेत् कुतस्ते लब्धमिति। स चेद्ब्रूयात् दायाद्यादवाप्तमममुष्माल्लब्धं, क्रीतं कारितमाधिप्रच्छन्नम्, अयमस्य देशः कालोश्चोपसंप्राप्तः, अयमस्यार्धः प्रमाणं लक्षणं मूल्यं चेति। तस्यगमसमाधौ मुच्येत।

खोई या उड़ाई गई वस्तु की सूचना अधिकारियों द्वारा उस वस्तु के व्यापारियों को दे दी जानी चाहिए। तत्पश्चात् यदि कोई व्यापारी उस वस्तु को पाकर पहिचान ले और फिर भी छिपाकर अपने पास रख ले तो उस व्यापारी को भीं उसमें सहायक मान कर दंड दिया जाय। यदि भूल वश वैसा किया जाना सिद्ध हो तो वस्तु लेकर उसे छोड़ दे। कोई भी व्यापारी संस्थाध्यक्ष को सूचित किये बिना किसी पुरानी वस्तु का क्रय-विक्रय नहीं कर सकता। व्यापारी के पास सूचित आकार की वस्तु आजाय तो लाने वाले से प्रश्न करे कि 'यह तुम्हें कहां मिली ?' तब वह उसे वंश परम्परा से प्राप्त बताये, किसी का नाम लेकर उससे खरीदी या बनवाई हुई या बंधक रखी हुई बताये, लेने का समय, स्थान, मूल्य, प्रमाण और वर्तमान मूल्य आदि बता कर अपनी सिद्ध करदे तो उसे छोड़ दे।

नाष्टिकश्चेत्तदेव प्रतिसंदध्यात्। यस्य पूर्वो दीर्घश्च परिभोगः शुचिर्वा देयस्तस्य द्रव्यमिति विद्यात्। चतुष्पदानामपि हि रूपलिङ्गसामान्यं भवति। किमङ्गपुनरेकयोनिद्रव्यकर्तृप्रसूतानां

कुप्याभरणभाण्डानामिति । स चेद्ब्रूयात्—याचितकमवक्रीतकमाहितकं निक्षेपमुपनिधिं वैयावृत्यकर्म वाऽमुष्येति, तस्यापसारप्रतिसन्धानेन मुच्येत । नैवमित्यपसारो वा ब्रूयात् । रूपाभिगृहीतः परस्य दानकारणमात्मनः प्रतिग्रहकारणमुपलिङ्गनं वा दायकदापकनिबन्धकप्रतिग्राहकोपदेष्टृभिरुपश्रोतृभिर्वा प्रतिसमानयेत् । उज्झितप्रनष्टनिष्पतितोपलब्धस्य देशकाललाभोपलिङ्गनेन शुद्धिः । अशुद्धस्तच्च तावच्च दण्डं दद्यात् । अन्यथा स्तेयदण्डं भजेत । इति रूपाभिग्रहः ।

यदि अभियोक्ता और उपभोक्ता दोनों के पास साक्षी का अभाव हो तो उपभोग करने वाले को ही उसका स्वामी माने या जो यथार्थ स्वामी समझा जाय उसे दिला दे । जब चौपायों और मनुष्यों के रूप में भी कभी-कभी साम्य प्रतीत होता है, तब काष्ठ की बनी वस्तु, अलंकार या बर्तन आदि में साम्य होने में अद्भुत बात क्या है ? यदि कोई कहे कि यह वस्तु मेरे पास किराये पर, बंधक या धरोहर के रूप में अथवा परिवर्तन या ठीक करने के लिये आई थी । तो उसके कथन की परीक्षा उस व्यक्ति से करे जिसका नाम लिया जाय और ठीक निकले तो उसे छोड़ दे । किन्तु यदि वह व्यक्ति उस वस्तु के विषय में अनभिज्ञता प्रकट करे तो अपराधी किसी अन्य साक्षी को प्रस्तुत करे और उस वस्तु को लेने के कारण सहित उसके प्रमाण भी दे । तथा उस वस्तु के देने-दिलाने वाले, लिखने-लिखाने, उत्साहित करने वाले आदि को उपस्थित करे । यदि कहीं भूली हुई, खोई हुई या गिरी हुई वस्तु के विषय में यदि अभियोक्ता प्राप्ति स्थान और समय आदि का सही प्रमाण दे दे तो वह वस्तु उसी की माननी चाहिए । यदि वह उसे ठीक प्रकार से प्रमाणित न कर सके तो मूल्य के बराबर ही अर्थदण्ड सहित वह वस्तु भी उससे ले ले । या उसे चोर के समान दण्ड दे । यहाँ तक लक्षण द्वारा वस्तु पकड़ने की व्याख्या हुई ।

कर्माभिग्रहस्तु मुषितवेश्मनः प्रवेशनिष्कसनमद्वारेण, द्वारस्य सन्धिना बीजेन वा वेधम्, उत्तमागारस्य जालवातायननीव्रवधम्, आरोहणावतरणे च कुडयस्य वेधम्, उपखननं वा गूढद्रव्यनिक्षेपग्रहणोपायमुपदेशोपलभ्यम्, अभ्यन्तरच्छेदोत्करपरिमर्दोपकरणमभ्यन्तरकृतं विद्यात्। विपर्यये बाह्यकृतम्। उभयत उभयकृतम्।

अब चोरी के माल के पकड़े जाने के विषय में कहते हैं। जिस घर में चोरी हुई है, उसमें पीछे से आने-जाने, द्वार की संधि खोल कर या किवाड़ उतार कर प्रवेश करने, ऊपरी मंजिल के खिड़की झरोखे आदि तोड़ कर घुसने, या चढ़ने-उतरने के लिये भीत से ईंटें हटा कर पांव रखने का स्थान बनाने अथवा गर्त बना देने, तथा बिना बताये अज्ञात छिपा हुआ धन लेने के लिए किये गये उद्योग में दीवार या भूमि खोद कर पुनः भर दी गई हो तो समझना चाहिए कि घर में रहने वाले ही किसी व्यक्ति ने वह चोरी की है। यदि विपरीत चिन्ह मिलें तो बाहर के व्यक्ति का तथा मिश्रित लक्षण हों तो बाहर और भीतर दोनों के ही व्यक्तियों द्वारा चोरी हुई समझे।

अभ्यन्तरकृते पुरुषमासन्नं व्यसनिनं क्रूरसहायं तस्करोपकरणसंसर्गं स्त्रियं वा दरिद्रकुलामन्यप्रसक्तां वा परिचारकजनं वा तद्विधाचारमतिस्वप्नं निद्राक्लान्तमाधिक्लान्तमात्रिग्नं शुष्कभिन्नस्वरमुखवर्णमनवस्थितमतिप्रलापिनमुच्चारोहणसंरब्धगात्रं विलूननिघृष्टभिन्नपाटितशरीरवस्त्रं जातकिणसंरब्धहस्तपादं पांसुपूर्णकेशनखं विलूनभुग्नकेशनखं वा सम्यक्स्नातानुलिप्तं तैलप्रमृष्टगात्रं सद्योधौतहस्तपादं वा पांसुपिच्छिलेषु तुल्यपादपदनिक्षेपं प्रवेशनिष्कसनयोर्वा तुल्यमाल्यमद्यगन्धवस्त्रच्छेदविलेपनस्वेदं परीक्षेत। चोरं पारदारिकं वा विद्यात्।

सगोपस्थानिको बाह्यं प्रदेष्टा चोरमार्गणम्।
कुर्यान्नागरिकश्चान्तर्दुर्गं निर्दिष्टहेतुभिः॥

यदि घर के भीतर के ही किसी व्यक्ति पर संदेह होता हो तो भीतर या निकट में रहने वाले जुआरी, सुरापायी, दुष्टों के सहायक, चोरों के सहायक, दरिद्री या व्यभिचारी पुरुष या स्त्री, अधिक सोने वाला, थका-सा रहने वाला, भयभीत-सा, सूखे मुख वाला, भर्राये हुए स्वर का, चंचल वकवाद करने वाला, ऊपर चढ़ने में सशक्त, मलीन या फटे से वस्त्र पहिनने वाला, शरीर पर रगड़ जैसे चिन्ह वाला, धूल युक्त तथा बिखरे हुए बाल एवं नख वाला, ठीक प्रकार स्नान के पश्चात् चन्दन लगाने वाला, शरीर पर तेल की मालिश एवं तुरन्त हाथ-पाँव धो लेने वाला, कीचड़ में जिसके पदचिन्ह मिलें घर में रखी पुष्पमाला या सुग की गन्ध से समन्वित, फटे कपड़ों को पहिने और पसीने की गन्ध से युक्त हो, ऐसे व्यक्तियों को बुला कर पूछताछ कर उनके चोर या लम्पट होने का पता लगा ले। गोप और स्थानिक को साथ ले कर प्रदेष्टा उन बाह्य चोरों की खोज करे। यदि नगर या दुर्ग में चोरी हुई तो नागरिक इन्हीं उपायों से उन स्थानों में ही चोरों की खोज करें।

सप्तमोऽध्यायः

आशुमृतक परीक्षा

तैयाभ्यक्तमाशुमृतकं परीक्षेत। निष्कीर्णमूत्रपुरीषं वातपूर्णकोष्ठत्वक्कं शूनपादपाणिमुन्मीलिताक्षं सव्यंजनकण्ठं पीडननिरुद्धोच्छ्वासहतं विद्यात्। तमेव संकुचितबाहुसक्थिमुद्बन्धहतं विद्यात्। शूनपाणिपादोदरमपगताक्षमुद्वृत्तनाभिमवरोपितं विद्यात्। निस्तब्धगुदाक्षं सन्दष्टजिह्वमाध्मातोदरमुदकहतं विद्यात्। शोणितानुसिक्तं भग्नभिन्नगात्रं काष्ठै रश्मभिर्वा हतं विद्यात्। सम्भग्नस्फुटितगात्रमवक्षिप्तं विद्यात्।

अब आशुमृतक अर्थात् तुरंत मारे गये व्यक्ति के विषय में अभियोग एव परीक्षा का वर्णन करते हैं। ऐसे मृतक के शव को तेल में डाल दे। जिसके मूत्र-मल निकला हो, चमड़ी पेट या हाथ पाँव वायु से फूल

गये। हों, दोनों-नेत्र खुले हों और कंठ में किसी प्रकार का दाग या दबाब का चिन्ह मिले तो कंठ दब कर श्वास रुकने से उसकी मृत्यु हुई है। उक्त लक्षणों के साथ हाथ और घुटने सिकुड़े हुए मिलें तो वह फाँसी लगने से मरा माना जायगा। हाथ, पांव और पेट फूले हुए, नेत्र भीतर घुसे और नाभि ऊपर की ओर निकली हो तो शूली दी गई समझे। गुदा और नेत्र कठोर, जीभ कटी, उदर फूला हुआ—यह लक्षण जल में डूब कर मरने के हैं। रक्त-रंजित एवं फटे हुए अंग हों तो लाठी या पत्थरों के मारने से तथा शरीर फटा हुआ हो तो ऊपर से गिराने पर मरा हुआ समझे।

श्यावपाणिपाददन्तनखं शिथिलमांसरोमचर्माणं फेनोपदिग्ध-मुखं विषहतं विद्यात्। तमेव सशोणितदंशं सर्पकीटहतं विद्यात्। विक्षिप्तवस्त्रगात्रमतिवावान्तिविरिक्तं मदनयोगहतं विद्यात्। अतोऽन्यतमेन कारणेन हतं हत्वा वा दण्डभयादुद्बन्धनिकृत्तकण्ठं विद्यात्। विषहतस्य भोजनशेषं पयोभिः परीक्षेत। हृदयादुद्धृत्याग्नौ प्रक्षिप्तं चिटचिटायदिन्द्रधनुर्वर्णं वा विषयुक्तं विद्यात्। दग्धस्य हृदयमदग्धं दृष्ट्वा वा।

जिसके हाथ, पाँव, दाँत, नख काले पड़ गये हों, माँस और चर्म ढीले पड़ गये हों और मुख से भी झाग निकला हो तो वह विष द्वारा तथा उक्त लक्षणों के साथ कटे स्थान से रुधिर बहा हुआ दिखे तो वह सर्प या किसी अन्य कीड़े द्वारा काटे जाने से मरा समझें। बार-बार छटपटाने से वस्त्र बिखर गये हों और अनेक बार दस्त और वमन हुए हों तो समझे कि वह धतूरे आदि के खाने से मरा है। उक्त प्रकार से पहिचानने की चेष्टा करते हुए यह भी ध्यान में रखे कि किसी के कंठ में फाँसी लगाने का अर्थ आत्महत्या कर लेना नहीं है, वरन् यह भी संभव है कि किसी ने हत्या करने के पश्चात् कंठ में फाँसी लगा कर यह व्यक्त करने की चेष्टा की है कि वह स्वयं ही आत्मघात कर बैठा है। विष से मृत्यु को प्राप्त हुए व्यक्ति के उदर में स्थित खाद्य-

पदार्थ के बचे हुए अंश का दुग्धादि के द्वारा परीक्षण कराया जाय। अथवा मृतक के हृदय का कुछ भाग कटवा कर अग्नि में डाल कर देखे कि चटपट शब्द के साथ इन्द्रधनुष के समान अनेक रङ्ग निकलें तो वह विषयुक्त जाने। या मृतक का शव दग्ध करने पर भी हृदय न जल पावे तो भी उसे विष दिया गया समझे।

तस्य परिचारकजनं वा वाग्दण्डपारुष्यातिलब्धम् मार्गेत। दुःखोपहतमन्यप्रसक्तं वा स्त्रीजनं, दायनिवृत्तिस्त्रीजनाभिमन्तारं वा बन्धुम्। तदेव हृतोद्बद्धस्य च परीक्षेत। स्वयमुद्बद्धस्य वा विप्रकारमयुक्तं मार्गेत। सर्वेषां वा स्त्रीदायाद्यदोषः कर्मस्पर्धा प्रतिपक्षद्वेषः पण्यसंस्था समवायो वा विवादपदानामन्यतमं वा रोषस्थानम्। रोषनिमित्तो घातः।

अथवा मृतक के उन भृत्यादि से पता लगावे, जिन पर कि वाक्पारुष्य और दण्डपारुष्य का प्रयोग किया गया हो। उसके दुःख-सन्तप्त बान्धवादि से भी पूछताछ करे, जो यह समझते हों कि इसके मर जाने पर इसके धन और स्त्री के हम स्वामी हो जाँयगे। यदि कोई किसी की हत्या करके स्वय मर जाय तो उसके विषय में भी जाँच की जाय। यदि किसी ने आत्मघात किया हो तो भी उसके कारण की जानकारी करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त स्त्री, दायभाग राजकुल में शासनाधिकार विषयक स्पर्द्धा, प्रतिपक्ष के प्रति वैर, व्यापार से उत्पन्न संघर्ष, संघ की प्रमुखता आदि दोषों से रोष की उत्पत्ति होती है, जिससे कि एक व्यक्ति दूसरे का वध कर देता है।

स्वयमादिष्टपुरुषैर्वा चोरैरर्थनिमित्तं सादृश्यादन्यवैरिभिर्वा हतस्य घातमासन्नेभ्यः परीक्षत। येनाहूतः सहस्थितः प्रस्थितो हतभूमिमानीतो वा तमनुयुंजीत। ये चास्य हतभूमावासन्नचरास्तानेकैकशः पृच्छेत्—केनायमिहानीतो हतो वा, कः सशस्त्रः संगूहमान उद्विग्नो वा युष्माभिर्दृष्ट इति। ते यथा ब्रूयुस्तथानुयुंजीत।

जो आत्मघात से मरा हो, किसी अन्य के द्वारा मारा गया हो, धन अथवा वैर के कारण मारा गया हो, उन सब प्रकार की हत्याओं के विषय में समीप में रहने वाले व्यक्तियों से पूछताछ के द्वारा जाँच करे। उनसे प्रश्न करे कि मृतक को कौन बुला कर लाया ? कौन साथ था ? कौन उसके साथ गया था ? तथा मारे जाने वाले स्थान पर किसके द्वारा एवं किस प्रकार लाया गया ? उनमें कौन सशस्त्र, कौन छिप कर चलता हुआ तथा कौन उद्विग्न दिखाई दे रहा था ? फिर उन लोगों के उत्तर के अनुसार ही आगे अनुसन्धान कार्य किया जाय।

अनाथस्य शरीरस्थमुपभोगं परिच्छदम्।
वस्त्रं वेषं विभूषं वा दृष्ट्वा तद्व्यवहारिणः ॥१
अनुयुञ्जीत संयोगं निवासं वासकारणम्।
कर्मं च व्यवहारं च ततो मार्गणमाचरेत् ॥२
रज्जुशस्त्रविषैर्वापि कामक्रोधवशेन यः।
घातयेत्स्वयमात्मानं स्त्री वा पापेन मोहिता ॥३
रज्जुना राजमार्गे तां चण्डालेनापकर्षयेत्।
न श्मशानविधिस्तेषं न सम्बन्धिक्रियास्तथा ॥४
बन्धुस्तेषां तु यः कुर्यात्प्रेतकार्यक्रियाविधिम्।
तद्गतिं स चरेत्पश्चात्स्वजनाद्व प्रमुच्यते ॥५
संवत्सरेण पतति पतितेन समाचरन्।
याजनाध्यापनाद्यौनात्तैश्चान्योऽपि समाचरन् ॥६

मृतक के देह पर स्थित उपभोग्य वस्तुओं, वस्त्र, वेशभूषा आदि को देख-देखकर उनके व्यापारियों से भी पूछताछ की जाय—उसकी मित्रता किससे थी ? उसका निवास स्थान कहाँ था ? वहाँ रहने का कारण, कर्म एवं व्यवहार क्या और कैसा था ? इससे जांच में बहुत सहायता मिल सकती है। काम-क्रोध के वशीभूत होकर जो फाँसी लगा कर, शस्त्र मार कर अथवा विष खाकर जो पुरुष या पापाचरण

से मोहित होकर जो स्त्री आत्मघात कर ले तो ऐसे पुरुष या स्त्रीं को रस्सी बांध कर चण्डालगण राजमार्ग पर घसीटें। उनका श्मशान में दाह-संस्कार आदि मृतक कर्म न किया जाय। उनके जो बांधवादि इस नियम का उल्लंघन कर प्रेतकर्म करें, उनके मरने पर वैसा ही किया जाय जैसा कि आत्मघात करने वालों का विधान है। अथवा उन्हें जाति से पृथक् कर दें। पतित के साथ खान-पान व्यावहारादि करने वाला व्यक्ति एक वर्ष में ही याजन, अध्यापन और विवाह-सम्बन्ध आदि से वंचित हो जाता है और जो व्यक्ति उसके साथ व्यवहार रखता है वह भी वैसा ही हो जाता है ॥१-६॥

अष्टमोऽध्यायः

वाक्यकर्मानुयोग

मुषितसन्निधौ बाह्यानामाभ्यन्तराणां च साक्षिणमभिशस्तस्य देशजातिगोत्रनामकर्मसारसहायनिवासाननुयुञ्जीत। तांश्चापदेशैः प्रतिसमानयेत्। ततः पूर्वस्याह्नः प्रचारं रात्रौ निवासं च आग्रहादिति अनुयुंजीत। तस्यापचारप्रतिसन्धाने शुद्धः स्यात्। अन्यथा कर्मप्राप्तः। त्रिरात्रादूर्ध्वमग्राह्यः शङ्कितकः पृच्छाभावादन्यत्रोपकरणदर्शनात्।

अब अपराधियों के साथी व्यक्तियों से वाक्यकर्म अर्थात् तर्क (जिरह) के विषय में कहते हैं। जिसकी चोरी हुई है, उसके और बाहर-भीतर के अन्यान्य व्यक्तियों के सामने गवाह से अपराधियों के देश, जाति, गोत्र, नाम, कर्म, स्थिति एवं निवास विषयक प्रश्न करे। साक्षी के बयान से अभियुक्त के बयान का मि ान करता हुआ पर-अपर सम्बन्धों के विषय में विचार करके अभियुक्त के पकड़े जाने के समय से पूर्व दिवस का उसका कार्य और रात्रि में रहने के विषय में भी प्रश्न किया जाय। यदि साक्षी के द्वारा शंकास्पद मनुष्य का निर्दोष होना सिद्ध होता हो तो उसे मुक्त कर दे और निर्दोष होने का कोई आधार न हो तो बद्ध रखे।

घटना के तीन दिन पश्चात् किसी को सन्देह में न पकड़े, क्योंकि विलम्ब के कारण जाँच में बाधा रहेगी। किन्तु चोरी का माल मिलने पर बहुत दिन व्यतीत होने पर भी पकड़ सकते हैं।

अचोरं 'चोर' इत्यभिव्याहरतश्चोरसमो दण्डः, चोरं प्रच्छादयतश्च। चोरेणाभिशस्तो वैरद्वेषाभ्यामपदिष्टकः शुद्धः स्यात्। शुद्धं परिवासयतः पूर्वः साहसदण्डः। शंकानिष्पन्नमुपकरणमंत्रिसहायरूपवैयावृत्यकरान् निष्पादयेत्। कर्मणश्च प्रवेशद्रव्यादानांशविभागैः प्रतिसमानयेत्। एतेषां कारणानामभिसंधाने विप्रलपन्तमचोरं विद्यात्। दृश्यते ह्यचोरोऽपि चोरमार्गे यदृच्छया सन्निपाते चोरवेषशस्त्रभाण्डसामान्येन गृह्यमाणो दृष्टश्चोरभाण्डस्योपवासेन वा। यथा हि माण्डव्यः कर्मक्लेशभयादचोरः 'चोरोऽस्मि' इति ब्रुवाणः। तस्मात्समाप्तकरणं नियमयेत्।

जो चोर नहीं है, उसे चोर कहने वाले को ही चोर जैसा दण्ड दे। चोर को छिपा लेने वाले को भी वही दण्ड उचित है। यदि कोई चोर किसी अन्य व्यक्ति को द्वेष या शत्रुता के कारण फँसाने के लिए उसका मिथ्या नाम ले दे और उसका चोर न होना सिद्ध हो जाय तो अपराधी नहीं माना जायगा। जो किसी निर्दोष व्यक्ति को कारागृह में बन्द करावे उस पर पूर्व साहस दण्ड करे। जिस पर चोरी का सन्देह हो, उसके साधन, परामर्शदाता, सहायक एवं सम्पर्क में आने वाले अन्यान्य मनुष्यों के विषय में जानकारी करने के पश्चात् ही उससे सम्बन्धित निर्णय लिया जाय। दोषारोपण के निर्णय में किसने घर में प्रवेश किया? क्या-क्या सामान उठाया? माल का बँटवारा होने पर किसने कितना अंश प्राप्त किया? जो व्यक्ति भयवश चोरी से सम्बन्धित अप्रासंगिक बातें बतावे तो उससे उसकी अनभिज्ञता प्रकट होती है और वह चोर नहीं माना जा सकता। क्योंकि कभी-कभी चोरी न करने वाले व्यक्ति भी सशस्त्र रहने से तथा अन्यान्य लक्षणों से चोर जैसे वेश में उसी मार्ग पर चलता प्रतीत होता है और जब कहीं से चोरी का माल

मिलता है, तब वह पकड़ा जाता है। महर्षि माण्डव्य के साथ ऐसा ही हुआ। उन्होंने चोर न होते हुए भी राजपुरुषों के भयवश कह दिया था कि मैं चोर हूँ। इसलिए पूर्ण जाँच के पश्चात् ही किसी को दण्ड दे।

मन्दापराधं बालं वृद्धं व्याधितं मत्तमुन्मत्तं क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तमत्याशितमात्मकाशितं दुर्बलं वा न कर्म कारयेत्। तुल्यशीलपुंश्चलीप्रावादिककथावकाशभोजनदातृभिरपसर्पयेत्। एवमतिसन्दध्यात्। यथा वा निक्षेपापहारे व्याख्यातम्। आप्तदोषं कर्म कारयेत्। न त्वेव स्त्रियं गर्भिणीं सूतिकां वा मासावरप्रजाताम्। स्त्रियास्त्वर्धकर्म। वाक्यानुयोगो वा ब्राह्मणस्य सत्रिपरिग्रहः श्रुतवतस्तपस्विनश्च। तस्यातिक्रमे उत्तमो दण्डः कर्तुः कारयितुः कर्मणा व्यापादनेन च।

स्वल्प अपराध वाले, बाल, वृद्ध, रोगी, मत्त, उन्मत्त, क्षुधित, पिपासु, थकित, अति आहार किये हुए, मन्दाग्निग्रस्त तथा बलहीन अपराधियों से कारागार में काम न कराये, अपराध का पता लगाने के लिए अभियुक्त के साथियों, वेश्याओं, नर्तकों या भोजन बनाने वाले आदि से पूछ-ताछ और चोरी के अभियोग की छान बीन सूक्ष्म जाँच द्वारा करे। धरोहर उड़ाने पर खोज का जो विधान पीछे कह चुके हैं उसी के समान चोरी में जाँच की जाय। अपराध सिद्ध होने पर भी दण्ड दे। गर्भिणी या एक मास से कम की प्रसूता को कारावास में न भेजे। अपराधिनी स्त्रियों को कारागृह में न भेज कर, भर्त्सना करके ही छोड़ दे। अथवा बन्द करना आवश्यक ही हो तो उनसे आधा ही कार्य ले। यदि कोई वेदपाठी ब्राह्मण या तपस्वी अपराध करे तो उसे सत्रि संज्ञक गुप्तचरों के साथ नगर में घुमा कर ही मुक्त कर दे। न्यायाधीश को चाहिये कि वह चोरों या उनके सहायकों को बहुत कठोर दण्ड न दे या उनका वध न करावे। यदि वे इस नियम को न मानें तो उन्हें भी उत्तम साहस से दण्डित किया जाय।

व्यावहारिकं कर्म चतुष्कम्—षड् दण्डाः, सप्त कशाः, द्वावुपरि निबन्धौ, उदकनालिका च। परं पापकर्मणां नव वेत्रलताः द्वादशकं, द्वावूरुवेष्टौ, विंशतिर्नक्तमाललताः, द्वात्रिंशत्तलाः, द्वौ वृश्चिकबन्धौ, उल्लम्बने च द्वे, सूचीहस्तस्य, यवागूपीतस्याप्रस्रावः, एकपर्वदहनमंगुल्याः, स्नेहपीतस्य प्रतापनमेकमहः, शिशिररात्रौ बल्वजाग्रशय्या चेत्यष्टादशकं कर्म। तस्योपकरणं प्रमाणं प्रहरणं प्रधारणमवधारणं च खरपट्टादागमयेत्। दिवसान्तरमेकैकं कर्म कारयेत्।

व्यावहारिक दण्ड चार प्रकार के हैं—(१) छः डंडे मारना, (२) सात बेंत मारना, (३) बाँधकर उल्टा लटका देना, और (४) नासिका में लवण-जल डालना। अत्यन्त पापियों के लिये दण्ड के चौदह प्रकार और भी हैं—नौ हाथ लम्बे बेंत से बारह बार मारना, घुटने और मस्तक को एक साथ मिला कर दो प्रकार से रस्सी से जकड़ना, कंजा की काँटेदार छड़ी से बीस बार मारना, बिच्छू के समान दो प्रकार से बाँधना, दो प्रकार से लटकाना (सीधा या उल्टा), नखों में सुई चुभाना, लप्सी पिला कर मूत्रत्याग न करने देना, अँगुली का एक पोर जलाना, स्नेह पिला कर धूप में या अग्नि के निकट बैठाना, शीतकालीन रात्रि में भीगी हुई खाट पर नंगे शरीर सुलाना। इस प्रकार यह कुल अठारह प्रकार के दंड हुए। उक्त दण्ड-कार्यों में प्रयुक्त होने वाले रस्सी आदि उपकरण, डंडे या कोड़े आदि की लम्बाई, बेंत या कंजा की छड़ी आदि प्रहरण एवं दण्डनीय व्यक्ति के खड़ा करने एवं शारीरिक स्थिति आदि के अनुकूल दंड देने की विधि का भले प्रकार अध्ययन करना चाहिये। कठोर परिश्रम के कार्य कराने के लिए बीच-बीच में एक-एक दिन का अन्तर दे।

पूर्वकृतापदानं, प्रतिज्ञायापहरन्तम्, एकदेशदृष्टद्रव्यम्, कर्मणा रूपेण वा गृहीतम्, राजकोशमवस्तृणन्तम्, कर्मवध्यं वा राजवचनात्समस्तं व्यस्तमव्यस्तं वा कर्म कारयेत्। सर्वापराधेष्वपीड-

नीयो ब्राह्मणः । तस्याभिशस्ताङ्को ललाटे स्याद्व्यवहारपतनाय । स्तेये श्वा, मनुष्यवधे कबन्धः, गुरुतल्पे भगम्, सुरापाने मद्यध्वजः ।

ब्राह्मणं पापकर्माणमुद्घुष्याङ्ककृतव्रणम् ।
कुर्यान्निर्विषयं राजा वासयेदाकरेषु वा ॥

चोरी आदि अपराध करने, चुनौती देकर अपहरण करने, चोरी की वस्तु रखने, और चोरी का माल ले जाने के अपराध में पकड़े जाने वाले या राजकोष चुराने और हत्या आदि भीषण अपराध करने वाले अपराधियों पर राजाज्ञानुसार एक साथ या पृथक्-पृथक् दंडकर्मों की व्यवस्था की जाय । अपराधी ब्राह्मण हो तो उसे मृत्यु दंड या ताड़न आदि का दण्ड न दे, किन्तु उसके विभिन्न अपराध का सूचक चिन्ह उसके ललाट पर अंकित करा दे, जिससे कि लोग उस चिन्ह को देख कर ही उसके पतित होने के दोष को जान लें । अपराधानुसार चिन्ह इस प्रकार अंकित करे—चोरी के अपराध में कुत्ते का चिन्ह, मानव-वध के दोष में कवन्ध (मस्तकहीन शव) का चिन्ह, गुरुतल्पगामी के मस्तक पर स्त्री-योनि का चिन्ह और सुरापान करने पर सुरापात्र का चिन्ह लगा दे । पापकर्मी ब्राह्मण को उक्त प्रकार से व्रण या चिन्ह से युक्त करके उपस्थित जनता के समक्ष उसके अपराध की उद्घोषणा करता हुआ राजा उसे अपने राज्य से निकाल दे या खानों वाले प्रदेश में रहने का आदेश दे ।

नवमोऽध्यायः

सर्व अधिकरण रक्षण

समाहर्तृ प्रदेष्टारः पूर्वमध्यक्षाणामध्यक्षपुरुषाणां च नियमनं कुर्युः । खनिसारकर्मान्तेभ्यः सारं रत्नं वाऽपहरतः शुद्धवधः । फाल्गुद्रव्यकर्मान्तेभ्यः फल्गुद्रव्यमुपस्करं वाऽपहरतः पूर्वः साहसदण्डः । पण्यभूमिभ्यो राजपण्यं माषमूल्यादूर्ध्वमापादमूल्यादि-

त्यपहरतो द्वादशपणो दण्डः। आ द्विपदमूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः। आ त्रिपादमूल्यादिति षट्त्रिंशत्पणः। आ पणमूल्यादित्यष्टचत्वारिंशत्पणः। आ द्विपणमूल्यादिति पूर्वः साहसदण्डः। आ चतुष्पणमूल्यादिति मध्यमः। आ अष्टपणमूल्यादित्युत्तमः। आ दशपणमूल्यादिति वधः।

समाहर्ता और प्रदेष्टा पहिले अध्यक्षों और उनके सहकारियों का नियमन करें। यदि खान आदि से कोई रत्नादि चुरावे तो उसे शुद्ध वध अर्थात् कष्ट रहित मृत्यु का दण्ड दे। यदि साधारण फल्गु द्रव्य अथवा असार द्रव्य की चोरी करे तो पूर्व साहस का और राजकीय व्यापार केन्द्र से एक माषक से चौथाई पण मूल्य तक की वस्तु चुरावे तो बारह पण का दण्ड दे। चार माषक से आधे पण मूल्य वस्तु चुराने पर चौबीस पण, आठ से बारह माषक तक की वस्तु पर छत्तीस पण और बारह माषक से एक पण तक की वस्तु चुराने पर अढ़तालीस पण दण्ड दे। एक से दो पण मूल्य पर प्रथम साहस, दो से चार पण मूल्य पर मध्यम साहस और चार से आठ पण तक मूल्य की वस्तु चुराने पर उत्तम साहस का दण्ड दिया जाय। यदि आठ पण से दस पण मूल्य तक का सामान कोई कर्मचारी चुरावे तो उसे प्राणदण्ड दे।

कोष्ठपण्यकुप्यायुधागारेभ्यः कुप्यभाण्डोपस्करापहारेष्वर्धमूल्येष्वेत एव दण्डाः। कोशभाण्डागाराक्षशालाभ्यश्चतुर्भागमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डाः। चोराणामभिप्रधर्षणे चित्रो घातः। इति राजपरिग्रहेषु व्याख्यातम्।

कोष्ठागार, पण्यागार, कुप्यागार, आयुधागार आदि से यदि कोई आधे माषक से दो माषक तक मूल्य के सामान को चुरावे तो उसे पहिले कहे क्रम से बारह पण आदि का दण्ड दे। कोश भण्डार और अक्षशाला से चौथाई माष से एक माष मूल्य तक की वस्तु चुराने पर दुगुना दण्ड दे। स्वयं चोरी करने वाला जो कर्मचारी या अधिकारी दूसरे किसी निर्दोष व्यक्ति को चोर कह कर मारे तो चित्रघात अर्थात् अनेक प्रकार

के असह्य कष्टों के द्वारा उसके प्राण लिये जाँय। यह राजपरिग्रह विषयक कथन पूर्ण हुआ।

बाह्येषु तु प्रच्छन्नमहनि क्षेत्रखलवेश्मापणेभ्यः कुप्यभाण्डमुपस्करं वा माषमूल्यादूर्ध्वमापादमूल्यादित्यपहरतस्त्रिपणो दण्डः। गोमयप्रदेहेन वा प्रलिप्यावघोषणम्। आ द्विपादमूल्यादिति षट्पणः, गोमयभस्मना वा प्रलिप्यावघोषणम्। आ त्रिपादमूल्यादिति नवपणः, गोमयभस्मना वा प्रलिप्यावघोषणं, शरावमेखलया वा। आ पणमूल्यादिति द्वादशपणः, मुण्डनं प्रव्राजनं वा। आ द्विपणमूल्यादिति चतुर्विंशतिपणः, मुण्डस्येष्टकाशकलेन प्रव्राजनं वा। आ चतुष्पणमूल्यादिति षट्त्रिंशत्पणः। आ पंचपणमूल्यादिति अष्टचत्वारिंशत्पणः। आ दशपणमूल्यादिति पूर्वः साहसदण्डः। आ विंशतिपणमूल्यादिति द्विशतः। आ त्रिंशत्पणमूल्यादिति पंचशतः। आ चत्वारिंशत्पणमूल्यादिति साहस्रः। आ पंचाशत्पणमूल्यादिति वधः।

बाह्य प्रदेश अर्थात् राजकीय क्षेत्र से बाहर यदि कोई व्यक्ति खेत, खलिहान, गृह अथवा विक्रयकेन्द्र से एक से चार माष तक के कुप्य भाण्ड (धातु निर्मित वर्तन आदि) या किसी अन्य पदार्थ को छिप कर चुरावे तो उसे तीन पण का दण्ड देना चाहिए। या उसके शरीर पर गोबर पोत कर पूरे नगर में घुमाया जाय। साथ ही उसके चौर्य कर्म की घोषणा भी डुग्गी पीट कर होती चले। आठ माष मूल्य तक के पदार्थों की चोरी में छः पण का दण्ड दे अथवा गोबर पोत कर नगर में घुमाना और उसके कर्म की घोषणा किया जाना उचित है। बारह माष मूल्य की चोरी में नौ पण दण्ड अथवा शरीर में गोबर की राख और गले में मिट्टी के सकोरों की मेखला डाल कर घुमावे तथा साथ ही घोषणा भी करावे। एक पण मूल्य की चोरी में बारह पण का दण्ड और सिर का मुन्डन साथ ही देश से निष्कासन किया जाय। दो पण की चोरी में चौबीस पण का दण्ड अथवा सिर मुन्डन या ईंटे मार-मार कर

घायल करने के पश्चात् देश से निकाल दे। चार पण की चोरी पर छत्तीस पण, पांच पण पर अढ़तालीस पण, दस पण पर पूर्व साहस, बीस पण पर दो सौ पण, तीस पण पर पाँच सौ पण, चालीस पण पर एक सहस्त्र पण तथा पचास पण मूल्य का सामान चुराने पर मृत्युदण्ड देना चाहिए।

प्रसह्य दिवारात्रौ वान्तर्यामिकमपहरतोऽर्धमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डाः। प्रसह्य दिवारात्रौ वा सशस्त्रस्यापहरतश्चतुर्भागमूल्येष्वेत एव द्विगुणा दण्डाः। कुटुम्बिकाध्यक्षमुख्यस्वामिनां कूटशासनमुद्राकर्मसु पूर्वमध्यमोत्तमवधा दण्डाः, यथापराधं वा। धर्मस्थश्चेद्विवदमानं पुरुषं तर्जयति, भर्त्सयत्यपसारयति, अभिग्रसते वा, पूर्वमस्मै साहसदण्डं कुर्यात्। वाक्पारुष्ये द्विगुणम्।

दिन अथवा रात्रि के समय यदि कोई व्यक्ति किसी रक्षित वस्तु को मार्ग में बलपूर्वक छीन ले तो यदि वह उपर्युक्त से आधे मूल्य को हो तो अपराधी को दुगुना दण्ड दे। यदि दिन या रात्रि में कोई शस्त्रधारी उक्त से चौथाई मूल्य की वस्तु बलात् छीने तो उसे दुगुनादण्ड दिया जाय। यदि कोई गृहस्वामी किसी राजकीय अधिकारी—अध्यक्ष, ग्राम-प्रमुख, ग्राम शासक या नगर के अधिकारी के नाम से नकली आदेशपत्र या मुद्रा बनावे या बनवावे तो उसे क्रमशः पूर्व, मध्यम या उत्तम साहस अथवा प्राण वध का दण्ड दे। या जैसा अपराध हो वैसा दण्ड दिया जाय। यदि कोई धर्मस्थ किसी अभियुक्त या उसके पक्ष के किसी मनुष्य को अपने न्यायालय में अंगुली के इंगित द्वारा भय दिखावे, धमकावे या न्यायालय के कक्ष से बाहर करा दे तो वह धर्मस्थ भी पूर्व साहस दण्ड का भागी है। यदि वह निरर्थक वाक्पारुष्य का प्रयोग करे तो दुगुना दण्ड उचित है।

पृच्छ्यं न पृच्छति, अपृच्छ्यं पृच्छति, पृष्ट्वा विसृजति, शिक्षयति, स्मारयति, पूर्वं ददाति वेति, मध्यममस्मै साहसदण्डं कुर्यात्। देयं देशं न पृच्छति, अदेयं देशं पृच्छति, कार्यमदेशेना-

निवाहयति, छलेनातिहरति, कालहरणेन श्रान्तमपवाहयति, मार्गायन्नं वाक्यमुत्क्रमयति, मतिसाहाय्यं साक्षिभ्यो ददाति, तारितानुशिष्टं कार्यं पुनरपि गृह्णाति, उत्तममस्मै साहसदण्डं कुर्यात्। पुनरपराधे द्विगुणं, स्थानाद्व्यवरोपणं च।

यदि कोई न्यायाधीश पूछने योग्य प्रश्नों को न पूछे, न पूछने योग्य को पूछे, पूछ कर भी छोड़ दे, साक्षी को सीख देता हुआ विसरी बात याद दिला दे, वाक्यांश पूरा होने से पहिले ही स्वयं बोल दे तो राजा उसे मध्यम साहस से दंडित करे। यदि वह सार्थक साक्षी से न पूछ कर निरर्थक साक्षी से पूछे, साक्षी के बिना ही निर्णय दे दे, साक्षी को छलपूर्वक झूठा बना दे, साक्षी को व्यर्थ के प्रश्नों से परेशान करके हटा दे, सही और क्रम युक्त वाक्य को भी दूषित और क्रम-रहित बता दे, साक्षियों को बौद्धिक सहायता दे और पूर्व निर्णीत विषय पर पुनर्विचार आरम्भ कर दे तो उस पर उत्तम साहस दण्ड करना चाहिए। यदि इस अपराध की पुनरावृत्ति हो तो दुगुना दंड देकर उसे पदच्युत कर दे।

लेखकश्चेदुक्तं न लिखति, अनुक्तं लिखति, दुरुक्तमुपलिखति, सूक्तमुल्लिखति, अर्थोत्पत्तिं वा विकल्पयतीति पूर्वमस्मै साहसदण्डं कुर्यात्। यथापराधं वा। धर्मस्थः प्रदेष्टा वा हैरण्यमदण्डयं क्षिपति, क्षेपद्विगुणमस्मै दण्डं दद्यात्। हीनातिरिक्ताष्टगुणं वा। शरीरदण्डं क्षिपति, शारीरमेव दण्डं लभेत। निष्क्रयद्विगुणं वा। य वा भूतमर्थं नाशयत्यभुतमर्थं करोति, तदष्टगुणं दण्डं दद्यात्। धर्मस्थीयाच्चारकान्निः सारयतो बन्धनागाराच्छय्यासनभोजनोच्चारसंचारं रोधबन्धनेषु त्रिगुणोत्तारा दण्डाः कर्तुः कारयितुश्च।

लेखक (मुहर्रिर आदि) यदि कही हुई बात न लिखे और न कही हुई बात स्वयं लिख ले अथवा उसकी भूल को सुधार कर लिखे या ठीक बात को बिगाड़ कर लिखे अथवा कथन के तात्पर्य को बदल

कर लिखे तो उस पर प्रथम साहस या जैसा अपराध हो उसके अनुरूप दण्ड दे। यदि धर्मस्थ (दीवानी का न्यायाधीश) और प्रदेष्टा (फौजदारी का न्यायाधीश) दण्ड के अयोग्य अर्थात् निरपराध पर अर्थदण्ड करे तो उस दण्ड का दुगुना अर्थदण्ड राजा उस धर्मस्थ या प्रदेष्टा पर करे। जितना दण्ड दिया जाना चाहिए उतने से किसी पर कम या किसी पर अधिक दण्ड करने के दोष में उस न्यायाधीश पर अठगुना अधिक दण्ड करे। यदि किसी शारीरिक दण्ड के अयोग्य व्यक्ति को जो न्यायाधीश शारीरिक दण्ड दे, उसे भी वैसा दण्ड दिया जाय। अथवा शारीरिक दण्ड के योग्य व्यक्ति को वैसा दण्ड न देकर अर्थदण्ड दे तो उस न्यायाधीश पर उससे दुगुना अर्थदण्ड करना चाहिए। यदि किसी अधिकारी द्वारा न्याय-सचित राजधन का क्षय अथवा अन्याय से धन का संचय किया जाय तो उसे उस धन का अठगुना अर्थदण्ड दे। धर्मस्थ के आदेश से हवालात या कारागार में बन्द किसी अपराधी को बाहर निकाल दे या उसे शय्या, आसन, भोजन एवं मल-मूत्रोत्सर्ग की विशेष व्यवस्था करे-करावे तो उत्तरोत्तर तीन पण अधिक दण्ड दिया जाना चाहिए।

चारकादभियुक्तं मुंचतो निष्पातयतो वा मध्यमः साहसदण्डः, अभियोगदानं च। बन्धनागारात्सर्वस्वं वधश्च। बन्धनागाराध्यक्षस्य संरुद्धकमनाख्याय चारयतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः। कर्म कारयतो द्विगुणः। स्थानान्यत्वं गमयतोऽन्नपानं वा रुन्धतः षण्णवतिदण्डः। परिक्लेशयत उत्कोचयतो वा मध्यमः साहसदण्डः। घ्नतः साहस्रः। परिगृहीतां दासीमाहितिकां वा संरुद्धिकामधिचरतः पूर्वः साहसदण्डः। चोरडामरिकभार्यां मध्यमः। संरुद्धिकामार्यामुत्तमः। संरुद्धस्य वा तत्रैव घातः। तदेवाध्यक्षेण गृहीतायामार्यायां विद्यात्। दास्यां पूर्वः साहसदण्डः। चारकमभित्त्वा निष्पातयतो मध्यमः। भित्त्वा वधः। बन्धनागारात्सर्वस्वं वधश्च।

एवमर्थंचरान् पूर्वं राजा दण्डेन शोधयेत् ।
शोधयेयुश्च शुद्धास्ते पौरजानपदान् दमैः ॥

जो कर्मचारी धर्मस्थ की हवालात से अभियुक्त को निकाल दे या उसके निकलने में सहायक हो तो उसे मध्यम साहस दण्ड दे और राज्य को उसे अर्थदंड से दंडित करने पर जो आय होती, वह भी उसी कर्मचारी से वसूल करे। किन्तु प्रदेष्टा की हवालात से अभियुक्त को निकालने या निकलने में सहायक होने वाले व्यक्ति का सर्वस्व छीन कर वधदण्ड दे। यदि कोई कर्मचारी बन्धनागार के अध्यक्ष को सूचित किये बिना किसी बन्दी को मुक्त कर दे तो वह चौबीस पण से दंडित होगा। यदि बन्दी को कारागार से अन्यत्र रखे अथवा उसे खाने-पीने को न दे या कम दे तो वह कर्मचारी छियानवे पण का दंड पायेगा। यदि कोई किसी बन्दी को शारीरिक यातना देकर घूस ले तो उसे मध्यम साहस, किसी बन्दी को मार डाले तो एक सहस्र पण और किसी अपराधिनी या क्रीत दासी से कारागार में अनाचार करे तो उसे प्रथम साहस का दंड दे। यदि कारागार में बद किसी चोर या विद्रोही की स्त्री के साथ कोई कर्मचारी बलात्कार करे तो मध्यम साहस, किसी कुलीन स्त्री के साथ करे तो उत्तम साहस और कोई बन्दी ही बन्दिनी स्त्री के साथ वलात्कार करे तो उसे वध का दण्ड दे। यदि कारागाराध्यक्ष स्वयं ही ऐसा अनाचार किसी बन्दिनी के साथ करे तो मरणदंड और किसी दासी के साथ करे तो पूर्वसाहस का दंड दे। यदि धर्मस्थ की हवालात से कोई राजकर्मचारी भित्ति-भंग किये बिना ही किसी वंदी के भागने में सहायक हो तो तो मध्यम साहस, भित्ति तोड़ कर भागने में सहायक हो तो प्राणदंड और प्रदेष्टा की हवालात से भी बन्दी भगाने में सहायक राजकर्मचारी का सर्वस्व छीन कर वध दण्ड दे दे। इस प्रकार राजा पहिले अपने कर्मचारियों को ही दण्ड के द्वारा शुद्ध करके सही मार्ग का अनुयायी बनावे और

तत्पश्चात् शुद्ध हुए वे कर्मचारी नगर या जनपद के निवासियों का शोधन करें।

दशमोऽध्यायः

एकाङ्गवधनिष्क्रय

तीर्थघातग्रन्थिभेदोर्ध्वकराणां प्रथमेऽपराधे सन्दंशच्छेदनं चतुष्पंचाशत्पणो वा दण्डः। द्वितीये छेदनं पणस्य शत्यो वा दण्डः। तृतीये दक्षिणहस्तवधश्चतुः शतो वा दण्डः। चतुर्थे यथाकामी वधः। पंचविंशतिपणावरेषु कुक्कुटनकुलमार्जारश्वसूकरस्तेयेषु हिंसायां वा चतुष्पंचाशत्पणो दण्डः, नासाग्रच्छेदनं वा। चण्डालारण्यचराणामर्धदण्डाः। पाशजालकूटावपातेषु बद्धानां मृगपशुपक्षिव्यालमत्स्यानामादने तच्च तावच्च दण्डः।

तीर्थ स्थानों में चोरी, गिरहकटी, सेंध लगाकर या छत काट कर चोरी आदि अपराध करने वालों का अपराध यदि पहिला ही हो तो सन्दंशच्छेद अर्थात् शरीर का मांस नोंचने का दण्ड दे। अथवा चौवन पण का अर्थदण्ड भी उसके स्थान पर दिया जा सकता है। यदि दूसरी बार का अपराध हो तो सब अंगुलियाँ कटवाई जाँय अथवा सौ पण अर्थदण्ड में वसूल करे। तीसरी बार के अपराध पर दाहिना हाथ काटने या चार सौ पण का और चौथी बार के अपराध पर चित्रघात अर्थात् विभिन्न प्रकार के कष्ट देकर मारने का दण्ड देना चाहिए। पच्चीस पण मूल्य के कुक्कुट, नकुल, बिलाव, श्वान एवं शूकरादि की चोरी करने या उन्हें मारने वाले को चौवीस पण का दंड अथवा दण्ड का धन न देने पर उसकी नासिका का अग्रभाग छिन्न करा दे। यदि वे चोरी हुए या मारे गये कुक्कुट आदि चण्डाल या वनचर जाति के हों तो अपराधी को आधा दण्ड ही दे। पाश, जाल एवं कूट गर्त्त (घास आदि से ढके हुए गढ़े) फँसे हुए मृगादि पशु, पक्षी, व्याल और मत्स्य आदि के पकड़ने वाले वे जीव ले ले और उनके मूल्य के बराबर धन और वसूल करे।

मृगद्रव्यवनान्मृगद्रव्यापहारे शत्यो दण्डः। बिम्बविहारमृगपक्षिस्तेये हिंसायां वा द्विगुणो दण्डः। कारुशिल्पिकुशीलवतपस्विनां क्षुद्रकद्रव्यापहारे शत्यो दण्डः। स्थूलकद्रव्यापहारे द्विशतः। कृषिद्रव्यापहारे च। दुर्गमकृतप्रवेशस्य प्रविशतः प्राकारछिद्राद्वा निक्षेपं गहीत्वाऽपसरतः कन्धरावधो द्विशतो वा दण्डः। चक्रयुक्तां नावं क्षुद्रपशुं वापहरत एकपादवधः त्रिशतो वा दण्डः। कूटकाकण्यक्षारालशलाकाहस्तविषमकारिण एकहस्तवधः, चतु.शतो वा दण्ड.। स्तेनपारदारिकयोः साचिव्यकर्मणि स्त्रियाः संगृहीतायाश्च कर्णनासाछेदनं पंचशतो वा दण्डः। पुंसो द्विगुणः।

मृगवन एवं द्रव्यवन से मृगों और वन के चन्दनादि द्रव्यों को चुराने वाले पर सौ पण तथा बिम्ब (गिरगिट), विहार-मृग एवं विहार-पक्षियों को चुराने वाले पर दो सौ पण का दण्ड करे। कारु, शिल्पी, कुशीलव और तपस्वियों की क्षुद्र वस्तुएं चुराने पर सौ पण और स्थूल वस्तुएं चुराने पर दो सौ पण का दण्ड दे। तथा कृषिद्रव्य चुराने पर भी इतना ही दण्ड उचित है। कोई बिना अनुमति के दुर्ग में प्रवेश करे या प्राकार-भित्ति को तोड़ कर उसमें रखी किसी वस्तु को ले जाय तो ग्रीवाभंग या दो सौ पण का निष्क्रय रूप अर्थदण्ड दे। पहिये वाली गाड़ी, नाव या क्षुद्र पशुओं के चोर को एक पाँव काट लेने का अथवा उसके स्थान पर तीन सौ पण का दण्ड देना चाहिए। द्यूतक्रीडा में यदि कोई छलयुक्त कौड़ी, पाँसा, अरल या शलाका में किसी प्रकार का छल या हाथ की चालाकी करे तो उसे एक हाथ काटने का अथवा चार सौ पण का दण्ड दे। यदि कोई स्त्री किसी चोर या लम्पट पुरुष को उसके अपराध में सहायता दे तो उसके नासिका और कानों को कटवा दे या पाँच सौ पण से दंडित करे। किन्तु वैसे कुकर्म में कोई पुरुष सहायक हो तो उसे दुगुना दंड दिया जाय।

महापशुमेकं दासं दासीं वाऽपहरतः प्रेतभाण्डं वा विक्रीणानस्य द्विपादवधः, षट्शतो वा दण्डः। वर्णोत्तमानां गुरूणां च

हस्तपादलंघने राजयानवाहनाद्यारोहणे चैकहस्तपादवधः सप्तशतो वा दण्डः। शूद्रस्य ब्राह्मणवादिनो देवद्रव्यमवस्तृणतो राजद्विष्टमादिशतो द्विनेत्रभेदिनश्च योगाञ्जनेनान्धत्वमष्टशतो वा दण्डः। चौरं पारदारिकं वा मोक्षयतो राजस.नमूनमतिरिक्तं वा लिखतः कन्यां दासीं वा सहिरण्यमपहरतः कूटव्यवहारिणो विमांसविक्रयिणश्च वामहस्तद्विपादवधो नवशतो वा दण्डः। मानुषमांसविक्रये वधः। देवपशुप्रतिमामनुष्यक्षेत्रगृहहिरण्यसुवर्णरत्नसस्यापहारिण उत्तमो दण्डः शुद्धवधो वा।

पुरुषं चापराधं च कारणं गुरुलाघवम्।
अनुबन्धं तदात्वं च देशकालौ समीक्ष्य च ॥१
उत्तमावरमध्यत्वं प्रदेष्टा दण्डकर्मणि।
राज्ञश्च प्रकृतीनां च कल्पयेदन्तरा स्थितः ॥२

यदि गौ आदि बड़े पशु या दास-दासी का अपहरण करे अथवा किसी मरे हुए मनुष्य के वस्त्रादि बेचे तो उसके दोनों पाँव काट ले या उस पर छः सौ पण का दण्ड करे। यदि कोई अपने से श्रेष्ठ वर्ग के किसी व्यक्ति अथवा गुरु आदि पर हाथ-पाव से प्रहार करे या राजा के वाहन पर सवारी करे इसका एक-एक हाथ-पांव कटवाले या सात सौ पण का दण्ड दे। यदि कोई शूद्र स्वयं को ब्राह्मण कहे, कोई देवद्रव्य को चुरावे, ज्योतिषी बन कर राजा का अनिष्ट घोषित करे किसी के दोनों चक्षु फोड़ दे या औषधि-प्रयोग द्वारा किसी को अन्धा बना दे तो ऐसे अपराधी को आठ सौ पण से दण्डित करे। जो व्यक्ति चोरी या व्यभिचार के अपराधी को बन्धन से छोड़ दे, जो राजलेखक राजाज्ञा को घटा बढ़ा कर लिखे, जो किसी की कन्या अथवा दासी का आभूषणों सहित अपहरण करले, जो कूट व्यवहार करे या जो अभक्ष्य माँस को बेचे, उसका बाँया हाथ और दोनों पाँव कटवा दे अथवा नौ सौ पण के अर्थ से दण्डित करे। किन्तु कोई मनुष्य का मांस बेचता हुआ पकड़ा जाय तो वह मृत्यु दण्ड का भागी होगा। जो किसी देवता के पशु, देव-

प्रतिमा, मनुष्य, खेत, गृह, नक़द धन, स्वर्ण, रत्न या अन्न का अपहरण-कर्त्ता सिद्ध हो तो वह उत्तम साहस अथवा शुद्धवध (बिना कष्ट के मृत्यु) का दण्ड पायेगा। न्यायाधीश का कर्त्तव्य है कि वह राजा और अमात्य-गण से सम्पर्क रखता हुआ, दण्ड देने के समय अपराधी, उसका अपराध, अपरध के कारण, अपराध का गुरुत्व या लघुत्व, भविष्य एवं वर्तमान के परिमाण और देश-काल का भले प्रकार विचार कर उत्तम, मध्यम या प्रथम साहस आदि दण्ड की उद्घोषणा करे ॥ १-२ ॥

एकादशोऽध्यायः

शुद्ध एवं चित्र दण्ड

कलहे घ्नतः पुरुषं चित्रो घातः। सप्तरात्रस्यान्तः मृते शुद्ध-वधः। पक्षस्यान्तरुत्तमः। मासस्यान्तः पंचशतः समुत्थानव्य-यश्च। सहस्त्रेण प्रहरत उत्तमो दण्डः। मदेन हस्तवधः। मोहेन द्विशतः। वधे वधः। प्रहारेण गर्भं पातयत उत्तमो दण्डः। भैष-ज्येन मध्यमः। परिक्लेशेन पूर्वः साहसदण्डः। प्रसवस्त्रीपुरुष-घातकाभिसारकनिग्रहावघोषकावस्कन्दकोपवेधकान् पथि वेश्मप्र-तिरोधकान् राजहस्त्यश्वरथानां हिंसकान् स्तेनान् वा शूलानारोह-येयुः। यश्चैनान् दहेदपनयेद्वा स तमेव दण्डं लभेत, साहस-मुत्तमं वा।

कलह करके यदि कोई किसी की हत्या करदे तो उसे चित्रवध अर्थात् क्लेशयुक्त मृत्यु का दंड दे। यदि आहत व्यक्ति सात दिन में मरे तो शुद्धवध अर्थात् बिना क्लेश मृत्यु का दण्ड उचित है। यदि आहत व्यक्ति एक पक्ष में मरे तो उत्तम साहस और एक मास में मरे तो पाँच सौ पण के साथ आहत की चिकित्सा का व्यय भी देगा। शस्त्र प्रहार वाले अपराधी को उत्तम साहस का, अहंकारवश शस्त्र प्रहा करने वाले को हाथ काटने का, मोह वश प्रहार करने वाले को दो सौ पण का और हत्या के निश्चय से प्रहार करके मार देने वाले को वध का दड

देना चाहिए। यदि किसी स्त्री पर प्रहार करके गर्भपात करे तो उत्तम साहस, औषधि द्वारा गर्भ गिरावे तो मध्यम साहस और किसी कष्टपद उपाय से गिरावे तो प्रथम साहस से दडित करे। बलपूर्वक किसी स्त्री या पुरुष की हत्या करना किसी स्त्री को उठा ले जाना, किसी के नाक-कान छिन्न कर देना, आत्म हत्या या चोरी डकैती की उद्घोषणा करना, नगर या ग्राम का धन चुरावे, सेंध लगावे. धर्मशाला आदि में पथिकों की चोरी करे अथवा राजा के हाथी, अश्व या रथादि को क्षति पहुंचावे, उस अपराधी को शूली पर चढ़वा कर मरवा दे। ऐसे अपराधियों के शव का दाह संस्कार करने या उठाने वाले को भी शूलीआरोहण अथवा उत्तम साहस का दंड दे।

हिंस्रस्तेनानां भक्तवासोपकरणाग्निमंत्रदानवैयापृत्यकर्मसूत्तमो दण्डः। परिभाषणमविज्ञाने। हिंस्रस्तेनानां पुत्रदारमसमंत्रं विसृजेत्, समंत्रमाददीत। राज्यकामुकमन्तः पुरप्रधर्षकमटव्यमित्रोत्साहकं दुर्गराष्ट्रदण्डकोपकं वा शिरोहस्तप्रादीपिकं धातयेत्। ब्राह्मणं तमः प्रवेशयेत्। मातृपितृपुत्रभ्रात्राचार्यतपस्विघातकं वा त्वक्शिरः प्रादीपिकं घातयेत्। तेषामाक्रोशे जिह्वाच्छेदः। अंगाभिरदने तदङ्गान्मोच्यः। यहच्छाघाते पुंसः पशुयूथस्तेये च शुद्धवधः। दशावरं च यूथं विद्यात्। उदकधारणं सेतुं भिन्दतस्तत्रैवाप्सु निमज्जनम्। अनुदकमुत्तमः साहसदण्डः। भग्नोत्सृष्टकं मध्यमः। विषदायकं पुरुषं स्त्रियं च पुरुषघ्नीमपः प्रवेशयेदगर्भिणीम्। गर्भिणीं मासावरप्रजाताम्।

हत्यारे या चोर को भोजन, रहने का स्थान, अन्यान्य उपकरण, अग्नि या परामर्श आदि देने वाले पर उत्तम साहस का दंड करे। किन्तु अनजाने में उक्त सुविधा देने पर केवल उसकी भर्त्सना की जानी चाहिए। यदि हिंसक या चोर के कार्यों में उसके स्त्री, पुत्र या बांधवादि की सहमति न हो तो उन्हें निर्दोष जान कर छोड़ दे और यदि सहमति हो तो उचित दंड दे। राज्य हड़पने की इच्छा वाले अंतःपुर में

अनाचार करने वाले, वनवासियों और राजा के वैरियों को भड़काने वाले या सेना को विद्रोह के लिए प्रोत्साहन देने वाले के सिर और हाथ पर अंगार रखवा कर मरवा दे। चिन्तु अपराधी ब्राह्मण हो तो मरवाये नहीं, वरन् अन्धी कोठरी में बन्द कर दे। माता, पिता, पुत्र, भाई, आचार्य या तपस्वियों की हिंसा करने के अपराध में चर्म और शिर को दग्ध करा के प्राण ले लिए जाँय। किन्तु माता, पिता आदि के प्रति अपशब्द कहने पर जीभ कटवा दे और उनके शरीर को नख आदि से नोंच कर व्रण बना दे तो उसने अपने जिस अवयव से यह कार्य किया हो, उसे ही कटवाये। किसी की हत्या या पशुसमूह अर्थात् दस पशुओं के झुण्ड की चोरी करे तो वह शुद्धवध रूपी दंड का भागी होगा। जल युक्त बांध तोड़ने वाले को उसी जल में डुबा दे और जल-रहित बांध तोड़े तो उत्तम साहस से दंडित करे। टूटे हुए बांध को नष्ट करे तो उस पर मध्यम साहस दण्ड ही उचित है। विष देकर मारने वाले हत्यारे पुरुष को या किसी पुरुष की हत्या करने वाली स्त्री का वध जल में डुबा कर करे। किन्तु गर्भिणी स्त्री को दण्ड न दे, वरन् गर्भिणी अपराधिनी को प्रसव के एक मास पश्चात् दण्डित करे।

पतिगुरुप्रजाघातिकामग्निविषदां सन्धिच्छेदिकां वा गोभिः पाटयेत्। विवीतक्षेत्रखलवेश्मद्रव्यहस्तिवनादीपिकमग्निना दाहयेत्। राजक्रोशकमंत्रभेदकयोरनिष्टप्रवृत्तिकस्य ब्राह्मणमहानसावलेहिनश्च जिह्वामुत्पाटयेत्। प्रहरणावरणस्तेनमनायुधीयमिषुभिर्घाययेत्। आयुधीयस्योत्तमः। मेढ्रफलोपघातिनस्तदेव छेदयेत्। ह्विानासोपघाते दन्दंशवधः।

एते शास्त्रेष्वनुगताः क्लेशदण्डा महात्मनाम्।
अक्लिष्टानां तु पापानां धर्म्यः शुद्धवधः स्मृतः॥

अपने पति, गुरु या सन्तान की हत्या करने वाली, अग्नि लगाने वाली, विष देने वाली या सेंध लगाने वाली स्त्री को गौ आदि पशुओं के पैरों से कुचलवा कर मरवा दे। विवीत, खेत, खलिहान, गृह, द्रव्यवन एवं

हस्तिवन आदि में आग लगाने वाले का अग्नि-दाह द्वारा ही वध करावे। राज-निन्दक, मन्त्र-भेदक, मिथ्या प्रचारक एवं रसोई से अन्न चोरी करके खाने वाले की जीभ खींच ले। यदि कोई शस्त्र न धारण करने वाला शस्त्र या कवच आदि चुराता हुआ पकड़ा जाय तो वह बाण-प्रहार द्वारा मार दिया जाय। किन्तु शस्त्र धारी चोर को उत्तम साहस दण्ड दे। यदि कोई किसी उपस्थ या अण्डकोष को काटे तो उसके उपस्थ और अण्डकोष काट लेने चाहिए। किसी जीभ या नासिका भंग करने के अपराध में उसका सन्दंशवध किया जाय (अर्थात् संडासी से नोंच-नोंच कर मारा जाय)। यद्यपि यह सब क्लेश देने वाले दण्ड महात्माजनों द्वारा समर्थित हैं, तथापि सामान्य अपराधों में यदि मृत्युदंड देना ही हो तो शुद्धवध ही धर्मसंगत होगा।

द्वादशोऽध्याय

कन्यप्रकर्म

सवर्णामप्राप्तफलां कन्यां प्रकुर्वतो हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः। मृतायां वधः। प्राप्तफलां प्रकुर्वतो मध्यमप्रदेशिनीवधो द्विशतो वा दण्डः। पितुश्चावहीनं दद्यात्। न च प्राकाम्यमकामायां लभेत। सकामायां चतुष्पञ्चाशत्पणो दण्डः। स्त्रियास्त्वर्धदण्डः। परशुल्कावरुद्धायां हस्तवधश्चतुःशतो वा दण्डः शुल्कदानं च। सप्तार्तवप्रजातां वरणादूर्ध्वमलभमानां प्रकृत्य प्रकामी स्यात्, न च पितुरवहीनं दद्यात्। ऋतुप्रतिरोधिभिः स्वाम्यादपक्रामति। त्रिवर्षप्रजातार्तवायास्तुल्यो गन्तुमदोषः। ततः परमतुल्योऽप्यनलंकृतायाः। पितृद्रव्यादाने स्तेयं भजेत।

यदि कोई पुरुष सजातीया अरजस्का कन्या को दूषित करे तो उसका हाथ कटवा दे या उससे चार सौ पण दण्ड स्वरूप वसूल करे। बलात्कार में योनिक्षत के कारण कन्या की मृत्यु होने के अपराध में प्राण दण्ड दे रजस्का कन्या को दूषित करने वाले की मध्यमा और

तर्जनी अंगुली कटवा ले अथवा दो सौ पण से दंडित करे और कन्या के पिता को भी कुछ क्षतिपूर्ति के लिए धन दिलावे। पुरुष की अनिच्छा वाली कन्या से दुराचार पुरुष की इच्छा-पूर्ति नहीं कर सकता, इसलिए वह त्यागने योग्य है। यदि कन्या की इच्छा से अनाचार करे तो भी वह चौवन पण से दण्डित होने योग्य है। वह कन्या भी आधे दण्ड की भागिनी होगी। जिसकी शुल्क लेकर किसी के साथ सगाई निश्चित हो चुकी हो, उसके साथ अनाचार करने वाले पर हाथ काटने का अथवा चार सौ पण का दंड और कन्या के लिए प्राप्त शुल्क भी उससे वसूल किया जाय। ऋतुमति होने के सात मास व्यतीत होने पर भी कन्या किसी पति को प्राप्त न कर सके तो उससे प्रीति करने वाला पुरुष उसके साथ यथेच्छ सम्पर्क स्थापित कर सकता है। इस स्थिति में उसे कन्या के पिता को भी कोई क्षतिपूर्ति नहीं करनी होगी। क्योंकि ऋतु-काल रूपी तस्कर कन्या पर पिता के स्वामित्व रूपी अधिकार का हरण कर लेता है। यदि ऋतुमती कन्या तीन वर्ष तक अविवाहित रहे और फिर उसका कोई सजातीय पुरुष उससे संग करे तो उसमें कोई दोष नहीं है। तीन वर्ष से अधिक समय व्यतीत होने पर परजातीय पुरुष के संसर्ग में भी दोष नहीं मानते। किन्तु वह पुरुष कन्या के पिता से उसके लिए बने हुए आभूषणादि लेने का अधिकारी नहीं होगा। यदि वह व्यक्ति कन्या के पिता से धन ले ले तो वह चोरी के दंड का भागी होगा।

परमुद्दिश्यान्यस्य विन्दतो द्विशतो दण्डः। न च प्राकाम्यमकामायां लभेत। कन्यामन्यां दर्शयित्वाऽन्यां प्रयच्छतः शत्यो दण्डस्तुल्यायां, हीनायां च द्विगुणः। प्रकर्मण्यकुमार्याश्चतुष्पंचाशत्पणो दण्डः। शुल्कव्ययकर्मणि च प्रतिदद्यादवस्थाय तज्जातं पश्चात्कृता द्विगुणं दद्यात्। अन्यशोणितोपधाने द्विशतो दण्डः। मिथ्याभिशंसिनश्च पुंस। शुल्कव्यतकर्मणी च जीयेत। न च प्राकाम्यकामायां लभेत। स्त्री प्रकृता सकामा समाना द्वादशपणं दण्ड

दद्यात्, प्रकर्त्री द्विगुणम् । आकांमायाः शत्यो दण्डः, आत्मरागार्थं शुल्कदानं च । स्वयं प्रकृता राजदास्यं गच्छेत् ।

जो कन्या किसी अन्य वर के लिए निश्चित हो चुकी हो, उसको बहका कर कोई अन्य व्यक्ति विवाह कर ले तो उसे दो सौ पण का दण्ड दे और वह कन्या उसे न चाहे तो वह उसके संग से भी वर्जित होगा । कन्या दिखा कर अन्य सजातीया कन्या दे दे दी जाय तो सौ पण और वह कन्या अन्य जातीया हो तो दो सौ पण का दण्ड दे । यदि कोई कन्या विवाह होने के बाद भी परपुरुष से अनाचार-रत हो तो उसे चौवन पण का दण्ड और वर से प्राप्त शुल्क के साथ विवाह में जो व्यय हुआ हो वह भी देना होगा । यदि वह उस दूसरे पुरुष को छोड़ दे और तीसरे के पास रहने लगे उस पर दुगुना दण्ड किया जाय । यदि कोई किसी अन्य स्त्री का शोणितयुक्त वसन दिखा कर अपने को क्षतियोनि हुई दिखावे तो सौ पण और यदि कोई पुरुष किसी कन्या के विषय में मिथ्या निन्दा करे तो उसे भी इतना ही दण्ड दे । इसके साथ ही उसे वर पक्ष के द्वारा विवाह में हुआ व्यय भी देना होगा । किसी स्त्री की इच्छा के बिना कोई पुरुष समागम करे यथोचित तो वह दण्ड पायेगा । यदि कोई कामातुरा स्त्री किसी पुरुष से व्यभिचार में रत हुई हो तो वह बारह पण से और यदि किसी अन्य स्त्री की प्रेरणा से उसने व्यभिचार किया हो तो प्रेरणा देने वाली स्त्री उससे दूने धन से दण्डित होगी । कामना-रहित स्त्री भी अनाचार करे तो सौ पण तथा पुरुष भी इतना ही दण्ड पायेगा । स्वेच्छा से व्यभिचारिणी हुई स्त्री को राजा की दासी बना दे ।

बहिर्ग्रामस्य प्रकृतायां मिथ्याभिशंसने च द्विगुणो दण्डः ; प्रसह्य कन्यामपहरतो द्विशतः, ससुवर्णमुत्तमः । बहूनां कन्यापहारिणां पृथग्यथोक्ता दण्डाः । गणिकादुहितरं प्रकुर्वतश्चतुष्पंच-शतपणो दण्डः । शुल्कं मातुर्भोगः षोडशगुणः । दासस्य दास्या वा दुहितरमदासीं प्रकुर्वतश्चतुर्विंशतिपणो दण्डः, शुल्काबन्ध्यदा ।

च। निष्क्रयानुरूपां दासीं प्रकुर्वतो द्वादशपणो दण्डः, वस्त्राबन्ध्य-दानं च। साचिव्यावकाशदाने कर्तृसमो दण्डः।

ग्राम से बाहर अनाचार वाली स्त्री दूना दण्ड भुगतेगी। किन्तु इस विषय में मिथ्या प्रचार करने वाला भी इतना ही दण्ड पायेगा। किसी कन्या का बलपूर्वक अपहरण करने पर दो सौ पण और स्वर्णाभूषणों से अलंकृता का अपहरण करे तो उत्तम साहस का दण्ड दे। यदि अपहरणकर्त्ता अधिक संख्या में हों तो उनमें से प्रत्येक को पृथक्-पृथक् दण्ड दे। गणिका की कन्या पर बलात्कार करने पर चौवन पण का दण्ड करे तथा उस दण्ड से सोलह गुना भोगशुल्क कन्या की माता को दिलाया जाय। किसी दास-दासी की दासी न बनी कन्या से समागम करने पर चौबीस पण दण्ड तथा शुल्कधन और आभूषण कन्या को दिलावे। यदि कोई किसी दासी को दासता से मुक्त कराने का निष्क्रय मूल्य देकर उससे अनाचर करे तो बारह पण दण्ड के साथ दासी को भी वस्त्राभूषण दे। किसी कन्या को दूषित करने के कार्य में सहायक व्यक्ति को भी व्यभिचारी जैसा ही दण्ड दे।

प्रोषितपतिकामपचरन्तीं पतिबन्धुस्तत्पुरुषो वा संगृह्णीयात्। संगृहीता पतिमाकांक्षेत। पतिश्चेत्क्षमेत, विसृज्येतोभयम्। अक्षमायां स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनम्। वधं जारश्च प्राप्नुयात्। जार चोरइत्यभिहरतः पञ्चशतो दण्डः। हिरण्येन मुंचस्तदष्टगुणः। केशाकेशिकं संग्रहणम्। उपलिंगनाद्वा शरीरोपभोगानां तज्जातेभ्यः स्त्रीवचनाद्वा।

प्रवासी पति की अनुपस्थिति में उच्छृंखल हुई स्त्री की पति के बान्धव एवं उसके भृत्यादि रक्षा करते हुए उसके पति के आने की प्रतीक्षा करें। लौटाने पर पति यदि उस स्त्री को क्षमा कर दे तो उस स्त्री और उसके जार दोनों को मुक्त कर दे। यदि क्षमा न करे तो न्यायाधीश उस स्त्री को कर्णनासिका छिन्न करने का और जार को वध का दण्ड दे। यदि कोई उस जार के जारकर्म को छिपाने के

लिए चोर सिद्ध करना चाहे तो उसे पाँच सौ पण से दण्डित करे। यदि कोई राजपुरुष घूस लेकर जार को मुक्त कर दे तो उसने घूस में जितना धन लिया हो, उसका अठगुना धन उससे दण्ड रूप में वसूल किया जाय। किस पुरुष के अनाचार से कौन स्त्री दूषित हुई है, इसका निर्णय एक दूसरे के केश आदि तथा कामक्रीड़ा, उसके उद्दीपक चंदनादि द्रव्य एवं स्त्री-पुरुषों के चिन्हों को देख कर अथवा स्त्री द्वारा बताये जाने के आधार पर किया जा सकता है।

परचक्राटवीहृतामोघप्रव्यूढामरण्येषु दुर्भिक्षे वा त्यक्तां प्रेतभावोत्सृष्टां वा परस्त्रियं निस्तारयित्वा यथासम्भाषितं समुपभुञ्जीत। जातिविशिष्टामकामामपत्यवतीं निष्क्रयेण दद्यात्।

चोरहस्तान्नदीवेगाद्दुर्भिक्षाद्देशविभ्रमात्।
निस्तारयित्वा कान्ताराान्नष्टां त्यक्तां मतेति वा ॥१
भुंजीत स्त्रियमन्येषां यथासम्भाषितं नरः।
न तु राजप्रतापेन प्रमुक्तां स्वनेन वा ॥२
न चोत्तमां न चाकामां पूर्वापत्यवतीं न च।
ईदृशीं त्वनुरूपेण निष्क्रयेणोपवाहयेत् ॥३

यदि कोई पुरुष शत्रुओं या वनवासियों द्वारा अपहृत, नदी के प्रवाह में बहती हुई, दुर्भिक्ष काल में वन में त्यागी हुई तथा रोगी या मूर्च्छित अवस्था में मरी हुई समझ कर छोड़ी हुई परस्त्री को भी उसकी विपत्ति से बचाकर परस्पर की स्वीकृति से समागम में कोई दोष नहीं है। किन्तु यदि वह स्त्री किसी उच्च कुल की हो या सजातीया होती हुई भी विपत्ति से छुड़ाने वाले पुरुष को न चाहती हो अथवा सन्तानवती हो तो उसके पति से अपने परिश्रम का उचित निष्क्रय मूल्य लेकर उसे दे दे। चोर के हाथ से, नदी-प्रवाह से, दुर्भिक्ष एवं वन प्रदेश से प्राप्त करके कोई भी पुरुष किसी दूसरे की अपहृता या मरी हुई समझ कर छोड़ी गई विवाहिता स्त्री को परस्पर की सहमति से समागम कर सकता है। किन्तु राजकोप से या स्वजनों से

त्यागी हुई, श्रेष्ठ कुल की, उद्धारक की इच्छा न करने वाली या सन्तान-वती स्त्री को विपत्ति से उद्धार करने पर भी उससे भोग वर्जित है। इसलिए उचित निष्क्रय मूल्य प्राप्त करके वह स्त्री उसके स्वामी के पास भेजनी चाहिए।१-३।

त्रयोदशोऽध्यायः

अतिचार दण्ड

ब्राह्मणमपेयमभक्ष्यं वा संग्रासयत उत्तमो दण्डः। क्षत्रियं मध्यमः, वैश्यं पूर्वः साहसदण्डः, शूद्रं चतुष्पंचाशत्पणो दण्डः।स्वयं ग्रसितारो निर्विषयाः कार्याः। परगृहाभिगमने दिवा पूर्वः साहस-दण्डः। रात्रौ मध्यमः। दिवारात्रौ वा सशस्त्रस्य प्रविशत उत्तमो दण्डः। भिक्षुकवैदेहकौ मत्तोन्मत्तौ बलादापदि चातिसंनिकृष्टाः प्रवृत्तप्रवेशाश्चादण्ड्याः। अन्यत्र प्रतिषेधात्। स्ववेश्मनो विरा-त्रादूर्ध्वं परिवार्यमारोहतः पूर्वः साहसदण्डः। परवेश्मनो मध्यमः ग्रामारामवाटभेदिनश्च।

किसी ब्राह्मण को अपेय या अभक्ष्य का सेवन कराने पर उत्तम साहस, क्षत्रिय को सेवन कराने पर मध्यम साहस, वैश्य को सेवन कराने पर प्रथम साहस तथा शूद्र को पिलाने-खिलाने पर चौबीस पण का दंड दे। कोई ब्राह्मादि द्विजातीय व्यक्ति स्वयं ही अभक्ष्य या अपेय खावे-पीवे तो राजा उसे देश से निष्कासित करे। यदि दिन में कोई किसी के घर में घुसे तो प्रथम साहस, रात्रि में घुसे तो मध्यम साहस और शस्त्र लेकर दिन या रात्रि में घुसे तो उत्तम साहस का दण्ड दिया जाय। भिक्षुक फेरी लगाने वाला, सुरा में मत्त, उन्मादग्रस्त या संकट के समय पड़ोसी आदि किसी के घर में प्रवेश करें तो वे यदि भीतर जाने से रोके न गये हों तो दण्डनीय नहीं होंगे। एक प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर यदि कोई पुरुष अपने घर की ही बाहरी दीवार आदि पर चढ़े तो प्रथम साहस और दूसरे घर की दीवार पर चढ़े तो मध्यम

साहस से दंडित होगा। ग्राम या उद्यान का घेरा तोड़ने पर भी यही दण्ड दिया जाय।

ग्रामेष्वन्तः सार्थिका ज्ञातसारा वसेयुः। मुषितं प्रवासितं चैषामनिर्गतं रात्रौ ग्रामस्वामी दद्यात्। ग्रामान्तेषु वा मुषितं प्रवासितं विवीताध्यक्षो दद्यात्। अविवीतानां चोररज्जुकः। तथाप्यगुप्तानां सीमावरोधविचयं दद्युः। असीमावरोधे पंचग्रामी दशग्रामी वा। दुर्बलं वेश्म शकटमनुत्तब्धमूर्ध्वस्तम्भं शस्त्रमनपाश्रयमप्रतिच्छन्नं श्वभ्रं कूटावपातं वा कृत्वा हिंसायां दण्डपारुष्यं विद्यात्। वृक्षच्छेदने दम्यरश्मिहरणे चतुष्पदानामदान्तसेवने वाहने काष्ठलोष्ठपाषाणदण्डबाणबाहुविक्षेपणेषु याने हस्तिना च संघट्टने 'अपेहि' इति प्रक्रोशन्नदण्ड्यः।

विदेश यात्रा करने वाले व्यापारी यदि मार्ग के किसी ग्राम में रुकें तो उन्हें अपने सब मूल्यवान सामान की सूची ग्रामाध्यक्ष को देनी चाहिये। यदि रात्रि में उनका कोई सामान चोरी हो जाय, या इधर-उधर कर दिया जाय और यदि वह ग्राम से बाहर नहीं चला गया तो उसे खोज कर व्यापारी को दिलाना ग्रामाध्यक्ष का कर्त्तव्य है। ग्राम की सीमा पर चोरी होने वाले सामान की खोज विवीताध्यक्ष करे और व्यापारी को वह सामान दिलावे। अविवीत प्रदेश में चोरी होने पर चोर-रज्जुक अर्थात् चोरों को पकड़ने वाला अधिकारी उस सामान की खोज करके दे। इस पर भी माल की चोरी न पकड़ी जाय तो विभिन्न सीमाओं के अध्यक्ष उसकी खोज करें और ग्रामवासी लोग उन्हें इस कार्य में सहायता दें। यदि इस प्रत्यन से भी माल न मिले तो पंचग्रामी या दशग्रामी अध्यक्ष माल को खोज कर व्यापारियों को हस्तगत करावें। मकान का कमजोर होना, बैलगाड़ी का बिना लीक के चलना, शस्त्र का खड़ा रखना, गढ़े का ढका हुआ न होना, कुंए का मेंढ रहित होना या मार्ग में ईंट-पत्थर का ढेर लगाना आदि कारणों से मृत्यु होने पर अपराधी को दण्ड पारुष्य विधान से दण्डित करे। वृक्ष काटने के समय,

बैल आदि की रस्सी को खोलने के समय, अश्वादि पशुओं को प्रथम अभ्यास कराते समय, पारस्परिक कलह में लाठी, लोष्ठ, पाषाण, डण्डा, बाण और भुजा से प्रहर करते समय अथवा हाथी के चलते समय 'हट-जाओ' आदि शब्दों द्वारा चिल्लाकर सावधान करने पर भी कोई चपेट में आकर विपत्ति-ग्रस्त हो जाय तो किसी को दण्ड नहीं दिया जा सकता।

हस्तिना रोषितेन हतो द्रोणान्नं कुंभ माल्यानुलेपनं दन्तप्रमार्जनं च पटं दद्यात्। अश्वमेधावभृथस्नानेन तुल्यो हस्तिना वध इति पादप्रक्षालनम्। उदासीनवधे यातुरुत्तमो दण्डः। शृङ्गिणा दंष्ट्रिणा वा हिंस्यमानमोक्षयतः स्वामिनः पूर्वः साहसदण्डः। प्रतिक्रुष्टस्य द्विगुणः। शृङ्गिदंष्ट्रिभ्यामन्योन्यं घातयतस्तच्च तावच्च दण्डः। देवपशुमृषभमुक्षाणं गोकुमारीं वा वाहयतः पंचशतो दण्डः। प्रवासयत उत्तमः। लोमदोहवाहनप्रजननोपकारिणां क्षुद्रपशूनामादाने तच्च तावच्च दण्डः। प्रवासने च। अन्यत्र देवपितृकार्येभ्यः।

यदि कोई व्यक्ति हाथी के चलने के मार्ग पर उसके पाँव से दब कर मरने की इच्छा से जा लेटे और उससे कुपित हुआ हाथी उसका वध कर दे तो मरने वाले के उत्तराधिकारी उस हाथी को एक द्रोण अन्न, एक घट सुरा, माला, सिन्दूरादि अनुलेपन, और दांत मांजने के लिए वस्त्र देते हुए पादप्रक्षालन संज्ञक हस्ति-पूजन करे। इस प्रकार मरने का कारण यह है कि अश्वमेध यज्ञ के अवभृथ स्नान जैसा पुण्य हाथी के पाँव से कुचल कर मरने से होता है। किन्तु महावत की लापरवाही से कोई कुचल कर मर जाय तो महावत उत्तम साहस से दंडित होगा। यदि किसी का तीक्ष्ण सींग वाला या दांत वाला कोई पशु किसी को मारने या काटने लगे और उसका स्वामी उसे न रोके तो उसे प्रथम साहस का दंड दिया जाय। यदि पशु के आक्रमण से भागता हुआ व्यक्ति चिल्ला कर अपनी रक्षा का अनुरोध करे, जिसे सुन कर भी पशु-स्वामी

उसे न बचावे तो उसे दुगुना दंड दे। यदि कोई पशु-स्वामी अपने पशु के द्वारा अन्य के सींग या दाँत वाले किसी पशु को मरवा दे तो वह उतने ही मूल्य का पशु उसे दे तथा उतना ही राजदंड भुगते। यदि कोई देवता के नाम पर छोड़े हुए साँड़, बैल या गाय आदि को जोते तो उस पर पाँच सौ पण का दंड और कहीं अन्यत्र हाँक कर ले जाय तो उत्तम साहस का दंड किया जाय। यदि कोई रोमयुक्त, दोहन या भार वहन में समर्थ भेड़-बकरी आदि को चुरावे तो उसी मूल्य का पशु और उतना ही दंड दे। उक्त प्रकार के पशुओं को अन्यत्र हाँक ले जाने पर भी इतना ही दंड देना होगा। किन्तु देवता या पितर के कार्य से पशु को अन्यत्र ले जाना दंडनीय नहीं है।

छिन्ननस्य भग्नयुगं तिर्यक्प्रतिमुखागतं च प्रत्यासरुद्धा चक्रयुक्तं यानपशुमनुष्यसबाधे वा हिंसायामदण्ड्यः। अन्यथा यथोक्तं मानुषप्राणिहिंसायां दण्डमभ्यावहेत्। अमानुषप्राणिवधे प्राणिदानं च। बाले यातरि यानस्थः स्वामी दण्ड्यः। अस्वामिनि यानस्थः प्राप्तव्यवहारो वा याता। बालाधिष्ठितमपूरुषं वा यानं राजा हरेत्। कृत्याभिचाराभ्यां यत्परमापादयेत्, तदापादयितव्यः। कामं भार्यायामनिच्छन्त्यां दारार्थिना भर्तरि भार्याया वा संवननकरणम्। अन्यथा हिंसायां मध्यमः साहसदण्डः।

यदि बैलगाड़ी के बैलों की नाथ टूटने, जुआ टूटने, बैलों के तिरछे चलने, दूसरी ओर मुड़ने, पीछे की ओर भागने अथवा किसी अन्य गाड़ी, मनुष्य या पशु से टकराने के कारण किसी की मृत्यु होजाय तो गाड़ीवान दंडित नहीं होगा। किन्तु गाड़ीवान की असावधानी से किसी के मरने आदि की घटना घटित होने पर वह यथोचित दण्ड भोगेगा। यदि मनुष्य या बड़े पशु के अतिरिक्त किसी क्षुद्र पशु की मृत्यु होजाय तो गाड़ी वाला उतने ही मुल्य का पशु दे। यदि गाड़ीवान बालक हो तो उसके अपराध पर गाड़ी में स्थित गाड़ी के स्वामी को दन्ड भुगतना होगा। यदि स्वामी न हो तो जो वयस्क व्यक्ति उसमें हो, वह दंड भुगते।

यदि चलाने वाले बालक के अतिरिक्त कोई न हो तो उस गाड़ी को राजा ले ले। यदि कोई किसी को मारने के लिए कृत्या या अभिचार का प्रयोग करे तो उस पर भी वैसा ही प्रयोग करने में कोई दोष नहीं है। यदि कोई स्त्री या कन्या अपने पति या भरणकर्त्ता को न चाहे या वह पुरुष उस स्त्री की इच्छा न करे तो उस अवस्था में वशीकरण का प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु वशीकरण या अभिचार आदि के प्रयोगों द्वारा किसी की हिंसा हो जाय तो वह मध्यम साहस का दंड भागी होगा।

मातापित्रोर्भगिनीं मातुलानीमाचार्याणीं स्नुषां दुहितरं भगिनीं वाऽधिचरतस्त्रिलिङ्गच्छेदन वधश्च। सकामा तदेव लभेत। दासपरिचारकाहितकभुक्ता च। ब्राह्मण्यामगुप्तायां क्षत्रियस्योत्तमः, सर्वस्वं वैश्यस्य। शूद्रः कटाग्निना दह्येत। सर्वत्र राजभार्यागमने कुम्भीपाकः। श्वपाकागमने कृतकबन्धाङ्कः परविषयं गच्छेत्। श्वपाकत्वं ना शूद्रः। श्वपाकस्यार्यागमने वधः। स्त्रियाः कर्णनासाच्छेदनम्। प्रव्रजितागमने चतुर्विंषतिपणो दण्डः। सकामा तदेव लभेत। रूपाजीवायाः प्रसह्योपभोगे द्वादशपणो दण्डः। बहूनामेकामधिचरतां पृथक् पृथक् चतुर्विंशतिपणो दण्डः। स्त्रियमयोनौ गच्छतः पूर्वः साहसदण्डः। पुरुषमधिमेहतश्च।

माता-पिता की बहिन (मौसी या बुआ), मामी, आचार्यपत्नी, पुत्रवधु, अपनी पुत्री या बहिन के साथ अनाचार करने वाले के उपस्थ और अंडकोष कटवाले या मृत्युदण्ड दे। यदि मौसी या बुआ ने स्वयं वैसी प्रेरणा की हो तो उन्हें भी योनि और स्तनभग अथवा मरण दड देना उचित है। दास, भृत्य या बधक पुरुष भी वैसे व्यभिचार में इसी दंड के भागी होंगे। स्वच्छन्द रहने वाली ब्राह्मणी से व्यभिचार करने वाले क्षत्रिय को उत्तम साहस, वैश्य को सर्वस्व हरण और शूद्र को शुष्क घास-फूंस में लपेट कर अग्नि में भस्म करने का दंड दिया जाय। राजा की पत्नी के साथ व्यभिचार करने वाला पुरुष किसी

भी जाति का क्यों न हो, कुम्भीपाक अर्थात् खौलते तेल में डाल कर मार दिया जाय। यदि कोई चण्डाली से अनाचार करे तो उसके मस्तक को तप्त मुद्रा से दाग कर उसे राज्य से निकाल दे। यदि अनाचार करने वाला शूद्र हो तो उसे चण्डाल बना दे। यदि कोई चण्डाल आर्या अर्थात् द्विजाति वाली स्त्री से दुराचार करे तो उसे मरवा दे और उस स्त्री के भी नाक कान कटवा दे। किसी संन्यासिनी से दुराचार करने पर चौबीस पण का और सन्यासिनी की प्रेरणा से वैसा होने पर संन्यासिनी पर भी चौबीस पण का ही दंड किया जाय। वेश्या के साथ बलात्कार में बारह पण और एक स्त्री के साथ अनेक पुरुषों द्वारा बलात्कार में प्रत्येक को चौबीस पण का दड दे। किसी स्त्री से अयोनि अर्थात् अप्राकृतिक रूप से व्यभिचार करने पर पूर्व साहस तथा किसी पुरुष से अप्राकृतिक दुराचार करने पर भी इतना ही दंड दिया जाना चाहिये।

मैथुने द्वादशपणः तिर्यग्योनिष्वनात्मनः।
दैवतप्रतिमानां च गमने द्विगुणः स्मृतः ॥१
अदण्ड्यदण्डने राज्ञो दण्डस्त्रिशद्गुणोऽम्भसि।
वरुणाय प्रदातव्यो ब्राह्मणेभ्यस्ततः परम् ॥२
तेन तत्पूयते पाप राज्ञो दण्डापचारजम्।
शास्ता हि वरुणो राज्ञां मिथ्याव्याचरतां नृषु ॥३

पशुओं से दुराचार करने पर बारह पण का और देवप्रतिमा से दुराचार पर चौबीस पण का दण्ड दे। यदि राजा किसी अदण्डनीय को दंड दे तो वह भी उससे तिगुना धन दंड रूप में दे। दंड का वह राजधन प्रथम वरुणदेव को समर्पित करे और फिर ब्राह्मणों में बाँट दे। इसप्रकार दण्ड स्वरूप धनदान वाले राजा का उपचारजनित पाप मिट जाता है। क्योकि राजाओं के मिथ्याचार पर वरुणदेव ही शासन करते हैं। १-३।

॥ कण्टकशोधन चतुर्थाधिकरण समाप्त ॥

योगवृत्त पञ्चम अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

दण्ड-प्रयोग

दुर्गराष्ट्रयोः कण्टकशोधनमुक्तम्। राजराज्ययोर्वक्ष्यामः। राजानमवगृह्योपजीविनः शत्रुसाधारणा वा ये मुख्यास्तेषु गूढ-प्रणिधिः कृत्यपक्षोपग्रहो वा सिद्धिः। यथोक्तं पुरस्तादुपजापोऽप-सर्पो वा यथा च पारग्रामिके वक्ष्यामः। राज्योपघातिनस्तु वल्लभाः संहता वा ये मुख्याः प्रकाशमशक्याः प्रतिषेद्धुं दूष्याः, तेषु धर्मरुचिरुपांशुदण्ड युंजीत।

दुर्ग और राष्ट्र के कंटकों की दमन विधि पहिले कही जा चुकी है। अब राजा और राज्य के कंटक शोधन विधान को कहेंगे। राजा के मंत्री, पुरोहित सेनापति आदि जो राजा को वश में रख कार्य करते हों या शत्रुओं से मिल गये हों, उन्हें वश में करने के लिए राजा गूढ़ पुरुषों को नियुक्त करके कृत्यपक्ष (शत्रु के उत्पात से पीड़ित या भयभीत व्यक्तियों) को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करे। इस विषय में उपजाप और उपसमर्पण कार्यों को पहिले कह चुके हैं। और पारिग्रामिक विषयक प्रकरण में कहेंगे। जो प्रमुख अधिकारीगण एक साथ मिल कर राज्य को नष्ट करें, जो दूष्य अर्थात् संदेहास्पद आचरण वाले होने पर भी उनसे खुल कर कुछ कहना उचित प्रतीत हो, उनके प्रति राज्य का कल्याण चाहने वाला राजा उपांशु दंड का प्रयोग करे।

दूष्यमहामात्रभ्रातरं सत्कृतं सत्री प्रोत्साह्य राजानं दर्श-येत्। तं राजा दूष्यद्रव्योपभोगातिसर्गेण दूष्ये विक्रमयेत्। शस्त्रेण रसेन वा विक्रान्तं तत्रैव घातयेत्। भ्रातृघातकोऽयमिति। तेन

पारशवः परिचारिकापुत्रश्च व्याख्यातौ। दूष्यं महामात्रं वा सत्रिप्रोत्साहिता भ्राता दायं याचेत। तं दूष्यगृहप्रतिद्वारि रात्रावुपशयानमन्यत्र वा वसन्तं तीक्ष्णो हत्वा ब्रूयात्—हतोऽयं दायकामुक इति। ततो हतपक्षं परिगृह्येतरं निगृह्णीयात्। दूष्यसमीपस्था वा सत्रिणो भ्रातरं दायं याचमानं घातेन परिभर्त्सयेयुः। तं रात्राविति समानम्।

यदि किसी संदेहास्पद आचरण वाले महामात्य का कोई बन्धु दाय भाग न देने के कारण उस महामात्य के द्वारा अपना तिरस्कार हुआ समझ कर रुष्ट हो जाय तो सत्रि संज्ञक गुप्तचर उसे भड़का कर राजा के समक्ष उपस्थित करें। तब राजा उसे प्रभूत धन देकर उस महामात्य पर अपना प्रभाव जमाने की प्रेरणा करे और जब वह शस्त्र अथवा विष के प्रयोग से अपने भाई महामात्य की हत्या कर दे तब राजा उसे भी भाई का हत्यारा घोषित करके मरवा डाले। इस विधान से महामात्य के नीच जातीया स्त्री से उत्पन्न पुत्रों एवं दासी के पुत्रों का भी विवेचन हो गया समझे। अर्थात् उनके द्वारा भी महामात्य को मरवा कर और उन्हें पितृघाती बता कर उन्हें भी मरवाया जा सकता है। अथवा रात्रि गुप्तचर का भड़काया हुआ भाई दूषित महामात्य के पास रात्रि के समय जाकर अपना दायभाग माँगे तभी वहीं कहीं सोता हुआ तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर महामात्य के उस भाई का वध करके कहे कि महामात्य ने दायभाग माँगने वाले अपने बन्धु का वध कर डाला। तब राजा उस मृतक का पक्ष लेने के बहाने से ही महामात्य को मरवा दे। अथवा महामात्य से दायभाग माँगने वाले भाई को सत्रि गुप्तचर मरण-भय दिखाते हुए उसे धमकावें और रात्रि के समय मार दें।

दूष्यमहामात्रयोर्वा यः पुत्रः पितुः पिता वा पुत्रस्य दारानधिचरति भ्राता वा भ्रातुस्तयोः कापटिकमुखः कलहः पूर्वेण व्याख्यातः। दूष्यमहामात्रपुत्रमात्मसम्भावितं वा सत्री—'राजपुत्रस्त्वं शत्रुभयादिह न्यस्तोऽसि।' इत्युपचरेत्। प्रतिपन्नं राजा

रहसि पूजयेत्—'प्राप्तयौवराज्यकालं त्वां महामात्रभयान्नाभिषिञ्चामि' इति। तं सत्री महामात्रवधे योजयेत्। विक्रान्तं तत्रैव घातयेत्—'पितृघातकोऽयम्' इति। भिक्षुकी वा दूष्यभार्यां सांवननिकीभिरोषधिभिः संवास्य रसेनादितिसन्दध्यात्। इत्याप्यप्रयोगः।

अथवा दूष्य महामात्यों में जो पुत्र अपने पिता की किसी अन्य स्त्री या पिता पुत्र की स्त्री अथवा भाई दूसरे भाई की स्त्री पर कुदृष्टि रखे तो कापटिक गुप्तचर के द्वारा उनमें कलह करा कर उक्त विधि से दोनों को मरवा दे। दूष्य महामात्र का जो पुत्र अपने में अहंभाव रखता हो उसे भड़काने के उद्देश्य से सत्रि कहे—तुम राजपुत्र हो, शत्रु के भय से महामात्य के पास छोड़े हुए हो। जब उसे सत्रि की बातों पर भरोसा हो जाय, तब राजा अपने समीप बुला कर उससे आदर सहित कहे—पुत्र! यद्यपि अब युवराज बनाये जाने की तुम्हारी अवस्था हो गई है, किन्तु महामात्य के भय से मैं वैसा नहीं कर पा रहा हूं। फिर सत्रि उसे पितृवध (महामात्य को मारने) की प्रेरणा दे और जब वह वैसा कर बैठे तब उसे भी पितृ-हत्यारा घोषित कर मरवा डाले। अथवा किसी भिक्षुकी को इस कार्य के लिए नियुक्त करे जो दूष्य अमात्य की पत्नी द्वारा पति को वशीभूत करने वाली दवा के बहाने विष दिला कर मरवा दे। इस प्रकार 'आप्य प्रयोग' संज्ञक यह विवेचन पूर्ण हुआ।

दूष्यमहामात्रमटवीं परग्रामं वा हन्तुं कान्तारव्यवहिते वा देशे राष्ट्रपालमन्तपालं वा स्थापयितुं नागरस्थानं वा कुपितमवग्रहीतुं सार्थातिवाह्यं प्रत्यन्ते वा सप्रत्यादेयमादातुं फल्गुबलं तीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत्। रात्रौ दिवा वा युद्धे प्रवृत्ते तीक्ष्णाः प्रतिरोधकव्यंजना वा हन्युः—'अभियोगे हतः' इति।

दूष्य वनपाल एवं विद्रोही ग्रामिकों का दमन करने के उद्देश्य से, घने वन से घिरे प्रदेश में राष्ट्रपाल या अन्तपाल की नियुक्ति के

लिए, अपने देश में कुपित नागरिकों पर नियंत्रण करने के लिए अथवा शत्रु द्वारा छीने गये प्रदेश पर पुनः अधिकार करने के लिए एवं व्यापारियों से वित्त संग्रह करने के उद्देश्य से राजा कुछ सेना एवं तीक्ष्ण गुप्तचरों के सहित दूष्य महामात्य को प्रेषित करे और वहां रात्रि अथवा दिन में जब भी लड़ाई प्रारम्भ हो जाय, तब वे तीक्ष्ण गुप्तचर दस्युओं के वेश में प्रकट होकर उस दूष्य महामात्य को मार कर उसके युद्ध में मारे जाने की घोषणा कर दें।

यात्राविहारगतो वा राजा दूष्यमहामात्रान् दर्शनायाह्वयेत्। ते गूढशस्त्रैस्तीक्ष्णैः सह प्रविष्टा मध्यमकक्ष्यायामात्मविचयमन्तः प्रवेशार्थं दद्युः। ततो दौवारिकाभिगृहीतास्तीक्ष्णा 'दूष्यप्रयुक्ताः स्म' इति ब्रूयुः। ते तदभिविख्याप्य दूष्यान् हन्युः। तीक्ष्णस्थाने चान्ये वध्याः। बहिर्विहारगतो वा दूष्यानासन्नावासान्पूजयेत्। तेषां देवीव्यंजना वा दुःस्त्री रात्रावावासेषु गृह्येतेति समानं पूर्वेण। दूष्यमहामात्रं वा 'सूदो भक्षकारो वा ते शोभनः' इति स्तवेन भक्ष्यभोज्यं याचेत। बहिर्वा क्वचिदध्वगतः पानीयं तदुभयं रसेन योजयित्वा प्रतिस्वादने तावेवोपयोजयेत्। तदभिविख्याप्य 'रसदाविति' घातयेत्।

अथवा शत्रु पर आक्रमण अथवा विहार के निमित्त नगर के बाहर जाकर राजा दूष्य महामात्रों को बुलावे। तब गोपनीय रूप से शस्त्र धारण किये हुए तीक्ष्ण गुप्तचर उन्हें अपने साथ लेकर राजा के पास पहुँचे। किन्तु वहाँ मध्य कक्ष में पहुँचते ही वहाँ नियुक्त राजपुरुष उन सबकी तलाशी लें। उस तलाशी में तीक्ष्ण गुप्तचरों के पास शस्त्र मिलें तो वे कहें कि महामात्रगण ने हमें शस्त्रास्त्र से सुसज्जित किया था। तदनन्तर वे गुप्तचर जनता में यह बात फैला दें कि राजा को मारने के लिए ही यह महामात्रगण पूरी तरह तैयार होकर वहाँ पहुँचे थे। इसी अभियोग में राजा उन महामात्रों को मरवा डाले। किन्तु तीक्ष्ण गुप्तचरों के स्थान पर अन्य व्यक्तियों को मारा जाय। अथवा राजा

अपने उन दूष्य महामात्रों के पास जाकर उन महामात्रों का विशेष सत्कार करे जो दुर्ग या पड़ाव से कुछ दूरी पर विद्यमान हों। फिर रात्रि के समय किसी दुष्टा स्त्री को महारानी के वेश में महामात्रों के डेरे के पास बुला कर पकड़वा दे और उस समय यह प्रकट करे कि जैसे महारानी की ही खोज हो रही हो। फिर यह प्रचार करे कि महामात्रगण महारानी पर बुरी नजर रखते थे। तत्पश्चात् इसी आरोप में उन दूष्य महामात्रों को मरवा दे। अथवा राजा दूष्य महामात्रों से कहे कि तुम्हारे रसोइये द्वारा बना हुआ भोजन मुझे बड़ा अच्छा लगता है। इस प्रकार राजा उनसे भोजन अथवा दुर्ग मार्ग पर जल माँगे और फिर उस भोजन या जल में चुपचाप विष मिला कर उस भोजन या जल में सन्देह प्रकट करता हुआ उन महामात्रों को बुला कर उसे ही खाने या पीने को कहे। तब वे उसे खा-पीकर मृत्यु को प्राप्त हो जाँयगे और फिर जनता में यह प्रचारित करा दे कि उन महामात्रों ने राजा को विष देकर मार डालना चाहा था।

अभिचारशील वा सिद्धव्यंजनो गोधाकूर्मकर्कटकूटानां लक्षण्यानामन्यतमप्रकाशनेन मनोरथानवाप्स्यसीति ग्राहयत्। प्रतिपन्ने कर्मणि रसेन लोहमुसलैर्वा धातयेत्। 'कर्मव्यापदा हत' इति। चिकित्सकव्यजनो वा दौरात्मिकमसाध्यं वा व्याधिं दूष्यस्य स्थापयित्वा भैषज्याहारयोगेषु रसेनातिसंदध्यात्। सूदारालिकव्यंजना वा प्रणिहिता दूष्यं रसेनातिसन्दध्युः। इत्युपनिषत्प्रतिषेधः।

अथवा सिद्ध वेश वाला गुप्तचर अभिचार कर्म में विश्वास रखने वाले महामात्र के पास जाकर कहे कि यदि आप श्रेष्ठ लक्षण वाले गोह, कूर्म, कर्कट और कूट अर्थात् हरिण में से किसी एक के मांस को मेरे द्वारा बतायी अभिचार विधि से पका कर भक्षण करें तो आपके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाँय। इस बात को मान कर जब महामात्र अभिचार कर्म की सिद्धि के उद्देश्य से श्मशान में जाय तभी सिद्ध गुप्तचर उसे

विष खिला कर या लोहे के मूसल से प्रहार कर मार दे और प्रजा-जनों में उस महामात्र का पिशाचों द्वारा मारा जाना प्रचारित कर दे। अथवा चिकित्सक वेश वाला गुप्तचर दूष्य महामात्र के पास जाकर उसके शरीर की परीक्षा करके उसे बतावे कि अपने ही दुराचार से आपने यह असाध्य रोग उत्पन्न कर लिया है, अब यह रोग बड़ी कठि-नाई से दूर होगा। इस प्रकार उसके मन में सद्भाव-प्रदर्शन द्वारा विश्वास बैठा कर औषधि या भोजन में विष डलवा कर मार दे। अथवा मांस या चावल पकाने वाले के वेश वाला गुप्तचर उसके यहां भृत्य बन कर अवसर मिलने पर विष खिला कर समाप्त कर दे। यह गुप्तविधि द्वारा दूष्य महामात्रों की प्रतिषेध विधि कही गई।

उभयदूष्यप्रतिषेधस्तु। यत्र दूष्यः प्रतिषेद्धव्यस्तत्र दूष्यमेव फल्गुबलतीक्ष्णयुक्तं प्रेषयेत्—'गच्छामुष्मिन्दुर्गे राष्ट्रे वा सैन्य-मुत्थापय हिरण्यं वा, वल्लभाद्वा हिरण्यमाहारय, वल्लभकन्यां वा प्रसह्यानय। दुर्गसेतुवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनक-र्मणामन्यतमं कारय, राष्ट्रपाल्यमन्तपाल्यं वा। यश्च त्वां प्रतिषे-धयेन्न वा ते साहाय्यं दद्यात्, स बन्धव्यः स्यादिति। तथैवेतरेषां प्रेषयेत्—'अमुष्या विनयः प्रतिषेद्धव्यः' इति। तमेतेषु कलहस्था-नेषु प्रतिकर्मविघातेषु वा विवदमानं तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा प्रच्छन्नं हन्युः। तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः।

अब एक ही उपाय से दो दूषितों के प्रतिषेध के विषय में कहते हैं। जहाँ एक दोषी अधिकारी का दमन करना हो वहीं दूसरे दोषी अधि-कारी को भी कुछ सेना और छद्मवेशी तीक्ष्ण गुप्तचरों के साथ भेजता हुआ राजा उससे कहे—तुम अमुक दुर्ग या राष्ट्र में जा कर अपनी सैन्य-वृद्धि के लिए नये सैनिकों की भर्ती करो तथा वहाँ से राजकर वसूल करो, या अध्यक्ष से धन लाओ अथवा अमुक अध्यक्ष की कन्या को पकड़ लाओ। अथवा वहां दुर्ग, सेतु, वणिक्पथ, शून्य स्थानों की

बसावट, खान, द्रव्यवन, हस्तिवन आदि में से किसी एक कार्य को करो अथवा राष्ट्रपाल या अन्तपाल के कार्य में सहायता करो। वहां जो व्यक्ति तुम्हारे कार्य में बाधा उपस्थित करें अथवा सहयोग न करें उन्हें पकड़ कर लेआओ। इसी प्रकार राजा उस स्थान पर विद्यमान दोषी अधिकारी के पक्षपातियों को यह कहला दे कि यहाँ से जो दुष्ट अधिकारी जारहा है, उसका दमन किया जाय। इस प्रकार जब सेना में भर्ती करने और धन संचय करने में कलहपूर्ण वातावरण बन जाय और भेजे हुए अधिकारी के कार्य में बाधा उपस्थित होने पर उसके क्षुब्ध होते ही वे छद्मवेशी गुप्तचर कलह करके उसे मार डालें और साथ ही प्रचारित करें कि इन लोगों ने अधिकारी को मार दिया है। तत्पश्चात् वे वहां पहिले से विद्यमान दूष्य अधिकारी और उसके पक्षपातियों का वध कर डालें।

पुराणां ग्रामाणां कुलानां वा दूष्याणां सीमाक्षेत्रखलवेश्मम-र्यादासु द्रव्योपकरणसस्यवाहनहिंसासु प्रेक्षाकृत्योत्सवेषु वा समुत्पन्ने कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा ब्रूयुः—'एवं क्रियन्ते येऽमुना कलहायन्ते' इति। तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः। येषां वा दूष्याणां जातिमूलाः कलहाः तेषां क्षेत्रखलवेश्मान्यादीपयित्वा बन्धुसम्बन्धिषु वाहनेषु वा तीक्ष्णाः शस्त्रं पातयित्वा तथैव ब्रूयुः—'अमुना प्रयुक्ताः स्मः' इति। तेन दोषेणेतरे निग्रंतव्याः। दुर्गराष्ट्रदूष्यान् वा सत्रिणः परस्परस्यावेशनिकान् कारयेयुः। तत्र रसदा रसं दद्युः। तेन दोषेणेतरे नियन्तव्याः।

अथवा दोषित अधिकारियों के नगर, ग्राम, सीमा, खेत, खलिहान, गृह-सीमा, स्वर्णादि युक्त अलंकार, वस्त्र, अन्न, वाहन, क्रीड़ा एवं विवाहादि के अवसर पर या रक्त विषयक कोई कलह उत्पन्न होजाय तो तीक्ष्ण गुप्तचर ही शस्त्र प्रयोग द्वारा उनका वध कर दें और साथ ही प्रचारित करें कि अमुक से कलह होने पर यह मारे गये हैं। इस प्रकार दूसरे दोषी अधिकारियों पर दोषारोपण करके राजा उन्हें भी मरवा

दे। अथवा जिन दोषी व्यक्तियों में अधिक विद्वेष उत्पन्न होगया हो, उनके खेत-खलिहानों अथवा वाहनादि को नष्ट करके प्रचारित करें कि अमुकों द्वारा हमें ऐसा करने का प्रोत्साहन दिया गया था। तब राजा उस आरोप में उन दोषियों को भी वश में करे। दुर्ग या राष्ट्र में विद्यमान विद्रोहियों को सत्रि संज्ञक गुप्तचर किसी उपाय से एक स्थान पर एकत्रित करके एक-दूसरे के यहां भोजन कराने की व्यवस्था करते हुए खाद्य में विष मिलवा कर मरवा दें। जो शेष बच जांय उन पर विष देकर हत्या करने का आरोप लगा कर राजा अपने वश में कर ले।

भिक्षुकी वा दूष्यराष्ट्रमुख्यं दूष्यराष्ट्रमुख्यस्य भार्या स्नुषा दुहिता वा कामयते इत्युपजपेत्। प्रतिपन्नस्याभरणमादाय स्वामिने दर्शयेत्—'असौ ते मुख्यो यौवनोत्सिक्तो भार्यां स्नुषां दुहितरं वाभिमन्यते' इति। तयोः कलहो रात्रौ इति समानम्। दूष्यदण्डोपनतेषु तु युवराजः सेनापतिर्वा किंचिदपकृत्यापक्रान्तो विक्रमेत। ततो राजा दूष्यदण्डोपनतानेव प्रेषयेत्। फल्गुबलतीक्ष्णयुक्तानिति समानाः सर्व एव योगाः। तेषां च पुत्रेष्वनुक्षिपत्सु यो निर्विकारः स पितृदायं लभेत। एवमस्य पुत्रपौत्राननुवर्तते राज्यमपास्तपुरुषदोषमिति।

स्वपक्षे परपक्षे वा तूष्णीं दण्डं प्रयोजयेत्।
आयत्यां च तदात्वे च क्षमावानविशंकितः॥

अथवा भिक्षुकी वेश वाली गुप्तचरी किसी दोषी राष्ट्रमुख्य के पास जाकर कहे कि अमुक राष्ट्रमुख्य की भार्या, पुत्रवधु या कन्या आप पर अनुरक्त है। उसकी यह बात सुन कर वह राष्ट्रमुख्य उस स्त्री को देने के उद्देश्य से जो आभूषणादि दे, उसे वह स्त्री के पति, श्वसुर या पिता को जाकर दिखाती हुई कि अमुक राष्ट्रमुख्य यौवन मद में उन्मत्त होकर तुम्हारी भार्या, पुत्रवधु या कन्या की कामना करता है। इस प्रकार दोनों राष्ट्रमुख्यों में कलह उत्पन्न होने पर

तीक्ष्ण गुप्तचर दोनों में से किसी एक की हत्या करके, उसकी हत्या के आरोप में राजा द्वारा दूसरे को भी दंडित करावें। किन्तु दंडोपनत सैन्यबल से वशीभूत हुए राजाओं के दूषित होने पर उन्हें वश में करने की कामना वाला युवराज या सेनापति किसी प्रकार उनका अपकार करके राज्य से निकल आवे और कालान्तर में उन पर हमला कर अपने बल को दिखावे। तभी राजा अपने वशीभूत अन्य राजाओं को युवराज या सेनापति की सहायता के लिए भेज कर दूष्य राजाओं को वश में करले। इस प्रकार के यह सब लगभग एक जैसे ही हैं। उन मृत्यु प्राप्त राजाओं के जो पुत्र आदि विजयी राजा के निन्दक हों, उन्हें वंचित करके निर्विकार अर्थात् द्वेषरहित पुत्र आदि को मृतक राजा के राज्य का अधिकारी घोषित करे। ऐसा करने से राज्य के सब दोष दूर होकर उस में पुत्रपौत्रादि पर्यन्त स्थित रहने का स्थायित्व आजाता है। क्षमावान राजा वर्तमान और भविष्य के प्रति शंका-रहित रहता हुआ स्वपक्ष और परपक्ष विषयक दंडनीति का यथारीति प्रयोग करता रहे।

द्वितीयोऽध्याय:

कोश का अति संग्रह

कोशमकोशः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रः संगृह्णीयात्। जनपदं महान्तमल्पप्रमाणं वा देवमातृकं प्रभूतधान्यं धान्यस्यांशं तृतीयं चतुर्थं वा याचेत। यथासारं मध्यमवरं वा। दुर्गसेतुकर्मवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्मोपकारिणं प्रत्यन्तमल्पप्रमाणं वा न याचेत। धान्यपशुहिरण्यादि विविशमानाय दद्यात्। चतुर्थमंशं धान्यानां बीजभक्तशुद्धं च हिरण्येन क्रीणीयात्।

यदि राजकोश घटने लगे या सहसा किसी प्रकार का अर्थ-संकट उपस्थित हो जाय तो धन सचय द्वारा कोश-वृद्धि करनी चाहिए। राज्य में बड़ा जनपद होते हुए भी वहाँ से धन की आय कम हो और वर्षा

पर निर्भर कृषि द्वारा अन्नोत्पादन की प्रचुरता रहती हो तो राजा उस जनपद के रहने वालो से उत्पन्न अन्न का तिहाई या चौथाई ले ले। किन्तु मध्यम या निम्न श्रेणी के जनपद से वहाँ के उत्पादन के अनुपात में ही अन्न का भाग लिया जाय। दुर्ग, सेतु, वणिक्पथ, शून्य स्थान में बसावट, खान, द्रव्यवन एवं हस्तिवन युक्त तथा राजधानी का निकटवर्ती प्रदेश धन में स्वल्पता युक्त अथवा पिछड़ा हुआ हो तो वहां से राजकोष के लिए धन न मांगे। वरन् नवीन जनपद वसाने वाले कृषकों को राजा के द्वारा अन्न, पशु और नकद की वित्तीय सहायता दी जानी चाहिए और उस प्रदेश में वे जितने अन्न का उत्पादन करें, उसे राजा नकद मूल्य देकर उनसे क्रय करे। किन्तु वह खरीद उन कृषकों के भोजन के लिए अन्न बोने के लिए बीज से बचने वाले अन्न की ही की जानी चाहिए।

अरण्यजातं श्रोत्रियस्वं च परिहरेत्। तदप्यनुग्रहेणे क्रीणीयात्। तस्याकरणे वा समाहर्तृपुरुषा ग्रीष्मे कर्षकाणामुद्वापं कारयेयुः। प्रमदावस्कन्नस्यात्ययं द्विगुणमुदाहरन्तो बीजकाले बीजलेख्यं कुर्युः। निष्पन्ने हरितपक्वादानं वारयेयुः। अन्यत्र शाककटभङ्गमुष्टिभ्यां देवपितृपूजादानार्थं गवार्थं वा भिक्षुकग्रामभृतकार्थं च राशिमूलं परिहरेयुः। स्वसस्यापहारिणः प्रतिपातोऽष्टगुणः। परसस्यापहारिणः पंचाशद्गुणः सीतात्ययः स्ववर्गस्य वाह्यस्य तु वधः।

वन में स्वयं उत्पन्न या श्रोत्रिय आदि के द्वारा उत्पादित अन्न को राजा न ले। आवश्यक होने पर उनके भोजन या वपन के बीज रूप में अन्न को छोड़ कर शेष अन्न मूल्य देकर ले सकता है। अथवा श्रोत्रियादि कृषि कर्म न करें तो समाहर्त्ता द्वारा नियुक्त कर्मचारी वहाँ ग्रीष्मकाल में जाकर कृषकों से बुवाई का कार्य करावें। यदि कृषकों के दोष से बीज नष्ट हो जाय तो उनसे दुगुना बीज क्षतिपूर्ति रूप में वसूल किया जाय। दूसरी बार बीज-वपन होते समय उस विषय का पूरा हिसाब लिख ले। बीज के उग कर बढ़ने पर उसमें से कच्चा या पक्का दाना कृषकों

को न तोड़ने दे। किन्तु देव-पूजन या दान के लिये अन्न और पशुओं के लिये चारे के रूप में लेने का उन्हें अधिकार है। भिक्षुकों और ग्राम-सेवकों के लिये ढेरी के नीचे का अन्न छोड़ देना चाहिये। यदि कृषक राजकर बचाने के लिये अपने उत्पादन की तौल कम दिखावे तो जितना अन्न कम दिखाया गया हो उससे आठ गुना वसूल किया जाय। यदि उसी ग्राम का कोई कृषक अन्य कृषक के अन्न की चोरी करे तो उससे चुराये गये अन्न का पचास गुना अन्न सीतात्यय संज्ञक दंड के रूप में वसूल किया जाय। किन्तु वह चोर कृषक अन्य ग्राम का हो तो वह वध दंड का भागी होगा।

चतुर्थमशं धान्यानां षष्ठं वन्यानां तूललाक्षाक्षौमवल्ककार्पासरौमकौशेयकौषधगन्धपुष्पफलशाकपण्यानां काष्ठवेणुमांसवल्लूराणां च गृह्णीयुः। दन्ताजिनस्यार्धम्। अनिसृष्टं विक्रीणानस्य पूर्वः साहसदण्डः इति। कर्षकेषु प्रणयः।

सुवर्णरजतवज्रमणिमुक्ताप्रवालाश्वहस्तिपण्याः पंचाशत्कराः। सूत्रवस्त्रताम्रवृत्ताकंसगन्धभैषज्यसीधुपण्याश्चत्वारिंशत्कराः। धान्यरसलोहपण्याः शकटव्यवहारिणश्च त्रिंशत्कराः काचव्यहारिणो महाकारवश्च विंशतिकराः। क्षुद्रकारवो बन्धकीपोषकाश्च दशकराः। काष्ठवेणुपाषाणमृद्भाण्डपक्वान्नहारितपण्याः पञ्चकराः।

उत्पन्न अन्न का चतुर्थांश तथा वन्य अन्न, रुई, लाक्षा, सन, कपास, ऊन, रेशम, औषधि, गन्धद्रव्य, पुष्प, फल, शोक, काष्ठ, बाँस, ताजा या शुष्क मांस का षष्ठांश और हाथी दाँत और गौ आदि के चर्म का आधा भाग कर-रूप में वसूल किया जाय। राजाज्ञा के बिना यदि कोई व्यक्ति उक्त वस्तुएँ बेचे तो उसे पूर्व साहस दंड दे। यह कृषकों से कर लेने का वर्णन हुआ। व्यापारियों से स्वर्ण, रजत, हीरा, मणि, मुक्ता, मूँगा, हाथी और घोड़े आदि पर मूल्य का पचासवाँ भाग कर रूप में लिया जाय। सूत, वस्त्र, ताम्र, वृत्त (एक धातु), कांसा, गन्धद्रव्य, औषधि और सुरा पर चालीसवाँ भाग तथा अन्न, रस लोह

निर्मित पदार्थ एवं बैलगाड़ी आदि के भाड़े से जीविका करने पर आय का तीसवाँ भाग वसूल करे। काँच का व्यवहार करने वाले बड़े कारीगरों से बीसवाँ भाग एवं वेश्या के भरण-पोषण करने वाले या छोटे कारीगरों से दसवाँ भाग ले। काष्ठ, बाँस, पाषाण, मृत्तिका पात्र, पक्वान्न एवं शाक का व्यापार करने वालों से पाँचवा भाग लिया जाय।

कुशीलवा रूपाजीवाश्च वेतनार्धं दद्युः। हिरण्यकरदकर्मण्यानाहारयेयुः। न चैषां कंचिदपराधं परिहरेयुः ते ह्यपरिगृहीतमभिनीय विक्रीणरन्। इति व्यवहारिषु प्रणयः।

कुक्कुटसूकरमर्धं दद्यात्। क्षुद्रपशवः षड्भागम्। गोमहिषाश्वतरखरोष्ट्राश्च दशभागम्। बन्धकीपोषका राजप्रेष्याभिः परमरूपयौवनाभिः कोशं संहरेयुः। इति योनिपोषकेषु प्रणयः।

कुलीलव एवं वेश्या आदि से आय का आधा भाग तथा बेरोजगार वणिकों आदि से एक हिरण्य अर्थात् स्वर्णमुद्रा कर रूप में ले। उनके अपराध अर्थात व्यापार न करने आदि की उपेक्षा न कर उनसे हिरण्यकर अवश्य ले। (क्योंकि कर न देने से उनमें प्रमाद बढ़ेगा और कर देने की चिन्ता में वे कार्य-रत रहेंगे) अथवा कुछ यह भी अपराध करते हैं कि अपने द्वारा निर्मित वस्तु को दूसरों की बता कर बेचते हैं, जिससे राज्य-कर में बचत हो जाती है। यह व्यापारियों आदि से कर-वसूली का विवेचन हुआ। कुक्कुट और शूकर आदि के पालकों से बढ़े हुए पशुओं का आधा मूल्य कर-रूप में वसूल करे। क्षुद्र पशुओं के पालने वालों से षष्ठांश और गौ, भैंस, खच्चर, गधा, ऊँट पालने वालों से दशांश कर लिया जाय। वेश्याओं का भरण-षोषण करने वाले लोग राजाज्ञा प्राप्त करके परम रूप और यौवन-सम्पन्न स्त्रियों के द्वारा राजकोश के लिए धन-संचय करावें। यह योनिपोषकों से धन माँगने की व्याख्या हुई।

सकृदेव न द्विः प्रयोज्यः । तस्याकरणे वा समाहर्ता कार्यमपदिश्य पौर जानपदान्भिक्षेत । योगपुरुषाश्चात्र पूर्वमतिमात्रं दत्तुः । एतेन प्रदेशेन राजा पौरजानपदान् भिक्षेत । कापटिकाश्चैनाल्पं प्रयच्छतः कुत्सयेयुः । सारतो वा हिरण्यमाढ्यान् याचेत । यथोपकारं वा स्ववशा वा यदुपहरेयुः । स्थानच्छत्रवेष्टनविभूषाश्चैषां हिरण्येन प्रयच्छेत् । पाषण्डसंघद्रव्यमश्रोत्रियभोग्यं देवद्रव्यवा कृत्यकराः प्रेतस्य दग्धगृहस्य वा हस्ते न्यस्तमित्युपहरेयुः ।

इस प्रकार कर की माँग एक बार करे, दूसरी बार न करे। यदि उक्त विधि से धन संचय न हो सके तो समाहर्ता किसी विशेष कार्य के नाम पर नगर और जनपद वासियों से राजकोष के लिए धन एकत्र करे। समाहर्ता के संकेत पर धनवान व्यक्ति सर्व प्रथम अधिक धन दे सकते हैं इस प्रकार राजा को धन की माँग नगर और जनपद वासियों से करनी चाहिए। जो लोग इस अवसर पर धन प्रदान न करें, उनकी सार्वजनिक रूप से निन्दा कापटिक गुप्तचर करें। धनवानों के धन-सामर्थ्य के अनुसार ही उनसे धन की माँग की जाय या जो धनिक राजा के उपकारों को याद करके अथवा राजा को धन-दान से प्रसन्न करने के विचार से स्वेच्छा से देना चाहें, वह भी राजा को स्वीकार कर लेना चाहिए। धनवानों से नकद धन मिलने पर राजा उन्हें कोई पद, छत्र, पाग या स्वर्णकंकणादि आभूषण देकर सत्कृत करे। किसी पाखण्ड सघ का धन, श्रोत्रियों के उपभोग से अवशिष्ट धन, या देवता का धन भी राजा के अधिकारीगण यह कह कर ले लें कि अमुक मृतक के संस्कार के लिए अथवा अमुक दग्ध घर वाले की सहायता के लिए यह धन लिया जाता है। फिर वे उस धन को राजा की भेंट कर दें।

देवताध्यक्षो दुर्गराष्ट्रदेवतानां यथास्वमेकस्थं कोशं कुर्यात् । तथैव चाहरेत् । दैवतचैत्यं सिद्धपुण्यस्थानमौपपादिकं वा रात्रावुत्थाप्य यात्रासमाजाभ्यामाजीवेत् । चैत्योपवनवृक्षेण वा देवता-

भिगमनमनार्तवपुष्पफलयुक्तेन ख्यापयेत्। मनुष्यकरं वा वृक्षे रक्षोभयं रूपयित्वा सिद्धव्यञ्जना. पौरजानपदानां हिरण्येनप्रति-कुर्युः। सुरुंगायुक्ते वा कूपे नागनियतशिरस्क हिरण्योपहारेण दर्शयेत्। नागप्रतिमायामन्तश्छिद्रायां चैतच्छिद्रे वल्मीकच्छिद्रे वा सर्पदर्शन आहारेण प्रतिबन्धसंज्ञं कृत्वा श्रद्दधानानादर्शयेत्। अश्रद्दधानानामाचमनप्रोक्षणेषु रसमवपाय्य देवताभिशापं ब्रूयात्। अभित्यक्तं वा दंशयित्वा योगदर्शनप्रतीकारेण वा कोशाभिसहरणं कुर्यात्।

देवस्थान का अव्यक्ष दुर्ग एवं राष्ट्र के सभी देवालयों का धन एक स्थान यर एकत्र करके यथावत राजा को अर्पण करें। किसी प्रसिद्ध तीर्थ स्थान में जाकर देवताध्यक्ष यह प्रचारित करे कि यहाँ भूमि फोड़ कर देवता प्रकट हुए हैं और वहाँ रात्रि के समय कोई देवालय आदि बना कर यात्रा उत्सव आदि के बड़े आयोजन करके यात्रियों या दर्शना-र्थियों से भेंट रूप में अधिक से अधिक धन चढ़वा कर उसी धन से अपनी जीवन यात्रा चलाता हुआ शेष धन चुपचाप राजा के पास प्रेषित कर दे। साथ ही यह भी प्रचारित करे अमुक देवोपवन में एक वृक्ष असमय में ही पुष्पित-पल्लवित होगया है, इससे प्रतीत होता है कि वहाँ भी किसी देवता का प्राकट्य शीघ्र ही होने को है। अथवा राजा के सिद्ध गुप्तचर जनता में प्रचारित करदें कि अमुक वृक्ष पर निवास करने वाला राक्षस नित्यप्रति एक मनुष्य भक्षणार्थ चाहता है। उसका कथन है कि यदि आस-पास के लोग मेरी व्यवस्था न करेंगे तो मैं सर्वनाश कर डालूंगा। इस प्रकार का भय उत्पन्न करके प्रतीकार करने के वहाने लोगों से अधिकाधिक धन एकत्र कर चुपचाप राजा के पास भेजते रहें। अथवा किसी कूप में कोई वल्मीक छिद्र बनाकर उसमें तीन या पाँच मुख वाले नाग की मूर्ति रख कर अधिक धन लेकर ही उसके दर्शन करावे और उस धन को राजा के पास भेज दें। अथवा किसी पुराने देवालय या वल्मीक में कोई सर्प दिखाई दे तो उसे मंत्र या औषधि

से वश में करके लोगों में देवता की महिमा से ही सर्प का संज्ञाशून्य होना प्रचारित करें। जो व्यक्ति इन बातों पर श्रद्धा न करते हों, उनके भोजन में या स्नानादि के जल में किंचित विष मिला कर चेतनाहीन कर दें और उसकी उस दुर्गति का कारण देवता का अभिशाप होना प्रचारित करें। अथवा निन्दक को सर्प से कटवा कर कहे कि देवता के अभिशाप से ही ऐसा हुआ है। अथवा औपनिषदिक अधिकरण में जो प्रतीकार योग कहे हैं उनके द्वारा राजकोष की वृद्धि का प्रयत्न करें।

वैदेहकव्यजनो वा प्रभूतपण्यान्तेवासी व्यवहरेत्। स यदा पण्यमूल्ये निक्षेपप्रयोगैरुपचितः स्यात् तदैनं रात्रौ मोषयेत्। एतेन रूपदर्शकः सुवर्णकारश्च व्याख्यातौ। वैदेहकव्यंजनो वा प्रख्यातव्यवहारः प्रवहणनिमित्तं याचितकमवक्रीतकं वा रूप्य-सुवर्णभाण्डमनेकं गृह्णीयात्। समाजे वा सर्वपण्यसन्दोहेन प्रभूतं हिरण्यसुवर्णं गृह्णीयात्। प्रतिभाण्डमूल्य च। तदुभयं रात्रौ मोषयेत्। साध्वीव्यंजनाभिः स्त्रीभिर्दूष्यानुन्मादयित्वा तासामेव वेश्मस्वभिगृह्य सर्वस्वान्याहरेयुः। दूष्यकुल्यानां वा विवादे प्रत्युत्पन्ने रसदाः प्रणिहिता रसं दद्युः। तेन दोषणेतरे पर्यादातव्याः।

या वैश्य वेश वाला गुप्तचर बहुत-सा माल और सहकारियों को साथ लेकर क्रय-विक्रय का व्यवसाय करने लगे और जब वह व्यापार से प्रचुर लाभ कमा ले तो आस-पास के लोग उसे अत्यन्त धनवान व्यापारी समझकर अपने बेशकीमती आभूषणादि एवं नकदी धन उसके पास अमानत के रूप में जमा करादें और कुछ लोग अपना धन ब्याज पर उधार दे दें, जिससे कि उसके पास प्रभूत धन एकत्र हो जाय। तत्पश्चात् राजा किसी रात्रि में उसके घर में चोरी करा दे और वह धन चुपचाप राजकोश में जमा करले। इसी प्रकार रूप दर्शक और स्वर्णकार की भी व्याख्या हुई समझे। अथवा कोई वैश्य वेश वाला गुप्तचर अपने व्यापार में बहुत ख्याति अर्जन करले, तब किसी भोजन गोष्ठी के

बहाने से नगर के विभिन्न धनवानों से सोने-चाँदी के बहुत मे पात्र मँगाले तथा भोज पर आए हुए धनिकों को उस सामान को दिखाकर प्रभावित करले और फिर उनमें से कुछ धनिकों से प्रभूत धन या स्वर्ण ऋण रूप में ले ले। तत्पश्चात् अपने भी सब सामान को वेंचकर नकद धन जुटाले तब राजा किसी एक रात्रि में उसके यहां चोरी करा कर सब धन हड़प ले। इसी प्रकार जो विशिष्ट एवं पूज्य पुरुष राजा से द्वेष करते हों उनके यहाँ साध्वी वेश वाली गुप्तचर जाकर उनमें कामोन्माद उत्पन्न करें तभी उनके साथ उन विशिष्ट जनों को पकड़वाकर अनाचार दोष में उनका सब धन छीन कर राजकोष में जमा करा दे। अथवा राजा से द्वेष करने वालों के परिवार में दायभाग आदि से संबंधित विवाद उपस्थित हो जाय तो विष देने के कार्य में नियुक्त गुप्तचर उनके एक पक्ष को विष देकर मार डालें और फिर उस अपराध को दूसरे पक्ष के सिर मढ़ कर राजा उनका सर्वस्व हरण कर लें।

दूष्यमभित्यक्तो वा श्रद्धेयापदेशं पण्यं हिरण्यनिक्षेपमृणप्रयोगं दायं वा याचेत। दासशब्देन वा दूष्यमालम्बेत। भार्यामस्य स्नुषां दुहितरं वा दासीशब्देन भार्याशब्देन वा। तं दूष्यगृहप्रतिद्वारि रात्रावुपशयानमन्यत्र वा वसन्तं तीक्ष्णो हत्वा ब्रूयात्—'हतोऽयमभित्यः कामुक' इति। तेन दोषेणेतरे पर्यादातव्याः।

अथवा कोई अभित्यक्त अर्थात् मार देने योग्य व्यक्ति राजा के किसी द्वेषी के पास जाकर कोई वस्तु, नकदी अथवा दायभाग की माँग करे, जिससे कि पड़ौसी मनुष्य यह समझ लें कि उक्त दोनों में कुछ लेन-देन चलता रहता है। अथवा अभित्यक्त व्यक्ति अपने को उस राजद्वेषी का दास बतावे या उस द्वेषी की भार्या, पुत्रवधु अथवा पुत्री को अपनी दासी पत्नी कह कर प्रचारित करे। तभी किसी एक रात्रि में द्वेषी के द्वार पर या कहीं अन्य स्थान पर सोते हुए उस अभियक्त का वध तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर कर दें और फिर जन साधारण

में प्रचार करें कि इस कामुक को उस धनिक ने मार दिया। तब राजा इस आरोप में उस राजद्वेषी का सर्वस्व छीन ले।

सिद्धव्यंजनो वा दूष्यं जम्भकविद्याभिः प्रलोभयित्वा ब्रूयात्—'अक्षयं हिरण्यं राजद्वारिकं स्त्रीहृदयमरिव्याधिकरमायुष्यं पुत्रीयं वा कर्म जानामि' इति। प्रतिपन्नं चैत्यस्थाने रात्रौ प्रभूतसुरामांसगन्धमुपहारं कारयेत्। एकरूपं चात्र हिरण्यं पूर्वनिखातम्। प्रेताङ्गं प्रेतशिशुर्वा यत्र निहितः स्यात्। ततो हिरण्यस्य दर्शयेदत्यल्पमिति च ब्रूयात्—'प्रभूतहिरण्यहेतोः पुनरुपहारः कर्तव्यः' इति। स्वयमेवैतेन हिरण्येन श्वोभूते प्रभूतमौपहारिकं क्रीणीहि' इति। तेन हिरण्येनौपहारिकक्रये गृह्येत।

अथवा सिद्ध वेश वाले गुप्तचर किसी राजद्रोही को जम्भक विद्या (छल) द्वारा प्रलोभन में डालता हुआ कहे कि मैं गढ़ा हुआ अक्षय धन दिखाने, राजा को वशीभूत करने, स्त्रियों के हृदय को जीतने, शत्रु के देह में रोग उत्पन्न करने, आयु बढ़ाने और सन्तान उत्पन्न करने के उपायों को भले प्रकार जानता हूँ। यदि द्रोही को विश्वाश हो जाय तो उसे रात्रि काल में श्मशान के समीप में विद्यमान किसी यज्ञशाला में साथ ले जाकर उससे बहुत-सी मदिरा, मांस और गन्ध द्रव्य का उपहार अर्पित करावे। वहाँ पहिले से ही एक जाली रूप (सिक्का) भूमि में गाढ़ा हुआ हो। श्मशान में जहाँ किसी मृतक का कोई अवयव अथवा कोई मृत बालक पड़ा हो, वहां वह गढ़ा हुआ रूप दिखाता हुआ कहे—यह धन स्वल्प है (क्योंकि तुम्हारा उपहार भी स्वल्प था), यदि प्रभूत धन चाहते हो तो उपहार भी वृहद् होना चाहिए। अब तुम इस रूप से कल के लिए प्रभूत उपहार सामग्री क्रय कर लाना, दूसरे दिन जब वह द्रोही उस रुपए को लेकर उपहार द्रव्य क्रय करने जाय तभी उसे जाली सिक्का चलाने के अपराध में पकड़वा कर राजा उसका सर्वस्व छीन ले।

मातृव्यंजनया वा 'पुत्रो मे त्वया हतः' इत्यवरूपितः स्यात् । संसिद्धमेवास्य रात्रियागे वनयागे वनक्रीडायां वा प्रवृत्तायां तीक्ष्णा विशस्याभित्यक्तमतिनयेयुः । दूष्यस्य वा भृतकव्यंजनो वेतनहिरण्ये कूटरूपं प्रक्षिप्य प्ररूपयेत् । कर्मकारव्यंजनो वा गृहे कर्म कुर्वाणः स्तेनकुटरूपकारकोपकरणमुपनिदध्यात् । चिकित्सकव्यंजनो वा गरमगरापदेशेन । प्रत्यासन्नो वा दूष्यस्य सत्रो प्रणिहितमभिषेकभाण्डममित्रशासनं च । कापटिकमुखेन आचक्षीत, कारणं च ब्रूयात् । एवं दूष्येष्वधार्मिकेषु च वर्तेत । तेतरेषु ।

पक्वं पक्वमिवारामात्फलं राज्यादवाप्नुयात् ।
अत्मच्छेदभयादामम् वर्जयेत्कोपकारकम् ।।

अथवा मातृ वेश वाली कोई गुप्तचरी किसी राजद्रोही से कहे कि मेरे पुत्र का वध तुमने ही किया है । ऐसा आरोप लगाती हुई वह गुप्तचरी उस मृत पुत्र को दिखलावे । फिर उस द्रोही के यहाँ रात्रिकालीन यज्ञ, वन से यज्ञ या वन में क्रीड़ा आरम्भ हो, तभी तीक्ष्ण गुप्तचर पहिले से मरने के लिए प्रस्तुत किसी मनुष्य को उन्हीं स्थानों में से कहीं मार कर उसका शव वहीं जा रखे । तब उस द्रोही पर यह अपराध लगा कर राजा उसका सब धनादि छीन ले । अथवा कोई गुप्तचर किसी द्रोही व्यक्ति का भृत्य बनकर उसके पास रहने लगे और मास के समाप्त होने पर वेतन का धन प्राप्त करके उसमें एक जाली रूप मिलावे और राजा को दिखादे । तब राजा इस अपराध में उसका सर्वस्व हरण कर ले । अथवा कर्मकार वेशधारी गुप्तचर किसी राजद्रोही के गृह में कार्य करते समय जाली सिक्का ढालने वाले उपकरण रख कर पकड़वा दे, तब राजा उसका सब कुछ ले ले । अथवा चिकित्सक वेशधारी गुप्तचर राजद्रोही के यहां जाकर विष नाशक औषधि के स्थान पर कोई भयानक विष रख कर राजा से सर्वस्व छीनने का दण्ड दिलवाये । अथवा सत्रि गुप्तचर किसी द्रोही का सम्बन्धी बनकर

उसके घर में रखा अभिषेक पात्र और कापटिक गुप्तचर शत्रु राजा का लिखा हुआ पत्र निकाल लावे और राजा को लाकर दिखाता हुआ कहे कि यह राजद्रोही राजवध करके शत्रु को राज्य पर अभिषिक्त करने के प्रयत्न में लगा था। तब राजा उसका सर्वस्व छीन ले। इस प्रकार राजकोश की वृद्धि के लिए इन उपायों का प्रयोग दूषित व्यक्तियों पर ही किया जाय, अन्यों पर नहीं। जैसे उद्यान से परिपक्व फलों को ही तोड़ा जाता है, वैसे ही राजा दुष्ट व्यक्तियों को ही पकड़ कर उनसे धन एकत्र करे। जिस प्रकार उद्यान से कच्चे फल नहीं तोड़े जाते, उसी प्रकार राजा भी अपने नष्ट होने की आशंका में वैसे कच्चे फलों को न तोड़े जो कि प्रजा के कोप के कारण बन जाँय।

तृतीयोऽध्यायः

भृत्यों का भरण-पोषण

दुर्गजनपदशक्त्या भृत्यकर्म समुदयपादेन स्थापयेत्। कार्यसाधनसहेन वा भृत्यलाभेन शरीरमवेक्षेत, न धर्माधर्मौ पीडयेत्। ऋत्विगाचार्यमन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजराजमातृराजमहिष्योऽष्टचत्वारिंशत्साहस्राः। एतावता भरणे नानास्वाद्यत्वमकोपकं चैषां भवति। दौवारिकान्तर्वंशिकप्रशास्तृसमाहर्तृसन्निधातारश्चतुर्विंशतिसाहस्राः। एतावता कर्मण्या भवन्ति।

दुर्ग और जनपद से होने वाली आय का चतुर्थांश राजकीय सेवकों पर व्यय करे। यदि अधिक व्यय करने पर अधिक योग्य व्यक्ति मिल सकते हों तो चतुर्थांश से अधिक व्यय भी किया जा सकता है। किन्तु राजा को सदा अपने आय रूपी अंग पर सतर्कता रखनी चाहिए। देव, पितर, दुर्ग, सेतु आदि के कार्यों मे कभी कृपणता न करे। ऋत्विक्, आचार्य, मन्त्री, पुरोहित, सेनापति युवराज, राजमाता और महारानी— इनमें से प्रत्येक को अढ़तालीस हजार पण वार्षिक वेतन या भत्ता स्वरूप दे। इसी में उनके सब प्रकार के आमोद-प्रमोद, भरण-पोषण,

सुख-सुविधा आदि के सम्पूर्ण व्यय सम्मिलित होंगे, इससे वे कभी क्षुब्ध नहीं होंगे। प्रमुख द्वारपाल, अन्तःपुर का प्रमुख रक्षक, प्रशासनिक न्यायाधीश, समाहर्ता और सन्निधाता में से प्रत्येक को चौबीस हजार पण वार्षिक वेतन दिया जाय, जिससे कि वे कर्मशील बने रहें।

कुमारकुमारमातृनायकाः पौरव्यावहारिककार्मान्तिकमंत्रिपरिषद्राष्ट्रपालाश्च द्वादशसाहस्राः। स्वामिपरिबन्धबलसहाया ह्येतावता भवन्ति। श्रेणीमुख्या हस्त्यश्वरथमुख्याः प्रदेष्टारश्च अष्टसाहस्राः। स्ववर्गानुकर्षिणो ह्येतवता भवन्ति। पत्त्यश्वरथहस्त्यध्यक्षा द्रव्यवनहस्तिपालाश्चतुः साहस्राः। रथिकानीकचिकित्सकाश्वदमकवर्धकयो योनिपोषकाश्च द्विसाहस्राः।

कुमार (अन्य राजकुमार), कुमारमाता (अन्य रानियाँ), नायक, पौरव्यवहारिक, कार्मान्तिक, मन्त्रिपरिषद का अध्यक्ष, राष्ट्रपाल और अन्तपाल में से प्रत्येक को बारह हजार पण तथा शिल्पी प्रमुख, हस्तिप्रमुख, अश्व प्रमुख, रथ प्रमुख और प्रदेष्टा में से हरेक को आठ हजार पण वार्षिक दिया जाय। क्योंकि इतने वेतन से यह अपना कार्य भले प्रकार चलाते हुए अपने सहयोगियों को कार्यों में लगाये रहेंगे। पदाति सेनाध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष, रथाध्यक्ष, हस्त्याध्यक्ष, द्रव्यवनपाल और हस्तिवनपाल में से प्रत्येक को चार सहस्र पण तथा रथशिक्षक, अनीक, चिकित्सक, अश्वशिक्षक, वर्धकी तथा योनिपोषक में से प्रत्येक को दो सहस्रपण वार्षिक वेतन दिया।

कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकसूतमागधाः पुरोहितपुरुषाः सर्वाध्यक्षाश्च साहस्राः। शिल्पवन्तः पादाताः संख्यायकलेखकादिवर्गाः पञ्चशताः। कुशीलवास्त्वर्धतृतीयशताः। द्विगुणवेतनाश्चैषां तूर्यकराः। कारुशिल्पनो विंशतिशतिकाः। चतुष्पदद्विपदपरिचारकपारिकर्मिकोपस्थायिकपालकविष्टिबन्धकाः षष्ठिवेतनाः। आर्ययुक्तारोहकमाणवकशैलखनकाः सर्वोपस्थायिन

आचार्या विद्यावन्तश्च पूजावेतनानि यथार्हं लभेरन् पंचशतावरं सहस्रपरम् ।

कार्तान्तिक (हस्तरेखा विशेषज्ञ), शकुन विशेषज्ञ, मौहूर्तिक, पौराणिक, सूत, मागध, पुरोहितों के सेवक, एवं सब विभागों के अध्यक्ष को एक-एक हजार पण, शिल्पी, पदाति सैनिक, गणक, एवं लेखक आदि को पाँच सौ पण, नट-नर्तकादि को साढ़े तीन सौ पण और प्रमुख वादक को सात सौ पण वार्षिक वेतन रूप में दे। कारीगरों को एक सौ बीस पण, चौपायों के सेवक, मनुष्यों के भृत्य, शृंगारकार्य वाले सेवक, औपस्थायिक, पालक (चौकीदार) और विष्टिबन्धक (श्रमिकों को एकत्र करने वाले) में से प्रत्येक को साठ पण वार्षिक वेतन दे। आर्य, युक्तारोहक (बिगड़ने वाले अश्वादि के सवार), माणवक (वेदपाठी विद्यार्थी), शैलखनक (पर्वत खोदने वाले), सर्वोपस्थायी (सब के काम में आने वाले), आचार्य, विद्याओं के ज्ञाता आदि को निश्चित वेतन के अतिरिक्त पूजन-सत्कार एवं पुरस्कार आदि के रूप में और धन भी दिया। इनका वेतन पांच सौ से एक हजार पण वार्षिक होगा।

दशपणिकोयोजने दूतोमध्यमः। दशोत्तरे द्विगुणवेतनआयोजनशतादिति। समानविद्येभ्यस्त्रिगुणवेतनो राजा राजसूयादिक्रतुषु राज्ञः सारथिःसहस्रः। कापटिकोदास्थितगृहपतिकवैदेहकतापसव्यंजनाः साहस्राःग्रामभृतकसत्रितीक्ष्णरसदभिक्षुक्यःपंचशताः।चारसंचारिणोऽर्धतृतीयशताः प्रयासवृद्धवेमना वा। शतवर्गसहस्रवर्गाणामध्यक्षाभक्तवेतनलाभमादेशं विक्षेप च कुर्युः। अविक्षेपे राजपरिग्रहदुर्गराष्ट्ररक्षणावेक्षणेषु च नित्यमुख्याः स्युरनेकमुख्याश्च।

एक योजन चलने वाले मध्यम श्रेणी के दूत को दस पण वार्षिक और दस योजन से सौ योजन तक चलने वाले उत्तम श्रेणी के दूत को उससे दूना वेतन मिलेगा। राजसूय आदि यज्ञों में आहूत समान विद्या वाले विज्ञों को सामान्य से तिगुना वेतन दिया जाय। राजसूय यज्ञ में रथ चलाने वाले सारथी, कापटिक, उदास्थित, गृहपति वेशधारी, वैदेहक

एवं तापस वेशधारी गुप्तचरों को एक हजार पण वार्षिक वेतन दे। ग्रामभृतक, सत्री, तीक्ष्ण, रसद और भिक्षुकी संज्ञक गुप्तचर पाँच सौ पण और उनके सहायक ढाई सौ पण वार्षिक प्राप्त करेंगे। अधिक योग्यता होने पर वेतन भी अधिक ले सकते हैं। उक्त राजसेवकों के सौ और सहस्र के यूथ पर नियुक्त अध्यक्ष उन्हें भत्ता-वेतन देने, राजाज्ञा प्रसारित करने और समुचित कार्य पर लगाने की व्यवस्था करें। सेवकों के जिस यूथ का कार्य असन्तोषजनक हो तो वे अध्यक्ष उन सेवकों का वहाँ से स्थानान्तरण कर राजा के अन्तः पुर, दुर्ग या राष्ट्र की रक्षा अथवा देख-भाल के कार्य पर लगा दे। उक्त सेवक अध्यक्ष के आश्रित रहेंगे और वे अध्यक्ष भी यथागणना अनेक रहेंगे।

कर्मसु मृतानां पुत्रदारा भक्तवेतनं लभेरन्। बालवृद्धव्याधिताश्चैषामनुग्राह्याः। प्रेतव्याधितसूतिककृत्येषु चैषामर्थमानकर्म कुर्यात्। अल्पकोशः कुप्यपशुक्षेत्राणि दद्यात्। अल्पं च हिरण्यम्। शून्यं वा निवेशयितुमभ्युत्थितो हिरण्यमेव दद्यात् न ग्रामं, ग्रामसंजातव्ययवहारस्थापनार्थम्। एतेन भृतानामभृतानां च विद्याकर्मभ्यां भक्तवेतनविशेषं च दद्यात्। षष्टिवेतन स्याढकं कृत्वा हिरण्यानुरूपं भक्तं कुर्यात्।

राज-कार्य करता हुआ जो कर्मचारी मृत्यु को प्राप्त हो जाय, उसके पुत्र या पत्नी आदि उसे मिलने वाला वेतन-भत्ता प्राप्त करते रहेंगे। उस मृतक के पोषण योग्य बालक, वृद्ध और रोगी पुरुषों पर राजा का विशेष अनुग्रह रहना उचित है। उसके आश्रितों का मृतक-संस्कार, चिकित्सा तथा प्रसव आदि कार्यों में सहायता दे। अल्प वित्त वाला राजा सहायता के योग्य पुरुषों को कुप्य, पशु एवं खेत आदि के प्रदान द्वारा सहायक बने, नकद कम दे। यदि शून्य प्रदेश को बसाना चाहे तो जो वहाँ बसना चाहें उन्हें नकद देना ही उचित है, क्योंकि ग्राम आदि देने से कोई लाभ नहीं हो सकता। इस प्रकार स्थायी अस्थायी कर्मचारियों को उनकी विद्या, निपुणता, अनुभव आदि के आधार पर वेतन या भत्ता

कम अथवा अधिक भी दिया जा सकता है। प्रति साठ पण वेतन पर एक आढक भत्ता के रूप में देना चाहिये। इस प्रकार कर्मचारियों को नकद वेतन-भत्ता दिया जाय।

पत्त्यश्वरथद्विपाः सूर्योदये बहिः सन्धिदिवसवर्जं शिल्पयोग्याः कुर्युः। तेषु राजा नित्ययुक्तः स्यात्। अभीक्ष्णं चैषां शिल्पदर्शनं कुर्यात्। कृतनरेन्द्राङ्कं शस्त्रावरणमायुधागारंप्रवेशयेत्। अशस्त्राश्चरेयुरन्यत्र मुद्रानुज्ञातात्। नष्टं विनष्टं द्विगुणंदद्यात्।विध्वस्तगणनां च कुर्यात्। सार्थिकानां शस्त्रावरणमन्तपाला गृह्णीयुः, समुद्रमवचारयेर्वा। यात्राभ्युत्थितो वा सेनामुद्योजयेत्। ततो वैदहकव्यजनाःसर्वपण्यवान्यायुधीयेभ्यो यत्राकाले द्विगणप्रत्यादेयानिदद्युः। एवं राजपण्यविक्रयो वेतनप्रत्यादानं च भवति। एवमवेक्षितायत्ययः कोशदण्डः व्यसनं नावाप्नोति। इति भक्तवेतनविकल्पः।

सत्रिणश्चायुधीयानां वेश्याः कारुकशीलवाः।
दण्डवृद्धाश्च जानीयुः शौचाशौचमतन्द्रिताः॥

अमावस आदि सन्धि दिवसों के अतिरिक्त शेष सब दिवसों में नित्य सूर्योदय काल में शस्त्राभ्यास तथा पदाति सेना, अश्व, रथ एवं हाथी युक्त सेना को भी युद्ध का अभ्यास कराता रहे। राजा उक्त चतुरंगिणी सेना के प्रति सजग रहता हुआ उनके कार्यों का नित्यप्रति निरीक्षण करे। निरीक्षण के पश्चात् सभी शस्त्रास्त्र एवं कवच आदि को राजमुद्रा से अंकित करके शस्त्रागार में रखा दे। शस्त्राध्यक्ष की अनुमति के बिना सब सैनिकों को निःशस्त्र रखा जाय। जो सैनिक अपने शस्त्र एवं कवच आदि को खो दे या नष्ट करदे तो उससे उनका द्विगुणित मूल्य वसूल करे। अपने शस्त्रागार में पड़े हुए टूटे एवं बेकार शस्त्रों की गिनती भी राजा यदाकदा करता रहे। संघबद्ध व्यापारी, जो विदेश से आये हों, उनके शस्त्रास्त्र अन्तपाल अपने पास रखवा ले। किन्तु शस्त्र रखने विषयक राजाज्ञा दिखाने पर उन्हें शस्त्र ले जाने से न रोका जाय। युद्धयात्रा के लिए उद्यत राजा अपनी सेना को इकट्ठी करे और व्यापारी

वेश वाले गुप्तचर युद्ध के सब उपकरण उन निःशस्त्र सैनिकों को युद्ध के पश्चात् दुगुने दाम लेने के वचन पर उधार बेच दें। इस प्रकार राजकीय व्यापार के केन्द्र में रखी हुई वस्तुयें बिक भी जाँयगी और सैनिकों को दिये गये वेतन धन का प्रचुर भाग मूल्य रूप में लौट कर राजकोश में जमा हो जायगा। आय-व्यय पर सतर्क दृष्टि रखता हुआ राजा कोश और दण्ड की विपत्ति से बचे। यह वेतन-भत्ते का विकल्प हुआ। सत्रि संज्ञक गुप्तचर वेश्या, कारू, कुशीलव और पुराने सैनिक पूर्ण सतर्कता से सशस्त्र सैनिकों के शुद्ध-अशुद्ध आचरण का निरीक्षण करते रहें।

चतुर्थोऽध्यायः

अधिकारियों का राजा के प्रति व्यवहार

लोकयात्राविद्राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिसम्पन्नं प्रियहितद्वारेणाश्रयेत। यं वा मन्येत—यथाहमाश्रयेप्सुरेवमसौ विनयेप्सुराभिगामिकगुणयुक्त इति द्रव्यप्रकृतिहीनमप्येनमाश्रयेत। न त्वेवानात्मसम्पन्नम्। अनात्मवान् हि नीतिशास्त्रद्वेषादनर्थ्यसंयोगाद्वा प्राप्यापि महदैश्वर्यं न भवति। आत्मवति लब्धावकाशः शास्त्रानुयोगं दद्यात्। अविसंवादाद्धि स्थानस्थैर्यमवाप्नोति। मतिकर्मसु पृष्टः तदात्वे च आयत्यां च धर्मार्थसंयुक्तं समर्थं प्रवीणवदपरिषद्भीरुः कथयेत्। ईप्सितः पणेत—धर्मार्थानुयोगमविशिष्टेषु बलवत्संयुक्तेषु दण्डधारणं मत्संयोगे तदात्वे च दण्डधारणमिति न कुर्याः। पक्षं वृत्तिं गुह्यं च मे नोपहन्याः। संज्ञया च त्वां कामक्रोधदण्डनेषु वारयेयमिति।

लौकिक व्यवहार में निपुण अमात्यादि अनुजीवी से युक्त तथा आत्मगुण एवं द्रव्य गुण से सम्पन्न राजा का, राजा के प्रिय और हितैषी व्यक्तियों के द्वारा आश्रय प्राप्त करें। यदि राजा वैसा न हो तो जैसे मैं श्रेष्ठ आश्रय चाहता हूँ, वैसे ही यह भी विद्वान् एवं चतुर व्यक्ति को चाहता है, ऐसा समझ कर अमात्यहीन राजा का ही आश्रय ले ले।

किन्तु आत्मगुण से हीन राजा यदि अमात्यादि से सम्पन्न हो तो भी उसका आश्रय न ले। क्योंकि आत्मगुण-हीन राजा नीति-निपुण न होने या अनर्थ करने वाले आखेट, द्यूत, सुरापान करने यह दुष्ट पुरुषों के साथ रहने के कारण पिता-पितामह के पराम्परा से प्राप्त ऐश्वर्य को भी खो बैठता है। आत्मगुण युक्त राजा के मिलते ही लौकिक व्यवहार में निपुण अनुजीवी उसे शास्त्रानुकूल परामर्श देता रहे। क्योंकि उसके परामर्श का शास्त्रों से मिलान होने से राजा उसे नीति-शास्त्र के तत्वों का ज्ञाता समझ कर किसी अधिकार युक्त पद पर नियुक्त कर सकता है। अत्यंत विचारणीय विषय उपस्थिय होने पर यदि उससे भी कुछ पूछा जाय तो उस समय या भविष्य में जब आवश्यक हो तब धर्म और अर्थ सगत विचार निर्भय होकर प्रस्तुत करे। यदि राजा उसे अमात्य आदि के पद पर नियुक्त करना चाहे तो उससे इस प्रकार तय करे किआप किसी धर्म अर्थ के तत्व को न जानने वाले एवं विशिष्टताहीन पुरुष से वैसा प्रश्न न करेंगे, बलवान् शत्रु या बली सहायकों वाले शत्रु से मिले हुये व्यक्तियों पर दंड का प्रयोग न करेंगे तथा मुझ पर भी सहसा किसी प्रकार का दण्ड प्रयोग न किया जायगा। मेरे पक्ष, मेरे व्यवहार एवं गोपनीय रहस्य का कभी भेदन न करेंगे। जब आपके काम क्रोध जनित अनुचित दण्ड-प्रयोग को मैं संकेत से रोकूं तब आप मेरे अनुरोध को अवश्य स्वीकार करेंगे।

आयुक्तप्रदिष्टायां भूमौ अनुगातः प्रविशेत् । उपविशेच्च पार्श्वतः सन्निकृष्टविप्रकृष्टः। वरासन विगृह्यकथनमसभ्यमप्रत्यक्षमश्रद्धेयमनृतं च वाक्यमुच्चैरनर्मणि हासं वातष्ठीवने च शब्दवती न कुर्यात्। मिथः कथनमन्येन, जनवादे द्वन्द्वकथन, राज्ञो वेषमुद्धतकुहकानां च, रत्नातिशयप्रकाशाभ्यर्थनम्, एकाक्ष्योष्ठनिर्भोगं, भ्रुकुटीकर्म, वाक्यावक्षेपणं च ब्रुवति। बलवत्संयुक्तविरोधं स्त्रीभिः स्त्रीदर्शिभिः सामन्तदूतैर्द्वेष्यपक्षावक्षिप्तानर्थ्यैश्च प्रतिसंसर्गमेकार्णचर्यां संघातं च वर्जयेत्।

राजा का अनुजीवी आयुक्तों के लिए निश्चित स्थान पर राजाज्ञा प्राप्त करके ही जाय और न राजा के अधिक समीप और न अधिक दूर ही बैठे। श्रेष्ठ स्थान की प्राप्ति के लिए किसी प्रकार का विवाद या असभ्य कथन न करे। अप्रत्यक्ष की, अविश्वस्त या असत्य घटनाओं को न कहे। उच्च स्वर में हँसना, अपान वायु का अधिक शब्द न रके छोड़ना और थकना उचित नहीं माना जाता। राजा के समीप बैठकर दूसरों से बातें न करे। जनवाद अर्थात् अफवाहों को न कहे या उन पर तर्क न करे। राजा जैसा या मायावियों जसा वेश न बनावे। किसी रत्नादि के लिए राजा से अधिक अनुरोध न करे। एक नेत्र और ओष्ठ टेढ़ा करके भ्रकुटी चला कर न बोले। राजा के बोलते समय मौन रहे। बलवान शत्रु के पक्ष वालों से विरोध उत्पन्न न करे। स्त्रियों के साथ, स्त्रियों को देखने वालों के साथ, अन्य राजाओं के दूतों के साथ, राजद्रोहियों, उदासीनों, राजा से तिरस्कृत व्यक्तियों अथवा अनर्थकारियों के साथ कभी मित्रता न रखे। एकार्थचर्या अर्थात् एक बात पर अड़ना या दलबन्दी करना भी वर्जित है।

अहीनकालं राजार्थं प्रियहितैः सह।
परार्थं देशकाले च ब्रूयाद्धर्मार्थसंहितम्॥१
पृष्टः प्रियहितं ब्रूयान्न ब्रूयादहितं प्रियम्।
अप्रियं वा हितं ब्रूयाच्छृण्वतोऽनुमतो मिथः॥२
तूष्णीं वा प्रतिवाक्ये स्याद्द्वेष्यादींश्च न वर्णयेत्।
अप्रिया अपि दक्षाः स्युस्तद्भावाद्ये बहिष्कृताः॥३
अनर्थ्याश्च प्रिया दृष्टश्चित्तज्ञानानुवर्तिना।
अभिहास्येष्वभिहसेद्घोरहासांश्च वर्जयेत्॥४
परात्संक्रामयेद्घोरं न च घोरं स्वयं वदेत्।
तितिक्षेतात्मनश्चैव क्षमावान् पृथिवीसमः॥५
आत्मरक्षा हि सततं पूर्वं कार्या विजानता।
अग्नाविव हि संप्रोक्ता वृत्ती राजोपजीविनाम्॥६

एकदेशं दहेदग्निः शरीरं वा परंगतः ।
सपुत्रदारं राजा तु घातयेद्वर्धयेत वा ॥७

अनुजीविगण राजा के लिए प्रयोजनीय बात बताने में विलम्ब न करें। यदि अपनी कोई बात कहना चाहे तो सीधे राजा से न कह कर उसके प्रिय और हितैषियों द्वारा देश-काल के अनुसार धर्म और अर्थ-संगत बात ही आवश्यक प्रतीत होने पर कहलावें। राजा द्वारा किसी बात के पूछे जाने और उत्तर की उत्कंठा करने पर राजा की अनुमति लेकर एकान्त में प्रिय और हितकर बात ही कहे। अहितकर बात प्रिय हो तो भी न कहे और अहितकर तथा अप्रिय बात तो किसी भी दशा में न कहे। यदि उत्तर देने में भय प्रतीत हो तो मौन ही रहे और राजा के सामने उसके शत्रुओं की चर्चा भी न करे। क्योंकि उससे राजा का चित्त फिर सकता है और तब अत्यंत निपुण व्यक्ति भी अप्रिय बन जाते हैं। दूसरे से सुना भयप्रद समाचार राजा को न सुनावे तथा स्वयं भी कोई वैसी बात न कहे। यदि अपने विषय में कोई भयप्रद विषय उपस्थित हो जाय तो उसे पृथिवी के समान क्षमाशील बन कर सहन करले। अनुजीवीगण सब कार्यों को जानते हुए आत्मरक्षा में सतर्क रहें, क्योंकि राजाश्रय वाले व्यक्तियों की वृत्ति अग्नि से क्रीड़ा करने वालों जैसी ही भयंकर होती है। अग्नि किसी एक अंग को अथवा अधिक प्रबल होने पर सर्वांग को दग्ध करने में समर्थ है, किन्तु राजा की क्रोधाग्नि स्त्री-पुत्र सहित सम्पूर्ण परिवार को ही भस्म कर सकती है। किन्तु राजा की अनुकूलता परिवार की श्रीवृद्धि करने में भी समर्थ है।१-७।

पञ्चमोऽध्यायः

समयानुकूल आचरण

नियुक्तः कर्मसु व्ययविशुद्धमुदयं दर्शयेत्। आभ्यन्तरं बाह्यं गुह्यं प्रकाश्यमात्ययिकमुपेक्षितव्यं वा कार्यम्। इदमेवम्' इति विशेषयेच्च। मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीषु प्रसक्तं चानुवर्तेत प्रशंसाभिः।

आसन्नश्चास्य व्यसनोपघाते प्रयतेत। परोपजापातिसन्धानोपधिभ्यश्च रक्षेत्। इङ्गिताकारौ चास्य लक्षयेत्। कामद्वेषहर्षदैन्यव्यवसायभयद्वन्द्वविपर्यासमिङ्गिताकाराभ्यां हि मंत्रसंवरणार्थमाचरन्ति प्राज्ञाः।

कार्य में नियुक्त समाहर्ता आदि राजपुरुष व्यय को पृथक् दिखा कर विशुद्ध आय का लेखा राजा के समक्ष प्रस्तुत करें। भीतरी और बाहरी विषय, गुह्य, प्रकाश्य, आत्ययिक (तुरंत करने योग्य) और उपेक्षितव्य कार्य का भी पूर्ण विवरण यह-यह इस-इस प्रकार से है—ऐसे इंगित सहित राजा के समक्ष उपस्थित करना चाहिए। मृगया, द्यूत, मद्य अथवा स्त्रियों में आसक्त हुए राजा की प्रशंसा करते हुए ही उसके साथ रह कर उसमें व्यसनों से विमुख करने का प्रयत्न करते रहें। समय-समय पर शत्रु द्वारा भेद नीति, षड्यन्त्र और छल के प्रयोग होने पर राजपुरुषगण राजा की रक्षा में भी सतर्क रहें। वे राजा के इंगित आदि पर भी दृष्टि रखें, क्योंकि राजा के विभिन्न इंगितों अर्थात् भाव-भंगिमाओं से ही उसके राग, द्वेश, हर्ष, दैन्य, व्यवसाय, भय एवं द्वन्द्व विपर्यय आदि का आभास मिल सकता है। इसलिए राजा के इंगित के अनुकूल ही अनुजीवी राजा से कुछ निवेदन करे।

दर्शने प्रसीदति। वाक्यं प्रतिगृह्णाति। आसनं ददाति। विविक्ते दर्शयते। शंकास्थाने नातिशंकते। कथायां रमते। परिज्ञाप्येष्वपेक्षते। पथ्यमुक्तं सहते। स्मयमानो नियुंक्ते। हस्तेन स्पृशति। श्लाघ्ये नोपहसति। परोक्षे गुणं ब्रवीति। भक्ष्येषु स्मरति। सह विहारं याति। व्यसनेऽभ्यवपद्यते। तद्भक्तीः पूजयति। गुह्यमाचष्टे। मानं वर्धयति। अर्थं करोति। अनर्थं हन्ति। इति तुष्टज्ञानम्।

उन चिन्हों को देख कर ही राजा की प्रसन्नता का अनुमान लग सकता है। यथा—किसी को देखते ही प्रसन्न होजाना, किसी के वचनों को आदर पूर्वक सुनना, किसी को आसन देना, किसी से एकान्त में

मिलना, किसी से आशंका होने पर शंकित न होना, किसी से बात करते समय सुख का अनुभव करना, अपने से असंबंधित बातों को भी सुनने की उत्सुकता प्रकट करना, किसी कठोर बात को भी सहन करते हुए सुनना, प्रफुल्लित मुख से कार्य करने को कहना, किसी को स्पर्श करना या किसी का अच्छा कार्य देख कर हँसना, परोक्ष में किसी की प्रशंसा करना, भोजन के समय किसी को बुलाना, किसी के साथ घूमने जाना, किसी विपत्ति में पूर्ण रूप से सहायक होना, अपने से प्रेम रखने वालों का सत्कार करना, किसी को उच्चपद प्रदान द्वारा सन्तुष्ट करना, किसी की कामना पूरी करना और किसी पर आये हुए संकट को दूर करना। यह राजा की प्रसन्नता के लक्षण हैं।

एतदेव विपरीतमतुष्टस्य। भूयश्च वक्ष्यामः—सन्दर्शने कोपः, वाक्यस्याश्रवणप्रतिषेधौ, आसनचक्षुषोरदानं, वर्णस्वरभेदः, एकाक्षिभ्रुकुटचोष्ठनिर्भोगः, स्वेदश्वासस्मितानामस्थानोत्पत्तिः, परिमंत्रणम्, अकस्माद्व्रजनम्, वर्धनमन्यस्य, भूमिगात्रविलेखनम्, अन्यस्योपतोदनम्, विद्यावर्णदेशकुत्सा, समदोषनिन्दा, प्रतिदोषनिन्दा, प्रतिलोमस्तवः, सुकृतानवेक्षणम्, दुष्कृतानुकीर्तनम्, पृष्ठावधानम्, अतित्यागः, मिथ्याभिभाषणम्, राजदर्शिनां च तद्वृत्तान्यत्वम्।

राजा की अप्रसन्नता उपर्युक्त के विपरीत लक्षणों से प्रकट होती है। उन लक्षणों को कहते हैं—किसी को देखते ही क्रोधित होजाना, किसी की बात न सुनना, किसी की ओर न देखना, किसी के कुछ कहते ही उसे बोलने से रोक देना, बैठने को आसन न देना, उससे आँखें फेर लेना, देखते ही मुख के वर्ण और कंठ स्वर में परिवर्तन होजाना, एक आंख से देखना, भौंहें तनना और ओष्ठ टेढ़े होजाना, पसीना आ जाना, श्वास लेना, अट्टहास करना, बड़बड़ाना, किसी अन्य से बात करने लगना, सहसा उठ कर चल देना, आये हुए से न मिल कर अन्य का आदर करना, भूमि पर अथवा अपने देह पर रेखाएँ-सी बनाने

लगना, भर्त्सना करना, किसी की विद्या, वर्ण और देश की निन्दा करना. उसके उचित कार्यों को बुरे कहना, उसमें दोष निकालना, उसके द्वेषियों की प्रशंसा करना, उसके श्रेष्ठ कार्यों को भी तुच्छ समझना, उसके दोषों को वारंवार कहना, जाते समय उसकी पीठ देखना, कार्य-वश निकट आने पर लौटा देना, मिथ्या एवं भाव शून्य बातें करना तथा अन्य राजपुरुषों की अपेक्षा उससे विपरीत व्यवहार करना।

वृत्तिविकारं चावेक्षेताप्यमानुषाणाम्। अयमुच्चैः सिंचतीति कात्यायनः प्रवव्राज।

अनुजीवीगण अमानुष अर्थात् पशु-पक्षी आदि के भी वृत्ति-विकार को ध्यान पूर्वक देखें। यह जल छिड़कने वाला आज ऊपर को जड़ छिड़कता है, यह देख कर पौण्ड्र देश के राजा सोमदत्त का मन्त्री कात्यायन राजा को त्याग कर चला गया। इसका आख्यान कहते हैं—उक्त राजा ने अपने पुत्र के किसी अपराध पर उसे कारावास देने की इच्छा से उक्त मन्त्री से मन्त्रणा की। उधर राजकुमार के समर्थकों ने राजा की आकृति देख कर ही समझ लिया कि यह राजकुमार का अनिष्ट सोच रहा है, इसलिए उन्होंने उसे भगा दिया। इससे राजा ने यह समझ कर कि मन्त्री ने ही भेद प्रकट कर दिया है, मन्त्री को मारने की आज्ञा दे दी। वह आज्ञा किसी जल छिड़कने वाले ने सुन ली तो वह मन्त्री के सामने ही ऊपर की ओर जल छिड़कने लगा। यह देख कर मंत्री ने सोचा कि यह कल तक तो बहुत सँभल कर छिड़काव करता था, किन्तु आज बड़ी लापरवाही से पानी छिड़क रहा है कि उसे मेरे ऊपर जल के छींटे पड़ने की भी चिन्ता नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि इसने राजा के मुझसे रुष्ट होने की कोई बात अवश्य सुनी है तभी इसका व्यवहार विकृत हो गया है। ऐसा विचार करके मन्त्री तुरन्त ही राज सभा से चला गया और उसने सन्यास ले लिया,

क्रौंचोऽपसव्यम् इति कणिङ्को भारद्वाजः।

क्रौंच पक्षी का बाँयी ओर से निकलना देख कर कणिक भारद्वाज नामक मन्त्री अपने राजा को छोड़ कर चला गया। उसका इतिहास यह है—एक क्रौंच पक्षी नित्य प्रति कणिक की दाँयी ओर से उड़ कर जाता था। एक दिन उसका राजा परन्तप जब अपने अन्तःपुर में था, तभी उक्त मंत्री वहाँ पहुँच गया। यह देख कर राजा ने रुष्ट होकर उसकी पीछे से निन्दा की। उन निन्दा वचनों को सुन कर वह पक्षी उसकी बाँयी ओर से उड़ कर गया, जिससे कणिक राजा का कुपित होना समझ कर वहाँ से चला गया।

तृणामिति दोर्घश्चारायणः।

मगधराज का चारायण गोत्रीय दीर्घ नामक मंत्री तिनकों से ढँके हुए अन्न को देख कर पलायन कर गया। उसका इतिहास कहते हैं—आचार्य दीर्घ मगधनरेश के परम स्नेही मित्र थे। उनकी पत्नी भी उनका बड़ा सम्मान करती थी। मगधराज अपने बालक पुत्र को छोड़ कर परलोक वासी हो गए। वह बालक राजा जब वयस्क हुआ तब उसने अपनी माता को आचार्य दीर्घ की सेवा करते हुए देखा तो उससे पूछने लगा कि उसके द्वारा आचार्य की सेवा किये जाने का क्या कारण है ? माता ने उत्तर दिया—स्वर्गीय महाराज उनका बड़ा सम्मान करते थे, इसीलिये मैं तभी से उनका सम्मान करती रही हूँ। तुमको भी ऐसा ही करना उचित है। फिर दिन राजा द्वारा तिनकों से ढँका हुआ अन्न मिलने पर अपना तिस्कार हुआ समझ कर आचार्य दीर्घ वहाँ से चले गये।

शीता शाटीतित घोटमुखः।

धोती शीतल प्रतीत हो रही है—यह सुनकर अवन्ति-नरेश अंशुमान का मंत्री घोटमुख उसे छोड़ कर चला गया। घोटमुख राजपुत्र को नीति शास्त्र का अध्ययन कराता था। एक बार राजा घोटमुख से रुष्ट हो गया। तब राजपुत्र ने संकेत द्वारा घोटमुख को उसकी सूचना दी।

नित्य प्रति वह राजपुत्र स्नान करने के पश्चात् चलते समय धोती निचोड़ कर कन्धे पर रख लेता था। किन्तु उस दिन धोती को कन्धे पर न रख कर 'धोती शीतल प्रतीत हो रही है' कहता हुआ चला आया। यह देख कर घोटमुख ने राजा का कुपित होना जान लिया और राज्य को त्याग कर चला गया।

हस्ती प्रत्यौक्षीदिति किंजल्कः।

बंगाल नरेश शतानन्द के अनुजीवी आचार्य किंजल्क द्वारा हाथी को अपने ऊपर छींटे फेंकता हुआ देखा तो वह तुरंत राज छोड़ कर चला गया। आचार्य किंजल्क नित्य-प्रति जब राजा की सभा में जाते, तब राजा की सवारी वाले हाथी को स्नेह पूर्वक स्पर्श किया करते थे। एक दिन राजा ने उस हाथी पर सवारी करते हुये ही किंजल्क के विरुद्ध परामर्श किया। हाथी ने वह बात समझ ली और आचार्य के आते ही वह अपनी सूँड से उन पर जल उछालने लगा। इससे किंजल्क ने राजा के कुपित होने की बात समझ कर तुरन्त राज्य से प्रस्थान कर दिया।

रथाश्वं प्राशंसीदिति पिशुनः।

उज्जयिनी नरेश प्रद्योत का पुत्र अपने रथ के घोड़ों को शीघ्रगामी बता कर उनकी प्रशंसा करने लगा। यह सुन कर उस राजपुत्र के अध्यापक आचार्य पिशुन राज्य को त्याग कर चले गये। उस विषय में इतिहास है कि राजा ने अपने पुत्र के अध्यापनार्थ पिशुन की नियुक्ति की थी। अध्यापन कार्य की समाप्ति पर राजा अपने पुत्र से आचार्य का धन छीन लेने विषयक परामर्श करने लगा। किन्तु राजपुत्र वैसा होने देना नहीं चाहता था। इसलिये वह आचार्य के सामने अपने रथ में जुते हुये अश्वों की एक दिन में तीन सौ योजन चलने की शक्ति बताते हुये प्रशंसा की। इससे आचार्य पिशुन राजा का मनोभाव ताड़ कर तुरंत चले गये।

प्रतिरवणे शुनः पिशुनपुत्रः इति।

श्वान की ध्वनि सुनते ही पिशुन का पुत्र राज्य को छोड़ कर चला गया। उसका उपाख्यान यह है कि आचार्य पिशुन का पुत्र अल्प आयु में ही महोत्कृट राजनीतिज्ञ हो गया। उज्जयिनी नरेश उसकी विद्वता से अत्यन्त प्रभावित हो गया, किन्तु उसके अल्पवयस्क होने के कारण मन्त्रिपद में अयोग्य समझ कर उसे राज-परिवार में रखने की मंत्रणा करने लगा, जिसे सुन कर एक श्वान पिशुनपुत्र के समीप पहुंच कर भोंकने लगा। इससे वह राजा का मनोभाव जान कर वहाँ से चला गया।

अर्थमानावक्षेपे च परित्यागः। स्वामिशीलमात्मनश्च किल्बिषमुपलभ्य वा प्रतिकुर्वीत। मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छेत्।

तत्रस्थो दोषनिर्घातं मित्रैर्भर्तरि चाचरेत्।

ततो भर्तरि जीवेद्वा मृते वा पुनराव्रजेत्॥

अनुजीविकों के धन मान को नष्ट करने वाले राजा को छोड़ कर अनुजीवीगण चले जाते हैं। या राजा के शील और अपने दोष को देख कर वे उसे न छोड़ते हुए भी उसके रोष का प्रतीकार करते हैं। अथवा राजा की प्रसन्नता के लिए ही वे उसके पास से हट कर उसके किसी मित्र राजा का आश्रय ले लेते हैं। दोषी अनुजीवी किसी अन्य राजा के पास रहते हुए ही राजा के मित्रों द्वारा अपने अपराध को क्षमा करायें। फिर चाहें तो जिसके आश्रय में रह रहे हैं, वहीं रहें अथवा पूर्व राजा की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारी राजा का आश्रय प्राप्त करलें।

षष्ठोऽध्यायः

राज्य का प्रतिसन्धान एवं सकैश्वर्य

राजव्यसनमेवममात्यः प्रतिकुर्वीत। प्रागेव मरणाबाधभयाद्राज्ञः प्रियहितोपग्रहेण मासद्विमासान्तरं दर्शनं स्थापयेत्। देशपीडापहममित्रापहमायुष्यं पुत्रीयं वा कर्म राजा साधयति। इत्य-

पदेशेन राजव्यंजनमनुरूपवेलायां प्रकृतीनां दर्शयेत् । मित्रामित्र-दूतानां च । तैश्च यथोचितां सम्भाषाममात्यमुखो गच्छेत् । दौवारिकान्तर्वंशिकमुखश्च यथोक्तं राजप्रणिधिमनुवर्तयेत् । अपकारिषु हेडं प्रसादं वा प्रकृतिकान्तं दर्शयेत् । प्रसादमेवोपकारिषु ।

राजा पर आये हुए संकट का प्रतीकार अमात्य इस प्रकार करे कि यदि किसी शत्रु राजा द्वारा अपने राजा के प्रति किये जाने वाले किसी षडयन्त्र का पता लगे तो राजा के प्रिय और हितैषीजनों से परामर्श करके उन्हें प्रति दो मास में राजा से मिलाने का अवसर देता रहे । उधर जन-साधारण में यह प्रचारित करे कि इस समय महाराजा देश पर आने वाली विपत्ति और शत्रु आदि के विनाशार्थ तथा आयु एवं सन्तान वर्धनार्थ एक महान् यज्ञ को करने में लगे हैं । इसीलिए प्रजा को उनके दर्शन नहीं हो रहे हैं । अथवा दर्शन आवश्यक होने पर उस समय राजा के समान आकार आदि वाले किसी अन्य पुरुष को राजवेश में विराजमान करा कर दर्शन करा दे ! उस अवसर पर कोई मित्र अथवा शत्रु का दूत आ जाय तो उसे भी उसी नकली राजा से मिला दे और अपने या अन्यान्य मंत्रियों के माध्यम से बातें भी करा दे । राजा के पूर्व घोषित कार्यों के विषय में द्वारपाल और अन्तःपुर के अध्यक्ष द्वारा कहलाया जाय । अपकार करने वालों पर क्रोध और उपकार करने वालों पर अनुग्रह प्रदर्शन अमात्यों की सम्मति से ही किया जाय । जो लोग राजा के विश्वस्त उपकारी हों उनके प्रति सदैव प्रसन्नता ही प्रकट करनी चाहिए ।

आप्तपुरुषाधिष्ठितौ दुर्गप्रत्यन्तस्थौ वा कोशदण्डावेकस्थौ कारयेत् । कुल्यकुमारमुख्यांश्चान्यापदेशेन । यश्च मुख्यः पक्षवान् दुर्गाटवीस्थो वा वैगुण्यं भजेत् तमुपग्राहयेत् । बह्वाबाधां वा यात्रां प्रेषयेन्मित्रकुलं वा । यस्माच्च सामन्तादाबाधं पश्येत्, तमुत्सवविवाहहस्तिबन्धनाश्वपण्यभूमिप्रदानापदेशेन अवग्राहयेत् । स्वमित्रेण

वा। ततः सन्धिमदूष्यं कारयेत्। आटविकामित्रैर्वा वैरं ग्राहयेत्। तत्कुलीनमवरुद्धं वा भूम्येकदेशेनोपग्राहयेत्।

दुर्ग और सीमाप्रान्त में संचित कोष तथा सेना को किसी अत्यन्त विश्वासी पुरुष के नियंत्रण में किसी एक स्थान पर एकत्र करे। वहीं किसी बहाने से राजवंश के प्रमुख राजकुमारों एवं अन्यान्य मुख्य पुरुषों को भी बुला ले। कोई प्रमुख अधिकारी यदि राजा का विरोधी बन गया हो तो उसे किसी उपाय से वशीभूत करे। यदि वह वश में न हो तो उसे किसी शत्रु देश पर आक्रमण करने अथवा अपने किसी मित्र राजा की सहायता करने के बहाने भेज कर अपने देश से हटा दे। जिस किसी सामन्त के विद्रोही होने की आशंका प्रतीत हो उसे किसी उत्सव, विवाह, हस्ति-बन्धन या अश्व एवं अन्यान्य वस्तुएँ देने के बहाने राजधानी में बुला कर नजरबंद कर दे अथवा अपने किसी मित्र के द्वारा वश में करे। तत्पश्चात् उससे अटूट और निर्दोष सन्धि करे। यदि इस पर भी वह वश में न आ सके तो किसी वनवासी शत्रु के साथ उसकी शत्रुता करा कर उसके साथ उलझा दे या उसी के किसी बान्धव को भूमि-प्रदान द्वारा फोड़ ले और उसी के द्वारा उसे पकड़वा ले।

कुल्यकुमारमुख्योपग्रहं कृत्वा वा कुमारमभिषिक्तमेव दर्शयेत्। दाण्डकर्मिवद्वा राज्यकण्टकानुद्धृत्य राज्यं कारयेत्। यदि वा कश्चिन्मुख्यः सामन्तादीनामन्यतमः कोपं भजेत्, तम् 'एहि राजानं त्वां करिष्यामि' इत्यावाहयित्वा घातयेत्। आपत्प्रतीकारेण वा साधयेत्। युवराजे वा क्रमेण राज्यभारमारोप्य राजव्यसनं ख्यापयेत्। परभूमौ राजव्यसने मित्रेणामित्रव्यंजनेन शत्रोः सन्धिमवस्थाप्यापगच्छेत्। सामन्तादीनामन्यतमं वाऽस्य दुर्गे स्थापयित्वाऽपगच्छेत्। कुमारमभिषिच्य वा प्रतिव्यूहेत। परेणाभियुक्तो वा यथोक्तमापत्प्रतीकारं कुर्यात्। एवमेकैश्वर्यममात्यः कारयेदिति कौटिल्यः।

यदि राजा की मृत्यु हो जाय तो मंत्री प्रमुख राजकुमार को प्रभावित करके युवराज के पद पर अभिषिक्त करे और उसे आगे करके प्रजा को दर्शन करा दे। अथवा दण्डकर्मिक प्रकरण में कहे अनुसार राज्य के कंटकों को हटाकर उसके राज्य को निष्कटक बना दे। यह मंत्री के अपने राज्य में किये जाने वाले कर्तव्य हुए, अब परराष्ट्र के विषय में मंत्री के कर्तव्यों पर प्रकाश डालते हैं। यदि सामन्त राजा उक्त राज्याभिषेक से असहमत होने के कारण कुपित हुआ प्रतीत हो तो मंत्री उससे कहलावे कि यह बालक राज्य के योग्य नहीं है, आप यहाँ आवें तो आपको ही राजा बना दिया जाय। इस बात पर विश्वास करके जब वह राजधानी में आवे तब उसे मरवा डाले अथवा आपत्प्रतीकार प्रकरण में आगे बतायी जाने वाली विधि से वश में करले। अथवा राजा का औरस पुत्र हो तो, राजा के मरते ही उसे राजा बनाकर पूर्व राजा के मरने की घोषणा करे। यदि राजा की मृत्यु शत्रुदेश में हुई हो तो बनावटी शत्रु बने हुए मित्र के साथ उस शत्रु की सधि कराकर चला आवे अथवा वहाँ किसी सामन्त आदि के नियन्त्रण में सेना आदि को छोड़ कर लौट आवे। या युवराज का अभिषेक करने के पश्चात् युद्ध की तैयारी करे। इसी मध्य यदि कोई शत्रु अपने राज्य पर चढ़ाई कर दे तो भविष्यत्कर्म अधिकरण में बताये जाने वाले उपायों से प्रतीकार करे। इस प्रकार मन्त्री राज्य का एकैश्वर्य अर्थात् एक छत्र राज्य स्थापित रखता हुआ प्रजापालन कराता रहै—यह कौटिल्य का मत है।

नैवमिति भारद्वाजः। प्रम्रियमाणे वा राजन्यमात्यः कुल्यकुमारमुख्यान् परस्परं मुख्ये षुवा विक्रामयेत्। विक्रान्तं प्रकृतिकोपेन घातयेत्। कुल्यकुमारमुख्यानुपांशुदण्डेन वा साधयित्वा स्वयं राज्यं गृह्णीयात्। राज्यकारणाद्धि पिता पुत्रान् पुत्राश्च पितरमभिद्रुह्यन्ति, किमङ्ग पुनरमात्यप्रकृतिर्ह्येकग्रहो राज्यस्य। तत्स्वयमुपस्थितं नावमन्येत। स्वयमारूढा हि स्त्री त्यज्यमानाऽभिशपतीति लोकप्रवादः।

कालश्च सकृदभ्येति यं नरं कालकांक्षिणम् ।
दुर्लभः स पुनस्तस्य कालः कर्म चिकीर्षतः ॥१

किन्तु भारद्वाज इस मत को नहीं मानते । उनके अनुसार अमात्य को ऐसे एकछत्र राज्य की व्यवस्था कभी नहीं करनी चाहिए । राजा का मरण काल समीप देखकर मंत्री राजकुमारों को बलवान अधिकारियों या राज्य के प्रमुख व्यक्तियों के साथ लड़वा दे और फिर प्रजा को क्षुब्ध करके उसके द्वारा उन प्रमुख आदि में जो अधिक बलवान् प्रतीत हो उसे मरवा डाले । फिर राजकुमारों और प्रमुख अधिकारियों का भी गोपनीय रूप से वध करा कर राज्य को अपने अधिकार में करे । क्योंकि जब राज्य के लिए पिता पुत्र से और पुत्र पिता से विद्रोह करते देखे जाते हैं, तब अमात्य के विषय में तो कहना ही क्या है ? राज्य का नियामक होने के कारण उसे राज्य लेने में कठिनाई भी नहीं होती । इसलिये उसे राज्य प्राप्ति के विषय में उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । लोकोक्ति भी है कि रमणार्थ स्वयं समागता रमणी का जो पुरुष तिरस्कार करता है उसे वह शाप दे देती है । क्योंकि कार्य के लिए उपयुक्त काल की प्रतीक्षा वाले पुरुष को जीवन में एक ही अवसर मिलता है । किन्तु जो उस अवसर से लाभ नहीं उठाता, वह भारी प्रयत्न करके भी पुनः वैसा अवसर प्राप्त नहीं करता ।

प्रकृतिकोपकमधर्मिष्ठमनैकान्तिकं चैतदिति कौटिल्यः । राजपुत्रमात्मसम्पन्नं राज्ये स्थापयेत् । सम्पन्नाभावे व्यसनिनं कुमारं राजकन्यां गर्भिणीं देवीं वा पुरस्कृत्य महामात्रान् सन्निपात्य ब्रूयात्—'अयं वो निक्षेपः, पितरमस्यावेक्षध्वं सत्त्वाभिजनमात्मनश्च, ध्वमात्रोऽयं, भवन्त एव स्वामिनः, कथं वा क्रियतामिति' । तथा ब्रुवाणं योगपुरुषा ब्रूयुः—'कोऽन्यो भवत्पुरोगादस्माद्राज्ञश्चातुर्वर्ण्यमर्हति पालयितुमिति' । तथेत्यमात्यः कुमारं राजकन्यां गर्भिणीं देवीं वाऽधिकुर्वीत । बन्धुसम्बन्धिनां मित्रामित्रदूतानां च दर्शयेत् ।

आचार्य कौटिल्य के मत में यदि अमात्य के द्वारा राजवंश के सब कुमारों को लडा कर मरवा देने, राज्य पर स्वयं अधिकार कर लेने से दूसरे अमात्यों और प्रजाजनों में क्षोभ उत्पन्न हो जायगा और इस प्रकार से राज्य पर अधिकार कर लेना भी अधर्म ही होगा। फिर यह भी निश्चित नहीं है कि इस प्रकार से कार्य बन ही जायगा, इसलिये आत्मगुण सम्पन्न राजकुमार को ही राजा बनाना उचित होगा। यदि आत्मगुण सम्पन्न कोई राजकुमार न हो तो दुर्व्यसनी राजकुमार को, राजपुत्री को या गर्भवती रानी को और महाभावों को एक स्थान पर बुला कर वह प्रमुख अमात्य सब उपस्थित विशिष्ट जनों के समक्ष कहे-- यह आपकी धरोहर है, आप इसकी रक्षा करें। आप इसके पिता के पराक्रम और वंश की श्रेष्ठता पर ध्यान देते हुये अपने गुणों पर भी दृष्टिपात करें। यह राजकुमार तो राज्य की पताका के ही समान है, इसके वास्तविक स्वामी आप ही हैं। अब इस स्थिति में क्या किया जाय, यह आप ही निर्देश करें। तब उस अमात्य से वे सब विशिष्टजन कहें-- आपके नेतृत्व में चतुर्वर्ण वाली प्रजा के पालन करने योग्य इसके अतिरिक्त और कौन हो सकता है ? यह सुन कर वह मंत्री स्वीकारोक्ति दे—आप सबकी इच्छा है तो ऐसा ही होगा। इस प्रकार कह कर वह प्रमुख अमात्य उस राजकुमारी या गर्भवती रानी राज्यासन पर अभिषिक्त करके उसे ही सब बांधवों, सम्बन्धियों, मित्रों और शत्रु-दूतों को राजा के रूप में प्रदर्शित करे।

भक्तवेतनविशेषममात्यानामायुधीयानां च कारयेत्। भूयश्चायं वृद्धः करिष्यतीति ब्रूयात्। एवं दुर्गराष्ट्रमुख्यानाभाषेत, यथार्हं च मित्रामित्रपक्षम्। विनयकर्मणि च कुमारस्य प्रयतेत। कन्यायां समान जातीयादपत्यमुत्पाद्य वाऽभिषिचेत्। मातुश्चित्तक्षोभभयात्कुल्यमल्पसत्त्वं छात्रं लक्षण्यमुपनिदध्यात्। ऋतौ चैनां रक्षेत्। न चात्मार्थं कंचिदुत्कृष्टमुपभोगं कारयेत्। राजार्थं तु यानवाहनाभरणवस्त्रस्त्रीवेश्मपरिवापान् कारयेत्।

फिर वह प्रमुख अमात्य अन्यान्य अमात्यों और सशस्त्र योद्धाओं के भत्ता और वेतन में वृद्धि करता हुआ कहे—जब यह राजा समर्थ होगा तब आपके भत्ता-वेतन में और भी वृद्धि करेगा। फिर दुर्ग एवं राष्ट्र के अन्यान्य प्रमुखों को बुलाकर भी ऐसा ही कहे। मित्रों और शत्रुओं के साथ यथोचित व्यवहार करे। फिर राजकुमार के अध्ययन की व्यवस्था करे। यदि राज्यासन पर राजकुमारी आरूढ़ हुई हो तो उसका किसी सजातीय वर से विवाह कराके, उससे जो पुत्र उत्पन्न हो उसी को राज्यपद पर बैठा दे। राजमाता चित्त के क्षोभ को दूर करने के लिए उसके पास किसी श्रेष्ठ वंश से, अल्प वयस्क, सुलक्षण युक्त एवं वेदादि का अध्ययन करने वाले छात्र को देव-पूजन करने और पुराण सुनाने के लिये नियुक्त करे। ऋतुकाल में राजमाता की आचरण-रक्षा के विषय में विशेष रूप से सतर्क रहे। अपने उपभोगार्थ अमात्य कोई उत्कृष्ट साज-सज्जा न बनावे, किन्तु राजा के उपयोगार्थ यान, वाहन, वस्त्राभरण, स्त्री, भवन एवं शयन और आसनादि की समुचित व्यवस्था करे।

यौवनस्थं च याचेत विश्रमं चित्रकारणात्।
परित्यजेददुष्यन्तं तुष्यन्तं चानुपालयेत् ॥२
निवेद्य पुत्ररक्षार्थं गूढसारपरिग्रहान्।
अरण्यं दीर्घसत्रं वा सेवेतामुच्यतां गतः ॥३
मुख्यैरवगृहीतं वा राजानं तत्प्रियाश्रितः।
इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित् ॥४
सिद्धव्यंजनरूपो वा योगमास्थाय पार्थिवम्।
लभेत लब्ध्वा दूष्येषु दाण्डकर्मिकमाचरेत् ॥५

राजा के वयस्क होने पर उसका मनोभाव जानने के विचार से वह मुख्य अमात्य अपने को कार्यभार से मुक्त कर देने का निवेदन करे। यदि वह अप्रसन्न रहने के कारण मुक्त करदे तो उसे छोड़ कर चला जाय और प्रसन्न रहने के कारण मुक्त न करे तो उसे न छोड़े। यदि

मंत्री स्वेच्छा से कार्य-भार छोड़ना चाहे तो राजा को उसके पूर्वजों का गुप्त कोष बता कर वन में चला जाय अथवा किसी दीर्घकालीन यज्ञ का आयोजन करे। अथवा विद्वान अमात्य राजा के वयस्क होकर स्वतंत्र रूप से राजकार्य चलाने में समर्थ होने पर उसके प्रिय एवं हितैषियों के सामीप्य में उसे इतिहास-पुराणादि के मर्मों से अवगत करे। अथवा वह सिद्ध पुरुष का वेश बना कर कपट योग के चमत्कार-प्रदर्शन द्वारा राजा को अपने वशीभूत करके दाण्डिकर्मिक प्रकरणोक्त उपायों से उसके विरोधियों का प्रतीकार करे। २-५।

॥ योगवृत्त पञ्चम अधिकरण समाप्त ॥

———

मराह्लयोनि षष्ठ अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

प्रकृतियों के गुण

स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्राणि प्रकृतयः। तत्र स्वामिसम्पत्—महाकुलीनो दैवबुद्धिसत्त्वसम्पन्नो वृद्धदर्शी धार्मिकः सत्यवागविसंवादकः कृतज्ञः स्थूललक्षो महोत्साहोऽदीर्घसूत्रः शक्यसामन्तो दृढ़बुद्धिरक्षुद्रपरिषत्को विनयकाम इत्याभिगामिका गुणाः। शुश्रूषाश्रवणग्रहणधारणविज्ञानोहापोहत्त्वाभिनिवेशाः प्रज्ञागुणाः।

स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, सेना और मित्र—यह सातों राज्य की प्रकृति कहे गये हैं। इनमें सर्वप्रथम स्वामी अर्थात् राजा के गुणों का कथन करते हुए उसके आभिगामिक गुणों को बताते हैं—राजा उच्चकुल में उत्पन्न, दैव-गुण सम्पन्न, बुद्धिमान, सत्वसम्पन्न, वृद्धदर्शी, धर्मात्मा, सत्यभाषी, सत्यप्रतिज्ञ, कृतज्ञ, स्थूललक्ष (दानी) महोत्साह अदीर्घसूत्र (अविलम्ब कार्य करने वाला), शक्य सामन्त, दृढ़ बुद्धि, अक्षुद्रपरिषत्क (महान पुरुषों से युक्त) और विनय शील हो। अब उसके प्रज्ञागुणों को कहते हैं—शुश्रूसा, श्रवण, ग्रहण, धारण, विज्ञान, ऊह(तर्क), अपोह (निरर्थक का त्याग) और तत्वाभिनिवेश (यथार्थ का पक्ष ग्रहण)—राजा में इनका होना आवश्यक है।

शौर्यममर्षः शीघ्रता दाक्ष्यं चोत्साहगुणाः। वाग्मी प्रगल्भः स्मृतिमतिबलवानुदग्रःस्ववग्रहःकृतशिल्पो व्यसने दण्डनाय्युपकारापकारयोर्दृष्टप्रतिकारो ह्रीमानापत्प्रकृत्योर्विनियोक्ता दीर्घदूरदर्शी देशकालपुरुषकारकार्यप्रधानः सन्धिविक्रमत्यागसंयमपणपरच्छिद्र-

विभावी संवृतादीनाभिहास्यजिह्मभ्रुकुटीक्षणः कामक्रोधलोभस्तम्भचापलोपतापपैशुन्यहीनः शक्यः स्मितोदग्राभिभाषी वृद्धोपदेशाचार इत्यात्मसम्पत्। अमात्यसम्पदुक्ता पुरस्तात्।

राजा में शौर्य, अमर्ष, शीघ्रता और दाक्ष्य अर्थात् निपुणता—यह चार उत्साह गुण होने चाहिये। उसका वाग्मी, प्रगल्भ, स्मृतिमान, मतिमान, बलवान, उदग्र स्ववग्रह, कृतशिल्प, व्यसन (संकट) काल में प्रतीकार-समर्थ, उपकार या अपकार का बदला देने में निपुण, ह्रीमान, दुर्भिक्ष एवं सुभिक्ष में यथास्थिति अन्नादि के वितरण में चतुर, दीर्घकाल और दूरदर्शी, देश-काल और पुरुषार्थ के अनुसार कार्य करने में दक्ष, सन्धि, विक्रम, त्याग, संयम, पण एवं परिच्छद्र की स्थिति में उचित रूप से कार्य करने में समर्थ, संवृत, दीनजनों को अदीन अर्थात् सबल बनाने में समर्थ, वक्र भ्रकुटि से न देखने वाला, काम, क्रोध, लोभ, स्तम्भ, चापल्य, उपताप और पैशुन्य (चुगली) से रहित, प्रियवक्ता, हँसमुख, उदार बातें कहने वाला और वृद्धों के उपदेशों के अनुसार चलने वाला होना ही श्रेयस्कर है। यह राजा के आत्मसम्पत् अर्थात् अपने गुण हुये। अमात्य सम्पत् को पहिले कह ही चुके हैं।

मध्ये चान्ते च स्थानवानात्मधारणः परधारणश्चापदि स्वारक्षःस्वाजीव शत्रुद्वेषी शक्यसामन्तः पंकपाषाणोषरविषमकण्टकश्रेणीव्यालमृगाटवीहीनःकान्तः सीताखनिद्रव्यहस्तिवनवान् गव्यः पौरुषेयो गुप्तगोचरः पशुमान् अदेवमातृको वारिस्थलपथाभ्यामुपेतः सारचित्रबहुपण्यो दण्डकरसहः कर्मशीलकर्षकोऽबालिशस्वाम्यवरवर्णप्रायो भक्तशुचिमनुष्य इति जनपदसम्पत्। दुर्गसम्पदुक्ता पुरस्तात्।

अब जनपदसम्पत् को कहते हैं—जनपद के मध्य या अन्त में दुर्ग हो तो देश-विदेश के व्यक्तियों के भोजनादि का पूर्ण सामान वहाँ रहना चाहिये। संकट काल उपस्थिति होने पर वन या पर्वत में छिपने से भी जहाँ रक्षा हो सके और अल्प परिश्रम में ही अन्नादि उत्पन्न किया

जः सके। वहाँ शत्रुओं का दमन करने में समर्थ पुरुषों का निवास और सामन्तों को वश में रखने के पूरे साधन होने चाहिये। कीच या पाषाण युक्त अनुर्वर अथवा विषम स्थान तथा कण्टक, शत्रु, राजद्रोही, हिंसक जीव और सघन वन न हो और नदी तड़ाग आदि के कारण रमणीयता, कृषि-योग्य भूमि, खान, द्रव्यवन एवं हस्तिवन, गौ आदि के चरने के लिये तृण की अधिकता और मनुष्यों के लिये हितकर स्थान हो। उपयोगी पशुओं की अधिकता, नदी आदि की परिपूर्णता, जलमार्ग, स्थलमार्ग और मूल्यवान द्रव्यों की विद्यमानता हो। जहाँ के लोग दण्ड या कर देने में समर्थ हों तथा कृषकों में कर्मठता और स्वामियों में विवेक हो। जहाँ नीची जाति के मनुष्य अधिक रहते हों और सभी में राजा के प्रति भक्ति और सच्चरित्रता हो। यह जनपदसम्पत् कहा गया। दुर्गसम्पत् को पहिले ही कह चुके हैं।

धर्माधिगतः पूर्वैः स्वयं वा हेमरूप्यप्रायश्चित्रस्थूलरत्नहिरण्यो दीर्घामप्यापदमनायतिं सहेतेति कोशसम्पत्। पितृपैतामहो नित्यो वश्यस्तुष्टभृतपुत्रदारः प्रवासेष्वविसम्वादितः सर्वत्राप्रनिहतो दुःखसहो बहुयुद्धः सर्वयुद्धप्रहरणविद्याविशारदः सहवृद्धिक्षयिकत्वादद्वैध्यः क्षत्रप्राय इति दण्डसम्पत्। पितृपैतामहं नित्यं वश्यमद्वैध्यं महल्लघुसमुत्थमिति मित्रसम्पत्। अराजजीवी लुब्धः क्षुद्रपरिषत्को विरक्तप्रकृतिरन्यायवृत्तिरयुक्तो व्यसनी निरुत्साहो दैवप्रमाणो यत्किंचनकार्यगतिरननुबन्धः क्लीबो नित्यापकारी चेत्यमित्रसम्पत्। एवम्भूतो हि शत्रुः सुखः समुच्छेत्तुं भवति।

अब कोषसम्पत् कथन करते हैं—राजकोष पहिले राजाओं द्वारा या अपने द्वारा भी धर्म और न्याय संगत रूप से उपार्जित होना चाहिए। कोश में सदैव प्रचुर सोना-चाँदी, रत्न एवं नकद धन रहना आवश्यक है। दीर्घकाल तक रहने वाली दुर्भिक्ष आदि की विपत्ति तथा भविष्य में धनागम की अधिक आशा न हो और व्यय निरन्तर होता रहे, तब भी धन की कमी न व्यापे। अब दण्डसम्पत् के विषय में कहते

हैं—जिस दण्ड अर्थात् सेना के लोग पिता-पितामह के क्रम से रहते आये हों, वह स्थायी रहेगी। सेना सदैव राजा के आधीन रहे और राजा सेना के सभी व्यक्तियों के स्त्री-पुत्र आदि परिवारी जनों का भरण-पोषण करे। क्योंकि वैसा होने से सैनिकों को परिवार की चिन्ता न रहेगी और वे राजाज्ञा के पालन में सदा तत्पर रहेंगे। शत्रु पर आक्रमण करते समय भी आवश्यक भोजन-सामग्री एकत्र रहनी चाहिए, तभी सैनिकगण शत्रु का सामना करने में सन्नद्ध रहते हैं। उचित पोषण से सैनिकगण शस्त्रास्त्र प्रयोग में चतुर तथा युद्ध विद्या में कुशल होते हैं। वे वृद्धि और क्षय की चिन्ता न करते हुए राजा की सेवा में लगे रहते और शत्रु द्वारा बहुत प्रयत्न करने पर विश्वस्त बने रहते हैं। यथा संभव क्षत्रियों को ही सेना में भर्ती करे। यह दण्डसम्पत् हुए। अब मित्रसम्पत् कहते हैं—मित्र भी पिता-पितामह से क्रमागत हों। नित्य, श्रेष्ठ कुलजात, दुविधा-रहित, महान् एवं अवसर के अनुरूप उद्योग करने वाले हों। अब अमित्र अर्थात् शत्रुसम्पत् कहते हैं—शत्रु यदि राजकुलोत्पन्न न हो, लोभी, क्षुद्र पुरुषों के साथ रहने वाला, अमात्यादि जिससे अप्रसन्न रहते हों, शास्त्र विरुद्ध आचरण वाला, अयुक्त, उत्साहहीन, भाग्यवादी, बिना विचारे कार्य करने वाला, गति, आश्रय सहाय तथा धैर्य से रहित और अपने-पराये सभी का अपकार करने वाला शत्रु सुख-पूर्वक नष्ट किया जा सकता है।

अरिवर्जाः प्रकृतयः सप्तैताः स्वगुणोदयाः।
उक्ताः प्रत्यङ्गभूतास्ताः प्रकृता राजसम्पदः ॥१

सम्पादयत्यसम्पन्नाः प्रकृतीरात्मवान्नृपः।
विवृद्धाश्चानुरक्ताश्च प्रकृतीर्हन्त्यनात्मवान् ॥२

ततः स दुष्टप्रकृतिश्चातुरन्तोऽप्यनात्मवान्।
हन्यते वा प्रकृतिभिर्याति वा द्विषतां वशम् ॥३

आत्मवाँस्त्वल्पदेशोऽपि युक्तः प्रकृतिसम्पदा।
नयज्ञः पृथिवीं कृत्स्नां जयत्येव न हीयते ॥४

शत्रु के अतिरिक्त शेष सात प्रकृतियाँ अपने-अपने गुणों के सहित कह दी गईं। यह परस्पर में अंग-भूत होने के कारण एक दूसरी की पूरक और 'राजसम्पत्' कही जाती हैं। आत्मसम्पत् से सम्पन्न राजा गुण हीन प्रजा को भी गुणों से युक्त तथा आत्मसम्पत-रहित राजा गुण-सम्पन्न प्रकृतियों को भी नष्ट कर देता है। अतएव जिस गुणहीन राजा का प्रकृतिवर्ग भी दूषित हो तो चतुस्समुद्र पर्यन्त भूमि का भी शासक हो तो भी अपने अमात्यादि के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता अथवा शत्रु के वशीभूत होजाता है। इसके विपरीत आत्मसम्पत् और नीति से सम्पन्न राजा स्वल्प पृथिवी का शासक हो तो भी प्रकृतिसम्पत् से सम्पन्न होने के कारण पूरी पृथिवी को जीत लेता है और कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं होता ॥१-४॥

द्वितोयोऽध्यायः

शान्ति एवं उद्योग

शमव्यायामौ योगक्षेमयोर्योनिः। कर्मारम्भाणां योगाराधनो व्यायामः। कर्मफलोपभोगानां क्षेमाराधनः शमः। शमव्यायामयोर्योनिः षाड्गुण्यम्। क्षयस्थानं वृद्धिरित्युदयास्तस्य। मानुषं नयापनयौ दैवमयानयौ। दैवमानुषं हि कर्म लोकं मापयति। अदृष्टकारितं दैवम्। तस्मिन्निष्टेन फलेन योगोऽयः। अतिष्टेनानयः। दृष्टिकारितं मानुषम्। तस्मिन् योगक्षेमनिष्पत्तिर्नयः। विपत्तिरपनयः। तच्चिन्त्यम्। अचिन्त्यं दैवमिति।

शम और व्यायाम से क्षेम और योग की प्राप्ति होती है। प्रारम्भ किये हुए कर्म में जो तत्व सहायक हो, वह 'व्यायाम' और कर्म-फल के उपभोग विषयक क्षेम (निर्विघ्नता) का सहायक तत्व 'शम' कहा गया है। इस शम और व्यायाम की प्राप्ति छः गुणों (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव) से होती है। उन छः गुणों के भी क्षय, स्थान और वृद्धि के भेद से तीन फल (परिणाम) होते हैं और

इन फलों की प्राप्ति भी मानवकर्म या दैवकर्म से होती है। 'नयन' और 'अपनयन'—यह दो मानवकर्म हैं तथा 'अय' और 'अनय' देव-कर्म। यह दैव और मानव कर्म ही लोकयात्रा चलाते हैं। दैवकर्म की सृष्टि धर्म-अधर्म रूपी अदृष्ट के द्वारा कराये गये कर्मों के रूप में होती है। धर्मरूपी अदृष्ट द्वारा कराये गए कार्य से धन प्राप्ति आदि इच्छित होता है वह 'अय' कहा जाता है। षाड्गुण्यादि के प्रयोग रूपी इष्ट द्वारा कराये गये मानवकर्म से योग और क्षेम का सुयोग होजाने पर वह 'नय' कहलाता है। किन्तु उसी कर्म से योग-क्षेम में बाधा उपस्थित होने पर 'अपनयन' कहा जाता है। इस प्रकार योग-क्षेम में उपस्थित बाधा के प्रतीकारार्थ किया जाने वाला मानवकर्म ही विचारणीय है। क्योंकि दैवकर्म तो विचार में ही नहीं आ सकता।

राजा आत्मद्रव्यप्रकृतिसम्पन्नो नयस्याधिष्ठानं विजिगीषुः। तस्य समन्ततो मण्डलीभूता भूम्यन्तराअरिप्रकृति। तथैव भूम्येकान्तरामित्रप्रकृतिः। अरिसम्पद्युक्तः सामन्तः शत्रुः।व्यसनी यातव्यः। अनपाश्रयो दुर्बलाश्रयो वोच्छेदनीयः। विपर्यये पीडनीयः कर्शनीयो वा। इत्यरिविशेषाः। तस्मान्मित्रमरिमित्रं मित्रमित्रं अरिमित्रमित्रं चानन्तर्येण भूमीनां प्रसज्यते पुरस्तात् पश्चात्पार्ष्णिग्राह आक्रन्दः पार्ष्णिग्राहासार आक्रन्दासार इति। भूम्यनन्तरः प्रकृत्यमित्रः तुल्याभिजनः सहजः। विरुद्धो विरोधयिता वा कृत्रिमः। भूम्येकान्तरं प्रकृतिमित्रं मातृपितृसम्बन्धं सहजं धनजीवितहेतोराश्रितं कृत्रिममिति।

आत्मगुण एवं अमात्यादि पंचद्रव्य-प्रकृति गुण से युक्त एवं नय के आश्रय में रहने वाला राजा 'विजिगीषु' कहा जाता है। ऐसे राजा के राज्य की चारों ओर की पृथिवी में पड़ने वाले अन्य देशों के राजा 'अरिप्रकृति' तथा जिसकी पृथिवी के किसी ओर भी शत्रु राज्य न हों वह राजा 'मित्रप्रकृति' कहे जाते हैं। यदि कोई सामन्त राजा भी अरि-दोष से युक्त हो तो वह शत्रु ही माना जाता है। दुर्व्यसन से युक्त शत्रु

पर आक्रमश कर दे। दुर्ग और मित्र के आश्रय से रहित अथवा कमजोर आश्रय वाले शत्रु का भी उच्छेद करदे। किन्तु शत्रु सबल आश्रय वाला हो तो उसे किसी प्रकार के अपकार से पीड़ित करे अथवा उसके द्रव्य और बल को क्षति पहुंचाये। यातव्य, उच्छेदनीय, पीडनीय और कर्शनीय यह चार भेद शत्रुओं के कहे गये। विजिगीषु प्रकार के राजा के समक्ष वाले भूखण्ड पर अन्य राजा की बाधा न हो तो उन भू-खण्डों के राजाओं के नाम मित्र, अरिमित्र और मित्रमित्र और अरिमित्र-मित्र के रूप में पड़ेंगे। उस राजा को सर्वप्रथम इन्हीं से सामना करना होता है। इस प्रकार उसे पाँच प्रकार के राजाओं से कार्य पड़ता है। विजिगीषु के पीछे के राजा पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार और आक्रान्दासार के भेद से चार प्रकार के होते हैं। अपने राज्य से मिले हुए राज्य का राजा विजिगीषु का सहज शत्रु माना जाता है। अथवा अपने कुल में उत्पन्न दायभागी भी शत्रु होता है। स्वयं विरुद्ध होजाने अथवा किसी अन्य द्वारा विरोधी बनाये जाने पर जो शत्रुता मानने लगे उसे कृत्रिम शत्रु समझे। मिले हुए राज्य से आगे का राजा सहज मित्र होगा, जैसे कि मामा या फूफा पुत्र सहज मित्र होता है। धन अथवा जीविका के निमित्त जो आश्रय ले वह कृत्रिम मित्र है।

अरिविजगोष्वोर्भूम्यनन्तरः संहतासहतयारनुग्रहसमर्थो निग्रहे चासंहतयोमध्यमः। अरिविजिगोषुमध्यानां बहिः प्रकृतिभ्यो बल-वत्तरः संहतासंहतानामरिविजिगीषुमध्यमानामनुग्रहे समर्थो निग्रहे चासंहतानामुदासीनः। इति प्रकृतयः। विजिगीषुर्मित्रं मित्रमित्र वास्य प्रकृतयस्तिस्र.। ताः पचभिरमात्यजनपददुर्गकोशदण्डप्रकृ-तिभिरेकैकशः सयुक्ता मण्डलमष्टादशकं भवति। अनेन मण्डल-पृथक्त्वं व्याख्यातमरिमध्यमोदासीनानाम्। एवं चतुर्मण्डल-सक्षेपः। द्वादश राजप्रकृतयः,षष्टिर्द्रव्यप्रकतयः,सक्षेपेण द्विसप्ततिः।

शत्रु और विजिगीषु दोनों के राज्यों से मिले हुए राज्य का राजा उनके द्वारा सन्धि या अनुग्रह करने वाला और विग्रह में निग्रह करने

वाला होने से मध्यम कहा गया है। शत्रु, विजिगीषु और मध्यम राजाओं की प्रकृति (अमात्य आदि) बाहर ओर मध्यम से अधिक बलवान तथा उक्त तीनों के साथ संधि में अनुग्रह और विग्रह होने पर निग्रह में समर्थ राजा उदासीन कहा जाता है। इस प्रकार यह बारह राजप्रकृतियों के विषय में कहा गया है। विजिगीषु राजा, उसका मित्र और मित्र का मित्र—यह तीनों भी प्रकृति ही कहे जाते है। इन तीनों के छः अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दण्ड एवं प्रकृति सहित कुल अठारह का यह एक मण्डल हुआ। यह चारों मण्डलों का सक्षेप मे विवेचन हुआ। इस प्रकार बारह राजप्रकृति और साठ द्रव्यप्रकृति, सब मिला कर बहत्तर भेद हुए।

तासां यथास्वं सम्पदः। शक्तिः सिद्धिश्च। बलं शक्तिः। सुखं सिद्धिः। शक्तिस्त्रिविधा—ज्ञानबलं मंत्रशक्तिः, कोशदण्डबलं प्रभुशक्तिः, विक्रमबलमुत्साहशक्तिः। एव सिद्धिस्त्रिविधैव मन्त्रिशक्तिसाध्या मन्त्रसिद्धिः, प्रभुशक्तिसाध्या प्रभुसिद्धिः, उत्साहशक्तिसाध्यो उत्सहासिद्धिरिति। ताभिरभ्युच्छ्रितो ज्यायान् भवति। अपचितो हीनः। तुल्यशक्तिः समः। तस्माच्छक्तिं सिद्धिं च घटेतात्मन्यावेशयितुम्। साधारणो वा द्रव्यप्रकृतिष्वानन्तर्येण शौचवशेन वा दूष्यामित्राभ्यां वाऽपक्रष्टुं यतेत।

इनकी सम्पत्तियों का वर्णन पहिले हो चुका है। अब उनकी शक्ति और सिद्धि कहते हैं—शक्ति से बल और सिद्धि से सुख का बोध होता है। शक्ति तीन प्रकार की है—(१) मंत्रशक्ति अर्थात् ज्ञान-बल, (२) प्रभुशक्ति अर्थात् कोश और सेना का बल, (३) उत्साहशक्ति अर्थात् पराक्रम का बल। इसी प्रकार सिद्धियों के भी तीन प्रकार हैं—(१) मंत्रसिद्धि, जो कि मन्त्रशक्ति के द्वारा होती है, (२) प्रभुसिद्धि, जो कि प्रभुशक्ति से होती है, (३) उत्साहसिद्धि जो कि उत्साहशक्ति से उपलब्ध होती है। उपर्युक्त शक्तियों और सिद्धियों से सम्पन्न राजा ज्यायान् अर्थात् श्रेष्ठ और शक्तियों या सिद्धियों से रहित हो तो हीन

अर्थात् निकृष्ट माना जाता है। उन शक्तियों के समान रूप में होने पर राजा मध्यम कहा जाता है। इसलिए राजा अपनी शक्ति और सिद्धि की वृद्धि के सतत प्रयत्न करता रहे। सामान्य श्रेणी का जो राजा वैसा प्रयत्न न कर सके उसे अमात्यादि द्रव्य-प्रकृति में से क्रमपूर्वक शक्तियाँ व सिद्धियाँ बढ़ाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। अथवा दूष्य शत्रु के द्वारा सहज शत्रु की शक्तियों और सिद्धियों पर अधिकार करने का उद्योग करे।

यदि वा पश्येत्—'अमित्रो मे शक्तियुक्तो वाग्दण्डपारुष्यार्थदूषणैः प्रकृतीरुपहनिष्यति, सिद्धियुक्तो वा मृगयाद्यूतमद्यस्त्रीभिः प्रमादं गमिष्यति, स विरक्तप्रकृतिरुपक्षीणः प्रमत्तो वा साध्यो मे भविष्यति, विग्रहाभियुक्तो वा सर्वसन्दोहेनैकस्थो दुर्गस्थो वा स्थास्यति, स संहतसैन्यो मित्रदुर्गवियुक्तः साध्यो मे भविष्यति, बलवान् वा राजा परतःशत्रूमुच्छेत्तुकामस्तमुच्छिद्यमानमुच्छिन्द्यात्' इति। 'बलवता प्रार्थितस्य मे विहन्नकर्मारम्भस्य वा साहाय्यं दास्यति, मध्यमलिप्सायां च' इति। एवमादिषु कारणेष्वप्यमित्रस्यापि शक्ति सिद्धि चेच्छेद्।

नेमिमेकान्तरान् राज्ञः कृत्वा चानन्तरानरान्।
नाभिमात्मानमायच्छेन्नेता प्रकृतिमण्डले ॥१
मध्ये ह्युपहितः शत्रुर्नेतुर्मित्रस्य चोभयोः।
उच्छेद्यः। पीडनीयो वा बलवानपि जायते ॥२

विजियेच्छुक राजा यह देखे कि मेरा शत्रु सबल होने के कारण वाणी और दण्ड की कठोरता या अर्थहरण द्वारा अपने अमात्यादि को उदासीन कर देगा या सिद्धियुक्त होने के कारण मृगया, द्यूत, मद्य एवं स्त्रियों में लिप्त रह कर प्रमाद करेगा अथवा अमात्यादि को उदासीन या विरोधी बना कर स्वय दुर्बल और प्रमादी होने के कारण पराजित होकर मेरी आधीनता में आ जायगा। अथवा मेरे द्वारा आक्रमण होने पर भाग कर किसी दुर्ग आदि में जा छिपेगा अथवा सेना-

सम्पन्न होते हुए भी मित्र या दुर्ग के अभाव में मेरे वशीभूत हो जायगा। अथवा बली होने के कारण अन्य शत्रु को नष्ट करने के विचार से कलह करता हुआ उसी शत्रु को मारेगा अथवा किसी महा-बली राजा द्वारा युद्ध के लिए विवश किया जाने पर जब वह मुझे मध्यम राजा से सहायता लेने का इच्छुक देखेगा तब स्वयं को मध्यम राजा मान कर मेरी सहायता ही करेगा। इसलिए शत्रु राजा की भी शक्ति और सिद्धि की कामना की जानी चाहिए। प्रकृतिमंडल का नायक वह विजयेच्छुक राजा राजमण्डल रूपी रथ-चक्र में एक राज्य के पश्चात् स्थित मित्र राजाओं को नेमि, समीपस्थ राजाओं को अर और स्वयं को नाभि रूप समझे। इस प्रकार शत्रु और मित्र के मध्य में बैठा हुआ विजिगीषु राजा महाबली शत्रु को भी नष्ट या पीड़ित करने में सफल सिद्ध होता है ॥१-२॥

॥ मण्डलयोनि षष्ठ अधिकरण समाप्त ॥

षाड्गुण्य सप्तम अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

षाड्गुण्यसमुद्देश, क्षय, स्थान एवं वृद्धिनिश्चय

षाड्गुण्यस्य प्रकृतिमण्डलं योनिः। सन्धिविग्रहासनयानद्वैधीभावाः षाड्गुण्यमित्याचार्याः। द्वैगुण्यमिति वातव्याधिः, सन्धिविग्रहाभ्यां हि षाड्गुण्यं सम्पद्यत इति। षाड्गुण्यमेवैतदवस्थाभेदादिति कौटिल्यः। तत्र पणबन्धः सन्धिः, अपकारो विग्रहः, उपेक्षणमासनम्, अभ्युच्चयो यानं, परार्पणं संश्रयः, सन्धिविग्रहोपादानं द्वैधीभाव इति षड्गुणाः। परस्माद्धीयमानः सन्दधीत। अभ्युच्चीयमानो विगृह्णीयात्। न मां परो नाहं परमुपहन्तुं शक्त इत्यासीत। गुणातिशययुक्तो यायात्। शक्तिहीनः संश्रयेत। सहायसाध्ये कार्ये द्वैधीभावं गच्छेत्। इति गुणावस्थापनम्।

स्वामी आदि सात प्रकृति एवं बारह राजमण्डल ही छः गुणों की योनि अर्थात् मूल कारण हैं। अन्यान्य आचार्यों के मत में सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय और द्वैधीभाव ही षाड्गुण्य अर्थात् छः गुण हैं। किन्तु वातव्याधि (उद्धव) के मत में दो मुख्य गुण सन्धि और विग्रह ही हैं। क्योंकि इन दोनों से ही अन्य गुणों की सिद्धि स्वयं ही हो जाती है। आचार्य कौटिल्य के अनुसार सन्धि और विग्रह से शेष चारों गुणों में नितान्त भेद है, इसलिए गुणों की संख्या छः ही होती है। इनमें से दो राजाओं के मध्य पृथिवी, कोश, सेना आदि के देन-लेन के निश्चय के साथ मेल होना 'सन्धि' और शत्रु के प्रति किया जाने वाला द्रोह एवं अपकार 'विग्रह' है। उक्त सन्धि आदि की उपेक्षा को 'आसन' और देश-कालानुसार शत्रु पर किया गया आक्रमण 'यान' कहा जाता है।

अन्य बलवान राजा के समक्ष अपने पुत्र, स्त्री, धन, धान्य आदि के साथ आत्म-समर्पण करने को 'संश्रय' तथा सन्धि और विग्रह के एक साथ प्रयोग को 'द्वैधीभाव' कहते हैं। इस प्रकार यह छः गुण हुए। यदि स्वयं को शत्रु से निर्बल समझे तो उससे सन्धि कर लेनी चाहिए। स्वयं को शक्ति-सिद्धि आदि के द्वारा प्रबल समझे तभी युद्ध करे। मुझे कोई नहीं हरा सकता और मैं किसी को नहीं हरा सकता—ऐसी स्थिति हो तो 'आसन' अर्थात् उपेक्षा का आश्रय ले। अभियास्यत्कर्म अधिकरण में वर्णित शक्ति, देश, काल आदि गुणों की अपने में अधिकता अनुभव करे तो शत्रु पर 'यान' का प्रयोग करे। यदि अपने को दुर्बल समझे तो किसी प्रबल का आश्रय ग्रहण करे। यदि सहायता की आशा हो तो द्वैधीभाव से काम ले। इस प्रकार विषयभेद से छः गुणों का निरूपण करे।

तेषां यस्मिन् वा गुणे स्थितः पश्येत 'इहस्थः शक्ष्यामि दुर्ग-सेतुकर्मवणिक्पथशून्यनिवेशखनिद्रव्यहस्तिवनकर्माण्यात्मनः प्रवर्तयितुं परस्य चैतानि कर्माण्युपहन्तुम्' इति तमातिष्ठेत्, सा वृद्धिः। 'आशुतरा मे वृद्धिर्भूयस्तरा वृद्ध्युदयतरा वा भविष्यति विपरीता परस्य' इति ज्ञात्वा परवृद्धिमुपेक्षेत। तुल्यकालफलोदयायां वृद्धौ सन्धिमुपेयात्। यस्मिन् वा गुणे स्थितः स्वकर्मणामुपघातं पश्येन्नेतरस्य तस्मिन्न तिष्ठेत्। एष क्षयः। 'चिरतरेणाल्पतरं वृद्ध्युदयतरं वा क्षेष्ये, विपरीतं परः' इति ज्ञात्वा क्षयमुपेक्षेत। तुल्यकालफलोदये वा क्षये सन्धिमुपेयात्। यस्मिन् वा गुणे स्थितः स्वकर्मवृद्धिं क्षयं वा नाभिपश्येत्, एतत्स्थानम्।

उक्त छः गुणों में से जिस गुण का आश्रय लेना चाहे, उस समय विचार करे कि मैं इस गुण के आश्रय में अपना दुर्गसेतु कर्म, वणिक्पथ, शून्यनिवेश, खान, द्रव्यवन एवं हस्तिवन आदि के कार्यों के करने में समर्थ हो सकूंगा और शत्रु के इन सब कार्यों को नष्ट कर डालूंगा। इस प्रकार उसी गुण का आश्रय ले। इस प्रकार गुणों का आश्रय यदि

वृद्धि का हेतु हो तो वृद्धि कहा जाता है। मेरी वृद्धि शीघ्र और शत्रु की देर से या मेरी वृद्धि अधिक और शत्रु की न्यून होगी अथवा शत्रु की और मेरी दोनों की वृद्धि एक ही समय में होगी तो भी उसकी वृद्धि में ह्रास होगा और मेरा अभ्युदय। इस स्थिति को देखता हुआ राजा अपने शत्रु की बढ़ोत्तरी के प्रति उपेक्षा कर सकता है। यदि शत्रु की बढ़ोत्तरी भी अपने ही समान देखे तो उससे सन्धि कर ले। अथवा जिस गुण के आश्रय से अपने दुर्ग आदि कर्मों का क्षय और शत्रु के कर्मों का अक्षय होना प्रतीत हो, उस गुण का अवलम्बन कभी न ले। इस प्रकार के गुण के उपयोग को 'क्षय' कहते हैं। मेरा क्षय दीर्घकाल में हो सकेगा और शत्रु का शीघ्र हो जायगा, मेरा क्षय स्वल्प और शत्रु का अधिक होगा मेरा क्षय भी अभ्युदय प्रकट करेगा और शत्रु का क्षय उसकी अवनति करेगा। जब ऐसा निश्चय हो तब क्षय की उपेक्षा करे। यदि अपना और शत्रु का क्षय एक ही समय में समान रूप से हो तो उससे सन्धि कर ले। जिस गुण के अवलम्बन से वृद्धि या क्षय न हो, उसे 'स्थान' कहते हैं।

'ह्रस्वतरं वृद्ध्युदयतरं स्थास्यामि विपरीतं पर' इति ज्ञात्वा स्थानमुपेक्षेत। तुल्यकालफलोदये वा स्थाने सन्धिमुपेया-दित्याचार्याः। नैतद्विभाषतमिति कौटिल्यः। यदि वा पश्यत्—सन्धौ स्थितौ महाफलैः स्वकर्मभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि, महा-फलानि वा स्वकर्माण्युपभोक्ष्ये, परकर्माणि वा सन्धिविश्वासेन वा योगोपनिषत्प्रणिधिभिः परकर्माण्युपहनिष्यामि, सुख वा सानुग्रहपरिहारसौकर्यं फललाभभूयस्त्वेन स्वकर्मणा परकर्मयोगा-वहं जनमास्रावयिष्यामि, बलिनातिमात्रेण वा संहितः परः स्वकर्मोपघातं प्राप्स्यति, येन वा विगृहीतो मया सन्धत्ते, तेन अस्य विग्रहं दीर्घं करिष्यामि, मया वा संहितस्य मद्द्वेषिणो जन-पदं पीडयिष्यति, परोपहतो वाऽस्य जनपदो मामागमिष्यति ततः कर्मसु वृद्धिं प्राप्स्यामि, विपन्नकर्मारम्भो वा विषयस्थः परः कर्मसु

न मे विक्रमेत, परतः प्रवृत्तकर्मारम्भो वा ताभ्यां संहितः कर्मसु वृद्धिं प्राप्स्यामि, शत्रुप्रतिबद्धं वा शत्रुणा सन्धि विधाय मण्डलं भेत्स्यामि, भिन्नमवाप्स्यामि, दण्डानुग्रहेण वा शत्रुमुपगृह्य मण्डल-लिप्सायां विद्वेषं ग्राहयिष्यामि, विद्विष्टं तेनैव घातयिष्यामि' इति सन्धिना वृद्धिमातिष्ठेत् ।

अथवा 'स्थान' की स्थिति अल्प कालीन है, बाद में अभ्युदय होगा और शत्रु की यह स्थिति दीर्घकालीन तथा अवनीति करने वाली होगी—ऐसा देखे तो उसकी उपेक्षा करे। अन्य आचार्यों के मत में अपना और शत्रु का 'स्थान' समान रूप से और एक ही समय में हो तो सन्धि कर ले। किन्तु आचार्य कौटिल्य के अनुसार यह विचार साधारण कोटि के है। इसलिए विशेषता इसी में है कि यदि विजिगीषु राजा यह देखे कि सन्धि कर लेने पर मैं अपने दुर्गरचना आदि कार्यों से शत्रु के दुर्गरचना आदि कार्यों को नष्ट कर सकूंगा। अथवा इस सन्धि के अवलम्बन से अपने श्रेष्ठ फलों को प्राप्त कर लूंगा। अथवा शत्रु जो श्रेष्ठ कर्म करेगा उसका फल भी मुझे मिलेगा। अथवा मैं शत्रु को विश्वस्त करके उसके राज्य में गुप्तचरों का जाल बिछा कर उसके दुर्ग आदि महान कार्यों का ध्वंस कर डालूंगा। अथवा सन्धि द्वारा विश्वास उत्पन्न करके शत्रु के कुशल कर्मचारियों को बीजदान तथा करमुक्ति आदि के प्रलोभन और कार्यों के फल रूप में अधिक लाभ दिखा कर अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो जाऊंगा। या मुझ बलवान के साथ सन्धि करके मेरा शत्रु मुझे अधिकाधिक धन देता रह कर कुछ समय में ही दरिद्रता को प्राप्त होकर स्वयं ही नष्ट हो जायगा। अथवा जिस तीसरे राजा से विग्रह के कारण मेरे साथ सन्धि कर रहा है, उस विग्रह को मैं कभी समाप्त न होने दूंगा। या मुझसे सन्धि करके मेरा शत्रु मेरे अन्य शत्रु राजाओं के जनपदों को पीड़ा देगा अथवा पीड़ित हुए वे जनपद मेरे वश में पड़ जायंगे। जिससे कि मेरे कार्य अधिक विकसित हो सकेंगे। अथवा मेरा शत्रु कार्यारम्भ करते हुए

विपत्ति-ग्रस्त हो गया है इसलिए मुझ पर आक्रमण न करेगा। अथवा मेरा शत्रु मेरे दूसरे शत्रु की सहायता ले रहा है, इसलिए मैं इन दोनों से ही संधि कर लूं तो अपना अधिक विकास कर लूंगा। अथवा शत्रु से संधि करके उसके साथी राजाओं को भी अपनी ओर फोड़ लूंगा। अथवा सन्धि करके शत्रु राजा को अपनी सैनिक सहायता द्वारा वशीभूत करके, वह जिस राष्ट्रमण्डल में मिलने की इच्छा करता हो, उसके राजाओं में फूट डलवा कर उन्हीं के द्वारा उसे मरवा दूंगा। यदि ऐसा विश्वास हो तो सन्धि द्वारा अपनी वृद्धि करनी चाहिए।

यदि वा पश्येत्—'आयुधीयप्रायः श्रेणोप्रायो वा मे जनपदः शैलवननदीदुर्गैकद्वारारक्षो वा शक्ष्यति पराभियोगं प्रतिहन्तुमिति, विषयान्ते दुर्गमविपह्यमपाकृत्तो वा शक्ष्यामि परकर्माण्युपहन्तुमिति, व्यसनपीडोपहतोत्साहो वा परः संप्राप्तकर्मोपघातकाले इति, विगृहीतस्यान्यतो वा शक्ष्यामि जनपदमपवाहयितुमिति विग्रहे स्थितो वृद्धिमातिष्ठेत्। यदि वा मन्येत्—'न मे शक्तः परः कर्माण्युपहन्तुम्, नाहं तस्य कर्मोपघाती वा, व्यसनमस्य श्ववराहयोरिव कलहे वा स्वकर्मानुष्ठानपरो वा वर्धिष्ये' इत्यासनेन वृद्धिमातिष्ठेत्। यदि वा मन्येत—'यानसाध्यः कर्मोपघातः शत्रोः प्रतिविहितस्वकर्मारक्षश्चास्मि'। इति यानेन वृद्धिमातिष्ठेत्।

यदि विजयेच्छुक राजा यह देखे कि मेरे जनपद में शस्त्र से आजीविका कमाने वाले वीर पुरुष और कृषकों की संख्या अधिक है तथा पर्वत, वन, नदी और दुर्ग भी बहुत हैं, साथ ही राज्य से बाहर जाने-आने का एक ही मार्ग है। इसलिए मेरा राज्य अधिक सुरक्षित तथा शत्रु के आक्रमण को रोकने में पूर्णतया समर्थ है। अथवा मैं अपने सीमान्त पर स्थित दुर्गम दुर्ग के आश्रय में स्थित होकर शत्रु के दुर्ग आदि ध्वंस कर सकता हूं। अथवा मेरा शत्रु इस समय अनेक विपत्तियों में पड़ कर उत्साहहीन होगया है, इसलिए उसके कार्यों का विनाश करना सुगम

है। अथवा जब शत्रु युद्ध में लिप्त हो जायगा तब मैं उसके जनपद-वासियों को भड़का कर उसके विरुद्ध कर दूंगा। ऐसा विश्वास होने पर विग्रह किया जा सकता है। यदि यह समझे कि शत्रु मेरा कुछ नष्ट नहीं कर सकता और मैं भी उसकी कुछ हानि नहीं कर सकता। इस समय वह विपत्ति में भी पड़ा है। इसलिए समान बल वाले श्वान और शूकर के समान यदि हम दोनों में कलह भी होजाय तो मैं अपने कर्मों के आश्रय से अपनी वृद्धि ही कर लूंगा। ऐसा विश्वास हो तो 'आसन' के अवलम्बन द्वारा अपनी वृद्धि करे। यह सोचे कि शत्रु के दुर्ग एवं जनपद आदि का नाश यान (आक्रमण) से ही संभव है और मैंने अपने दुर्ग और जनपद को सुरक्षित बना लिया है तो ऐसा विश्वास होने पर 'यान' द्वारा अपनी वृद्धि करनी चाहिए।

यदि वा मन्येत—'नास्मि शक्तः परकर्माण्युपहन्तुं स्वकर्मोप-घातं वा त्रातुम्' इति,बलवन्तमाश्रितः स्वकर्मानुष्ठानेन क्षयात्स्थानं स्थानाद्वृद्धिं चाकांक्षेत। यदि वा मन्येत—'सन्धिनैकतः स्वकार्याणि प्रवर्तयिष्यामि, विग्रहेणैकतः परकर्माण्युपहनिष्यमि' इति द्वैधी-भावेन वृद्धिमातिष्ठेत्।

एवं षड्भिर्गुणैरेतैः स्थितः प्रकृतिमण्डले।
पर्येषेत क्षयात्स्थानं स्थानाद्वृद्धिं च कर्मसु॥

अथवा यह समझे कि शत्रु के दुर्ग आदि को न तो मैं नष्ट कर सकता हूँ और न शत्रु द्वारा नष्ट किये जाने से अपने दुर्ग आदि को ही बचा सकता हूं. तो उस स्थिति में बलवान राजा का आश्रय ले ले और फिर अपने परिश्रम द्वारा स्थान को क्षय से बचाता हुआ वृद्धि करे। यदि यह समझे कि शत्रु से संधि करके अपने दुर्ग आदि कार्यों को करता रहूंगा और दूसरे से विग्रह करके उसके कार्यों को नष्ट कर सकूंगा तो उसे 'द्वैधीभाव' के आश्रय से अपनी वृद्धि करनी चाहिए। इस प्रकार अपने प्रकृतिमंडल में स्थित विजयेच्छुक राजा षड्गुण-प्रयोग द्वारा कर्म विषयक क्षय से स्थान की और स्थान से वृद्धि की कामना करे।

द्वितीयोऽध्याय

संश्रयःवृत्ति

सन्धिविग्रहयोस्तुल्यायां वृद्धौ सन्धिमुपेयात् । विग्रहे क्षयव्यय-प्रवासप्रत्यावाया भवन्ति । तेनासनयानयोरासनं व्याख्यातम् । द्वैधीभावसंश्रययोर्द्वैधीभावं गच्छेत् । द्वैधीभूतो हि स्वमर्मप्रधान आत्मन एवोपकरोति । संश्रितस्तु परस्योपकरोति, नात्मनः । यद्बलः सामन्तः तद्विशिष्टबलाभावे तमेवाश्रितः कोशदण्डभूमीना-मन्यतमेनास्योपकर्तुमदृष्टः प्रयतेत । महादोषो हि विशिष्टबल-समागमो राज्ञामन्यत्रारिविगृहीतात् । अशक्ये दण्डोपनतवद्वर्तेत । यदा चास्य प्राणहरं व्याधिमन्तःकोपं शत्रुवृद्धिं मित्रव्यसनमुपस्थितं वा तन्निमित्तमात्मनश्च वृद्धिं पश्येत्, तदा सम्भाव्यव्याधिधर्म-कार्यापदेशेनापयायात् । स्वविषयस्थो वा नोपगच्छेत् । आसन्नो वास्य छिद्रेषु प्रहरेत् ।

विजिगीषु राजा सन्धि और विग्रह दोनों से ही लाभ होता हुआ देखे तो विग्रह को छोड़कर सन्धि का ही आश्रय ले । क्योंकि विग्रह में जन-बल और धन-धान्य का क्षय होता है । इनके अतिरिक्त प्रवास और प्रत्यवाय (शत्रु के विष-प्रयोगादि कर्म) से भी हानि ही होती है । इस कथन से यान और आसन के समान लाभ में आसन का ही अवलम्बन करने विषयक विवेचना भी होगई । द्वैधीभाव और संश्रय के समान लाभ में द्वैधीभाव का आश्रय ले, क्योंकि इससे अपने कार्य में लगे रहने से वृद्धि का ही अवसर रहता है । इसके विपरीत संश्रय का अवलम्बन करने से आश्रयदाता का दास बनना होता है, जिससे शत्रु की वृद्धि होती है । आक्रमणकारी के बल से अधिक बल वाले राजा का आश्रय ले । यदि वैसा राजा न मिले तो आक्रामक का आश्रय लेकर उसे दूर से ही कोश, सेना, भूमि आदि देता हुआ उपकृत करे । वैसे अपने से बली के साथ किया जाने वाला संश्रय वध या बन्धन आदि की सम्भा-

बना से मुक्त रहता है, किन्तु शत्रु से युद्ध होने पर बलवान से मिलना ही उचित है। यदि अधिक बल वाला राजा संश्रय के अतिरिक्त अन्य गुण को स्वीकार न करे तो दण्डोपनत अर्थात् सैन्य-प्रदानादि के द्वारा झुक जाय। किन्तु आश्रयदाता राजा को कोई मरणान्तक रोग होने, उसके मन्त्रियों में परस्पर कलह होने, उसके शत्रुओं की वृद्धि और मित्रों में फूट पड़ने आदि की स्थिति उत्पन्न होने पर आश्रित राजा अपने उत्थान का अवसर देखे तो किसी रोग या धर्म-कार्य के बहाने से वहाँ से हट कर अपने राज्य में चला जाय और फिर आश्रय दाता राजा द्वारा बुलाये जाने पर भी उसके पास न जाय। यदि वहाँ से हटने का अवसर न मिले तो वहीं रह कर अवसर और छिद्र देखते ही उस पर प्रहार कर दे।

बलीयसोर्वा मध्यगतस्त्राणसमर्थमाश्रयेत्। यस्य वानन्तर्धिः स्यात्। उभौ वा कपालसंश्रयस्तिष्ठेत्। मूलहरमितरस्येतरमपदिशन् भेदमुभयोर्वा परस्परापदेशं प्रयुंजीत भिन्नयौरुपांशुदण्डम्। पार्श्वस्थो वा बलस्थयोरासन्नभयात् प्रतिकुर्वीत। दुर्गापाश्रयो वा द्वैधीभूतस्तिष्ठेत्। सन्धिविग्रहक्रमहेतुभिर्वा चेष्टेते। दूष्यामित्राटविकानुभयारुपगृह्णीयात्। एतयोरन्यतरं गच्छंस्तैरेवान्यतरस्य व्यसने प्रहरेत्। द्वाभ्यामुपहितो वा मण्डलापाश्रयस्तिष्ठेत्। मध्यममुदासीनं वा संश्रयेत। तेन सहैकमुपगृह्येतरमुच्छिन्द्यादुभौ वा।

दो बलवान राजाओं के बीच वाला विजिगीषु राजा उनमें से किसी एक को अपनी रक्षा से समर्थ देख कर उसका आश्रय ले ले। अथवा अपने समीपस्थ उस राजा का आश्रय ले, जिसके राज्य और अपने राज्य के मध्य किसी दूसरे का राज्य न हो। अथवा दोनों का ही आश्रय लेकर कपालसन्धि अर्थात् दीनतायुक्त पथक्-पृथक् सन्धि कर ले। या उन दोनों के मध्य रह कर उनमें से एक पर दूसरे के अपकार का आरोप लगाता हुआ परस्पर एक-दूसरे के द्रव्य का नाश करने वाला कहे। इस प्रकार उन दोनों में द्वेष उत्पन्न होने पर उपांशु-दण्ड के प्रयोग द्वारा छिपे रूप

से ही उन्हें मरवा दे। अथवा उनमें से जिससे शीघ्र भय उपस्थित होने की संभावना प्रतीत हो, उससे बचने का प्रयत्न करे। अथवा दुर्ग में रह कर द्वैधीभाव का अवलम्बन करे। या इसी अधिकरण में वर्णित सन्धि-विग्रह के विशेष उपायों को करे। दोनों शत्रुओं के विरोधियों, शत्रुओं और वन्य जातिओं को दान-सम्मान से प्रसन्न कर अपने वश में कर ले। फिर दोनों में से किसी एक का सामना करके उसके उन विरोधियों द्वारा विद्रोह करा दे। यदि उस पर दोनों शत्रुओं द्वारा एक साथ आक्रमण कर दें तो राष्ट्रमण्डल का आश्रय ग्रहण करे। अथवा मध्यम या उदासीन राजाओं के साथ रह कर एक को दानादि से सन्तुष्ट और दूसरे को नष्ट करने की चेष्टा करे। यदि सभव हो तो दोनों के ही उच्छेद में लग जाय।

द्वाभ्यामुच्छिन्नो वा मध्यमोदासीनयोस्तत्पक्षीयाणां वा राज्ञां न्यायवृत्तिमाश्रयेत। तुल्यानां वा यस्य प्रकृतयः सुख्येयुरेनं, यत्रस्थो वा शक्नुयादात्मानमुद्धर्तुं, यत्र वा पूर्वपुरुषोचिता गतिरासन्नः सम्बन्धो वा मित्राणि भूयांसीति शक्तिमन्ति वा भवेयुः।

प्रियो यस्य भवेद्यो वा प्रियोऽस्य कतरस्तयोः।
प्रियो यस्य स तं गच्छेदित्याश्रयगतिः परा ॥१॥

अथवा दोनों से आक्रान्त हुआ राजा मध्यम या उदासीन अथवा अन्यान्य राजाओं में भी जो न्यायानुकूल व्यवहार करते हुये उसका पक्ष लें, उनका ही आश्रय ग्रहण कर ले। अथवा समान शील वाले राजाओं में जिसके अमात्य आदि अपने अनुकूल हों या जिसके आश्रय में अपने उद्धार की आशा हो अथवा जिससे अपने पूर्व पुरुषों का कोई विवाह-आदि संबन्ध या अन्तरंगता रही हो अथवा जिसके अनेक अधिक बलवान मित्र हों उसका ही आश्रय स्वीकार कर ले। जो जिसका प्रिय हो, वह परस्पर में किसका प्रिय नहीं रहता ? इसलिये जो जिसका प्रिय हो, वह उसी का आश्रय ले। यही आश्रयवृत्ति परम श्रेष्ठ समझी जाती है।

तृतीयोऽध्यायः

सम, हीन, ज्यायान् का गुणस्थापन

विजिगीषुः शक्त्यपेक्षः षाड्गुण्यमुपयुंजीत । समज्यायोभ्यां सन्धीयेत । हीनेन विगृह्णीयात् । विगृहीतो ज्यायसा हस्तिना पादयुद्धमिवाभ्युपैति । समेन चामं पात्रमामेनाहतमिवोभयतः क्षयं करोति । कुम्भेनेवाश्मा हीनेनैकान्तसिद्धिमवाप्नोति । ज्यायांश्चेन्न सन्धिमिच्छेत्, दण्डोपनतवृत्तमावलीयसं वा योगमातिष्ठेत् । समश्चेन्न सन्धिमिच्छेत्, यावन्मात्रमपकुर्यात् तावन्मात्रमस्य प्रत्यपकुर्यात् । तेजो हि सन्धानकारण, नातप्तं लोहं लोहेन सन्धत्त इति ।

विजिगीषु राजा को अपनी शक्तिवृद्धि की अपेक्षा करते हुए छः गुणों का प्रयोग करना चाहिये । शक्ति और सिद्धि में समान या अधिक के साथ सन्धि और शक्ति-सिद्धि में हीन के साथ युद्ध करना उचित है । क्योंकि हीन शक्ति वाले राजा अधिक शक्ति वाले युद्ध छेड़ कर वैसे ही नष्ट होते हैं. जैसे कि कोई पदाति किसी मत्त गज से लड़ कर नाश को प्राप्त हो जाय । यदि समान बल वाले से लड़े तो दो कच्चे मृत्तिका-पात्रों के परस्पर टकरा कर नष्ट होने के समान परिणाम होता है । यदि अधिक बल वाले से लड़े तो पत्थर के साथ मृत्तिका घट की टक्कर से घट के फूटने के समान निर्बल ही नष्ट होगा । यदि बलवान सन्धि की इच्छा न करे तो दण्डोपनत या आबलीयस योग का अनुकरण करे । यदि समान बल वाला सन्धि न करे तो उसके द्वारा जितना अपकार हो, उतना ही अपकार उसका भी किया जाय । क्योंकि सन्धि का कारण तेज ही है, ठंडा लोहा लोहे से कभी नहीं जुड़ सकता ।

हीनश्चेत्सर्वत्रानुप्रणतस्तिष्ठेत्, सन्धिमुपेयात्। आरण्योऽग्निरिव हि दुःखामर्षजं तेजो विक्रमयति । मण्डलस्य चानुग्राह्यो भवति । संधिश्चेत् 'परप्रकृतयो लुब्धक्षीणापचरिताः प्रत्यादानभयाद्वा

नोपगच्छन्ति' इति पश्येद्धीनोऽपि विगृह्णीयात्। विगृहीतश्चेत् 'परप्रकृतयो लुब्धक्षीणापचरिता विग्रहोद्विग्ना वा मां नोपगच्छन्ति' इति पश्येत्। ज्यायानपि सन्धीयेत, विग्रहोद्वेगं वा शमयेत्। 'व्यवसनयौगपद्ये गुरुव्यसनोऽस्मि, लघुव्यसनः परः सुखेन प्रतिकृत्य व्यसनमात्मनोऽभियुंज्यात्' इति पश्येत्। ज्यायानपि संधीयेत।

यदि हीन बल राजा झुकता हुआ उपस्थित हो तो उससे सन्धि कर लेनी चाहिये। क्योंकि वैसा न करने पर दावानल के समान दुःख और क्रोध के द्वारा वह हीनबल राजा भी विजयी पर अपना बल प्रकट करने में सफल हो जायगा। क्योंकि उस हीनबल को राष्ट्रमंडल की कृपा प्राप्त हो सकती है। यदि हीनबल वाला विजयेच्छुक अन्य राजाओं से सन्धि करने के पश्चात् यह देखे कि शत्रु के अमात्यादि लोभी, क्षीण या अपचार रत रह कर प्रत्याक्रमण की आशंका से मेरे प्रति उदार नहीं हैं तो विग्रह कर दे और अधिक बल वाला विजिगीषु हीन बल वाले से युद्ध प्रारम्भ करने पर भी देखे कि उसके अमात्यादि लोभी, क्षीण या अपचार रत रह कर युद्ध होने के कारण मेरे प्रति अनुदार हैं तो सन्धि कर ले अथवा उन अमात्यादि का विग्रह से उत्पन्न क्षोभ शान्त करे। अथवा यह देखे कि मुझ पर और शत्रु पर भी एक समय ही संकट आ पड़ा है, किन्तु मुझ पर आया हुआ संकट बहुत अधिक और उस पर आया हुआ संकट अल्प है। इसलिये इसकी विपत्ति सुगमता से दूर हो जायगी और तब यह मुझ पर चढ़ाई कर देगा। उस स्थिति में अधिक बलवान् होने पर भी न्यून बल वाले शत्रु से सन्धि कर ले।

सन्धिविग्रहयोश्चेत् परकर्शनमात्मोपचयं वा नाभिपश्येत्, ज्यायानप्यासीत। परव्यसनमप्रतीकार्यं चेत्पश्येत्, हीनोऽप्यभियायात्। अप्रतिकार्यासन्नव्यसनो वा ज्यायानपि संश्रयेत। सन्धिनैकतो निग्रहेणैकतश्चेत्कार्यसिद्धिं पश्येत्, ज्यायानपि द्वैधीभूत-

स्तिष्ठेदिति । एवं समस्त षाड्गुण्योपयोगः । तत्र तु प्रति—विशेषः—

विजिगीषु अधिक बल वाला होते हुए भी यदि देखे कि शत्रु से संधि-विग्रह होने पर भी उसकी वृद्धि या अवनति नहीं होगी तो आसन के आश्रय में मौन रूप से स्थित हो । किन्तु न्यून बाल वाला होते हुए भी शत्रु के आक्रमण की संभावना देखे तो उस पर स्वयं ही आक्रमण कर दे । अधिक बल वाला होने पर भी शीघ्र आने वाली विपत्ति का कोई प्रतीकार न दिखाई दे, तो संश्रय (अन्य अत्यधिक बलवान के आश्रय) का अवलम्बन करे । यदि अधिक बलो विजिगीषु यह देखे कि एक के साथ सन्धि और दूसरे के साथ विग्रह श्रेयस्कर होता तो द्वैधीभाव का पालन करे । इस प्रकार यह समबल वाले राजाओं के छः गुणों के उपयोग पर प्रकाश डाला गया, अब उनमें से हीन बल वाले राजाओं के विषय में विशेष रूप से कहेंगे—

प्रवृत्तचक्रेणाक्रान्तो राज्ञा बलवताऽबलः ।
सन्धिनोपनमेत्तूर्णं कोशदण्डात्मभूमिभिः ॥१
स्वयं संख्यातदण्डेन दण्डस्य विभवेन वा ।
उपस्थातव्यमित्येष सन्धिरात्मामिषो मतः ॥२
सेनापतिकुमाराभ्यामुपस्थातव्यमित्ययम् ।
पुरुषान्तरसन्धिः स्यान्नात्मनेत्यात्मरक्षणः ॥३
एकेनान्यत्र यातव्य स्वय दण्डेन वेत्ययम् ।
अदृष्टपुरुषः सन्धिर्दण्डमुख्यात्मरक्षणः ॥४
मुख्यस्त्रीबन्धनं कुर्यात्पूर्वयोः पश्चिमे त्वरिम् ।
साधयेद्गूढमित्येते दण्डोपनतसन्धयः ॥५
कोशदानेन शेषाणां प्रकृतीनां विमोक्षणम् ।
परिक्रयो भवेत्सन्धिः स एव च यथासुखम् ॥६
स्कन्धोपनेयो बहुधा ज्ञयः सन्धिरुपग्रहः ।
निरुद्धो देशकायाभ्यामत्ययः स्यादुपग्रहः ॥७

विषह्यदानादायत्यां क्षमः स्त्रीबन्धनादपि ।
सुवर्णसन्धिविश्वासादेकीभावगतो भवेत् ॥८

यदि कोई प्रबल राजा अपने भारी दल-बल सहित निर्बल राजा पर आक्रमण कर दे तो उसे उसके समक्ष अपने कोश, सेना और पृथिवी सहित आत्मसमर्पण कर देना चाहिए। प्रबल राजा के निर्देशानुसार जो पराजित राजा सेना और धन के सहित उसके समीप जाकर सेवा करने लगता है। इस सन्धि को 'आत्मामिष' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि वह अपने को उसके समक्ष आमिष अर्थात् भोज्य के समान उपस्थित करता है। यदि निर्बल राजा सबल राजा की सेवा में अपने सेनापति और राजकुमार आदि को नियुक्त कर दे तो वह सन्धि 'पुरुषान्तर' कही जाती है। इस प्रकार की सन्धि में वह स्वयं शत्रु की सेवा मे नहीं जाता, इसलिये इसे 'आत्मरक्षण' सन्धि भी कहते हैं। विजेता राजा के किसी प्रयोजन से पराजित राजा अकेला ही पहुंचेगा अथवा सेना भी पहुंचेगी—इस प्रकार की सशर्त सन्धि 'अदृष्टपुरुष' कही जाती है। इसमें वह अपनी और अपने सेनापति की भी रक्षा कर लेता है, इसलिये इसे 'दण्डमुख्यात्मरक्षण' सन्धि भी कहते हैं। उपर्युक्त आत्मामिष और पुरुषान्तर संज्ञक सन्धियों में दुर्बल राजा के विश्वास के हेतु परस्पर दोनों पक्ष की कन्याओं के विवाह-सम्बन्ध भी हो जाते हैं। अदृष्टपुरुष संधि में शत्रु को गुप्तरीति से वश में करने के भी अवसर मिल जाते हैं। इन तीनों प्रकार की संधियों को 'दण्डोपनत' संधि कहा जाता है। पकड़े हुए अमात्यादि को धन देने के वचन पर शत्रु से छुड़ाया जाय, 'वह परिक्रय' सन्धि है। इसी संधि में यदि निर्बल राजा की असमर्थता के कारण थोड़ा-थोड़ा धन चुकाने की छूट हो तो वह 'उपग्रह' संधि कही जायगी। यदि उपग्रह संधि में यह भी शर्त हो कि दिया जाने वाला धन अमुक स्थान पर, अमुक समय दिया जायगा तो इसे 'अत्यय' संधि कहेंगे। यह संधि नियत समय एवं स्थान पर निश्चित धन दे देने के कारण कन्यादान करने जैसा संधि से भी प्रशस्त

समझी जाती है। क्योंकि इसमें विजेता और पराजित दोनों के मध्य स्वर्ण में स्वर्ण के मिलने जैसा एकीभाव उत्पन्न हो जाता है। इसलिये इसे 'स्वर्ण संधि' भी कहा जाता है ॥१-८॥

विपरीतः कपालः स्यादत्यादानादभाषितः।
पूर्वयोः प्रणयेत्कुप्यं हस्त्यश्वं वा गणान्वितम्। ९
तृतीये प्रणयेदर्थं कथयन् कर्मणां क्षयम्।
तिष्ठेतच्चतुर्थ इत्येते कोशोपनतसन्धयः ॥१०
भूम्येकदेशत्यागेन देशप्रकृतिलक्षणम्।
आदिष्टसन्धिस्तत्रेष्टो गूढस्तेनोपघातिनः ॥११
भूमीनामात्तसाराणां मूलवर्जं प्रणामनम्।
उच्छिन्नसन्धिस्तत्रैष परव्यसनकांक्षिणः ॥१२
फलदानेन भूमीनां मोक्षणं स्यादपक्रयः।
फ़लातिभुक्तो भूमिभ्यः सन्धिः स परदूषणः ॥१३
कुर्यादवेक्षणं पूर्वौ पश्चिमौ त्वबलीयसम्।
आदाय फलमित्येते देशोपनतसन्धयः ॥१४
स्वकार्याणां वशेनैते देशकाले च भाषिताः।
आबलीयसिकाः कार्यास्त्रिविधा हीनसन्धयः ॥१५

इसके विपरीत, सम्पूर्ण धन तत्काल देने की शर्त वाली संधि 'कपाल' संज्ञक होती है। एक साथ पूरा धन देना कठिन होने से इस दूष्य संधि को शस्त्रों ने उपयुक्त नहीं माना है। उपयुक्त परिक्रय आदि चार संधियों में पूर्व की दो संधियों में वस्त्रादि असार वस्तुएं अथवा वृद्ध या विषाक्त गज और अश्व दे जो विष के प्रभाव से कुछ कालोपरान्त ही मर जांय। तीसरे प्रकार की संधि में राजा देय धन का थोड़ा भाग देता हुआ कह दे कि मेरे सब कार्य नष्ट होने के कारण धन आने के स्रोत बन्द हो गये हैं। चौथी अर्थात् 'कपाल संधि' में पराजित राजा मध्यम या उदासीन का आश्रय लेकर 'देता हूँ कुछ समय दीजिये' कहता हुआ टालता रहे। यह चारों प्रकार की संधियाँ कोश-दान वाली होने

के कारण 'कोशोपनत' कही जाती है। देश और अमात्यादि की रक्षा के लिये पृथिवी या जनपद का कुछ भाग देकर की जाने वाली 'आदिष्ट संधि' होती है। जो विजिगीषु राजा वहाँ अपने पूर्वनियुक्त गुप्तचरों आदि के द्वारा उपद्रव या विद्रोह कराने में समर्थ हो, उसके लिये यह संधि अत्यन्त हितकर होती है। राजधानी और दुर्ग आदि के अतिरिक्त विजयेच्छुक राजा ने अपने जिस भूखंण्ड से सब सार-द्रव्य प्राप्त कर लिया हो, उसे देकर जो संधि की जाय, वह 'उच्छिन्न' कही जाती है। शत्रु उस पर अधिकार ले तो भी संकट उपस्थित होने पर वह भूमि पुनः लौट आ सकती है। इसी दृष्टि से यह संधि पराजित राजा के लिये लाभप्रद है। भूमि की उपज देने के वचन पर भूमि को छुड़ाने वाली संधि 'अवक्रय' कही गई है। किन्तु उपज-दान के साथ कुछ भी धन भी दिया जाय, वह 'परदूषण' सन्धि है। उक्त चार संधियों में से पूर्व की दो अर्थात् आदिष्ट और उच्छिन्न संज्ञक संधियों को करने वाला निर्बल राजा शत्रु पर विपत्ति पड़ने की प्रतीक्षा करे और शेष दो अर्थात् अवक्रय और पारदूषण नामक संधियों में भूमि की सम्पूर्ण उपज को स्वयं लेकर आबलीयस अधिकरण में वर्णित उपायों से शत्रु का प्रतीकार करे। भूमिदान की व्यवस्था वाली ये चारों संधियाँ 'देशोपनत' कहलाती हैं। इस प्रकार कही हुई दण्डोपनत, कोशोपनत और देशोपनत संज्ञक तीन प्रकार की संधियों के अवलम्बन द्वारा निर्बल राजा अपने कार्य, देश एवं समय के अनुसार अपना हित-साधन करे ॥९-१५॥

चतुर्थोऽध्यायः

विगृह्यासन, सन्धायासन, विगृह्ययान, सन्धाययान आदि

सन्धिविग्रहयोरासनं यानं च व्याख्यातम्। स्थानमासन-मुपेक्षणं चेत्यासनपर्यायाः। विशेषस्तु गुणैकदेशे स्थानम्। स्ववृद्धि-प्राप्त्यर्थमासनम्। उपायानामप्रयोग उपेक्षणमिति। सन्धानकाम-

योररित्रिजिगीष्वोरुपहन्तुमशक्तयोर्विगृह्यासनं सन्धाय वा। यदा वा पश्येत्—'स्वदण्डैर्मित्राटवीदण्डैर्वा समं ज्यायांस वा कर्शयितु-मुत्सहे' इति, तदा कृतबाह्याभ्यन्तरकृत्यो विगृह्यासीत। यदा वा पश्येत्—'उत्साहयुक्ता मे प्रकृतयः संहता विवृद्धाः स्वकर्माण्य-व्याहताश्चरिष्यन्ति, परस्य वा कर्माण्युपहनिष्यन्ति' इति, तदा विगृह्यासीत।

पूर्वाचार्यों के मत में आसन और यान दोनों सन्धि और विग्रह में ही आते हैं। स्थान, आसन और उपेक्षण यह तीनों आसन के ही पर्यायवाची हैं। अब उनकी विशेषता कहते हैं। आसन-रूप गुण का अंग स्थान कहा जायगा। अथवा शत्रु के समान शक्तिशाली न होना ही स्थान है। जब शक्ति की कमी होने पर शत्रुकृत अपकार का बदला न दिया जा सके, वह अवस्था स्थान ही है। यदि गुण का अवलम्बन अपने उत्कर्ष के लिए किया जाय, तो उसे आसन कहेंगे। उपायों का प्रयोग न करे या अल्प करे तो वह उपेक्षण कहा जायगा। संधि की इच्छा वाले शत्रु और विजिगीषु शक्तिमान होते हुए भी परस्पर में किसी का कोई अपकार न कर पावें तो आसन का ही आश्रय लें। यदि दोनों न्यून बल हों तो परस्पर सन्धि करके आसन में स्थित हो जांय। अथवा विजिगीषु राजा अपनी सेना, मित्रसेना या आटविक सेना के द्वारा समान या अधिक बल वाले शत्रु के दमन में अपने को समर्थ देखे तो जनपद और दुर्ग आदि के सब कार्यों को व्यवस्थित करके कृतरक्ष अर्थात् क्रुद्ध या लुब्ध व्यक्तियों को अग्रसर कर विग्रह के पश्चात् आसन का अवलम्बन करे। या जब अमात्यादि को उत्साहयुक्त, एकमत से कार्यरत, अपने-अपने कार्यों में कृतसंकल्प तथा शत्रु का हनन करने में तत्पर देखे, तब विग्रह करके आसन का आश्रय ले ले।

यदा वा पश्येत्—'परस्यापचरिताः क्षीणा लुब्धाः स्वचक्रस्ते-नाटवीव्यथिता वा प्रकृतयः स्वयमुपजापेन वा मामेष्यन्तीति सम्पन्ना मे वार्ता, विपन्ना परस्य तस्य प्रकृतयो दुर्भिक्षोपहता

मामेष्यन्ति, विपन्ना मे वार्ता सम्पन्ना परस्य तं मे प्रकृतयो न गमिष्यन्ति । विगृह्य चास्य धान्यपशुहिरण्यान्याहरिष्यामि, स्वपण्योपघातीनि वा परपण्यानि निवर्तयिष्यामि, परवणिक्पथाद्वा सारवन्ति मामेष्यन्ति । विगृहीतेनेतरं, दूष्यामित्राटवीनिग्रहं वा विगृहीतो न करिष्यति, तैरेव वा विग्रहं प्राप्स्यति, मित्रं मे मित्रभाव्यभिप्रेतो बह्वल्पकालं तनुक्षयव्ययमर्थं प्राप्स्यति, गुणवत्तीमादेयां वा भूमिं सर्वसन्दोहेन वा मामनादृत्य प्रयातुकामः कथं न यायात्' इति परिवृद्धिप्रतिघातार्थं प्रतापार्थं च विगृह्यासीत ।

अथवा यह देखे कि शत्रु के अमात्यादि चरित्रहीन, क्षीण और लोभी तथा उसकी सेना भी आटविकों द्वारा तिरस्कृत और संतप्त हो रही है । इसलिए मेरे गुप्तचरों के प्रयत्नों से वे सब मुझमें आ मिलेंगे । अथवा मेरी बात बनी हुई है और शत्रु की बिगड़ी हुई । इसलिए शत्रु के अमात्य आदि दुर्भिक्ष विपत्तियों से पीड़ित होकर मेरे पास आ जायेंगे । अथवा शत्रु की बात बनी हुई और मेरी बिगड़ी हुई है । किन्तु मेरे अमात्य आदि शत्रुपक्ष में नहीं मिलेंगे । इसलिए मैं युद्ध द्वारा शत्रु के अन्न, पशु, हिरण्य आदि को छीन कर लाने में सफल रहूंगा । अथवा शत्रु देश में उत्पादित माल को, अपने देश के उत्पादित माल पर आघात पहुँचाने पर, आने से रोक दूँगा । या शत्रु मेरे साथ युद्धरत होगा तब उसकी सब सार वस्तु वणिक्पथ द्वारा अनायास ही मेरे यहाँ आ जायगा और मेरे देश की कोई वस्तु उसके यहाँ नहीं जायगी । अथवा मुझसे युद्ध करने में लगा रहने के कारण शत्रु अपने विरोधियों या आटविकों के उपद्रव को रोकने में समर्थ नहीं होगा । अथवा वह उन्हीं से निपटने में व्यस्त हो जायगा । अथवा वह मेरे साथी या मित्र राजाओं पर आक्रमण करके अपनी अल्प सेना और धन को खोकर बड़ा भारी लाभ उठा लेगा, किन्तु मैं उसके प्रतिरोध में समर्थ नहीं हूँगा । अथवा शत्रु किसी गुणयुक्त एवं उपादेय भूमि

को हथियाने के उद्देश्य से ही मेरा तिरस्कार करता अपनी सम्पूर्ण सेना सहित आगे न बढ़ सके, मैं इसके प्रति सतर्क हूं। ऐसा विश्वास होने पर शत्रु की वृद्धि को रोकने और अपना बल-प्रदर्शन करने की दृष्टि से विजिगीषु विग्रह के पश्चात् 'आसन' में स्थित हो।

तमेव हि प्रत्यावृत्तो ग्रसत इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। कर्शनमात्रमस्य कुर्यादव्यसनिनः। परवृद्धचा तु वृद्धः समुच्छेदनम्। एव परस्य यातव्योऽस्मै साहाय्यमविनष्टः प्रयच्छेत्। तस्मात्सर्वसन्दोहप्रकृतं विगृह्यासीत। विगृह्यासनहेतु· प्रातिलोम्ये सन्धायासीत। विगृह्यासनहेतुभिरभ्युच्चितः सर्वसन्दोह-वर्जं विगृह्य यायात्। यदा वा पश्येत्—'व्यसनी परः प्रकृति-व्यसन वास्य शेषप्रकृतिभिरप्रकृतिकार्यं, स्वचक्रपीडिता विरक्ता वास्य प्रकृतयः कर्शिता निरुत्साहाः परस्पराद्भिन्नाः शक्या लोभयितुम्। अग्न्युदकव्याधिमरकदुर्भिक्षनिमित्तं क्षीणयुग्यपुरुष-निचयरक्षाविधानपरः' इति। तदा विगृह्य यायात्।

अन्यान्य आचार्यों के मत में यदि किसी अन्य पर आक्रमण करने वाले शत्रु का विजिगीषु द्वारा प्रतिरोध होने पर उसका कुपित हो जाना और विजिगीषु पर ही आक्रमण कर देना अनर्थप्रद सिद्ध हो सकता है। इसलिए युद्ध करके आसन में स्थित होना उचित नहीं है। किन्तु आचार्य कौटिल्यीय कहते हैं कि यह मत ठीक नहीं है। क्योंकि इस प्रकार प्रतिरोध करने पर कुपित हुआ शत्रु विजिगीषु को स्वल्प कष्ट ही पहुंचा सकता है। किन्तु जिस शत्रु पर वह आक्रमण करने जा रहा है, उस पर विजय होने से पर्याप्त सम्पत्ति मिल सकती है, जिससे वह अत्यधिक सबल होकर विजिगीषु पर आक्रमण करे तो उसका समूल उच्छेद कर डालेगा। इसलिए अन्य शत्रु पर चढ़ कर जाने वाले शत्रु से विग्रह छेड़ कर आसन में स्थित हो जाने वाले विजिगीषु को शत्रु का यातव्य (आक्रान्त) भी सहायक सिद्ध हो सकेगा और शत्रु की शक्ति भी विभाजित हो सकेगी। विग्रह करके आसन में स्थित होने

के जो कारण कहे हैं, उनके विपरीत लक्षण हों तो सन्धि करके ही आसन का आश्रय ले। विग्रह के पश्चात् आसन के हेतुओं से शक्ति का संचय करके, शत्रु पर आक्रमण करे। किन्तु जो शत्रु अपनी सम्पूर्ण सेनाओं सहित किसी पर चढ़ाई करता हो बढ़ रहा हो, उस पर 'यान' का प्रयोग न करे। अथवा यदि देखे कि शत्रु संकट-ग्रस्त है और उसके अमात्य आदि उस संकट के प्रतीकार में असमर्थ हैं या उसकी प्रजा सेना के अत्याचारों से पीड़ित होकर राजा के विरुद्ध हो गई है और वह उत्साहहीन धनहीन और फूट-ग्रस्त होने के कारण लोभ में पड़ सकती है अथवा अग्नि, जल, रोग, महामारी एवं दुर्भिक्ष आदि कारणों से शत्रु अपने वाहन, पुरुष एवं कोश की रक्षा भी नहीं कर सकता तो इस अवस्था में विजिगीषु को विग्रह द्वारा 'यान' का अवलम्बन करना चाहिए।

यदा वा पश्येत्—'मित्रमाक्रन्दश्च मे शूरवृद्धानुरक्तप्रकृतिर्विपरीतप्रकृतिः परः पार्ष्णिग्राहश्चासारश्च, शक्ष्यामि मित्रेणासारमाक्रन्देन पार्ष्णिग्राहं वा विगृह्य यातुम्' इति, तदा विगृह्य यायात्। यदा वा फलमेकहार्यमल्पकालं पश्येत्, तदा पार्ष्णिग्राहासाराभ्यां विगृह्य यायात्। विपर्यये सन्धाय यायात्। यदा वा पश्येत्—'न शक्यमेकेन यातुमवश्यं च यातव्यम्' इति तदा समहीनज्यायोभिः सामवायिकैः सम्भूय यायात्। एकत्र निर्दिष्टेनांशेनानेकत्रानिर्दिष्टेनांशेन। तेषामसमवाये दण्डमन्यतरस्मिन् निविष्टांशेन संभूयाभिगमनेन वा निविशयेत। ध्रुवे लाभे निर्दिष्टेनांशेनाध्रुवे लाभांशेन।

अंशो दण्डसमः पूर्वः प्रयाससम उत्तमः।
विलोपो वा यथालाभं प्रक्षेपसम एव वा॥

अथवा यह देखे कि मेरे आगे और पीछे के दोनों मित्र राजा शूर, अनुभवी और अनुरक्त अमात्य आदि से युक्त हैं और शत्रु की स्थिति ऐसी नहीं है। इसी प्रकार मेरा पार्ष्णिग्राह (शत्रु) और आसार

(मित्र) भी है। मैं अपने मित्र से आसार का और आक्रन्द से पार्ष्णिग्राह का युद्ध करा कर स्वयं भी चढ़ाई कर दूंगा। ऐसा विश्वास हो तो विग्रह करके चढ़ाई कर दे। अथवा यह देखे कि थोड़े समय में ही कोई कार्य अकेला ही पूर्ण कर सकता है तो पार्ष्णिग्राह और आसार से भी विग्रह करके शत्रु के प्रति यान का अवलम्बन करे। इसके विपरीत स्थिति हो तो संधि करके यान में स्थित हो। अथवा ऐसा प्रतीत हो कि अकेला और असहाय होने के कारण चढ़ाई करने में समर्थ नहीं हूँ फिर भी चढ़ाई आवश्यक है तो अपने समान बल, हीनबल या अधिक बल वाले राजाओं से मिल कर चढ़ाई करे। यदि एक ही देश पर आक्रमण करना हो तो उन राजाओं से अंश-भाग की संधि करके और अनेक देशों पर करना हो तो बिना अंश-भाग निश्चित किये ही यान का अवलम्बन करे। यदि उन राजाओं में से कोई उस अभियान में स्वयं भाग न ले सके तो देय अंश निश्चित करके उससे सेना मांग ले। अथवा ऐसी संधि करे कि आप मेरी सहायता करेंगे तो समय पड़ने पर मैं भी आपकी सहायता करूंगा। आक्रमण करने पर जो लाभ हो उसमें से निश्चित अंश दिया जाय। यदि लाभांश पहिले से निश्चित न हो तो बाद में भी समझौता किया जा सकता है। एक साथ मिल कर आक्रमण करने पर शत्रु-राज्य से जो लाभ हो उसका विभाजन इस प्रकार करे—एक पक्ष के अनुसार सेना की अधिकता या न्यूनता के अनुसार भाग किये जांय। उत्तम पक्ष यह है कि जिसने जितना परिश्रम किया है, उसे उसी के अनुसार भाग मिलना चाहिए। अन्य पक्ष यह है कि आक्रमण काल में जिस राजा के हाथ जो कुछ पड़ जाय वह सब उसी का हो। अथवा अभियान में जिसका जितना धन व्यय हुआ हो उसे उसी के अनुसार लाभांश प्राप्त हो।

पञ्चमोऽध्यायः

यान एवं प्रकृतिक्षय

तुल्यसामन्तव्यसने यातव्यममित्रं वेत्यमित्रमभियायात्।

तत्सिद्धौ यातव्यम् । अमित्रासिद्धौ स यातव्यः साहाय्यं दद्यान्नामित्रो यातव्यासिद्धौ । गुरुव्यसनं यातव्यं, लघुव्यसनममित्रं वेति गुरुव्यसनं सौकर्यतो यायादित्याचार्याः । नेति कौटिल्यः—लघुव्यसनममित्रं यायात् । लघ्वपि हि व्यसनमभियुक्तस्य कृच्छ्रं भवति । सत्यं गुर्वपि गुरुतरं भवति । अनभियुक्तस्तु लघुव्यसनः सुखेन व्यसनं प्रतिकृत्यामित्रो यातव्यमभिसरेत् । पार्ष्णि वा गृह्णीयात् । यातव्यगागयो गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिं लघुव्यसनमन्यायवृत्तिं विरक्तप्रकृतिं वेति, विरक्तप्रकृतिं यायात् । गुरुव्यसनं न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयोऽनुगृह्णन्ति । लघुव्यसनमन्यायवृत्तिमुपेक्षन्ते । विरक्ता बलवन्तमप्युच्छिन्दन्ति । तस्माद्विरक्तप्रकृतिमेव यायात् ।

अपने सामन्त राजा शत्रु एवं आक्रमण योग्य अन्य राजा पर तुल्य संकट आ पड़े तो प्रथम शत्रु पर ही आक्रमण करना चाहिये । जब उसे पराजित कर दिया जाय तभी अन्य राजा पर आक्रमण करे । क्योंकि शत्रु पराजित न हुआ तो वह दूसरे को सहायता कर सकता है और हार गया तो किसी को भी सहायता नहीं कर सकता । पूर्वाचार्यों के अनुसार अधिक संकटग्रस्त यातव्य राजा या अल्प संकटग्रस्त शत्रु पर एक समय व्यसन उपस्थित होने पर अधिक संकटग्रस्त पर ही धावा बोले, क्योंकि उसे सुगमता से जीता जा सकता है । किन्तु आचार्य कौटिल्य के मत में ऐसा कथन ठीक नहीं है । क्योंकि शत्रु अल्प संकट में हो तो भी पहिले उसी पर आक्रमण करे । क्योंकि आक्रमण होने पर उसका प्रतीकार उसके लिए अत्यन्त कठिन होगा । यद्यपि यह यथार्थ है कि यातव्य राजा का संकट उस आक्रमण से और भी भयंकर हो जायगा, तथापि शत्रु आक्रमण से बचा रह कर अपने अल्प संकट का उपाय करता हुआ यातव्य की सहायता के लिये अग्रसर होने का अवसर प्राप्त कर सकता है और तब संभव है कि विजिगीषु को अधिक क्षति पहुँचा कर उसका पार्ष्णिग्राह बन जाय । जिस पर घोर विपत्ति आई हो और वह न्यायपूर्वक प्रजा-पालन करता हो, ऐसा प्रथम श्रेणी

यातव्य जिस पर अल्प विपत्ति हो और वह प्रजा के प्रति भी न्याय न करता हो ऐसा दूसरी श्रेणी का यातव्य और जिसकी प्रजा और प्रकृति-वर्ग अर्थात् अमात्यादि विरक्त हों ऐसा तीसरी श्रेणी का यातव्य इस तीन प्रकार के यातव्यों में से सर्व प्रथम आक्रमण किस पर करे, इस पर विचार करते हैं—यदि प्रथम श्रेणी के यातव्य पर आक्रमण किया जायगा तो उसकी प्रजा और प्रकृति वर्ग सभी उसकी सहायता में प्राण-पण से जुट जाँयगे। यदि द्वितीय श्रेणी के यातव्य पर चढ़ाई की जायगी तो उसके प्रजाजन और प्रकृतिवर्ग सभी उसकी उपेक्षा करेंगे। यदि तृतीय श्रेणी के बलवान राजा पर आक्रमण होगा तो उसकी प्रजा और प्रकृतिवर्ग सभी उससे क्षुब्ध होने के कारण उस राजा को ही नष्ट करना चाहेंगे। इसलिये तीसरी श्रेणी के यातव्य पर ही सब से पहिले आक्रमण करे।

क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वेति—क्षीणलुब्धप्रकृतिं यायात्। क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयः सुखेनोपजापं पीडां वोपगच्छन्ति नापचरिताः प्रधानावग्रहसाध्या इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः—क्षीणलुब्धा हि प्रकृतयो भर्तरि स्निग्धा भर्तृहिते तिष्ठन्ति। उपजापं वा विसंवादयन्ति, अनुरागे सार्वगुण्यमिति। तस्मादपचरितप्रकृतिमेव यायात्। बलवन्तमन्यायवृत्तिं दुर्बलं वा न्यायवृत्तिमिति बलवन्तमन्यायवृत्तिं यायात्। बलवन्तमन्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयो नानुगृह्णन्ति, निष्पातयन्त्यमित्रं वास्य भजन्ते। दुर्बलं तु न्यायवृत्तिमभियुक्तं प्रकृतयः परिगृह्णन्ति, अनुनिष्पतन्ति वा।

जिस यातव्य के अमात्यादि दुर्भिक्ष आदि के कारण क्षुब्ध और लोभी हो गये हों अथवा जिसके अमात्यादि तिरस्कृत या चरित्रहीन हो गये हों, इनमें से प्रथम आक्रमण किस पर किया जाय? जिसके अमात्यादि दुर्भिक्ष आदि विपत्तियों के कारण क्षुब्ध और लोभी हो गये हैं उस पर अथवा जिसके अमात्यादि तिरस्कृत या चरित्रहीन हो गये हैं उस पर? इसके समाधान में कहते हैं कि क्षीण और लोभी अमात्यादि

वाले यातव्य पर ही पहिले आक्रमण करे। क्योंकि वैसे प्रकृतिवर्ग को सुगमता से फोड़ा जा सकता या उसका दमन किया जा सकता है। किन्तु, तिरस्कृत या चरित्रहीन प्रकृतिवर्ग बहकाये जाने के या दमन के योग्य नहीं होते। वरन् वे केवल प्रधान पुरुषों के ही वश में रहते हैं। यह पूर्वाचार्यों का मत है। किन्तु कौटिल्य इसे न मानते हुए कहते हैं कि क्षीण और लुब्ध अमात्यादि अपने राजा के प्रति स्नेह रखते हुए उसके हित-साधन में तत्पर रहते हैं, इसलिये संभव है कि भेदनीति का प्रभाव उन पर न पड़े। क्योंकि वे राजा में श्रद्धा रखने से ही सर्वगुण की सिद्धि मानते हैं। अतएव तिरस्कृत और चरित्रहीन अमात्यादि वाले राजा पर ही आक्रमण करे। अब इस पर विचार करते हैं कि बली किन्तु अन्यायी यातव्य पर पहिले हमला करे या दुर्बल किन्तु न्यायवान पर? बली और अन्यायी पर ही पहिले हमला करे। क्योंकि उससे स्नेह न रखने वाली प्रजा उसकी सहायता नहीं करेगी और अमात्यादि भी दुर्ग आदि से निकल कर आक्रमण के पक्ष में मिल सकते हैं। इसके विपरीत यदि न्यायवान राजा के दुर्बल होते हुए भी उस पर हमला किया जाय तो प्रजा और प्रकृतिवर्ग सभी उसकी सहायता करते हैं और राजा के अपने दुर्ग आदि से निकल भागने पर वे सब भी निरन्तर उसका साथ देते हैं।

अवक्षेपेण हि सतामसतां प्रग्रहेण च।
अभूतानां च हिंसानामधर्म्याणां प्रवर्तनैः ॥१॥
उचितानां चरित्राणां धर्मिष्ठाना निवर्तनैः।
अधर्मस्य प्रसंगेन धर्मस्यावग्रहेण च ॥२॥
अकार्याणां च करणैः कार्याणां च प्रणाशनैः।
अप्रदानैश्च देयानामदेयानां च साधनैः ॥३॥
अदण्डनैश्च दण्ड्यानामदण्ड्यानां च दण्डनैः।
आग्राह्याणामुपग्राहैर्ग्राह्याणां चानभिग्रहैः ॥४॥

अनर्थ्यानां च करणैरर्थ्यानां च विघातनैः ।
अरक्षणैश्च चौरेभ्यः स्वयं च परिमोषणैः ॥५॥
पातैः पुरुषकाराणां कर्मणां गुणदूषणैः ।
उपघातैः प्रधानानां मान्यानां चावमाननैः ॥६॥
विरोधनैश्च वृद्धानां वैषम्येणानृतेन च ।
कृतस्याप्रतिकाररेण स्थितस्याकरणेन च ॥७॥
राज्ञः प्रमादालस्याभ्यां योगक्षेमवधेन च ।
प्रकृतीनां क्षयो लोभो वैराग्य चोपजायते ॥८॥
क्षीणाः प्रकृतयो लोभं लुब्धा यान्ति विरागताम् ।
विरक्ता यान्त्यमित्रं वा भर्तार घ्नन्ति वा स्वयम् ॥९॥

सज्जनों का अनादर और दुर्जनों पर अनुग्रह, अनुचित अधार्मिक एवं हिंसायुक्त कार्यों की छूट और धार्मिक कार्यों में बाधा, धर्मवानों के आचरण को विपरीत कराना, अधर्म में आसक्ति और धर्म का त्याग अनुचित कार्यों को करना और उचित कार्यों को नष्ट करना, सुपात्रों को दान न देकर कुपात्रों को देना, अपराधियों को दण्ड न देकर अदण्ड-नीयों को दण्ड देना, पास न रखने योग्य व्यक्तियों को रखना और न रखने योग्यों को रखना, अनर्थमय कर्मों का करना और सुकर्मों को नष्ट करना, चोरों से रक्षा न करना और स्वयं अनुचित रूप से धन-हरण आदि कार्यों को करना, पुरुषार्थ का त्याग, भले प्रकार किये गये श्रेष्ठ गुणों की निन्दा, विभागाध्यक्ष आदि पर दोषारोपण, सम्माननीयों का अपमान, वृद्धों का विरोध, उपकार के बदले अपकार, नित्यकर्मों का त्याग, प्रमाद और आलस्यवश योग-क्षेम की अरक्षा आदि कारणों से अमात्यादि प्रकृतिवर्ग में क्षीणता, लोभ और विरक्ति उत्पन्न होती है। जब प्रकृतिवर्ग क्षीण होता है, तब उन में की उत्पत्ति और लोभ की उत्पत्ति सेराजा के प्रति विरक्ति उत्पन्न हो जाती है और जब विरक्ति होती है तब प्रकृतिवर्ग शत्रु से मिल जाता अथवा अपने ही राजा का वध कर डालता है ॥१-९॥

तस्मात्प्रकृतीनां क्षयलोभविरागकारणानि नोत्पादयेत् । उत्पन्नानि वा सद्यः प्रतिकुर्वीत । क्षीणा लुब्धा विरक्ता वा प्रकृतय इति । क्षीणाः पीडनोच्छेदनभयात्सद्यः सन्धि युद्धं निष्पतनं वा रोचयन्ते । लुब्धा लोभेनासन्तुष्टाः परोपजापं लिप्सन्ते । विरक्ताः पराभियोगमभ्युत्तिष्ठन्ते । तासां हिरण्यधान्यक्षयः सर्वोपघाती कृच्छ्रप्रतीकारश्च । युग्यपुरुषक्षयो हिरण्यधान्यसाध्यः । लोभ ऐकदेशिको मुख्यायत्तः पार्थेषु शक्यः प्रतिहन्तुमादातुं वा । विरागः प्रधानावग्रहसाध्यः ।

इसलिए अमात्यादि को कभी क्षीण, लोभी और विरक्त न बनने दे । यदि उनमें कोई विकार उत्पन्न होता दिखाई दे तो उसका प्रतीकार तुरंत करे । क्षीण, लुब्ध और विरक्त यह तीन प्रकार की ही प्रकृति कही है । क्षीण हुए अमात्यादि किसी प्रकार की पीड़ा और उच्छेद आदि के भय से तुरंत संधि, युद्ध अथवा देश छोड़ कर भागने की नीति अच्छी लगती है । लुब्ध प्रकृतिवर्ग लोभ के कारण राजा से असन्तुष्ट होकर शत्रु से मिलना उचित मानते हैं तथा विरक्त हुए मन्त्रिगण आक्रमणकर्त्ता के सहायक बन जाते हैं । प्रकृतिवर्ग का अन्न-धन आदि नष्ट होने पर गज-अश्व आदि भी नष्ट हो सकते हैं, तब उनका प्रतीकार कठिन होजाता है । किन्तु वाहनों एवं सैनिकों के क्षय का प्रतीकार द्रव्य से साध्य होजाता है । अमात्यों में से कोई-कोई ही लोभी होता है, किन्तु मुख्यमन्त्री उसे वश में कर सकता है अथवा शत्रु पर आक्रमण करके उसके धन से भी उसका प्रतीकार (संतोष) किया जा सकता है । किन्तु विरक्ति का निवारण प्रधान अमात्यों को वश में कर लेने से ही हो सकता है ।

निष्प्रधाना हि प्रकृतयो भोग्या भवन्त्यनुपजाप्याश्चान्येषामनापत्सहास्तु । प्रकृतिमुख्यप्रग्रहैस्तु बहुधा भिन्ना गुप्ता भवन्त्यापत्सहाश्च । सामवायिकानामपि सन्धिनिग्रहकारणान्यवेक्ष्य शक्तिशौचयुक्तेन सम्भूय यायात् । शक्तिमान् हि पार्ष्णिग्रहणे यात्रा-

साहाय्यदाने वा शक्तः शुचिः सिद्धौ चासिद्धौ च यथास्थितकारीति।

तेषां ज्यायसैकेन द्वाभ्यां समाभ्यां वा सम्भूय यातव्यमिति। द्वाभ्यां समाभ्यां श्रेयः। ज्यायसा ह्यवगृहीतश्चरति समाभ्यामतिसन्धानाधिक्ये वा तौ हि सुखौ भेदयितुम्। दुष्टश्चैको द्वाभ्यां नियन्तुं भेदोपग्रहं चोपगन्तुमिति। समेनैकेन द्वाभ्यां हीनाभ्यां श्रेयः। तौ हि द्विकार्यसाधकौ वश्यौ च भवतः। कार्यसिद्धौ तु—

प्रधान-रहित प्रकृतिवर्ग वश में हो जाता है और उस पर किसी की भेद-नीति काम नहीं करती। जो अमात्य विपत्ति से घबराते हैं, वे भी प्रधानमंत्री द्वारा अनुशासन में रखे जाकर सुरक्षित और विपत्तियों को झेलने में समर्थ बनाये जा सकते हैं। इसी प्रकार सामवायिक (साथी) राजाओं के साथ सन्धि या विग्रह के कारणों पर विचार करके, उन बलवान और पवित्र विचार वाले राजाओं को साथ लेकर आक्रमण कर दे। क्योंकि शक्तिवान सामवायिक राजा पीछे के शत्रु को रोकने और युद्ध में सैनिक सहायता करने में भी समर्थ होते हैं। यदि वे शुद्ध हृदय वाले हैं तो इच्छित कार्य की पूर्णता-अपूर्णता में न्यायपूर्वक साथ रहते हैं। उन सामवायिकों में यदि एक अधिक बलवान और दो समान बलवान हों तो इन में से किसे साथ लेकर आक्रमण करे? इस पर कहते हैं कि समान बल वालों को ही साथ ले। क्योंकि अधिक बल वाले को साथ लेने से उसके वश में रहना होगा, किन्तु समान बल वालों से प्रीति बनी रहेगी और संभव है कि उनमें फूट भी डाली जा सके। यदि उनमें से एक विरुद्ध भी होजाय तो दूसरे से मिल कर उसे वश में रखा जा सकता है। अनेक मत ऐसे भी हैं कि एक समान बली और दो न्यून बल वालों को साथ लेकर हमला करे! यदि दोनों न्यून बल हों तो उन्हें साथ लेना अधिक श्रेयस्कर होगा। क्योंकि वे दोनों ही पृथक्-पृथक् कार्यों को करते हुए सदैव वशीभूत रहे आवेंगे। इस प्रकार कार्य के सिद्ध होजाने पर—

कृतार्थाज्ज्यायसो गूढः सापदेशमपस्रवेत् ।
अशुचेः शुचिवृत्तात्तु प्रतीक्षेताविसर्जनात् ॥१०
सत्रादपसरेद्यत्तः कलत्रमपनीय वा ।
समादपि हि लब्धार्थाद्विश्वस्तस्य भय भवेत् ॥११
ज्यायस्त्वे चापि लब्धार्थः समो विपरिकल्पते ।
अभ्युच्चितश्चाविश्वास्यो वृद्धिश्चित्तविकारिणी ॥१२
विशिष्टादल्पमप्यंशं लब्ध्वा तुष्टमुखो व्रजेत् ।
अनंशो वा ततोऽस्याङ्के प्रगृह्य द्विगुणं हरेत् ॥१३
कृतार्थस्तु स्वयं नेता विसृजेत्सामवायिकान् ।
अपि जीयेत न जयेन्मण्डलेष्टस्तथा भवेत् ॥१४

कृतार्थ हुए अधिक शक्तिवान राजा के मन में यदि कोई विकार उत्पन्न होजाय तो हीनबल वाला राजा कोई बहाना करके वहाँ से चला जाय । किन्तु बलवान राजा का अविकारी होना सिद्ध हो तो जब तक वह न जाने दे, तब तक उसे न छोड़े और उसके विचारों के जान लेने तक प्रतीक्षा करे । संकट के स्थान से स्त्री-पुत्र आदि परिवारीजनों को पहिले हटा कर राजा स्वयं भी वहाँ से हट कर किसी दूर स्थान में आश्रय ले । यदि समान बल वाले राजा की सहायता किये जाने पर वह अपना कार्य निकलने पर कृतघ्न होता दिखाई दे तो भी परिवारी जनों सहित वहाँ से हट जाना ही श्रेयस्कर है । क्योंकि विश्वासी व्यक्ति के विरोधी होने से भारी भय उपस्थित हो सकता है । अधिक बल वाला तो क्या, समान शक्ति वाला भी अपना कार्य निकलने पर बदल जाता है । इसलिए वृद्धि को प्राप्त हुए राजा का कभी भी विश्वास न करे, क्योंकि वृद्धि से चित्त में विकार होना स्वाभाविक है । अपने से अधिक बलवान से यदि स्वल्पांश मिले तो भी प्रसन्न मुख से चला आवे । यदि उससे कुछ भी प्राप्त न हो, तब भी प्रसन्नता दिखावे । किन्तु उस अधिक शक्तिशाली के संकट-ग्रस्त होने पर प्रहार करके द्विगुणित धन वसूल कर ले । अभियान में सफल हुआ राजा अपने साथी राजाओं को आदर

सहित विदा करे, चाहे उसे अल्प लाभ के कारण विजय का अनुभव न होता हो। ऐसा करने वाला राष्ट्रमण्डल में अत्यंत प्रिय रहता है ॥१०-१४॥

षष्ठोऽध्यायः

संहित प्रयाण एवं परिपणित, अपरिपणित और अपसृत संधि

विजिगीषुर्द्वितीयां प्रकृतिमेवातिसन्दध्यात्। सामन्त संहित-प्रयाणे याजयेत्-'त्वमितो याहि, अहमितो यास्यमि, समानो लाभ' इति। लाभसाम्ये सन्धिः। वैषम्ये विक्रमः। सन्धिः परिपणित-श्चापरिपणितश्च। 'त्वमेतं देशं याहि, अहमिमं यास्यामि' इति परिपणितदेशः। 'त्वमेतावतं कालं चेष्टस्व, अहमेतावन्तं कालं चेष्टष्य' इति परिपणितकालः। 'त्वमेतावत्कार्यं साधय, अहमेता-वत्कार्यं साधयिष्यामि' इति परिपणिनार्थः।

विजिगीषु राजा शत्रु रूप द्वितीय प्रकृति को वश में करने के लिए निम्न उपाय करे—एक साथ विभिन्न स्थानों पर आक्रमण करने के लिए किसी सामन्त को सहितप्रयाण नीति का अवलम्बन करता हुआ कहे—तुम इधर से बढ़ो और मैं उधर से बढ़ता हूं। इस प्रकार से जो लाभ होगा, उसे हम दोनों समान रूप से बाँट लेंगे। दोनों को समान लाभ हो तो समान बल होने के कारण उससे सन्धि कर ले। यदि विजिगीषु को अधिक लाभ हुआ तो उसके साथियों में विग्रह हो सकता है। यह संहितप्रयाण का वर्णन हुआ। अब परिपणित (देश, काल और कार्यानुसार) सन्धि तथा अपरिपणित (परिपणित से विपरीत) सन्धि के विषय में कहेंगे। तुम उस देश को प्रयाण करो, मैं उस देश को करता हूँ। ऐसी देश-निर्देश वाली प्रथम प्रकार की परिपणित सन्धि 'परिपणित देश सन्धि' है। तुम इतने समय तक करो और मैं इतने समय तक करूँगा—यह दूसरी परिपणित सन्धि 'परि-पणित कालसन्धि' नाम की है। तुम इतना कार्य करो, मैं इतना

करूँगा।—ऐसी कार्य निर्देश वाली 'परिपणितार्थ सन्धि' तीसरे प्रकार की परिपणित सन्धि है।

यदि वा मन्येत—'शैलवननददुर्गमटवीव्यवहितं छिन्नं धान्यपुरुषवीवधासारमयवसेन्धनोदकमविज्ञातं प्रकृष्टमन्यभावदेशीयं वा सैन्यव्यायामानामलब्धभौमं वा देशं परो यास्यति विपरीतमहम्' इत्येतस्मिन् विशेषे परिपणितदेशं सन्धिमुपेयात्। यदि वा मन्येत—'प्रवर्षोष्णशीतमतिव्याधिप्रायमुपक्षीणाहारोपभोगं सैन्यव्यायामानां चौपरोधिकं कार्यसाधनानामूनमतिरिक्तं वा कालं परश्चेष्टिष्यते, विपरीतमहम्' इति, तस्मिन्विशेषे परिपणितकालं सन्धिमुपेयात्।

अथवा वह यह देखे कि, मेरा शत्रु रूप किन्तु सन्धिबद्ध सामन्त ऐसे अनेक पर्वतीयदुर्ग, वनदुर्ग या नदीदुर्ग युक्त निर्जन वन वाले प्रदेश में जा रहा है, जहाँ अन्न, मनुष्य, तैल, घृत, बोझा ढोने वाले पशु या मित्र सेना कठिनता से पहुँच सकती है, जहाँ तृण जल, ईंधन आदि का अभाव है। जो अधिक दूर तथा अपरिचित है, जहाँ के लोग मत भेद के कारण राजा से द्वेष रखते हैं, जहाँ सैनिकों को व्यायाम आदि की सुविधा नहीं हो सकती। इसके विपरीत मैं जहां जाऊँगा वह प्रदेश सभी सुविधाओं से युक्त होगा। इस प्रकार की विशेषता होने पर 'परिपणित देश सन्धि' करनी चाहिए। अथवा यह देखे कि मेरा शत्रु रूप, किन्तु सन्धिबद्ध सामन्त अति वृष्टि, अति गर्मी या अति शीत का अनुभव होने पर अथवा अति व्याधि, अन्नादि का अभाव एवं सैनिकों द्वारा व्यायाम के ठीक प्रकार से न कर पाने या कार्य के लिए अनुपयुक्त समय पर कार्यों में लगेगा और मैं अपने अनुकूल समयों में कार्यों में लगा रहूँगा। इस प्रकार की विशेषता पर 'परिपणितकाल' संज्ञक सन्धि करे।

यदि वा मन्येत—प्रत्यादेयं प्रकृतिकोपकं दीर्घकालं महाक्षयव्ययमल्पमनर्थानुबन्धकल्पमधर्म्यं मध्यमोदासीनविरुद्धं मित्रोप-

घातक वा कार्यं परः साधयिष्यति, विपरीतमहम्' इत्येतस्मिन् विशेषे परिपणितार्थं सन्धिमुपेयात् ।

एवं देशकालयोः कालकार्ययोर्देशकालकार्याणां चावस्थापनात्सप्तविधः परिणितः : तस्मिन् प्रागेवारभ्य प्रतिष्ठाप्य च स्वकर्मणि परकर्मसु विक्रमेत । व्यसनत्वरावमानालस्ययुक्तमज्ञं वा शत्रुमतिसन्धातुकामो देशकालकार्याणामनवस्थापनात् । 'सहितौ स्वः' इति सन्धिविश्वासेन परच्छिद्रमासाद्य प्रहरेत् । इत्यपरिपणितः । तत्रैतद्भवति—

सामन्तेनैव सामन्तं विद्वानायोज्य विग्रहे ।
ततोऽन्यस्य हरेद्भूमिं छित्त्वा पक्षं समन्ततः ॥१

अथवा वह यह समझे कि सन्धिबद्ध सामन्त मेरे शत्रु को नष्ट करने वाले कार्यों को करेगा और उन्हीं कार्यों से शत्रु के प्रकृतिवर्ग में भी क्षोभ उत्पन्न हो जायगा। इससे मेरा ऐसा कार्य बन जायगा, जिसके करने में मुझे अधिक जन-धन-बल झोंक देना पड़ता। जो कार्य प्रत्यक्ष में छोटा प्रतीता होता है किन्तु कालान्तर में शत्रु का भारी अनर्थ करने वाला सिद्ध हो सकेगा। जिसे करने में अधिक कष्ट उठाना होगा या जो अधार्मिक है अथवा मध्यम या उदासीन राजाओं के विरुद्ध तथा मित्रों को भी नष्ट करने वाला सिद्ध हो सकता है। किन्तु मैं उक्त कार्यों के विपरीत कार्यों को करूँगा। इस स्थिति में परिपणितार्थ सन्धि' की जानी चाहिए। इस प्रकार देशकाल, कार्यकाल, देशकार्य और देश-काल कार्य के परस्पर मिश्रण से अन्य चार प्रकार की सन्धियां भी व्यवहार्य हैं। एसी सन्धियाँ करके विजिगीषु को अपने कार्यारम्भ कर देने चाहिए और उन कार्यों को फल न निकलने तक करता ही रहे। तत्पश्चात् शत्रु के दुर्ग आदि कार्यों पर प्रहार करे। अथवा व्यसन, त्वरा, अपमान आलस्य से युक्त एवं अज्ञानी शत्रु को जीतने की आकांक्षा वाला राजा देश, काल, एवं कार्य की व्यवस्था के बिना ही 'हम परस्पर सन्धि करते हैं' ऐसा विश्वास दिला कर शत्रु-

रूप सामन्त के जैसे ही छिद्रों को देखे, वैसे ही प्रहार कर दे। यह 'अपरिपणित सन्धि' है। तत्पश्चात् विद्वान् विजिगीषु एक सामन्त से दूसरे सामन्त को भिड़ा दे। फिर अन्य यातव्य सामन्त के सब ओर स्थित उसके मित्र राजाओं को नष्ट करके उनकी भूमि अपने राज्य में ही मिला ले ॥१॥

सन्धरेकृतचिकीर्षा कृतश्लेषणं कृतविदूषणमवशीर्णक्रिया च। विक्रमस्य प्रकाशयुद्धं, कूटयुद्धं, तूष्णीयुद्धम्। इति सन्धिविक्रमौ। अपूर्वस्य सन्धेः सानुबन्धैः सामादिभिः पर्येषणं समहीनज्यायसां च यथाबलमवस्थापनमकृतचिकीर्षा। कृतस्य प्रियहिताभ्यामुभयतः परिपालनं यथासम्भाषितस्य च निबन्धनस्यानुकीर्तनं रक्षणं च। 'कथं परस्मान्न भिद्येत' इति कृतश्लेषणम्। परस्यापसन्धेयतां दृष्यातिसन्धानेन स्थापयित्वा व्यतिक्रमः कृतविदूषणम्। भृत्येन मित्रेण वा दोषापसृतेन प्रतिसन्धानमवशीर्णक्रिया।

अकृतचिकिर्षा, कृतश्लेषण, कृतविदूषण और अवशीर्णक्रिया संज्ञक यह चार धर्म सन्धि के माने गये हैं। इसी प्रकार प्रकाशयुद्ध कूटयुद्ध और तूष्णीयुद्ध शीर्षक से युद्ध के तीन भेद कहे हैं। यह सन्धि विक्रम की व्याख्या हुई। यदि विजयेच्छुक राजा किसी से सन्धि करे तो साम आदि के द्वारा करनी चाहिए। यदि समबल, क्षीणबल या अधिक बल वाले से सन्धि करनी हो तो भी उचित साम सादि के द्वारा करे। इसे 'अकृतचिकिर्षा' नामक संधि कहते है। यदि विजिगीषु किसी से सन्धि करके प्रिय और हितकर कार्यों द्वारा दूसरे पक्ष के साथ सन्धि का पालन करे और उस वर्णित शर्तों की इस प्रकार रक्षा करता रहे जिससे कि शत्रु भेदनीति से फूट न डाल सके। यह सन्धिधर्म 'कृतश्लेषण' है। विजिगीषु किसी के साथ सन्धि करके विरोधी आदि के द्वारा शत्रु के प्रति छलनीति से कार्य लेता हुआ उसे सन्धि न पालन करने वाला सिद्ध करके संधि भंग कर दे तो वह सन्धि का 'कृतविदूषण' संज्ञक धर्म मान जायगा। यदि विजिगीषु यह समझे कि उसके

किसी मित्र ने किसी दोष के कारण उसे छोड़ दिया है। तत्पश्चात् वह मित्र पुनः उसके साथ कर ले तो वह 'अवशीर्णक्रिया' सन्धिधर्म होगा।

तस्यां गतागतश्चतुर्विधः—कारणाद्गतागतः, विपरीतः, कारणाद्गतोऽकारणाद्गतः, विपरीतश्चेति। स्वामिनो दोषेण गतो गुणेनागतः परस्य गुणेन गतो दोषेणागत इति कारणाद्गतागतः सन्धेयः। स्वदोषेण गतागतो गुणमुभयोः परित्यज्य अकारणाद्गतागतश्चलबुद्धिरसन्धेयः। स्वामिनो दोषेण गतः, परस्मात्स्वदोषेणागत इति कारणाद्गतोऽकारणादागतस्तर्कयितव्यः— परप्रयुक्तः स्वेन वा दोषेणापकर्तुकामः, परस्योच्छेत्तारममित्रं मे ज्ञात्वा प्रतिघातभयादागतः। परं वा मामुच्छेत्तुकामं परित्यज्यानृशंस्यादागतः' इति ज्ञात्वा कल्याणबुद्धिं पूजयेदन्यथाबुद्धिमपकृष्टं वासयेत्।

इस अवशीर्ण में भी जाने आने के चार प्रकार हैं। यथा—किसी कारणवश पृथक् हो जाय और किसी कारणवश ही पुनः आ मिले, अकारण जाय और अकारण ही आ मिले, किसी कारणवश जाय और अकारण आ मिले तो अथवा अकारण जाय और किसी कारणवश पुनः आ जाय। यदि कोई अपने स्वामी के दोष से चला जाय और उसके प्रसन्न होने पर पुनः लौट आवे या शत्रु के गुण को देख कर चला जाय और फिर दोष देख कर लौटा आवे तो उस लौटाने वाले से सन्धि कर ले। यदि अपने दोष से जाय और अपने ही दोष से पुनः लौटा आवे अथवा शत्रु और स्वामी के गुण-दोषों का विवेचन किये बिना अकारण ही चला जाय और पुनः लौट आवे तो उस चपल बुद्धि के मनुष्य से संधि नहीं करनी चाहिए। स्वामी के दोष से शत्रु के पास जाकर अपने दोष से पुनः लौट आने वाले एवं अकारण गये और अकारण ही लौट कर आये हुए व्यक्ति के विषय में यह विचार करे कि कहीं यह शत्रु की प्रेरणा से मेरा अहित करने तो नहीं आया? अथवा

अपना ही कोई प्रतिशोध लेने के लिए मेरा अपकार करने के लिए तो नहीं लौट आया? अथवा मेरे शत्रु को शत्रुघात में उद्यत देख कर अपने भी मारे जाने के भय से यहां चला आया हो। या शत्रुनाश में उद्यत मेरे शत्रु को त्याग कर मेरे पूर्व स्नेह के कारण ही लौट आया हो? इस प्रकार लौटने वाले के विषय में यह निश्चय करे कि वह हितचिन्तन वाली बुद्धि से आया है या अपकार करने के विचार से? फिर जैसा उचित समझे वैसा ही व्यवहार करे।

स्वदोषेण गतः परदोषेणागतः इत्यकारणाद्गतः कारणादागतस्तर्कयितव्य.—'छिद्रं मे पूरयिष्यति, उचितोऽयमस्य वासः, परत्रास्य जनो न रमते, मित्रैर्मे संहितः, शत्रुभिर्विगृहीतः, लुब्धक्रूरादाविग्नः, शत्रुसहिताद्वा परस्मात्' इति ज्ञात्वा यथाबुद्धयवस्थापयितव्यः। कृतप्रणाशः शक्तिहानिर्विद्यापण्यत्वमाशानिर्वेदो देशलौल्यमविश्वासो बलवद्विग्रहो वा परित्यागस्थानमित्याचार्याः। भयमवृत्तिरमर्ष इति कौटिल्यः। इहापकारी त्याज्यः। परापकारी सन्धेयः। उभयापकारी तर्कयितव्य इति समानम्। असन्धेयेन त्ववश्यं सन्धातव्ये यतः प्रभावः ततः प्रतिविदध्यात्।

अपने दोष से जाकर शत्रु के आने को अकारण जाना और सकारण आना कहते हैं। उस लौटे हुए के विषय में सोचे कि क्या यह मेरे छिद्रों को पूर्ण करेगा? क्या इसका यहां रहना उचित होगा? क्या प्रवास में उसका चित्त नहीं लगा? क्या इसका मेरे मित्रों से मेल और शत्रुओं से विग्रह है? क्या यह उस लुब्ध,क्रूर, संगठित या एकाकी शत्रु से भयभीत है? इन सब बातों पर ठीक प्रकार से विचार करके ही उसे आश्रय देने या न देने का निश्चय करे। कृतघ्न, बलहीन, जिसके राज्य में विद्या का विक्रय होता हो, देने की आशा दिला कर तोड़ देने वाले, दुःखदायी उपद्रव युक्त देश वाले, अपनों पर भी विश्वास न करने वाले या बलवानों से विग्रह करने वाले राजा या स्वामी को त्याग दे—ऐसा पूर्व आचार्य मानते हैं। किन्तु कौटिल्य कहते हैं कि भय, कार्य से विरक्ति और

क्रोध—इन तीन कारणों से सेवकगण स्वामी को छोड़ देते हैं। जाने-आने वालों में जिसने अपना अनिष्ट किया हो, उसे छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। किन्तु गतागत में जो शत्रु का अपकारी हो उससे सन्धि कर लेना उचित है। जिसने अपना और शत्रु का भी अनिष्ट किया हो, उसे विचार करके ही आश्रय दे। यदि किसी संधि के अयोग्य राजा के साथ संधि करना आवश्यक हो तो जिन कारणों से शत्रु का उस पर प्रभाव पड़ता हो, उन कारणों को दूर करने का प्रयत्न करे।

सोपकारं व्यवहितं गुप्तमायुःक्षयादिति।
वासयेदरिपक्षीयमवशीर्णक्रियाविधौ ॥२
विक्रामयेद्भर्तरि वा सिद्धं वा दण्डचारिणम्।
कुर्यादमित्राटवीषु प्रत्यन्ते वाऽन्यतः क्षिपेत् ॥३
पण्य कुर्यादसिद्धं वा सिद्धं वा तेन संवृतम्।
तस्यैव दोषेणादूष्य परसन्धेयकारणात् ॥४
अथवा शमयेदेनमायत्यर्थमुपांशुना।
आयत्यां च वधप्रेप्सुं दृष्ट्वा हन्याद्गतागतम् ॥५
अरितोऽप्यागतो दोषः शत्रुसंवासकारितः।
सर्पसंवाधधर्मत्वान्नित्योद्वेगेन दूषितः ॥६
जायते प्लक्षबीजाशात् कपोतादिव शाल्मलेः।
उद्वेगजननो नित्यं पश्चादपि भयावहः ॥७
प्रकाशयुद्धं निर्दिष्टो देशे काले च विक्रमः।
विभीषणमदस्कन्दः प्रमादव्यसनार्दनम् ॥८
एकत्र त्यागघातौ च कूटयुद्धस्य मातृका।
योगगूढोपजापार्थं तूष्णींयुद्धस्य लक्षणम् ॥९

यदि शत्रु पक्ष का कोई व्यक्ति अपने आश्रय में रहा हो और किसी दोष वश शत्रु के पास जाकर लौट आवे तो उसे अपने से दूर स्थान देकर भृत्यों की गुप्त निगरानी में रखे कुछ कालोपरान्त यदि उसे पवित्र हृदय एवं कार्य करने वाला समझे तो उसे अपनी सेवा में नियुक्त कर ले। यदि

वह उस कार्य में निपुण और विश्वस्त सिद्ध हो तो उसे सेना का कोई कार्य सौंप दे या उसे शत्रुओं और आटविकों पर बल प्रदर्शित करने के कार्य पर लगावे अथवा सीमा-संवन्धी कोई कार्य सौंपे। यदि वह उस कार्य में सफल प्रतीत न हो तो उसे राजकीय वस्तुओं के विक्रयार्थ परदेश भेजे और वह वहाँ भी असफल रहे तो उसे शत्रु से मिला हुआ सिद्ध करके सदा के लिए अपने वशीभूत कर ले या भविष्य में कोई अकल्याण का कार्य न कर वैठे, इस आशंका से उसे गुप्त रीति से मरवा डाले। यदि कोई जाकर लौटा हुआ व्यक्ति कुछ कालोपरान्त विजिगीषु की हत्या करने की इच्छा वाला प्रतीत हो तो उसे तुरन्त मरवा दे। शत्रु के पास जाकर लौटे हुए व्यक्ति को दोष का कारण समझे। क्योंकि शत्रु और सर्प के पास रहना समान ही मानते हैं। इसलिए ऐसे व्यक्ति को नित्य उद्वेगप्रद होने के कारण दूषित समझना चाहिए। जैसे प्लक्ष-वीज भक्षण करने वाला कपोत शाल्मली वृक्ष के लिए उद्वेगजनित होता है, वैसा ही शत्रुपक्ष के व्यक्ति के विषय में समझे। अव युद्ध-भेद पर कहते हैं—निश्चित अमुक देश और निश्चित अमुक समय पर हम परस्पर वल प्रदर्शन करेंगे। इस प्रकार की घोषणा के साथ होने वाले युद्ध को 'प्रकाशयुद्ध' कहते हैं। अत्यन्त भयावने ढंग से दुर्ग और नगर को भस्म करते हुए लूट-मार करने वाला हमला और शत्रु की प्रमाद एवं संकट से ग्रस्त दशा देख कर उसको उत्पीड़ित करते हुए जहाँ युद्ध हो रहा है, उस स्थान को ढीला छोड़कर अन्यत्र प्रहार करने पर 'कूटयुद्ध' कहा जाता है। विष के प्रयोग और गुप्तचरों के द्वारा तोड़-फोड़ को 'तूष्णीयुद्ध' कहते हैं ॥२-६॥

सप्तमोऽध्याय

द्वैधीभाविक सन्धि और विक्रम

विजिगीषुर्द्वितीयां प्रकृतिमुपगृह्णीयात्। सामन्तं सामन्तेन सम्भूय यायात्। यदि वा मन्येत—'पार्ष्णिं येन ग्रहीष्यति, पार्ष्णि-

ग्राहं वारयिष्यति, यातव्यं नाभिसरिष्यति बलद्वैगुण्यं मे भविष्यति, वीवधासारौ मे प्रवर्तयिष्यति, परस्य वारयिष्यति, बह्वाबाधे मे पथि कण्टकान् मर्दयिष्यति, दुर्गाटव्यपसारेषु दण्डेन चरिष्यति, यातव्यमविषह्ये दोषे सन्धौ वा स्थापयिष्यति लब्ध-लाभांशो वा शत्रूनन्यान्मे विश्वासयिष्यति' इति।

विजिगीषु राजा अन्य राजाओं से मेल रखता हुआ एक सामन्त को अपने पक्ष में करके दूसरे सामन्त पर हमला बोल दे। यदि उसे यह विश्वास हो जाय कि यह सामन्त मुझ पर पीछे से हमला नहीं करेगा, अन्य शत्रु मुझ पर हमला करेगा तो यह उसे रोकेगा, मैं जिस पर हमला कर रहा हूँ, उसका साथ नहीं देगा, जिससे कि मेरी शक्ति अधिक बढ़ेगी, यह मेरे साथ रहेगा तो मेरे देश में अन्न और मित्र सेनाओं के आगमन में कोई बाधा न पड़ेगी तथा शत्रु देश में जाने वाली वस्तुएं इसके द्वारा रोकी जा सकेंगी, मेरे मार्ग कंटकों का यह दमन कर देगा और दुर्ग स्थित विरोधियों या आटविकों से कलह होने की अवस्था में यह अपना सेना के सहित मेरा सहायक बनेगा, किसी शत्रु के द्वारा आक्रमण होने पर यह मध्यस्थ हो कर उससे संधि करा देगा तथा लब्धांश की प्राप्ति होने के कारण यह अन्यान्य शत्रुओं में भी मेरे बल का विश्वास उत्पन्न कर देगा। यदि ऐसा समझे तो उससे सन्धि कर ले।

द्वैधीभूतो वा कोशेन दण्डं दण्डेन कोशं सामन्तानामन्यतमा-ल्लिप्सेत। तेषां ज्यायसोऽधिकेनांशेन समात्समेन हीनाद्धीनेनेति समसन्धिः। विपर्यये विषसन्धिः। तयोर्विशेषलाभादतिसन्धिः। व्यसनिनमपायस्थाने सक्तमनर्थिनं वा ज्यायांसं हीनो बलसमेन लाभेन पणेत। पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत। अन्यथा सन्दध्यात्। एवंभूतो हीनशक्तिप्रतापपूरणार्थं सभाव्यार्थाभिसारो मूलपार्ष्णित्राणार्थं वा ज्यायांसं हीनो बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत। पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयादन्यथा विक्रमेत।

यदि द्वैधीभाव के अवलम्बन से एक से संधि और दूसरे से विग्रह हो तो कोश के बदले सेना तथा सेना के बदले कोश देने के वचन पर अन्य सामन्त से ले ले। उनमें अधिक बल वाले को अधिक, समान बल वाले को समान और हीन बल वाले को न्यून भाग देना निश्चित करे। ऐसी यह तीन प्रकार की संधि 'सम' कही जाती है। यदि अधिक बल वाले को न्यून, हीन बल वाले को अधिक एवं समान बल वाले को न्यून या अधिक भाग देना 'विषमसंधि' है। सम और विषम संधियों में निश्चित हुए भाग से अधिक देने को अतिसन्धि मानते हैं। उक्त संधियों के सहित कुल संधियाँ अठारह प्रकार की मानी गई हैं। व्यसनी, विनाशक कार्यों एवं अनर्थों में आसक्त, अधिशक्ति सामन्त से हीन शक्ति विजिगीषु सेना के समान लाभ के आधार पर सेना संधि करे। जब संधि होजाय तब अधिक बल वाला सामन्त विजिगीषु के अनिष्ट करने में समर्थ हो तो युद्ध छेड़ दे, अन्यथा संधि ही कर ले। अब सम संधि के विषय में कहेंगे। इस प्रकार व्यसनादि से अभिभूत हीन बल वाला अपने विगत प्रताप की पूर्ति के लिए एवं संभाव्य अर्थ के ग्रहण करने के निमित्त मूल और पार्ष्णि-रक्षण के उद्देश्य से सेना की अपेक्षा अधिक भाग देने के वचन पर अधिक बल वाले के साथ संधि कर ले। फिर हीन बल वाला यदि शुद्ध बुद्धि से संधि का पालन करता रहे तो अधिक बल वाला उस पर अनुग्रह रखे, अन्यथा उस पर हमला करदे।

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमुपस्थितानर्थं वा ज्यायांसं हीनो दुर्गमित्रप्रतिस्तब्धो वा ह्रस्वमध्वानं यातुकामः शत्रुयुद्धमेकान्त-सिद्धिं लाभमादातुकामो बलसमाद्धीनेन लाभेन पणेत। पणिनस्त-स्यापकारसमर्थो विक्रमेत। अन्यथा सन्दध्यात्। अरन्ध्रव्यसनो वा ज्यायान् दूरारब्धकर्माणं भूयः क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामो दूष्य-दण्डं प्रवासयितुकामो दूष्यदण्डमावाहयितुकामो वा पीडनीय-मुच्छेदनीयं वा हीनेन व्यथयितुकामः सन्धिप्रधानो वा कल्याण-बुद्धिः हीनं लाभं प्रतिगृह्णीयात्। कल्याणबुद्धिना सम्भूयार्थं

लिप्सेत। अन्यथा विक्रमेत। एवं समः सममतिः संदध्यादनुगृह्णीयाद्वा।

जिसके अमात्य आदि व्यसनों में पड़े हों और जिस पर कोई भारी संकट आ रहा हो ऐसे अधिक बल वाले एवं दृढ़ दुर्ग और मित्र-बल के कारण मदोन्मत्त तथा युद्ध से विरक्त शत्रु पर कुछ दूर तक बढ़ कर हीनबल विजिगीषु सेना की अपेक्षा अल्प लाभ मिले तो भी सन्धि कर ले। कालान्तर में जब शत्रु के अपकार करने में स्वयं समर्थ हो जाय तो उस पर आक्रमण कर दे, अन्यथा वचन-पालन पूर्वक मौन बैठा रहे। संकट-रहित एवं अधिक बलवान राजा किसी दूषित कार्य की इच्छा वाले शत्रु को सेना के पुनः विकास के बहाने धन के व्यय में लगा दे अपने दूषित (विरोधी) सैनिकों को निकालने तथा शत्रु के दूषित सैनिकों को आश्रय देने की इच्छा वाला, पीड़न और उच्छेद के योग्य शत्रु को हीनबल द्वारा उत्पीडित और नष्ट कराने के उद्देश्य से युक्त एवं सन्धि को श्रेष्ठ समझने वाला श्रेयबुद्धि अत्यन्त शक्ति सम्पन्न होता हुआ भी अल्प लाभ पर सन्तोष कर ले। कल्याण की कामना वाले राजा को हीनबल की सदैव सहायता करनी चाहिए। किन्तु हीनबल के दुष्ट होने पर उस पर हमला कर दे। समान बल वाले के साथ भी दुष्ट बुद्धि और सद्बुद्धि देख कर ही सन्धि या विग्रह करना उचित है।

परानीकस्य प्रत्यनीकं मित्राटवीनां वा शत्रोर्विभूमीनां देशिकं मूलपार्ष्णित्राणार्थं वा समः समबलेन लाभेन पणेत। पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयादन्यथा विक्रमेत। जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमनेकावरुद्धमन्यतो लभमानो वा समः समबलाद्धीनेन लाभेन पणेत। पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत, अन्यथा सन्दध्यात्। एवंभूतो वा समः सामन्तायत्तकार्यः कर्तव्यबलो वा बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत। पणितः कल्याणबुद्धिमनुगृह्णीयादन्यथा विक्रमेत।

शत्रु-सेना, शत्रु के मित्रों और आटविकों से समर्थ, शत्रु के पर्वत एवं स्थल आदि के स्थानों को ठीक प्रकार से जानने वाले या अपने मूल और पार्ष्णि के रक्षार्थ समान बल वाला राजा समान लाभ के आधार पर सन्धि करे। तत्पश्चात् समशक्ति के कल्याणबुद्धि सिद्ध होने पर उससे मेल रखे, किन्तु दूषितबुद्धि होने पर हमला बोल दे। अमात्यादि के रोष या विपत्ति में पड़े और अनेक सामन्तों के विरोधी समशक्ति सामन्त से अल्प लाभ होने पर भी सन्धि कर ले। तत्पश्चात् उसका अपकार करना अभीष्ट हो और स्वयं में सामर्थ्य हो जाय तो आक्रमण कर दे, अन्यथा मौनावलम्बी रहे। इसी प्रकार संकटग्रस्त समशक्ति विजिगीषु अपने सामन्त की सहायता लेकर अपनी सेना को कार्य में संलग्न रखता हुआ समान बल वाले से अधिक लाभांश प्राप्त करने के वचन पर समझौता कर ले। कालान्तर में यदि अपना बल अधिक बढ़ जाय तो विरोधी के शुद्ध बुद्धि होने पर अनुग्रह करे, अन्यथा आक्रमण कर दे।

जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रमभिहन्तुकामः स्वारब्धमेकान्तसिद्धिं वाऽस्य कर्मोपहन्तुकामो मूले यात्रायां वा प्रहर्तुकामो यातव्याद्भूयो लभमानो वा ज्यायांसं हीनं समं वा याचेत। भूयो वा याचितः स्वबलरक्षार्थं दुर्घर्षमन्यदुर्गमासारमटवीं वा परदण्डेन मर्दितुकामः प्रकृष्टेऽध्वनि काले वा परदण्डं क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामः परदण्डेन वा विवृद्धस्तमेवोच्छेत्तुकामः परदण्डमादातुकामो वा भूयो दद्यात्।

अथवा संकटग्रस्त एवं प्रकृतिवर्ग के कोप संत्रस्त, अधिक बल, समबल और हीनबल वाले के नाश का इच्छुक एवं शत्रु के कार्यों को नष्ट करने तथा शत्रु के आक्रमण काल में उसकी सेना के अगले भाग पर प्रहार करने या यातव्य से अधिकाधिक लाभ का इच्छुक हो तो अतिबल, समबल या हीनबल से अधिक धन माँगे। जब इस प्रकार से धन की माँग करने पर यदि वह अपनी सेना की रक्षा और दूसरे सामन्त के

दृढ़ दुर्ग एवं उसके मित्र आटविकों को यातव्य की सेना द्वारा मर्दन कराना हो या बहुत दूर देश में अधिक काल तक यातव्य की सेना एवं धन को नष्ट करने की इच्छा हो अथवा यातव्य की सेना द्वारा अपनी बल-वृद्धि करके उसके नाश की इच्छा हो, अथवा शत्रु को हाथ में करने का विचार हो तो विजिगीषु को इच्छित धन देकर सन्धि कर ले।

ज्यायान् वा हीनं यातव्यापदेशेन हस्ते कर्तुकामः परमुच्छिद्य वा तमेवोच्छेत्तुकामः त्यागं वा कृत्वा प्रत्यादातुकामो बलसमाद्विशिष्टेन लाभेन पणेत। पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत, अन्यथा सन्दध्यात्। यातव्यसंहितो वा सन्तिष्ठेत्। दूष्याटवीदण्डं वाऽस्मै दद्यात्। जातव्यसनप्रकृतिरन्ध्रो वा ज्यायान् हीनं बलसमेन लाभेन पणेत। पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत, अन्यथा सन्दध्यात्। एवंभूतं वा हीनं ज्यायान् बलसमाद्धीनेन लाभेन पणेत। पणितस्तस्यापकारसमर्थो विक्रमेत, अन्यथा सन्दध्यात्।

आदौ बुद्ध्येत पणितः पणमानश्च कारणम्।
ततो वितर्क्योभयतो यतः श्रेयस्ततो व्रजेत्॥

अथवा अधिक बल वाला विजिगीषु यदि शत्रु को नष्ट करने का भय दिखा कर उसे अपने वश में करना चाहे, या यातव्य को नष्ट करके उसे भी नष्ट कर देना चाहे या अधिक धन देकर उसे पुनः वापस लेने की इच्छा करे तो अधिक लाभ के वचन पर उस हीनबल के साथ सन्धि कर ले। तत्पश्चात् उसका अपकार करने में समर्थ हो तो युद्ध करे, अन्यथा मौन बैठा रहे। अथवा यदि वह सामंत यातव्य से सन्धि करके आसन का आश्रय लेकर मौन बैठे या अपने विरोधी एवं द्वेषी आटविक की सेना अपने अधिक बलवान विजिगीषु को सौंप दे। अथवा अधिक बली विजिगीषु जब किसी घोर विपत्ति तथा अमात्यादि के विरोधी होने से त्रस्त हो तब हीनबल वाले सामन्त से भी समान लाभ की इच्छा त्याग कर अल्प लाभ में ही सन्धि कर ले। फिर यदि उसका

अपकार करने की सामर्थ्य हो तो आक्रमण कर दे, अन्यथा सन्धि-पालन करता हुआ मौन रहे। संधि में आबद्ध होने की इच्छा वाले दोनों पक्ष प्रथम उक्त सन्धि के कारणों को समझ कर सन्धि-विग्रह की लाभ-हानि का ठीक प्रकार से विवेचन करें और फिर जिसमें अपनी भलाई दिखाई देती हो, वैसा ही करें।

अष्टमोऽध्यायः

यातव्यवृत्ति एवं अनुग्राह्यमित्रविशेष

यातव्योऽभियास्यमानः सन्धिकारणमादातुकामो विहन्तुकामो वा सामवायिकानामन्यतमं लाभद्वैगुण्येन पणेत। प्रपणितः क्षयव्ययप्रवासप्रत्यवायपरोपकारशरीरबाधांश्चास्य वर्णयेत्। प्रतिपन्नमर्थेन योजयेत्। वैरं वा परैर्ग्राहयित्वा विसंवादयेत्। दुरारब्धकर्माणं भूयः क्षयव्ययाभ्यां योक्तुकामः स्वारब्धायां यात्रायां सिद्धिं विघातयितुकामो मूले यात्रायां वा प्रतिहर्तुकामो यातव्यसहितः पुनर्याचितुकामः प्रत्युत्पन्नार्थकृच्छ्रस्तस्मिन्नविश्वस्तो वा तदात्वे लाभमल्पमिच्छेदायत्यां प्रभूतम्।

जिस राजा पर कोई आक्रमण करना चाहे और वही राजा स्वयं आक्रमण कर दे तो भले ही सन्धि के कारणों को माने या न माने, किन्तु विपक्षी राजाओं में से किसी एक से दूने लाभ के वचन के साथ सन्धि कर ले और फिर उस सामन्त को सैन्य-नाश, धन-व्यय, प्रवास, मार्ग के कष्ट, परोपकार एवं शारीरिक बाधा का पूरा विवरण बता दे। जब वह सामन्त उसे स्वीकार कर ले, तब वह धन उसे दे दे और न स्वीकार करे तो अन्य शत्रु से उसका कलह कराके सन्धि तोड़ दे। संगठित सामन्तों में से उक्त सामन्त देश-काल के विरुद्ध चढ़ाई के लिए तैयार शत्रु को अधिक धन जन को नष्ट करने में प्रोत्साहन देने की इच्छा से या अभियान के लिए प्रस्तुत संगठित शत्रुओं का श्रेष्ठ फल मिटाने की कामना से अथवा अभियान के अनन्तर शत्रु

के दुर्ग और नगर पर चोट करने के विचार से थोड़ा धन लेकर भी सन्धि कर ले। तदनन्तर अधिक धन लेने की इच्छा हो तो स्वयं पर आने वाली विपत्ति का अनुमान करके और सन्धि में बँधे यातव्य के प्रति वचनानुसार प्राप्त होने वाले धन पर भरोसा न करता हुआ तत्काल थोड़ा लाभ और भविष्य में प्रभूत लाभ की अभिलाषा करे।

मित्रोपकारममित्रोपघातमर्थानुबन्धमवेक्षमाणः पूर्वोपकारकं कारयितुकामो भूयस्तदात्वे महान्तं लाभमुत्सृज्यात्यामल्पमिच्छेत्। दूष्यामित्राभ्यां मूलहरेण वा ज्यायसा विगृहीतं त्रातुकामस्तथाविधमुपकारं कारयितुकामः सम्बन्धापेक्षी वा तदात्वे च लाभं न प्रतिगृह्णीयात्।

मित्र का उपकार और अमित्र का उपघात लाभदायक होगा, इस पर विचार करके या पहिले किए हुए उपकारी को अधिक उपकार करने के लिए तैयार करने की कामना से वह सामन्त तत्कालीन विशेष लाभ की अभिलाषा छोड़ कर भविष्य में होने वाले न्यून लाभ की इच्छा करे। अथवा दूष्य और अमित्र द्वारा मूल हरण करने वाले अधिक बली राजा से युद्ध में लगा हुआ यातव्य की रक्षा करने का विचार करता हुआ या किसी अन्य के द्वारा उस पर वैसा उपकार कराने की इच्छा करता हुआ अथवा यातव्य के साथ विवाहादि सम्बन्धों की इच्छा करके तत्कालीन या भविष्य में मिलने योग्य लाभ को न ले।

कृतसन्धिरतिक्रमितुकामः परस्य प्रकृतिकर्शनं मित्रामित्रसन्धिविश्लेषणं वा कर्तुकामः पराभियोगाच्छङ्कमानो लाभमप्राप्तमधिकं याचेत। तमितरस्तदात्वे च आयत्यां च क्रममवेक्षेत। तेन पूर्वे व्याख्याताः। अरिविजिगीष्वोस्तु स्वं स्वं मित्रमनुगृह्णतोः शक्याशक्यकल्यभव्यारम्भिस्थिरकर्मानुरक्तप्रकृतिभ्यो विशेषः। शक्यारम्भी विषह्यं कर्मारभेत। कल्यारम्भी निर्दोषम्। भव्यारम्भी कल्याणोदयम्। स्थिरकर्मा नासमाप्य कर्मोपरमते। अनुरक्तप्रकृतिः

मुसहायत्वादल्पेनाप्यनुग्रहेण कार्यं साधयति । त एते कृतार्थाः सुखेनप्रभूतं चोपकुर्वन्ति । अतः प्रतिलोमेनानुग्राह्याः ।

यदि कृत सन्धि को तोड़ने और शत्रु के मंत्रिवर्ग को उत्साहहीन करने की इच्छा हो तो अपने पर अन्य शत्रु द्वारा आक्रमण करने की आशंका व्यक्त करके अप्राप्त लाभ से अधिक धन माँगे । जब ऐसा हो तब जिससे धन की माँग की गई है, वह वर्तमान और भविष्य में संभाव्य लाभ-हानि पर भले प्रकार विचार करे । तभी पहले कहे हुए तीन प्रकार के लाभ और हानि पर भी विचार किया जाय । शत्रु एवं विजिगीषु यदि अपने-अपने मित्र पर कृपा करना चाहते हों तो वे शक्यारम्भी, कल्यारम्भी, भव्यारम्भी, स्थिरकर्मा तथा अनुरक्त प्रकृति मित्रों पर ही विशेष रूप से कृपा रखें । 'शक्यारम्भी' वह है जो अपने ही सामर्थ्य से साध्य किसी कार्य का आरम्भ करे और 'कल्यारम्भी' वह है जिसके द्वारा निर्दोष कार्य का प्रारम्भ हुआ हो । जिस कार्य से भविष्य में कल्याण रूप फल की प्राप्ति हो सके उसे प्रारम्भ करने वाले को 'भव्यारम्भी' और जिस कार्य को आरम्भ कर दे उसे पूरा किये बिना अर्थात् अधूरा न छोड़ने वाले को 'स्थिरकर्मा' कहते हैं । जो अनायास ही अल्प सैन्य बल आदि की प्राप्ति पर सहायक होकर कार्य को पूर्ण करते हैं, वे 'अनुरक्त प्रकृति' कहे जाते हैं । यदि इन पाँच प्रकार के मित्रों पर अनुग्रह किया जाय तो यह सुखपूर्वक प्रभूत सहायता देने वाले सिद्ध होते हैं । किन्तु इनसे विपरीतों पर कभी अनुग्रह नहीं करना चाहिये ।

तयोरेकपुरुषानुग्रहे यो मित्रं मित्रतरं वाऽनुगृह्णाति सोऽतिसन्धत्ते । मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति । क्षयव्ययप्रवासपरोपकारान् इतरः । कृतार्थश्च शत्रुर्वैगुण्यमेति । मध्यमं । त्वनुगृह्णतोर्यो मध्यम मित्रं मित्रतरं वाऽनुगृह्णाति सोऽतिसन्धत्ते । मित्रादात्मवृद्धिं हि प्राप्नोति । क्षयव्ययप्रवासपरोपकारानितरः। मध्यमश्चे-

दनु गृहीतो विगुणः स्यादमित्रोऽतिसधत्ते । क्रमप्रयासं हि मध्य-मामित्रपसृतमेकार्थोपगतं प्राप्नोति । तेनोदासोनानुग्रहो व्याख्यातः।

यदि शत्रु और विजिगीषु दोनों एक पर ही अनुग्रह की इच्छा करते हों तो जो मित्र अत्यन्त मित्र हो उसी पर अनुग्रह करे, क्योंकि वह अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। क्योंकि मित्र सदैव वृद्धि करने वाला ही होता है। मित्र को छोड़ कर शत्रु पर जो अनुग्रह करता हैं उसका लाक्क्षय, धननाश होकर प्रवास और शत्रु के प्रति उपकार करने की स्थिति आ जाती है। अपना काम निकलत ही शत्र बदल जाता है। किन्तु शत्रु और विजिगीषु मध्यम राजा पर अनुग्रह करना चाहें तो भी मित्र से भी बढ़ कर मित्र हो तभी उस पर अनुग्रह करें। क्योंकि मित्र से अपनी वृद्धि संभव है और शत्रु से लोकक्षय, धनक्षय, प्रवास और शत्रु के उपकार जैसे कार्य करने पडते हैं। यदि अनुग्रहीत मध्यम विरोधो हो जाय वह अपने शत्रु पक्ष को ही लाभ पहुँचाता है। क्योंकि पहिली मित्रता छोड़ कर शत्रु बना मध्यम अपने समान उद्देश्य वाले से मित्रता कर लेता है। यही बात उदासीन पर अनुग्रह करने के विषय में भी लागू होती है।

मध्यमोदासीनयोर्बलांशदाने यः शूरं कृतास्त्रं दुःखसहमनुरक्तं वा दण्डं ददाति सोऽतिसन्धीयते। विपरीतोऽतिसन्धत्ते। यत्र तु दण्डः प्रतिहतस्तं वा चार्थमन्यांश्च साधयति, तत्र मौलभृतश्रेणी-मित्राटवीबलानामन्यतममुपलब्धदेशकाल दण्डं दद्यात्। अमित्रा-टवीबलं वा व्यवहितदेशकालम् । यं तु मन्येत—'कृतार्थो मे दण्डं गृह्णीयादमित्राटव्यभूम्यनृतुषु वा वासयेदफल वा कुर्यादि' ति दण्डव्यासङ्गापदेशेन नैनमनुगृह्णीयात्।

जो मध्यम और उदासीन दोनों को सेना का कुछ अंश देने के विचार से शूरवीर, शस्त्रास्त्र में पारगत, दुःखों के सहने में समर्थ तथा स्वामिभक्त सैनिकों को दे देता है, वह मूर्खता वश ठगा जाता है। किन्तु इसके विपरीत दूष्य सैनिकों को दे देता है, वह लाभ में रहता है।

जिस कार्य के लिए प्रेषित सेना के नष्ट होने पर, उसी कार्य अथवा अन्य कार्य की पूर्ति के लिए उस समय मौलबल, भृतबल, श्रेणीबल, मित्रबल एवं अटवीबल में से किसी भी सेना को देश-कालानुसार भेजा जा सकता है। किन्तु ऐसी आशंका हो कि सहायता माँगने वाला कार्य की पूर्ति होने पर कहीं मेरी सेना न लौटावे या वन्य प्रदेश आदि दुर्गम स्थानों में मेरी सेना को नियुक्त करेगा और कार्य पूरा होने पर उसे बिना कुछ दिये लौटा देगा तो इस स्थिति में कुछ बहाना बना कर सैनिक सहायता न दे।

एवमवश्य त्वनुग्रहीतव्ये तत्कालसहमस्मै दण्डं दद्यात्। आसमाप्तेश्चैनं वासयेद्योधयेच्च, बलव्यसनेभ्यश्च रक्षेत्। कृतार्थाच्च सापदेशमवस्रावयेत्। दूष्यामित्राटवीदण्डं वाऽस्मै दद्यात्। यातव्येन वा सन्धायैनमतिसन्दध्यात्।

समे हि लाभे सन्धिः स्याद्विषमे विक्रमो मतः।
समहीनविशिष्टानामित्युक्तः सन्धिविक्रमः॥

किन्तु ऐसे को भी सहायता देने की आवश्यकता आ पड़े तो उस समय जो कार्य निकाल सके, वैसी सेना ही दे। जब तक उसके कार्य की सम्पन्नता न हो, तब तक उस सेना को सुविधाजनक स्थान पर रहने, युद्ध करने और विभिन्न विपत्तियों से सुरक्षित रखने का प्रयत्न करे। जब उसका कार्य पूर्ण हो जाय, तब तुरन्त किसी बहाने से अपनी सेना को वापिस बुला ले। फिर भी आवश्यक हो तो दूष्य, अमित्र या आटविक सैनिकों को उसे दे दे। अथवा यातव्य से सन्धि करके मध्यम या उदासीन से भी संधि करके लाभ उठावे। यदि दोनों पक्षों को समान लाभ हो तो तभी सन्धि करे, यदि स्वयं को अल्प लाभ हो तो आक्रमण कर दे। समबल, अतिबल और हीनबल के लिए संधि के यही नियम श्रेयस्कर हैं।

नवमोऽध्यायः

मित्र ,हिरण्य, भूमि एवं कर्म द्वारा सन्धि

संहितप्रयाणे मित्रहिरण्यभूमिलाभानामुत्तरोत्तरो लाभः श्रेयान् । मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवतः, मित्र हिरण्यलाभात्। यो वा लाभः सिद्धः शेषयोरन्यतरं साधयति । 'त्वं चाहं च मित्र लभावहे' इत्येवमादिः समसन्धिः। 'त्व मित्रम्' इत्येवमादिर्विषमसन्धिः । तयोर्विशेषलाभादतिसन्धि. । समसन्धौ तु यः सम्पन्नं मित्रं मित्रकृच्छ्रे वा मित्रवाप्नोति, सोऽतिसन्धत्तो । आपद्धि सौहृदस्थैर्यमुत्पादयति । मित्रकृच्छ्रेऽपि नित्यमवश्यमनित्यं वश्यं वेति । 'नित्यमविश्यं श्रेयः, तद्ध्यनुकुर्वदपि नापकरोति' इत्याचार्याः ।नेति कौटिल्यः—वश्यमनित्यं श्रेयो यावदुपकरोति तावन्मित्रंभवत्युपकारलक्षण मित्रमिति ।

अन्यान्य राजाओं के साथ मिल कर अभियान करने के विषय में मित्र, हिरण्य और भूमि में से उत्तरोत्तर अर्थात् मित्र की अपेक्षा हिरण्य और हिरण्य की अपेक्षा भूमि का लाभ श्रेष्ठ होता है । क्योंकि भूमिलाभ से मित्र और हिरण्य दोनों ही प्राप्त हो सकते हैं और हिरण्य से मित्र की प्राप्ति संभव है। अथवा जिस किसी एक लाभ की सिद्धि से ही शेष दो लाभ स्वतः सिद्ध होजाँय, वही लाभ श्रेष्ठ है । 'हम तुम दोनों हीं मित्र प्राप्त करेंगे' इस आधार से की गई 'समसंधि' है। 'हम-तुम दोनों हिरण्य या भूमि पायेंगे' यह भी समसंधि ही मानी जाती है। तुम मित्र प्राप्त करो, मैं हिरण्य या भूमि प्राप्त करूँगा या तुम हिरण्य अथवा भूमि प्राप्त करो, मैं मित्र प्राप्त करूँगा, इस प्रकार की शर्तों वाली विषम संधि होती है । उक्त दोनों प्रकार की संधियों में निश्चित लाभ से अधिक लाभ हो तो यह 'अतिसंधि' कही जायगी । इस संधि में नित्यत्वादि वैभव वाले मित्र को अथवा सकटग्रस्त मित्र को प्राप्त करने के कारण विशेष लाभ होता है । क्योंकि संकट से मित्र में दृढ़ता आ

जाती है। क्योंकि संकट काल में सहायता को प्राप्त हुआ मित्र, स्वतन्त्र रहता हुआ भी सदैव के लिए उसका अनुग्रहीत मित्र बन जाता है। जो मित्रता के बन्धन में नहीं बँधता वह सदा वश में रहा आता है। किन्तु श्रेष्ठ वही है जो वशवर्ती न रहता हुआ भी सदा के लिए सुहृद मित्र बन जाता है। यदि उसके द्वारा कोई उपकार न भी हो तो अपकार भी कभी नहीं हो सकता। यह पूर्वाचार्यों का मत है। किन्तु कौटिल्य इसे ठीक नहीं मानते। उनके अनुसार अपना वशवर्ती ही श्रेष्ठ मित्र हो सकता है, वह चाहे मित्रता के पाश में बँधे अथवा न बँधे। यदि उपकार करता है तो मित्र ही है, क्योंकि उपकार ही मैत्री का लक्षण समझा जाता है।

वश्ययोरपि महाभोगमनित्यमल्पभागं वा नित्यमिति। महाभोगमनित्यं श्रेयः महाभोगमनित्यमल्पकालेन महदुपकुर्वन्महान्ति व्ययस्थानानि प्रतिकरातीत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। नित्यमल्पभोगं श्रेयः। महाभोगमनित्यमुपकारभयादपक्रामति। उपकृत्य वा प्रत्यादातुमाहते। नित्यमल्पभोग सातत्यादल्पमुपकुर्वन्महता कालेन महदुपकराति।

यदि ऐसे दो राजा अपने वशीभूत होजाँय, जिनमें एक तो अल्प काल तक अधिक धन दे और दूसरा सदैव देते रहने के लिए अल्प धन दे—ऐसी स्थिति में किससे मेल करे? इस विषय में अन्य आचार्यों का मत है कि अधिक धन देने वाला चाहे अल्पकाल तक ही दे, उसी से संधि करे। क्योंकि अधिक लाभ से अधिक उपकार होता है और उससे बड़े-बड़े व्यय पूरे होजाते हैं किन्तु कौटिल्य इससे सहमत न होते हुए कहते हैं कि सदैव मिलता रहने वाला अल्प धन भी श्रेष्ठ है। अधिक धन देने वाला इस भय से मित्रता को शीघ्र तोड़ देता है कि कहीं मुझे और अधिक धन देने को विवश न किया जाय। अथवा वह प्रदत्त धन के बदले में कुछ लेने की भी कामना करता है। किन्तु सदा के लिए

मिलने वाला थोड़ा-थोड़ा धन भी चिरकाल तक कार्य-साधक रहता हुआ महान उपकार करने वाला सिद्ध होता है।

गुरुसमुत्थं महन्मित्रं लघुसमुत्थमल्पं वेति ? 'गुरुसमुत्थं महन्मित्रं प्रतापकरं भवति। यदा चोत्तिष्ठते, तदा कार्यं साधयति' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। लघुसमुत्थमल्पं श्रेयः, लघुसमुत्थाल्प मित्रं कार्यकालं नातिपातयति। दौर्बल्याच्च यथेष्टभोग्यं भवति, नेतरत् प्रकृष्टभौमम्। विक्षिप्तसैन्यमवश्यसैन्यं वेति ? 'विक्षिप्तं सैन्यं शक्यं प्रतिसंहर्तुं वश्यत्वात्' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः अवश्यसैन्यं श्रेयः। अवश्यं हि शक्यं सामादिभिर्वश्यं कर्तुं, नेतरत्कार्यव्यासक्तं प्रतिसंहर्तुम्।

अति प्रयत्न से जो सहायक बने वह महान् मित्र श्रेष्ठ होता है अथवा अल्प प्रयत्न से सहायक बने वह दुर्बल मित्र ? इस पर पूर्वाचार्य कहते हैं कि महान् बल वाला मित्र ही श्रेयस्कर है, चाहे वह बहुत प्रयत्नों के पश्चात् ही मित्र बना हो। क्योंकि उसके प्रयत्न करते ही कार्य सिद्ध हो जाता है। किन्तु आचार्य कौटिल्य इसे नहीं मानते। उनके मतानुसार अल्प प्रयत्न से ही जो मित्र बन जाय, वह दुर्बल होते हुए भी श्रेष्ठ है। क्योंकि वे दुर्बल मित्र कार्य के अवसर को हाथ से नहीं जाने देते और दुर्बल होने के कारण उससे इच्छानुसार कार्य लिया जा सकता है। किन्तु अति प्रयत्न से मित्र बना हुआ अतिबली उतना उपकारी सिद्ध नहीं हो सकेगा। जिस की सेना अपने वश में रह कर अनेक स्थानों पर बिखरी हुई हो वह मित्र अथवा जिसकी सेना अपने आश्रय में रह कर भी वश में न हो वह मित्र श्रेष्ठ होता है। इस विषय पर पूर्वाचार्य कहते हैं कि अनेक स्थानों पर बिखरी हुई जो मित्र-सेना अपने वश में हो, उसे जब चाहे एकत्र किया जा सकता है। किन्तु कौटिल्य इससे सहमत न होते हुए कहते हैं कि जो मित्रसेना एक स्थान अर्थात् अपने आश्रय में हो, उसे साम-दानादि उपायों के द्वारा वश में किया जा सकता है, इसलिये वही मित्र अधिक कल्याणकारी सिद्ध होगा।

क्योंकि अनेक स्थानों पर बिखरी हुई सेना विभिन्न कार्यों में नियुक्त रहने के कारण शीघ्र ही एकत्र नहीं हो पायेगी। इसीलिए श्रेयास्पद सिद्ध नहीं होगी।

पुरुषभोगं हिरण्यभोगं वा मित्रमिति? 'पुरुषभोग मित्रं श्रेयः, पुरुषभोगं मित्रं प्रतापकरं भवति। यदा चोत्तिष्ठते तदा कार्यं साधयति' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः—हिरण्यभोगं मित्रं श्रेयः, नित्यो 'हिरण्येन योगः कदाचित् दण्डेन दण्डश्च हिरण्येनान्ये च कामाः प्राप्यन्त' इति। 'हिरण्यभोगं भूमिभोगं वा मित्रमिति ?' 'हिरण्यभोगं गतिमत्त्वात्सर्वव्ययप्रतीकारकरम्' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः-'मित्रहिरण्ये हि भूमिलाभाद्भवतः' इत्युक्तं पुरस्तात्। तस्माद्भूमिभोगं मित्रं श्रेत इति। तुल्ये पुरुषभोगे विक्रमः क्लेशसहत्वमनुरागः सर्वबललाभो वा मित्रकुलाद्विशेषः। तुल्ये हिरण्यभोगे प्रार्थितार्थता प्राभूत्यमल्पप्रयासता सातत्यं च विशेषः। तत्रैतद्भवति—

सैनिक सहायता देने वाले और आर्थिक सहायता देने वाले मित्रों में कौन-सा श्रेष्ठ है ? इस विषय में अन्यान्य आचार्यों का मत है कि सैनिक सहायता देने वाला 'पुरुषभोग' संज्ञक मित्र ही अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि वह शत्रु पर प्रभाव डालने में अधिक समर्थ होगा। जब वह कार्य पड़ने पर आ खड़ा होगा तो कार्य को ठीक प्रकार से सम्पन्न कर सकेगा। पर, कौटिल्य कहते हैं कि नहीं, धन की सहायता करने वाला मित्र ही अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि धन नित्य उपभोग की वस्तु है, जब कि सेना का उपयोग कभी-कभी ही होता है तथा धन से सेना भी संग्रहीत की जा सकती और अन्यान्य कार्य भी पूरे किये जा सकते हैं। किन्तु सेना से धन या अन्य उपयोगी वस्तुएं एकत्र नहीं की जा सकतीं। अब इस पर विचार करते हैं कि धन द्वारा उपकार करने वाला मित्र श्रेष्ठ है या भूमि देकर उपकार करने वाला ? इस विषय में अन्य आचार्य कहते हैं कि धन द्वारा उपकार वाला मित्र सर्वत्र गति वाला और सब

प्रकार के व्ययों में उपयोगी रहता है, जिससे सब प्रकार के संकट दूर किये जा सकते हैं। किन्तु भूमि स्थिर होती है, जिससे कि उक्त कार्य होना संभव नहीं। पर कौटिल्य इस मत को न मानते हुए कहते हैं कि भूमि से धन और मित्र दोनों ही मिल सकते हैं, यह पहिले भी कह चुके हैं। अतः भूमि देने वाला मित्र ही श्रेष्ठ होता है। यदि दो मित्र समान रूप से सैनिक सहायता देने का विचार करते हों तो उन में सामान्य सैनिक सहायता देने वाले की अपेक्षा उसी को विशिष्ट माने जो वीर, कष्ट सहने वाले, स्नेहयुक्त सैनिकों को दे सके। यदि दो मित्र समान रूप से धन देना चाहें तो उसे ही सर्व श्रेष्ठ समझे जो प्रभूत एवं यथेच्छ धन देने में समर्थ हो तथा अल्प प्रयत्न से ही कार्य सिद्धि और सदैव उपकार कर सके तो सामान्य श्रेणी के मित्रों की अपेक्षा उसे ही श्रेष्ठ समझे। अब मित्रों और उनके गुणों का निरूपण करेंगे।

नित्यं वश्यं लघूत्थानं पितृपैतामहं महत्।
अद्वैध्यं चेति सम्पन्नं मित्रं षडगुणमुच्यते ॥१
ऋते यदर्थं प्रणयाद्रक्ष्यते यच्च रक्षति।
पूर्वोपचितसम्बन्धं तन्मित्रं नित्यमुच्यते ॥२
सर्वचित्रमहाभोग त्रिविधं वश्यमुच्यते।
एकतोभोग्युभयतः सर्वतोभोगि चापरम् ॥३
आदातृ वा दात्रपि वा जीवत्यरिषु हिंसया।
मित्रं नित्यमवश्यं तद्दुर्गाटव्यपसारि च ॥४
अन्यतो विगृहीतं यल्लघुव्यसनमेव वा।
सन्धत्ते चोपकाराय तन्मित्रं वश्यमध्रुवम् ॥५

नित्य, वश्य, लघूत्थान, पिता-पितामह से क्रमागत, महान् एवं द्विविधाहीन मित्र को छः गुण युक्त विशिष्ट मित्र कहा गया है। धनादि सम्बन्ध के बिना ही पूर्वोत्पन्न प्रणय-सम्बन्ध के कारण जो मित्र स्नेहपूर्वक विजिगीषु से रक्षित रहता तथा स्वयं भी विजिगीषु की रक्षा करता है वह नित्यमित्र कहा जाता है। सर्वभोग, चित्रभोग, महाभोग

के भेद से अर्थमय वश्य मित्र के तीन प्रकार माने गये हैं। उनमें सेना, कोश और भूमि देकर उपकार करने वाला मित्र सर्वभोग और सार-असार वस्तुओं से सहायता करने वाला चित्रभोग कहा गया है। जो केवल सेना या कोश से सहायता करे वह मित्र महाभोग संज्ञक है। अनर्थमय वश्य मित्र भी एकतोभोगी, उभयतोभोगी और सर्वतोभोगी के भेद से तीन प्रकार के ही हैं। उनमें केवल शत्रु का प्रतीकार करने वाला एकतोभोगी, शत्रु और उसके साथी मित्रों का प्रतीकार करने वाला उभयतोभोगी और शत्रु तथा उसके विरोधी आटविकादि का भी प्रतीकार करने वाला सर्वतोभोगी कहा जाता है। जो विजिगीषु का उपकार न करके भी शत्रुओं को लूट-मार कर अपनी जीविका चलाता है और किसी दुर्ग या वन आदि में रह कर अपनी रक्षा करता है, वह नित्य-अवश्य मित्र कहा जाता है। जो शत्रु द्वारा आक्रान्त और अल्प संकट में पड़ा रह कर भी उपकारार्थ विजिगीषु से सन्धि करता है वह अध्रुव-अवश्य मित्र माना जाता है। लघूत्थान अर्थात् विना प्रयास के जो सेना को सदा तैयार रखे, पितृपैतामह अर्थात् पिता-पितामह से क्रमागत तथा महत् अर्थात् अत्यन्त प्रतापी और अधिक सेना से सम्पन्न की सरलार्थक होने से मूलग्रन्थ में व्याख्या नहीं की गई। अब अद्वैध्य मित्र का लक्षण कहेंगे ॥१-५॥

एकार्थानर्थसम्बन्धमुपकार्यविकारि च।
मित्रभावि भवत्येतन्मित्रमद्वैध्यमापदि ॥६
मित्रभावाद्ध्रुव मित्रं शत्रुसाधारणाच्चलम्।
न कस्यचिदुदासीनं द्वयोरुभयभावि तत् ॥७
विजीगीषोरमित्रं यन्मित्रमन्तर्धिनां गतम्।
उपकारे निविष्टं वाऽशक्तं वाऽनुपकारि तत् ॥८
प्रियं परस्य वा रक्ष्यं पूज्यसम्बन्धमेव वा।
अनुगृह्णाति यन्मित्रं शत्रुसाधारणं हि तत् ॥९

प्रकृष्टभौमं सन्तुष्टं बलवच्चालसं च यत् ।
उदासीनं भवत्येतद्व्यसनादवमानितम् ॥१०
अरेर्नेतुश्च यद्वृद्धिं दौर्बल्यादनुवर्तते ।
उभयस्याप्यविद्विष्टं विद्यादुभयभावि तत् ॥११
कारणाकरणध्वस्तं कारणाकरणागतम् ।
यो मित्रं समुपेक्षेत स मृत्युमुपगूहति ॥१२

जो मित्र के सुख-दुःख को अपने के समान अनुभव करे, जो सदा मित्र के उपकार में लगा रहे, जो अपने चित्त में विकार न आने दे और मित्र पर विपत्ति आ जाय तो उससे दूर न हटे, वह अद्वैध्य मित्र है। इससे मित्रता का नित्य सम्बन्ध रहने के कारण उसे मित्रभावी भी कहते हैं। जो विजिगीषु को मित्र बना कर नित्य और शत्रु को मित्र बना कर अनित्य संज्ञक होता हुआ दोनों में से किसी का भी उपकार न कर सकने के कारण उदासीन रहा आवे वह उभयभावी मित्र है। जो विजिगीषु की सीमा से लगी भूमि पर राज्य करता हुआ अमित्र और शत्रु तथा विजिगीषु के मध्य होने के कारण मित्र बन कर दोनों के उपकार में असमर्थ रहने के कारण उभयभावी ही कहा जाता है। जो विजिगीषु का मित्र और शत्रु का प्रिय, किन्तु रक्षा किये जाने के योग्य है और जिसका शत्रु के साथ कोई पूजनीय सम्बन्ध भी हो, वह विजिगीषु और शत्रु दोनों के ही उपकार में समर्थ उभयभावी ही कहा जायगा। उत्कृष्ट भूमि वाला, दूर देश का निवासी, स्थायीलाभ से सन्तुष्ट, बली, आलसी एवं किसी व्यसनादि के कारण तिरस्कृत मित्र भी उपकार करने में उदासीन रहने से उभयभावी है। जो अपनी दुर्बलता के कारण शत्रु और विजिगीषु दोनों का भला बना रहना चाहता हो या किसी से द्वेष न कर दोनों की उन्नति की कामना करता हो वह भी उभयभावी कहा जाता है। जो मित्र अकारण ही मित्र का त्याग कर दे और अकारण ही आ मिले ऐसे मित्र को पुनः स्वीकार कर लेना मृत्यु का वरण कर लेने के समान ही अकल्याणकारी है ॥६-१२॥

क्षिप्रमल्पो लाभश्चिरान्महानिति वा। 'क्षिप्रमल्पो लाभः कार्यदेशकालसंपादकः श्रेयान्' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। चिरादविनिपाती बीजसधर्मा महान् लाभः श्रेयान्, विपर्यये पूर्वः।

एवं दृष्ट्वा ध्रुवे लाभे लाभांशे च गुणोदयम्।
स्वार्थसिद्धिपरो यायात्संहितः सामवायिकैः ॥१३

अल्प समय में प्राप्त लाभ या अधिक समय में प्राप्त अति लाभ विशेष कल्याणकारी होता है ? इस विषय पर अन्यान्य आचार्य कहते हैं कि अल्प समय में प्राप्त लाभ से कार्य के साधन में देश-काल का सुयोग हो सकता है। इसीलिए वह अधिक श्रेयस्कर है। किन्तु कौटिल्य इसे न मानते हुए कहते हैं कि अधिक समय में प्राप्त अधिक लाभ यदि अन्नादि के बीज के समान नाशवान न हो अर्थात् चिरस्थायी हो तभी विशेष श्रेयस्कर होगा। किन्तु यदि वह लाभ नाशवान या बाधाओं से युक्त है तो अल्प कालीन अल्प लाभ ही विशिष्ट है। इस प्रकार मित्र, हिरण्य एवं भूमि रूपी लाभ तथा लाभांश से विशेष गुणों की उत्पत्ति का प्रकार विचार करके ही विजिगीषु सन्धि करे या फिर अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए कटिबद्ध हो कर आक्रमण कर दे ॥१३॥

दशमोऽध्यायः

भूमिसन्धि

'त्वं चाहं च भूमिं लभावहे' इति भूमिसन्धिः। तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थः सम्पन्नां भूमिमवाप्नोति सोऽतिसन्धत्ते। तुल्ये सम्पन्नालाभे यो बलवन्तमाक्रम्य भूमिमवाप्नोति, सोऽतिसन्धत्ते। भूमिलाभं शत्रुकर्शनं प्रतापं च हि प्राप्नोति। दुर्बलाद्भूमिलाभे सत्यं सौकर्यं च भवति। दुर्बल एव भूमिलाभः, तत्सामन्तश्च मित्रममित्रभावं गच्छति। तुल्ये बलीयस्त्वे यः स्थिरं शत्रुमुत्पाट्य भूमिमवाप्नोति, सोऽतिसन्धत्ते। दुर्गावाप्तिर्हि स्वभूमिरक्षणममित्राटवीप्रतिषेधं च करोति।

अब भूमि सन्धि के विषय पर प्रकाश डालेंगे। 'हम-तुम दोनों ही भूमि लेंगे' ऐसी शर्त वाली सन्धि ही भूमिसन्धि है। इस शर्त में बँधे हुए दोनों पक्षों में जो आवश्यक धन-जन एकत्र भूमि लाभ में समर्थ हो, वही अधिक लाभ पाता है। दोनों पक्षों को समान भूमिलाभ होने के पश्चात् भी शत्रु पर हमला करके भूमि प्राप्त करने वाला पक्ष अधिक लाभ का अधिकारी होगा। क्योंकि वह भूमि प्राप्त करने के साथ ही शत्रु का दमन हो जाने से प्रभाव भी बढ़ता है। यद्यपि दुर्बल शत्रु से भूमि लेना सुगम है, किन्तु वैसा लाभ निकृष्ट समझा जाता है। क्योंकि उसे दुर्बल के प्रति हुआ अत्याचार समझ कर उसके पड़ौसी मित्र राजा विरुद्ध हो सकते हैं। समान बल वाले दो पक्षों में से जो पक्ष सुदृढ़ रूप से दुर्ग आदि में सुरक्षित शत्रु को हरा कर भूमिलाभ करे तो उसे विशेष लाभ होता है। किन्तु शत्रु-दुर्ग पर अधिकार करते हुए उसे अपनी भूमि की रक्षा तथा अमित्रों और आटविकों आदि के प्रतिरोध को भी रोकना होता है

चलामित्राद्भूमिलाभे शक्यसामन्ततो विशेषः। दुर्बलसामन्ता हि क्षिप्राप्यायनयोगक्षेमा भवन्ति। विपरीता बलवत्सामन्ता कोशदण्डावच्छेदिनी च भूमिर्भवति। सम्पन्ना नित्यामित्रा मन्द-गुणा वा भूमिरनित्यामित्रेति। 'सम्पन्ना नित्यामित्रा श्रेयसी भूमिः। सम्पन्ना हि कोशदण्डौ सम्पादयति। तौ चामित्रप्रति-घातकौ' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः—नित्यामित्रालाभे भूया-ऽछत्रुलाभो भवति। नित्यश्च शत्रुरुपकृते च शत्रुरेव भवति। अनित्यस्तु शत्रुरुपकारादनपकाराद्वा शाम्यति। यस्या हि भूमे-र्दुर्गाश्चोरगणैर्म्लेच्छाटवीभिर्वा नित्याविरहिताः प्रत्यन्ताः सा नित्यामित्रा। विपर्यये त्वनित्यामित्रेति।

चल अर्थात् दुर्ग आदि से विहीन अमित्र से समान लाभ हो तो भी जो दुर्बलता के कारण सुगमता से पराजित हो जाता है, उससे मिलने वाली भूमि विशेष लाभ वाली रहती है। क्योंकि उस लाभ में

धन-जन की कम हानि होने से योग-क्षेम की वृद्धि होती है। जिस भूमि का स्वामी प्रबल होता है, उसकी भूमि दीर्घकाल के पश्चात् लाभ दे सकती है। क्योंकि उसे प्राप्त करने में अधिक कोश और सेना नष्ट करनी होती है। सम्पन्नतायुक्त नित्य अमित्र वाली या अल्प समृद्धियुक्त अनित्य मित्र वाली भूमि का मिलना भी अधिक कल्याणकारी हो सकता है। पूर्वाचार्यों के मत में समृद्धियुक्त एवं नित्य अमित्रयुक्त भूमि अधिक श्रेयसी होती है। क्योंकि समृद्ध भूमि कोश और सेना को बढ़ाने में सहायक होती है, जिससे कि अमित्रों का उच्छेद सुगम होता है। किन्तु कौटिल्य कहते हैं कि यह मत ठीक नहीं है, नित्य अमित्र वाली भूमि का लाभ शत्रु को ही अधिक लाभकारी होता है। क्योंकि नित्य अमित्र पर उपकार करे या अपकार, वह अपनी शत्रुता को नहीं छोड़ता। किन्तु अनित्य शत्रु उपकार से शान्त और अपकार से रुष्ट हो जाता है। अब नित्य अमित्रा और अनित्य मित्रा भूमि के विषय में कहते हैं कि जिस भूमि का सीमान्त प्रदेश अनेक दुर्गों से युक्त हो और जो चोरों, म्लेच्छों तथा आटविकों से आक्रान्ता हो वह भूमि नित्य-अमित्रा कही जाती है। किन्तु जिसके सीमान्त प्रदेश पर दुर्ग आदि न हों और जिस पर चोरों आदि का भी अभाव हो, उन भूमि को अनित्यामित्रा कहते हैं।

अल्पा प्रत्यासन्ना महति व्यवहिता वा भूमिरिति। अल्पा प्रत्यासन्ना श्रेयसी। सुखा हि प्राप्तुं पालयितुमभिसारयितुं च भवति। विपरीता व्यवहिता। व्यवहिताव्यवहितयोरपि दण्ड-धारणात्मधारणा वा भूमिरीति? आत्मधारणा श्रेयसी। सा हि स्वसमुत्थाभ्यां कोशदण्डाभ्यां धार्यते। विपरीता दण्डधारणा दण्डस्थानमिति।

अपने राज्य की सीमा के निकट की अल्प भूमि अथवा दूर स्थित बड़ी भूमि का लाभ श्रेयस्कर होता है। क्योंकि राज्य से लगी होने से वह सहज में ही मिल सकती और उसकी रक्षा भी सुगमता से हो

सकती है। आवश्यकता के समय वहाँ पहुँचने में विलम्ब भी नहीं होता। किन्तु दूर की भूमि इतनी सुविधामयी नहीं हो सकती। दूर की या निकट की भूमि में से वही अधिक श्रेयसी समझी जाती है जो अपने कोश और सेना द्वारा सब प्रकार से सुरक्षित रहे। इसे 'आत्मधारणा' भूमि कहा है। जो अन्य के कोश और सेना से रक्षित हो वह भूमि आत्मधारणा के विपरीत अर्थात् दण्डधारणा संज्ञक होती है। उसे दण्डस्थान भी कहते हैं।

बालिशात्प्राज्ञाद्वा भूमिलाभ इति। बालिशाद्भूमिलाभः श्रेयान्। सुप्राप्या सुपाल्या हि भवत्यप्रत्यादेया च। विपरीता प्राज्ञादनुरक्तेति। पीडनीयोच्छेदनीययोरुच्छेदनीयाद्भूमि लाभः श्रेयान्। उच्छेदनीयो ह्यनपाश्रयो दुर्बलापाश्रयो वाऽभियुक्तः कोशदण्डावादायापसर्तुकामः प्रकृतिभिस्त्यज्यते। न पीडनीयो दुर्गमित्रप्रतिस्तब्ध इति। दुर्गप्रतिस्तब्धयोरपि स्थलनदीदुर्गीयाभ्यां स्थलदुर्गीयाद्भूमिलाभः श्रेयान्। स्थलीयं हि सुरोधावमर्दावस्कन्दमनि स्रावि शत्रु च। नदीदुर्गं तु द्विगुणक्लेशकरमुदकं च पातव्य वृत्तिकरं चामित्रस्य।

भूमि का लाभ मूर्ख से हो, वह प्रशस्त है या विद्वान् से हो वह। इस विषय के समाधान में कहते हैं कि मूर्ख से भूमि मिलना अधिक लाभकारी है। क्योंकि मूर्ख से प्राप्ति सुगमता से हो जाती है और रक्षा में भी कठिनाई नहीं होती तथा उसके लौटाने का भी प्रश्न नहीं उठता। किन्तु विद्वान को अपने अमात्यवर्ग आदि का स्नेह प्राप्त रहने के कारण, उससे भूमि प्राप्त करना या प्राप्त होने पर सुरक्षित रखना सुगम नहीं होता तथा प्राप्त होने पर उसके पुनः छिन जाने की भी आशंका रहती है। अब पीडनीय या उच्छेदनीय शत्रुओं में से किस की भूमि श्रेयसी होती है? इस पर कहते हैं कि उच्छेदनीय शत्रु दुर्गहीन एवं मित्रादि के आश्रय से हीन होने या दुर्बल का आश्रय पाने के कारण अपने कोश और सेना के सहित राज्य छोड़ कर भागने को तत्पर रहता है,

इसीलिए उसके अमात्यादि उसे छोड देते हैं। किन्तु पीडनीय शत्रु, दुर्ग और मित्रों की सहायता से युक्त होने के कारण न तो वह पलायनादि के लिए तत्पर रहता है और न अमात्यादि ही छोड़ कर जाते हैं। अब स्थलदुर्गीय और नदीदुर्गीय शत्रुओं में से किससे हुआ भूमिलाभ श्रेयस्कर है? इस पर कहते हैं कि स्थल दुर्ग वाले शत्रु से भूमि लाभ सुगम होता है, क्योंकि वह विना किसी विशेष प्रयत्न के घिराई में आ सकता है! उसका अवमर्दन, अवस्कन्दन आदि किया जाना कठिन नहीं होता और सहज में ही घेरा तोड़ कर वाहर जाने में समर्थ न रहने के कारण शीघ्र ही उच्छिन्न हो सकता है। किन्तु नदी, दुर्ग वाले शत्रु को वशीभून करने में दुगुना क्लेश उठाना पड़ता है। क्योंकि उसे नदी से पेयजल की प्राप्ति तो सुगम रहती ही है, साथ ही जल से अन्नादि की प्रचुरता भी रहती है। इस प्रकार उसकी जीविका के साधन अक्षुण्ण रहने से, उसका वशीभूत करना अत्यन्त कठिन होता है।

नदीपर्वतदुर्गीयाभ्यां नदीदुर्गीयाद्भूमिलाभः श्रेयान्। नदीदुर्गं हि हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुबन्धनौभिः साध्यमनित्यगाम्भीर्यमवस्राव्युदकं च, पार्वतं तु स्वारक्षं दुरुपरोधि कृच्छ्रारोहणं भग्ने चैकस्मिन् न सर्ववधः, शिलावृक्षप्रमोक्षश्च महापकारिणाम्। निम्नस्थलयोधिभ्यो निम्नयोधिभ्यो भूलाभः श्रेयान्। निम्नयोधिनो ह्युपरुद्धदेशकालाः, स्थलयोधिनस्तु सर्वदेशकालयोधिनः। खनकाकाशयोधिभ्यः खनकेभ्यो भूमिलाभः श्रेयान्। खनका हि खातेन शस्त्रेण चोभयथा युध्यन्ते, शस्त्रेणैवाकाशयोधिनः।

एवंविधेभ्यः पृथिवीं लभमानोऽर्थशास्त्रवित्।
संहितेभ्यः परेभ्यश्च विशेषमधिगच्छति॥

किन्तु नदी या पर्वत दुर्ग में स्थित शत्रुओं में से नदी-दुर्ग वाले शत्रु से भूमिलाभ प्रशस्त होता है। क्योंकि नदी, दुर्ग का जीतना हाथियों, काष्ठस्तम्भों, पुलों या नौका आदि के द्वारा सुगम होता है

और आवश्यकता पर बांध तोड़ कर नदी का जल भी निकाला जा सकता है। किन्तु पर्वतीय दुर्ग का जीतना कठिन होता है। वह न घेरने में आता है और न आक्रमण ही सुगम होता है। एकाध को मार दिया जाय तो भी सबको नहीं मारा जा सकता। वहां के निवासियों द्वारा आक्रमण किया जाने पर उन्हें पाषाण शिला या वृक्ष आदि गिरा कर भी नहीं मारा जा सकता। इस प्रकार पर्वतदुर्ग का जीत जाना बहुत दुष्कर कार्य है। नौका या स्थल पर स्थित शत्रुओं में से निम्नयोधी अर्थात् नौका आदि पर बैठ कर युद्ध करने वाले किसी विशेष देश-काल में ही युद्ध कर सकते है, इसलिए उनको जीतना सरल होता है। किन्तु स्थलयोधी सब समय सभी स्थानों पर युद्ध करने में समर्थ रहता है। खनकयोधी और आकाशयोधी में से खनकयोधी अर्थात् खाई खोद कर लड़ने वाले शत्रु को जीत कर भूमि प्राप्त करना सरल है। क्योंकि वे खाई में रह कर शस्त्र चलाते हैं, इसलिए उनका देश-काल सीमित रहता है। किन्तु आकाशयोधी अर्थात खुले मैदान या खुले आकाश में लड़ने वाले शस्त्रास्त्रों के द्वारा ही लड़ते हैं, इसलिए उनका देश-काल प्रशस्त रहता है, इसलिए उनको हराना सुगम नहीं होता। इस प्रकार अर्थशास्त्रज्ञाता विजिगीषु सन्धिबद्ध सामन्तों या अन्यान्य शत्रुओं से भूमि-लाभ करके उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं।

एकादशोऽध्यायः

अनवसित सन्धि

'त्व चाहं च शून्यं निवेशयावहे' इत्यनवसितसन्धिः। तयोर्यः प्रत्युपस्थितार्थो यथोक्तगुणां भूमिं निवेशयति सोऽतिसन्धत्ते। तत्रापि स्थलमौदकं वेति। महतः स्थलादल्पमौदकं श्रेयः, सातत्यादवस्थितत्वाच्च फलानाम्। स्थलयोरपि प्रभूतपूर्वापर-सस्यमल्पवर्षपाकमसक्तारम्भं श्रेयः। औदकयोरपि धान्यवापम-धान्यवापाच्छ्रेयः।

अब भूमिसंधि विषयक विशेष कथन करते हैं। 'हम-तुम जनशून्य स्थानों पर नगरादि बसायेंगे' ऐसी शर्त के साथ 'अनवसितसंधि' की जाती है। इससे बद्ध दा पक्षों में जो आवश्यक धन-जन एकत्र कर निवेशगुण वाली पृथिवी में नगर आदि बसावे, वह अधिक लाभान्वित होता है। स्थलवती अर्थात् वृष्टि पर निर्भर कृषि वाला या औदक अर्थात् नदी-सरोवर आदि से कृषि वाली भूमि में से कौन-सी अधिक श्रेयसी होती है ? इस पर कहते हैं कि विस्तृत स्थल वाली की अपेक्षा औदक ही अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि उस पर अन्न और फलादि की उत्पत्ति निश्चित रूप से होती है। स्थल-भूमियों में भी वह श्रेष्ठ है जिसमें शरद और वसन्त कालीन दोनों उपज होती हों, अल्प वर्षा से ही प्रभूत अन्न उत्पन्न होजाता हो, जो एकसार हो था कंकरीली-पथरीली न हो और आसानी से जोती-बोई जा सके। औदक भूमियों में भी वही श्रेष्ठ है जिसमें गेंहू या धान आदि की उपज अधिक होती हो। किन्तु जहाँ उपज न होती हो, वह भूमि श्रेयसी नहीं मानी जाती।

तयोरल्पबहुत्वे धान्यकान्तादल्पान्महदधान्यकान्तं श्रेयः। महत्यवकाशे हि स्थाल्याश्चानूप्याश्चौषधयो भवन्ति। दुर्गादीनि च कर्माणि प्राभूत्येन क्रियन्ते। कृत्रिमा हि भूमिगुणाः। खनिधान्यभोगयोः खनिभोगः कोशकरः। धान्यभोगः कोशकोष्ठागारकरः। धान्यमूला हि दुर्गादीनां कर्मणामारम्भाः। महाविषयविक्रयो वा खनिभोगः श्रेयान्। द्रव्यहस्तिवनभोगयोर्द्रव्यवनभोगः सर्वकर्मणां योनिः प्रभूतनिधानक्षमश्च। विपरीतो हि हस्तिवनभोगः' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। शक्यं द्रव्यवनमनेकस्यां भूमौ वापयितुं, न हस्तिवनं, हस्तिप्रधानो हि परानीकवध इति।

उक्त भूमियों में भी थोड़े और अधिक के विषय में विचार करें तो अन्न आदि की उपज वाली थोड़ी भूमि भी अच्छी होती है। जिसमें उपज न होती हो वह भी अधिक विस्तार वाली हो तो अति अति श्रेष्ठ होती है। क्योंकि अधिक लम्बी चौड़ी होने के कारण उसके जल-स्थल

प्रदेशों में प्रयत्न पूर्वक वनस्पति आदि का उत्पादन किया जा सकता है और दुर्ग आदि भी बनाये जा सकते हैं और भूमि का गुण परिवर्तन-शील होने के कारण उसे उर्वरा भी बनाया जा सकता है। खनिभोग (खानों वाली) और धान्यभोग (उपजाऊ) में से खनिभोग से कोश-वृद्धि ही संभव है। किन्तु धान्यभोग से कोश और कोठार दोनों ही भर सकते हैं। क्योंकि दुर्ग निर्माण जैसे बड़े कार्य भी अन्न-साध्य होते हैं। इसलिए धान्यभोग की श्रेष्ठता मानी जाती है। यदि खानों मे खनिज पदार्थों को निकाल कर बेचें तो खनिभोग की उपयोगिता भी कम नहीं है। अन्य आचार्यों के अनुसार द्रव्यवन और हस्तिवन-भोग वाली भूमि में से द्रव्यवनभोग भूमि पर सब प्रकार के दुर्ग आदि बनाये जाकर प्रभूत संचय किया जा सकता है। किन्तु हस्तिवनभोग भूमि को इससे विपरीत गुण वाली समझना चाहिए। किन्तु कौटिल्य इस मत को न मानते हुवे कहते हैं कि अनेक प्रकार के चन्दनादि वहुमूल्य द्रव्यों से सम्पन्न द्रव्यवन तो अनेक प्रकार की भूमियों पर लगाया जा सकता है, किन्तु हस्तिवन का इच्छित स्थान पर लगाया जाना संभव नहीं है। किन्तु शत्रु सेना को नष्ट करने के लिए हाथी एक प्रमुख साधन है। इसलिए हस्तिवन को कम उपयोगी नहीं समझना चाहिए।

वारिस्थलपथभोगयोरनित्यो वारिपथभोगः, नित्यः स्थलपथ-भोग इति। भिन्नमनुष्या श्रेणीमनुष्या वा भूमिरिति। भिन्न-मनुष्याभोग्या भवत्यनुपजाप्या चान्येषाम्। अनात्मसहा तु विप-रीता श्रेणीमनुष्या कोपे महादोषा। तस्यां चातुर्वर्ण्याभिनिवेशे सर्वभोगसहत्वादवरवर्णप्राया श्रेयसी। बाहुल्याद्ध्रुवत्वाच्च कृष्या कर्षणवती। कृष्या चान्येषां चारम्भाणां प्रयोजकत्वादगोरक्षक-वती पण्यनिचयर्णानुग्रहादाढ्यवणिग्वती च।

वारिपथभोग और स्थलपथभोग में वारिपथभोग अनित्य होने से कभी-कभी उपयोग में आने वाला और स्थलप्रतिभोग नित्य होने से अधिक उपयोग में आने वाला है। भिन्नमनुष्याभूमि अर्थात् ऐसी भूमि

जिस पर निवास करने वाले मनुष्य पृथक्-पृथक् स्थानों पर रहने के कारण सहज रूप से न मिल सकें, अधिक श्रेष्ठ होती है। क्योंकि विजिगीषु उसका भोग करता हुआ चिरकाल तक अधिकार में रख सकता है तथा उस पर गुप्तचरों की भेदनीति भी सफल सिद्ध नहीं हो सकती और संकट काल में उस पर क्लेश सहने में भी समर्थता रहती है। किन्तु श्रेणामनुष्याभूमि न तो वश में ही रह सकती है और और न गुप्तचरों के उत्पातों से ही बच सकती है। उस भूमि के श्रेणी-बद्ध निवासियों के क्षुब्ध होने से भारी विपत्ति आ सकती है। जिस भूमि पर निम्न वर्ण के व्यक्ति हों वह वह भूमि अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि वह कृषि-कार्य के सहन करने वाली मानी जाती है। यदि कृषि वाली भूमि अधिक विस्तार वाली हो और उसमें यथा परिमाण उपज होती हो तो वह प्रशस्त है। कृषि विषयक कार्यों का गौओं और गोपालकों से अधिक सम्पर्क रहने के कारण गोरक्षकवती भूमि तथा धनिक वणिकों द्वारा वस्तुओं के सचय वाली आढयवणिग्वती भूमि भी श्रेष्ठ होती। उस भूमि पर व्यापारियों द्वारा ऋण आदि के दान से वहाँ के निवासियों पर उपकार करने के कारण भी उसका महत्त्व कम नहीं है।

भूमिगुणानामपाश्रयः श्रेयान्। दुर्गापाश्रया पुरुषापाश्रया वा भूमिरिति। पुरुषापाश्रया श्रेयसी। पुरुषवृद्धि राज्यम्। अपुरुषा गौर्वन्ध्येव किं दुहीत। महाक्षयव्ययनिवेशा तु भूमिमवाप्तुकामः पूर्वमेव क्रेतारे पणेत। दुर्बलमराजबीजिन निरुत्साहमपक्षमन्याय-वृत्ति व्यसनिन दैवप्रमाण यत्किञ्चनकारिणं वा। महाक्षयव्ययनिवे-शायां हि भूमौ दुर्बलो राजबीजी निविष्टः सगन्धाभिः प्रकृतिभिः सह क्षयव्ययनावसीदति। बलवानराजबीजी क्षयव्ययभयादस-गन्धाभिः प्रकृतिभिस्त्यज्यते।

उक्त भूमि विषयक गुणों में अपाश्रय अर्थात् आश्रयदान का रक्षण अत्यन्त श्रेयस्कर गुण है। दुर्गापाश्रय और पुरुषापाश्रय में से कौनसी भूमि उत्तम है? इस पर कहते हैं कि पुरुषापाश्रय अर्थात् मनुष्यों के

आश्रय वाली ही उत्तम है। क्योंकि मनुष्यों से ही राज्य बनता है। मनुष्यों से हीन पृथिवी वन्ध्या गौ के समान निरुपयोगी और दोहन के अयोग्य होती है। जिस भूमि पर नगर आदि के बसाने में अधिक मनुष्यों की मृत्यु और प्रभूतधन का व्यय होने की आशंका हो उसे लेने की इच्छा हो तो लेने से पूर्व ही निम्न आठ प्रकार के क्रेताओं से संधि करनी चाहिए। यथा-दुर्बल, अराजबीजी (जिसका जन्म राजकुल में न हुआ हो), निरुत्साह, अपक्ष (सहायहीन), अन्यायवृत्ति, व्यसनी, दैव-प्रमाण (दैव के भरोसे से रहने वाला) और यत्किंचनकारी अर्थात् इच्छानुसार कार्य करने वाला। जिस पर बसावट करने में अत्यधिक धन-जन की हानि संभाव्य हो, उस भूमि पर दुर्बल या राजबीजी युक्त बसावट करने से समानजातीय या प्रकृतिवर्ग के साथ अधिक जन-विनाश और प्रभूत धन का व्यय होने से उनमें क्षीणता आ जाती है। यदि कोई बली अराजबीजी इस कार्य को करना चाहता है तो जननाश और धनक्षय की आशंका से असमान जातीय अमात्यादिवर्ग वाले उसे छोड़ कर चले जाते हैं।

निरुत्साहस्तु दण्डवानपि दण्डस्याप्रणेता सदण्डः क्षयव्ययेनाऽवभज्यते। कोशवानप्यपक्षः क्षयव्ययानुग्रहहीनत्वान्न कुतश्चित्प्राप्नोति। अन्यायवृत्तिर्निविष्टमप्युत्थापयेत्, स कथमनिविष्टं निवेशयेत्। तेन व्यसनी व्याख्यातः। दैवप्रमाणो मानुषहीनो निरारम्भो विपन्नकर्मारम्भो वावसीदति। यत्किञ्चनकारी न किंचिदसादयति। स चैषां पापिष्ठतमो भवति। यत्किंचिदारभमाणो हि विजिगीषोः कदाचिच्छिद्रमासादयेदित्याचार्याः।

किन्तु निरुत्साह वाला राजा सेना आदि से अधिक बलवान होकर भी सेना का ठीक उपयोग न करने के कारण अपने धन-जन को नष्ट कराता हुआ, स्वयं भी समाप्त हो जाता है। कोश-सम्पन्न होकर भी कोई राजा जन और धन के नाश में किसी मित्र से सहायता न मिलने के कारण भी कार्य सिद्धि संभव नहीं है। प्रजा पर अत्याचार करने

वाला शासक तो अपनी ही बसी हुई प्रजा को उखाड़ने वाला हो जाता है तो वह नयी बसावट कैसे करेगा ? यही बात व्यसनी राजा पर भी लागू होती है। जो दैव के भरं से रह कर कार्य करे उसमें पुरुषार्थ की कमी रहती है और वह भी किसी नवीन कार्य का आरम्भ नहीं कर पाता, यदि करे तो विपत्ति में पड़ सकता है। इसलिए वह भी जन और धन के नाश के साथ स्वयं भी नष्ट हो जाता है। स्वेच्छा पूर्वक कार्य करने वाला भी किसी कार्य को पूरा करने में सफल नहीं होता। इस प्रकार वह यत्किंचन ही अधिक विजिगीषु के लिए अधिक हानिप्रद सिद्ध हो सकता है। पूर्वाचार्यों के मत में वह कभी विजिगीषु का छिद्रान्वेषी भी बन सकता है।

'यथा छिद्रं तथा विनाशमप्यासादयेत्' इति कौटिल्यः। तेषामलाभे यथा पार्ष्णिग्रहोपग्रहे वक्ष्यामस्तथा भूमिमप्यवस्थापयेत्' इत्यभिहितसन्धिः। गुणवतीमादेयां वा भूमिं बलवता क्रयेण याचितः सन्धिमवस्थाप्य दद्यात्। इत्यनिभृत सन्धिः। समेन वा याचितः कारणमवेक्ष्य दद्यात्। 'प्रत्यादेया मे भूमिर्वश्या वा अनया प्रतिबद्धः परो मे वश्यो भविष्यति, भूमिविक्रयाद्वा मित्रहिरण्यलाभः कार्यसामर्थ्यकरो मे भविष्यति' इति। तेन हीनः क्रेता व्याख्यातः।

एवं मित्रं हिरण्यं च सजनामजनां च गाम्।
लभमानोऽतिसन्धत्ते शास्त्रवित्सामवायिकान्॥

आचार्य कौटिल्य के मत में यदि यत्किंचन कभी विजिगीषु का छिद्र देख भी ले तो उसी समय नष्ट हो सकता है। क्योंकि विजिगीषु उसके अनेक छिद्रों को पहिले से ही जाना हुआ होता है। उक्त दुर्बलादि में से कोई भी भूमि का क्रेता न मिले तो पार्ष्णिग्राहचिन्ता संज्ञक प्रकरणोक्त रीति का अवलम्बन करे। इस सन्धि को 'अभिहित सन्धि' कहते हैं। भूमि के आदान-प्रदान से सम्बन्धित होने के कारण इसमें स्थायित्व होता है। अपने से अधिक गुणवान क्रेता न मिले तो जो कोई अधिक

बल वाला समान भूमि क्रय की बात कहे, उससे यह कह कर भूमि वेचता हुआ सन्धि करे कि 'अवसर पर मुझ पर अनुग्रह करें'। इसे 'अनिभृतसन्धि' कहते हैं। क्योंकि इसके द्वारा प्रबल राजा दुर्वल के प्रति विश्वासघात करता हुआ सन्धि भंग कर सकता है। यदि कोई समान शक्ति वाला उस भूमि का क्रय करना चाहे तो निम्न कारणों को भले प्रकार सोचता हुआ वेच दे कि बिक जाने पर भी यह कालान्तर में मेरे पास ही लौट आवेगी, या मेरे ही उपयोग में आती रहेगी अथवा इसके सम्बन्ध से कोई अन्य शत्रु मेरे अधीन हो सकेगा या इसके द्वारा मुझे मेरे कार्य के साधक मित्र की अथवा धन की प्राप्ति होगी। यही बात अपने से हीन बल क्रेता के विषय में भी समझे। इस प्रकार विजिगीषु मित्र, हिरण्य एवं जनयुक्त या निर्जन भूमि को पाकर अपने अन्य साथी राजाओं की अपेक्षा अधिकाधिक लाभ में प्रयत्नशील रहे।

द्वादशोऽध्यायः

कर्म सन्धि

'त्वं चाहं च दुर्गं कारयावहे' इति कर्मसन्धिः। तयोर्यो दैवकृतमविषह्यमल्पव्ययारम्भं दुर्गं कारयति सोऽतिसन्धत्ते। तत्रापि स्थलनदीपर्वतदुर्गाणामुत्तरोत्तरः श्रेयः। सेतुबन्धयोरप्याहार्योदकात्सहोदकः श्रेयान्। सहोदकयोरपि प्रभूतवापस्थानः श्रेयान्। द्रव्यवनयोरपि या महात्सारवद्द्रव्याटवीक विषयान्ते नदीमातृकं द्रव्यवनं छेदयति, सोऽतिसन्धत्ते। नदीमातृकं हि स्वाजीवमपाश्रयश्चापदि भवति।

'हम-तुम मिल कर दुर्ग बनायेंगे' इस प्रकार कार्य विषयक निर्णय वाली 'कर्मसन्धि' होती है। विजिगीषु और सामन्त दोनों में जो दैवकृत अर्थात् स्वभाव से ही दुर्गम स्थान पर शत्रु द्वारा दुर्भेद्य तथा थोड़ा धन व्यय करके ही दुर्ग बनवा लेता है, वह अधिक लाभ में रहता है। ऐसे दुर्गों में भी स्थल पर निर्मित दुर्ग से नदी का दुर्ग और नदी के दुर्ग से

पर्वतीय प्रदेश का दुर्ग अधिक श्रेयस्कर होता है। सेतुबन्धों में भी जिसमें केवल वर्षाऋतु का जल एकत्र होता है, उसकी अपेक्षा स्वाभाविक रूप से जिसमें जल सदा विद्यमान रहता है, वह श्रेष्ठ होता है। उनमें भी वह अधिक श्रेष्ठ है, जिसकी निकटवर्तिनी भूमि में अधिक उपजाऊ कृषि होती है। द्रव्यवनों में भी अपने सीमान्तवर्ती प्रभूत फलप्रद एवं नदीमातृक अर्थात् जहां कृषि-कर्म के लिए नदी का जल उपलब्ध हो सके, ऐसे द्रव्यवन को कटवाने में सफल होने वाला राजा अधिक लाभ में रहता है। क्योंकि नदीमातृक स्थान दुर्भिक्ष आदि के अवसर पर जन समुदाय की अन्नादि से रक्षा करने वाला होता है।

हस्तिमृगवनयोरपि यो बहूशूरमृगं दुर्बलप्रतिवेशमनन्तावक्लेशि विषयान्ते हस्तिवनं बध्नाति, सोऽतिसन्धत्ते। तत्रापि 'बहुकुण्ठालनशूरयोरल्पशूरं श्रेयः। शूरेषु हि युद्धम्। अल्पाः शूरा बहूनशूरान् भञ्जन्ति, ते भग्नाः स्वसैन्यावघातिनो भवन्ति' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। कुण्ठा बहवः श्रेयांसः. स्कन्धविनियोगादनेकं कर्म कुर्वाणाः स्वेषामपाश्रया युद्धे, परेषां दुर्धर्षा विभीषणाश्च। बहुषु हि कुण्ठेषु विनयकर्मणा शक्यं शौर्यमाधातुं, न त्वेवाल्पेषु शूरेषु बहुत्वमिति। खन्योरपि यः प्रभूतसारामदुर्गमार्गामल्पव्ययारम्भां खनिं खानयति, सोऽतिसन्धत्ते।

हस्तिवनों में भी बहुत शक्तिशाली हाथी और दुर्लभ वन्य प्रदेश एवं आवागमन के कठिन मार्गों से युक्त वन को ठीक करके उपयोगी बना लेने वाला राजा अधिक लाभ में रहता है। जिसमें शक्तिहीन हाथी अधिक हों, उससे श्रेष्ठ वह हस्तिवन होता है जिसमें शक्तिशाली हाथी हों। क्योंकि बली हाथी ही युद्ध में अधिक उपयोगी होते हैं। अल्प संख्यक बलवान हाथी बहुसंख्यक बलहीन हाथियों को भगाते और तितर-बितर होने पर अपनी ही सेना को नष्ट कर डालते हैं। यह पूर्वाचार्यों का मत है किन्तु कौटिल्य इसे नहीं मानते। उनके अनुसार अधिक संख्यक अल्पबल हाथी भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि

वे सेना के भारवाहक होते हुए अपनी अधिक संख्या के कारण शत्रु को डरा सकते हैं, जिससे संभव है कि शत्रु युद्ध से हट ही जाय। इसके लिए उन बलहीनों को शौर्यगुण की शिक्षा दी जा सकती है। किन्तु अधिक शक्तिशाली यदि संख्या में कम हैं तो वे संख्या में अधिक तो नहीं दिखाये जा सकते। खानों में भी सारयुक्त प्रभूत द्रव्य वाली, सुगम मार्ग वाली अल्प व्यय से खोदी जाने वाली खान को खुदवाने वाला राजा अधिक लाभान्वित होता है।

तत्रापि 'महासारमल्पसारं वा प्रभूतमिति। महासारमल्पं श्रेयः। वज्रमणिमुक्ताप्रवालहेमरूप्यधातुर्हि प्रभूतमल्पसारमत्यर्घेण ग्रसते' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः—चिरादल्पो महासारस्य क्रेता विद्यते। प्रभूतः सातत्यादल्पसारस्य। एतेन वणिक्पथो व्याख्यातः। तत्रापि 'वारिस्थलपथयोर्वारिपथः श्रेयान्, अल्पव्ययव्यायामः प्रभूतपण्योदयश्च।' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। संरुद्धगतिरसार्वकालिकः प्रकृष्टभययोर्निष्प्रतीकारश्च वारिपथः। विपरीतः स्थलपथः। वारिपथे तु कूलसंयानपथयोः कूलपथः पण्यपट्टणबाहुल्याच्छ्रेयः। नदीपथो वा सातत्याद्विषह्यायाधत्वाच्च।

अल्प मात्रा में बहुमूल्य द्रव्य वाली और अधिक मात्रा में अल्प मूल्य वाली खानों में से कौन-सी श्रेष्ठ है? इस पर अन्य आचार्य कहते हैं कि बहुमूल्य पदार्थ अल्प मात्रा में भी प्रशस्त होते हैं। हीरा, मणि, मुक्ता, प्रवाल और सोना-चाँदी जैसे द्रव्य थोड़ी मात्रा में होते हुए भी अपने अधिक मूल्य के कारण अल्प मूल्य एवं अधिक मात्रा वाले पदार्थों को फीका कर देते हैं। किन्तु कौटिल्य इससे असहमत होते हुए कहते हैं कि महासार द्रव्य अर्थात् हीरा, मणि, मुक्ता आदि के क्रेता बहुत कम होने के कारण कभी कभी ही मिलते हैं, किन्तु अल्प मूल्य वाले सामान्य द्रव्य नित्य उपयोग में आने के कारण, उनके क्रेता सहज ही प्राप्त होते हैं। इसलिए अल्प मूल्य वाले अधिक संख्या

में निकलने वाले पदार्थों की खान ही अधिक श्रेयसी होती है। इसी के द्वारा वणिक्पथ की भी व्याख्या हो गई समझें। अब वणिक्पथों में भी जल या स्थल में से कौन-सा पथ श्रेष्ठ होता है। इस पर अन्य आचार्यों का मत है कि स्थलपथ की अपेक्षा जलपथ अधिक कल्याणकारी है। क्योंकि जलपथ का निर्माण अल्प धन-श्रम से बन सकता और व्यापारिक वस्तुओं के ढोने में अधिक उपयोगी हो सकता है। किन्तु कौटिल्य इसे स्वीकार न करते हुए कहते हैं कि संकट काल में जलपथ का यातायात रोकना सरल होता है और वर्षाकाल में आवागमन भी कठिन रहता है। स्थलपथ की अपेक्षा जलपथ अधिक भयप्रद होता है और संकट की स्थिति में उसका प्रतीकार भी नहीं हो पाता। किन्तु स्थलपथ में ऐसा नहीं हो सकता। कूलपथ और संयानपथ के भेद से जलपथ भी दो प्रकार का होता है। इनमें कूलपथ अर्थात् जल के तट वाला मार्ग अधिक उपयोगी हो सकता है। क्योंकि इस पर व्यापारिक वस्तुओं की बिक्री वाले अनेक स्थान मार्ग में पड़ेंगे। अथवा नदी में सदैव जल की विद्यमानता रहने और विघ्न-सह्य होने के कारण नदी मार्ग भी श्रेष्ठ रहता है।

स्थलपथेऽपि 'हैमवतो दक्षिणापथाच्छ्रेयान् हस्त्यश्वगन्धदन्ता-जिनरूप्यसुवर्णपण्याः सारवत्तराः' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। कम्बलाजिनाश्वपण्यवर्ज्याः शंखवज्रमणिमुक्ताः सुवर्णपण्याश्च प्रभूततरा दक्षिणापथे। दक्षिणापथेऽपि बहुखनिः सारपण्यः। प्रसिद्धगतिरल्पव्यायामो वा वणिक्पथः श्रेयान्। प्रभूतविषयो वा फल्गुपण्यः तेन पूर्वः पश्चिमश्च वणिक्पथो व्याख्यातः। तत्रापि चक्रपादपथयोश्चक्रपथो विपुला- रम्भत्वाच्छ्रेयान्। देशकालसम्भावनो वा खरोष्ट्रपथः। आभ्याम- समथो व्याख्यातः।

स्थलपथ में भी दक्षिणापथ की अपेक्षा हैमवतपथ अधिक श्रेयस्कर होता है। क्योंकि हैमवत अर्थात् उत्तर के मार्ग में हाथी, घोड़े, कस्तूरी

आदि गंधद्रव्य, हाथीदांत, चर्म, रजत एवं स्वर्ण आदि अनेक बहुमूल्य पदार्थ मिलते हैं—यह अन्य आचार्य कहते हैं। किन्तु कौटिल्य इससे सहमत न होते हुए कहते हैं कि दक्षिण के मार्ग में कम्बल, चर्म, अश्व आदि विक्रेय वस्तुओं के अतिरिक्त शंख, हीरा, मणि, मुक्ता तथा सोना आदि अनेक वस्तुएं उपलब्ध होती हैं। दक्षिणापथ में भी अनेक खानों से युक्त, बहुमूल्य व्यापारिक वस्तुओं से सम्पन्न, आवागमन में निर्विघ्न और अल्प परिश्रम से साध्य वणिक्पथ ही अधिक उपयोगी है। अथवा जिस पथ पर अल्प मूल्य की प्रभूत वस्तुएं होती हों अथवा उनका क्रय-विक्रय बहुत होता हो, वह भी लाभदायक रहता है। इसी व्याख्या से पूर्वीय और पश्चिमी मार्गों के विषय में समझ ले। वणिक्पथ में भी पैदल के मार्ग से गाड़ी आदि का मार्ग अधिक प्रशस्त मानते हैं। क्योंकि यह विविध विक्रय व्यवहारों की सम्पन्नता में सहायक है। देश-काल के अनुसार गधों और ऊँटों का मार्ग भी अधिक उपयोगी रहता है। इस व्याख्या से अंसपथ अर्थात् कन्धे पर भार वहन करने वाले व्यक्तियों के लिए निर्मित मार्ग का भी कथन हो गया।

परकर्मोदयो नेतुः क्षयो वृद्धिर्विपर्यये।
तुल्ये कर्मपथे स्थानं ज्ञेयं स्वं विजिगीषुणा ॥१
अल्पागमातिव्ययता क्षयो वृद्धिर्विपर्यये।
समायव्ययता स्थानं कर्मसु ज्ञेयमात्मनः ॥२
तस्मादल्पव्ययारम्भं दुर्गादिषु महोदयम्।
कर्म लब्ध्वा विशिष्टः स्यादित्युक्ताः कर्मसन्धयः ॥३

शत्रु का अपने ही कार्यों से लाभ होना विजिगीषु का क्षय, किन्तु विजिगीषु के कार्य से लाभ होना उसकी अपनी वृद्धि समझनी चाहिए। यदि दोनों के कार्यों का फल समान हो तो विजिगीषु इसे अपनी अवस्था की स्थिति माने। अल्प आय और अधिक व्यय का होना भी क्षय है और इसके विपरीत अर्थात् अधिक आय और अल्प व्यय प्रत्यक्ष वृद्धि है। कर्म विषयक आय-व्यय की समानता होने पर विजिगीषु समान

अवस्था समझे । इसलिए विजिगीषु दुर्ग आदि के निर्माण में अल्प व्यय द्वारा ही महान् लाभ प्राप्ति की चेष्टा करे । क्योंकि इसी में उसकी वृद्धि निहित है । इस प्रकार यह कर्मसंधियों का निरूपण हुआ समझे ।।१-३।।

त्रयोदशोऽध्याय:

पार्ष्णिग्राह चिन्ता

संहत्यारिविजिवीष्वोरमित्रयोः पराभियोगिनोः पार्ष्णि गृह्णतोर्यः शक्तिसम्पन्नस्य पार्ष्णि गृह्णाति सोऽतिसन्धत्ते । शक्तिसम्पन्नो ह्यमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात्, न हीनशक्तिरलब्धलाभ इति । शक्तिसाम्ये यो विपुलारम्भस्य पार्ष्णि गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते । विपुलारम्भो ह्यमित्रमुच्छिद्य पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात्, नाल्पारम्भः सक्तचक्र इति । आरम्भसाम्ये यः सर्वसन्दोहेन प्रयातस्य पार्ष्णि गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते । शून्यमूलो ह्यस्य सुकरो भवति, नैकदेशबलप्रयातः कृतपार्ष्णिप्रतिविधान इति ।

अब आक्रमणकारी किसका पार्ष्णिग्रहण अर्थात् (पृष्ठ स्थिति) करे, इस पर कहते हैं । विजिगीषु और शत्रु मिल कर पीछा करते हुए, किसी राजा पर आक्रमण करें तो अपने शत्रु और अन्य के साथ युद्ध में व्यस्त दो राजाओं में से जो अति शक्ति सम्पन्न हो, उसका पीछा करने वाला ही विशेष लाभ में रहता है । क्योंकि अतिबल राजा अपने शत्रु को नष्ट करके पार्ष्णिग्राह को भी समाप्त कर सकता है । इसलिए उसकी शक्ति अधिक न बढ़ने देने की दृष्टि से उसका पार्ष्णि-ग्रहण आवश्यक होता है । इससे शक्ति अधिक होने पर भी उसे पीछे वाले पर आक्रमण करने का अवसर नहीं मिलेगा । किन्तु बलहीन राजा जो इस प्रकार का कोई लाभ प्राप्त करने में समर्थ न हो, उसका पार्ष्णिग्रहण करना कुछ लाभदायक सिद्ध नहीं होगा । समान बल वाले शत्रुओं में प्रभूत अन्नादि एवं सर्व युद्ध सामग्री से सम्पन्न शत्रु का पीछा करने वाला अधिक लाभ उठाता है । क्योंकि प्रभूत युद्ध-सामग्री वाला शत्रु अपने शत्रु को नष्ट करके पीछे वाले को भी नष्ट कर सकता है, इसलिए उसको घेरने का

प्रयत्न करे। जो युद्ध सामग्री की न्यूनता एवं बिखरी हुई सैन्य शक्ति वाला हो, वह शत्रु का उच्छेद करने में समर्थ नहीं होता। इसलिए ऐसे राजा का पार्ष्णि-ग्रहण अधिक लाभदायक नहीं होगा। यदि दो शत्रुओं में समान सैन्य बल एवं समान सामग्री हो तो अपने सम्पूर्ण धन-जन-बल सहित आक्रमण करे, उसी का पार्ष्णिग्रहण करना अधिक श्रेयस्कर होगा। क्योंकि उसके राज्य में सेना आदि के न रहने के कारण उसे सुगमता से वश में किया जा सकता है। इसके विपरीत अपनी अधिक सेना को राजधानी में छोड़ कर और अल्प सेना लेकर आक्रमण करने वाले का पार्ष्णिग्रहण कल्याणकारी नहीं होता। क्योंकि वह पार्ष्णिग्राह का भी प्रतीकार करने में समर्थ रहता है।

बलोपादानसाम्ये यश्चलमित्रं प्रयातस्य पार्ष्णिं गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते। चलामित्रं प्रयातो हि सुखेनावाप्तसिद्धिः पार्ष्णि-ग्राहमुच्छिन्द्यात्, न स्थितामित्रं प्रयातः। असौ हि दुर्गप्रतिहतः पार्ष्णिग्राहे च प्रतिनिवृत्तस्थितेनामित्रेणावगृह्यते। तेन पूर्वो व्याख्याताः। शत्रुसाम्ये यो धार्मिकाभियोगिनः पार्ष्णिं गृह्णाति सोऽतिसन्धत्ते। धार्मिकाभियोगी हि स्वेषां च द्वेष्यो भवति। अधार्मिकाभियोगी सम्प्रियः। तेन मूलहरतादात्विककदर्याभियो-गिनां पार्ष्णिग्रहणं व्याख्यातम्।

समान सेना वाले आक्रमणकारियों में चंचल स्वभाव वाले और कायर शत्रु की ही पृष्ठस्थिति करे। क्योंकि शत्रु को शीघ्र ही वश में करके अपने पार्ष्णिग्राही को भी नष्ट कर सकता है। किन्तु सुदृढ़ शत्रु पर आक्रमण करने वाला सफल नही होता और न पीछे ही लौट पाता है। क्योंकि शत्रु की ओर से पीछे को लौटने पर उसका पार्ष्णिग्राह दबा लेता है। बल और सेना की न्यूनता वाले राजा के पीछे रहने वाले की भी ऐसी ही स्थिति होती है। अपने समान बल वाले शत्रु पर आक्रमण करने वाले राजाओं में से उसी के पीछे रहे, जिसने किसी धार्मिक पर हमला किया हो। क्योंकि धार्मिक पर हमला करने में सहमत न होने

के कारण अपने ही मित्र और अमात्यादि विरुद्ध होजाते हैं। किन्तु अधार्मिक पर हमला करने वाला स्वजनों द्वारा प्रशंसनीय होता है, इसलिए पीछे वाला राजा उसको कुछ हानि नहीं पहुँचा पाता। इसके द्वारा मूलहर, तादात्विक और कायर शत्रु पर आक्रमण करने वाले पार्ष्णिग्राह की भी व्याख्या होगई।

मित्राभियोगिनोः पार्ष्णिग्रहणे त एव हेतवः। मित्रममित्रं चाभियुञ्जानयोर्यो मित्राभियोगिनः पार्ष्णि गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते। मित्राभियोगी हि सुखेनावाप्तसिद्धिः पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात्। सुकरो हि मित्रेण सन्धिर्नामित्रेणेति। मित्रममित्रं चोद्धरतोर्योऽमित्रोद्धारिणः पार्ष्णि गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते। वृद्धमित्रो ह्यमित्रोद्धारी पार्ष्णिग्राहमुच्छिन्द्यात्, नेतरः स्वपक्षोपघाती।

मित्र अमित्र आक्रामकों में से अमित्र पर हमला करने वाले के पीछे रहना अधिक कल्याणकारी है। क्योंकि मित्र पर हमला करने वाला उस मित्र से सहज में ही सन्धि कर सकता है और तब पीछे वाले को नष्ट करना उसके लिए सहज होगा। किन्तु शत्रु के साथ सन्धि करना सुलभ नहीं होता। इसी प्रकार मित्र और अमित्र के उन्मूलकों में अमित्र के उन्मूलनकारी के ही पीछे रहे। क्योंकि अमित्र को नष्ट करने में उद्यत राजा के मित्र एवं अमात्यादि उसके वश में रहते हैं और इस प्रकार बल बढ़ने से वह पीछे वाले को भी नष्ट कर सकता है इसलिए उसके कार्य में बाधक बने। किन्तु मित्र के उन्मूलक से उसके स्वपक्ष वालों के भी विरुद्ध रहने के कारण उसका बल घटता है और वह पीछे वाले को हानि नहीं पहुँचा सकता।

तयोरलब्धलाभापगमने यस्यामित्रो महतो लाभाद्वियुक्तः क्षयव्ययाधिको वा, स पार्ष्णिग्राहोऽतिसन्धत्ते। लब्धलाभापगमने यस्यामित्रो लाभेन शक्त्या च हीनः, पार्ष्णिग्राहोऽतिसन्धत्ते। यस्य वा यातव्यः शत्रोर्विग्रहापकारसमर्थः स्यात्। पार्ष्णिग्राह

योरपि यः शक्यारम्भबलोपादानाधिकः स्थितशत्रुः पार्श्वस्थायी वा सोऽतिसन्धत्ते। पार्श्वस्थायी वा यातव्याभिसारी मूलबाधकश्च भवति। मूलबाधक एव पश्चात्स्थायी।

किन्तु मित्र और अमित्र के उन्मूलनार्थ गये हुए राजा यदि निष्फल होकर लौटें तो उनमें से जिसका धन-जन अधिक नष्ट हो गया हो उसका पार्ष्णिग्राह अधिक लाभान्वित रहता है। किन्तु यदि वे सफल होकर लौटें तो उनमें से जो लाभ और बल से हीन अमित्र हो, उसका पार्ष्णिग्रहण करे। अथवा जिसका यातव्य विजिगीषु के अपकार में समर्थ हो वह पीछा करने वाला विशेष लाभ में रहता है। इसी प्रकार जो पार्ष्णिग्राह कार्यारम्भ में कुशल, प्रभूत सेना-सम्पन्न, उदासीन शत्रुओं वाला तथा किसी आक्रमणकारी राजा का समीपवर्ती हो वह अपना इच्छित प्राप्त कर सकता है। समीपवर्ती पार्ष्णिग्राह ही बलवान यातव्य पर आक्रमण करने और उसके राज्य पर प्रहार करने में समर्थ हो सकता है। किन्तु दूरवर्ती उसे किसी प्रकार की बाधा पहुँचाने में समर्थ नहीं होता।

पार्ष्णिग्राहास्त्रयो ज्ञेयाः शत्रोश्चेष्टानिरोधकाः।
समन्तात्पृष्ठतो वर्गः प्रतिवेशौ च पार्श्वयोः ॥१
अरेर्नेतुश्च मध्यस्थो दुर्बलोऽन्तर्धिरुच्यते।
प्रतिघातो बलवतो दुर्गाटव्यपसारवान् ॥२

मध्यमं त्वरिविजिगीष्वोर्लिप्समानयोर्मध्यमस्य पार्ष्णिग्रहणतो लब्धलाभापगमने यो मध्यमं मित्राद्वियोजयति। अमित्रं च मित्रमाप्नोति, सोऽतिसन्धत्ते। सन्धेयश्च शत्रुरुपकुर्वाणो, न मित्रं मित्राभावादुत्क्रान्तम्। तेनोदासीनलिप्सा व्याख्याता। 'पार्ष्णिग्रहणाभियानयोस्तु मन्त्रयुद्धादभ्युच्चयः। व्यायामयुद्धे हि क्षयव्ययाभ्यामुभयोरवृद्धिः। जित्वाऽपि हि क्षीणदण्डकोशः पराजितो भवति' इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। सुमहतापि क्षयव्ययेन शत्रुविनाशोऽभ्युपगन्तव्यः।

शत्रु के कार्य में तीन प्रकार के पार्ष्णिग्राह बाधा डालते हैं यथा—आक्रमणकारी के राज्य से मिले हुए राज्य का शासक, उसके पीछे का तथा दोनों पार्श्वों का पड़ौसी। विजिगीषु और शत्रु के मध्य का राजा 'अन्तर्धि' कहा गया है। उसे पार्ष्णिग्रहण के लिए उपयुक्त नहीं मानते। क्योंकि वह किसी बली राजा द्वारा हमला होने पर भाग कर किसी दुर्ग या अरण्य में शरण लेता है ॥१-२॥ मध्यम राजा को वशीभूत करने की आकांक्षा वाले शत्रु और विजिगीषु में वही अधिक लाभान्वित होता है, जो मध्यम का पीछा ग्रहण करने के पश्चात् कुछ लाभ उठा कर उसे उसके मित्रों से पृथक् करके स्वयं उससे मेल कर ले। क्योंकि उपकारी शत्रु भी मेल करने के योग्य और अपकारी मित्र भी विग्रह के योग्य हो जाता है। इसके द्वारा उदासीन को वश में करने का भी विवेचन हुआ समझे। पार्ष्णिग्राही और चढ़ाई करने वालों में से मन्त्रयुद्ध वाला राजा ही अधिक लाभ उठाता है। क्योंकि सामने के युद्ध में धन-जन का अधिक विनाश होने से दोनों पक्षों की भारी क्षति होती है और तब जीतने वाला भी हारने वाले के ही समान हो जाता है--यह अन्य आचार्यों का विचार है। किन्तु कौटिल्य इसे न मानते हुए कहते हैं कि अत्यधिक धन-जन का विनाश होने पर भी आमने-सामने के युद्ध में शत्रु का नष्ट किया जाना श्रेयस्कर है।

तुल्ये क्षयव्यये यः पुरस्ताद्दूष्यबलं घातयित्वा निःशल्यः पश्चाद्वश्यबलो युद्धचेत, सोऽतिसन्धत्ते। द्वयोरपि पुरस्ताद्दूष्यबलघातिनोर्यो बहुलतरं शक्तिमत्तरमत्यन्तदूष्यं च घातयेत् सोऽतिसन्धत्ते। तेनामित्राटवीबलघातो व्याख्यातः।

पार्ष्णिग्राहोऽभियोक्ता वा यातव्यो वा यदा भवेत्।
विजिगीषुस्तदा तत्र मेत्रमेतत्समाचरेत् ॥३
पार्ष्णिग्राहो भवेन्नेता शत्रोर्मित्राभियोगिनः।
विग्राह्य पर्वमाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहाभिसारिणा ॥४

धन जन का समान व्यय होने पर भी जो प्रथम अपनी दूष्य सेना को युद्ध में कटवा कर निश्चिन्त होता और फिर अपने वश में रहने वाली सेना को लेकर संग्राम में लगता है, वह अधिक लाभ उठाता है। दूष्य सेनाओं के कटवाने वाले दो राजाओं में वही राजा अधिक लाभान्वित होता है जो अपनी अधिक संख्या और अधिक शक्ति वाली दूष्य सेना को कटवाने में सफल हो जाता है। इस विवेचन से अमित्र आटविक सेनाओं की भी व्याख्या हो गई। स्वयं पार्ष्णिग्राह, आक्रामक या यातव्य बनने वाले विजिगीषु को नेतृत्व का कार्यभार स्वयं ही सँभालना चाहिए। वह अपने मित्र पर आक्रमण करने वाले किसी शत्रु का पीछा तभी करे, जब कि वह शत्रु का पीछा करने वाले अपने मित्र राजा को उसके भी आगे वाले राजा को संग्राम करने के लिए सहमत कर ले ॥३-४॥

आक्रन्देनाभियुंजानः पार्ष्णिग्राहं निवारयेत् !
तथाक्रन्दाभिसारेण पार्ष्णिग्राहाभिसारिणम् ॥५
अरिमित्रेण मित्रं च पुरस्तादवघट्टयेत् ।
मित्रमित्रमरेश्चापि मित्रमित्रेण वारयेत् ॥६
मित्रेण ग्राहयेत्पार्ष्णिमभियुक्तोऽभियोगिनः ।
मित्रमित्रेण चाक्रन्दं पार्ष्णिग्राहन्निवारयेत् ॥७
एवं मण्डलमात्मार्थं विजिगीषुर्निवेशयेत् ।
पृष्ठतश्च पुरस्ताच्च मित्रप्रकृतिसम्पदा ॥८
कृत्स्ने च मण्डले नित्यं दूतान् गूढाँश्च वासयेत् ।
मित्रभूतः सपत्नानां हत्वा हत्वा च संवृतः ॥९
असंवृतस्य कार्याणि प्राप्तान्यपि विशेषतः ।
निःसंशयं विपद्यन्ते भिन्नप्लव इवोदधौ ॥१०

यदि विजिगीषु स्वयं आक्रमण करने का अवसर देखे तो अपने पीछे स्थित मित्र के द्वारा पार्ष्णिग्राह को पीछे करने से रोके और उसकी सेना का मित्रसेना द्वारा अवरोध करे। फिर सामने की ओर

संकट प्रतीत हो तो शत्रु से सामने के अपने अन्य मित्र को भिड़ा दे तथा शत्रु के मित्र का मित्र सामना करे तो उसका अपने मित्र के मित्र द्वारा निवारण करावे। यदि कोई राजा विजिगीषु पर आक्रमण करे तो अपने मित्र को उसका पार्ष्णिग्राह बनाकर उसके मित्र के द्वारा उसे पीछे हटवावे। इस प्रकार विजिगीषु अपने राष्ट्रमंडल को आगे-पीछे सर्वत्र साधे रखे। इसमें मित्रसम्पत् का प्रमुख योग रहता है। विजिगीषु पूरे राष्ट्रमंडल में अपने गुप्तचरों का जाल बिछाये रखे और शत्रुओं से कृत्रिम सन्धि करके एक-एक को प्रयत्न पूर्वक मरवा दे, किन्तु दिखावे में उदासीन बना रहे। जो राजा अपने आकार और मंत्र को गुप्त नहीं रख सकता उसके सभी कार्य समुद्र में टूटने वाली नाव के समान नष्ट हो जाते हैं ॥५-१०॥

चतुर्दशोऽध्यायः

हीनशक्ति, पूरण

सामवायिकैरेवमभियुक्तो विजिगीषुर्यस्तेषां प्रधानस्तं ब्रूयात्--'त्वया मे सन्धिः, इदं हिरण्यमहं च मित्रम्, द्विगुणा ते वृद्धिः, नार्हस्यात्मक्षयेण मित्रमुखानमित्रान् वर्धयितुम्। एते हि वृद्धास्त्वामेव परिभविष्यन्ति'। भेद वा ब्रूयात्—'अनपकारो यथाऽहमेतैः सम्भुयाभियुक्तः तथा त्वामप्येते सहितबलाः स्वस्था व्यसने वाऽभियोक्ष्यन्ते। बलं हि चित्तं विकरोति, तदेषां विघातय' इति।

यदि अनेक राजागण संगठित होकर विजिगीषु पर हमला करदें तो उनमें जो प्रधान हो उससे कहे कि हम-तुम सन्धि कर ले। यह हिरण्य देकर मैं तुम्हें मित्र बनाता हूँ। अब आपका बल द्विगुणित हो गया। फिर अब अपना धन-जन गंवा कर वचन से ही मित्र बनने वाले इन आन्तरिक शत्रुओं की वृद्धि क्यों करते हो। तुम्हारी सहायता मुझे नष्ट करके अपना बल बढ़ाने के पश्चात् यह तुम्हें भी नीचा दिखायेंगे।

अथवा उक्त सामनीति से वह प्रधान न माने तो इस भेदनीति से काम लेता हुआ कहे—जैसे यह मुझ निर्दोष पर हमला कर रहे हैं, वैसे ही जब यह अधिक बलवान हो जायेंगे तो अवसर मिलते ही तुम पर भी चढ़ाई कर देंगे। क्योंकि बल की वृद्धि बुद्धि को विकृत कर देती है, इसलिए बढ़ने से पहिले ही कुचल दो।

भिन्नेषु प्रधानमुपगृह्य हीनेषु विक्रमयेत्। हीनाननुग्राह्य वा प्रधाने। यथा वा श्रेयोऽभिमन्येत तथा वैरं परैर्ग्राहयित्वा विसंवादयेत्। फलभूयस्त्वेन वा प्रधानमुपजाप्य सन्धिं कारयेत्। अथोभयवेतनाः फलभूयस्त्वं दर्शयन्तः सामवायिकान् 'अतिसंहिताः स्थ' इत्युद्दूषयेयुः। दुष्टेषु संधिं दूषयेत्। अथोभयवेतना भूयो भेदमेषां कुर्युः—'एवं तद्यदस्माभिर्दर्शितम्' इति। भिन्नेष्वन्यतमोपग्रहेण वा चेष्टेत। प्रधानाभावे सामवायिकानामुत्साहयितारं स्थिरकर्माणमनुरक्तप्रकृतिं लोभाद्भयाद्वा संघातमुपगतं विजिगीषोर्भीतं राज्यप्रतिसम्बन्धं मित्रं चलामित्रं पुर्वानुत्तराभावे साधयेत्।

यदि इस प्रकार फूट पड़ जाय तो उनमें से किसी प्रमुख या हीन-बल को लक्ष्य बनाकर आक्रमण करदे। अथवा उनमें से सब हीनबलों को अपनी ओर फोड़ कर उनके प्रधान से ही युद्ध छेड़ दे। अथवा उन में परस्पर फूट उत्पन्न कर छिन्न-भिन्न कर दे। अथवा प्रभूत धन देकर प्रधान को अपनी ओर मिलावे और उसी के द्वारा अन्य राजाओं से भी सन्धि कर ले। फिर उभयवेतन गुप्तचरों द्वारा प्रधान को अधिक धन देकर की गई सन्धि की बात अन्य सब राजाओं में प्रचारित कराके उन सब को प्रधान के प्रति भड़काता हुआ उस सन्धि को समाप्त कराने का प्रयत्न करे। वे गुप्तचर उन राजाओं से कहें कि प्रधान राजा ने आपको ठग लिया है। इस प्रकार के उपाय से जब वे प्रधान के विरूद्ध हो जाँय तब उसके साथ धन देने विषयक जो सन्धि हुई है, उसे तोड़ दे। फिर वे उभयवेतन उन अन्यान्य राजाओं का भेद

लेने की चेष्टा करते हुए कहें कि--'हमारी कही हुई बात सत्य सिद्ध हुई'। ऐमी भेदनीति से उनमें फूट डलवा कर कुछ को अपनी ओर मिला ले और अन्य राजाओं पर हमला कर दे। यदि उन संगठित राजाओं का कोई प्रधान न हो तो उनमें से निम्न नौ प्रकार के राजाओं में से पहले के अभाव में दूसरे के क्रम से उत्तरोत्तर वश में करे। यथा--सामवायिक राजाओं को उकसाने में कुशल, स्थिरकर्मा, अपने अमात्यादि का स्नेह-भाजन, धन के लोभ में सामवायिकों में मिलने वाला, सामवायिकों के भयवश उनका आश्रित हुआ, विजिगीषु के भय से शत्रुओं का साथ देने वाला, उनसे राज्य-सम्बन्ध दृढ़ करने का इच्छुक, विजिगीषु का पूर्व-मित्र जो बाद में विरोधी होकर सामवायिकों में जा मिला हो और दुर्ग आदि से हीन विजिगीषु के शत्रु।

उत्साहयितारमात्मनिसर्गेण, स्थिरकर्माणं सान्त्वप्रणिपातेन, अनुरक्तप्रकृतिं कन्यादानवापनाभ्यां, लुब्धमंशद्वैगुण्येन भीतमेभ्यः कोशदण्डानुग्रहेण, स्वतो भीतं विश्वासयेत्प्रतिभूप्रदानेन, राज्यप्रति-सम्बन्धमेकीभावोपगमनेन, मित्रमुभयतः प्रियहिताभ्यामुपकार-त्यागेन वा, चलामित्रमवधृतमनपकारोपकाराभ्याम्। यो वा यथायोग भजेत, त तथा साधयेत्। सामदानभेददण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्यामः।

उत्साहयिता अर्थात् उकसाने में कुशल को आत्म-समर्पण से, स्थिर-कर्मा को विनयपूर्वक झुकाता हुआ, अनुरक्त प्रकृति को कन्या के लेने-देने से, लोभी को दूना भाग देकर, भयभीत को धन-जन देकर, स्वयं से भयभीत को किसी प्रतिभू द्वारा विश्वास दिला कर, राजाप्रतिसम्बद्ध-को एकता स्थापित करके परपक्षगत अपने पूर्व मित्र को प्रिय और हित-कर वचनों तथा प्राप्तव्य धन की छूट देकर और दुर्ग आदि से हीन शत्रु को उसका कभी अपकार न करने का विश्वास देकर अपनी ओर फोड़ ले। उनमें से जो जिस उपाय से अपनी ओर किया ज़ा सके, उसी से

अपने वशीभूत करे। अथवा साम, दान, दन्ड, भेद की नीतियों का प्रयोग करके अपनी ओर मिला ले। जैसा कि आगे कहते है।

व्यसनोपघातत्वरितो वा कोशदण्डाभ्यां देशे काले कार्ये वावधृतं सन्धमुपेयात्। कृयसन्धिर्हीनमात्मानं प्रविकुर्वीत। पक्षे हीनो बन्धुमित्रपक्षं कुर्वीत, दुर्गमविषह्यं वा। दुर्गमित्रप्रतिस्तब्धो हि स्वेषां परेषां च पूज्यो भवति। मंत्रशक्तिहीनः प्राज्ञपुरुषोपचयं विद्यावृद्धसंयोगं वा कुर्वीत। तथा हि सद्यः श्रयः प्राप्नोति। प्रभावहीनः प्रकृतियोगक्षेमसिद्धौ यतेत। जनपदः सर्वकर्मणां योनिः, ततः प्रभावः। तस्य स्थानमात्मनश्च आपदि दुर्गम्। सेतुबन्धः सस्यानां योनिः। नित्यानुषक्तो हि वर्षगुणलाभः सेतुवापेषु।

अथवा विजिगीषु अपने सकट को टालने के लिए शीघ्रता से कोश, दण्ड एवं सेना द्वारा देश, काल, कार्य के अनुरूप सहायता प्रदान का विश्वास देकर सामवायिकों के साथ सन्धि करे। उस सन्धि के पश्चात् हीनबल होने पर भी अपने उत्थान और बल की वृद्धि का उपाय करे। पक्षहीन विजिगीषु बन्धु और मित्र रूपी स्वपक्ष बनाकर अवेद्य दुर्ग बनवाये। क्योंकि दुर्ग और मित्रादि से सम्पन्न राजा अपने और पराये— सभी के लिए श्रद्धास्पंद बन जाता है। मंत्रिशक्तिहीन विजिगीषु को अपने पास अधिक से अधिक विद्वानों तथा विद्या-वृद्धों को रखे। इसी से शीघ्र सफलता मिल सकती है। प्रभावहीन विजिगीषु अमात्यादि की सुख-सुविधा की व्यवस्था करे। राजा के सब कार्यों का कारण जनपद ही है, जिसके द्वारा कोश और सेना रूपी तेज उत्पन्न होता है। दुर्ग से राजा का प्रभाव बनता और आपत्ति का निवारण होता है। सेतुबन्ध अन्नों की उत्पत्ति करने वाला है। क्योंकि सेतुबन्ध में संचित जल की सहायता से जो खेत बोये जाते हैं, उनमें वर्षा के गुणों का लाभ निहित रहता है।

वणिक्पथः परातिसन्धानस्य योनिः । वणिक्पथेन हि दण्ड-गूढपुरुषातिनयनं शस्त्रावरणयानवाहनक्रयश्च क्रियते । प्रवेशो निर्णयनं च । खनिः संग्रामोपकरणानां योनिः । द्रव्यवनं दुर्ग-कर्मणां, यानरथयोश्च । हस्तिवनं हस्तिनाम् । गजाश्वखरो-ष्ट्राणां च व्रजः । तेषामलाभे बन्धुमित्रकुलेभ्यः संतार्जनम् । उत्साहहीनः श्रेणीप्रवीरपुरुषाणां चोरगणाटविकम्लेच्छजातीनां परापकारिणां गूढपुरुषाणां च यथालाभमुपचयं कुर्वीत । परमिश्रः प्रतीकारमावलीयसं वा परेषु प्रयुंजीत ।

एवं पक्षेण मन्त्रेण द्रव्येण च बलेन च ।
सम्पन्नः प्रतिनिगच्छेत् परावग्रहमात्मनः ।।

शत्रुओं को धोखे में डालने का प्रमुख साधन वणिक्पथ है क्योंकि शत्रु-देश में सेना और गुप्तचर उसी मार्ग से जाते हैं तथा शस्त्र, आवरण, यान और वाहनादि का क्रय-विक्रय तथा परदेश से आयात और स्व-देश से निर्यात भी इसी मार्ग से होता है । युद्ध के उपकरणों के उत्पा-दन में मूल कारण खानें हैं । दुर्ग, कार्य, यान, रथ आदि का कारण द्रव्यवन तथा हाथियों का कारण हस्तिवन होता है । गज, अश्व, गधा, ऊँट आदि पशु गोष्ठ में पाले जाते हैं । विजिगीषु के पास इन वस्तुओं का अभाव हो तो उनका संचय अपने बन्धु या मित्र आदि से करे । उत्साह और शक्ति से रहित विजिगीषु श्रेणीपुरुषों, पुरपुरुषों, शत्रुओं के अपकारी चोरों, आटविकों, म्लेच्छों एव गुप्तचरों को एकत्र करके उनका प्रतीकार करे । अथवा आवलीयस अधिकरणोक्त प्रतीकारों का प्रयोग करे । इसप्रकार विजिगीषु अपने बन्धु-मित्र रूपी पक्ष, विद्या-वृद्धों की संगति रूपी मन्त्र, दुर्ग-सेतु आदि द्रव्य और श्रेणी आदि सेना के द्वारा अपने बल को बढ़ाता हुआ शत्रु के प्रतीकार में लगा रहे ।

पञ्चदशोऽध्यायः

बलवान से विरोध एव विजित का व्यवहार

दुर्बलो राजा बलवताऽभियुक्तस्तद्विशिष्टबलमाश्रयेत, यमि-

तरो मंत्रशक्त्या नातिसन्दध्यात्। तुल्यबलमंत्रशक्तीनामायत्त-सम्पदो वृद्धसयोगाद्वा विशेषः। विशिष्टबलाभावे समबलैस्तुल्य-बलसखैर्वा बलवतः सम्भूय तिष्ठेत्। यावन्न मत्रप्रभावशक्तिभ्या-मतिसन्दध्यात्: तुल्यमत्रप्रभावशक्तीनां विपुलारम्भतो विशेषः।

दुर्बल राजा पर प्रबल राजा द्वारा आक्रमण हो तो वह आक्रमणकारी से अधिक बल वाले और मन्त्रशक्ति द्वारा वंचित न होने वाले का आश्रय ले। आश्रयदाता राजा यदि आक्रमणकारी से सैन्य और मन्त्र शक्ति में न्यून न हो और उसके अमात्यादि तथा विद्यावृद्ध भी अनुकूल रहते हों तो ही उसकी शरण ले। यदि अति प्रबल राजा न मिले तो आक्रामक के समान बल वाले अन्य राजाओं को साथ लेकर तब तक शनैः शनैः युद्ध करता रहे जब तक कि विजिगीषु अपनी मन्त्रशक्ति और प्रभावशक्ति की वृद्धि करके युद्ध करने में पूर्ण सक्षम न हो जाय। समान मन्त्र और प्रभाव वाले राजा यदि उसे आश्रय देने को तैयार हों तो उनमें से उसी का आश्रय ग्रहण करे, जो विपुल धन-जन एवं सामग्री सहित कार्य में तत्पर हो।

समबलाभावे हीनबलैः शुचिभिरुत्साहिभिः प्रत्यनीकभूतै-र्बलवतः सम्भूय तिष्ठेत्। यावन्न मत्रप्रभावोत्साहशक्तिभिरति-सन्दध्यात्। तुल्योत्साहशक्तीनां स्वयुद्धभूमिलाभाद्विशेषः। तुल्य-भूमीनां स्वयुद्धकाललाभाद्विशेषः। तुल्यदेशकालानां युग्यशस्त्रा-वरणतो विशेषः। सहायाभावे दुर्गमाश्रयेत्, यत्रामित्र प्रभूत-सैन्योऽपि भक्तयवसेन्धनोदकोपरोधं न कुर्यात्। स्वयं च क्षयव्यया-भ्यां युज्येत। तुल्यदुर्गाणां निचयापसारतो विशेषः। निचयाप-सारसमग्रं मनुष्यदुर्गमिच्छेदिति कौटिल्यः।

यदि समान बल वाला राजा भी न मिले तो आक्रमणकारी से हीनबल, पवित्रहृदय, उत्साही एवं शत्रु के शत्रु-भूत राजाओं से मिल कर तब तक युद्ध करे, जब तक कि वह अपने मन्त्र, प्रभाव और उत्साह से विशिष्ट बल-सम्पन्न न बन जाय। यदि ऐसे भी अनेक राजा न मिलें तो जिसके पास युद्ध के योग्य भूमि हो ऐसे राजा का आश्रय ले।

यदि ऐसी युद्ध योग्य भूमि समान रूप से अनेक राजाओं से प्राप्त होती हो तो उनमें से उसी का सहारा ले जो युद्ध के योग्य समय भी दे सके। यदि अनेक राजाओं से भूमि और समय दोनों ही समान रूप से मिलती हों तो जिससे युग्य अर्थात् वाहन और शस्त्रास्त्र, कवच आदि उपकरण की प्रचुर रूप में प्राप्ति हो सके। यदि किसी से किसी भी प्रकार का आश्रय न मिल सके तो किसी ऐसे दुर्ग में आश्रय ले, जहां मनुष्यों के लिए भोजन, पशु आदि के लिए चारा, ईंधन तथा जल आदि की प्राप्ति में कभी कोई वाधा उत्पन्न न की जा सके, वरन् शत्रु वहाँ आकर अपने ही धन, जन, वाहनादि को गँवा बैठे। यदि ऐसे अनेक दुर्ग उपलब्ध होंतो जिसमें नित्य व्यवहार में आने वाली प्रभूत सामग्री एकत्र की जा सके और अवसर आने पर जहाँ से निकल भागना भी सरल हो। क्योंकि कौटिल्य के मत में निचय (शित्योपयोगी वस्तुओं) तथा अपसार (भागने का मार्ग युक्त दुर्ग ही मनुष्यों के लिये उपयोगी होता है, इसलिए ऐसे दुर्ग में ही आश्रय ले।

तदेभिः कारणैराश्रयेत—"पार्ष्णिग्राहमासारं मध्यमुदासीनं वा प्रतिपादयिष्यामि। सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमेनास्य राज्यं हारयिष्यामि घातयिष्यामि वा। कृत्यपक्षोपग्रहेण वाऽस्य दुर्गे राष्ट्रे स्कन्धावारे वा कोपं समुत्थापयिष्यामि। शस्त्राग्निरसप्रणिधानैरौपनिषदिकैर्वा यथेष्टमासन्नं हनिष्यामि। स्वयमधिष्ठितेन वा योगप्रणिधानेन क्षयव्ययमेनमुपनेष्यामि। क्षयव्ययप्रवासोपतप्ते वास्य मित्रवर्गे सैन्ये वा क्रमेणोपजापं प्राप्स्यामि। वीवधासारप्रसारवधेन वाऽस्य स्कन्धावारावग्रहं करिष्यामि। दण्डोपनयेन वास्य रन्ध्रमुत्थाप्य सर्वसन्दोहेन प्रहरिष्यामि। प्रतिहतोत्साहेन वा यथेष्टं सन्धिमवाप्स्यामि। मयि प्रतिबद्धस्य वा सर्वतः कोपाः समुत्थास्यन्ति। निरासारं वास्य मूलं मित्राटवीदण्डैरुद्घातयिष्यामि। महतो वा देशस्य योगक्षेममिहस्थः पालयिष्यामि। स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तं वा मे सैन्य-

मिहस्थस्यैकस्यमविषह्यं भविष्यति। निम्नखातरात्रियुद्धविशारद वा मे सैन्यं पथ्याबाधमुक्तमासन्ने कर्मणि करिष्यति। विरुद्धदेशकालमिहागतो वा स्वयमेव क्षयव्ययाभ्यां न भविष्यति। महाक्षयव्ययाभिगम्योऽय देशो दुर्गाटव्यपसारबाहुल्यात्, परेषां व्याधिप्रायः सैन्यव्यायामानामलब्धभौमश्च, तमापद्गतः प्रवेक्ष्यति। प्रविष्टो वा न निर्गमिष्यति" इति।

निम्न में से कोई एक कारण उपस्थित होने पर दुर्ग का आश्रय लेना चाहिए—यदि विजिगीषु समझे कि पार्ष्णिग्राह, मित्र, मध्यम या उदासीन को शत्रु से युद्ध के लिए तैयार कर लूंगा। अथवा किसी सामन्त, आटविक एवं आक्रामक के वंशज किन्तु दूष्य पुरुष के द्वारा उसको राज्य से च्युत करा दूंगा। अथवा शत्रु के कर्मचारी आदि को वशीभूत करके उसके दुर्ग, राष्ट्र या शिविर आदि में विद्रोह फैलवा दूंगा। अथवा शस्त्र, अग्नि या विष आदि से घात करने वाले गुप्तचरों या औपनिषदिक प्रकरणोक्त प्रयोगों के द्वारा उसे मरवा डालूंगा। अथवा अपने विश्वस्त घातक व्यक्तियों के प्रयोग द्वारा उसके धन-जन को नष्ट करा सकूंगा। अथवा धन-जन के व्यय और प्रवास-दुःख से संतप्त शत्रु के सैन्य आदि में फूट डलवा दूंगा। अथवा आक्रामक के देश से आते हुए खाद्य, मित्र, चारा, ईंधन आदि को मार्ग में ही नष्ट करके शत्रुशिविर को अत्यधिक पीड़ित कर डालूंगा। अथवा आक्रामक के शिविर में अपनी गुप्त सेना को लगा कर उसके छिद्रों को जान लूंगा और तब अपनी सेना के सहित प्रहार कर दूंगा। अथवा शत्रु का उत्साह भंग करके उससे यथेच्छ सधि कर लूंगा। अथवा मुझ पर हमला करने के कारण उसके चारों ओर के राजागण उसके विरुद्ध हो जायंगे। अथवा शत्रु की मित्र सेना को पृथक् से अवरुद्ध कर दूंगा और सहायता न मिलने के कारण असहाय हुए उस शत्रु को अपने मित्र और आटविकों द्वारा समाप्त करा दूंगा। अथवा इस दुर्ग में रह कर ही मैं अपने विस्तृत राज्य के योग-क्षेम का संचालन करता रहूंगा। अथवा मेरे कार्य

से अन्यत्र गई हुई या मित्र-कार्य से गई हुई सेना, यहाँ एकत्र होकर शत्रु के वश में कभी नहीं पड़ेगी। अथवा स्थल, खाई या रात्रियुद्ध में चतुर मेरी सेना इस दुर्ग में मार्ग-श्रम को दूर करके अवसर पर तत्परता से कार्य करेगी। अथवा अपनी सेना के लिए विरुद्ध देश-काल में यहाँ आकर आक्रमणकारी अपना पुष्कल धन-जन नष्ट होने पर स्वयं ही नष्ट हो जायगा। अथवा मेरा यह दुर्ग निचय और अपसार से युक्त है, इसलिए यहाँ आने वाले शत्रु का प्रभूत धन-जन नष्ट हो जायगा और परदेशियों के लिए यह दुर्ग व्याधियों से युक्त सिद्ध होगा। सैन्य व्यायाम आदि के लिए शत्रु को पर्याप्त भूमि भी नहीं मिलेगी, इसलिए यहाँ आकर वह संकट में ही पड़ेगा। यदि आक्रामक यहाँ आयेगा तो कुशलता पूर्वक यहाँ से नहीं लौट सकेगा। इन सोलह कारणों में से किसी एक की भी उपस्थिति हो तो दुर्ग का आश्रय लेना चाहिए।

कारणाभावे बलसमुच्छ्रये वा परस्य दुर्गमुन्मुच्यापगच्छेत्। अग्निपतङ्गवदमित्रे वा प्रविशेत्। अन्यतरसिद्धिर्हि त्यक्तात्मनो भवतीत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। सन्धेयतामात्मनः परस्य चोपलभ्य सन्दधीत। विपर्ययेण विक्रमेणो सिद्धिमपसारं वा लिप्सेत। सन्धेयस्य वा दूतं प्रेषयेत्। तेन वा प्रेषितमर्थमा नाभ्यां सत्कृत्य ब्रूयात्—'इदं राज्ञः पण्यागारम्, इदं देवीकुमाराणां देवीकुमारवचनादिदं राज्यमहं च त्वदर्पण' इति।

अन्य आचार्यों के अनुसार उक्त कारण न हों और शत्रु प्रबल प्रतीत हो तो दुर्ग छोड़ कर भाग जाय अथवा अग्नि पर गिरते हुए पतंगों के समान शत्रु पर धावा बोल दे। जो जीवन की आशा छोड़ कर प्राणपण से कार्य में जुट जाते हैं, संभव है कि उनका शत्रु पतंगों के गिरने से दीपक के बुझने के समान ही नाश को प्राप्त हो जाय। किन्तु कौटिल्य इसे न मानते हुए कहते हैं कि यदि स्वयं को और शत्रु को समान योग्य समझे तो उससे मेल कर ले। यदि दोनों पक्ष अयोग्य प्रतीत हों तो अग्नि पर गिरते हुए पतंगों के समान धावा बोल कर

सफलता प्राप्त करने की चेष्टा करे। अथवा संधि की संभावना न हो तो उस स्थान को छोड़ दे। अथवा संधि-योग्य राजा प्रतीत हो तो उसके पास दूत भेजे या उस संधि योग्य राजा द्वारा प्रेषित दूत का दान-मान पूर्वक सत्कार करके कहे—आप अपने राजा के निमित्त मेरा यह पण्यागार और उनकी रानी और राजकुमार के लिए मेरी रानी और राजकुमार की ओर से यह उपहार-द्रव्य ले जाकर समर्पित करें। साथ ही मैं अपना यह राज्य भी सौंपता हूं।

लब्धसंश्रयः समयाचारिकवद्भर्तरि वर्तेत। दुर्गादीनि च कर्माण्यावाहविवाहपुत्राभिषेकाश्वपण्यहस्तिग्रहणसत्रयात्राविहार-गमनानि चानुज्ञातः कुर्वीत। स्वभूम्यवस्थितप्रकृतसन्धिमुपघात-मपसृतेषु वा सर्वमनुज्ञातः कुर्वीत। दुष्टपौरजानपदो वा न्याय-वृत्तिरन्यां भूमिं याचेत। दूष्यवदुपांशुदण्डेन वा प्रतिकुर्वीत। उचितां वा मित्राद्भूमिं दीयमानां न प्रतिगृह्णीयात्। मन्त्रिपुरो-हितसेनापतियुवराजानामन्यतमदृश्यमाने भर्तरि पश्येत्। यथा-शक्ति चोपकुर्यात्। दैवतस्वस्तिवाचनेषु तत्परा आशिषो वाच-येत्। सर्वत्रात्मनिसर्गं स्वामिनो गुणं च ब्रूयात्।

संयुक्तबलवत्सेवी विरुद्धः शंकितादिभिः।
वर्तेत दण्डोपनतो भर्तर्येवमवस्थितः॥

इस प्रकार आक्रमणकारी का आश्रय प्राप्त करके विजिगीषु सेवक के समान उसके कार्यों को करे। उसके दुर्गादि निर्माण, आवाह (कुमार के लिए कन्या की खोज), विवाह, युवराज का अभिषेक, अश्वपण्य (घोड़ों का व्यापार), हस्तिग्रहण (हाथी पकड़ना), यज्ञ, यात्रा एवं विहारगमन आदि की व्यवस्था करे। उसी की अनुमति से अपने अमात्यादि से मेल या देश से बाहर निकाले जाने योग्यों को दंडित करे। अपने नगर एवं जनपद के रहने वालों के दूष्य हो जाने पर न्याय-पूर्वक अपने रहने के लिए कोई स्थान आश्रयदाता राजा से ले ले। अथवा उन दूष्यों के प्रति उपांशुदण्ड का प्रयोग करे। यदि आश्रयदाता

आश्रित के किसी मित्र की कोई श्रेष्ठ भूमि छीन देना चाहे तो उसे ग्रहण न करे। मंत्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज की अनुपस्थिति में आश्रयदाता के पास रह कर यथाशक्ति उपकार अर्थात् सेवा करे। देवार्चन और स्वस्तिवाचन के समय अपने स्वामी के क्षेम का निवेदन करे तथा सब के समक्ष अपने आत्मसमर्पण और स्वामी के उपकार को कहे। इस प्रकार अपने आश्रयदाता की सेवा करता हुआ पराजित विजिगीषु उसके अमात्यादि के प्रति भी विनम्र रह कर उसके विरोधियों को शंका से देखता हुआ, उनसे सदैव दूर रहा आवे।

षोडशोऽध्यायः

दण्डोपपत की वृत्ति

अनुज्ञातस्तद्धिरण्योद्वेगकरं बलवान् विजिगीषमाणो यतः स्वभूमिस्त्वर्तुवृषिश्च स्वसैन्यानामदुर्गापसारः शत्रुरपार्ष्णिरनासारश्च ततो यायात्। विपर्यये कृतप्रतीकारो यायात्। सामदानाभ्यां दुर्बलानुपनमयेद्भेददण्डाभ्यां बलवतः। नियोगविकल्पसमुच्चयैश्चोपायानामनन्तरैकान्तराः प्रकृतीः साधयेत्। ग्रामारण्योपजीविव्रजवथिक्पथानुपालनमुज्झितापसृतापकारिणां चार्पणमिति सान्त्वमाचरेत्। भूमिद्रव्यकन्यादानमभयस्य चेति दानमाचरेत्।

अब दण्ड द्वारा पराजित राजा के व्यवहार को कहते हैं। यदि कोई राजा विजिगीषु के आश्रयदाता को धनदान का वचन देकर भी न दे और उससे वह उद्वेग को प्राप्त हो जाय तो वली विजिगीषु को ऐसे ही आक्रमण योग्य राजा पर अभियान करना चाहिए जिसके राज्य तक पहुँचने के लिए प्रशस्त मार्ग, सेना के लिए अनुकूल जलवायु, भोजन की सुलभता और दुर्ग से शत्रु के अपसार की संभावना न हो तथा वह पार्ष्णिग्राह और आसार अर्थात् सुहृदों की सेना से काम लेने में सफल न हो सके। इसके विपरीत अवस्था हो तो उन सब बाधाओं

का प्रतीकार करके ही आगे बढ़े। यदि आक्रान्त राजा दुर्बल हो तो साम या दान नीति से वश में करे और बलवान हो तो भेद और दण्ड-नीति से काम ले। सामादि का नियोग (कौन नीति किस पर उचित है ऐसी बुद्धि), विकल्प (किस उपाय के स्थान पर किस उपाय का प्रयोग-ज्ञान) और समुच्चय (एक से अधिक किन उपायों को किस स्थिति में करे ऐसा निश्चय) के द्वारा अपनी सीमा के निकटवर्ती शत्रु और उसके राज्य के पश्चात् वाले राज्य के राजा मित्र आदि को यथोचित उपायों से वश में रखे। विजित विजिगीषु ग्रामों और वनों में स्थित गोष्ठ एवं वणिक्पथ की रक्षा या किसी अन्य राजा के भय से भागे हुए या अपना अपकार करने वाले व्यक्तियों का अन्वेषण करके देता हुआ दुर्बल राजा के प्रति सामनीति का प्रयोग करे। भूमि, द्रव्य, कन्या या अभय आदि द्वारा दाननीति भी प्रयुक्त की जा सकती है।

सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमोपग्रहेण कोशदण्ड-भूमिदाययाचनमिति भेदमाचरेत्। प्रकाशकूटतुष्णींयुद्धदुर्गलम्भो-पायैरमित्रप्रग्रहणमिति दण्डमाचरेत्। एवमुत्साहवतो दण्डोप-कारिणः स्थापयेत्। स्वप्रभाववतः कोशोपकारिणः प्रज्ञावतो भूम्युपकारिणः। तेषां पण्यपत्तनग्रामखनिसंजातेन रत्नसारफल्गुकु-प्येन द्रव्यहस्तिवनव्रजसमुत्थेन यानवाहनेन वा यद्बहुश उपकरोति तच्चित्रभोगं, यद्दण्डेन कोशेन वा महदुपकरोति तन्महाभोगं, यद्दण्डकोशभूमिभिरुपकरोति तत्सर्वभोगम्। यदमित्रमेकतः प्रति-करोति तदेकतोभोगि। यदमित्रमासारं चापकरोति तदुभयतो-भोगि। यदमित्रासारप्रतिवेशाटविकान् सर्वतः प्रतिकरोति तत्सर्व-तोभोगि।

सामन्त, आटविक, आक्रामक के वंश में उत्पन्न, बन्दी या नियंत्रित पुत्र आदि में से किसी एक को अपने वश में करके, उसके द्वारा आक्र-मण योग्य शत्रु से कोश, सेना, भूमि एवं दायभाग की मांग करा कर भेद नीति प्रयोग करे। फिर उस नीति से वश में आये हुओं में से

जो अधिक उत्साहशक्ति युक्त तथा अपनी सेना के द्वारा सहायता कर सकें तथा जो प्रभावशक्ति युक्त और अपने कोश से सहायता कर सकें। और जो मन्त्रशक्ति सम्पन्न भूमि से उपकृत कर सकें उन-उन को उनके उपयुक्त कार्यों पर नियुक्त कर दे। उपनमित (वशीभूत) राजाओं में से जो मित्र राजा व्यापारिक नगर, ग्राम एवं खान से उत्पन्न रत्न, सार, फल्गु, कुप्य, द्रव्यवन, हस्तिवन और गोष्ठ से उत्पन्न यान, वाहन या घृतादि के द्वारा सहायता करें वे मित्र 'चित्रभोग' कहे गए हैं। सेना और कोश से सहायता करने वाले 'महाभोग' और सेना, कोश और भूमि द्वारा उपकार करने वाले 'सर्वभोग' कहलाते हैं। जो मित्र शत्रु द्वारा संभावित अनर्थ का शमन करे, वह 'एकतोभोगी' और जो मित्र शत्रु एवं शत्रु के मित्र दोनों को हानि पहुंचावे, वह 'उभयतोभोगी' होता है। जो मित्र शत्रु, शत्रु के मित्र, पड़ौसी शत्रु तथा आटविकों का अपकार करे वह 'सर्वतोभोगी' कहा जाता है।

पार्ष्णिग्राहश्चाटविकः शत्रुमुख्यः शत्रुर्वा भूमिदानसाध्यः कश्चिदासाद्येत, निर्गुणया भूम्यैनमुपग्राहयेत्। अप्रतिसम्बद्धया दुर्गस्थम्, निरुपजीव्ययाटविकम्, प्रत्यादेयया तत्कुलीनम्, शत्रोरुपच्छिन्नया शत्रोरुपरुद्धम्, नित्यामित्रया श्रेणीबलम्, बलवत्सामन्तया संहतबलम्, उभाभ्यां युद्धे प्रतिलोमम्, अलब्धव्यायामयोत्साहिनम्, शून्ययारिपक्षीयम्, कर्कशितयापवाहितम्, महाक्षयव्ययनिवेशया गतप्रत्यागतम्, अनुपाश्रयया प्रत्यपसृतम्, परेणानधिवास्यया स्वयमेव भर्तारमुपग्राहयेत्।

यदि किसी पार्ष्णिग्राह, आटविक शत्रु के मुख्य पुरुष या शत्रु को भूमि को देकर अपने पक्ष में करना हो तो गुणहीन भूमि देकर कार्य बना ले। यदि कोई पार्ष्णिग्राह अपने दुर्ग में निवास करता है तो उसे दुर्ग से अधिक दूरी पर स्थित और आटविक शत्रु को ऊसर भूमि देकर सन्तुष्ट करे। शत्रु को ऐसी भूमि दे जो उसके वंशज से पुनः

वापस भी जा सके। शत्रु के बन्दी पुत्र को उसी से छीनी हुई पृथिवी दें। श्रेणीवल (नायक विहीन सेना) को चोर, दस्यु आदि से परिपूर्ण और नायकयुक्त सेना को प्रवल सामन्त युक्त भूमि दे। कपट-युद्ध वाले शत्रु को नित्य अमित्र एवं बली सामन्त युक्त, उत्साहशक्ति वाले को सैन्य-सचालन की सुविधा से रहित तथा शत्रुपक्ष के पुरुष को निष्फला पृथिवी दे। सन्धि से फिर जाने वाले या देश से निर्वासित शत्रु को उपद्रवयुक्त और शत्रु से मिलने के पश्चात् पुनः अपने पक्ष में आ मिले उसे नवीन बस्ती बसाने में अधिक धन-जन के नाश से साध्य होने वाली पृथिवी प्रदान करे। शत्रु-भय से अपने राज्य को छोड़ कर भागे हुए को दुर्ग आदि आश्रय से रहित भूमि दे। जो पृथिवी ऐसी हो, जिस पर उसका प्राचीन स्वामी ही रह सके, उस पृथिवी को उसके प्राचीन स्वामी को ही दे। इस प्रकार भूमिदान द्वारा अमित्रों को मित्र बनाना चाहिए।

तेषां महोपकारं निर्विकारं चानुवर्तयेत्। प्रतिलोममुपांशुना साधयेत्। उपकारिणमुपकारशक्त्या तोषयेत्। प्रयासतश्चार्थमानौ कुर्यात्। व्यसनेषु चानुग्रहम्। स्वयमागतानां यथेष्टदर्शनं प्रतिविधानं च कुर्यात्। परिभवोपघातकुत्सातिवादांश्चैषु न प्रयुंजीत। दत्वा चाभयं पितेवानुगृह्णीयात्। यश्चास्यापकुर्यात्तद्दोषमभिविख्याप्य प्रकाशमेनं घातयेत्। परोद्वेगकारणाद्वा दाण्डकर्मिकवच्चेष्टेत। न च हतस्य भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत। कुल्यानप्यस्य स्वेषु पात्रेषु स्थापयेत्। कर्मणि मृतस्य पुत्रं राज्ये स्थापयेत्। एवमस्य दण्डोपनताः पुत्रपौत्राननुवर्तन्ते। यस्तूपनतान् हत्वा बद्ध्वा वा भूमिद्रव्यपुत्रदारानभिमन्येत, तस्योद्विग्नं मण्डलमभावायोत्तिष्ठते। ये चास्यामात्याः स्वभूमिष्वायत्तास्ते चास्योद्विग्ना मण्डलमाश्रयन्ते। स्वयं वा राज्यं प्राणान् वास्याभिमन्यन्ते।

स्वभूमिषु च राजानस्तस्मात्साम्नाऽनुपालिताः ।
भवन्त्यनुगुणा राज्ञः पुत्रपौत्रानुवर्तिनः ॥

दण्ड द्वारा पराजित राजाओं में जो अविकारी और अपना उपकार करने वाले प्रतीत हों, उनके परामर्श को मानता रहे। किन्तु जो अपकार करते जान पड़ें उन्हें गुप्त दण्ड द्वारा अपने वश में रखे। उपकार करने वाले राजा के उपकार पर विचार करके उसके उपकार के अनुसार ही दान-मान-सत्कार से सदा सन्तुष्ट रखे। यदि वह कभी विपत्तिग्रस्त हो जाय तो उसके प्रति अनुग्रह दिखावे। दर्शनार्थ आये हुए वशीभूत राजाओं को दर्शन की सुविधा देता हुआ शिष्टता का का व्यवहार करे और उन पर कोई संकट आ पड़ा हो तो उसे दूर करने का उपाय करे। उन वशीकृत राजाओं का निरादर, अनुचित वचन, निन्दा अथवा अधिक प्रशंसा भी न करे। विपत्ति में अभयदान दे। किन्तु अपकारी के दोष को प्रचारित करके उसके प्रति दण्ड-विधान करे। यदि दोष प्रचारित करने से अन्य राजाओं पर विपरीत प्रभाव पड़ता प्रतीत हो तो दण्डकर्मिक प्रकरण में कहे अनुसार अपकारी को गुप्त दण्ड दे। किन्तु गुप्तदण्ड देने से जो राजा मारा जाय, उसकी पृथिवी, धन, पुत्र आदि का हरण न करे, वरन् उसके पुत्र आदि योग्य सिद्ध हों तो उन्हें उचित अधिकार युक्त पद देकर वश में रखे। दण्ड द्वारा वश में करते समय जो राजा मारा जाय, उसके पुत्र को राज्य पर अभिषिक्त कर दे। विजिगीषु के ऐसे अनुग्रह से वशीकृत राजा के पुत्र पौत्रादि तक वश में रहे आते हैं। इसके विपरीत वशीकृत को मार कर या बन्दी बना कर उसका राज्य, धन, पुत्र एवं स्त्री आदि का हरण कर लेने के कारण कुपित राष्ट्र-मंडल अर्थात् बारह राजाओं का संघ विजिगीषु को नष्ट करने के लिए तत्पर हो जाता है और स्वयं विजिगीषु के अमात्यादि प्रमुख कार्यकर्त्ता भी उस अनाचार से क्षुब्ध होकर उसे हानि पहुँचाने के लिए राष्ट्रमण्डल के राजाओं का साथ देते हैं अथवा विजिगीषु को अपने वश में करके या मार कर

राज्य पर स्वयं अधिकार कर लेते हैं । इसलिए साम उपायों द्वारा जो राजागण विजिगीषु के रक्षण में हों, उन्हें तथा उनके पुत्र-पौत्रादि को भी विजिगीषु के अनुकूल आचरण करना चाहिए।

सप्तदशोऽध्यायः

सन्धिकर्म एवं सन्धि भंग

शमः सन्धिः समाधिरित्येकोऽर्थः । राज्ञां विश्वासोपगमः शमः सन्धिः समाधिरिति । सत्यं शपथो वा चलः सन्धिः । प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा स्थावरः । इत्याचार्याः । नेति कौटिल्यः । सत्यं शपथो परत्रेह च स्थावरः सन्धिः, इहार्थ एवं प्रतिभूः प्रतिग्रहो वा बलापेक्षः । 'संहिताः, स्मः' इति सत्यसन्धाः पूर्वं राजानः सत्येन सन्दधिरे ।

शम, सन्धि और समाधि—तीनों का एक ही अर्थ है । इसके द्वारा सत्य, शपथ, प्रतिभू अथवा राजपुत्र आदि के लेने के रूप में राजाओं में परस्पर विश्वास दृढ़ होता है । अन्य आचार्यों के अनुसार 'ऐसा ही होगा, विपरीत नहीं होगा' ऐसे सत्य वचनों द्वारा अथवा शपथ पूर्वक की जाती है, वह 'चलसंधि' अधिक विश्वास के योग्य नहीं होती । प्रतिभू (जमानत) या प्रतिग्रह (राजपुत्र आदि के अर्पण) के सहित जो संधि की जाय, वह विश्वसनीय एवं स्थायी होने के कारण 'स्थावर' कही जाती है । किन्तु कौटिल्य इससे असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि सत्य और शपथ से की जाने वाली सन्धि में ही स्थायित्व रह सकता है । क्यों कि सत्य और शपथ इहलोक और परलोक दोनों के बिगड़ने के भय से स्थाई रहते हैं । प्रतिभू और प्रतिग्रह के द्वारा की गई सन्धि के भंग करने से इसी लोक में निन्दा आदि की ही हानि उठानी होगी । प्रतिभू बली हो तभी अपनी जमानत को पूरी करने में तत्पर रह सकता है और प्रतिग्रह भी तभी विश्वसनीय हो सकता है जबकि वह देने वाले का हार्दिक प्रेमपात्र हो । 'हम सन्धि-बन्धन में बँध चुके' ऐसे सत्यवचनों द्वारा ही पूर्वकालीन राजागण सन्धि किया करते थे ।

तस्यातिक्रमे शपथेन अग्न्युदकसीताप्राकारलोष्टहस्तिकन्धाश्व-पृष्ठरथोपस्थशस्त्ररत्नबीजगन्धरससुवर्णहिरण्यान्यालेभिरे, हन्युरेतानि त्यजेयुश्चैन यः शपथमतिक्रामेदिति । शपथातिक्रमे महतां तपस्विनां मुख्यानां वा प्रातिभाव्यबन्धः प्रतिभूः । तस्मिन् यः परावग्रहसमर्थान् प्रतिभुवो गृह्णाति, सोऽतिसन्धत्ते । विपरीतोऽतिसन्धीयते । बन्धुमुख्यप्रग्रहः प्रतिग्रहः । तस्मिन् या दूष्यामात्यं दूष्यापत्यं वा ददाति सोऽतिसन्धत्ते । विपरीतोऽतिसन्धीयते । प्रतिग्रहग्रहणविश्वस्तस्य हि परश्छिद्रेषु निरपेक्षः प्रहरति । अपत्य-समाधौ तु कन्यापुत्रदाने ददत् कन्यामतिसन्धत्ते । कन्या ह्यदा-यादा परेषामेवानर्थाय क्लेशाय च । विपरीतः पुत्रः ।

सत्य का अतिक्रमण होने पर अग्नि, जल, सीता (हल का अग्र भाग), प्राकार की ईंट, हाथी का कन्धा, अश्व की पीठ, रथ में बैठने का स्थान, शस्त्र, रत्न, बीज, गन्ध, रस, स्वर्ण एवं नकद धन का स्पर्श करके 'यह वस्तुएँ सन्धि करने वाले को नष्ट करदें या त्याग दें' ऐसी शपथ लेकर सन्धि करते थे । शपथ का भी अतिक्रमण होने पर महान् तपस्वियों या ग्राम प्रमुखों आदि को प्रतिभू बनाकर सन्धि की जानी चाहिए । जो राजा सन्धि भंग करने वाले शत्रु के निग्रह में समर्थ पुरुष को प्रतिभू बनाता है, वह विशेष लाभ में रहता है । इसके विप-रीत अर्थात् असमर्थ को प्रतिभू बनाने वाला राजा शत्रु द्वारा धोखे में डाला जाता है । प्रतिग्रह अर्थात् शत्रु के बन्धु या पुत्र आदि को अपने यहाँ रख लेने वाली सन्धि में वह प्रतिपक्ष अधिक लाभ में रहता है जो अपने दूष्य बन्धु या अमात्यादि को उसे दे दे । किन्तु जो वैसे दूष्यों को ग्रहण करता है, वह ठगा जाता है । क्योंकि प्रतिग्रह में दूष्य पुत्र आदि को पाकर विजिगीषु तो इस विश्वास में रहता है कि रखे हुए पुत्रादि के मारे जाने के भय से शत्रु कुछ अपकार नहीं करेगा । किन्तु शत्रु उन दूष्य पुत्रादि की कुछ चिन्ता न करके छिद्र देखते ही विजिगीषु पर प्रहार करने में नहीं चूकता । प्रतिग्रह-सन्धि वाले राजाओं में जो अपनी

कन्या को दे दे, वह अधिक लाभ में रहता है। क्योंकि कन्या राज्य की अधिकारिणी न होती हुई दूसरे के के लिए ही उपभोग्य होती है तथा पिता के लिए कष्टदायिनी भी रहती है। इसके विपरीत—योग्य पुत्र को रखने वाले सदैव हानि में रहते हैं।

पुत्रयोरपि जात्यं प्राज्ञं शूरं कृतास्त्रमेकपुत्रं वा ददाति, सोऽतिसन्धीयते। विपरीतोऽतिसन्धत्ते। जात्यादजात्यो हि लुप्त-दायादसन्तानत्वाद्राधातुं श्रेयान्। प्राज्ञादप्राज्ञो मंत्रशक्तिलोपात्। शूरादशूर उत्साहशक्तिलोपात्। कृतास्त्रादकृतास्त्रः प्रहर्तव्यसम्प-ल्लोपात्। एकपुत्रादनेकपुत्रो निरपेक्षत्वात्। जात्यप्राज्ञयोर्जात्यम-प्राज्ञमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तते। प्राज्ञमजात्यं मंत्राधिकारः। मंत्रा-धिकारेऽपि वृद्धसंयोगाज्जात्यकः प्राज्ञमतिसन्धत्ते।

जो राजा अपने पुत्रों में से सजातीय या अपनी सवर्णा स्त्री से उत्पन्न, विद्वान्, शूर, शस्त्रास्त्रविद्या में निपुण अथवा इकलौते पुत्र को प्रतिग्रह में दे देते हैं, वे भारी धोखा खाते हैं। किन्तु जो उक्त गुणों के विपरीत गुण वाले पुत्र को देते हैं, वे लाभ में रहते है। सवर्णा से उत्पन्न की अपेक्षा अन्यवर्णा से उत्पन्न पुत्र को प्रतिग्रह में देना इसलिए भी लाभ-दायक है कि वह दायभाग का उत्तराधिकारी नहीं होता। विद्वान् की अपेक्षा विद्वत्ता-रहित में मंत्रशक्ति का अभाव रहने के कारण उसे देने से लाभ रहता है और लेने वाले के लिए उससे कोई लाभ नहीं हो सकता। शूर की अपेक्षा अशूर या उत्साहशक्तिहीन का देना ही ठीक है। शस्त्रास्त्रविद् की अपेक्षा शस्त्रास्त्र में अज्ञान पुत्र ही दे, क्योंकि वह युद्ध करने में असमर्थ रहता है। इकलौता पुत्र देने की अपेक्षा अनेक पुत्रों में से ही कोई दिया जाय, क्योंकि उसका होना कोई अपेक्षा नहीं रखता। जात्य सवर्ण, बुद्धिमान और ऐश्वर्यमय में से जात्य पुत्र ही उत्तराधिकारी होता है, चाहे वह बुद्धिमान या ऐश्वर्यसम्पन्न न हो। किन्तु जो असवर्णा से उत्पन्न होने पर भी प्राज्ञ है, उसमें मंत्राधिकार

होता है. किन्तु मन्त्राधिकार होने पर भी सवर्ण पुत्र विद्या वृद्धों की सत्संगति से ऐसा बुद्धिमान हो सकता है कि प्राज्ञ से भी आगे बढ़ जाय।

प्राज्ञशूरयोः प्राज्ञमशूरं मतिकमणां योगोऽनुवर्तते। शूरमप्राज्ञं विक्रमाधिकारः। विक्रमाधिकारेऽपि हस्तिनमिव लुब्धकः प्राज्ञः शूरमतिसन्धत्ते। शूरकृतास्त्रयोः शूरमकृतास्त्रं विक्रमव्यवसायोऽनुवर्तते। कृतास्त्रमशूरं लक्षलम्भाधिकारः। लक्षलम्भाधिकारेऽपि स्थैर्यप्रतिपत्त्यसंमोषैः शूरः कृतास्त्रमतिसन्धत्ते। बह्वेकपुत्रयोर्बहुपुत्र एकं दत्वा शेषवृत्तिस्तब्धः सन्धिमतिक्रामति नेतरः। पुत्रसर्वस्वदाने सन्धिश्चेत्पुत्रफलतो विशेषः। समफलयोः शक्तप्रजननतो विशेषः। शक्तप्रजननयोरप्युपस्थितप्रजननतो विशेषः। शक्तिमत्येकपुत्रे तु लुप्तपुत्रोत्पत्तिरात्मानमादध्यात्। न चैकपुत्रमिति। अभ्युच्चीयमानः समाधिमोक्षं कारयेत्।

प्राज्ञ और शूर पुत्रों में से भी जो बुद्धिमान किन्तु कायर है, वह कार्य करने में सक्षम रहता है। इसके विपरीत बुद्धिहीन किन्तु शूर में पराक्रम करने की ही सामर्थ्य रहती है। इसलिए पराक्रम में समर्थ होकर भी वह उसी प्रकार प्राज्ञ के वश में पड़ जाता है जैसे कि हाथी लुब्धक के वशीभूत हो जाता है। पराक्रमी और अस्त्र निपुण पुत्र के लक्ष्य-वेध में समर्थ रहने पर भी धैर्य, प्रज्ञा और सतर्कता के प्राज्ञ पुत्र को उससे विशिष्ट माना जाता है। एक पुत्र और अनेक पुत्र वालों में अनेक पुत्र वाला ही लाभ में रहता है। क्योंकि वह एक पुत्र को प्रतिग्रह में दे दे तो उसका अभाव खटकेगा नहीं। यदि पुत्र और सर्वस्व दान की शर्त पर संधि हो तो पुत्र के पुत्र अर्थात् पौत्र को अपने पास रख कर पुत्र को प्रतिग्रह में दे दे। यदि दो पुत्र हों तो प्रजनन शक्ति वाले पुत्र को न देकर दूसरे को दे दे। प्रजनन शक्ति-सम्पन्न पुत्रों में से भी जिसके शीघ्र पुत्रोत्पत्ति होती हो, उसे न देकर दूसरे को दे। किन्तु जिसके प्रजनन शक्ति युक्त एवं राज्य-संचालन में समर्थ एक पुत्र ही हो और वह स्वयं पुत्रोत्पत्ति में असमर्थ होगया हो तो स्वयं को ही धरोहर रूप में

समर्पित कर दे। उस एक पुत्र को कभी न दे। संधि करने के पश्चात विजिगीषु अपनी शक्ति को बढ़ा कर धरोहर रूप में रखे अपने पुत्र आदि को मुक्त कराने का उपाय करे।

कुमारासन्नाः सत्रिणः कारुशिल्पिव्यंजनाः कर्माणि कुर्वाणाः सुरुङ्गया रात्रावुपखानयित्वा कुमारमपहरेयुः। नटनर्तकगायकवादकवाग्जीवनकुशीलवप्लवकसौभिका वा पूर्वंप्रणिहिताः परमुपतिष्ठेरन्। ते कुमारं परम्परयोपतिष्ठेरन्। तेषामनियतकालप्रवेशस्थाननिर्गमनानि स्थापयेत्। ततस्तद्व्यञ्जनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत। तेन रूपाजीवा भार्याव्यंजनाश्च व्याख्याताः। तेषां वा तूर्यभाण्डफेलां गृहीत्वा निर्गच्छेत्। सूदारालिकस्नापकसंवाहकास्तरककल्पकप्रसाधकोदकपरिचारकैर्वा द्रव्यवस्त्रभाण्डफेलाशयनाशनसम्भोगैर्निर्ह्रियेत।

संधि के अनुसार प्रतिग्रह रूप में दिये हुए राजकुमार के निकटस्थ सत्रि संज्ञक गुप्तचर, कारु या शिल्पी रूपी गुप्तचर अपने-अपने कार्य के अनुसार रात्रि के समय सुरंग बना कर राजकुमार का अपहरण कर ले। पूर्व नियुक्त नट, नर्तक, गायक, वादक, वाग्जीवी, कुशीलव, प्लवक और बाजीगर रूपी गुप्तचर शत्रु के यहां रहते हुए राजकुमार से सम्पर्क स्थापित करें। वह राजकुमार भी शत्रु राजा की अनुमति से उन सबके चाहे जब आने, पास रहने और बाहर जाने आदि का समुचित प्रबंध करा दे और फिर जब कभी अवसर मिले, उन्हीं जैसा वेश बना कर निकल भागे। इसी प्रकार से वेश्या अथवा भार्या का वेश बना कर भी निकला जा सकता है। अथवा तुरही आदि बाजों की पेटियों या पिटारों को उठाने वालों के साथ उनके ही वेश में निकल जाय। अथवा सूपकार, आरालिक [रसोइया], स्नान कराने वाले, देह दबाने वाले, बिस्तर बिछाने वाले, नाई, प्रसाधक या जल वाले के काम में आने वाले द्रव्य, वस्त्र, पेटी, बिस्तर, या अन्यान्य सामग्री के साथ निकल भागे।

परिचारकच्छद्मना वा किंचिदरूपवेलायामादाय निर्गच्छेत्। सुरुङ्गामुखेन वा निशोपहारेण। तोयाशये वा वारुणं योगमातिष्ठेत्। वैदेहकव्यञ्जना वा पक्वान्नफलव्यवहारेणारक्षिषु रसमवचारयेयुः। दैवतोपहारश्राद्धप्रहवणनिमित्तमारक्षिषु मदनयोगयुक्तमन्नपानरसं वा प्रयुज्यापगच्छेत्। आरक्षकप्रोत्साहनेन वा। नागरककुशीलवचिकित्सकापूपिकव्यञ्जना वा रात्रौ समृद्धगृहाण्यादीपयेयुः। आरक्षिणो वैदेहकव्यंजना वा पण्यसंस्थामादीपयेयुः। अन्यद्वा शरीरं निक्षिप्य स्वगृहमादीपयेदनुपातभयात्। ततः सन्धिच्छेदखातसुरुङ्गाभिरपगच्छेत्।

अथवा परिचारक के रूप में घोर अन्धकार के समय निकले, जिससे कि पहिचाना न जा सके। अथवा भूतवलि देने के बहाने से ही रात्रि के समय सुरंगद्वार से निकल जाय। अथवा वारुणयोग सिद्धि के बहाने से किसी नदी या सरोवर में जा बैठे और अवसर पाकर भाग जाय। या वणिक्वेश वाले गुप्तचर पक्वान्न और फल वेचने के बहाने से द्वाररक्षकों को विषमिश्रित पदार्थ खिला कर अचेत कर दें और राजकुमार को निकाल कर ले जाँय। अथवा कुमार स्वयं ही द्वार रक्षकों को प्रसाद, श्राद्ध या भोजन-गोष्ठी के बहाने से धतूरेयुक्त अन्न-जल खिला-पिला अचेत कर दे या उन्हें प्रभूत धन देकर संतुष्ट कर ले और निकल जाय। या नगरवासी, कुशीलव, चिकित्सक अथवा आपूपिक वेश वाले गुप्तचर क्रय-विक्रय के बहाने से नगर में जाकर कुछ धनिकों के घरों में आग लगा दें। अथवा द्वारपाल या वणिक्वेश वाले गुप्तचर किसी पण्य संस्थान को जला दें। ऐसा करने से लोगों का ध्यान उसी ओर बँट जायगा और राजकुमार को निकाल ले जाने में सुविधा रहेगी। अथवा अपने स्थान पर किसी मृतक को रख कर राजकुमार स्वयं आग लगा दे और सुरंग द्वारा निकल भागे। शव देख कर लोग राजकुमार को ही मर गया समझ कर अधिक खोज बीन नहीं करेंगे।

काचकुम्भभाण्डभारव्यंजनो वा रात्रौ प्रतिष्ठेत। मुण्डिजटिलानां प्रवसनान्यनुप्रविष्टो वा रात्रौ तद्व्यंजनः प्रतिष्ठेत। विरूपव्याधिकरणारण्यचरच्छद्मनामन्यतमेन वा। प्रेतव्यंजनो वा गूढैर्निर्ह्रियेत। प्रेतं वा स्त्रीवेषेणानुगच्छेत्। वनचरव्यंजनाश्चैनमन्यतो यान्तमन्यतोऽपदिशेयुः। ततोऽन्यतो गच्छेत्। चक्रचराणां वा शकटवाटरपगच्छेत्। आसन्ने चानुपाते सत्त्रं वा गृह्णीयात्। सत्त्राभावे हिरण्यं रसविद्धं वा भक्षजातमुभयतः पन्थानमुत्सृजेत्। ततोऽन्यतोऽपगच्छेत्। गृहीतो वा सामादिभिरनुपातमतिसन्दध्यात्। रसविद्धेन वा पथ्यदानेन। वारुणयोगाग्निदाहेषु वा शरीरमन्यदाधाय शत्रुमभियुंजीत—'पुत्रो मे त्वया हत' इति।

उपात्तच्छन्नशस्त्रो वा रात्रौ विक्रम्य रक्षिषु।
शीघ्रपातैरपसरेद्गूढप्रणिहितैः सह ॥ १ ॥

अथवा राजकुमार स्वयं कांच या मिट्टी आदि के बर्तन ढोने वाले श्रमिक के वेश में निकल जाय। अथवा मुण्डी और जटिल साधु रूपी गुप्तचरों के जाने के समय वैसा ही वेश बना कर उनके साथ रात्रि के समय निकल भागे। अथवा औपनिषदिक प्रकरणोक्त उपाय से रोगी या वनचर आदि का छद्मवेश बना कर रात्रि के समय भाग जाय। अथवा गुप्तचर उससे मिल कर उसे मृतक के रूप में निकाल लावें या बनावटी शव के पीछे स्त्री के रूप में रोता-पीटता हुआ राजकुमार स्वयं ही चला जाय। यदि राजकुमार की खोज में राजपुरुष दौड़ आवें तो उसके अनुगत वनचर रूपी गुप्तचर उन राजपुरुषों को अन्य मार्ग में भटका दें। अथवा राजकुमार बैलगाड़ी वालों के समूह में मिल कर चला जाय। यदि खोजने वाले पुरुष समीप आते प्रतीत हों तो निकटस्थ वन में जा छिपे। मार्ग में सघन वन न हो तो हिरण्य और विषयुक्त पक्वान्न बिखेरता चले और कुछ दूर जाकर मार्ग बदल दे। यदि पकड़ में आ जाय तो सामनीति द्वारा उन्हें धोखा दे या विषयुक्त-पदार्थ खिला कर उन्हें अचेत करके अथवा मार कर चला

जाय। जल या अग्नि में किसी अन्य के शव को डलवा कर विजिगीषु यह कहता हुआ शत्रु पर धावा बोल दे कि 'तुमने मेरे पुत्र को मरवा दिया है'। तब शत्रु को राजकुमार की खोज का अवसर न मिलने के कारण उसे भी शत्रु-राज्य से निकल भागने में सुविधा रहेगी। अथवा उक्त उपायों के अभाव में राजकुमार पहिले से ही छिपे रखे शस्त्रों द्वारा रात्रि के समय द्वारपालों पर प्रहार करके शीघ्रगामी अश्व द्वारा गुप्तचरों के साथ भाग जाय।

अष्टादशोऽध्यायः

मध्यम, उदासीन तथा राजमंडलवृत्त

मध्यमस्यात्मा तृतीया पञ्चमी च प्रकृतयः। द्वितीयः चतुर्थी षष्ठी च विकृतयः। तच्चेदुभयं मध्यमोऽनुगृह्णीयात्, विजिगीषुर्मध्यमानुलोमः स्यात्। न चेदनुगृह्णीयात्प्रकृत्यनुलोमः स्यात्। मध्यमश्चेद्विजिगीषोर्मित्रं मित्रभावि लिप्सेत्, मित्रस्यात्मनश्च मित्राण्युत्थाप्य मध्यमाच्च मित्राणि भेदयित्वा मित्रं त्रायेत। मण्डलं वा प्रोत्साहयेत्—'अतिप्रवृद्धोऽयं मध्यमः सर्वेषां नो विनाशाय अभ्युत्थितः सम्भूयास्य यात्रां विहनाम' तच्चेन्मण्डलमनुगृह्णीयान्मध्यमावग्रहेणात्मानमुपबृंहयेत्। न चेदनुगृह्णीयात् कोशदण्डाभ्यां मित्रमनुगृह्य ये मध्यमद्वेषिणो राजानः परस्परानुगृहीता वा बहवस्तिष्ठेयुरेकसिद्धा वा बहवः सिद्ध्येयुः परस्पराद्वा शङ्किता नोत्तिष्ठेरन्, तेषां प्रधानमेकमासन्नं वा सामदानाभ्यां लभेत। द्विगुणो द्वितीयं त्रिगुणस्तृतीयम्। एवमभ्युच्चितो मध्यममवगृह्णीयात्।

मध्यम राजा की प्रकृति और विकृति दोनों के ही तीन-तीन भेद हैं। जैसे कि वह स्वयं, उसका मित्ररूप राजा तीसरी प्रकृति तथा मित्र का मित्र रूपी पाँचवीं प्रकृति—यह तीनों प्रकृति हैं। उसका शत्रु रूप दूसरी, शत्रु का मित्र रूपी चौथी प्रकृति और शत्रु के मित्र का मित्र रूप छटवीं प्रकृति—यह तीनों विकृति रूप अर्थात् विरोधी राजा होते

हैं। यदि मध्यम प्रकृति और विकृति दोनों प्रकार के राजाओं पर अनुग्रह करता रहे तो विजिगीषु को भी मध्यम के प्रति अनुकूल रहना चाहिए। यदि मध्यम उन पर अनुग्रह न करे तो विजिगीषु अपनी प्रकृति त्रय के प्रति अनुकूल व्यवहार रखे। यदि मध्यम विजिगीषु के होने वाले मित्र को वशीभूत करने के विचार में हो तो अपने और अपने मित्र के मित्र को मध्यम के विरुद्ध उकसा कर तथा मध्यम के मित्रों को अपनी ओर मिला कर अपने मित्र की रक्षा करे। अथवा मध्यम को क्षति पहुँचाने के लिए राष्ट्रमण्डल को उसका विरोधी बनाने के उद्देश्य से कहे कि 'यह मध्यम राजा प्रबल होकर हम सभी को नष्ट करने के फेर में है, इसलिए हम सब मिल कर इसे असफल बना दें। यदि राष्ट्रमण्डल के राजागण इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लें तो मध्यम राजा को उनकी सहायता से वश में करता हुआ अपनी बल-वृद्धि करे। यदि राष्ट्रमण्डल सहायता न दे तो वह अपने मित्र को धन-जन देकर सन्तुष्ट करे और फिर मध्यम के विरोधी सभी राजाओं को सहायता देकर मध्यम के अपकारार्थ तैयार करे। अथवा यदि विजिगीषु एक को अपने पक्ष में कर ले तो सभी उसके पक्ष में हो सकते हों या परस्पर की फूट के भय से उसके विरुद्ध न आना चाहते हों, तो उनमें जो राजा प्रमुख हो उसे साम-दान द्वारा वशीभूत कर ले। इस प्रकार अन्य राजा की सहायता से विजिगीषु को दुगुनी शक्ति प्राप्त हो जाय तब किसी तीसरे राजा की सहायता लेकर तिगुनी शक्ति कर ले। इस प्रकार विजिगीषु को अपनी शक्ति वृद्धि करके मध्यम का दमन करना चाहिए।

देशकालातिपत्तौ वा सन्धाय मध्यमेन मित्रस्य साचिव्यं कुर्यात्। दूष्येषु वा कर्मसन्धिम्। कर्शनीय वाऽस्य मित्रमध्यमो लिप्सेत, प्रतिष्टम्भयेदेनम्—'अहं त्वा त्रायेय' इत्याकर्शनात्। कर्शितमेनं त्रायेत। उच्छेदनीयं वास्य मित्रं मध्यमो लिप्सेत कर्शितमेनं त्रायेत। मध्यमवृद्धिभयात्। उच्छिन्नं वा भूम्यनुग्रहेण हस्ते कुर्यादन्यत्रापसारभयात्। कर्शनीयोच्छेदनीययोश्चेन्मित्राणि मध्य-

मस्य साचिव्यकराणि स्युः, पुरुषान्तरेण सन्धीयेत् । विजिगीषोर्वा तयोर्मित्राण्यवग्रहसमर्थानि स्युः सन्धिमुपेयात् । अमित्रं वास्य मध्यमो लिप्सेत, सन्धिमुपेयात् । एवं स्वार्थश्च कृतो भवति, मध्यमस्य प्रियं च ।

यदि मध्यम के वैरियों की सहायता मिलने से पूर्व ही युद्ध के लिए देश-काल जन्य कोई बाधा उपस्थित हो जाय तो मध्यम से संधि करके उसके मित्र से भी मेल कर ले । अथवा मध्यम के वैरियों या दूष्यों के साथ कर्मसन्धि करे । यदि मध्यम विजिगीषु के किसी कर्शनीय (सर्व अपहरण द्वारा कृश बनाने योग्य) मित्र को अपने वश में करना चाहता हो तो विजिगीषु 'मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।' ऐसा अभय प्रदान करे और जब वह मध्यम के द्वारा क्षीण किया जाने लगे तब उसकी रक्षा करे । यदि मध्यम विजिगीषु के किसी उच्छेदन योग्य मित्र को वश में करने का प्रयत्न करे तो उसके क्षीण होने तक टालता रहे और उच्छेद की अवस्था में पहुँचते ही उसकी रक्षा में तत्पर हो जाय, अन्यथा उसके उच्छिन्न होने से मध्यम राजा प्रबल होकर विजिगीषु के लिए भयप्रद हो सकता है । अथवा उच्छिन्न हुए उस मित्र को अपनी कुछ पृथिवी देकर वश में रखे, अन्यथा वह शत्रु के वश में पड़ सकता है । यदि विजिगीषु के उक्त दोनों प्रकार के मित्रों के मित्र मध्यम की सहायता में तत्पर हों तो मध्यम के साथ 'पुरुषान्तर' अर्थात् प्रतिग्रह में अपने पुत्रादि को देकर सन्धि कर ले । यदि उक्त दोनों प्रकार के मित्र स्वयं ही विजिगीषु का दमन करने में सशक्त हों तो भी मध्यम से सन्धि कर लेना उचित है । मध्यम राजा विजिगीषु के किसी शत्रु को वशीभूत करने में तत्पर हो तो विजिगीषु मध्यम से सन्धि कर ले, जिससे कि अपनी स्वार्थ सिद्धि और मध्यम की प्रसन्नता दोनों का ही लाभ है ।

मध्यमश्चेत्स्वमित्रं मित्रभावं लिप्सेत, पुरुषान्तरेण सन्दध्यात् । सापेक्षं वा 'नार्हसि मित्रमुच्छेत्तुम्' इति वारयेत् । उपे-

क्षेत वा—मण्डलमस्य कुप्यतु स्वपक्षवधादिति । अमित्रमात्मनो वा मध्यमो लिप्सेत, कोशदण्डाभ्यामेनमदृश्यमानोऽनुगृह्णीयात् उदासीनं वा मध्यमो लिप्सेत—'उदासीनाद्भिद्यताम्' इति मध्यमोदासीनयोर्यो मण्डलस्याभिप्रेतस्तमाश्रयेत । मध्यमचरितेनोदासीनचरितं व्याख्यातम् । उदासीनश्चेन्मध्यमं लिप्सेत, यतः शत्रुमतिसन्दध्यान्मित्रस्योपकारं कुर्यात् । मध्यममुदासीनं वा दण्डोपकारिणं लभेत, ततः परिणमेत । एवमुपगृह्यात्मानमरिप्रकृति कर्शयेत् । मित्रप्रकृतिं चोपगृह्णीयात् ।

यदि मध्यम अपने ही किसी मित्रभाव वाले राजा को वश में करने का इच्छुक हो तो विजिगीषु को मध्यम के साथ पुरुषान्तर सन्धि कर लेनी चाहिए । अथवा मध्यम के उस मित्र से अपना कोई कार्य निकाल सकता हो तो 'अपने ही मित्र को नष्ट करना उचित नहीं है' यह कहता हुआ मध्यम का आक्रमण करने से रोकने का प्रयत्न करे । अथवा उपेक्षा भाव से तटस्थ हो जाय । इससे संभव है कि मध्यम के पक्ष वाले ही अन्य राजागण एक मित्र को नष्ट होता देख कर रुष्ट हो जाँय । अथवा मध्यम द्वारा अपने किसी शत्रु पर बल-प्रयोग किया जाय तो उसके उस शत्रु की धन-जन से सहायता करे । यदि मध्यम किसी उदासीन को वश में करना चाहे तो विजिगीषु 'मध्यम-उदासीन में द्वेष होना लाभदायक है' ऐसा निश्चय करके मध्यम और उदासीन के मण्डलों में जो राजा अधिक मान्य हो उसके द्वारा सहायता करना उचित है। इस प्रकार मध्यम और उदासीन दोनों के विषय मे कह दिया गया । यदि उदासीन मध्यम को वश में करने का विचार करता हो तो विजिगीषु जिस पक्ष के साथ शत्रु का अपकार और मित्र का उपकार कर सके, उसी पक्ष में जा मिले । अथवा उन दोनों में से जो सेना के द्वारा उपकार करने में समर्थ हो, उसके साथ मिल जाय । इस प्रकार अपनी बल वृद्धि करता हुआ विजिगीषु शत्रुओं को क्षीण और मित्रों को अनुगृहीत करे ।

सत्यप्यमित्रभावे तस्यानात्मवान् नित्यापकारी शत्रुः शत्रुसहितः पार्ष्णिग्राहो वा व्यसनी यातव्यो व्यसने वा नेतुरभियोक्ते-त्यरिभाविनः । एकार्थाभिप्रयातः पृथगर्थाभिप्रयातः सम्भूययाणिकः संहितप्रयाणिकः स्वार्थाभिप्रयातः सामुत्थायिकः कोशदण्डयोरन्य-तरस्य क्रेता विक्रेता द्वैधीभाविक इति मित्रभाविनः । सामन्तो बलवतः प्रतिघातोऽन्तर्धिः प्रतिवेशो वा बलवतः पार्ष्णिग्राहो वा स्वयमुपनतः प्रतापोपनतो वा दण्डोपनत इति भृत्यभाविनः सामन्ताः । तैर्भूम्येकान्तरा व्याख्याताः ।

शत्रु कहे जाने वाले सामन्त तीन प्रकार के होते हैं—(१) शत्रु-भावी, (२) मित्रभावी और (३) भृत्यभावी । प्रथम शत्रुभावी के विषय में कहेंगे । अपने राज्य से मिले होने के कारण समान रूप से शत्रुभाव रखने वाले सामन्त आठ प्रकार के माने गये हैं । यथा--अजितेन्द्रिय नित्य अपकारी, शत्रु, शत्रु की सहायता युक्त, पार्ष्णिग्राह, व्यसनी, यातव्य और संकटग्रस्त देखकर आक्रमण करने वाला । अब मित्रभावी सामन्तों के आठ भेद कहते हैं । यथा—एक वस्तु की इच्छा से विजिगीषु के साथ जाने वाला, विजिगीषु से भिन्न उद्देश्य से आक्रमण में तत्पर, युद्ध के अभियान में विजिगीषु का साथ देने वाला, विजयाभियान में सन्धि करके साथ देने वाला, विजिगीषु के स्वार्थ हित अभियान करने वाला, साथ मिलकर शून्य प्रदेश बसाने में योग देने वाला, धन-जन का क्रय विक्रय करने वाला और द्वैधीभाव से युक्त । अब भृत्यभावी सामन्तों के भेद कहते है । यथा—किसी प्रबल राजा का प्रतिघाती, प्रबल राजा का अन्तर्धि (मध्यवर्ती), पड़ौसी, पार्ष्णिग्राह, आश्रय पाने के लिए दण्डोपनत अथवा बलपूर्वक दण्डोपनत । उक्त तीन प्रकार के अमित्र सामन्तों के अनुसार ही भूम्येकान्तर सामातों का भी विवेचन हो गया समझे ।

तेषां शत्रुविरोधे यन्मित्रमेकार्थतां व्रजेत् ।
शक्त्या तदनुगृह्णीयाद्विषहेत यया परम् ॥१

प्रसाध्य शत्रुं यन्मित्रं वृद्धं गच्छेदवश्यताम् ।
सामन्तैकान्तराभ्यां तत्प्रकृतिभ्यां विरोधयेत् ॥२
तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां भूमिं वा तस्य हारयेत् ।
यथा वानुग्रहापेक्षं वश्यं तिष्ठेत्तथाचरेत् ॥३
नोपकुर्यादमित्रं वा गच्छेद्यदतिकर्शितम् ।
तदहीनमवृद्धं च स्थापयेन्मित्रमर्थवित् ॥४
अर्थयुक्त्या चलं मित्रं सन्धिं यदुपगच्छति ।
तस्यापगमने हेतुं विहत्यान्न चलेद्यथा ॥५
अरिसाधारणं यद्वा तिष्ठेत्तदरितः शठम् ।
भेदयेद्भिन्नमुच्छिन्द्यात्ततः शत्रुमनन्तरम् ॥६
उदासीनं च यत्तिष्ठेत्सामन्तैस्तद्विरोधयेत् ।
ततो विग्रहसन्तप्तमुपकारे निवेशयेत् ॥७

यदि उक्त प्रकार के सामन्तों में से किसी के साथ विजिगीषु की मित्रता हो और उस सामन्त का शत्रु से विरोध हो गया हो तो उसे आक्रमण सहन करने के लिये सहायता दे। शत्रु को हराकर प्रबल हुआ जो मित्र मैत्रीभाव छोड़कर अपने पर ही बल प्रयोग करने लगे तो उसके सामन्त प्रकृति और भूम्येकान्तर मित्रों के साथ विरोध उत्पन्न करा दे। अथवा अपने वश में न रहने वाले मित्र की भूमि को उसी के किसी बान्धव या अवरुद्ध स्वजन आदि को विरुद्ध करा कर छिनवा दे। अथवा अपनी सहायता की कामना करता हुआ जैसे भी वह वशीभूत हो सके, वैसा ही करे। अथवा क्षीणबल होने के कारण जो मित्र अपना कुछ उपकार न कर सके या अमित्र से जा मिला हो तो भी उसे क्षति न पहुँचावे और न उसके बल को ही बढ़ने दे। यदि किसी चपल प्रकृति वाले मित्र ने स्वार्थवश सन्धि की हो तो विजिगीषु धन देकर उसे इस प्रकार बनाये रखे, जिससे कि वह सन्धि तोड़कर न निकल सके। अथवा जो मित्र शठता पूर्वक शत्रु से जा मिला हो, उसे शत्रु से फोड़ने का प्रयत्न करे और जब वह फूट जाय तब उसका और शत्रु का,

दोनों का ही उच्छेद कर दे। जो मित्र उदासीन रसे उसे सामन्तों से लड़ा दे और जब वह क्षीण एवं सन्तप्त हो जाय तब उसे अनुग्रह पूर्वक पुनः बसावे, जिससे कि वह सदैव के लिए कृतज्ञ बना रहे।१-७।

अमित्रं विजिगीषुं च यत्संचरति दुर्बलम्।
तद्बलेनानुगृह्णीयाद्यथा स्यान्न पराङ्मुखम्॥८
अपनीय ततोऽन्यस्यां भूमौ वा सन्निवेशयेत्।
निवेश्य पूर्वं तत्रान्यं दण्डानुग्रहहेतुना॥९
अपकुर्यात्समर्थं वा नोपकुर्याद्यदापदि।
उच्छिन्द्यादेव तन्मित्रं विश्वस्याङ्कमुपस्थितम्॥१०
मित्रव्यसनतो वाऽरिरुत्तिष्ठेद्योऽनवग्रहः।
मित्रेणैव भवेत्साध्यश्छादितव्यसनेन सः॥११
अमित्रव्यसनान्मित्रमुत्थितं यद्विरज्यति।
अरिव्यसनसिद्ध्या तच्छत्रुणैव प्रसिद्ध्यति॥१२
वृद्धिं क्षयं च स्थानं च कर्शनोच्छेदनं तथा।
सर्वोपायान्समादध्यादेतान् यश्चार्थशास्त्रवित्॥१३
एवमन्योन्यसंचारं षाड्गुण्यं योऽनुपश्यति।
स बुद्धिनिगडैर्बद्धैरिष्टं क्रीडति पार्थिवैः॥१४

जो निर्बल मित्र अपना बल बढ़ाने के लिये विजिगीषु और शत्रु दोनों से सहायता माँगे तो विजिगीषु ही उसे इतनी अधिक सैनिक सहायता दे, जिससे कि वह अपने से विमुख होकर शत्रु के पक्ष में न हो सके। अथवा ऐसे मित्र को उसके अपने स्थान से हटाकर अन्यत्र बसा दे और बसाने से पूर्व ही वहां सैनिक सहायता पहुँचाने के लिए किसी समर्थ व्यक्ति की नियुक्ति करे। अथवा जो मित्र समर्थ होकर भी संकट काल में सहायक न हो, वरन् अपकार करे तो प्रथम उसे विश्वास देकर वश में करे और फिर नष्ट कर दे। जो शत्रु विजिगीषु के मित्र को विपत्ति में पड़ा देख कर तेजी से अपना उत्थान करे, उसे मित्र की विपत्ति दूर करके उसी के द्वारा पराजित कराये। जो मित्र शत्रु पर

संकट आने से प्रबल हो गया हो और विजिगीषु के प्रति भी विरक्ति-भाव प्रकट करता हो तो शत्रु का संकट दूर होने पर उसी के द्वारा उस मित्र को हरवा दे। अर्थशास्त्रविद् विजिगीषु वृद्धि, अवनति, स्थान, कर्शन और उच्छेदन आदि का सभी उपायों से विचार पूर्वक प्रयोग करे। इस प्रकार परस्पर सम्बद्ध सन्धि-विग्रह आदि षाड्गुण्य का उचित प्रयोग करने वाला विजिगीषु अपनी बुद्धि रूपी सांकल में बंधे हुए राजाओं से अपना इच्छित पूर्ण कराने में सफल होता है ॥८-१४॥

॥ षाड्गुण्य सप्तम अधिकरण समाप्त ॥

व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

प्रकृतिव्यसनवर्ग

व्यसनयौगपद्ये सौकर्यतो यातव्यं रक्षितव्यं वेति व्यसनचिन्ता। दैवं मानुषं वा प्रकृतिव्यसनमनयापनयाभ्यां सम्भवति। गुणप्रातिलोम्यमभावः प्रदोषः प्रसङ्गः पीडा वा व्यसनम्। व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनम्। स्वाम्यमात्यजनपददुर्गकोशदण्डमित्रव्यसनानां पूर्वं पूर्वं गरीय इत्याचार्याः।

विजिगीषु और शत्रु दोनों पर ही समान संकट हो और शत्रु पर चढ़ाई तथा स्वरक्षण में भी समानता हो, तब आक्रमण करे या स्वरक्षण? इस पर विचार करने से पूर्व विपत्तियों के गुरुत्व और लघुत्व को कहते हैं। विपत्ति दो प्रकार की होती हैं—दैव और मानुष अमात्यादि प्रकृतिवर्ग की यह विपत्तियां अनय (अनीति) और अपनय (संधि आदि के अनुचित उपयोग) से उत्पन्न होती हैं। इनके अतिरिक्त पांच प्रकार की विपत्तियाँ और भी कही गई हैं—गुणों की प्रतिकूलता, गुणों का अभाव, दोषों की वृद्धि, विषयों में आसक्ति, शत्रु द्वारा उत्पीडन। यह विपत्तियाँ ही व्यसन मानी जाती हैं। व्यसन शब्द का अर्थ भी कल्याण मार्ग से भ्रष्ट हो जाना है। पूर्वाचार्यों के मत में राजा, मंत्री, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र—इन सातों में पर की अपेक्षा पूर्व अधिक पीडाप्रद है। जैसे कि मित्र की अपेक्षा सेना, सेना की अपेक्षा कोश। इसी प्रकार कोश की अपेक्षा दुर्ग आदि को अधिक कष्ट देने वाले समझो।

नेति भारद्वाजः। स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीय इति। मन्त्रो मन्त्रफलावाप्तिः कार्यानुष्ठानमायव्ययकर्म दण्डप्रणयनममित्राटवीप्रतिषेधो राज्यरक्षणं व्यसनप्रतीकाररक्षणमभिषेकश्च कुमाराणामायत्तममात्येषु। तेषामभावे तदभावः। छिन्नपक्षस्येव राज्ञश्चेष्टानाशः। व्यसनेषु चासन्नाः परोपजापाः। वैगुण्ये च प्राणबाधः प्राणान्तिकचरत्वाद्राज्ञ इति।

किन्तु भारद्वाज से उक्त मत से असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि राजव्यसन और मन्त्रिव्यसन दोनों के एक साथ आने पर मन्त्रिव्यसन अधिक दुःखदायी होता है। क्योंकि मंत्रणा, निर्णय, कार्य-सम्पादन, आय-व्यय की व्यवस्था, सैन्य-संचय और उसकी स्थिति, शत्रुओं और आटविकों के उपद्रवों का शमन, स्वराज्य की रक्षा, व्यसनों का प्रतीकार, राजकुमारों से राजा का रक्षण, कुमार का युवराज पद पर अभिषेक आदि कार्य अमात्यों द्वारा ही किये जाते हैं। यदि अमात्य न हों तो वे कार्य भी नहीं हो सकते। उस समय पर कटे पक्षी के समान हुए राजा की सभी चेष्टाएँ नष्ट हो जाती हैं। मंत्रिव्यसन अर्थात् मन्त्रियों के विपरीत होने पर शत्रु के गुप्तचरों का जाल दृढ़ होने लगता और राजा के प्राण तक संकट में पड़ जाते हैं। क्योंकि मन्त्रिगण राजा के प्राणों के ही समान माने गये हैं।

नेति कौटिल्यः। मंत्रिपुरोहितादिभृत्यवर्गमध्यक्षप्रचारं पुरुषद्रव्यप्रकृतिव्यसनप्रतीकारमेधनं च राजैव करोति। व्यसनिषु वामात्येषु अन्यानव्यसनिनः करोति। पूज्यपूजने दूष्यावग्रहे च नित्ययुक्तस्तिष्ठति। स्वामी च सम्पन्नः स्वसम्पद्भिः प्रकृतीः सम्पादयति। स्वयं यच्छीलस्तच्छीलाः प्रकृतयो भवन्ति। उत्थाने प्रमादे च तदायत्तत्वात्। तत्कूटस्थानीयो हि स्वामीति। अमात्यजनपदव्यसनयोर्जनपदव्यसनं गरीय इति विशालाक्षः। कोशो दण्डः कुप्यं विष्टिर्वाहनं निचयाश्च जनपदादुत्तिष्ठन्ते। तेषामभावो जनपदाभावे। स्वाम्यमात्ययोश्चानन्तर इति।

किन्तु आचार्य कौटिल्य इससे सहमत नहीं। वे कहते हैं कि अमात्य-व्यसन से राजव्यसन ही अधिक कष्टदायी है। क्योंकि मन्त्री, पुरोहित आदि भृत्यवर्ग तथा अन्यान्य अध्यक्षों के कार्यों, अमात्यों और सेना पर आई हुई विपत्तियों तथा जनपद, कोश, दुर्ग आदि पर उपस्थित संकटों का प्रतीकार और उनकी उन्नति स्वयं राजा ही करता है। अमात्यों के विरोधी हो जाने पर राजा अन्य अमात्यों को नियुक्त करने में समर्थ है। वही पूजनीयों का सत्कार और दूष्यों का दमन करता है। यदि राजा गुणों से सम्पन्न हो तो अमात्यादि को भी वैसे ही योग्य बना सकता है। क्योंकि अमात्यों में राजा से ही गुण-शील की सम्पन्नता होती है। प्रकृतिवर्ग के लिए राजा का सर्वोच्च स्थान होने के कारण उनका उत्थान और अवनति उसी में निहित है। आचार्य विशालाक्ष के अनुसार अमात्यव्यसन और जनपदव्यसन में जनपदव्यसन ही अधिक दुःखदायी है। क्योंकि कोश, सेना, कुप्य, विष्टि, वाहन और निचय—इन सब की उपलब्धि जनपद से ही होती है। जनपद न हो तो उक्त पदार्थ भी नहीं हो सकते। इसलिए व्यसन-विवेचन में जनपदव्यसन को भी प्रमुख मानना होगा।

नेति कौटिल्यः। अमात्यमूलाः सर्वारम्भाः। जनपदस्य कर्म-सिद्धयः स्वतः परतश्च योगक्षेमसाधनं व्यसनप्रतीकारः शून्यनिवे-शोपचयौ दण्डकरानुग्रहश्चेति। जनपददुर्गव्यसनयोदुर्गव्यसनमिति पाराशराः। दुर्गे हि कोशदण्डोत्पत्तिरापदि स्थानं च जनपदस्य। शक्तिमत्तराश्च पौरा जानपदेभ्यो नित्याश्चापदि सहाया राज्ञः। जनपदास्त्वमित्रसाधारणा इति। नेति कौटिल्यः। जनपदमूला दुर्गकोशदण्डसेतुवार्तारम्भाः। शौर्यं स्थैर्यं दाक्ष्यं बाहुल्यं च जान-पदेषु। पर्वतान्तर्द्वीपाश्च दुर्गा नाध्युष्यन्ते जनपदाभावात्। कर्ष-कप्राये तु दुर्गव्यसनमायुधीयप्राये तु जनपदे जनपदव्यसनमिति।

किन्तु आचार्य कौटिल्य उक्त कथन से असहमत होते हुए कहते हैं कि जनपद विषयक कार्यों की अमात्यों पर ही निर्भरता है। कृषि-

सेतु कार्य, अपने राजा और अमित्र आदि से योगक्षेम का साधन, व्यसन प्रतीकार, निर्जन स्थानों में मनुष्यों का बसाना और सम्पन्न करना, दण्ड और कर के द्वारा राजकोश की वृद्धि आदि सभी अच्छे-बुरे कार्यों का दायित्व अमात्यवर्ग पर ही होता है। इसलिए जनपदव्यसन की अपेक्षा अमात्यव्यसन ही अधिक प्रबल समझना चाहिए। पाराशर के अनुसार जनपदव्यसन से दुर्गव्यसन अधिक दुःखदायी है। क्योंकि दुर्ग से ही कोश और सेना की उत्पत्ति है और वही संकटकाल में सुरक्षित आश्रय स्थान है। जनपद के रहने वालों से नगर के रहने वाले अधिक विशिष्ट होते हैं और विपत्ति के समय वही राजा का तत्काल साथ दे सकते हैं। जनपदवासी तो शत्रु का आक्रमण होने पर उससे मिल जाने के कारण शत्रुस्वरूप ही हो जाते हैं। किन्तु कौटिल्य इसके विपरीत कहते हैं कि दुर्ग, कोश, सेना, सेतु और वार्ता आदि का आरम्भ जनपदवासियों पर ही निर्भर रहता है। वे ही संख्या में अधिक, स्थिर, पराक्रमी और कार्यकुशल होते हैं। जब जनपद पर संकट आता है तब पर्वतदुर्ग और जलदुर्ग में भी आश्रय नहीं लिया जा सकता। किन्तु अधिक जनसंख्या वाले कृषि-प्रधान जनपद में स्थित दुर्ग पर विपत्ति आ पड़े तो स्थिति भयावह हो जाती है। क्योंकि, उस स्थिति में दुर्ग की रक्षा करना भी कठिन होता है। किन्तु आयुधधारियों से युक्त जनपद पर उपस्थित व्यसन उतना हानिप्रद नहीं होता और वहां दुर्ग की रक्षा भी उतनी कठिन नहीं होती।

दुर्गकोशव्यसनयोः कोशव्यसनमिति पिशुनः। कोशमूलो हि दुर्गसंस्कारो दुर्गरक्षणं च। दुर्गः कोशादुपजाप्यः परेषाम्। जनपदमित्रामित्रनिग्रहो देशान्तरितानामुत्साहनं दण्डबलव्यवहारः। कोशमादाय च व्यसने शक्यः प्रयातुं न दुर्गमिति। नेति कौटिल्यः। दुर्गार्पणः कोशो दण्डस्तूष्णींयुद्धं स्वपक्षनिग्रहो दण्डबलव्यवहार आसारप्रतिग्रहः परचक्राटवीप्रतिषेधश्च। दुर्गाभावे च कोशः परेषाम्। दृश्यते हि दुर्गवतामनुच्छित्तिरिति।

आचार्य पिशुन के अनुसार दुर्गव्यसन की अपेक्षा कोशव्यसन अत्यंत अहितकर होता है। क्योंकि दुर्ग का निर्माण और रक्षण कोश पर ही निर्भर है। दुर्ग में रहने वालों में से गुप्तचरों को खोज निकालना तथा जनपद, मित्र और अमित्र का निग्रह आदि कोश से ही संभव है। दूर देश में निवास करने वाले राजा द्वारा लोगों में उत्साह भरना तथा सेना का बल बढ़ाना कोश से ही हो सकता है। संकट की उपस्थिति में भागना पड़े तो कोश को साथ ले जा सकते हैं, दुर्ग को नहीं। किन्तु कौटिल्य इसमे सहमत न होते हुए कहते हैं कि कोश और सेना, की रक्षा, किसी का छिपे तौर र वध, दूष्यों का दमन, सैन्य शक्ति की व्यवस्था, मित्र से सहायता, शत्रुओं और आटविकों का मर्दन दुर्ग से ही सम्भव है और दुर्ग की अरक्षा से कोश भी दूसरे के पास जा सकता है। इसके विपरीत—कोश का अभाव होने पर भी दुर्ग में रहने वालों का कोई कुछ बिगाड़ नहीं कर पाता। इसलिए कोश की अपेक्षा दुर्ग पर आने वाला संकट अधिक भयावना होता है।

कोशदण्डव्यसनयोर्दण्डव्यसनम् इति कौणपदन्तः। दण्डमूलो हि मित्रामित्रनिग्रहः परदण्डोत्साहनं स्वदण्डप्रतिग्रहश्च। दण्डाभावे ध्रुवः कोशविनाशः। कोशाभावे च शक्यः कुप्येन भूम्या परभूमिस्वयंग्रहणेन वा दण्डः पिण्डयितुम्। दण्डवता च कोशः। स्वामिनश्चासन्नवृत्तित्वादमात्यसधर्मा दण्ड इति। नेति कौटिल्य। कोशमूलो हि दण्डा। कोशभावे दण्डः परं गच्छति, स्वामिनं वा हन्ति। सर्वाभियोगकरश्च। कोशो धर्महेतुः। देशकालेकार्यवशेन तु कोशदण्डयोरन्यतरः प्रमाणीभवति। लम्भपालनो हि दण्डः कोशस्य। कोशः कोशस्य दण्डस्य च भवति। सर्वद्रव्यप्रयोजकत्वात्कोशव्यसन गरीय इति।

आचार्य कौणपदन्त का मत है कि कोश और दण्ड (सेना) व्यसनों में दण्डव्यसन अधिक कष्टकारी है। क्योंकि मित्र-अमित्र का दमन, परायी सेना को कार्य में लाने के लिए उत्साह-प्रदान तथा स्वसैन्य का

शत्रु-ध्वंस के लिए प्रयोग आदि कार्यों की सिद्धि सेना के द्वारा ही संभव है। सेना न हो तो कोश नष्ट हो जाय और कोश न हो तो कुप्य, भूमि और शत्रु की भूमि से बल पूर्वक जो कुछ मिल सके, उस धन के द्वारा भी सेना एकत्र की जा सकती है। इससे सिद्ध हुआ कि सेना हो तो कोश भी एकत्र हो सकता है। स्वामी के सदैव निकट रहने के कारण वह भी अमात्य के ही समान है। किन्तु कौटिल्य इसे न मानते हुए कहते हैं कि सेना की निर्भरता कोश पर ही है। कोश के बिना सेना को शत्रु हस्तगत कर लेते हैं। कभी कभी तो कोश-रहित स्वामी का वध भी उसकी ही सेना के द्वारा होता देखा गया है। यदि सेना किसी सामन्त आदि से मिल जाय तो विद्रोह खड़ा कर देती है। किन्तु कोश से सभी विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। कोश ही धर्म का हेतु है। किन्तु देश, काल एवं कार्य के अनुसार कोश और दण्ड (सेना) में से किसी भी एक को प्रमुख मान सकते हैं। क्योंकि प्राप्त धन की रक्षा सेना करती है, किन्तु कोश सेना और दुर्ग दोनों की रक्षा में समर्थ रहता है। सब प्रकार के द्रव्यों के कार्य का निर्वाह करने वाला होने के कारण कोशव्यसन सर्वाधिक कष्टकारी होता है।

दण्डमित्रव्यसनयोर्मित्रव्यसनमिति वातव्याधिः। मित्रमभृतं व्यवहितं च कर्म करोति, पार्ष्णिग्राहमासारममित्रवाटविकं च प्रतिकरोति, कोशदण्डभूमिभिश्चोपकरोति व्यसनावस्थायोगमिति। नेति कौटिल्यः। दण्डवतो मित्रं मित्रभावे तिष्ठत्यमित्रो वाऽमित्रभावे। दण्डमित्रयोस्तु साधारणे कार्ये सारतः स्वयुद्धदेशकाललाभाद्विशेषः। शीघ्राभियाने त्वमित्राटविकाभ्यन्तरकोपे च न मित्रं विद्यते। व्यसनयौगपद्ये परवृद्धौ च मित्रमर्थयुक्तौ तिष्ठति। प्रकृतिव्यसनसम्प्रधारणमुक्तमिति।

आचार्य वातव्याधि के अनुसार दण्डव्यसन और मित्रव्यसन में मित्रव्यसन अधिक पीडाप्रद होता है क्योंकि मित्र दूर रह कर भी अवैतनिक रूप से कार्य करता है। मित्र पार्ष्णिग्राह, उसके मित्र जो कि

अपने अमित्र होते हैं, शत्रु एवं आटविक आदि को रोकता तथा कोश, सेना और भूमि देकर विजिगीषु का संकट काल में अथवा युद्ध आदि के उपस्थित होने पर यथाशक्ति उपकार करता है। किन्तु कौटिल्य इससे असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि सशक्त सेना के भय से ही मित्र में मित्रभाव रहता है और शत्रु भी मित्र बन सकता है। सेना और मित्र की समान स्थिति होने पर युद्ध, देश, काल और लाभ में से किसी एक की विशेषता हो सकती है। शीघ्र आक्रमण करने की स्थिति में अथवा अमित्र आटविकों से भीतरी विग्रह की अवस्था में दूर रहने के कारण मित्र की सहायता प्राप्त नहीं हो सकती। यदि विजिगीषु और उसके शत्रु—दोनों ही किसी विपत्ति में फँस जाँय अथवा शत्रु विजिगीषु की ओर बढ़ रहा हो और मित्र उस शत्रु से अपना कोई कार्य निकालना चाहता हो उस समय अपनी सेना ही काम में आती है। यह प्रकृतिवर्ग के व्यसन की व्याख्या पूर्ण हुई।

प्रकृत्यवयवानां तु व्यसनस्य विशेषतः।
बहुभावोऽनुरागो वा सारो वा कार्यसाधकः ॥१
द्वयोस्तु व्यसने तुल्ये विशेषो गुणतः क्षयात्।
शेषप्रकृतिसाद्गुण्यं यदि स्यान्नाभिधेयकम् ॥२
शेषप्रकृतिनाशस्तु यत्रैकव्यसनाद्भवेत्।
व्यसनं तद्गरीयः स्यात्प्रधानस्येतरस्य वा ॥३॥

स्वामी, अमात्यादि प्रकृतियों के जो अवयव होते हैं, यथा—स्वामिप्रकृति के अवयव राजा, युवराज आदि, अमात्यप्रकृति के अवयव मन्त्रिपरिषद आदि, जनपदप्रकृति के कृषक आदि, दुर्गप्रकृति के धनुधर आदि, कोशप्रकृति के रत्न सार फल्गु आदि, दण्डप्रकृति के मौलभृतादि, मित्रप्रकृति के सहज-कृत्रिम आदि। इनमें एक की अपेक्षा दूसरे पर अधिक संकट आ उपस्थित हो तो उनके अवयवों का अपनी-अपनी प्रकृति के प्रति अधिक अनुराग होना ही कार्यसिद्धि में सफल कराने वाला है। यदि विजिगीषु और शत्रु पर समान संकट आ जाय तो उन दोनों के

गुणों के गुरुत्व और लघुत्व पर वृद्धि या क्षय की निर्भरता है। उस समय जिसका प्रकृतिवर्ग श्रेष्ठ होगा, उसी की विजय होगी। इसलिए श्रेष्ठ प्रकृतिवर्ग वाले से युद्ध न छेड़े। किन्तु एक प्रकृति के संकट ग्रस्त होने पर अन्य प्रकृतियाँ भी नष्ट होजाती हैं। चाहे वह संकट प्रधान प्रकृति पर आया हो सामान्य प्रकृति पर, किन्तु गुरुतर ही बन जाता है ॥१३॥

द्वितीयोऽध्यायः

राजा एव राज्य के व्यसन

राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः। राज्ञ आभ्यन्तरो बाह्यो वा कोप इति। अहिभयादाभ्यन्तरः कोपो बाह्यकोपात्पापीयान्। अन्तरमात्यकोपश्चान्तः कोपात्। तस्मात्कोशदण्डशक्तिमात्मसंस्थां कुर्वीत। द्वैराज्यवैराज्ययोर्द्वैराज्यमन्योन्यपक्षद्वेषानुरागाभ्यां परस्परसंघर्षेण वा विनश्यति। वैराज्यं तु प्रकृतिचित्तग्रहणापेक्षि यथास्थितमन्यर्भुज्यत इत्याचार्याः।

अब राजा और राज्य पर आने वाले सकटों के विषय में कहेंगे। राजा और राज्य के दो वर्गों में उक्त सात प्रकृतिवर्ग का विभाजन किया जा सकता है। राज्य पर भीतरी और बाहरी के रूप में दो प्रकार का राज्य कोप माना गया है। भीतरी कोप अमात्यादि से और बाहरी कोप शत्रु आदि से उत्पन्न होता है। भीतरी कोप गृह में विद्यमान सर्प के समान भयावना रहता है। इसके भी दो भेद हैं—अन्तर अमात्य कोप अर्थात् प्रधान अमात्य से उत्पन्न और दूसरा अन्य अमात्य का कोप। इनमें प्रथम प्रकार का कोप अधिक भयप्रद है। इन कोपों के शमनार्थ कोश और सैन्य शक्ति आवश्यक है। अन्य आचार्यों के अनुसार द्वैराज्य अर्थात् दो राजाओं से शासित राज्य और वैराज्य अर्थात् स्वामी-विहीन राज्य या किसी अन्य राजा से जीता हुआ राज्य में से द्वैराज्य दोनों शासकों में मनमुटाव रहने के कारण अधिक निकृष्ट होता है। किन्तु

वैराज्य प्रजा के अनुकूल रहता हुआ अपनी यथावत स्थिति में रहा आता है। इसीलिए वह प्रजाजनों द्वारा सुखपूर्वक भोगा जाता है।

नेति कौटिल्यः। पितापुत्रयोर्भ्रात्रोर्वा द्वैराज्यं तुल्ययोगक्षेममात्यावग्रहं वर्तयेतेति। वैराज्ये तु जीवतः परस्याच्छिद्य 'नैतन्मम' इति मन्यमानः कर्शयत्य पवाहयति, पण्य वा करोति, विरक्तं वा परित्यज्यापगच्छतीति। अन्धश्चलितशास्त्रो वा राजेति। अशास्त्रचक्षुरन्धो यत्किंचनकारी दृढाभिनिवेशी परप्रणेयो वा राज्यमन्यायेनोपहन्ति। चलितशास्त्रस्तु यत्र शास्त्राच्चलितमतिर्भवति, शक्यानुनयो भवतीत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः—अन्धो राजा शक्यते सहायसम्पदा यत्र तत्र वा पर्यवस्थापयितुमिति। चलितशास्त्रस्तु शास्त्रादन्यथाभिनिविष्टबुद्धिरन्यायेन राज्यमात्मानं चोपहन्तीति।

किन्तु कौटिल्य इससे असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि पिता-पुत्र में या दो भाइयों में पारस्परिक विरोध होने पर द्वैराज्य बन जाता है। इसमें एक ही वंश के दो व्यक्तियों का समान स्वार्थ रहता और विवाद होने पर अमात्यादि उन्हें शान्त कर सकते हैं। किन्तु वैराज्य को पराया राज्य मान कर अपने राज्य में मिला लेने वाला राजा, उसकी प्रजा का यथेच्छ शोषण करता है अथवा किसी अन्य राजा के हाथ बेच देता है। यदि उस राज्य की प्रजा राजा में भक्ति नहीं रखती तो शोषण के पश्चात विजेता भी उसे त्याग कर अरक्षित छोड़ देता है। शास्त्र-विहीन और शास्त्रानुकूल आचरण-विहीन राजाओं में कौन श्रेष्ठ है? इस पर कहते हैं कि शास्त्र रूपी चक्षु से विहीन राजा तो अन्धा माना जाता है। वह सभी कार्य अत्यन्त हठ के साथ करता हुआ दूसरों के इंगित पर किये जाने वाले स्वयं के अत्याचारों से राज्य को ही नष्ट कर डालता है। किन्तु शास्त्रविद् होकर भी जो शास्त्रानुकूल आचरण नहीं करता, वह जब कभी शास्त्र के प्रतिकूल कार्य करने लगता है, तभी अमात्यादि उसे सही परामर्श देकर समझा लेते हैं। यह अन्य

आचार्यों का कथन है। किन्तु कौटिल्य इसे नहीं मानते। उनके अनुसार शास्त्रचक्षु-हीन राजा को अमात्यादि अपनी बुद्धि द्वारा समझा कर कार्य ले सकते हैं, किन्तु शास्त्रविद स्वेच्छाचारी अपनी दग्ध बुद्धि और अहंकार के वश अन्याय करता हो स्वयं को और राज्य को नष्ट कर देता है।

व्याधितो नवो वा राजेति ? व्याधितो राजा राज्योपघातममात्यमूलं प्राणाबाधं वा राज्यमूलमवाप्नोति। नवस्तु राजा स्वधर्मानुग्रहपरिहारदानमानकमभिः प्रकृतिरंजनोपकारैश्चरतीत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। व्याधितो राजा यथाप्रवृत्तं राजप्रणिधिमनुवर्तयति। नवस्तु राजा 'बलावर्जितं ममेदं राज्यम्' इति यथेष्टमनवग्रहश्चरति। सामुत्थायिकैरवगृहीतो वा राज्योपघातं मर्षयति। प्रकृतिष्वरूढः सुखः समुच्छेत्तुं भवति। व्याधिते विशेषः—पापरोग्यपापरोगी च।

व्याधियुक्त एवं नवीन राजाओं में कौन श्रेष्ठ है ? इस पर अन्य आचार्य कहते हैं कि व्याधिग्रस्त राजा के अमात्यगण निरंकुश हो जाते हैं जिससे राज्य क्षीण होजाता है या कुशासन से पीडित प्रजाजन कुपित होकर उस राजा का ही नाश कर देते हैं। किन्तु नवीन राजा राजधर्म-पालन करता हुआ प्रजा पर अनुग्रह, करमुक्ति, दान एवं सत्कारादि कर्मों के द्वारा सब को संतुष्ट रखता है। किन्तु कौटिल्य इससे असहमत होते हुए कहते हैं कि रोगग्रस्त हुआ राजा अपनी पूर्व प्रचलित परिपाटी से ही शासन करता है। किन्तु नवीन राजा यह सोचकर कि 'यह तो मेरे अपने बल से अर्जित हुआ है' स्वेच्छाचार से कार्य लेता है। अथवा जब वह अपने उत्थान की इच्छा वाले राजाओं के द्वारा घिर जाता है, और राज्य की सुरक्षा में असमर्थ रहता है, तब प्रतिरोध के बिना ही राज्य को छोड़ कर चला जाता है। नवीन राजा के प्रति प्रजाजनों में भक्ति का भी अभाव रहता है और इसीलिए वे उसे सहज में ही नष्ट कर डालते हैं। अन्य रोगी राजा के दो भेद माने गये हैं—पाप रोगी और

अपाप रोगी। पाप रोगी वह होता है जो कुष्ट आदि पाप रोगों से आक्रान्त हो तथा अपापरोगी किसी भी सामान्य रोग से पीड़ित व्यक्ति को कहते हैं।

नवेऽप्यभिजातोऽनभिजात इति। दुर्बलोऽभिजातो बलवाननभिजातो राजेति। दुर्बलस्याभिजातस्योपजापं दौर्बल्यापेक्षाः प्रकृतयः कृच्छ्रेणोपगच्छन्ति। बलवतश्चानभिजातस्य बलापेक्षाः सुखेन इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। दूर्बलमभिजातं प्रकृतयः स्वयमुपनमन्ति, जात्यमैश्वर्यप्रकृतिरनुवर्तत इति। बलवतश्चानभिजातस्योपजापं विसंवादयन्ति—अनुरागे सार्वगुण्यमिति। प्रयासवधात्सस्यवधो मुष्टिवधात्पापीयान्। निराजीवत्वादवृष्टिरतिवृष्टित इति।

द्वयोर्द्वयोर्व्यसनयोः प्रकृतीनां बलाबलात्।
पारम्पर्यक्रमणोक्तं याने स्थाने च कारणम्॥

अभिजात और अनभिजात के भेद से नवीन राजा के भी दो भेद हैं। अभिजात अर्थात् उच्च कुलोत्पन्न दुर्बल और अनभिजात अर्थात् नीच कुलोत्पन्न सबल में कौन श्रेष्ठ है? इस पर अन्य आचार्यों की मान्यता है कि दुर्बल अभिजात की अपेक्षा सबल अनभिजात अधिक भयप्रद हैं। क्योंकि दुर्बल अभिजात के मंत्रिगण और प्रजाजन उसकी दुर्बलता के कारण कठिनता से उसके वशीभत रहते हैं, किन्तु सबल अनभिजात के बल के आगे सहज ही झुक जाते हैं। किन्तु कौटिल्य इसे स्वीकार न करते हुए कहते हैं कि दुर्बल अभिजात के उच्च कुल में उत्पन्न होने के कारण सभी उसका आश्रय लेना उचित समझते हैं। क्योंकि ऐश्वय आभिजात्य के ही साथ स्वाभाविक रूप से रहता है। किन्तु अनभिजात की सबलता के कारण जो लोग उसके वशीभूत होंगे, वे अवसर मिलते ही उसे दुत्कार देंगे। क्योंकि लोगों का अनुराग उच्च गुण पर विशेष होता है। बिना बोये बीज के नष्ट होने की अपेक्षा बीज बो कर उत्पन्न हुए अन्न का नष्ट होना अधिक हानिकारी है।

क्योंकि उसके उत्पन्न होने में कृषक का जो परिश्रम हुआ है, वह नष्ट होजाता है। इसी प्रकार अतिवृष्टि की अपेक्षा अनावृष्टि अधिक दुःखदायी है। क्योंकि सभी प्रकार की जीविका का साधन जल ही है। विजिगीषु और शत्रु के समान रूप से विपद्ग्रस्त होने की संभावना पर उनकी प्रकृति के बल-अबल का अवलोकन करे। यदि विजिगीषु स्वयं पर अल्प विपत्ति देखे तो आक्रमण करे और अधिक देखे तो मौन साधन कर ले।

तृतीयोऽध्यायः

पुरुषव्यसनवर्ग

अविद्याऽविनयः पुरुषव्यसनहेतुः। अविनीतो हि व्यसनदोषान्न पश्यति। तानुपदेक्ष्यामः—कोपजस्त्रिवर्गः, कामजश्चतुर्वर्गः। तयोः कोपो गरीयान्। सर्वत्र हि कोपश्चरति। प्रायशश्च कोपवशा राजानः प्रकृतिकोपैर्हताः श्रूयन्ते। कामवशाः क्षयव्ययनिमित्तमरिव्याधिभिरिति। नेति भारद्वाजः। सत्पुरुषाचारः कोपः। वैरयातनमवज्ञातवधो भीतमनुष्यता च, नित्यश्च कोपसम्बन्धः। पापप्रतिषेधार्थः। कामः सिद्धिलाभः। सान्त्वं त्यागशीलता सम्प्रियभावश्च। नित्यश्च कामेन सम्बन्धः कृतकर्मणः फलोपभोगार्थं इति।

अब पुरुषों के व्यसनों पर प्रकाश डालते हैं। आन्वीक्षिकी आदि विद्याओं के न जानने से पुरुषों में व्यसनों की प्राप्ति होती है। क्योंकि विद्याहीन पुरुष व्यसनों के दोषों को समझ नहीं पाते। अब व्यसन-दोषों पर प्रकाश डालते हैं। कोपोत्पन्न दोष वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य और अर्थदूषण के भेद से तीन प्रकार के होते हैं, इसलिए इन्हें त्रिवर्ग कहा गया है। कामजनित दोष मृगया, द्यूत, स्त्री और मद्यपान के रूप में चार प्रकार के माने गये हैं। इसलिए यह चतुर्वर्ग कहे गये हैं। क्रोध और काम में क्रोध ही अधिक प्रबल है। क्योंकि वह सभी विषयों में

निहित रहता है। कोप के वश में पड़े हुए अनेक राजा अमात्यादि के क्रोध के शिकार हुए सुने जाते हैं तथा काम के वश में पड़े हुए राजा शारीरिक बल के क्षीण होने और कोश तथा सेना के नष्ट होने से शत्रुओं या रोगों के द्वारा मारे जाते हैं। इसलिए भी क्रोध ही अधिक बलवान दोष है। किन्तु भारद्वाज के मत में क्रोध श्रेष्ठ पुरुषों का आचरण है। क्योंकि क्रोध से ही शत्रु का प्रतीकार, अन्य कृत तिरस्कार का शमन तथा लोगों के मन में भय का भाव रहता है। क्रोध ही पापियों पुरुषों का दमन करने में सहायक होता है तथा काम भी सिद्धि प्राप्त कराने वाला है। इसके कारण मनुष्य में त्याग और प्रियभाषण आदि की प्रवृत्ति होती है। इसके अतिरिक्त अपने नित्य किये जाने वाले कर्मों का सुफल भोगने के लिए भी काम-सम्बन्ध आवश्यक होता है।

नेति कौटिल्यः। द्वेष्यता शत्रुवेदनं दुःखासंगश्च कोपः। परिभवो द्रव्यनाशः पाटच्चरद्यूतकारलुब्धकगायकवादकैश्चानर्थ्यैः संयोगः कामः। तयोः परिभवाद्द्वेष्यता गरीयसी। परिभूतः स्वैः परैश्चावगृह्यते, द्वेष्यः समुच्छिद्यत इति। द्रव्यनाशाच्छत्रुवेदनं गरीयः, द्रव्यनाशः कोशाबाधकः, शत्रुवेदनं प्राणाबाधकमिति। अनर्थ्यसंयोगाद्दुःखसंयोगो गरीयान्। अनर्थ्यसंयोगो मुहूर्तप्रतिकरः दीर्घक्लेशकरो दुःखानामासंग इति। तस्मात्कोपो गरीयान्।

किन्तु कौटिल्य उससे असहमत रहते हुए क्रोध और काम दोनों को ही दोष बताते हैं। क्योंकि क्रोध से द्वेषभाव की उत्पत्ति, नवीन शत्रुओं की वृद्धि और दुःख की प्राप्ति होती है। काम भी मनुष्य को निन्दा और तिरस्कार का पात्र बना देता और धन के नाश का भी कारण होता है। कामी मनुष्य का सम्पर्क चोर, जुआ खेलने वाले, लुब्धक, गायक, वादक एवं अन्यान्य अनर्थकारी व्यक्तियों से हो जाता है। इस प्रकार क्रोध और काम दोनों को ही दोष मानना चाहिए। काम से उत्पन्न दोष की अपेक्षा क्रोध से उत्पन्न दोष अधिक हानिकारक है। क्योंकि अपमानित पुरुष अपने या परायों के द्वारा अपना अनुगामी

बनाया जा सकता है। किन्तु द्वेष्य अर्थात् जिससे सब द्वेष करते हों, वह राज्य तक से हटा दिया जाता है। इसलिए अपमानित की अपेक्षा द्वेष्य होना अधिक दुःखदायी है। काम से हुए धननाश की अपेक्षा क्रोध से उत्पन्न शत्रु का होना अधिक हानिकारक है। क्योंकि धन-नाश तो कोश में ही बाधक है, किन्तु शत्रु का होना प्राणनाशक सिद्ध हो सकता है। काम से चोर आदि अनर्थकारियों से सयोग की अपेक्षा क्रोध से उत्पन्न दुःख का संयोग अधिक कष्टकर होता है। क्योंकि अनर्थकारियों का संयोग क्षणिक सुख का अनुभव कराता है, और दुःख का संयोग दीर्घकालीन संकट उपस्थित कर देता है। इस प्रकार क्रोध ही अधिक दुःखदायी सिद्ध हुआ।

वाक्पारुष्यमर्थदूषणं दण्डपारुष्यमिति। वाक्पारुष्यार्थदूषणयोर्वाक्पारुष्यं गरीयः इति विशालाक्षः। पुरुषमुक्तो हि तेजस्वी तेजसा प्रत्यारोहति, दुरुक्तशल्यंहृदि निखातं तेजःसन्दीपनमिन्द्रियोपतापि च इति। नेति कौटिल्यः। अर्थपूजा वाक्यशल्यमपहन्ति, वृत्तिविलोपस्त्वर्थदूषणम्। अदानमादानं विनाशः परित्यागो वा अर्थस्येत्यर्थदूषणम्। अर्थदूषणदण्डपारुष्ययोरर्थदूषणं गरीयः इति पाराशराः। अर्थमूलौ धर्मकामौ, अर्थप्रतिबन्धश्च लोको वर्तते, तस्योपघातो गरीयान् इति। नेति कौटिल्यः। सुमहताऽप्यर्थेन न कश्चन शरीरविनाशमिच्छेत्। दण्डपारुष्याच्च तमेव दोषमन्येभ्यः प्राप्नोति इति। कोपजस्त्रिवर्गः।

अब वाक्पारुष्य, अर्थदूषण और दण्डपारुष्य त्रिवर्ग का विवेचन करते हैं। आचार्य विशालाक्ष का मत है कि वाक्पारुष्य (कठोर वचन) और अर्थदूषण (द्रव्य क्षय) में वाक्पारुष्य अधिक कष्टकर है। क्योंकि कठोर वचनों से आहत तेजस्वी पुरुष तिरस्कार न सह कर तिरस्कार करने वाले पर ही प्रहार करा देता है। दुरुक्ति रूपी शस्त्र हृदय में लगते ही भीतर के तेज को प्रदीप्त कर इन्द्रियों को क्षुब्ध कर देता है। किन्तु कौटिल्य इससे सहमत न होते हुए कहते हैं कि वाक्पारुष्य की

अपेक्षा अर्थदूषण अधिक दुःखदायी है। क्योंकि मनुष्य के हृदय में लगा हुआ दुर्वचन रूपी शल्प धन द्वारा सत्कार होने पर स्वयं ही निकल जाता है। किसी की जीविका का अपहरण ही अर्थदूषण है। उसके चार प्रकार हैं कार्य करा कर वेतन न देना, दण्ड रूप में धन लेना, किसी देश को पीड़ित करना और रक्षा योग्य धन की रक्षा न करना। पाराशर के अनुसार अर्थदूषण और दण्डपारुष्य में अर्थदूषण ही अधिक दुःखदायी है। क्योंकि धर्म, काम और लोक-निर्वाह अर्थ पर ही निर्भर करते हैं। किन्तु कौटिल्य इसे न मान कर कहते हैं कि बहुत-सा धन प्राप्त करके भी अपने देह को नष्ट करने की इच्छा कोई नहीं करता, इसीलिए दण्डपारुष्य से बचाव के निमित्त अर्थ का नष्ट होना झेल लेता है। यह कोप से उत्पन्न त्रिवर्ग की व्याख्या हुई।

कामजस्तु—मृगया द्यूतं स्त्रियः पान इति चतुर्वर्गः। तस्य मृगयाद्यूतयोर्मृगया गरीयसी इति पिशुनः। स्तेनामित्रव्यालदावप्रस्खलनभयदिङ्मोहाः क्षुत्पिपासे च प्राणाबाधस्तस्याम्। द्यूते तु जितमेवाक्षविदुषा यथा जयत्सेनदुर्योधनाभ्यामिति। नेति कौटिल्यः। तस्योरप्यन्यतरपराजयोऽस्तीति नलयुधिष्ठिराभ्यां व्याख्यातम्। तदेव विजितद्रव्यमामिषं वैरबन्धश्च सतोऽर्थस्य विप्रतिपत्तिरसतश्चार्जनमप्रतिभुक्तनाशो मूत्रपूरीषधारणबुभुक्षादिभिश्च व्याधिलाभ इति द्यूतदोषः। मृगयायां व्यायामः श्लेष्मपित्तमेदःस्वेदनाशश्चले स्थिरे च काये लक्ष्यपरिचयः कोपभयस्थाने हि तेषु च मृगाणां चित्तज्ञानमनित्ययानं चेति।

अब कामज व्यसनों को कहते हैं। मृगया, द्यूत, स्त्री और मद्यपान के रूप में कामज व्यसन के चार भेद हैं। आचार्य पिशुन के अनुसार द्यूत की अपेक्षा मृगया अधिक दोषपूर्ण है। क्योंकि मृगया में चोर शत्रु, हिंसक जीव, दावाग्नि, पैर फिसलना, दिग्भ्रम और क्षुधा-पिपासा के विघ्न उपस्थित हो सकते हैं। किन्तु द्यूत क्रीडा में कुशल पुरुष जीतते हैं। जैसे कि जयत्सेन ने राजा नल को और दुर्योधन ने धर्मराज

युधिष्ठिर को हरा दिया था। किन्तु कौटिल्य इससे असहमत होते हुए कहते हैं कि जुए में नल और युधिष्ठिर के समान कोई एक पक्ष पराजित होता है। इसलिए जुआ मृगया (शिकार) से अधिक कष्टकारी है। जुए में जीता जाने वाला द्रव्य जीवों के लिए भक्ष्य मांस के समान होने के कारण जीते हुए और हारे हुए में शत्रुता करा देता है। धर्मपूर्वक अर्जित धन द्यूत में नष्ट हो जाता है और जुए में जीतने से प्राप्त धन दूषित ढंग से आकर, जुए में ही चला जाता है। बहुत समय तक निरन्तर बैठे रहने के कारण क्षुधा-पिपासा और मल-मूत्र का वेग रोकना पड़ता है, जिससे अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो सकते हैं। इस प्रकार द्यूत से अनेक दोषों की उत्पत्ति हो जाती है। किन्तु मृगया में व्यायाम, कफ-पित्त और मेद-मांस की वृद्धि का न होना, पसीने का अभाव, जीवों के चपल और स्थिर शरीर को लक्ष्य करने का अनुभव, जन्तुओं के क्रोध और भय के कारण उनकी चेष्टाओं के निरीक्षण से चित्त के भावों का ज्ञान आदि लाभ होते हैं तथा यह भी ज्ञान हो जाता है कि मृगया के लिए किस समय जाना उचित और किस समय जाना अनुचित है।

द्यूतस्त्रीव्यसनयोः कैतवव्यसनम् इति कौणपदन्तः। सातत्येन हि निशि प्रदीपे मातरि च मृतायां दीव्यत्येव कितवः, कृच्छ्रे च प्रतिपृष्टः कुप्यति। स्त्रीव्यसनेषु तु स्नानप्रतिकर्मभोजनभूमिषु भवत्येव धर्मार्थपरिप्रश्नः। शक्या च स्त्री राजहिते नियोक्तुम्। उपांशुदण्डेन व्याधिना वा व्यावर्तयितुमवस्रावयितुं वा इति। नेति कौटिल्यः। सप्रत्यादेयं द्यूतम्, निष्प्रत्यादेयं स्त्रीव्यसनम्। अदर्शनं, कार्यनिर्वेदः कालातिपातनादनर्थधर्मलोपश्च, तंत्रदौर्बल्यं, पानानुबन्धश्चेति। स्त्रीपानव्यसनयोः स्त्री व्यसनम् इति वातव्याधिः। स्त्रीषु हि बालिश्यमनेकविधं निशान्तप्रणिधौ व्याख्यातम्। पाने तु शब्दादीनामिन्द्रियार्थानामुपभोगः प्रीतिदान परिजनपूजनं कर्मश्रमवधश्चेति।

आचार्य कौणपदन्त के अनुसार जुआ और स्त्री में जुआ ही अधिक दुःखदायी है। क्योंकि द्यूत खेलने वाला प्रकाश के न होने पर दीपक जला कर और माता की मृत्यु होने पर भी उधर न देख कर खेल में निमग्न रहता और किसी आवश्यक कार्य के विषय में भी पूछने पर झुंझला उठता है। किन्तु स्त्री की आसक्ति में पड़े हुए पुरुष से स्नान, शृंगार, भोजन आदि में व्यस्त होते हुए भी मतलब की बात पूछी जा सकती है। स्त्रीव्यसन में व्यस्त राजा को उसके अमात्य आदि हितकारी कार्यों में भी लगा सकते हैं। अथवा राजा जिस स्त्री में आसक्त हो, उस स्त्री की उपांशुवध की विधि से हत्या भी करायी जा सकती है। अथवा उस स्त्री के शरीर में विष प्रयोग द्वारा कोई रोग उत्पन्न करा कर भी राजा को उससे विरक्त किया जा सकता है। द्यूत में हारी हुई वस्तु को पुनः जीत लेने की आशा रहती है, किन्तु स्त्रीव्यसन में नष्ट हुई वस्तु पुनः नहीं लौट सकती। स्त्री में आसक्त राजा अपने मन्त्रियों से भी नहीं मिलता, इसलिए वे अपने कार्यों को उत्साह पूर्वक नहीं करते। कालान्तर में मद्यपान, अनर्थ, धर्मलोप और राज्यतन्त्र के दुर्बल होने की नौबत आजाती है। आचार्य वातव्याधि के मत में स्त्री और मद्यपान में स्त्रीव्यसन ही अधिक कष्टकारी है। स्त्रियों में विद्यमान अनेक प्रकार की मूर्खताओं का वर्णन निशान्त प्रणिधि में कह चुके हैं। मद्यपायी राजा अपनी इन्द्रियों का उपभोग, प्रेमदान एवं परिजनों का सत्कार करता हुआ, कर्म से उत्पन्न श्रम को मिटाने में समर्थ रहता है।

नेति कौटिल्यः। स्त्रीव्यसने भवत्यपत्योत्पत्तिरात्मरक्षण चान्तर्दारेषु, विपर्ययो वा बाह्येषु, अगम्येषु सर्वोच्छित्तिः। तदुभयं पानव्यसने। पानसम्पत्—सञ्ज्ञानाशः अनुन्मत्तस्योन्मत्तत्वमप्रेतस्य प्रेतत्व कौपीनदर्शनं श्रुतप्रज्ञाप्राणवित्तमित्रहानिः सद्भिर्वियोगोऽनर्थ्यसंयोगस्तन्त्रीगीतनैपुण्येषु चार्थघ्नेषु प्रसंग इति। द्यूतमद्ययोर्द्यूतमेकेषां पणनिमित्तो जयः पराजयो वा, प्राणिषु निश्चेतनेषु वा पक्षद्वैधेन प्रकृतिकोप करोति, विशेषतश्च संघानां सघधर्मिणां

च राजकुलानां द्यूतनिमित्तो भेदः, तन्निमित्तो विनाश इति। असत्प्रग्रहः पापाष्ठतमो व्यसनानां तंत्रदौर्बल्यादिति।

आचार्य कौटिल्य इनसे असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि स्त्री में आसक्त राजा यदि अपनी विवाहिता से प्रेम करता है तो सन्तानोत्पत्ति का लाभ होने से आत्मरक्षा का साधन हो जाता है। इसके विपरीत किसी परायी स्त्री या वेश्या आदि पर आसक्त रहना है तो उल्टा फल होता है और किसी अगम्या के प्रति प्रेम तो उसके सर्वनाश का ही कारण होता है। उक्त दोनों दोष मद्यपान के विषय में भी लागू समझे। इनके अतिरिक्त मद्यपानमें निम्न अन्य दोष भी हैं--बुद्धिलोप होना, उन्मत्त न होकर भी उन्मत्तावश व्यवहार करना, जीवित रहते हुए भी मृतक के समान चेष्टा-रहित हो जाना, नशे में अंग-दर्शन अर्थात् लँगोट खुलने का भी ज्ञान न रहना तथा शास्त्रज्ञान प्रज्ञा, प्राणबल और धन नष्ट हो जाना आदि परिणाम होते हैं, जिनके कारण मित्र भी साथ छोड़ देते है। सज्जनों से सम्पर्क न रह कर अनर्थकारियों से संसर्ग होता है तथा गायन-वादन में कुशलता प्राप्त करने की इच्छा तीव्र हो जाती है। इसलिए स्त्री की अपेक्षा मदिरापान अधिक अहितकर है। कुछ आचार्य जुआ और मदिरा में जुए को अधिक हानिकारक मानते हुए कहते हैं कि प्राणिद्यूत अर्थात् अश्वादि पशुओं पर लगाई गई बाजी और अप्राणिद्यूत अर्थात् ताश चौपड़ आदि में लगी बाजी में एक पक्ष जीतता और दूसरा हारता है। इससे दोनों पक्षों में द्वेष एवं कोप की प्रवृत्ति होती है। जो राजागण संघवद्ध या परस्पर में मिले रहते हैं, उनमें जुए के कारण ही कलह हो जाता और फिर दोनों ही पक्ष विनष्ट हो जाते हैं। असज्जनों द्वारा सत्कृत मद्यपान का व्यसन सभी व्यसनों में अधिक पापपूर्ण है, क्योंकि इसके कारण सम्पूर्ण राज्यतन्त्र दुर्बल हो जाता है। यह अन्यान्य आचार्यों का मत है।

असतां प्रग्रहः कामः कोपश्चावग्रहः सताम्।
व्यसनं दोषबाहुल्यादत्यन्तमुभयं मतम् ॥१॥

तस्मात्कोपं च कामं च व्यसनारम्भमात्मवान् ।
परित्यजेन्मूलहरं वृद्धसेवी जितेन्द्रियः ।।२

काम क्रोध का आदर असज्जन ही करते हैं, सज्जन तो इनके निग्रह में प्रयत्नशील रहते हैं। क्यों कि इन दोनों में ही दोषों का बाहुल्य रहता है। इसलिए धीर, वृद्ध-सेवी एवं जितेन्द्रिय राजा को व्यसन-उत्पादक काम और क्रोध का परित्याग कर देना चाहिए ।।१-२।।

चतुर्थोऽध्यायः

पीडनवर्ग, स्तम्भवर्ग एवं कोशसंगवर्ग

दैवपीडनमग्निरुदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मरक इति । अग्न्युदकयोरग्निपीडनमप्रतिकार्यं सर्वदाहि च शक्योपगगनं तार्याबाधमुक्तमुदकपीडनमित्याचार्याः । नेति कौटिल्यः । अग्निर्गाममर्धग्रामं वा दहति, उदकवेगस्तु ग्रामशतप्रवाहीति । व्याधिदुर्भिक्षयोर्व्याधिः प्रेतव्याधितोपसृष्टपरिचारकव्यायामोपरोधेन कर्माण्युपहन्ति । दुर्भिक्षं पुनरकर्मोपघाति हिरण्यपशुकरदायि च इत्याचार्याः । नेति कौटिल्यः । एकदेशपीडनो व्याधिः शक्यप्रतीकारश्च, सर्वदेशपीडनं दुर्भिक्षं प्राणिनामजीवनायेति तेन मरको व्याख्यातः ।

अग्नि, जल, रोग दुर्भिक्ष और महामारी के रूप में दैवी पीडा के पाँच प्रकार हैं। विभिन्न आचार्यों के मत में अग्निपीडा और जलपीडा में अग्निपीडा ही अधिक भयदायिनी है। क्योंकि उसका प्रतीकार संभव नहीं होने से वह सर्वस्व को भस्म करने में समर्थ होती है। इसके विपरीत जल पीडा का भय नौका आदि के द्वारा मिटाया जा सकता है। किन्तु कौटिल्य इससे असहमत होते हुए कहते हैं कि अग्नि से तो एक-आध ग्राम ही भस्म होगा, जबकि जल की बाढ़ सैकड़ों ग्रामों को बहा देती है। अन्य आचार्य रोग और दुर्भिक्ष में रोग को अधिक कष्टप्रद कहते हैं। क्योंकि रोग से मरने या रोग-ग्रस्त रहने वाले के परिवारीजन रोगी की परिचर्या के कारण अपने कृषि आदि कार्यों को नहीं कर

पाते। इसलिए सब कार्य ठप्प हो जाते हैं। किन्तु दुर्भिक्ष से कार्यों में बाधा उत्पन्न नहीं होती और अन्न आदि के उत्पन्न न होने पर भी नकद धन या पशुओं के रूप में राजकर उपलब्ध होता रहता है। किन्तु कौटिल्य इससे सहमत न होकर कहते हैं कि रोग किसी एकाध स्थान को ही प्रभावित करता है और उसकी चिकित्सा भी हो सकती है। किन्तु दुर्भिक्ष समूचे देश को ही त्रस्त करता हुआ जन-जीवन को अस्त-व्यस्त कर देता है। इसी कथन से महामारी की भी व्याख्या हो गई समझें। अर्थात् महामारी को दुर्भिक्ष से भी अधिक भयङ्कर समझना चाहिए।

क्षुद्रकमुख्यक्षययोः क्षुद्रकक्षयः कर्मणामयोगक्षेमं करोति, मुख्यक्षयः कर्मानुष्ठानोपरोधधर्मा इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। शक्यः क्षुद्रकक्षयः प्रतिसन्धातुं बाहुल्यात्क्षुद्रकाणां, न मुख्यक्षयः। सहस्रेषु हि मुख्यो भवत्येको न वासत्त्वप्रज्ञाधिक्याश्रयत्वात्क्षुद्रकाणामिति। स्वचक्रपरचक्रयोः स्वचक्रमतिमात्राभ्यां दण्डकराभ्यां पीडयत्यशक्यं च वारयितुं, परचक्रं तु शक्य प्रतियोद्धुमपसारेण सन्धिना वा मोक्षयितुमित्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। स्वचक्र-पीडनं प्रकृतिपुरुषमुख्योपग्रहविघाताभ्यां शक्यते वारयितुम्, एक-देशं वा पीडयति। सर्वदेशपीडनं तु परचक्रं बिलोपघातदाह-विध्वंसनोपवाहनैः पीडयतीति।

अन्य आचार्यों के अनुसार छोटे कार्य करने वालों और बड़े कार्य करने वालों में छोटे कार्य वालों का क्षय अधिक हानिकारक है। क्योंकि उससे कार्य का योग-क्षेम अर्थात् कार्यारम्भ और कार्य का चलता रहना संभव नहीं होगा। किन्तु बड़े कार्यकर्त्ताओं का क्षय कार्यों के सुचारु रूप से चलने में थोड़ी ही बाधा डालता है, क्योंकि बड़े कार्यकर्त्ताओं के अभाव में कार्यों की देख-भाल ठीक प्रकार नहीं हो पाती। किन्तु कौटिल्य के मत में छोटे कार्यकर्त्ताओं का अभाव वैसे ही अन्य कार्यकर्त्ताओं के द्वारा कराया जा सकता है। क्योंकि क्षुद्र कार्यकर्त्ताओं की अधिकता रहती

है। किन्तु बड़े कार्यकर्ताओं की प्राप्ति उतनी सुलभ नहीं होती। क्योंकि बहुत-से व्यक्तियों में से कभी कोई ही योग्य पुरुष निकलता है, जिसमें बल और बुद्धि दोनों की अधिकता हो। इसलिए बड़े कार्यकर्ता का क्षय अधिक हानिकारक है। अत्र मानवी विपत्ति पर कहते हैं। अन्य आचार्यों के अनुसार स्वचक्र अर्थात् स्वदेश के राजबल और परचक्र अर्थात् शत्रुदेश के राजबल में से स्वचक्र की पीड़ा विशेष दुःख देती है। क्योंकि स्वचक्र दण्ड और कर के रूप में भारी दुःखदायक होजाता है और तब उसका प्रतीकार भी नहीं हो पाता है। किन्तु परचक्र से उत्पन्न पीड़ा की निवृत्ति उसके विरुद्ध युद्ध करने से अथवा देशान्तर में चले जाने या संधि करने से भी हो सकती है। किन्तु कौटिल्य इसमें असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि स्वचक्र की पीड़ा का निवारण अमात्यादि को अपने वश में करके या उन्हें मार कर भी किया जा सकता है। अथवा स्वचक्र की पीड़ा धन-धान्ययुक्त किसी एक प्रदेश को ही संतप्त करती है। किन्तु परचक्र की पीड़ा का प्रभाव लूट, हत्या, अग्निदाह या तोड़-फोड़ द्वारा नगर और जनपद आदि के विध्वंस रूप मे पड़ता है।

प्रकृतिराजविवादयोः प्रकृतिविवादः प्रकृतीनां भेदकः पराभियोगानावहति राजविवादस्तु प्रकृतीनां द्विगुणभक्तवेतनपरिहारकरो भवतीत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। शक्यः प्रकृतिविवादः प्रकृतिमुख्योपग्रहेण कलहस्थानापनयनेन वा वारयितुं, विवदमानास्तु प्रकृतयः परस्परसंघर्षेणोपकुर्वन्ति। राजविवादस्तु पीडनोच्छेदनाय प्रकृतीनां द्विगुणव्यायमसाध्य इति। देशराजविहारस्त्रैकाल्येन कर्मफलोपघातं करोति, राजविहारस्तु कारुशिल्पिकुशीलववाग्जीवनरूपाजीवावैदेहकोपकारं करोति इत्याचार्याः।

अन्याचार्यों के मत में राजाओं के पारस्परिक विवाद की अपेक्षा अमात्यादि का विवाद अधिक हानिकारक है। क्यों कि मंत्रियों के पारस्परिक विवाद से शत्रु का आक्रमण सुलभ हो जाता है। तथा राजाओं के विवाद से मंत्रि आदि के दुगुने भत्ते, वेतन और करमुक्ति का लाभ हो

सकता है। किन्तु कौटिल्य इससे सहमत न होते हुए कहते हैं कि अमात्यादि का विवाद मुख्य अमात्य आदि को अनुकूल कर लेने या विवाद के कारणों को दूर कर लेने से शान्त हो सकता है अथवा अमात्यादि का पारस्परिक विवाद उनमें स्पर्द्धा का कारण हो कर राजा तथा राज्य दोनों का उपकार करने वाले वन जाते हैं। किन्तु राजाओं का विवाद अपनी प्रजा और राज्य के उत्पीड़न या उच्छेद का कारण होजाता है। इसलिए अमात्यादि के विवाद की अपेक्षा राजविवाद अधिक हानि करने वाला होता है। अन्य आचार्यों के अनुसार राजविहार की अपेक्षा देशविहार अधिक हानिकारक है। क्योंकि प्रजाजनों के क्रीड़ा आदि में लग जाने से तीनों काल में कृषि आदि कार्यों का लोप हो जाता है। किन्तु राजविहार कारु, शिल्पी, कुशीलव, वाग्जीवी, वेश्या एवं वैदेहक आदि के लिए लाभदायक होता है।

नेति कौटिल्यः। देशविहारः कर्मश्रमवधार्थमल्पं भक्षयति, भक्षयित्वा च भूयः कर्मसु योगं गच्छति। राजविहारस्तु स्वयं वलल्भैश्च स्वयंग्राहप्रणयपण्यागारकार्योपग्रहैः पीडयति इति।सुभगा-कुमारयोः कुमारः स्वयंवल्लभैः स्वयं ग्राहपण्यागारकार्योपग्रहैः पीडयति। सुभगा विलासोपभोगेनेत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। शक्यः कुमारो मंत्रिपुरोहिताभ्यां वारयितुं न सुभगा, बालिश्याद-नर्थ्यजनसंयोगाच्चेति।

किन्तु कौटिल्य इसे न मानते हुए कहते हैं कि देशविहार कार्य करने से उत्पन्न श्रम मिटाने के उद्देश्य से होता है। इसलिए उसमें अल्प समय एवं अल्प द्रव्य व्यय होता है और क्रीडा आदि के पश्चात् सब प्रजाजन अपने-अपने कार्यों में लग जाते हैं। किन्तु राजविहार स्वयं राजा या उसके प्रियजनों द्वारा प्रजा को विवश करके उससे बलात् धन वसूल करके अथवा पण्यागार में उनसे कार्य करा कर प्रजाजनों के लिए दुःखदायी होजाता है। इस प्रकार देशविहार की अपेक्षा राजविहार अधिक कष्टप्रद होता है। अन्य आचार्यों के अनुसार महारानी के विहार

की अपेक्षा राजकुमार का विहार अधिक दुःख देता है। क्योंकि स्वयं राजकुमार और उसके प्रियजनों द्वारा प्रजाजनों से अनिच्छापूर्वक धन लेकर या उनसे पण्यागार में काम करा कर प्रजाजनों की पीडा का कारण वन जाता है। किन्तु महारानी का विहार अपने विलास साधनों के लिए प्रजाजनों को अल्प कष्ट देता है। किन्तु आचार्य कौटिल्य इसके विपरीत कहते हैं कि अमात्य और पुरोहित आदि राजकुमार को उन कार्यों से रोक सकते है। किन्तु महारानी में मूर्खता की अधिकता और अनर्थ करने वाले पुरुषों के संसर्ग के कारण, उसका रोका जाना कठिन है। इसलिए कुमार विहार की अपेक्षा सुभगा विहार ही अधिक कष्टकारी होता है।

श्रेणीमुख्ययोः श्रेणी बाहुल्यादनवग्रहा स्तेयसाहसाभ्यां पीडयति, मुख्यः कार्यानुग्रहविधाताभ्यामित्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। सुव्यावर्त्या श्रेणा समानशीलव्यसनत्वात्, श्रेणीमुख्यैकदेशोपग्रहेण वा। स्तम्भयुक्तो मुख्यः परप्राणद्रव्योपघाताभ्यां पीडयतीति। सन्निधातृसमाहर्त्रोः सन्निधाता कृतविदूषणात्ययाभ्यां पीडयति। समाहर्ता करणाधिष्ठितः प्रदिष्टफलोपभोगी भवतीत्याचार्याः।

अन्य आचार्यों के अनुसार श्रेणीमुख्य की अपेक्षा श्रेणी अधिक कष्टकारी है। क्योंकि संख्या का बाहुल्य होने से श्रेणी को रोकना संभव नहीं है तथा वह चोरी और साहस कर्म के द्वारा जनता का धन हरण करके लोगों को कष्ट देती है। किन्तु श्रेणीमुख्य रिश्वत आदि लेकर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है और रिश्वत नमिलने पर जिन बनते कार्यों को बिगाड़ता है, वे थोड़े होवे हैं, इसलिए कुछ लोगों को ही कष्ट पहुँचता है। किन्तु कौटिल्य ऐसा न मानते हुए कहते हैं कि श्रेणी-प्रमुख जैसे ही गुण-दोष श्रेणी के अन्य पुरुषों में भी होते हैं। इसलिए मुख्य पुरुष को वश में कर लेने से श्रेणी द्वारा होने वाले चोरी आदि के कार्य रोके जा सकते हैं। अथवा श्रेणी के अन्य नेता को

अनुकूल बना कर सम्पूर्ण श्रेणी द्वारा किये जाने वाले चोरी आदि कार्य रोके जा सकते हैं। किन्तु श्रेणीमुख्य प्रजाजनों के प्राण और धन को लूट कर उन्हें सन्तप्त करता रहता है। इसलिए श्रेणी की अपेक्षा श्रेणीप्रमुख की पीड़ा ही अधिक हानि करने वाली होती है। अन्य आचार्यों के अनुसार समाहर्ता की अपेक्षा सन्निधाता की पीड़ा अधिक दुःख देने वाली होती है। क्योंकि कृत कार्यों में दोष निकालने और समय बीत जाने आदि के बहाने से सन्निधाता प्रजाजनों को पीडित करता है। किन्तु समाहर्ता अपने कार्य में लगा रह कर निश्चित वेतन का ही भोग करता है।

नेति कौटिल्यः। सन्निधाता कृतावस्थमन्यैः कोप्रवेश्यं प्रतिःगृह्णाति। समाहर्ता तु पूर्वमर्थमात्मनः कृत्वा पश्चाद्राजार्थं करोति प्रणाशयति वा, परस्वादने च स्वप्रत्ययश्चरतीति। अन्तपालवैदेहकयोरन्तपालश्चोरप्रसंगदेयात्यादानाभ्यां वणिक्पथं पीडयति। वैदेहकास्तु पुण्यप्रतिपण्यानुग्रहैः प्रसाधयन्ति इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। अन्तपालः पण्यसम्पातानुग्रहेण वर्तयति। वैदेहकास्तु सम्भूय मण्यानामुत्कर्षापकर्षं कुर्वाणाः पणे पणशतं कुम्भे कुम्भशतमित्याजीवन्ति।

आचार्य कौटिल्य इससे असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि सन्निधाता तो अन्य कर्मचारियों द्वारा व्यवस्थित वस्तुओं को ही कोश में रखने के लिए लेता है, किन्तु समाहर्ता प्रथम अपना लाभ (घूँस) प्राप्त करके राजा के लिए धन एकत्र करता है। कभी-कभी राजस्व का स्वयं ही हरण करता हुआ कर लेते समय स्वेच्छाचार कर बैठता है। इसलिए सन्निधाता से समाहर्ता ही अधिक दुःखदायी होता है। अन्य आचार्यों के मत में व्यापारी की अपेक्षा सीमापाल की पीड़ा अधिक कष्टकारिणी होती है। क्योंकि सीमापाल स्वेच्छा से चोरी की बात कह कर पथिकों पर लगने वाले वर्तनी कर की वसूली द्वारा अधिक कष्ट देता है। किन्तु व्यापारीगण विक्रय योग्य वस्तुओं के

विक्रय के परिवर्तन में प्राप्त वस्तुएं लेकर लोगों का उपकार तथा वाणिज्यपथ का विकास करते हैं। किन्तु कौटिल्य इसे न मान कर कहते हैं कि सीमापाल सीमा पर आयातित वस्तुओं पर उचित वर्तनी कर लेकर वाणिज्यमार्ग का ही विकास करते हैं। किन्तु व्यापारी-गण परस्पर एक होकर सीमापाल के पास जाकर विक्रय योग्य वस्तुओं का अधिक मूल्य और क्रय योग्य वस्तुओं का न्यून मूल्य निश्चित करके एक पण से सौ पण और स्नेहादि तरल में एक घट का सौ घट लाभ उपार्जन कर लेते हैं।

अभिजातोपरुद्धाः भूमिः पशुव्रजोपरुद्धा वेति। अभिजातोप-रुद्धाः भूमिः महाफलाप्यायुधीयोपकारिणी न क्षमा मोक्षयितुं, व्यवसनाबाधभयात्। पशुव्रजोपरुद्धा तु कृषियोग्या क्षमा मोक्ष-यितु विवीतं हि क्षेत्रेण बाध्यते इत्याचार्याः। नेति कौटिल्यः। अभिजातोपरुद्धा भूमिरत्यन्तमहोपकारापि क्षमा मोक्षयितुं व्य-सनाबाधभयात्। पशुव्रजोपरुद्धा तु कोशवाहनापकारिणी न क्षमा मोक्षयितुमन्यत्र सस्यवापोपरोधादिति। प्रतिरोधकाटविकयोः प्रति-रोधका रात्रिसत्रपराः शरीराक्रमिणो नित्याः शतसहस्रापहारिणः प्रधानकोपकाश्च। व्यवहिताः प्रत्यन्तारण्यचराश्चाटविकाः प्रकाशा दृश्याश्चरन्त्येक देशघातकाश्च इत्याचार्याः।

अब कष्ट पहुंचाने वाली भूमि के त्याग-अत्याग के विषय में कहते हैं। विजिगीषु वंश परम्परा से प्राप्त भूमि का त्याग करे अथवा गवादि पशुओं वाली भूमि का? इस पर अन्य आचार्यों के मत में अन्न आदि के द्वारा प्रभूत लाभ वाली भूमि भी यदि सैनिकों को जन्म देने वाली हो अर्थात् जिस भूमि से वीर सैनिक अधिक प्राप्त हो सकते हों, उसका त्याग कदापि न करे। इसके विपरीत—पशुओं के बाड़े आदि के रूप में जो भूमि घेरी हुई हो, उसका त्याग किया जा सकता है। क्योंकि उसमें कृषिकर्म कराया जा सकता है। किन्तु कौटिल्य इसका समर्थन नहीं करते। उनके मत में राजा के परिवारी-

जनों द्वारा छोड़ी हुई पृथिवी अन्नोत्पादन द्वारा सैनिकों के लिए अत्यंत उपकार करने वाली हो सकती है उसे छोड़ने का प्रयत्न करने पर भारी संकट आ सकता है। किन्तु पशुओं के लिए घेरी हुई पृथिवी कोश में म ग्रहणीय द्रव्यों एवं वाहनों आदि के देने वाली होने के कारण बहुत उपकार करती है। इसलिए वह भी नहीं छोड़ी जा सकती। अन्य आचार्यों के अनुसार आटविकों के उपद्रवों की अपेक्षा सामान्य लुटेरों के उपद्रव अधिक दुःखदायी होते हैं। क्योंकि लुटेरे तो प्रायः रात्रि के समय अपना कार्य करते, दिन में छिपे पड़े रहते और शरीर पर सीधा प्रहार करते हैं। उनका निवास समीप में ही होने के कारण अपना कार्य बनाते हुए जन-जीवन को त्रस्त कर देते हैं। किन्तु आटविक वन के समीपस्थ प्रदेशों में घूमते और किसी एक आद्य प्रदेश में ही उत्पीडन कर सकते हैं।

नेति कौटिल्यः। प्रतिरोधकाः प्रमत्तस्यापहरन्ति, अल्पाः कुण्ठाः सुखात् ज्ञातुं गृहीतुं च। स्वदेशस्थाः प्रभूता विक्रान्ताश्चाटविकाः। प्रकाशयोधिनोऽपहर्तारो हन्तारश्च देशानां राजसधर्माण इति। मृगहस्तिवनयोर्मृगाः प्रभूताः प्रभूतमांसचर्मोपकारिणो मन्दग्रासावक्लेशिनः सुनियम्याश्च। विपरीता हस्तिनो गृह्यमाणा दुष्टाश्च देशविनाशायेति। स्वपरस्थानीयोपकारयोः स्वस्थानीयोपकारो धान्यपशुहिरण्यकुप्योपकारो जानपदानामापद्यात्मधारणः। विपरीतः परस्थानीयोपकारः। इति पीडनानि। आभ्यन्तरो मुख्यस्तम्भो बाह्यो मित्राटवोस्तम्भः। इति स्तम्भवर्गः। ताभ्यां पीडनैर्यथोक्तैश्च पीडितः सक्तो मुख्येषु परिहारोपहतः प्रकीर्णो मिथ्यासंहृतः सामन्ताटवीहृत इति कोशसंगः।

पीडनानामनुत्पत्तावुत्पन्नानां च वारणे।
यतेत देशवृद्ध्यर्थं नाशे च स्तम्भसंगयोः॥

किन्तु कौटिल्य इसे नहीं मानते। वे कहते हैं कि लुटेरे असावधानों को ही लूटते और अल्प संख्या वाले होने के कारण अधिक दूर तक नहीं पहुँच पाते तथा उनका पहिचानना भी सरल होता है। किन्तु आटविक अपने ही प्रदेश में रहने वाले, अधिक संख्यक, पराक्रमी तथा सामने के युद्ध में कुशल होते हैं। वे लोगों को लूटते हुए हत्या भी कर डालते हैं और इस स्थिति में उनका प्रभाव भी राजा के समान ही हो जाता है। मृग-वन और हस्तिवन में हस्तिवन ही अधिक पीड़ाप्रद रहता है। मृगों की बहुत संख्या होती है, जिससे कि प्रभूत मांस और चर्म देते हुए वे अत्यन्त उपकारी सिद्ध होते हैं। अल्पभोजी, सुखपूर्वक दौड़ने वाले, किन्तु सहज ही वश में हो जाने वाले होते हैं। किन्तु गज में मृग से विपरीत गुण होते हैं। पकड़े जाने पर भी उनमें जो दुष्ट स्वभाव वाले हों, वे जन-सामान्य को नष्ट करने वाले सिद्ध होते हैं। अपने स्थानीय अर्थात् अपने देश के उपकार और पराये देश के उपकार में अपने देश का उपकार अर्थात् अन्न, पशु, हिरण्य और कुप्य आदि पदार्थों के क्रय-विक्रय करने से अपने जनपद के रहने वालों का लाभ होता है और विपत्ति के समय रक्षा होती है। किन्तु पराये देश के उपकार में अपने प्रजाजनों को विभिन्न प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। यह पीडनवर्ग का निरूपण हुआ। राज्यधन को दो प्रकार से रोका जाता है। जो मुख्य कर्मचारियों द्वारा रोका जाय वह आभ्यन्तरस्तम्भ और आटविकों द्वारा रोका जाय वह बाह्यस्तम्भ कहा जाता है। यह स्तम्भवर्ग की व्याख्या हुई। उक्त दोनों प्रकार के स्तम्भों और पूर्वोक्त पीडन-हेतुओं के द्वारा राजकोश के देने में कमी आ सकती है। करदाताओं से प्राप्त धन यदि प्रमुख अधि-कारियों द्वारा हड़प कर लिया जाय तो वह भी कोशसंग (अर्थात् कमी) ही माना जायगा। राज्य-कर की छूट, इधर-उधर बिखरा हुआ अथवा कर की न्यून वसूली या सामन्तों और आटविकों द्वारा धन का हरण आदि भी कोशसंग ही है। यह कोशसंग की व्याख्या पूरी हुई। उक्त पीड़ाओं की उत्पत्ति के पश्चात् उनके कारणों को जानता हुआ राजा

स्तम्भ और कोशसंग के निवारण और देश की समृद्धि के विषय में प्रयत्नशील रहे।

पंचमोऽध्याय:

बलव्यसनवर्ग एवं मित्रव्यसनवर्ग

बलव्यसनानि अमानितंविमनितमभृतं व्याधितं नवागत दूरायान्तं परिश्रान्तं परिक्षीणं प्रतिहतं हताग्रवेगं अनृतुप्राप्तं अभूमिप्राप्तं आशानिर्वेदि परिसृप्तं कलत्रगर्हि अन्तःशल्यं कुपितमूलं भिन्नगर्भं अपसृतं अतिक्षिप्तं उपनिविष्टं समाप्तम् उपरुद्धम् परिक्षिप्तं छिन्नधान्यपुरुषवीवधं स्वविक्षिप्तं मित्रविक्षिप्तंदूष्ययुक्त दुष्टपार्ष्णिग्राहं शून्यमूलं अस्वामिसंहतं भिन्नकूटमन्धमिति। तेषाममानितविमानितयोरमानितं कृतार्थमानं युद्धयेत, न विमानितमान्तःकोपम्। अभृतव्याधितयोरभृतं तदात्वकृत्तवेतनं युद्धयेत, न व्याधितमकर्मण्यम्। नवागतदूरायातयोर्नवागतमन्यत उपलब्धदेशमनवमिश्रं युद्धयेत, न दूरायातमायतगतपरिक्लेशम्।

अब अपनी सेना और मित्र पर आने वाले विपत्तियों के विषय में कहेंगे। सेना की विपत्तियाँ चौंतीस प्रकार की होती हैं—अमानित, विमानित, अभृत, व्याधित, नवागत, दूरायात, परिश्रान्त, परिक्षीण, प्रतिहत, हताग्रवेग, अनृतुप्राप्त, अभूमिप्राप्त, आशानिर्वेदि, परिसृप्त, कलत्रगर्ही, अन्तःशल्य, कुपितमूल, भिन्नगर्भ, अपसृत, अतिक्षिप्त, उपनिविष्ट, समाप्त, उपरुद्ध, परिक्षिप्त, छिन्नधान्य, पुरुषवीवध, स्वविक्षिप्त, मित्रविक्षिप्त, दूष्ययुक्त, दुष्टपार्ष्णिग्राह, शून्यमूल, अस्वामिसंहत, मित्रकूट और अंध। अब इसे स्पष्ट करते हैं—इन अमानित अर्थात् सत्कार न की हुई और विमानित अर्थात् तिरस्कृत सेनाओं में से अमानित सेना ही राजा से सत्कार प्राप्त करके युद्ध में तत्पर हो सकती है। विमानित सेना पहिले से तिरस्कृत होने के कारण रुष्ट रहती हुई युद्ध के लिए कदापि तैयार नहीं होती। अभृत अर्थात् वेतन न प्राप्त की हुई और

व्याधित अर्थात् रोगयुक्त में से अभृत सेना ही वेतन देकर युद्ध के लिए तैयार की जा सकती है। किन्तु रोग और निर्बलता के कारण व्याधित सेना में युद्ध नहीं कर सकती। नवागत अर्थात् अभी आई हुई और दूरायात अर्थात् दूर से आई हुई सेना में से नवागत सेना ही वहाँ की पूरी जानकारी प्राप्त करके पुराने निवासियों के साथ युद्ध कर सकती है, किन्तु दूर से आई हुई सेना थकी हुई होने के कारण संग्राम नहीं कर सकती।

परिश्रान्तपरिक्षीणयोः परिश्रान्तं स्नानभोज स्वप्नलब्ध-विश्रमं युद्धचेत, न परिक्षीणमन्यत्राहवे क्षीणयुग्यपुरुषम्। प्रति-हतहताग्रवेगयोः प्रतिहतमग्रपातभग्नं प्रवीरपुरुषसहतं युध्यते, न हताग्रवेगमग्रपातहतप्रवीरम्। अनृत्वभूमिप्राप्तयोरनृतुप्राप्तं यथ-र्तुयोग्ययुग्यशस्त्रावरण युध्येत, नाभूमिप्राप्तमवरुद्धप्रसारव्याया-मम्। आशानिर्वेदपरिसृप्तयोराशानिर्वेदि लब्धाभिप्रायं युध्येत, न परिसृप्तमपसृतमुख्यम्। कलत्रगर्ह्यमन्तः शल्ययोः कलत्रगर्ह्य-मुन्मुच्य कलत्रं युध्येत, नान्तःशल्यमन्तरमित्रम्। कुपितमूलभिन्न-गर्भयोः कुपितमूलं प्रशमितकोपं सामादिभिर्युध्येत, न भिन्नगर्भ-मन्योन्यस्माद्भिन्नम्।

परिश्रान्त अर्थात् उचित आहार के अभाव और परिश्रम के कार्य करके थकी हुई और परिक्षीण अर्थात् अन्य युद्ध में सैनिकों के मरने के कारण क्षीण हुई सेनाओं में से परिश्रान्त सेना ही स्नान, भोजन, शयन और विश्राम आदि से परिपुष्ट होकर रणक्षेत्र में उतर सकती है। किन्तु परिक्षीण सेना अपने योग्य पुरुषों और वाहनादि से विहीन होने के कारण उसमें समर्थ नहीं होती। प्रतिहत अर्थात् आरम्भ में ही पराजित और हताग्रवेग अर्थात् साहसी पुरुषों के मरने से निरुत्साहित हुई सेनाओं में से प्रतिहत ही अन्य योधाओं से मिल कर युद्ध कर सकती है, किन्तु हताग्र-वेग वैसा नहीं कर सकती। अनृतप्राप्त अर्थात् युद्ध-योग्य समय को प्राप्त न हुई और अभूमिप्राप्त अर्थात् व्यायाम आदि के मैदान से रहित में से

अनृतप्राप्त सेना ही वर्तमान समयानुसार वाहन, शस्त्रास्त्र, कवचादि उपकरणों से सुसज्जित होकर रण के लिए जा सकती है। किन्तु अभूमिप्राप्त को स्थानाभाव भाव के कारण सर्वत्र आवागमन एवं व्यायामदि से रहित रहने के कारण वैसा साहस नहीं हो सकता। आशानिर्वेदी अर्थात् इच्छित न मिलने से निराश और परिसृप्त अर्थात् नायक-विहीन सेनाओं में से आशानिर्वेदी को इच्छित वस्तुएं देकर लड़ने में तत्पर हो सकती है। किन्तु नायक विहीन सेना युद्ध नहीं कर सकती। कलत्रगर्ही ही अर्थात् पोष्य-वर्ग के द्वारा लड़ने से रोकी हुई और अन्तःशल्य अर्थात् भीतर से शत्रुभाव वाली सेनाओं में से कलत्रगर्ही ही पौष्यवर्ग की समुचित व्यवस्था होने पर लड़ सकती है। किन्तु अन्तः-शल्य शत्रुभाव के कारण साथ नहीं दे सकती। कुपितमूल अर्थात् क्रोधित रहने वाली और भिन्नगर्भ अर्थात् पारस्परिक फूट वाली में से कुपित-मूल वाली सेना ही सामादि उपायों से युद्ध के लिये तैयार की जा सकती है। किन्तु भिन्नगर्भ आपसी फूट के कारण वैसा नहीं कर सकती।

अपसृतातिक्षिप्तयोरपसृतमेकराज्यातिक्रान्तं मंत्रव्यायामाभ्यां सत्रमित्रापाश्रयं युध्येत, नातिक्षिप्तमनेकराज्यातिक्रान्त बह्वाबाधत्वात्। उपनिविष्टसमाप्तयोरुपनिविष्टं पृथग्यानस्थानमतिसन्धातारं युध्येत, न समाप्तमरिणैकस्थानयानम्। उपरुद्धपरिक्षिप्तयोरुपरुद्धमन्यतो निष्क्रम्योपरोपद्धारं प्रतियुध्येत न परिक्षिप्तं सर्वतः प्रतिरुद्धम्। छिन्नधान्यपुरुषवीवधयो छिन्नधान्यमन्यतो छिन्नधान्यमानीय जंगमस्थावराहारं वा युध्येत, न छिन्नपुरुषवीवधमनभिसारम्।

अपसृत अर्थात् एक ही राज्य में अन्य सेना द्वारा पीड़ित होकर पीछे हटी हुई और अतिक्षिप्त अर्थात् अनेक राज्यों में तिरस्कृत सेनाओं में से अपसृत सेना पुनः मन्त्रयोग, व्यायाम का अभ्यास और वन तथा मित्र राजा का आश्रय पाकर पुनः युद्ध कर सकती है। किन्तु तिरस्कृत और विभिन्न प्रकार से पीड़ित सेना वैसा नहीं कर सकती। उपनिविष्ट अर्थात् शत्रु के पास किन्तु स्वतन्त्र रूप से ठहरी हुई और समाप्त अर्थात्

शत्रु के पास ठहर कर आक्रमण करने वाली सेनाओं में उपनिविष्ट सेना शत्रु से लड़ने को तैयार हो सकती है। क्योंकि स्वतन्त्र रूप से ठहरी हुई भिन्न यान वाली सेना का भेद शत्रु को नहीं मिल सकता। उपरुद्ध (एक ओर से घिरी) और परिक्षिप्त (सब ओर से घिरी) सेनाओं में से उपरुद्ध सेना ही अन्य ओर से निकल कर घेरा डालने वाले शत्रु से युद्ध कर सकती है। किन्तु परिक्षिप्त सेना वैसा नहीं कर सकती। छिन्न धान्य अर्थात् अपने देश से भोजन मंगाने के अवरुद्ध मार्ग वाली और छिन्नपुरुषवीवध अर्थात् अपने देश से सैनिक पुरुष एवं वाहन आदि साधन रूप कुमुक से वंचित हुई सेनाओं में छिन्नधान्य अन्य स्थान से आहार-सामग्री प्राप्त कर लेने के कारण युद्ध कर सकती है।

स्वविक्षिप्तमित्रविक्षिप्तयोः स्वविक्षिप्तं स्वभूमौ विक्षिप्तं सैन्यमापदि शक्यमवस्रावयितुं, न मित्रविक्षिप्तं विप्रकृष्टदेशकालत्वात्। दूष्ययुक्तदुष्टपार्ष्णिग्राहयोर्दूष्ययुक्तमाप्तपुरुषाधिष्ठितमसंहतं युध्येत, न दुष्टपार्ष्णिग्राहं पृष्ठाभिघातत्रस्तम्। शून्यमूलास्वामिसंहतयोः शून्यमूलं कृतपौरजानपदारक्षं सर्वसन्दोहेन युध्येत, नास्वामिसंहतं राजसेनापतिहीनम्। भिन्नकूटान्धयोर्भिन्नकूटमन्याधिष्ठितं युध्येत, नान्धमदेशिकमिति।

दोषशुद्धिर्बलावापः सत्रस्थानातिसंहतम्।
सन्धिश्चोत्तरपक्षस्य बलव्यसनसाधनम् ॥१
रक्षेत्स्वदण्डं व्यसने शत्रुभ्यो नित्यमुत्थितः।
प्रहरेद्दण्डरन्ध्रेषु शत्रूणां नित्यमुत्थितः ॥२

स्वविक्षिप्त अर्थात् स्वदेश में ही इधर-उधर भेजी हुई और मित्रविक्षिप्त अर्थात् मित्रराज्य के कार्य से गई हुई सेनाओं में से स्वविक्षिप्त को आकस्मिक संकट के समय शीघ्र एकत्र किया जा सकता है। किन्तु मित्रविक्षिप्त को अन्य देश में होने के कारण एकत्र नहीं किया जा सकता। दूष्ययुक्त अर्थात् राज्य के विरोधियों से सम्पर्क रखने वाली

सेना एवं दुष्टपार्ष्णिग्राह अर्थात् पीछे से प्रहार करने वाले पार्ष्णिग्राह द्वारा दोषान्वेषण के लिए लक्ष्य बनी हुई सेना, इनमें से दूष्ययुक्त सेना अन्य विश्वस्त पुरुषों के वश में हो जाने पर युद्ध के योग्य हो सकती है। जबकि दुष्टपार्ष्णिग्राह सेना पीछे से प्रहार होने के डर से नहीं लड़ सकती। शून्यमूल अर्थात् सम्पूर्ण सेना के अन्यत्र जाने पर राजधानी में रही अवशिष्ट सेना और अस्वामिसंहत अर्थात् राजा और सेनापति से हीन सेना में से शून्यमूल सेना नगर और जनपद के रहने वालों को साथ लेकर लड़ सकती है, जबकि राजा या सेनापति से रहित सेना युद्ध नहीं कर सकती। भिन्नकूट अर्थात् सेनाध्यक्ष-रहित सेना और अन्ध अर्थात् शत्रु के व्यवहार से अनजान सेना में से भिन्नकूट सेना अन्य सेनाध्यक्ष के नेतृत्व में युद्ध कर सकती है। किन्तु अन्ध सेना-शत्रु की जानकारी न होने के कारण युद्ध नहीं कर सकती। अब सैनिक व्यसनों का प्रतीकार कहते हैं। अवमान-विमान आदि उक्त दोषों का संशोधन करना एक सेना को अन्य सेना से संयुक्त करना, कूट उपायों से शत्रु की गति-विधि जानते रहना और अपने से प्रबल के साथ सन्धि करना—यह उपाय सेना की विपत्ति दूर करने के कहे हैं। सदैव सतर्कता, शत्रु से अपनी सेना की रक्षा, शत्रु के छिद्रों का अवलोकन एवं छिद्रों का ज्ञान होते ही प्रहार करे ॥१-२॥

अभियातं स्वयं मित्रं सम्भूयान्यवशेन वा ।
परित्यक्तमशक्त्या वा लोभेन प्रणयेन वा ॥३
विक्रीतमभियुंजाने संग्रामे वापवर्तिना ।
द्वैधोभावेन वा मित्रं यास्यता वाऽन्यमन्यतः ॥४
पृथग्वा सहयाने वा विश्वासेनातिसंहितम् ।
भयावमानालस्यैर्वा व्यसनान्न प्रमोक्षितम् ॥५
अवरुद्धं स्वभूमिभ्यः समीपाद्वा भयाद्गतम् ।
आच्छेदनाददानाद्वा दत्त्वा वाप्यवमानितम् ॥६

अत्याहारितमर्थं वा स्वयं परमुखेन वा ।
अतिभारे नियुक्तं वा भक्त्वा परमवस्थितम् ॥७
उपेक्षितशक्त्या वा प्रार्थयित्वा विरोधितम् ।
कृच्छ्रेण साध्यते मित्रं सिद्धं चाशु विरज्यति ॥८

अब मित्रव्यसन के विषय में कहते हैं। अपने या अपने किसी मित्र के प्रयोजन से शत्रु पर आक्रमण करने वाले अपने मित्र को जब विजिगीषु अपनी असमर्थता, लोभ या प्रेम आदि के कारण सहायता नहीं देता तो फिर वह पृथक् हुआ मित्र सहज में वशीभूत नहीं होता। (इस श्लोक से आठवें श्लोक तक, आठवें श्लोक के 'कृच्छ्रेण साध्यते' वाक्य का अन्वय लगता जायगा) युद्ध छिड़ने पर राज शत्रु से धन आदि लेकर मित्र को छोड़ देता है, तब वह छोड़ा हुआ मित्र बड़ी कठिनता से वश में आता है। पृथक् अथवा मिल कर आक्रमण करने पर पहले विश्वास देकर और फिर मित्र के शत्रु से मेल करके धोखा दिया जाने पर मित्र शत्रु के भय अथवा मित्र से प्राप्त तिरस्कार या आलस्य के कारण विपत्ति से नहीं बचाया जाता तो वह कठिनाई से वशीभूत होता है। जो मित्र विजिगीषु के देश में होकर जाने से रोक दिया गया हो या विजिगीषु के पास से भय के कारण चला गया हो अथवा बल पूर्वक धन-हरण या अंश की अप्राप्ति के कारण तिरस्कृत हो गया हो, वह मित्र कठिनाई से वशीभूत होता है। स्वयं विजिगीषु या अन्य किसी के द्वारा जिस मित्र का धन हरण कर लिया गया हो अथवा मित्र के शत्रु को जीत कर आने पर किसी अन्य कठिन कार्य पर लगा दिया गया हो, वह मित्र कठिनाई से ही वश में आता है। सामर्थ्यहीन होने के कारण उपेक्षित या मित्रता के पश्चात् विरुद्ध किया गया मित्र कठिनाई से वश में आता है। यदि किसी प्रकार वश में आ भी जाय तो शीघ्र ही विरक्त हो जाते हैं ॥३-८॥

कृतप्रयासं मान्यं वा मोहान्मित्रममानितम् ।
मानितं वा न सदृशं भक्तितो वा निवारितम् ॥९

मित्रोपघातत्रस्तं वा शंकितं वाऽरिसंहितात् ।
दूष्यैर्वा भेदितं मित्रं साध्यं सिद्धं च तिष्ठति ॥१०
तस्मान्नोत्पादयेदेनान्दोषान्मित्रोपघातकान् ।
उत्पन्नान्वा प्रशमयेद्गुणैर्दोषोपघातिभिः ॥११
यतो निमित्तं व्यसनं प्रकृतीनामवाप्नुयात् ।
प्रागेव प्रतिकुर्वीत तन्निमित्तमतन्द्रितः ॥१२

अब सरलता से वशीभूत होने वाले मित्रों के विषय में कहते हैं। विजिगीषु के हित में घोर परिश्रम करने वाले मित्र का अज्ञानवश उचित सत्कार न हुआ हो या विजिगीषु के प्रति स्नेह रखता हो अथवा विजिगीषु के शत्रुओं द्वारा तिरस्कृत हुआ हो, वह मित्र समझाने से शीघ्र वश में हो जाता है। विजिगीषु द्वारा अन्य मित्र को तिरस्कृत होता हुआ देख कर भयभीत अथवा अपने शत्रु के साथ विजिगीषु का मेल होता देख कर सशंकित या दूष्य पुरुषों द्वारा विरोधी बनाया गया मित्र शीघ्र ही वश में हो सकता तथा मैत्री का निर्वाह स्थायी रूप से कर सकता है। इसलिए मित्रता-भंग करने वाले दोषों से बचे और यदि कोई दोष उत्पन्न भी हो जाय तो उनका तुरन्त ही निराकरण करे। जिन कारणों से स्वामी एवं अमात्यादि विषयक व्यसन उत्पन्न होने की संभावना हो, उन कारणों को व्यसन उत्पन्न होने से पूर्व ही नष्ट कर दे ॥९-१२॥

॥ व्यसनाधिकारिक अष्टम अधिकरण समाप्त ॥

———

अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरण

प्रथमाऽध्यायः

शक्ति, देशकाल के बलाबल का ज्ञान एवं यात्राकाल

विजिगीषुरात्मनः परस्य च बलाबलं शक्तिदेशकालयात्राकालबलसमुत्थानकालपश्चात्कोपक्षयव्ययलाभापदां ज्ञात्वा विशिष्ट बलो यायात्। अन्यथासीत। उत्साहप्रभावयोरुत्साहः श्रेयान्। स्वय हि राजा शूरो बलवानरोगः कृतास्त्रो दण्डद्वितीयोऽपि शक्तः प्रभाववन्तं राजानं जेतुम्. अल्पोऽपि चास्य दण्डस्तेजसा कृत्यकरो भवति। निरुत्साहस्तु प्रभाववान् राजा विक्रमाभिपन्नो नश्यति। इत्याचार्याः।

अब उत्साह आदि शक्तियों और देश-काल की अनुकूलता का बल अबल कहेंगे। विजिगीषु को अपने शत्रु का बल, देश, काल, यात्रा का समल, सैन्य-समुत्थान का समय, पश्चात्कोप अर्थात् अन्य पर आक्रमण करने पर पीछे से आक्रमण, सैन्य-विनाश, धननाश, लाभ तथा विपत्तियों के विषय में शत्रु के और अपने बलाबल को जानने के पश्चात् यदि स्वयं को सशक्त समझे तो शत्रु पर आक्रमण करे अन्यथा चुपचाप मौन बैठे। अब उत्साहशक्ति, प्रभुशक्ति और मंत्रशक्ति इन तीनों के पारस्परिक गुरुत्व लघुत्व का विचार करते हैं। अन्य आचार्यों के मत में उत्साह और प्रभाव में उत्साहशक्ति ही श्रेष्ठ है। क्योंकि स्वयं, शूर, बली, स्वस्थ तथा शस्त्रास्त्रविद्या का ज्ञाता विजिगीषु मित्र आदि की सहायता न मिलने पर भी अकेला ही प्रभावशक्ति वाले राजा को जीत सकता है। यदि सेना थोड़ी हो तो भी इसके उत्साह

के कारण कटिबद्ध हो जाती है। प्रभावशक्ति से सम्पन्न राजा यदि उत्साहहीन है तो नष्ट हो जाता है।

नेति कौटिल्यः। प्रभाववानुत्साहवन्तं राजानं प्रभावेणातिसन्धत्ते। तद्विशिष्टमन्यं राजानमावाह्य हत्वा क्रीत्वा वा प्रवीरपुरुषान्। प्रभूतप्रभावहयहस्तिरथोपकरणसम्पन्नश्चास्य दण्डः सर्वत्राप्रतिहतश्चरति। उत्साहवतश्च प्रभाववन्तो जित्वा क्रीत्वा च स्त्रियो बालाः पंगवोऽन्धाश्च पृथिवीं जिग्युः इति। प्रभावमंत्रयोः प्रभावः श्रेयान्। मंत्रशक्तिसम्पन्नो हि वन्ध्यबुद्धिरप्रभावो भवति, मंत्रकर्म चास्य निश्चितमप्रभावो गर्भधान्यमवृष्टिरिवोपहन्ति इत्याचार्याः।

आचार्य कौटिल्य उक्त मत को न मानते हुए कहते हैं कि प्रभावशक्ति वाला राजा कोश-दण्ड की सम्पन्नता के कारण आक्रमणकारी से अधिक बलवान राजा की सहायता लेता हुआ और शूरवीरों को प्रभूत वेतनादि देता हुआ अपने धन-दान के बल पर उत्साह शक्ति वाले को पराजित कर सकता है। इसीलिए उसकी सेना अधिक प्रभाव वाली होने के कारण अश्व, गज, रथ एवं अन्यान्य उपकरण तथा युद्ध सामग्री से सम्पन्न हुई अबाध गति से विचरण करती है। सुनते हैं कि स्त्री, बालक, पंगु और अन्धे राजा भी जो प्रभावशक्ति से सम्पन्न होकर उत्साहशक्ति वालों को हरा कर अथवा धन आदि से वश में करके पृथिवी को जीत चुके हैं। अन्य आचार्यों के मत में प्रभाव और मन्त्र में प्रभावशक्ति ही प्रबल होती है। क्योंकि प्रभावशक्ति के अभाव में मंत्रशक्ति भी निष्फल होजाती है। प्रभाव के न होने से कोश और सेना से सिद्ध होने वाली मंत्रशक्ति भी वृष्टि के अभाव में बोये हुए बीज के नष्ट होने के समान ही नष्ट होजाती है।

नेति कौटिल्यः—मंत्रशक्तिः श्रेयसी। प्रज्ञाशास्त्रचक्षुर्हि राजा अल्पेनापि प्रयत्नेन मंत्रमाधातुं शक्तः, परानुत्साहवतश्च सामादिभिर्योगोपनिषद्भ्यां चातिसन्धातुम्। एवमुत्साहप्रभावमंत्र-

शक्तीनामुत्तरोत्तराधिकोऽतिसन्धत्ते । देशः पृथिवी । तस्यां हिमवत्समुद्रान्तरमुदीचीनं योजनसहस्रपरिमाणं तिर्यक् चक्रवर्तिक्षेत्रम् । तत्रारण्यो ग्राम्य. पार्वत औदको भौमः समो विषम इति विशेषाः । तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत । यात्रात्मनः सैन्यव्यायामानां भूमिरभूमिः परस्य, स उत्तमो देशः विपरीतोऽधमः । साधारणो मध्यमः ।

किन्तु कौटिल्य इससे असहमत होते हुए कहते हैं कि प्रभावशक्ति से मंत्रशक्ति ही प्रवल है । क्योंकि प्रज्ञा और शास्त्र रूप नेत्रों से सम्पन्न राजा अल्प परिश्रम से ही मंत्र का प्रयोग कर सकता है । फिर उत्साहशक्ति और प्रभावशक्ति युक्त शत्रुओं को सामादि उपायों, युक्तियों और औपनिषदिक प्रयोग द्वारा वश में कर लेता है । इस प्रकार उत्साह से प्रभाव और प्रभाव से मंत्रशक्ति की विशेषता समझनी चाहिए । मंत्र वाला राजा प्रभाव वाले को और प्रभाव वाला उत्साह वाले को वश में करने में समर्थ होता है । 'देश' शब्द का तात्पर्य पृथिवी से है । जिस पर भारतवर्ष नामक महान देश में हिमालय से दक्षिणी समुद्र पर्यन्त का उत्तरी क्षेत्र और पर्व से पश्चिम का एक सहस्र योजन का क्षेत्र 'चक्रवर्ति' कहा जाता है । इस क्षेत्र में वन, कृषियोग्य भूमि, पर्वतीय तथा विषम स्थल के रूप में विभिन्न प्रकार के भूखण्ड स्थित हैं । उन पर अपनी सेना की वृद्धि वाले विभिन्न कार्य राजा को करने चाहिए । जिस भूभाग में अपनी सेना विविध प्रकार के व्यायाम (कवायद) आदि की सुविधा हो और शत्रु-सेना को वैसी सुविधा न मिल सके, उसी भूभाग को श्रेष्ठ माने । जो भूभाग उक्त सुविधा से विपरीत अर्थात् शत्रु सेना को अधिक सुविधा युक्त सिद्ध हो वह निकृष्ट और दोनों पक्षों को समान सुविधा हो उसे मध्यम भूभाग समझे ।

कालः शीतोष्णवर्षात्मा । तस्य रात्रिरहः पक्षो मास ऋतुरयनं संवत्सरो युगमिति विशेषाः । तेषु यथास्वबलवृद्धिकरं कर्म प्रयुञ्जीत । यात्रात्मनः, सैन्यव्यायामानामृतुरनृतुः परस्य स

उत्तमः कालः। विपरीतोऽधमः साधारणो मध्यमः। शक्तिदेश कालानां तु शक्तिः श्रेयसीत्याचार्याः। शक्तिमान् हि निम्नस्थलस्थ वतो देशस्य शीतोष्णवर्षवतश्च कालस्य शक्तः प्रतीकारे भवति। देशः श्रेयानित्येके। स्थलगतो हि श्वा नक्रं विकर्षति। निम्न स्थलगतो नक्रं श्वानमिति। कालः श्रेयानित्येके। दिवा काकः कौशिकं हन्ति, रात्रौ कौशिकः काकम् इति। नेति कौटिल्यः। परस्परसाधका हि शक्तिदेशकालाः।

शीत, उष्ण, वर्षा के रूप में काल के तीन भेद कहे हैं। उसके प्रमुख विभाग हैं रात्रि, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और युग। इन सब कालों का उपयोग अपनी सेनावृद्धि के निमित्त करे। सेना के लिए व्यायामादि के लिए उपयुक्त और शत्रु के लिए प्रतिकूल समय को ही श्रेष्ठ समझे। इसके विपरीत हो तो निकृष्ट और दोनों के समान हो तो मध्यम जाने। शक्ति, देश एवं काल के बलाबल के विषय में अन्य आचार्य शक्ति को ही श्रेष्ठ मानते हैं। क्योंकि शक्तिशाली राजा नीचे, ऊँचे या समतल प्रदेश एवं शीत, उष्ण तथा वर्षा के भी प्रतीकार में समर्थ होता है। कुछ आचार्य शक्ति, देश, काल में देश को ही उत्तम समझते हैं। क्योंकि स्थल पर श्वान मगर को और जल में मगर श्वान को खींच लेता है। इस प्रकार देश अर्थात् स्थान की विशेषता सिद्ध हुई। कुछ आचार्य काल को ही श्रेष्ठ मानते हैं। क्योंकि दिन में कौआ उल्लू को मार देता है और रात्रि में उल्लू कौए को मार डालता है। इससे काल की विशेषता प्रमाणित हुई। किन्तु कौटिल्य इसे न मानकर कहते हैं कि शक्ति, देश और काल तीनों ही कार्यसाधन में एक-दूसरे के सहायक हैं। इसलिए इन तीनों में कोई प्रमुख-अप्रमुख नहीं अर्थात् दोनों ही समान हैं।

तैरभ्युच्छ्रितः तृतीयं चतुर्थं वा दण्डस्यांशं मूले पार्ष्ण्यां प्रत्यन्ताटवीषु च रक्षां विधाय कार्यसाधनसहं कोशदण्डं चादाय क्षीणपुराणभक्तमगृहीतनवभक्तमसंस्कृतदुर्गममित्रं, वार्षिकं चास्य

सस्यं हैमनं च मुष्टिमुपहन्तुं मार्गशीर्षी यात्रां यायात् । क्षीणतृण-काष्ठोदकमसंस्कृतदुर्गममित्रं, वासन्तिकं चास्य सस्यं वार्षिकीं वा मुष्टिमुपहन्तुं ज्येष्ठामूलीयां यात्रां यायात् । अत्युष्णमल्पयव-सेन्धनोदकं वा देशं हेमन्ते यायात् । तुषारदुर्दिनमगाधनिम्नप्रायं गहनतृणवृक्षं वा देशं ग्रीष्मे यायात् । स्वसैन्यव्यायामयोग्यं पर-स्यायोग्यं वर्षति यायात् ।

उक्त शक्ति, देश और काल के विषय में अधिक शक्ति सम्पन्न हुआ राजा अपनी सेना का तिहाई या चौथाई भाग राजधानी, पार्ष्णि (पीछे के भाग), सीमा और वन्य प्रदेश में नियुक्त करके आवश्यक कोश और सेना लेकर मार्गशीर्ष में शत्रु पर आक्रमण करे। क्योंकि उस समय शत्रु का अन्न-कोठार समाप्त होचुका होता है और नया अन्न संचित नहीं हो सकता और दुर्ग की मरम्मत भी संभव नहीं होती तथा वर्षाकाल में बोये बीज से उत्पन्न हुआ धान्य एवं हेमन्तकाल में वपन होने वाले बीज को भी विजिगीषु नष्ट कर सकता है । फिर हेमन्तकाल में बोये हुए बीज से उत्पन्न धान्य और वर्षाकाल में वपन किये जाने वाले बीज को नष्ट करने के लिए चैत्रमास में शत्रु पर आक्रमण करना चाहिए। वसन्त काल में वपन बीज से उपजा हुआ अन्न और वर्षा काल में डाले गये बीज को नाश करने के लिए ज्येष्ठ में यात्रा करे। क्योंकि उस समय शत्रु के पास घास, ईंधन और जल भी क्षीण हुआ रहता है और दुर्ग की मरम्मत भी नहीं हो पाती । अब यात्रा-काल का निरूपण करते हैं । जिस स्थान में उष्णता की अधिकता हो और जहाँ घास, ईंधन और जल की भी कमी हो, वहाँ के शत्रु पर हेमन्त में चढ़ाई करनी चाहिए । किन्तु जिस देश में बर्फ पड़ने से सदा अंधकार रहता हो, बहुत गहरे सरोवर में हो, स्थान-स्थान पर जल की अधिकता हो और तृण या वृक्षादि की अधिकता हो, वहाँ ग्रीष्म ऋतु में हमला करे। वर्षाकाल में चढ़ाई करना वर्जित सम-जा जाता है। फिर भी आव-

श्यक हो और अपनी सेना के अनुकूल और शत्रु सेना के लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ हों तो चढ़ाई की जा सकती है।

मार्गशीर्षीं तैषीं चान्तरेण दीर्घकालां यात्रां यायात्। चैत्रं वैशाख चान्तरेण मध्यमकालां, ज्येष्ठामूलीयमाषाढं चान्तरेण ह्रस्वकालामुपोषिष्यन्। व्यसने चतुर्थीम्। व्यसनाभियानं विगृह्ययाने व्याख्यातम्। प्रयाशश्चाचार्याः परव्यसने यातव्यमित्युपदिशन्ति। शक्त्युदये यातव्यमनैकान्तिकत्वाद्व्यसनानाम्। इति कौटिल्यः। यदा वा प्रयातः कर्शयितुमुच्छेत्तुं वा शक्नुयादमित्रं तदा यायात्। अत्युष्णोपक्षीणे कालेऽहस्तिवलप्रायो यायात्। हस्तिनो ह्यन्त.स्वेदाः कुष्ठिनो भवन्ति। अनधगाहमानास्तोयमपिबन्तश्चान्तरवक्षाराश्चान्धीभवन्ति। तस्मात्प्रभूतोदके देशे वर्षति च हस्तिबलप्रायो यायात्। विपयये खरोष्ट्राश्व बलप्रायः। देशमल्पवर्षपंकं वर्षति मरुप्रायं चतुरङ्गबलो यायात्। समविषमनिम्नस्थलह्रस्त्रदीर्घवशेन वाध्वनो यात्रां विभजेत्।

सर्वा वा ह्रस्वकालाः स्युर्यातव्याः कार्यलाघवात्।
दोर्घाः कार्यगुरुत्वाद्वा वर्षावासः परत्र च ॥१

मागशीर्ष और पौष के मध्य में दीर्घकालीन यात्रा कर सकता है। क्योंकि उस समय कृषि आदि के कार्य में कोई हानि नहीं पहुंच सकती। चैत्र-वैशाख के मध्य समय-की यात्रा भी मध्यम कालीन होनी चाहिए। किन्तु ज्येष्ठ-आषाढ़ के मध्य वाली यात्रा स्वल्प कालीन करे क्योंकि यह यात्रा युद्ध के उद्देश्य से नहीं, वरन् शत्रु-देश का अन्न नष्ट करने के लिए की जाय। यदि शत्रु विपत्ति-ग्रस्त हो जाय तो उक्त कालों वाली यात्रा की प्रतीक्षा न करके अन्यकालीन यात्रा कर सकता है यह व्यसनाभियान विग्रह्यान प्रकरण में कह चुके हैं। शत्रु के सकटग्रस्त होने पर उस पर आक्रमण करने के विषय में अन्य आचार्यों ने कहा है। किन्तु आचार्य कौटिल्य इसे न मान कर अपना मत व्यक्त करते हैं कि जब अपनी शक्ति शत्रु से अधिक बढ़ी हुई प्रतीत हो, तभी आक्रमण करे।

क्योंकि संकट का उत्पन्न होना निश्चित न होने से शत्रु कब विपत्ति की प्रतीक्षा में स्वयं विजिगीषु ही दुर्बल होजाय। अथवा शत्रु के उत्कर्ष की परवाह न करके यह समझे कि मैं जीत सकता हूं, तो भी आक्रमण कर देना ठीक होगा। भीषण गर्मी में चढ़ाई करना चाहे तो हाथी सेना को छोड़ कर ऊँट-खच्चर आदि की सेना साथ ले। क्योंकि हाथी बाहर जाकर स्वच्छंद विचरण न करने के कारण पसीने के स्वच्छ न होने से कुष्ठी हो सकते हैं। यदि जल के अभाव में उन्हें स्नान और भरपूर जल पीने से वंचित रखा जाय तो शरीर का जलस्राव नहीं होता, तब वह भीतरी उष्णता के संताप से अन्धे तक हो सकते हैं। इसलिए जहां प्रभूत जल हो और जब वर्षा होती हो, उस समय उस देश पर हाथी-सेना के साथ चढाई करे। यदि विपरीत अवस्था हो तो गधे, ऊँट, घोड़े आदि की सेना के साथ यात्रा करे। वर्षा के समय भी जहाँ कीचड़ की न्यूनता हो, उस मरु प्रदेश में हस्ति, अश्व, रथ एव पदाति सेना के सहित जाय। अथवा यात्रा के समय मार्ग के समतल, विषम, जलयुक्त, स्थलयुक्त या लघु-दीर्घ होने आदि का विचार करके ही यात्रा का निश्चय करे। अल्प कार्य वाले आक्रमण में अल्प समय और बड़े कार्य वाले आक्रमण में लम्बा समय लगता है। कभी-कभी कार्य पूरा न होने के कारण वर्षाॠतु में भी अपने देश में रहने की अपेक्षा प्रवास करना पड़ता है। यह सब कार्य की लघुता-गुरुता के अनुसार ही किया जाता है।

द्वितीयोऽध्याय;

बलोपादानकाला, सन्नाहगुण एव प्रतिबलकर्म

मौलभृतकश्रेणीमित्रामित्राटवीबलानां समुद्दानकालाः। मूलरक्षणादतिरिक्तं मौलबलम्। अत्यावापयुक्ता वा मौला मूले कुर्वीरन्निति। बहुलानुरक्तमौलबलः सारबलो वा प्रतियोद्धा व्यायामेन योद्धव्यमिति। प्रकृष्टेऽध्वनि काले वा क्षयव्ययसहत्वान्मौलबलानामिति। बहुलानुरक्तासम्पाते च यातव्यस्योपजाप-

भयादन्यसैन्यानां भृतादीनामविश्वासे बलक्षये वा सर्वसैन्याना-मिति मौलबलकालः ।

अब मौल, भृतक, श्रेणी, मित्र, अमित्र और अटवी बल के समुत्थान-समय का निर्णय करते हैं। मौल अर्थात् मूल स्थान या राजधानी की रक्षा करने वाली सेना के अतिरिक्त सेना हो या राजा स्वयं यात्रा पर गया हुआ हो जिससे कि अमात्यादि दूष्य हो गये हों, अथवा शत्रु सेना की सख्या अधिक हो और उससे स्नेह रखने वाली मौल सेना उसका साथ दे रही हो, या शूरवीरों से प्रबल सेना शत्रु के पास हो, इसलिए उस पर आक्रमण करना आवश्यक प्रतीत होता हो, या अधिक दूर एवं दीर्घ काल तक लड़ाई चलने पर संभावित क्षय और कोश-व्यय का सहना मौल बल के द्वारा ही हो सकना प्रतीत होता हो, अथवा यह प्रतीत होता हो कि आक्रान्त शत्रु के अनेकानेक गुप्तचर अपने देशमें घुस-पैठ कर चुके और तोड़-फोड़ तथा भेदनीति के प्रयोग में लगे हैं तथा उस स्थिति में मौलबल के अतिरिक्त अन्य वैतनिक सेना आदि पर भरोसा न रहा हो, अथवा संग्राम में सब सेनाओं के प्रमुखों का साहस आदि नष्ट हो चुका हो तब मौलबल की नियुक्ति का अवसर उपस्थित हो गया समझे ।

प्रभूतं मे भृतबलमल्पं च मौलबलमिति । परस्याल्पं विरक्तं मौलबलं फल्गुप्रायमसारं वा भृतसैन्यमिति, मन्त्रेण योद्धव्यमल्प-व्यायामेनेति, ह्रस्वो देशः कालो वा तनुक्षयव्यय इति, अल्प-सम्पात शान्तोपजाप विश्वस्तं वा मे सैन्यमिति, परस्याल्पः प्रसारो हन्तव्य इति भृतबलकालः । प्रभूतं मे श्रेणीबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमिति, ह्रस्वप्रवासः श्रेणीबलप्रायः प्रति-योद्धाः मंत्रव्यायामाभ्यां प्रतियोद्धुकामो दण्डबलव्यवहारः । इति श्रेणीबलकालः । प्रभूतं मे मित्रबलं शक्यं मूले यात्रायां चाधातुमिति, अल्पः प्रवासो मन्त्रयुद्धमिति, मित्रबलेन वा पूर्व-मटवीं नगरीस्थानमासारं वा योधयित्वा पश्चात्स्वबलेन योध-

यिष्यामि, मित्रसाधारणं वा मे कार्यं, मित्रायत्ता वा मे कार्य-सिद्धिः, आसन्नमनुग्राह्यं वा मे मित्रम्, अत्यावापं वास्य साध-यिष्यामि इति मित्रबलकालः ।

अब भृतक बल अर्थात् वेतनभोगी सेना के विषय में कहते हैं । यदि अपने पास मौलबल की न्यूनता और भृतकबल की अधिकता प्रतीत हो अथवा शत्रु के पास मौलबल अल्प, विरक्त अथवा भृतक-बल अल्प एवं सार-रहित दिखाई दे, इसलिए थोड़ी शक्ति से ही छिपे तौर पर लड़ाई चलानी पड़े अथवा शत्रु का देश निकट, समय अल्प, न्यून शक्ति एवं अल्प कोश से साध्य, शत्रु के गुप्तचरों का अभाव न्यूनता के कारण तोड़ फोड़ से निश्चिन्तता, सेना की विश्वस्तता या शत्रु के पास घास चारे, ईंधन, अन्न आदि की कमी से उसका पराभव सरल प्रतीत हो तो भृतकबल की नियुक्ति के लिए उपयुक्त अवसर समझे । यदि अपने श्रेणीबल अर्थात् जनपद से एकत्र की गई विविध कार्य वाली सशस्त्र सेना की संख्या अधिक प्रतीत हो और वह मूल स्थान या आक्रमण करने वाली सेनाओं में से किसी में भी उपयोगी हो सकती हो । अथवा समीपस्थ देश का अल्प कालीन प्रवास, शत्रु के पास श्रेणी बल की अधिकता और मन्त्र युद्ध एवं व्यायाम युद्ध में तत्परता प्रतीत हो अथवा शत्रु, सेना के भय से दूसरे राजा की सहायता लेकर लड़ाई के लिए कटिबद्ध हो रहा हो तो वह अवसर श्रेणीबल की नियुक्ति का है । अब मित्र सेना के विषय में कहते हैं । यदि अपने पास मित्र सेना का आधिक्य हो और वह राजधानी की रक्षा और अभियान दोनों में नियुक्त करने योग्य प्रतीत हो तथा समीपवर्ती प्रवास और व्यायाम युक्त की अधिक सम्भावना हो तथा शत्रु अपनी आटविक और मित्र की मौल सेना को विजिगीषु के मित्र बल से लड़ाकर फिर अपनी सेना से लड़ाना चाहे, अथवा विजिगीषु देखे कि मेरा सैनिक कार्य मित्र के कार्य के ही समान है कार्य की सिद्धि मित्रबल से ही सम्भव है अथवा मित्र निकटस्थ होने से अनुग्रह के योग्य है, अथवा मित्र के शत्रु के द्वारा ही विरोधियों को

नष्ट किया जाना सम्भव है तो वह अवसर मित्रबल की नियुक्ति के लिए उचित है।

प्रभूतं मे शत्रुबलं शत्रुबलेन योधयिष्यामि नगरस्थानम्, अटवीं वा। तत्र मे श्ववराहयोः कलहे चण्डालस्येवान्यतरसिद्धिर्भविष्यति। आसाराणामटवीनां वा कण्टकमर्दनमेतत्करिष्यामि, अत्युपचितं वा कोषभयान्नित्यमासन्नमरिबलं वासयेदन्यत्राभ्यन्तरकोपशंकायाः, शत्रुयुद्धावरयुद्धाकालश्च इत्यमित्रबलकालः।

तेनाटवीबलकालो व्याख्यातः। मार्गदेशिकं परभूमियोग्यमरियुद्धप्रतिलोममटवीबलप्रायः शत्रुर्वा बिल्वं बिल्वेन हन्यताम्। अल्पः प्रसारो हन्तव्यः। इत्यटवीबलकालः।

अब शत्रु-सेना के उपयोग का कारण-काल कहते हैं। यदि विजिगीषु समझे कि मेरे पास शत्रुसेना की अधिकता है या मेरी शक्ति से अवनत प्रचुर शत्रुसेना मेरे नगरमें, मेरे ही अधीन रह रही है। उस सेना को मैं अन्य शत्रु से अथवा आटविक सेना को शत्रु के साथ भिड़ा दूँगा। इस प्रकार दोनों शत्रु-सेनाओं को परस्पर भिड़ा देने पर किसी एक के नष्ट होने पर मेरा लाभ हो सकता है। जैसे श्वान और शूकर के परस्पर विग्रह में जो कोई भी मर जाय, उसी से चण्डाल का लाभ होता है। इस लाभ के उद्देश्य से एक शत्रु सेना को दूसरी शत्रु सेना से लड़ा दे। अथवा अपने मित्र की सेना और आटविक सेना के कंटकों का इस प्रकार मर्दन करने में समर्थ हूँगा। इसलिए भी शत्रु-सेना को शत्रु के सामने युद्ध के लिये प्रेषित करे। अथवा अत्यन्त प्रवृद्ध शत्रुसेना को इस भय से अपने पास रखे, जिससे कि वह क्षुब्ध न हो सके। किन्तु उसे पास रखने में यदि अपने मन्त्रि-पुरोहित आदि के आन्तरिक रूप से क्रुद्ध होने की आशंका हो तो उसे पास न रखे। इस प्रकार जब-जब युद्ध का समय आवे, शत्रुसेना से शत्रुसेना का उपयोग का उपयुक्त अवसर समझे। इसी प्रकार आटविक सेना के उपयोग का अव-

सर समझे । आटविक सेना के विषय में कुछ विशेष बातों को भी कहते हैं। शत्रु देश पर आक्रमण करने में आटविक सेना परायी भूमि पर युद्ध में उपयोगी शस्त्रास्त्र के प्रयोग से परिचित तथा शत्रु देश की भूमि के लिए पथ-प्रदर्शक सिद्ध हो सकती है । यदि शत्रु के पास भी आटविक सेना तैयार हो तो एक बिल्व फल के द्वारा दूसरा बिल्व फल तोड़ने के समान दोनों आटविक सेनाओं को ही परस्पर युद्ध में भिडा दे । शत्रु के घास, ईंधन, अन्न आदि के आयात को रोकने में भी आटविक सेना ही अधिक सफल सिद्ध हो सकती है । इसलिए ऐसे अवसरों पर आटविक सेना से ही काम ले ।

सैन्यमनेकमनेकजातीयस्थमुक्तमनुक्तं वा विलोपार्थं यदुत्तिष्ठति, तदौत्साहिकम् । भक्तवेतनविलोपविष्टिप्रतापकरं भेद्यं परेषाम्, अभेद्यं तुल्यदेशजातिशिल्पप्रायं संहतं महत् । इति बलोपादानकालाः । तेषां कुप्यभृतममित्राटवीबलं विलोपभृतं वा कुर्यात् । अमित्रस्य वा बलकाले प्रत्युत्पन्ने शत्रमपगृह्णीयात्, अन्यत्र वा प्रेषयेत् । अफलं वा कुर्यात् । विक्षिप्तं वा वासयेत् । काले वातिक्रान्ते विसृजेत् । परस्य चेतद्बलसमुद्दानं विघातयेत्, आत्मनः सम्पादयेत् ।

उक्त छः प्रकार की सेनाओं के अतिरिक्त अन्य प्रकार की एक एक सेना 'औत्साहिक' और है। यह अपने उत्साह से ही सैन्य कार्य में लगी रहती है । यह नायक विहीन सेना विभिन्न जाति और विभिन्न देशीय व्यक्तियों से मिल कर बनती है । यह राजाज्ञा हो, अथवा न हो, शत्रु देश के विनाश में तत्पर हो जाती है । यह सेना भेद्य-अभेद्य के रूप में दो प्रकार की मानी गई है । जो सेना भत्ता, वेतन, लूट या बेगार के द्वारा राज-प्रभाव दिखावे वह भेद्य और जो एक देशीय, एक जातीय और एक ही कार्य पर नियुक्त हो वह अभेद्य कही जाती है । इसका गठन अत्यन्त प्रबल हो सकता है । यह विविध सेनाओं के उत्पादनकाल के विषय में कहा गया । उनमें से शत्रु और आटविक

सेना को कुप्य वस्तु या शत्रु देश में लूटपाट द्वारा प्राप्त धन में से वेतनादि दे। उस समय अमित्र भी यदि सैन्य-संगठन करने लगे तो अपनी सहायता के लिए पहिले ही आई हुई सेना को न लौटावे अथवा किसी कार्य के बहाने से अन्यत्र भेज दे। या पहिले दिये हुए वचन के अनुसार उसे सहाता न देकर उसके प्रयोजन निष्फल बना दे। अथवा उस शत्रु-सेना को छोटी टुकड़ियों के रूप में विभाजित करके विभिन्न स्थानों में भेज दे और जब शत्रु का कार्य समय व्यतीत हो जाय और चुप होकर बैठता दिखाई दे तब उस सेना को छोड़े। इस प्रकार शत्रु को सेना एकत्र करने में बाधा डालता हुआ, अपने लिए निरन्तर सैन्य-संचय करता रहे।

पूर्वं पूर्वं चैषां श्रेयः सन्नाहयितुम्। तद्भावभावित्वान्नित्यसत्कारानुगमाच्च मौलबलं भृतबलाच्छ्रेयः। नित्यानन्तरं क्षिप्रोत्थायि वश्यं च भृतबलं श्रेणीबलाच्छ्रेयः। जानपदमेकोंपगतं तुल्यसंघर्षामर्षसिद्धिलाभं च श्रेणीबयं मित्रबलाच्छ्रेयः। अपरिमितदेशकालमेकार्थोपमाच्च मित्रबलममित्रबलाच्छ्रेयः। आर्याधिष्ठितममित्रबलमटवोबलाच्छ्रेयः। तदुभयं विलोपार्थम्। अविलोपे व्यसने च ताभ्यामहिभयं स्यात्। ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रसैन्यानां तेजःप्राधान्यात्पूर्वं पूर्वं श्रेयः सन्नाहयितुमित्याचार्याः।

उक्त मौल से औत्साहिक तक सब प्रकार की सेनाओं में क्रमशः उत्तर-उत्तर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व की सेनाओं का संचय अधिक श्रेयस्कर है जैसे भृतकवल की अपेक्षा मौलवल श्रेष्ठ है। क्योंकि मौल बल नित्य प्रति अपने स्वामी के मनोभावों के अनुकूल रहता, स्वामी से सत्कार प्राप्त करता और उसके प्रति अपना आदर भाव दिखाता रहता है। इस प्रकार स्वामी और सेना में परस्पर सत्कार के कारण प्रसन्नता रहती है। इसी प्रकार श्रेणीबल से भृतक बल उत्तम है, क्योंकि वह सदैव राजा के पास तथा राजा के वश में रहता है और युद्ध आदि कार्यों के लिए शीघ्र तैयार हो सकता है। मित्रबल की अपेक्षा श्रेणी-

बल विशिष्ट होता है। क्योंकि राजा के जनपद में रहने वाली यह सेना राजा और प्रजा दोनों के समान उद्देश्य के निमित्त एकत्र की जाती है, वह शत्रु से संघर्ष, अमर्ष और सिद्धि लाभ में सदा राजा के पक्ष में रहती है। अमित्रबल से मित्रबल अधिक हितकारी होता है। क्योंकि वह समान स्वार्थ के कारण सदैव साथ देता है। आटविक बल की अपेक्षा अमित्रबल श्रेष्ठ है। क्योंकि आटविक सेनाएँ और शत्रु-सेनाएँ लूट-मार का ही कार्य अधिक करती हैं। यदि इन्हें लूट-मार के कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य पर नियुक्त किया जाय अथवा अपने पर कभी कोई संकट आ उपस्थित हो तो यह सर्प के समान भयावनी हो जाती हैं। अन्य आचार्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में क्रमशः पूर्ववर्ती जाति की सेना ही श्रेष्ठ समझी जाती है।

नेति कौटिल्यः। प्रणिपातेन ब्राह्मणबलं परोऽभिहारयेत्। प्रहरणविद्याविनीतं, तु क्षत्रियबलं श्रेयः, बहुलसारं वा वैश्य-शूद्रबलमिति। तस्मात् 'एवं—बलः परः, तस्यैतत्प्रतिबलम्' इति बलसमुद्दानं कुर्यात्। हस्तियन्त्रशकटगर्भकुम्भकुन्तप्रासहाटक-वेणुशल्यवद्धस्तिबलस्य प्रतिबलम्। तदेव पाषाणलगुडावरणां-कुशग्रहणीप्रायं रथबलस्य प्रतिबलम्। तदेवाश्वानां प्रतिबलम्। वर्मिणो वा हस्तिनोऽश्वा वा वर्मिणः। कवचिनो रथा आवरणिनः पत्तयश्चतुरंगबलस्य प्रतिबलम्।

एवं बलसमुद्दानं परसैन्यनिवारणम्।
विभवेन स्वसैन्यानां कुर्यादङ्गविकल्पशः॥

किन्तु कौटिल्य इसे न मानते हुए कहते हैं कि शत्रु प्रणिपात अर्थात् विनीत भाव प्रदर्शन द्वारा ब्राह्मणों को अपने वश में कर सकता है। इसलिए शस्त्रास्त्र से सुसज्जित एवं सुशिक्षित क्षत्रिय सेना ही श्रेष्ठ होती है। जिसमें अधिक संख्या में वीर एवं साहसी वीर हों तो वह वैश्यों और शूद्रों की सेना भी श्रेयसी हो सकती है इसलिए

जिस प्रकार की सुसज्जित सेना शत्रु के पास है, वैसी ही सेना मेरे पास भी होनी चाहिए। इस दृष्टि से सैन्य संग्रह करना चाहिए। हस्तिसेना से सामना करने के लिए अपने पास भी हाथी, यन्त्र, (तोप) शकटगर्भ (शकट-व्यूह), कुम्भ, प्रास, हाटक वेणु एवं शल्य आदि का होना आवश्यक है। रथबल का मुकाबला करने के लिए भी ऐसी ही सामग्री हो। उसमें प्रस्तर, लाठी, कवच, अंकुश, कौंचा आदि और मिला ले। घोड़े की सेना का हाथीबल के समान प्रतिबल करे। हाथी, अश्व, रथ एवं पदाति सेना के प्रतिबल को संक्षेप में इस प्रकार समझे कि चारों प्रकार के बलों के लिए कवचयुक्त प्रतिबल की व्यवस्था करे। अर्थात् चारों प्रकार की सेना कवच से सम्पन्न हो। इस प्रकार सैन्य-संग्रह करने वाला राजा शत्रु के प्रतिरोध में समर्थ होता है। इसलिए वह अपनी सेना की शक्ति पर ध्यान देता हुआ सेना के सभी अंगों को शत्रु सेना के अंगों से श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न करे।

तृतीयोऽध्यायः

पश्चात्कोपचिन्ता, वाह्याभ्यन्तरकोप का प्रतीकार

अल्पः पश्चात्कोपो महान् पुरस्ताल्लाभ इति। अल्पः पश्चात्कोपो गरीयान्। अल्पं पश्चात्कोपं प्रयातस्य दूष्यामित्राटविका हि सर्वतः समेधयन्ति' प्रकृतिकोपो वा। लब्धमपि च महान्तं पुरस्ताल्लाभमेवंभूते भृते भृत्यामित्रक्षयव्यया ग्रसन्ते। तस्मात्सहस्रैकीयः पुरस्ताल्लाभस्यायोगः शतैकीयो वा पश्चात्कोप इति न यायात्। सूचीमुखा ह्यनर्था इति लोकप्रवादः।

अब विजिगीषु द्वारा आक्रमण कर देने के पश्चात् अन्य शत्रु राजाओं द्वारा पीछे से राज्य पर आक्रमण अथवा अमात्यादि के क्रोध का प्रतीकार कहेंगे। विजिगीषु द्वारा हमला के लिए तत्पर होने पर पार्ष्णिग्राह, आटविक तथा अन्यान्य विरोधी द्वारा जिन अनर्थों के किये

जाने की संभावना होती है, उन्हें 'पश्चात्कोप' की संज्ञा दी गई है। यदि पश्चात् कोप न्यून हो तो भविष्य के लाभ की संभावना देख कर उसकी उपेक्षा करनी चाहिए। किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि स्वल्प पश्चात्कोप भी अनर्थ उत्पन्न करने में अधिक से अधिक हो सकता हैं। इसलिए भविष्य के लाभ की उपेक्षा करके पश्चात्कोप का प्रतीकार अनिवार्य रूप से करे। क्योंकि विजिगीषु द्वारा अभियान के लिए चलते ही दूष्य, शत्रु या आटविक उस पश्चात्कोप को अधिक भड़काने का प्रयत्न करते हैं। अथवा मंत्रि आदि रूपी भीतरी कोप भी उसमें सहायक हो सकता है। इसलिए पश्चात्कोप की उपेक्षा करके आक्रमण करने वाला जो विजिगीषु प्रभूत लाभ की संभावना रखे, उसके भृत्य और मित्र आदि के शमनार्थं धन-जन की क्षति होने के रूप में वह पश्चात्कोप ही उस सम्पूर्ण लाभ को हड़प लेगा। इसलिए भविष्य में होने वाले सहस्र गुने लाभ के सामने पश्चात्कोप के द्वारा हुई शतभाग क्षति भी अधिक मानी जाती है। ऐसी अवस्था में आक्रमण नहीं करना चाहिए। लोकोक्ति है कि अनर्थ का मुख प्रारम्भ में सुई की नोंक के समान होता है, किन्तु बढ़ते ही विशाल हो जाता है।

पश्चात्कोपे सामदानदण्डभेदान्प्रयुंजीत। पुरस्ताल्लाभे सेनापतिं कुमारं वा दण्डचारिणं कुर्वीत। बलवान् वा राजा पश्चात्कोपावग्रहसमर्थः पुरस्ताल्लाभमादातुं यायात्। आभ्यन्तरकोपशंकायां शंकितानादाय यायात्। बाह्यकोपशंकायां वा पुत्रदारमेषामभ्यन्तरावग्रहं कृत्वा शून्यपालमनेकबलवर्गमनेकमुख्यं च स्थापयित्वा यायात्। न वा यायात्। 'आभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयान्' इत्युक्तं पुरस्तात्।

पश्चात्कोप की आशंका हो तो आक्रमण न करके साम, दान, दंड, भेद के उपायों से उसे शान्त करे। यदि भविष्य में लाभ की सम्भावना हो तो सेनापति या युवराज के अधीन सेना को आक्रमणार्थ भेजे।

यदि राजा विपुल सेना से सम्पन्न एवं बली हो और पश्चात्कोप को नष्ट करने में अपने को समर्थ देखे तो संभावित लाभ की उपलब्धि के लिए स्वयं ही हमला बोल दे। यदि अमात्यादि से आन्तरिक कोप की आशा हो तो उन्हें युद्ध में अपने साथ ही रणक्षेत्र में ले जाय। यदि राष्ट्रमुख्य, सीमापाल आदि के द्वारा बाहरी कोप के उत्पन्न होने की आशंका हो तो उन बाह्यकोप की आशंका वालों के पुत्र, स्त्री आदि को अमात्यादि के नियंन्त्रण में रख कर मौल-भृतक आदि विभिन्न सेनाओं एव उनके नायकों के सहित शून्यपाल अर्थात् सूनी राजधानी की रक्षा में नियुक्त अधिकारी को राजधानी की रक्षा के लिए छोड़ कर राजा आक्रमण करने के लिए जा सकता है। यदि आन्तरिक कोप की शान्ति में समर्थ न हो तो आक्रमण कदापि न करे। बाह्यकोप से आन्तरिक कोप अत्यधिक हानि करता है—यह पहले भी कह चुके हैं।

मन्त्रिपुरोहितसेनापतियुवराजानामन्यतमकोपोऽभ्यन्तरकोपः। तमात्मदोषत्यागेन परशक्त्यपराधवशेन वा साधयेत्। महापराधेऽपि पुरोहिते संरोधनमवस्रावणं वा सिद्धिः, युवराजे संरोधनं निग्रहो वा गुणवत्यस्मिन्सति पुत्रे। ताभ्यां मंत्रिसेनापति व्याख्यातौ। पुत्रं भ्रातरमन्यं वा कुल्यं राज्यग्राहिणमुत्साहेन साधयेत्। उत्साहाभावे गृहीतानुवर्तनसन्धिकर्मभ्यामरिसन्धानभयात्। अन्येभ्यस्तद्विधेभ्यो वा भूमिदानैर्विश्वासयेदेनम्। तद्विशिष्टं स्वयंग्राहं दण्डं वा प्रेषयेत्, सामन्ताटविकान् वा। तैर्विगृहीतमतिसन्दध्यात्। अवरुद्धादानं पारग्रामिकं वा योगमातिष्ठेत्। एतेन मंत्रिसेनापति व्याख्यातौ।

मंत्री, पुरोहित, सेनापति और युवराज में से किसी के द्वारा भी जो कोप उत्पन्न हो, वह आभ्यन्तर कोप है। यदि राजा के अपने दोष से उसकी प्राप्ति हुई हो तो उस दोष का सर्वथा त्याग करे और मंत्री-पुरोहित आदि में से किसी के द्वारा हुई हो तो उसे उसके बल तथा दोष के अनुसार मारने या बाँधने आदि के रूप में निग्रह करके कोप

को नष्ट करे। पुरोहित द्वारा वैसा अपराध हुआ हो तो उसे बन्धन या निष्कासन का दण्ड दिया जा सकता है। वध का दण्ड नहीं। युवराज के अपराधी होने पर उसे बन्धन और वध दोनों दण्ड दिये जा सकते हैं। किन्तु राजा के अन्य गुणी पुत्र हो तभी उस दोषी पुत्र को वध दण्ड दिया जाना चाहिए। पुरोहित एवं युवराज के समान ही दोषी सेनाध्यक्षों और अमात्यं को भी दण्डित किया जाय। यह बता दिया गया। इनमें भिन्न अर्थात् अन्य कारण भी आभ्यन्तर कोप को उत्पन्न कर सकते हैं। यदि राजा का पुत्र, भ्राता अथवा राजकुल का ही कोई अन्य व्यक्ति राज्य की इच्छा करता हो तो उसे कोई उच्च पद देकर संतुष्ट कर ले। यदि इस प्रकार से उत्साहित करना सम्भव न हो तो उनके शत्रु से मिल जाने के भय से उनका जो धन छीना गया हो, उसके उपभोग की छूट उन्हें देकर मेल कर ले। इसी प्रकार राजवश के अन्य पुरुषों को भी भूमि आदि देकर उनके मन में विश्वास जगावे अथवा स्वयंग्राह सेना अर्थात् शत्रुदेश देश में लूटे हुए धन वाली सेना को उनके अधीन करके उन्हें रणक्षेत्र में भेज दे। अथवा स्वयंग्राही, सामन्तों या आटविकों की सेना के साथ भेज कर उन्हें बंधन में डलवादे। अथवा अपने कुल के उन लोगों को अपनी सेना का आधिपत्य सौंप कर सामन्तों और आट-विकों के साथ युद्ध में भेज दे। या स्वयग्राह, आटविक एवं सामन्तों की सेनाओं से उनका विरोध कराके उन्हें बंधन में डलवा दे। या सेना के द्वारा रोके हुए अपने उन कुल वालों को राजा स्वयं बंधन में डाले। अथवा दुर्गलम्भोपाय अधिकरण में कहे हुए पारग्रामिक योग का उपयोग करे। इस प्रकार मंत्री सेनापति आदि का कोप का प्रतीकार कह दिया गया।

मंत्र्यादिवर्जानामन्तरमात्यानामन्यतमकोपोऽन्तरमाण्यकोपः। तत्रापि यथार्हमुपायान् प्रयुंजीत। राष्ट्रमुख्यान्तपालाटविकदण्डो-पनतानामन्यतमकोपो वाह्यकोपः। तमन्योन्येनावग्राहयेत्। अति-दुर्गप्रतिष्टब्धं वा सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानामन्यतमेनाव-

ग्राहयेत् । मित्रेणोपग्राहयेद्वा, यथा नामित्रं गच्छेत् । अमित्राद्वा सत्री भेदयेदेनम्---'अयं त्वां योगपुरुषं मन्यमानो भर्तर्येव विक्रमयिष्यति, अवाप्तार्थो दण्डचारिणममित्राटविकेषु कृच्छ्रे वा प्रवासे योजयिष्यति, विपुत्रदारम ते वा वासयिष्यति। प्रतिरतविक्रमं त्वां भर्तरि पण्यं करिष्यति, त्वया वा सन्धि कृत्वा भर्तारमेव प्रसादयिष्यति, मित्रमुपकृष्टं वास्य गच्छेत्' इति। प्रतिपन्नमिष्टाभिप्रायैः पूजयेत् । अप्रतिपन्नस्य सश्रयं भेदयेत्—'असौ ते योगपुरुषः प्रणिहितः' इति ।

मंत्रि आदि के अतिरिक्त द्वारपाल आदि या अन्यान्य अमात्यादि के कुपित होने को 'अंतरमात्य कोप' कहा गया है। इसकी शान्ति के लिए उचित उपायों का प्रयोग किया जाय। यह आभ्यन्तर कोपों की व्याख्या पूर्ण हुई। अब बाह्य कोप का शमनोपाय कहते हैं। राष्ट्र प्रमुख, सीमापाल, आटविक और दण्डोपनत व्यक्तियों द्वारा उत्पन्न हुए कोप को बाह्यकोप कहा जाता है। ऐसा कोप उनको ही परस्पर में टकरा कर शान्त करने का उपाय करे। अथवा दृढ़ दुर्ग से सम्पन्न राष्ट्र प्रमुख या सीमापाल को सामंत, आटविक या राजकुल के ही किसी अवरुद्ध पुरुष द्वारा पकड़वा ले। अथवा अपने किसी मित्र से उसकी मित्रता करा कर उसे शत्रु के प्रभाव में जाने से रोके। अथवा सत्रि संज्ञक गुप्तचर उक्त राष्ट्र प्रमुखादि में से किसी को फोड़ लें, किंतु वह फूट कर शत्रु में न जा मिले। इसीलिए समझा कर कहे—तुम जिससे मिलने का विचार करते हो, वह तुम्हें विजिगीषु का गुप्तचर समझ कर पहिले तुम्हें तुम्हारे स्वामी से ही लड़ायेगा। फिर उस युद्ध का परिणाम देख कर यदि तुम्हें योग्य समझेगा तो अपनी किसी सेना का नायक बना कर अपने किसी शत्रु या आटविक पर चढ़ाई करने के लिए बहुत दूर तथा अत्यन्त कष्टकारी स्थान में भेज देगा और तुम्हें तुम्हारे स्त्री-पुत्र आदि से पृथक् अर्थात् बहुत दूर देश में रखेगा। अथवा तुम्हारे प्रहार से क्षुब्ध हुए या तुम्हारे बल प्रदर्शन से कुपित हुए स्वामी के ही हाथों कुछ

धन लेकर बेच देगा या संधि होने के पश्चात् तुम्हें तुम्हारे स्वामी को ही सौंप देगा। अथवा तुम्हारे स्वामी के किसी मित्र से संधि करके तुम्हें उसके हाथ बेच देगा। यदि वह सत्रि की बात से सहमत हो तो सत्रि उसे इच्छित धनादि देकर प्रसन्न करे और फिर आवश्यक हो तो उसके आश्रयदाता के मन में भी भेद डालने के लिए कहे— जो पुरुष आपसे आश्रय मांगता है, वह अन्य राजा का गुप्तचर है। इसलिए उससे सतर्क रहें।

सत्री चैनमभित्यक्तशासनैर्घातयेद्गूढपुरुषैर्वा। सहप्रस्थायिनो वास्य प्रवीरपुरुषान् यथाभिप्रायकरणेनावाहयेत्। तेन प्रणिहितान् सत्री ब्रूयात्। इति सिद्धिः परस्य चैनान्कोपानुत्थापयेत्। आत्मनश्च शमयेत्। यः कोपं कर्तुं शमयितुं वा शक्तः, तत्रोपजापः कार्यः। यः सत्यसन्धः शक्तः कर्मणि फलावाप्तौ चानुग्रहीतुं विनिपाते च त्रातुं, तत्र प्रतिजापः कार्यः। तर्कयितव्यश्च— 'कल्याणबुद्धिरुताहो शठः' इति।

फिर वह सत्रि किसी अभित्यक्त अर्थात् प्राणदण्ड पाये हुए अभियुक्त के हाथ से बनावटी पत्र भिजवा कर शत्रु के मन में संदेह उत्पन्न करा कर उसके द्वारा अथवा किसी गुप्तचर द्वारा राष्ट्रप्रमुख आदि उस बाह्य कुपित व्यक्ति को मरवा डाले। शत्रु का आश्रय लेने के लिए जो बाह्य जाता हो उसके साथ जाने को उद्यत वीर पुरुषों को उनका इच्छित पूर्ण करके अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करे। यदि वे अपनी ओर न मिलें तो सत्रिगण उनके आश्रयदाता राजा में भेद डालते हुए कहें कि इन गूढ़ पुरुषों को विजिगीषु ने आपकी हत्या करने के उद्देश्य से भेजा है। इस प्रकार कहने से ही शत्रु उन्हें अपने पास नहीं रखेगा या मरवा देगा। विजिगीषु शत्रुदेश में बाह्य और अभ्यान्तरिक व्यक्तियों के द्वारा उपद्रव कराने और अपने देश में उपद्रव न होने देने का सदा प्रयत्न करता रहे। जो कोप के कराने और होते हुए कोप का शमन करने में समर्थ हो उस राजा के राज्य में उपजाप अर्थात् फूट डालने का कार्य कराता रहे। सत्य-

प्रतिज्ञ, कार्य-सक्षम, अनुग्रहकारी और संकटकाल में रक्षा करने में समर्थ से मेल रखे। जिससे मेल करे उसके विषय में यह अवश्य जान ले कि इसकी कल्याणबुद्धि है या शठबुद्धि ?

शठो हि बाह्योऽभ्यन्तरमेवमुपजपति—'भर्तारं चेद्धत्वा मां प्रतिपादयिष्यति शत्रुवधो भूमिलाभश्च मे द्विविधो लाभो भविष्यति अथवा शत्रुरेनमाहनिष्यति। हतबन्धुपक्षस्तुल्यदोषदण्डेन वा उद्विग्नश्च मे भूयान् कृत्यपक्षो भविष्यति। तद्विधे वान्यस्मिन्नपि शंकितो भविष्यति। अन्यमन्यं चास्य मुख्यमभित्यक्तशासनेन घातयिष्यामि' इति।

शठबुद्धि वाला बाह्य पुरुष अमात्यादि आन्तरिक पुरुषों को इसलिए अपनी ओर मिलाना चाहता है कि यदि ये लोग अपने स्वामी की हत्या करके मुझे राजा बना दें तो मुझे शत्रुनाश और राज्य-प्राप्ति रूपी दो लाभ एक साथ होंगे। अथवा यदि शत्रु ने ही अमात्यादि का वध कर दिया तो मृतक के बांधवादि या अमात्य के समान दूष्यवर्ग राजा के उस कार्य से उद्विग्न हो उठेंगे। तब वहाँ अधिकांश व्यक्ति मेरे पक्ष में आ जायेंगे। उस स्थिति में उन सब या दूसरे कर्मचारियों पर भी राजा विश्वास नहीं करेगा, [illegible] अभित्यक्त पुरुषों के द्वारा बनावटी पत्र लिखवा कर शत्रु के मुख्य अधिकारियों को पृथक् पृथक् रूप से मरवा देने में सफल हो जाऊँगा।

अभ्यन्तरो वा शठो बाह्यमेवमुपजपति—'कोशमस्य हरिष्यामि दण्डं वास्य हनिष्यामि, दुष्टं वास्य भर्तारमनेन घातयिष्यामि, प्रतिपन्नं बाह्यमर्मामित्राटविकेषु विक्रमयिष्यामि। चक्रमस्य सज्यतां वैरमस्य प्रसज्यतां ततः स्वाधीनो मे भविष्यति, ततो भर्तारमेव प्रसादयिष्यामि, स्वयं वा राज्यं ग्रहीष्यामि, बद्ध्वा वा बाह्यभूमिं भर्तृभूमिं चोभयमवाप्स्यामि, विरुद्धं वा वाह-यित्वा बाह्यं विश्वस्त घातयिष्यामि, शून्यं वास्य मूलं हरिष्यामि'

इति । कल्याणबुद्धिस्तुसहजीव्यर्थमुपजति । कल्याणबुद्धिना सन्दधीत । शठं 'तथा' इति प्रतिगृह्याति सन्दध्यात् इति । एवमुपलभ्य--

परे परेभ्यः स्वे स्वेभ्यः स्वे परेभ्यः स्वतः परे ।
रक्ष्याः स्वेभ्यः परेभ्यश्च नित्यमात्मा विपश्चिता ॥१॥

अब अभ्यन्तरिक शठ के द्वारा बाह्य को फोड़ने के विषय में कहते हैं । भीतरी शठ बाह्य अधिकारियों को यह सोच कर उपजाप करते हैं कि अवसर मिला तो बाह्य कोश का हरण करता हुआ इसकी सेना को नष्ट कर दूँगा । अथवा अपने दुष्ट स्वामी को इसके द्वारा मरवा दूँगा । अथवा जब यह मेरे स्वामी का वध करना स्वीकार कर लेगा तब इसे किसी शत्रु या आटविक से भिड़ा दूँगा और जब इसकी सेना शत्रु के साथ विग्रह में फँस जायगी, तब उससे इसकी शत्रुता अधिकाधिक बढ़ती जायगी । उस अवस्था में यह मेरे वश में हो जायगा । तब मैं अपने स्वामी को प्रसन्न कर लूँगा । यदि मैं अपनी नीति में सफल हुआ तो बाह्य के राज्य पर स्वयं अधिकार कर लूँगा । तत्पश्चात् बाह्य को बन्धन में डाल कर उसका राज्य और अपने स्वामी का राज्य भी अपने अधिकार में ले लूँगा । अथवा बाह्य के किसी विरोधी से ही उस बाह्य को मरवा दूँगा । अथवा जब यह कहीं आक्रमणादि के उद्देश्य से जायगा तब उस शून्य राज्य को स्वयं हड़प लूँगा । कल्याणबुद्धि पुरुष समान उन्नति की आशा में उपजाप अर्थात् तोड़-फोड़ करता है । किन्तु अपने स्वामी या उपकार करने वाले का वध या बन्धन कभी नहीं चाहता । इसलिए ऐसी बुद्धि वाले के साथ संधि कर ले । किन्तु शठ के साथ प्रतिज्ञा करके भी वचन-भंग करने और धोखा देने में कोई बुराई नहीं है । इस प्रकार निश्चय करके विज्ञ विजिगीषु बाह्य शठों को शत्रु से, अपने शठों को अपनों से, अपनों को परायों से तथा स्वयं को अपने और पराये दोनों से बचावे अर्थात् नीतिवान पुरुष अपने-पराये सभी के अभिप्रायों को छिपाता हुआ सदैव सतर्क भाव से अपने, पराये और स्वयं की भी रक्षा करता रहे ।

चतुर्थोऽध्यायः

क्षयव्यय एवं लाभविचारविमर्श

युग्यपुरुषापचयः क्षयः। हिरण्यधान्यापचयो व्ययः। ताभ्यां बहुगुणविशिष्टे लाभे यायात्। आदेयः, प्रत्यादेयः: प्रसादकः, प्रकोपकः, ह्रस्वकालः, तनुक्षयः, अल्पव्ययः, महान्, वृद्ध्युदयः कल्पः, धर्म्मः, पुरोगश्चेति लाभसम्पत्। सुप्राप्यानुपाल्यः परेषामप्रत्यादेय इत्यादेयः। विपर्यये प्रत्यादेयः। तमाददानस्तत्रस्थो वा विनाशं प्राप्नोति।

अब सैन्यवाहन विनाश, धनधान्य का क्षय एवं भूमिलाभ के विषय में कहेंगे। युग्य अर्थात् वाहन और पुरुष अर्थात् श्रमिक के नाश को क्षय और धन तथा अन्न के नाश को व्यय कहा जाता है। इस प्रकार के क्षय और व्यय की अपेक्षा अधिक गुण वाले लाभ की संभावना हो तभी आक्रमण करना चाहिए। आदेय, प्रत्यादेय, प्रसादक, प्रकोपक, ह्रस्वकाल, तनुक्षय, अल्पव्यय, महान्, वृद्धि-उदय, कल्प, धर्म और पुरोग यह बारह लाभसम्पत् हैं। अब इनका स्वरूप कहते हैं। जो भूमि आदि सहज प्राप्त हो जाय और उसकी रक्षा भी सहज रूप में हो सके, वह लाभ 'आदेय' है। किन्तु कठिनता से प्राप्त, रक्षा में सुगमता-रहित और सहज ही शत्रु के हाथ पड़ सके, उस लाभ को 'प्रत्यादेय' मानते हैं। ऐसे लाभ को प्राप्त करने वाला व्यक्ति नष्ट हो सकता है।

यदि वा पश्येत्—'प्रत्यादेयमादाय कोशदण्डनिचयरक्षाविधानान्यवस्रावयिष्यामि, खनिद्रव्यहस्तिवनसेतुबन्धवणिक्पथानुद्धृतसारान्करिष्यामि, प्रकृतीरस्य कर्शयिष्यामि, आवाहयिष्यामि, आयोगेनाराधयिष्यामि वा, ताः परः प्रतियोगेन कोपयिष्यति, प्रतिपक्षे वास्य पण्यमेनं करिष्यामि, मित्रमवरुद्धं वास्य प्रतिपादयिष्यामि, मित्रस्य स्वस्य वा देशस्य पीडामत्रस्थस्तस्करेभ्यः

परेभ्यश्च प्रतिकरिष्यामि मित्रमाश्रयं वास्य वैगुण्यं ग्राहयिष्यामि तदमित्रविरक्तं तत्कुलीनं प्रतिपत्स्यते । सत्कृत्य वास्मै भूमिं दास्यामि इति । संहितसमुत्थं मित्रं मे चिराय भविष्यति' इति प्रत्यादेयमपि लाभमाददीत । इत्यादेयप्रत्यादयौ व्याख्यातौ ।

यदि यह देखे कि प्रत्यादेय लाभ को प्राप्त करने पर मैं शत्रु के धन, जन आदि का संचय करता हुआ उसकी रक्षापंक्ति को निष्फल बना दूँगा, या उसकी खान, द्रव्य-हस्तिवन, सेतु, वणिक्पथ आदि को महत्वहीन कर दूँगा, अथवा शत्रु के प्रकृतिवर्ग को निर्बल बना दूँगा, अथवा प्रत्यादेय में प्राप्त भूमि पर शत्रु के प्रकृतिवर्ग को बसा कर सर्व प्रकार के भोग-प्रदान द्वारा सन्तुष्ट कर दूँगा, या शत्रु के उत्पीडन द्वारा पीडित प्रजा उससे क्रुद्ध हो जायगी, या प्रत्यादेय वाली पृथिवी को शत्रु के शत्रु को बेच दूँगा, या उस भूमि पर शत्रु के किसी मित्र या शत्रु के बन्धन में पड़े पुत्र को बसा दूँगा, या उस भूमि पर मैं स्वयं निवास करूँगा और अपने मित्र के देश या अपने देश में होने वाले तस्कर व्यापार को रोक सकूँगा। या शत्रु के सहायक या आश्रय रूप मध्यम राजा को उसके विरुद्ध कर दूँगा, या शत्रु के शत्रु कुल के ही किसी पुरुष को उसके राज्य पर अभिषिक्त कर दूँगा, अथवा प्रत्यादेय में प्राप्त भूमि को उसी शत्रु को सादर लौटा कर उसे सदा के लिए अपना मित्र बना लूँगा। यदि ऐसा समझे तो उस प्रत्यादेय लाभ को स्वीकार कर ले। यह आदेय और प्रत्यादेय लाभ की व्याख्या हुई।

अधार्मिकाद्धार्मिकस्य लाभो लभ्यमानः स्वेषां परेषां च प्रसादको भवति । विपरीतः प्रकोपक इति । मंत्रिणामुपदेशाल्ला-भोऽलभ्यमानः कोपको भवति, 'अयमस्माभिः क्षयव्ययौ ग्राहितः' इति । दूष्यमन्त्रिणामनादराल्लाभो लभ्यमानः कोपको भवति, 'सिद्धार्थोऽयमस्मान् विनाशयिष्यति' इति । विपरीतः प्रसादकः । इति प्रसादककोपकौ व्याख्यातौ । गमनमात्रसाध्यत्वाद्धुरवः

कालः । मंत्रसाध्यत्वात्तनुक्षयः । भक्तमात्रव्ययत्वादल्पव्ययः । तदात्ववैपुल्यान्महान् । अर्थानुबन्धकत्वाद्वृद्ध्युदयः । निराबाधकत्वात्कल्पः । प्रशस्तोपादानाद्धर्म्यः । सामवायिकानामनिर्बन्धगामित्वात्पुरोग इति ।

किसी धार्मिक को अधार्मिक से प्राप्त लाभ, जो अपने और दूसरे को भी सुखदायक रहे, उसे 'प्रसादक' कहा गया है। इसके विपरीत लाभ को 'प्रकोपक' कहते हैं। मंत्रियों के परामर्श से जो लाभ प्रयत्न पूर्वक हो, वह भी प्रकोपक है। क्योंकि उसके कारण मन्त्रियों को भी पश्चात्ताप होता है कि राजा के धन-जन को व्यर्थ ही नष्ट कराया गया। दूष्य अमात्यादि के प्रति तिरस्कार प्रदर्शित करके जो लाभ प्राप्त हो, वह भी कोप उत्पन्न करता है। क्योंकि उन दूष्य अमात्यों को राजा के सिद्ध संकल्प होने पर अपने नाश की आशंका रहती है। इसके विपरीत लक्षण हों तो वह लाभ प्रसादक ही है। यह प्रसादक और प्रकोपक की व्याख्या हुई। जिस लाभ की प्राप्ति गमन मात्र अर्थात् चढ़ाई करने से ही हो जाय वह 'ह्रस्वकाल' तथा जिस लाभ की प्राप्ति में अल्प क्षय-व्यय हो तो वह 'तनुक्षय' लाभ का कहा जायगा। नकद धन के स्थान पर अन्नादि के रूप में प्राप्त लाभ 'अल्पव्यय' और तुरन्त प्राप्त लाभ 'महान् लाभ' कहलाता है। जिस लाभ में सदा धन मिलने की आशा हो वह वृद्धि-उदय, जिस लाभ में भविष्य में किसी रुकावट की संभावना न हो वह कल्प, जो सामना करने से लाभ मिले वह धर्म्य और सामूहिक अभियान से अपने भाग में बिना शर्त प्राप्त लाभ 'पुरोग' लाभ कहा जाता है।

तुल्ये लाभे देशकालौ शक्त्युपायौ प्रियाप्रियौ जवाजवौ सामीप्यविप्रकर्षौ तदात्वानुबन्धौ सारत्वसातत्ये बाहूल्य बाहुगुण्ये विमृश्य च बहुगुणं लाभमाददीत। लाभविघ्नाः—कामः कोपः साध्वस कारुण्यं ह्रीः अनार्यभावो मानः सानुक्रोशता परलोकापेक्षा दाम्भिकत्वम् अत्याशित्वम् दैन्यम् असूया हस्तगतावमानो

दौरात्मिकविश्वासो भयमनिकारः शीतोष्णवर्षाणामाक्षम्यं मंगल-तिथिनक्षत्रेष्टित्वमिति ।

समान रूप से उपस्थित लाभों में से जो अनेक गुणों से सम्पन्न लाभ हो, उसी को स्वीकार करे। किन्तु इस विषय मे देश काल का भी विचार कर ले। इसके अतिरिक्त उत्साह आदि शक्तित्रय और सामादि उपाय चतुष्टय, हिरण्यादि की प्रियता और क्षुद्र वस्तुओं के प्रति उदासीनता, शीघ्र या विलम्ब से प्राप्ति, दूरस्थ या समीपस्थ, क्षणिक या चिरकालीनता, सारता, या असारता, अधिक संख्यक या अल्प संख्यक, गुण की न्यूनता या अधिकता आदि के अनुसार जो अधिक गुणयुक्त हो, उसी को ग्रहण करे। लाभ में निम्न दोष विघ्नकारी होते हैं—कामासक्ति, क्रोध, साध्वस (भय), करुणा, लज्जा, दुष्ट स्वभाव, अहभाव, सानुक्रोशता (तृप्ति के लिए मृदुलता), परलोकापेक्षा, दाम्भिकत्व, अत्याशित्व, दैन्य, असूया, हस्तगत वस्तु का तिरस्कार, दौरात्म, अविश्वास, भय-रहितता, शत्रु का अतिरस्कार, शीत-उष्ण वर्षा की असहनशीलता तथा कार्यारम्भ से पूर्व शुभ तिथि-नक्षत्र का देखना आदि कार्यों से लाभ में रुकावट हो सकती है। जो अज्ञानी पुरुष नक्षत्रादि के शुभाशुभ में अधिक जिज्ञासा करते हैं, उनकी कार्यसिद्धि उन्हें पीछे धकेल देती है। क्योंकि कार्य की सिद्धि में प्रयोजन ही श्रेष्ठ नक्षत्र है अर्थात् कार्यसिद्धि के विषय में नक्षत्र क्या करने में समर्थ हैं? जिनके पास धन रूपी साधन नहीं है, वे सैकड़ों उपाय करके भी इच्छित प्राप्त नहीं कर सकते। जैसे हाथी पकड़ने का साधन रूप हाथी हो तो ही अन्य हाथी पकड़े जा सकते हैं, वैसे ही धन के द्वारा धन प्राप्ति की कामना पूर्ण हो सकती है। अर्थात् धन से ही धन बढ़ सकता है ॥१-२॥

नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते ।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ॥१
नाधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्नरा यत्नशतैरपि ।
अर्थैरर्थाः प्रबध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव ॥२

पञ्चमोऽध्यायः

बाह्याभ्यन्तरा आपत्तियाँ

सन्ध्यादीनामयथोद्देशावस्थापनमपनयः । तस्मादापदः सम्भवन्ति । बाह्योत्पत्तिरप्रतिजापा । अभ्यन्तरोत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा । बाह्योत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा ! अभ्यन्तरोत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा । इत्यापदः । यत्र बाह्या अभ्यन्तरानुपजन्ति, अभ्यन्तरा वा बाह्यान्तत्रोभययोगे प्रतिजपतः सिद्धिर्विशेषवती । सुव्याजा हि प्रतिजपितारो भवन्ति, नोपजपितारः । तेषु प्रशान्तेषु नान्याञ्शक्नुयुरुपजपितुमुपजपितारः । कृच्छ्रोपजापा हि बाह्यानामभ्यन्तरास्तेषामितरे वा । महतश्च प्रयत्नस्य वा वधः, परेषामर्थानुबन्धश्चात्मनोऽन्य इति । अभ्यन्तरेषु प्रतिजपत्सु सामदाने प्रयुंजीत । स्थानमानकर्म सान्त्वम् । अनुग्रहपरिहारौ कर्मस्वायोगो वा दानम् ।

अब बाह्याभ्यन्तर की विपत्तियों को कहते हैं। सन्धि-विग्रह आदि गुणों द्वारा स्वविषयों का अतिक्रमण करने पर स्थान में किये जाने वाला प्रयोग 'अपनय' है। इस अपनय अर्थात् नीतिभ्रंश से ही सब प्रकार की विपत्तियाँ प्राप्त होतीं हैं। राष्ट्रप्रमुख या सीमापाल आदि बाह्य यदि भेदनीति से काम लेकर आंतरिक अमात्यादि को अपनी ओर फांड़ लें और इससे संकट उपस्थित हो जाय तो यह प्रथम प्रकार की विपत्ति होगी। आंतरिक अमात्यादि के द्वारा बाह्य राष्ट्रमुख्य आदि को अपनी ओर मिला लेने से प्राप्त संकट को दूसरे प्रकार की विपत्ति कहते हैं। बाह्य बाह्य अधिकारी परस्पर में ही भेद डाल कर संकट उपस्थित करें वह तीसरे प्रकार की विपत्ति है। आन्तरिक-आन्तरिक की पारस्परिक फूट से उपस्थित संकट चौथे प्रकार का है। इन चार प्रकार की आपत्तियों में प्रथम और दूसरी में भड़काने और भड़कने वाले दोनों ही परस्पर में विजातीय तथा तीसरी-चौथी में सजातीय होते हैं। उक्त

दौरात्मिकविश्वासो भयमनिकारः शीतोष्णवर्षाणामाक्षम्यं मंगल-तिथिनक्षत्रेष्टित्वमिति।

समान रूप से उपस्थित लाभों में से जो अनेक गुणों से सम्पन्न लाभ हो, उसी को स्वीकार करे। किन्तु इस विषय मे देश काल का भी विचार कर ले। इसके अतिरिक्त उत्साह आदि शक्तित्रय और सामादि उपाय चतुष्टय, हिरण्यादि की प्रियता और क्षुद्र वस्तुओं के प्रति उदासीनता, शीघ्र या विलम्ब से प्राप्ति, दूरस्थ या समीपस्थ, क्षणिक या चिरकालीनता, सारता, या असारता, अधिक संख्यक या अल्प संख्यक, गुण की न्यूनता या अधिकता आदि के अनुसार जो अधिक गुणयुक्त हो, उसी को ग्रहण करे। लाभ में निम्न दोष विघ्नकारी होवे हैं—कामासक्ति, क्रोध, साध्वस (भय), करुणा, लज्जा, दुष्ट स्वभाव, अहभाव, सानुक्रोशता (तृप्ति के लिए मृदुलता), परलोकापेक्षा, दाम्भिकत्व, अत्याशित्व, दैन्य. असूया, हस्तगत वस्तु का तिरस्कार, दौरात्म, अविश्वास, भय-रहितता, शत्रु का अतिरस्कार, शीत-उष्ण वर्षा की असहनशीलता तथा कार्यारम्भ से पूर्व शुभ तिथि-नक्षत्र का देखना आदि कार्यों से लाभ में रुकावट हो सकती है। जो अज्ञानी पुरुष नक्षत्रादि के शुभाशुभ में अधिक जिज्ञासा करते हैं, उनकी कार्यसिद्धि उन्हें पीछे धकेल देती है। क्योंकि कार्य की सिद्धि में प्रयोजन ही श्रेष्ठ नक्षत्र है अर्थात् कार्यसिद्धि के विषय में नक्षत्र क्या करने में समर्थ हैं? जिनके पास धन रूपी साधन नहीं है, वे सैकड़ों उपाय करके भी इच्छित प्राप्त नहीं कर सकते। जैसे हाथी पकड़ने का साधन रूप हाथी हो तो ही अन्य हाथी पकड़े जा सकते हैं, वैसे ही धन के द्वारा धन प्राप्ति की कामना पूर्ण हो सकती है। अर्थात् धन से ही धन बढ़ सकता है ॥१-२॥

नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः ॥१
नाधनाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्नरा यत्नशतैरपि।
अर्थैरर्थाः प्रबध्यन्ते गजाः प्रतिगजैरिव ॥२

पञ्चमोऽध्यायः

बाह्याभ्यन्तरा आपत्तियाँ

सन्ध्यादीनामयथोद्देशावस्थापनमपनयः। तस्मादापदः सम्भवन्ति। बाह्योत्पत्तिरप्रतिजापा। अभ्यन्तरोत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा। बाह्योत्पत्तिर्बाह्यप्रतिजापा! अभ्यन्तरोत्पत्तिरभ्यन्तरप्रतिजापा। इत्यापदः। यत्र बाह्या अभ्यन्तरानुपजन्ति, अभ्यन्तरा वा बाह्यान्तत्रोभययोगे प्रतिजपतः सिद्धिर्विशेषवती। सुव्याजा हि प्रतिजपितारो भवन्ति, नोपजपितारः। तेषु प्रशान्तेषु नान्याञ्शक्नुयुरुपजपितुमुपजपितारः। कृच्छ्रोपजापा हि बाह्यानामभ्यन्तरास्तेषामितरे वा। महतश्च प्रयत्नस्य वा वधः, परेषामर्थानुबन्धश्चात्मनोऽन्य इति। अभ्यन्तरेषु प्रतिजपत्सु सामदाने प्रयुंजीत। स्थानमानकर्म सान्त्वम्। अनुग्रहपरिहारौ कर्मस्वायोगो वा दानम्।

अब बाह्याभ्यन्तर की विपत्तियों को कहते हैं। सन्धि-विग्रह आदि गुणों द्वारा स्वविषयों का अतिक्रमण करने पर स्थान में किये जाने वाला प्रयोग 'अपनय' है। इस अपनय अर्थात् नीतिभ्रंश से ही सब प्रकार की विपत्तियाँ प्राप्त होतीं हैं। राष्ट्रप्रमुख या सीमापाल आदि बाह्य यदि भेदनीति से काम लेकर आंतरिक अमात्यादि को अपनी ओर फोड़ लें और इससे संकट उपस्थित हो जाय तो यह प्रथम प्रकार की विपत्ति होगी। आंतरिक अमात्यादि के द्वारा बाह्य राष्ट्रमुख्य आदि को अपनी ओर मिला लेने से प्राप्त संकट को दूसरे प्रकार की विपत्ति कहते हैं। बाह्य बाह्य अधिकारी परस्पर में ही भेद डाल कर संकट उपस्थित करें वह तीसरे प्रकार की विपत्ति है। आन्तरिक-आन्तरिक की पारस्परिक फूट से उपस्थित संकट चौथे प्रकार का है। इन चार प्रकार की आपत्तियों में प्रथम और दूसरी में भड़काने और भड़कने वाले दोनों ही परस्पर में विजातीय तथा तीसरी-चौथी में सजातीय होते हैं। उक्त

प्रथम और द्वितीय प्रकार में दोनों भिन्न जातियों में यदि भड़कने वाले व्यक्तियों को साम-दानादि के द्वारा शान्त किया जाय तो कल्याणकारी होता है। क्योंकि भड़कने वाले धन आदि के प्रलोभन में शीघ्र आ जाते हैं, जबकि भड़काने वाले वश में नहीं आ पाते। किन्तु भड़कने वालों के एक बार शान्त हो जाने पर भड़काने वालों का उत्साह ठण्डा पड़ जाता है और वे पुनः वैसा कार्य नहीं करते। उन्हीं के समान अमात्यादि आन्तरिकों द्वारा बाह्यों पर किये जाने वाले भड़काने के कार्यों का चलना भी कठिन होता है। यदि भड़काने वालों के बहकावे में भड़कने वाले न आवें तो उनका भारी प्रयत्न भी व्यर्थ हो जाता है। उस अवस्था में भड़कने वालों की तो धन-मानादि से इच्छा पूर्ति हो जाती है, किन्तु भड़काने वालों पर भारी संकट आ सकता है। यदि आन्तरिक अधिकारी बाह्यों के द्वारा फूट गये हों तो उन्हें सामदानादि से वश में करे। इस नीति में राजा द्वारा उन्हें कोई पद या छत्र-चँवर आदि से सन्तुष्ट करना प्रमुख होगा। दान से धन देने और कर-मुक्ति अथवा विशिष्ट कार्यों पर नियुक्ति के द्वारा श्रेष्ठ फल रूप सुविधा-प्रदान ही समझे।

बाह्येषु प्रतिजपत्सु भेददण्डौ प्रयुंजीत। सत्रिणो मित्रव्यंजना वा बाह्यानां चारमेषां ब्रूयुः—'अयं वो राजा दूष्यव्यंजनैरतिसन्धातुकामो, बुध्यध्वम' इति। दूष्येषु वा दूष्यव्यंजनाः प्रणिहिता दूष्यान् बाह्यैर्भेदयेयुः बाह्यान् वा दूष्यैः। दूष्याननुप्रविष्टा वा तीक्ष्णाः शस्त्ररसाभ्यां हन्युः। आहूय वा बाह्यान्घातयेयुरिति। तत्र बाह्या बाह्यानुपजपन्ति, अभ्यन्तरानभ्यन्तरा वा तत्रैकान्तयोगमुपजपितुः सिद्धिर्विशेषवती। दोषशुद्धौ हि दूष्या न विद्यन्ते। दूष्यशुद्धौ हि दोषः पुनरन्यान्दूषयति।

बाह्य अधिकारियों द्वारा उपजाप अर्थात् भड़काने के कार्य किये जाने पर भेद या दण्ड नीति से उनका शमन करे। उन बाह्य व्यक्तियों से सत्रि नामक गुप्तचर मित्रता करके उनसे कहें कि यह राजा दुष्ट मन्त्रि आदि के द्वारा तुम्हारा वंचन करने के फेर में है, इसलिए उनके

चक्कर में मन आओ। इस प्रकार भीतरी अमात्यादि को बाहरी पुरुषों का विरोधी बना दें। यदि इसमे भी काम न बने तो विष या शस्त्र का प्रयोग करने वाले तीक्ष्ण गुप्तचर भीतरी दूष्यों को स्वयं मार दें अथवा अन्यों से मरवा डालें। यदि बाह्य अधिकारी बाह्य अधिकारियों को अथवा भीतरी अधिकारी भीतर अधिकारियों को भड़का रहे हों तो ऐसी अवस्था में उन्हें वश में करना सरल होता है। जब भड़काने वाले वश में हो जायगे तो भड़कने वाले भी न रहेंगे। किन्तु भड़कने वालों का दमन करने से कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि उससे भड़काने वाले बने रहेंगे और वे बार-बार अन्यान्य लोगों को भड़का-भड़का कर उपद्रव कराते रहेंगे।

तस्माद्बाह्येषूपजपत्सु भेददण्डौ प्रयुंजीत। सत्त्रिणो मित्रव्यंजना वा ब्रूयुः—'अयं वो राजा स्वयमादातुकामः, विगृहीताः स्थ अनेन राज्ञा, बुध्यध्वम्' इति। प्रतिजपितुर्वा ततो दतदण्डाननुप्रविष्टास्तीक्ष्णाः शस्त्ररसादिभिरेषां छिद्रेषु प्रहरेयुः। ततः सत्त्रिणः प्रतिजपितारमभिशंसेयुः। अभ्यन्तरानभ्यन्तरेषूपजपत्सु यथार्हमुपाय प्रयुंजीत। तुष्टलिङ्गमतुष्ट विपरीतं वा साम प्रयुञ्जीत। शौचसामर्थ्यापदेशेन व्यसनाभ्युदयावेक्षणेन वा प्रतिपूजनमिति दानम्। मित्रव्यजनो वा ब्रूयादेतान्—'चित्तज्ञानार्थमुपधास्यति वो राजा, तदस्याख्यातव्यम्' इति। परस्पराद्वा भेदयेदेनान्—'असौ चासौ च वो राजन्येवमुपजपति' इति भेदः। दाण्डकर्मिकवच्च दण्डः। एतासाँ चतसृणामापदामभ्यन्तरमेव पूर्वं साधयेत्। 'अहिभयादभ्यन्तरकोपो बाह्यकोपात्पापीयान्' इत्युक्तं पुरस्तात्।

पूर्वां पूर्वां विजानीयाल्लघ्वीमापदमापदाम्।
उत्थितां बलवद्भ्यो वा गुर्वीं लघ्वीं विपर्यये॥

इसलिए भड़काने वालों का ही शोधन करे। यदि वे बाह्य हों तो उन पर भेद और दण्ड का प्रयोग करे। सत्रि उनसे मित्रता स्थापित

करके कहे कि यह राजा तुममें फूट डाल कर वश में करना चाहता है। इसलिये संघर्ष में लगे रहो और कोई तुम में मिलना चाहे तो उस पर विश्वास न करो। अथवा जब वे कोई भड़काने वाले कार्य के लिए जाते हों तब तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर उनमें मिल कर अवसर मिलते ही विष या शस्त्र से उनका वध करके उसका दोष भड़कने वालों पर लगा दें। यदि भीतरी पुरुष बाहर वालों को विरुद्ध करें तो उन पर साम-दान आदि का प्रयोग करे। ऐसे अवसर पर भीतर से अप्रसन्न हुआ राजा ऊपर से प्रसन्नता ही प्रकट करे। अथवा पवित्र चरित्र एवं बल दिखाते हुए दुःख-सुख के अवसरों पर प्रकृति वर्ग का दान-मान से सत्कार करे। या मित्रता स्थापित किये हुए गुप्तचर उनसे कहें कि धनदानादि देकर राजा आपके मनोभावों को जानने की चेष्टा करेगा, इसलिए जो कुछ वह पूछे उस विषय में सही बात बताना। अथवा उन में फूट डालते हुए कहें कि अमुक व्यक्ति राजा से आपकी बहुत बुराई कर रहा था। अथवा दाण्डकर्मिक अधिकरणोक्त विधि से दण्ड या उपांशुवध का प्रयोग करे। उक्त चार प्रकार की विपत्तियों में से भीतरी विपत्ति का प्रतीकार पहिले करे। क्योंकि बाह्य कोप से भीतरी कोप अधिक भीषण होता है। उक्त चारों प्रकार की विपत्तियों में पूर्व को पर की अपेक्षा कम महत्त्वपूर्ण समझो। बलवान विरोधी द्वारा उत्पन्न की गई विपत्ति को पूर्व की अपेक्षा अधिक माने। किन्तु निर्बल द्वारा की गई विपत्ति परवर्ती भी हो तो अल्प महत्व की ही होगी।

षष्ठोऽध्यायः

दूष्य एवं शत्रुजन्य आपत्तियाँ

दूष्येभ्यः शत्रुभ्यश्च द्विविधाः शुद्धाः। दूष्यशुद्धायां पौरेषु जानपदेषु वा दण्डवर्जानुपायान् प्रयुंजीत। दण्डो महाजने क्षेप्तुमशक्यः, क्षिप्तो वा तं नार्थं न कुर्यात्। अन्यं चानर्थमुत्पादयेत्। मुख्येषु त्वेषां दाण्डकर्मिकवच्चेष्टेतेति। शत्रुः शुद्धायां यतः शत्रुः प्रधानः कार्यो वा, ततः सामादिभिः सिद्धिं लिप्सेत।

अब दुष्ट प्रजा एवं शत्रु द्वारा उत्पन्न की हुई विपत्तियों का प्रतीकार कहते हैं। यह विपत्ति के दो भेद होते है। उनमें से जो केवल दूष्य या शत्रु से जायमान हो वह शुद्धा कही जाती है और उसके भी दो भेद होते हैं—दूष्यशुद्धा और शत्रुशुद्धा। यदि दूष्यशुद्धा हो तो राजा विरोधी प्रजाजनों को दण्ड देने के अतिरिक्त साम-दान आदि नीतियों के अनुसार शान्त करे। क्योंकि महाजन अर्थात् बहुत संख्या वाले प्रजाजनों पर दण्डनीति अनुपयुक्त रहेगी। यदि उन पर दण्ड का प्रयोग किया गया तो दोष शान्ति रूपी लक्ष्य की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती, वरन् उससे अनेक अनर्थ उत्पन्न हो सकते हैं। जनपद आदि में भेदनीति वाले प्रमुख व्यक्तियों को दण्डकर्मिक प्रकरणोक्त उपांशु दण्ड दिया जा सकता है। यदि शत्रुशुद्धा अर्थात् शत्रु द्वारा उत्पन्न की गई विपत्ति हो तो शत्रु को जिस सामन्त के वश में देखे या उसके अमात्यादि प्रमुख व्यक्ति जिसके वश में हों, उन सामन्तादि के प्रति साम, दाम, दन्ड, भेद आदि का प्रयोग करके अपना प्रयोजन पूरा करे।

स्वामिन्यायत्ता प्रधानसिद्धिः, मन्त्रिष्वायत्तायत्तसिद्धिः। उभयायत्ता प्रधानायत्तसिद्धिः। दूष्यादूष्याणामामिश्रितत्वादामिश्रा। अमिश्रायामदूष्यतः सिद्धिः। आलम्बनाभावे ह्यालम्बिता न विद्यते। मित्रामित्राणामेकीभावात्परमिश्रा। परमिश्रायां मित्रतः सिद्धिः। सुकरो हि मित्रेण सन्धिर्नामित्रणेति। मित्रं चेन्न सन्धिमिच्छेदं भीक्ष्णमुपजपेत्। ततः सत्रिभिरमित्राद्भेदयित्वा मित्रं लभेत। मित्रामित्रसंघस्य वा योऽन्तस्थायो तं लभेत। अन्तस्थायिनि लब्धे मध्यस्थायिनो भिद्यन्ते। मध्यस्थायिनं वा लभेत।

प्रधान मन्त्री की सिद्धि स्वामी के अधीन है। आयत्त अथवा कार्यशब्द द्वारा कथित अमात्यादि की सिद्धि मन्त्रिगण के अधीन रहती है। इसलिए उन अमात्यादि को ही सामादि उपायों से वश में करे। प्रधान और आयत्त के द्वारा उत्पन्न की हुई विपत्ति का शमन राजा और मंत्री दोनों के अधीन होता है। इस समय दोनो को ही सामादि के द्वारा अनुकूल

बनावे। अब दूष्य और अदूष्य अर्थात् शत्रु द्वारा संयुक्त रूप से की गई 'आमिश्र' संज्ञक विपत्ति को कहेंगे। आमिश्र में सिद्धि की प्राप्ति अदूष्य के द्वारा ही हो सकती है, इसलिए उसी को अनुकूल करे। क्योंकि अदूष्य के भरोसे पर ही दूष्य विपत्ति उत्पन्न करता है। अदूष्य का सहारा समाप्त होते ही दूष्य भी निरुत्साहित हो जाता है। मित्र और अमित्र दोनों के सम्मिलित प्रयास से उत्पन्न की गई आपत्ति 'परमिश्र' अथवा 'शत्रुमिश्र' कही जाती है। ऐसे संकट का मित्र ही निवारण कर सकता है। क्योंकि मित्र से शीघ्र मेल हो सकता है, शत्रु से मेल होना उतना सरल नहीं होता। यदि मित्र भी शीघ्र ही वश में न आवे तो उसे शत्रु से पृथक करने के लिए उपजाप अर्थात् भेद डाले। फिर सत्रि गुप्तचर शत्रु से मिल कर मित्र के विरुद्ध भड़काने का कार्य करें। अथवा मित्र-अमित्र के मध्य कोई सामन्त हो तो उसे अपनी ओर फोड़ ले। जब मध्य का सामन्त आ मिलेगा तब अन्त का सामन्त भी फूट जायगा। इस प्रकार शत्रु राजाओं में फूट पड़ सकती है।

मध्यस्थायिनि वा लब्धे नान्तस्थायिनः संहन्यन्ते। यथा चैषामाश्रयभेदस्तानुपायान्प्रयुञ्जीत। धार्मिकं जातिकुलवृत्तस्तवेन सम्बन्धेन पूर्वेषां त्रैकाल्योपकारानपकाराभ्यां वा सान्त्वयेत्। निवृत्तोत्साहं विग्रहश्रान्तं प्रतिहतोपायं क्षयव्ययाभ्यां प्रवासेन चोपतप्तशौचेनान्यं लिप्समानमन्यस्माद्वा शंकमानं मैत्रीप्रधानं वा कल्याणबुद्धिं साम्नासाधयेत्। लुब्धं क्षीणं वा तपस्विमुख्यावस्थापनापूर्वं दानेन साधयेत्। तत्पञ्चविधम्-देयविसर्गो, गृहीतानुवर्तनम्, आत्तप्रतिदानम्, स्वद्रव्यदानमपूर्वम्, परस्वेषु स्वयं ग्राहदानं चेति दानकर्म।

अथवा राजाओं के संघ के मध्य स्थायी सामन्त को मिला ले तो अन्तस्थायी सामन्त उससे मिल कर कार्य न करने के कारण उससे पृथक् हो जायगा। अथवा वही कार्य करना चाहिये जिससे कि शत्रु और मित्र अपने किसी आश्रयदाता बलवान राजा से पृथक् हो जांय।

धार्मिक राजा हो तो उसके साथ इस प्रकार सामनीति का प्रयोग करे—जाति, कुल, श्रुत (विद्या) और व्यवहार आदि प्रसिद्धि के द्वारा या उसके पूर्वजों के उपकार अथवा कीर्ति-कथन द्वारा उसे शान्त करने का प्रयत्न करे। सामनीति द्वारा उन्हीं को शान्त किया जा सकता है जो उत्साहहीन, परिश्रान्त, व्यर्थ उपाय वाले, क्षय-व्यय एवं प्रवास के कष्टों से सन्तप्त, सत्यता से किसी को मित्र बनाने के इच्छुक शंकित या भयभीत, मित्रभाव से देखने वाले तथा कल्याणमयी बुद्धि वाले हों। किन्तु जो लोभी या निर्धन हो उस राजा को किसी श्रेष्ठ तपस्वी या प्रमुख व्यक्ति को साक्षी करके धन आदि देकर वश में कर ले। वह धनदान पाँच प्रकार का होना चाहिए। यथा—देय-विसर्ग अर्थात् ग्रहण की हुई भूमि में ब्राह्मणादि के लिए छोड़ा हुआ भूभाग। गृहीतानुवर्तन अर्थात् अपने पूर्वजों द्वारा गृहीत भूमि को भोगने की सुविधा प्रदान करना। आत्त प्रतिदान अर्थात् ली हुई पृथिवी का लौटा देना। अपूर्व अर्थात् नवीन वस्तु का देना और शत्रु देश से लूटे हुए धन का उन्हीं को दे देना, जिन्होंने उसे लूटा हो।

परस्परद्वेषवैरभूमिहरणशंकितमतोऽन्यतमेन भेदयेत्। भीरुं वा प्रतिघातेन, 'कृतसन्धिरेष त्वयि कर्म करिष्यति मित्रमस्य निसृष्टम्, सन्धौ वा नाभ्यन्तर' इति। यस्य वा स्वदेशादन्यदेशाद्वा पण्यानि पण्यागारतयागच्छेयुः, तान्यस्य 'यातव्याल्लब्धानि' इति सत्रिणश्चारयेयुः। बहुलीभूते शासनमभित्यक्तेन प्रेषयेत्—'एतत्ते पण्य पण्यागारं वा मया ते प्रेषित सामवायिकेषु विक्रमस्व अपगच्छ वा, ततः पणशेषमवाप्स्यसि' इति। ततः सत्रिणः परेषु ग्राहयेयुरेतदरिप्रदत्तमिति।

अब भेद की व्याख्या करते हैं। जो राजा पारस्परिक द्वेष, वैर एवं भूमि-हरण की आशंका से भयभीत हो, उसे किसी के द्वारा पृथक् कराने का प्रयत्न करे। जो भीरु अर्थात् डरपोक हो उसे शत्रु के आक्रमण का डर दिला कर अपनी ओर मिला ले। या यह कह कर फोड़े

कि यह अब तुमसे मेल कर लेगा और बाद में प्रहार करेगा। क्योंकि इसने मेरे साथ सन्धि करने के लिए अपना दूत भेजा था। अथवा यह कहे कि वह जो सन्धि कर रहा है, उसमें तुम्हें सम्मिलित नहीं किया है। इस प्रकार वह तुम्हें कुछ भी नहीं समझता। अथवा मित्र या शत्रु किसी के अपने देश या परदेश से जो पण्य वस्तुएं राजकीय पण्यागार में रखने के लिए मँगावे तो सत्रि सञ्ज्ञक गुप्तचर जन-सामान्य में यह प्रचारित करे कि गुप्तचरों के पारस्परिक समझौते द्वारा यातव्य से मँगवाई है। ऐसे प्रचार के पश्चात् किसी अभित्यक्त। (प्राणदण्ड में दण्डित) व्यक्ति के हाथ का बनावटी पत्र शत्रु के पास भेजना चाहिए। जिसमें लिखा हो कि पण्यागार के योग्य यह अल्प सामान आपके पास भेजता हूं। तुम्हारे साथ मेरी एकता बढ़ रही है। तुम मेरे शत्रु के सहायकों पर प्रहार कर दो अथवा मेरी सहायता के लिए उनसे पृथक् हो जाओ। तत्पश्चात् निश्चित किया हुआ धन मैं तुम्हें दे दूंगा। फिर सत्रि संज्ञक गुप्तचर अन्य सामवायिक राजाओं के पास जाकर विश्वास दिलाते हुए कहें कि यह पत्र तुम्हारे शत्रु ने दिया है।

शत्रुप्रख्यातं वा पण्यमविज्ञातं विजीगीषुं गच्छेत्। तदस्य वैदेहकव्यञ्जनाः शत्रुमुख्येषु विक्रीणीरन्। ततः सत्रिणः परेषु ग्राहयेयुः—'एतत्पण्यमरिप्रदत्तम्' इति। महापराधानर्थमानाभ्यामुपगृह्य वा शस्त्ररसाग्निभिरमित्रे प्रणिदध्यात्। अथैकममात्यं निष्पातयेत्। तस्य पुत्रदारानुपगृह्य रात्रौ हतमिति ख्यापयेत्। अथामात्यं शत्रोस्तानेकैकशः प्ररूपयेत्। ते चेद्यथोक्तं कुर्युर्न चैनान्ग्राहयेत्। अशक्तिमतो वा ग्राहयेत्। आप्तभावोपगतो मुख्यादस्यात्मानं रक्षणीयं कथयेत्। अथामित्रशासनं मुख्यायोपघाताय प्रेषितमुभयवेतनो ग्राहयेत्।

शत्रु अर्थात् सामवायिकों में से किसी एक के पास से कोई रत्नादि पण्य वस्तु, छिपे रूप में विजिगीषु के पास पहुँचा दे। तब विजिगीषु का व्यापारी वेशधारी गुप्तचर उस पण्य वस्तु सामवायिक शत्रु में

से किसी को बेच दे। फिर सत्रि संज्ञक गुप्तचर अन्य सामवायिकों के पास जाकर यह विश्वास दिलावें कि वह पण्य वस्तु उस राजा के पास विक्रयार्थ शत्रु ने भेजी है। इससे उन्हें यह विश्वास हो जायगा वस्तु लेने वाला व्यक्ति विजिगीषु से मिला हुआ है और तब उनमें परस्पर फूट पड़ जायगी। अथवा विजिगीषु अत्यन्त दोषी अमात्यादि को धन-दान द्वारा वश में करे। फिर शस्त्र, विष आदि के द्वारा उन्हें शत्रु की हत्या करने के कार्य पर नियुक्त कर दे। इस उद्देश्य से अपने किसी अमात्य को निष्कासित करने के बहाने शत्रु देश मे जाने की सुविधा दे। और फिर उस अमात्य स्त्री, पुत्र आदि को किसी एकान्त एवं सुरक्षित स्थान पर ले जाकर छिपाने के पश्चात् प्रचारित करावें कि निष्कासित अमात्य के स्त्री, पुत्र आदि का राजाज्ञा से वध कर दिया गया। ऐसा होने से शत्रु राजा उस अमात्य पर विश्वास कर लेगा। फिर अन्यान्य अमात्य भी इसी प्रकार निष्कासित किये जाँय और वह पूर्व निष्कासित अमात्य उन्हें भी शत्रु राजा के समीप ले जाकर कहे कि विजिगीषु के व्यवहार से क्षुब्ध होकर यह भी उसे छोड़ आये हैं। इस प्रकार विजिगीषु की इच्छा के अनुसार वे निष्कासित अमात्य शत्रु-नाश का कार्य करें तो विजिगीषु द्वारा नियुक्त उभय वेतन गुप्तचर उन्हें शत्रु द्वारा न पकड़वायें और यदि यह विजिगीषु की इच्छानुसार कार्य न करें तो पकड़वा दिए जांय। उन निष्कासित अमात्यों में से जिस पर शत्रु निवास करने लगे, वह अमात्य उचित अवसर देख कर शत्रु के मन में भेद उत्पन्न करने के उद्देश्य से कहे कि आप इन सामवायिक राजाओं से सावधान रहते हुए आत्मरक्षा करें। क्योंकि यह विश्वास के योग्य नहीं है। फिर उभय-वेतन गुप्तचर अमुख्य सामवायिक को नष्ट करने विषयक कूट अर्थात् बनावटी पत्र को मुख्य सामवायिक के पास पहुँचा दें।

उत्साहशक्तिमतो वा प्रेषयेत्—'अमुष्य राज्यं गृहाण यथा-स्थितो न सन्धिः' इति। ततः सत्रिणः परेषु ग्राहययुः। एकस्य

स्कन्धावारं वीवधमसारं वा घातयेयुः, इतरेषु मैत्रीं ब्रुवाणाः तं सत्रिणः 'त्वमेतेषां घातयितव्यः' इत्युपजपेयुः। यस्य वा प्रवीर-पुरुषो हस्ती हयो वा म्रियेत, गूढपुरुषैर्हन्येत, ह्रियेत वा, तं सत्रिणः परस्परोपहतं ब्रूयुः। ततः शासनमशभिस्तस्य प्रेषयेत्—'भूयः कुरु, ततः पणशेषमवाप्स्यसि' इति। तदुभयवेतना ग्राह-येयुः। भिन्नेष्वन्यतमं लभेत। तेन सेनापतिकुमारदण्डचारिणो व्याख्याताः। सांधिकं च भेद प्रयुंजीत। इति भेदकर्म।

अथवा उत्साह एवं सामर्थ्य सम्पन्न किसी सामवायिक के पास ही उस कूट पत्र को भेजे, जिसमें लिखा हो कि अमुक सामवायिक का राज्य ले लिया जाय। अब पूर्व संधि स्वीकार नहीं है। फिर वे सत्रिगण सामवायिकों को यह सूचित करें कि अमुक को ऐसा कोई पत्र प्राप्त हुआ है अथवा सत्रिगण किसी सामवायिक की छावनी, उसके देश से आने वाला धन-धान्य एवं उसके मित्रबल को नष्ट करने में प्रयत्नशील हों। साथ ही अन्य सामवायिकों में अपनी मित्रता का भाव ही दिखाते रहें। फिर एक सामवायिक का अन्यों से भेद डलवाते हुए कहें कि सामवायिक राजागण तुम्हारे वध के लिए कटिबद्ध हैं तो इनके साथ तुम्हारा मेल कैसे निभेगा ? अथवा जिस किसी सामवायिक राजा का कोई वीर पुरुष, हाथी या अश्व किसी गूढ पुरुष मारा या हरण कर लिया जाय तो उस कार्य को उन्हीं में से किसी अन्य सामवायिक द्वारा किया हुआ बतावे। फिर जिसके द्वारा मारा गया कहा हो, उसके नाम एक कूट पत्र इस आशय के भेजे कि इसी प्रकार अपना कार्य करते रहो, कार्य पूरा होने पर तुम्हें शेष धन दे दिया जायगा। उस कूट पत्र को उभयवेतनिकों द्वारा सामवायिक राजा के पास खुले रूप में पहुंचवा कर उनमें परस्पर भेद डलवाने का प्रयत्न करे। जब उनमें फूट पड़ जाय तब उनमें से एक को अपने वश में कर ले। भेद डालने विषयक यही उपाय सेनापति, राजकुमार तथा अन्य सैनिक अधिकारियों आदि के

विषय में भी समझे। अथवा संघवृत्त अधिकरणोक्त भेद डालने वाले उपायों को करे। यह भेद-विषयक कार्यों की व्याख्या हुई।

तीक्ष्णमुत्साहिनं व्यसनिनं स्थितिशत्रुं वा गूढपुरुषाः शस्त्राग्निरसादिभिः साधयेयुः। सौकर्यतो वा तेषामन्यतमः। तीक्ष्णो ह्येकः शस्त्ररसाग्निभिः साधयेत्। अयं सर्वसन्दोहकर्म विशिष्टं वा करोति। इत्युपायचतुर्वर्गः। पूर्वः पूर्वश्चास्य लघिष्ठ। सान्त्वमेकगुणम्। दानं द्विगुण सान्त्वपूर्वम्। भेदस्त्रिगुणः सान्त्वदानपूर्वः। सान्त्वदण्डश्चतुर्गुणः सान्त्वदानभेदपूर्वः। इत्यभियुंजानेषूक्तम्। स्वभूमिष्ठेषु। तु त एवोपायाः। विशेषस्तु स्वभूमिष्टानामन्यतमस्य पण्यागारैरभिज्ञातान्दूतमुख्यानभीक्ष्णं प्रेषयेत्, त एनं सन्धौ परहिंसायां वा योजयेयुः अप्रतिपद्यमानं कृतो नः सन्धिः इत्यावेदयेयुः। तमितरमेषामुभयवेतनाः संक्रामयेयुः—'अयं वो राजा दुष्ट' इति।

अब दण्डप्रयोग के उपाय कहेंगे। तीक्ष्ण (क्रोधी या असहनशील) उत्साही, व्यसनी, तथा स्थित शत्रु (दुर्ग आदि में स्थित) को सब गुप्तचर मिल कर शस्त्र, अग्नि या विष के प्रयोग द्वारा नष्ट कर दें। अथवा अनमें से किसी एक पुरुष को लक्ष्य बना कर ही सुविधानुसार मार दें। तीक्ष्ण गुप्तचर तो अकेला ही विषादि के द्वारा शत्रु का वध करने में समर्थ होता है। अनेक गुप्तचरों द्वारा मिल कर जो कार्य किया जा सके उसे अवसर मिलने पर एक गुप्तचर भी कर सकता है। यह सामादि उपायों का वर्णन हुआ। इन उपायों में पर की उपेक्षा पूर्व निम्न श्रेणी के समझे जाते हैं। क्योंकि साम एकांगी होने से एक ही विशिष्ट गुण से युक्त होता है। दान साम के साथ रहने के कारण दो गुण वाला तथा भेद साम और दाम के सहारे से तीन गुण वाला माना गया है। किन्तु दण्ड में साम, दान, दण्ड तीनों अंगों का समावेश होने से चार गुण वाला हो कर सर्वश्रेष्ठ बन जाता है। उक्त उपाय आक्रमण योग्य शत्रु पर अभियान करते समय सामवायिक राजाओं के विषय में कहे गये

हैं। यदि वे राजागण अपनी-अपनी भूमि में ही रहें अर्थात् सीमा से बाहर न निकलें तो यह उपाय समान रूप से आवश्यकतानुसार प्रयुक्त हो सकते हैं। फिर इनकी विशेषता को इसप्रकार समझना चाहिए कि विजिगीषु अपनी ही भूमि में रहने वाले मित्र या अमित्र को देने के लिए उसी के द्वारा रत्नादि वस्तुएँ बार-बार प्रेषित करे जिसे वह भले प्रकार जानता हो। यह व्यक्ति उस राजा को विजिगीषु से सन्धि और शत्रु से युद्ध करने के लिए तैयार करे। यदि वह स्वीकार कर ले तो विजिगीषु के साथ हुई उसकी संधि को प्रचारित करावे। फिर उभयवैतनिक गुप्तचर अन्य सामवायिकों को उस सन्धि की बात बताते हुए कहें कि यह राजा तो बड़ा दुष्ट निकला, जो इसने आप लोगों से परामर्श किये बिना ही विजिगीषु से सन्धि कर ली।

यस्य वा यस्माद्भयं वैरं द्वेषो वा, तस्माद्भेदयेयुः—'अयं ते शत्रुण सन्धत्ते, पुरा त्वामतिसन्धत्ते, क्षिप्रतरं सन्धीयस्व, निग्रहे चास्य प्रयतस्व' इति। आवाहविवाहाभ्यां वा कृत्वा सयोगमसयुक्तान्भेदयेत्। सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धैश्च राज्यं निघातयेत्। सार्थव्रजाटवीर्वा। दण्डं वाभिसृतम्। परस्परापाश्रयाश्चैषां जातिसघाश्छिद्रेषु प्रहरेयुः। गूढाश्चाग्निरसशस्त्रेण।

वितंसगिलवच्चारीन् योगैराचरितैः शठः।
घातयेत्परमिश्रायां विश्वासेनामिषेण च॥

अथवा वे गुप्तचर जिसे जिससे भय, वैर या द्वेष हो उस राजा को उससे फोड़कर पृथक् करते हुए कहें—देखिये वह आपके शत्रु के साथ मेल करके आप को धोखा देगा। इसलिए आप शीघ्र ही उस शत्रु से सन्धि करके उस दुष्ट का दमन कर डालिये। अथवा विजिगीषु किसी सामवायिक की कन्या लेकर या उसे अपनी कन्या देकर सम्बन्ध स्थापन कर ले और उसे अन्य सामवायिकों से पृथक् कर दे। अथवा सामन्तों, आटविकों या मित्र अथवा अमित्र कुल के किसी बन्दी राजकुमार आदि को प्रोत्साहित करके उसके राज्य में व्यसन उत्पन्न करा दे। अथवा उस

मित्र-अमित्र का सार्थ अर्थात व्यापारिक वस्तुओं के भारवाहक पशुओं का समूह, गौ आदि के गोष्ठ, द्रव्यादिवन या रक्षक रूप में नियुक्त सेना आदि को नष्ट करावे। अथवा परस्पर पृथक् हुई जातियों में मित्र-अमित्र रूपी छिद्रों का अन्वेषण कर जहाँ दुर्बलता हो, वहीं प्रहार कर दे तथा तीक्ष्णादि गुप्तचर भी विष, अग्नि एव शस्त्र आदि के प्रयोग से विध्वंस कार्य में लग जांय। परिश्रम अर्थात् मित्र-शत्रु दोनों के मिलने से उत्साहित विपत्ति में शठ विजिगीषु, वितंस अर्थात् पक्षियों के विश्वासार्थ पक्षियों के रूप वाले शरीर ढंकने वाले वस्त्र तथा गिल अर्थात् भक्ष्य माँस के समान कपट-योग की रचना से विश्वास उत्पन्न करता हुआ अथवा सार-पण्य आदि वस्तुओं के दान द्वारा शत्रु को वश में करना चाहिए।

सप्तमोऽध्यायः

अर्थ, अनर्थ, संशययुक्त आपत्तियां एवं उनके प्रतीकार

कामादिरुत्सेकः स्वाः प्रकृतीः कोपयति, अनपयो बाह्याः। तदुभयमासुरी वृत्तिः। स्वजनविकारः कोपः परवृद्धिहेतुष्वापदर्थोऽनर्थः सशय इति। योऽर्थः शत्रुवृद्धिमप्राप्तः करोति, प्राप्तः प्रत्यादेयः परेषां भवति, प्राप्यमाणो वा क्षयव्ययोदयो भवति, स भवत्यापदर्थः। यथा—सामन्तानामामिषीभूतः, सामन्तव्यसनजो लाभः। शत्रुप्रार्थितो वा स्वभावाधिगम्यो लाभः, पश्चात्कोपेन पार्ष्णिग्राहेण वा विगृहीतः पुरस्ताल्लाभः, मित्रोच्छेदेन सन्धिव्यतिक्रमेण वा मण्डलविरुद्धो लाभ इत्यापदर्थः। स्वतः परतो वा भयोत्पत्तिरित्यनर्थः।

अब अर्थ-अनर्थ रूपी संशय संज्ञक विपत्तियों और उनके प्रतीकार को कहेंगे। राजा में काम-क्रोधादि छः दोषों की अधिकता से प्रकृतिवर्ग में क्रोध उत्पन्न होता है। संधि आदि का अनुचित प्रयोग बाह्यप्रकृति

को कुपित कर देता है। कामादि शत्रु और संधि आदि का अपनयन 'आसुरी वृत्ति' माना गया है। इस कोप से अपनों में विकार और शत्रु में बल की वृद्धि होती है। इसलिए इसे भी विपत्ति ही समझे। इसके भी अर्थरूपा, अनर्थरूपा और संशयरूपा—यह तीन भेद हैं। भूमि आदि जो धन शत्रु की समृद्धि का साधन बनता हो,वह प्रथम प्रकार का आपदर्थ ही है। अथवा जो अर्थ हाथ में आकर पुनः शत्रु के पास लौटना संभावित हो वह दूसरे प्रकार का और जिस अर्थ की प्राप्ति में अधिक क्षय-व्यय हो वह तीसरे प्रकार का आपदर्थ होता है। किसी सामन्त के संकट में उससे बलात् अपहृत धन, अपने श्रम से अर्जित पर शत्रु का दाँत हो वह धन तथा आक्रमणीय से प्राप्त धन, जो कि विरोधियों या पार्ष्णिग्राह के रोकने से रुक जाय ऐसा धन आपदर्थ ही कहा गया है। अथवा मित्र के घात या उससे संधि तोड़ने पर प्राप्त धन, जिससे राष्ट्र-मण्डल विरोधी होजाय अथवा अपने या पराये से जिसमें भय निहित हो वह धन भी आपदर्थ ही है। यह आपदर्थ लाभ के भेद कहे गये।

तयोः 'अर्थो न वा' इति, 'अनर्थो न वा' इति, 'अनर्थोऽनर्थः' इति, 'अनर्थः अर्थः इति संशयः। शत्रुमित्रमुत्साहयितुमर्थो न वेति संशयः। शत्रुबलमर्थमानाभ्यामावर्हयितुमनर्थो न वेति संशयः। बलवत्सामन्तां भूमिमादातुमर्थोऽनर्थ इति संशयः। ज्यायसा सम्भूय यानयनर्थोऽर्थ इति संशयः। तेषामर्थसंशयमुपगच्छेत्।

यदि उक्त अर्थ या अनर्थ के विषय में शंका होजाय तो वह अनर्थ-रूपा विपत्ति कही जायगी। इस शंका के भी चार भेद हैं—क्या यह अर्थ है? क्या यह अनर्थ है? यह अर्थ है अथवा अनर्थ? या यह अनर्थ है अथवा अर्थ? क्या यह अर्थ है? ऐसी प्रथम शंका तब होती है, जब शत्रु के मित्र को शत्रु के साथ लड़ाने को उत्साहित करने लगें। ऐसी दूसरी शंका तब उपस्थित होगी, जबकि शत्रु की सेना को धन या मान प्रदान किया जाय। तीसरी शंका तब उत्पन्न होती है जबकि अधिक

बलवान सामन्त की भूमि पर अधिकार करने जाय और चौथे प्रकार की शंका तब होगी जब किसी अधिक बलवान राजा को साथ लेकर शत्रु पर आक्रमण किया जाए। इन चार प्रकार की शंकाओं में अर्थ-विषयक अर्थात् अनर्थ से सर्वथा हीन शंका में विजिगीषु को उद्योग करना चाहिए।

अर्थोऽर्थानुबन्धः, अर्थो निरनुबन्धः, अर्थोऽनर्थानुबन्धइत्यनुबन्धः, अनर्थोऽर्थानुबन्ध, अनर्थो निरनुबन्धः, अनर्थोऽनर्थानुबन्ध इत्यनुबन्ध षड्वर्गः। शत्रुमुत्पाटच पार्ष्णिग्राहादानमर्थोऽर्थानुबन्धः। उदासीनस्य दण्डानुग्रहः फलेन अर्थो निरनुबन्धः।परस्यान्तरुच्छेदनमर्थोऽनर्थानुबन्धः। शत्रुप्रतिवेशस्यानुग्रहः कोशदण्डाभ्यामनर्थोऽर्थानुबन्धः। हीनशक्तिमुत्साह्य निवृत्तिरनर्थो निरनुबन्धः। ज्यायांसमुत्थाप्य निवृत्तिरनर्थोऽनर्थानुबन्धः। तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसम्प्राप्तुम्। इति कार्यावस्थापनम्।

प्रत्येक अर्थ और अनर्थ से अनुबन्ध के योग अथवा अभाव के छः भेद अर्थात् अनुबन्ध षड्वर्ग होते हैं। अर्थानुबन्ध अर्थ, निरनुबंध अर्थ अर्थात् अर्थ- अनर्थ के अनुबन्ध से रहित, अनर्थानुबन्ध अर्थ—यह तीन प्रकार के अर्थ हुए तथा अर्थानुबन्ध अनर्थ, निरनुबन्ध अनर्थ एवं अनर्थानुबन्ध अनर्थ—यह तीन प्रकार के अनर्थ हुए। यही अनुबन्ध षड्वर्ग है। शत्रु का विध्वंस कर पार्ष्णिग्राह को वश में कर लेना अर्थानुबन्ध अर्थ, किसी उदासीन राजा से धनादि प्राप्त करके उसी धन से उसकी सेना पर कृपा करना निरनुबन्ध अर्थ और शत्रु तथा विजिगीषु के मध्यस्थ राजा के उच्छेद का साधन अनर्थानुबन्ध अर्थ कहा गया है। धन-जन द्वारा पड़ोसी राजा को सहायता देना अर्थानुबन्ध अनर्थ, हीनबल को अपने शत्रु पर अभियान के लिए प्रोत्साहित करने के पश्चात् विजिगीषु का स्वयं अग्रसर होना निरनुबन्ध अनर्थ तथा अपने से प्रबल को सहायता देकर बढ़ा देने के बाद स्वयं ही बढ़ जाना अनर्थानुबन्ध अनर्थ कहलाता है। इन छः अनुबन्धों में पर

की अपेक्षा पूर्व-पूर्व अधिक कल्याणकारी है। यह अर्थ और अनर्थ रूप कार्य की व्यवस्था बताई गई।

समन्ततो युगपदर्थोत्पत्तिः समन्ततोऽर्थापद्भवति। सैव पार्ष्णिग्राहविगृहीता समन्ततोऽर्थसंशयापद्भवति। तयोर्मित्राक्रन्दोपग्रहात्सिद्धिः। समन्ततः शत्रुभ्यो भयोत्पत्तिः समन्ततोऽनर्थापद्भवति। सैव मित्रविगृहीता समन्ततोऽनर्थसंशयापद्भवति। तयोश्चलामित्राक्रन्दोपग्रहात्सिद्धिः। परमिश्राप्रतीकारो वा। इतो लाभ इतरतो लाभ इत्युभयतोऽर्थापद्भवति। तस्या समन्तोऽर्थायां च लाभगुणयुक्तमर्थमादातुं यायात्। तुल्ये लाभगुणे प्रधानमासन्नमनतिपातिनम्, ऊनो वा येन भवेतामादातुं यायात्।

यदि सभी दिशाओं से एक साथ अर्थ की उत्पत्ति होने लगे तो वह सामन्ततोऽर्थापद कही जायगी। इसमें यदि पार्ष्णिग्राह विरोध उपस्थित करे तो उसे सामन्ततोऽर्थसंशयापद् कहलायगा। उक्त दोनों प्रकार की विपत्तियों में विजिगीषु के आगे के मित्र और पीछे वर्ती आक्रन्द संज्ञक राजा की सहायता से कार्य-सिद्धि अथवा कार्य का प्रतीकार हो सकता है। सब ओर से शत्रुभय उत्पन्न होने पर समन्ततोऽनर्थापद् कहा जायगा। यदि इस पर कोई मित्र विरोध करे तो उसे कहेंगे समन्ततोऽनर्थसंशयापद्। उक्त दोनों प्रकार आपत्तियां में चल अर्थात् बिना दुर्ग का शत्रु और आक्रन्द की सहायता कार्य सिद्धि करने वाली तथा आपत्ति का प्रतीकार करने वाली सिद्ध होगी। अथवा परमिश्र विपत्ति के प्रतीकार के निमित्त जो उपाय कहे गये हैं, उन्हें करे। दोनों ओर से लाभ प्रतीत हो तो वह उभयतोऽर्थापद कहा जायगा। उभयतोऽर्थापद और समन्ततोऽर्थापद में जिस सर्व गुण और लाभ के विषय में कहा गया है, उसके द्वारा उपयुक्त अर्थसिद्धि संभावित हो तो विजिगीषु को आक्रमण कर देना चाहिए। इस प्रकार उभयतोऽर्थापद् में लाभ और गुण के समान दिखाई देने पर जिस लाभ को प्रमुख, नकटस्थ वर्तमान या अविलम्ब प्राप्ति होती दिखाई देती हो, अथवा जिसके प्राप्त न होने से

अपनी हीनता प्रकट होती हो तो उसकी प्राप्ति के लिए आक्रमण कर सकता है।

इतोऽनर्थ इतरतोऽनर्थ इत्युभयतोऽनर्थापत्। तस्यां समन्ततोऽनर्थायां च मित्रेभ्यः सिद्धि लिप्सेत। मित्राभावे प्रकृतानां लघीयस्यैकतोऽनर्थान् साधयेत्। उपभयतोऽनर्थान् जयायस्या। समन्तोऽनर्थान् मूलेन प्रतिकुर्यात्। अशक्ये सर्वमुत्सृज्यापगच्छेत्। दृष्टा हि जीवता पुनरापत्तिः, यथा सुयात्रोदयनाभ्याम्। इतो लाभ इतरतो राज्यभिमर्श इत्युभयोऽथानर्थापद्भवति। तस्यामनर्थसाधको योऽर्थस्तमादातुं यायात्, अन्यथा हि राज्याभिमर्शं वारयेत्। एतया समन्ततोऽर्थानर्थापद्व्याख्याता।

यदि इधर-उधर दोनों ही ओर से अनर्थ उपस्थित हो जाय तो वह उभयतोऽनर्थापद् कहेंगे। उस उभयतो और समन्ततो-अनर्थापद में विजिगीषु को सिद्धि और प्रतीकार दोनों ही मित्रों द्वारा करानी चाहिए। उभयतो-अनर्थ में प्रकृति के त्याग द्वारा और समन्ततो-अनर्थ में मूल स्थान के त्याग द्वारा विपत्ति का प्रतीकार किया जा सकता है। यदि उक्त किसी प्रकार से भी विपत्ति का प्रतीकार होता हुआ दिखाई न दे तो विजिगीषु को सर्वस्व त्याग कर अन्यत्र-पलायन ही श्रेयस्कर है। क्योंकि प्राचीन इतिहास से यह सिद्ध है कि सर्वस्व छोड़ कर गये हुए जो राजा जीवित बच गये वे अपना राज्य पुनः प्राप्त कर चुके। जिस प्रकार कि राजा नल और वत्सराज उदयन को अपने-अपने राज्य की पुनः प्राप्ति हो गई। एक ओर से लाभ की प्राप्ति और दूसरी ओर से शत्रु के आक्रमण की संभावना होने पर उभयतो-अनर्थापद कहा जायगा। ऐसी आपत्ति आ पड़े और अर्थ से अनर्थ रुक सके तो अर्थ प्राप्ति के लिए आक्रमण कर दे। यदि वैसा संभव न हो तो ऐसा ही उपाय करने में कटिबद्ध हो जाय, जिससे कि अपने राज्यपर संभावित-आक्रमण रुक सके। इसी प्रकार समन्ततोऽर्थानर्थापद की भी व्याख्या हो गई समझें।

इतोऽनर्थं इतरतोऽर्थसंशय इत्युभयतोऽनर्थार्थसंशयापत् । तस्यां पूर्वमनर्थं साधयेत्, तत्सिद्धावर्थसंशयम् । एतया समन्ततोऽनर्थार्थसंशया व्याख्याता। इतोऽर्थं इतरतोऽनर्थसंशय इत्युभयतोऽनर्थार्थसंशयापत् । एतया समन्ततोऽर्थानर्थसंशया व्याख्याता । तस्यां पूर्वां पूर्वां प्रकृतीनामनर्थसंशयान्मोक्षयितुं यतेत । श्रेयो हि मित्रमनर्थसंशये तिष्ठन्न दण्डः, दण्डो वा न कोश इति । समग्रमोक्षणाभावे प्रकृतीनामवयवान्मोक्षयितुं यतेत । तत्रं पुरुषप्रकृतीनां च बहुलमनुरक्तं वा तीक्ष्णलुब्धवर्जम् । द्रव्यप्रकृतीनां सारं महोपकारं वा सन्धिनाऽऽसनेन द्वैधीभावेन वा लघूनि विपर्ययैर्गुरूणि ।

एक ओर से निश्चित अनर्थ और दूसरी ओर से अर्थ में संशय की सम्भावना हो तो यह उभयतोऽनर्थार्थसंशयापत् कहा जायगा । ऐसी दशा में प्रथम-अनर्थ का ही प्रतीकार आवश्यक है । जब उसमें सफलता मिल जाय तब अर्थ-संशय को दूर करे । इसी प्रकार के उपाय समन्ततोऽनर्थानर्थसंशयापद् की व्याख्या हो गई समझे । एक ओर अर्थ निश्चित हो किन्तु दूसरी ओर अनर्थ का संशय हो तो इसे उभयतोऽर्थानर्थसंशयापद् कहते हैं । इसी के समान समन्ततोऽर्थानर्थसंशयापद् के विषय में भी समझे । इन विपत्तियों को दूर करने के लिए प्रथम अनर्थ के संशय को दूर करके अर्थ के लिए प्रयत्न करे । अनर्थ का संशय स्वामी आदि प्रकृतियों की ओर से ही हो सकता है । अथवा स्वामी अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र रूप प्रकृतियों पर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व को अनर्थ संशय से मुक्त करावे । यदि मित्र की ओर से अनर्थ-संशय हो तो वह अनर्थ सेना की ओर से उत्पादित अनर्थ की अपेक्षा अधिक कष्टकारी नहीं होता । इसलिए पहिले सेना के अनर्थ-संशय को ही दूर करे । तथा कोश के अनर्थ से सेना का अनर्थ अधिक कष्टकर नहीं होता । सर्व प्रथम अनर्थ-संशय का ही प्रतीकार करे । पुरुषप्रकृति और द्रव्यप्रकृति के रूप में दो प्रकार की प्रकृतियाँ हैं । यदि सब प्रकृतियों के अनर्थ-संशय का एक साथ प्रतीकार न हो

सके तो प्रकृतियों के कुछ अवयवों को ही उससे बचाया जाय। अथवा जिस-जिस अंग को छुड़ाया जा सके उस-उस को ही संकट से छुड़ावे। किन्तु जो अंग तीक्ष्ण और लोभी हो, उसे छोड़ कर पहले अन्य अंगों का संशय दूर करे। अथवा जो अंग अधिक महत्त्वयुक्त एवं उपकारी हो उसका अनर्थ-संशय मिटावे। सन्धि, आसन और द्वैधीभाव के द्वारा लघुद्रव्य प्रकृति को तथा विग्रह, यान और संश्रय के द्वारा गुरुद्रव्य प्रकृति को अनर्थ संशय से मुक्त करे।

क्षयस्थानवृद्धीनां चोत्तरोत्तरं लिप्सेत । प्रातिलोम्येन वा क्षयादीनाम्। आयत्यां विशेषं पश्येत्। इति देशावस्थापनम्। एतेन यात्रादिमध्यान्तेष्वर्थानर्थसंशयानामुपसंप्राप्तिर्व्याख्याता । निरन्तरयोगित्वाच्चार्थानर्थसंशयानां यात्रादावर्थः श्रेयानुपसंप्राप्तुं पार्ष्णिग्राहासारप्रतिघाते क्षयव्ययप्रवासप्रत्यादेयमूलरक्षणेषु च भवति। तथाऽनर्थः संशयो वा स्वभूमिष्ठस्य विषह्यो भवति। एतेन यात्रामध्येऽर्थानर्थसंशयानामुपसम्प्राप्तिर्व्याख्याता।

क्षय अर्थात् शक्ति और सिद्धि की क्षीणता, स्थान अर्थात् शक्ति और सिद्धि की समान अवस्था तथा वृद्धि अर्थात् शक्ति सिद्धि की समृद्धि—इन तीनों में से पर-पर की प्राप्ति का प्रयत्न करे। अथवा भविष्य में पूर्व के क्रम से ही वृद्धि की संभावना हो तो पूर्व-पूर्व से पर-पर की ओर बढ़े। किन्तु यह प्रतिलोम गति अर्थात् वृद्धि से स्थान और स्थान से क्षय की इच्छा तभी करे, जबकि वैसा करने से भविष्य में समृद्धि का अधिक होना दिखाई देता हो। यह देश-विषयक आपत्तियाँ कही गईं। इसी से आक्रमण के आदि, मध्य और अन्त में संभावित अर्थ, अनर्थ और संशय की प्राप्ति और प्रतीकार की भी व्याख्या होगई समझे। यदि यात्रारम्भ में ही अर्थ अनर्थ संशय तीनों का प्रादुर्भाव होजाय तो उस समय अर्थ को ही स्वीकार करे। क्योंकि अर्थ से ही पार्ष्णिग्राह और आसार का प्रतिघात हो सकता है और उसी से क्षय, व्यय, प्रवास, प्रत्यादेय एवं मूल अर्थात् राजधानी की रक्षा संभव है। यदि विजिगीषु अपनी ही

भूमि में स्थित रहे तो उसे अर्थ के समान अनर्थ भी कष्टकारी नहीं है। इस प्रकार अर्थ, अनर्थ और संशय की प्राप्ति और प्रतीकार की भी व्याख्या हो गई।

यात्रान्ते तु कर्शनीयमुपच्छेदनीयं वा कर्शयित्वोच्छिद्य वार्थः श्रेयानुपसम्प्राप्तुं नानर्थः संशयो वा पराबाधभयात्। सामवायिकानामपुरोगस्य तु यात्रामध्यान्तगोऽनर्थः संशयो वा श्रेयानुपसंप्राप्तुमनिबन्धगामित्वात्। अर्थो धर्मः काम इत्यर्थत्रिवर्गः। तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयानुपसम्प्राप्तुम्। अनर्थोऽधर्मः शोक इत्यनर्थत्रिवर्गः। तस्य पूर्वः पूर्वः श्रेयान् प्रतिकर्तुम्। अर्थोऽनर्थ इति, धर्मोऽधर्म इति, कामः शोक इति संशयत्रिवर्गः। तस्योत्तरपक्षसिद्धौ पूर्वपक्षः श्रेयानुपसंप्राप्तुम्। इति कालावस्थापनम्। इत्यापदः।

यात्रा के अन्त में कर्शनीय अर्थात् निर्बल करने योग्य तथा उच्छेदनीय अर्थात् उच्छिन्न करने के योग्य शत्रु को बलहीन बनाकर अथवा उच्छिन्न करके शत्रु की भूमि पर गये हुए विजिगीषु को उसका धन ग्रहण करना ही उचित है। अनर्थ या संशय का ग्रहण कभी न करे, क्योंकि उससे छिद्रान्वेषी शत्रु की ओर से विघ्न पहुँचाने की हर समय बाधा रहती है। यह सब विधान सामवायिक राजाओं को लक्ष्य करके ही बनाए गए हैं। किन्तु सामवायिकों में से किसी अप्रमुख राजा के प्रति किये गये आक्रमण के मध्य अथवा अन्त में उत्पन्न हुए अनर्थ और संशय का प्रतीकार ही अधिक हितकारी होगा। क्योंकि प्रमुख सामवायिक एक स्थान पर रुके रह कर इधर-उधर नहीं जाते, जबकि अप्रमुख को ऐसी कोई रुकावट नहीं होती। अर्थ, धर्म और काम रूपी अर्थ त्रिवर्ग में से पूर्व-पूर्व की प्राप्ति अधिक कल्याण करने वाली होती है। अनर्थ, अधर्म और शोक—यह अनर्थत्रिवर्ग है। इसमें से पूर्व-पूर्व का त्याग अथवा प्रतीकार करना चाहिए। अर्थ-अनर्थ, धर्म-अधर्म और काम-शोक इनमें संशय की उपस्थिति 'संशय त्रिवर्ग' कहा गया है। इस त्रिवर्ग में से

उत्तर पक्ष का प्रतीकार और पूर्व पक्ष का ग्रहण करे। जैसे कि अर्थ-अनर्थ में उत्तर पक्ष अनर्थ है उसे छोड़ कर पूर्व पक्ष 'अर्थ' का ग्रहण उचित है। यह यात्रा के आदि, मध्य और अन्त समयों से सम्बन्धित अर्थ अनर्थ, संशय वाली आपत्तियों की व्याख्या कर दी गई।

तासां सिद्धिः पुत्रभ्रातृबन्धुषु सामदानाभ्यां सिद्धिरनुरूपा, पौरजानपददण्डमुख्येषु दानभेदाभ्यां, सामन्ताटविकेषु भेददण्डाभ्याम्। एषाऽनुलोमा विपर्यये प्रतिलोमा। मित्रामित्रेषु व्यामिश्रा सिद्धिः। परस्परसाधका ह्युपायाः।

अब उन आपत्तियों के प्रतीकारार्थ उपायों को कहते हैं। पुत्र, भ्राता एवं बान्धवादि के विषय में जो प्रतीकार कहे गये वह प्रतीकार साम, दान आदि की अनुरूपता से ही उचित माने जाँयगे। ऐसे ही नगर और जनपद के रहने वालों, सैनिकों और राष्ट्र के मुख्य पुरुषों में दान और भेद नीति का ही प्रयोग करे। किन्तु सामन्तों और आटविकों के प्रति भेद और दण्ड नीति का व्यवहार श्रेयस्कर होता है। इस प्रकार का प्रतीकार अनुलोम अर्थात् अनुकूल माना जाता है, किन्तु इसके विपरीत को प्रतिलोम अर्थात् प्रतिकूल कहते हैं। मित्र और अमित्र के विषय में मिश्रित उपायों का ही अवलम्बन करे। क्योंकि सभी उपाय एक-दूसरे के सहायक होते हैं। इसलिए मित्र-अमित्र के विषय में जहाँ जैसा आवश्यक प्रतीत हो, वहाँ उसी के अनसार मिश्रित उपायों का प्रयोग किया जा सकता है।

शत्रोः शंकितामात्येषु सान्त्वं प्रयुक्तं शेषप्रयोगं निवर्तयति। दूष्यामात्येषु दानम्। सघातेषु भेदः। शक्तिमत्सु दण्ड इति। गुरुलाघवयोगाच्चापदां नियोगविकल्पसमुच्चया भवन्ति। 'अनेनैवोपायेन नान्येन' इति नियोगः। अनेन वाऽन्येन वा इति विकल्पः। 'अनेनान्येन च' इति समुच्चयः। तेषामेकयोगाश्चत्वारस्त्रियोगाश्च, द्वियोगाः षट्, एकश्चतुर्योग इति पञ्चदशोपायाः। तावन्तः प्रतिलोमाः।

शत्रु के शंकित अमात्यों में प्रयुक्त किया गया सामोपाय अन्य उपायों की आवश्यकता नहीं रहने देता। शत्रु राजा के दूष्य अमात्यों में दान और परस्पर मिले हुए अमात्यों में भेद नीति का प्रयोग करे। जो अमात्य शक्तिशाली हों उन्हें दण्डनीति से वश में करे। अथवा आपत्तियों का गुरुत्व-लघुत्व देख कर ही उक्त उपायों के नियोग, विकल्प और समुच्चय का प्रयोग करना चाहिए। इस उपाय से कार्य सिद्ध होगा, अन्य उपाय से नहीं—ऐसा निश्चय 'नियोग' है। इस उपाय से जो सिद्धि होगी, वह अन्य उपाय से भी हो सकती है—ऐसी धारणा 'विकल्प' है। इस तथा अन्य उपायों के मिलने से सिद्धि होगी, वह निश्चय 'समुच्चय' है। सामादि उपायों का पृथक्-पृथक् रूप से, दो-दो, तीन-तीन या चार-चार मिला कर प्रयोग करें तो वे प्रयोग पन्द्रह प्रकार के हो सकते हैं। साम, दान, भेद और दण्ड पृथक्-पृथक् रूप से चार, तीन-तीन मिला कर साम-दान-भेद, साम-दान-दण्ड, साम-भेद-दण्ड और दान-भेद-दण्ड—यह चार मिल कर आठ हुए। दो-दो मिला कर साम-दान, साम-भेद, साम-दण्ड, दान-भेद, दान-दण्ड और भेद-दण्ड यह छः मिला कर चौदह और सामादि चारों को एक करने से पन्द्रह प्रकार के प्रयोग हुए। इसी प्रकार के पन्द्रह प्रतिलोम प्रयोग हैं अर्थात् उन सब को उल्टा करने से सामादि के उल्टे पन्द्रह प्रयोग होते हैं।

तेषामेकेनोपायेन सिद्धरेकसिद्धिः, द्वाभ्यां द्विसिद्धिः, त्रिभिस्त्रिसिद्धिः, चतुर्भिश्चतुःसिद्धिरिति। धर्ममूलत्वात्कामफलत्वाच्चार्थस्य धर्मार्थकामानुबन्धा याऽर्थस्य सिद्धिः सा सर्वार्थसिद्धिः। इति सिद्धयः। दैवादग्निरुदकं व्याधिः प्रमादो विद्रवो दुर्भिक्षमासुरी सृष्टिः इत्यापदः। तासां दैवतब्राह्मणप्रणिपाततः सिद्धिः।

अवृष्टिरतिवृष्टिर्वा सृष्टिर्वा याऽऽसुरी भवेत्।
तस्यामाथर्वणं कर्म सिद्धारम्भाश्च सिद्धयः॥

उक्त उपायों में से किसी एक द्वारा ही कार्य सिद्ध हो जाय तो वह एकसिद्धि, दो पायों से हो तो द्विसिद्धि, तीन उपायों से त्रिसिद्धि

और चार उपायों से होने पर चतुर्सिद्धि कही जायगी। धर्म का मूल कारण अर्थ है, वही कामोपभोग का साधन सिद्ध होता है। इसीलिए धर्म, अर्थ और काम के मिलने से जो अर्थ की सिद्धि हो, वह सर्वार्थ सिद्धि ही कही जायगी। यह सब उपायों की सिद्धि कही गई है। पूर्व कर्मों के अनुसार उत्पन्न विपत्तियां अग्नि, बाढ़, रोग, महामारी, विप्लव, पलायन, दुर्भिक्ष अथवा हिंस्रक जन्तु आदि के रूप में आसुरी सृष्टि आदि का शमन देव-ब्राह्मणादि के पूजन से संभव है। अनावृष्टि, अतिवृष्टि एवं आसुरी सृष्टि रूपी विपत्तियों को सिद्ध पुरुषों द्वारा किए गए अथर्ववेदोक्त कर्म आदि के द्वारा शान्त करने में सफलता मिल सकती है।

।।अभियास्यत्कर्म नवम अधिकरण समाप्त।।

———

सांग्रामिक दशम अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

स्कन्धावार-निवेश

वास्तुकप्रशस्ते वास्तुनि नायकवर्धकिमौहूर्तिकाः स्कन्धावारं वृत्तं दीर्घं चतुरस्रं वा भूमिवशेन वा चतुर्द्वारं षट्पथं नवसंस्थानं मापयेयुः। खातवप्रसालद्वाराट्टालकसम्पन्नं भये स्थाने च। मध्यमस्योत्तरे नवभागे राजवास्तुकं धनुःशतायाममर्धविस्तारं पश्चिमार्धे तस्यान्तःपुरम्। अन्तर्वंशिकसैन्यं चान्ते निवेशयेत्। पुरस्तादुपस्थानं, दक्षिणतः कोशशासनकार्यकरणानि, वामतो राजोपवाह्यानां हस्त्यश्वरथानां स्थानम्। अतो धनुःशतान्तराश्चत्वारः शकटमेथीप्रततिस्तम्भसालपरिक्षेपाः। प्रथमे पुरस्तान्मन्त्रिपुरोहितौ, दक्षिणतः कोष्ठागारं महानसं च, वामतः कुप्यायुधागारम्, द्वितीये मौलभृतानां स्थानम्, अश्वरथानां सेनापतेश्च। तृतीये हस्तिनः श्रेण्यः प्रशास्ता च। चतुर्थे विष्टिर्नायको मित्रामित्राटवीबलं स्वपुरुषाधिष्ठितम्। वणिजो रूपाजीवाश्चानुमहापथम्। बाह्यतो लुब्धकश्वगणिनः सतूर्याग्नयो गूढाश्चारक्षाः।

अब सैन्य शिविर के विषय में कहते हैं। वास्तुविशेषज्ञों द्वारा बताई हुई वास्तुभूमि पर सेनापति, राजमिस्त्री, मौहूर्तिक अर्थात् ज्योतिषी, गोल, लम्बी या चौकोर भूमि के अनुसार किसी आकार की चार द्वार, उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम में तीन-तीन भाग—कुल छः या नौ भागों वाली छावनी बनवावें। शत्रु के आक्रमण से बचाव या चिरकाल तक अपने सुरक्षित निवास की व्यवस्था की दृष्टि से उस छावनी के चारों ओर खाई होनी चाहिए। साथ ही वह दृढ़ परकोटा, प्रमुख द्वार और अट्टालक से युक्त भी हो। उस छावनी के उत्तर की ओर वाले नौवें खण्ड

में सौ धनुष लम्बा, पचास धनुष चौड़ा राजा का निवास स्थान रहे, जिसके पश्चिम भाग में आधी भूमि रनिवास के लिए नियत की जाय। रनिवास के निकट अन्तःपुर की रक्षा करने वाले सैनिकों का शिविर रहे। राजभवन के आगे दर्शनार्थियों से मिलने वाला कक्ष (उपस्थान) रहे। राजभवन के दाँयी ओर राजकोश, शासन-विभाग, कार्य-विभाग तथा बाँयीं ओर राजा के लिए वाहन—रथ, अश्व, हाथी आदि रहें। राजभवन के पीछे सौ धनुष दूर चार बाड़े रहें, जिनमें गाड़ियाँ, कँटील वृक्षों की कतार, मोटे-मोटे काष्ठ-स्तम्भ तथा साखू काष्ठ की चार-दीवारी हो। प्रथम बाड़े के आगे प्रमुख अमात्य एवं पुरोहितादि के भवन, उसके दाँये कोठार और रसोईघर तथा उसके बांयें कुप्य और शस्त्र गृह रहें। दूसरे बाड़े में मूल सेना, वेतनभोगी सेना एवं अश्व, रथ तथा अन्यान्य सेनापति रहें। तीसरे बाड़े में हस्तिवास, श्रेणी-बल और कण्टकशोधनाध्यक्ष का भवन बनाया जाय। चौथे बाड़े में कार्यकारियों का आवास, नायक और अपने आदमियों द्वारा अधिष्ठान को प्राप्त हुई मित्रसेना रहनी चाहिए। वहीं अमित्र और आटविक सेनाएँ भी रह सकती हैं। राजमार्ग के समीप वेश्याओं और व्यव-साइयों के भवन रहें तथा बाह्यभाग में श्वान पालने वाले लुब्धक रहें तथा तूर्य, भेरी और अग्नि के संकेत से शत्रु के आगमन की सूचना देने वाले भी वहीं रखे जाँय।

शत्रूणामापाते कूपकूटावपातकण्टकिनीश्च स्थापयेत्। अष्टा-दशवर्गाणामारक्षविपर्यासं कारयेत्। दिवायामं च कारयेदपसर्प-ज्ञानार्थम्। विवादसौरिकसमाजद्यूतवारणं च कारयेत्। मुद्रा-रक्षणं च। सेनानीवृत्तमायुधीयमशासनं शून्यपालोऽनुबध्नीयात्।

पुरस्तादध्वनः सम्यक्प्रशास्ता रक्षणानि च।
यायाद्वर्धकिविष्टिभ्यामुदकानि च कारयेत्॥

शत्रु के आक्रमण की जिधर से आशंका हो, उधर ही कुँए या गढ़े खुदवा कर उन्हें घास-फूँस से ढक दें। या काँटेदार बड़े बड़े

तखते बिछवा दें। वहाँ मौल-भृतक आदि छहों प्रकार की सेनाओं के तीन-तीन अधिकारिक पदिक, नायक एवं सेनापति के अन्तर्गत अठारह प्रकार के सैनिकों के पहरे दिन-रात परिवर्तित होते रहें। जिससे कि शत्रु की हलचलों पर निगाह रखी जा सके। उन पहरे पर नियुक्त सैनिकों को परस्पर लड़ने, मदिरा पीने, द्यूत खेलने या सम्मिलित रूप से परामर्श करने आदि की सर्वथा रोक रहे। छावनी में आने-जाने के लिए राजमुद्रा से अंकित आज्ञापत्र रहने आवश्यक हैं। जो सैनिक अपने स्थान से कहीं अन्यत्र या राजाज्ञा के विना पाया जाय, उसे शून्यपाल अर्थात् रक्षा अधिकारी कारागृह में बन्द करा दे, कंटक-शोधनाध्यक्ष राजा के प्रस्थान करने से पूर्व ही अत्यन्त कुशल कारीगरों या अधिकारियों द्वारा मार्ग पर सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करने के लिए सभी असुविधाओं को मिटावे तथा जिस प्रदेश में जल की कमी हो, वहाँ जल की भी समुचित व्यवस्था करे।

द्वितीयोऽध्याय

स्कन्धावारप्रयाण, बलव्यसन एवं अवस्कन्दकालरक्षण

ग्रामारण्यानामध्वनि निवेशान् यवसेन्धनोदकवशेन परिसंख्याय स्थानासनगमनकालं च यात्रां यायात्। तत्प्रतीकारद्विगुणं भक्तोपकरणं वाहयेत्। अशक्तो वा सैन्येष्वायोजयेत्। अन्तरेषु वा निचिनुयात्। पुरस्तान्नायकः। मध्ये कलत्रं स्वामी च। पार्श्वयोरश्वा बाहूत्साराः। चक्रान्तेषु हस्तिनः। प्रसारवृद्धिर्वा सवतः। वनाजीवः प्रसारः। स्वदेशादन्वायतिर्वीवधः। मित्रबलमासारः कलत्रस्थानमपसारः। पश्चात्सेनापतिः पर्यायान्निविशेत।

अब छावनी से राजा की यात्रा, सैन्यव्यसन एवं मार्ग के कष्टों का प्रतीकार कहते हैं। ग्राम एवं वन में जिस मार्ग के स्थान पर सेना के शिविर डालने के स्थान हों, वहाँ घास, ईंधन एवं जल आदि की आवश्यकतानुसार पूर्ति करे। यात्रा पूर्व ही यात्रा के लिए चलने का

समय तथा स्थान आदि का निश्चय कर ले। अभियान के समय आवश्यकता से दुगुना अन्न, वस्त्रादि सामान लेकर चले। यदि वाहनादि का अभाव हो तो सैनिकों पर ही आवश्यक सामग्री रखे। सबसे आगे नायक, मध्यभाग में रानियों आदि के साथ राजा और उसके इधर-उधर शत्रु का प्रहार रोकने के लिए अश्वारोही सैनिक रहें। ऐसी सेना के पीछे हस्तिसेना रहे और सेना के चारों ओर प्रसार सम्पत् अर्थात् अन्न-तृणादि आवश्यक वस्तुएँ साथ रहें। अबाध रूप से स्वदेश से आने वाले खाद्यान्न आदि को वीवध, मित्र-सेना को आसार और रनिवास को अपसार कहते हैं। सेनापतियों को अपनी-अपनी सेना के पीछे रहना चाहिए।

पुरस्तादभ्याघाते मकरेण यायात्, पश्चाच्छकटेन, पार्श्वयोर्वज्रेण, समन्ततः सर्वतोभद्रेण, एकायने सूच्या, पथि द्वैधीभावे च स्वभूमितो यायात् अभूमिष्ठानां हि स्वभूमिष्ठा युद्धे प्रतिलोमा भवन्ति। योजनामधमा, अध्यर्धं मध्यमा, द्वियोजनमुत्तमा, सभाव्या वा गतिः। आश्रयकारी, सम्पन्नघाती, पार्ष्णिरासारो मध्यम उदासीनो वा प्रतिकर्तव्यः संकटो मार्गः शोधयितव्यः, कोशो दण्डो मित्रामित्राटवीबलं विशिष्टं तुर्वा प्रतीक्ष्याः। कृतदुर्गकर्मनिचयरक्षाक्षयः क्रीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेदश्चागमिष्यति उपजपितारो वा नातित्वरयन्ति, शत्रुरभिप्रायं वा पूरयिष्यति इति शनैर्यायात्। विपर्यये शीघ्रम्।

सेना के अगले भाग पर हमला होने की आशंका हो तो मकर-व्यूह, पिछले भाग पर आक्रमण सम्भावित हो तो शकटव्यूह, सेना के पार्श्वों में आक्रमण होता प्रतीत हो तो वज्रव्यूह यदि सब ओर से हमले का भय हो तो सर्वतोभद्रव्यूह और यदि मार्ग में एक-एक करके आक्रमण होने की संभावना हो तो सूचीव्यूह बना कर प्रस्थान करे। (पंचम अध्याय में इन व्यूहों का स्वरूप बतायेंगे) मार्ग में किसी प्रकार का द्वैधीभाव अर्थात् दो मार्ग उपस्थित होने पर किस मार्ग

से चलें ऐसी द्विविधा होने पर शत्रु की भूमि से बच कर, अपनी ही भूमि पर बढ़े। क्योंकि शत्रु की भूमि पर बढ़ने से संभव है कि किसी प्रतिकूल स्थिति से सामना हो जाय। सेना की गति प्रतिदिन एक योजन अर्थात् चार कोश हो तो अधम और डेढ़ योजन अर्थात् छः कोश हो तो उत्तम समझी जाती है। अथवा देश-काल की स्थिति के अनुसार अनुकूलता हो तो अधिक तीव्र गति भी हो सकती है। अब यह कहेंगे कि धीरे या तीव्र किस-किस अवस्था में चलना चाहिए। यदि अपनी सुविधा की दृष्टि से किसी का आश्रय लेना अभीष्ट हो अथवा वह किसी समृद्ध राजा का उच्छेद करना चाहता हो अथवा पार्ष्णिग्राह, आसार, मध्यम या उदासीन राजा को दण्डित करना चाहता हो तो उसे किसी अविस्तृत मार्ग से धीरे धीरे चलना चाहिए। इस समय अपने कोश, बल, मित्र, अमित्र, आटविक, कर्मचारी तथा समय आदि का ठीक प्रकार अवलोकन करे। अथवा शत्रु द्वारा बने हुए दुर्ग, अन्न, तृण आदि का संग्रह और रक्षकों का नष्ट होना प्रतीत होता हो तो, अथवा शत्रु को धन देकर उससे क्रय की हुई सेना के मन में कोई खेद भरा हो, अथवा उसका मित्रबल ग्लानि से युक्त हो रहा हो, अथवा शत्रु के गुप्तचर विजिगीषु द्वारा शीघ्र आक्रमण करने के कारण अपना कार्य न कर पाये हों और शत्रु बिना युद्ध के ही आत्म-समर्पण को तैयार हो तो यात्रा की गति मद रखे और इसके विपरित लक्षण हों तो तीव्र गति कर दे।

हस्तिस्तम्भसंक्रमसेतुबन्धनौकाष्ठवेणुसंघातैः अलाबुचर्मकरण्डदृतिप्लवगण्डिकावेणिकाभिश्चोदकानि तारयेत्। तीर्थाभिग्रहे हस्त्यश्वैरन्यतो रात्रावुत्तीर्य सत्रं गृह्णीयात। अनुदके चक्रिचतुष्पदं चाध्वप्रमाणेन शक्त्योदकं वाहयेत्। दीर्घकान्तारमनुदकं यवसेन्धनोदकहीनं वा कृच्छ्राध्वानमभियोगप्रस्कन्नं क्षुत्पिपासाध्वक्लान्तं पकतोयगभीराणां वा नदीदरीशैलानामुद्यानापयाने व्यासक्तम्। एकायनमार्गे शैलविषमे संकटे वा बहुलीभूतं निवेशे प्रस्थिते

विसन्नाहं भोजनव्यासक्तम्। आयतगतपरिश्रान्तमवसुप्तं व्याधि-मरकदुर्भिक्षपीडितं व्याधितपत्त्यश्वद्विपभूमिष्ठं वा बलव्यसनेषु वा स्वसैन्यं रक्षेत्। परसैन्यं चाभिहन्यात्। एकायनमार्गप्रयातस्य सेनानाश्चाहारग्रासशय्याप्रस्तारा ग्निनिधा न ध्वजायुधसङ्ख्यानेन परबलज्ञानम्। तदात्मनोगूहयेत्।

पार्वत वनदुर्गं वा सापसारप्रतिग्रहम्।
स्वभूमौ पृष्ठतः कृत्वा युध्येत निविशेत च॥

यदि सेना को नदी पार करने की आवश्यकता हो तो हाथी पर चढ़ा कर, खम्भों पर काष्ठ आदि बिछा कर, पुल बाँध कर, नौका या बाँस आदि परस्पर बांध कर, तुम्बो द्वारा, चमड़े की मशक द्वारा, भाथी, डोंगी, गण्डिका या रस्सियों के द्वारा सेना को पार उतारे। यदि नदी पार का घाट शत्रु ने रोक दिया हो तो घाट-रहित तट पर ही हाथी या अश्वादि के द्वारा पार करा कर शिविर पर जा टिके और वहाँ से कूट युद्ध करे। यदि किसी जल-हीन प्रदेश में जाना हो तो आवश्यकतानुसार जल गाड़ियों या पशुओं पर लदवा कर साथ लेता जाय। अथवा उसकी सेना को गहन वनमार्ग से चलना हो या उस मार्ग में जल या तृण, ईंधन आदि न हो, अथवा मार्ग अत्यन्त कठिन हो, अथवा यात्रा के समय ही शत्रु के आक्रमण की आशंका हो, अथवा चलते-चलते सेना क्षुधा-पिपासा और श्रम से अत्यन्त उद्विग्न हो उठी हो, अथवा उस मार्ग में अधिक दलदल या अगाध जल वाली कोई नदी गुफा या पर्वत की कठिन चढ़ाई का सामना करना पड़े, अथवा उसे ऐसे सँकरे मार्ग से होकर निकलना पड़े, जो उपयुक्त न हो और अधिक सैनिक होने के कारण मार्ग रुक जाय, अथवा मार्ग के सैन्य शिविरों पर पहुँचने के लिये शस्त्र और कवचादि उपकरण उतार कर पृथक् दे देने पड़े हों, अथवा भोजन करने में व्यस्त हो, बहुत परिश्रान्त या क्लान्त होकर सो रही हो, अथवा रोग, महामारी या दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित हो गई हो, अथवा उसके पदाति सैनिक

या हाथी-अश्व आदि रोगी हो गए हों, अथवा वह सेना जिस स्थान पर पहुँच गई हो, वह युद्ध के लिये उपयुक्त न हो, अथवा सेना पर विभिन्न प्रकार के बहुत से संकट एक साथ ही आ उपस्थित हुए हों तो विजिगीषु को उसकी रक्षा के लिए तुरन्त समुचित व्यवस्था करनी चाहिए। किन्तु शत्रु की सेना को ऐसे सङ्कटों से ग्रस्त देखे तो उस पर तुरन्त आक्रमण कर दे। जब शत्रु-सेना किसी संकरे मार्ग से निकल रही हो, तब उसके सैनिक, हाथी, खाद्य-सामग्री, आस्तरण, चूल्हे, ध्वजा एवं शस्त्रास्त्रों की संख्या की गिनती कर ले, किन्तु अपनी सेना आदि की संख्या का पता न लगने दे। विजिगीषु को अपसार अर्थात् हारने पर पीछे हटने के स्थान और प्रतिग्रह अर्थात् सामना करती हुई सेना को रोकने के स्थान की सुविधा युक्त पर्वतदुर्ग एवं नदीदुर्ग को पीछे की ओर से सुदृढ़ करके जो भूमि अपने लिए अधिक अनुकूल हो वहाँ छावनी डाल कर युद्ध करना चाहिए।

तृतीयोऽध्यायः

कूटयुद्धविकल्पा, स्वसैन्योत्साहन एवं स्वबल-अन्यबलव्यायोग

बलविशिष्टः कृतोपजापः प्रतिविहिततुः स्वभूम्यां प्रकाशयुद्ध-मुपेयात्। विपर्यये कूटयुद्धम्। बलव्यसनावस्कन्दकालेषु पर-मभिहन्यात्। अभूमिष्ठं वा स्वभूमिष्ठः। प्रकृतिविग्रहो वा स्वभू-मिष्ठं दूष्यामित्राटवीबलैर्वा भंगं दत्त्वा विभूमिप्राप्तं हन्यात्। संहतानीकं हस्तिभिर्भेदयेत्। पूर्वं भंगप्रदानेनानुप्रलीनं भिन्नमभिन्नं प्रतिनिवृत्य हन्यात्। पुरस्तादभिहत्य प्रचलं विमुखं वा पृष्ठतो-ऽभिहत्य प्रचलं विमुखं पुरस्तात्सारबलेनाभिहन्यात्। ताभ्यां पार्श्वाभिघातौ व्याख्यातौ। यतो वा दूष्यफल्गुबलं ततोऽभि-हन्यात्। पुरस्ताद्विषमायां पृष्ठतोऽभिहन्यात्। पृष्ठतो विषमायां पुरस्तादभिहन्यात्। पार्श्वतो विषमायामितरतोऽभिहन्यात्।

अब कूटयुद्ध के भेद, स्वसैन्य-प्रोत्साहन और अपनी-परायी सेनाओं के प्रयोग की विधि कहेंगे। जब विजिगीषु स्वयं बलवान, अधिक संख्या वाली सेना से युक्त, शत्रु को उपजाप से प्रभावित और समय को अपने अनुकूल समझे तब अपने लि उपयोगी भूमि पर जाकर युद्ध की घोषणा करे। यदि समय अनुकूल न हो तो कूटयुद्ध चालू रखना श्रेयस्कर है। यदि शत्रु सेना विपत्तिग्रस्त हो या गहन वन मार्ग को पार कर रही हो तब उस पर हमला कर दे। अथवा शत्रु का प्रकृतिवर्ग अपने गुप्तचरों द्वारा वश में हो जाय और उसके शत्रु या आटविकों की सेना उसे हराने में जुट जाय तो उस स्थिति में यदि विजिगीषु प्रतिकूल स्थान पर भी हो तो भी शत्रु के उच्छेद में जुट जाय। यदि शत्रु सेना अपने अनुकूल स्थान पर हो तो हस्ति सेना द्वारा शत्रु-सेना को छिन्न-भिन्न कर दे और फिर अपनी सुसंगठित सेना के साथ उस पर भीषण प्रहार करे। उस समय यदि वह भागने लगे तो पीछे से हाथी-घोड़ों की सेनाओं द्वारा प्रहार करता रहे। यदि पीछे से प्रहार करने पर भी भागती रहे तो उसे सामने जा कर घेरने की चेष्टा करे और हर प्रकार से परास्त कर दे। पीछे और आगे से आक्रमण करने के समान ही पार्श्वभाग से भी आक्रमण किया जा सकता है। अथवा शत्रु की दूष्य या निबल सेना को भी वश में करे। यदि सामने की भूमि विषम हो तो पीछे से और पीछे की भूमि भी विषम हो तो बगल से प्रहार करना चाहिए।

दूष्यामित्राटवीबलैर्वा पूर्वं योधयित्वा श्रान्तमश्रान्तः परमभिहन्यात्। दूष्यबलेन वा स्वयं भग्नं दत्त्वा 'जितम्' इति विश्वस्तमविश्वस्तः सत्रापाश्रयोऽभिहन्यात्। सार्थव्रजस्कन्धावारसंवाहविलोपप्रमत्तमप्रमत्तोऽभिहन्यात्। फल्गुबलावच्छन्नः सारबलो वा परवीराननुप्रविश्य हन्यात्। गोग्रहणेन श्वापदवधेन वा परवीरानाकृष्य सत्रच्छन्नोऽभिहन्यात्। रात्राववस्कन्देन जागरयित्वाऽनिद्राक्लान्तानवसुप्तान् वा दिवा हन्यात्। सपादचर्मकोशैर्वा हस्तिभिः सौप्तिकं दद्यात्। अहः सन्नाहपरिश्रान्तानपराह्णेऽभिहन्यात्।

शुष्कचर्मवृत्तशर्कराकोशकैर्गोमहिषोष्ट्रयूथैर्वा त्रस्नुभिरकृतपस्त्यश्व भिन्नमभिन्नः प्रतिनिवृत्तं हन्यात्। प्रतिसूर्यवातं वा सर्वमभि हन्यात्। धान्वनवनसंकटपंकशैलनिम्नविषमनावो गावः शकट-व्यूहो नीहारो रात्रिरिति सत्राणि। पूर्वं च प्रहरणकालाः कूटयुद्ध-हेतवः। संग्रामस्तु निर्दिष्टदेशकालो धर्मिष्ठः।

अथवा विजिगीषु प्रथम अपनी दूष्य, शत्रु या आटविक सेना के द्वारा शत्रु को लड़ा कर परिश्रान्त करे। फिर स्वयं उस पर प्रहार करे या उसे अपनी दूष्य सेना से लड़ा दे। उसे दूष्य सेना के पराजित होने पर शत्रु को अपनी जीत का विश्वास होजाय तब विजिगीषु सत्राशययुक्त अर्थात् किसी संकटापन्न स्थान के आश्रय में रहकर शत्रु पर धावा बोल दे। सार्थ, व्रज एवं सैन्य-शिविर आदि की लूट में लगे हुए शत्रु पर निरालस्य भाव से हमला करदे। अथवा विशिष्ट वीरों को साथ लेकर शत्रु के वीर पुरुषों के शिविरों में घुस कर उनका वध कर दे। अथवा शत्रु देश में गौओं को पकड़ कर व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओं को मार कर शत्रु के वीरों को अपनी ओर आकर्षित करके मरुदुर्ग में छिपा रह कर उन पर हमला बोल दे। रात्रिकाल में अनेक प्रकार के उपद्रव करके शत्रु सेना को भयभीत दशा में जागने के लिए विवश करे। रात्रि-जागरण के कारण वह शत्रु सेना दिन में सोने लगेगी, उस अवस्था में उस पर प्रहार करके मारे। या पावों में चर्मजूती जैसी खोल पहिने हुए हाथियों द्वारा उनको कुचलवा दे। जो शत्रु-सेना दिन के पूर्व भाग में लड़ कर थक चुकी हो, उसे दिन के उत्तरार्ध में मरवाने का प्रयत्न करे। या सूखे चमड़े में लपेटे हुए कंकड़-पत्थर रूपी शस्त्रों और बिगड़े वृषभों, भैंसों, ऊँटों आदि से उस थक कर लौटती हुई सेना को रोंदवा दे। विजिगीषु को अपनी सेना सदा सुसंगठित रखनी चाहिए। क्योंकि प्रबल शत्रु सेना हाथी घोड़ों के डर से छिन्न-भिन्न नहीं हो सकती। यदि शत्रु की सेना धूप या तीक्ष्ण वात के कारण खिन्न होरही हो तो उस अवस्था में भी उस पर आक्रमण करना लाभकारी होता है। मरु-

स्थल, वन, संकुचित मार्ग, दलदल, पर्वत, विषम स्थल, नाव, गो-समूह, शकटव्यूह, तुषारपात, वर्षा और रात्रि—यह सब सत्र कहे गये हैं। यह सब स्थान कूटयुद्ध के लिए उपयुक्त होते हैं। देश-काल का निश्चय कर लेने पर युद्ध का आरम्भ करना धर्मयुद्ध कहा जाता है।

संहत्य दण्डं ब्रूयात्—'तुल्यवेतनोऽस्मि, भवद्भिः सह भोग्यमिदं राज्यं, मयाभिहितः परोऽभिहन्तव्यः' इति। वेदेष्वनुश्रूयते समाप्तदक्षिणानां यज्ञानामवभृथेषु—'सा ते गतिर्या शूराणाम्' इति। अपीह श्लोकौ भवतः—

यान् यज्ञसंघैस्तपसा च विप्राः स्वर्गैषिणः पात्रचयश्च यान्ति।
क्षणेन तामप्यतियान्ति शूराः प्राणान्सुयुद्धेषु परित्यजन्तः॥१
नवं शरावं सलिलस्य पूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य माभून्नरकं च गच्छेद्यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत्॥२

सैन्य प्रोत्साहनार्थं विजिगीषु अपनी सुसंगठित सेना से स्वयं कहे—मैं भी आप के ही समान वेतनभोगी हूं। इसलिए मुझे होने वाले लाभ में आपका भाग भी समान रहेगा। युद्ध द्वारा विजित राज्य का उपभोग हम सभी समान रूप से मिल कर करेंगे। इसलिए जिस शत्रु पर मैं आक्रमण करने को कहूं उस पर आप सब मिल कर तुरन्त ही प्रहार कर दें। फिर अमात्य और पुरोहित भी उनको उत्साहित करते हुए कहें —भले प्रकार दक्षिणा आदि के पश्चात् यज्ञानुष्ठान के पूर्ण होजाने का फल वेदों में भी इस प्रकार सुना जाता है कि जो गति शूरवीरों की होती है, वही तुम्हारी गति हो। इसी बात को निम्न श्लोक भी पुष्ट करते हैं—अनेक यज्ञ, तपस्या, यज्ञीयपात्रों का चयन आदि करके जिन उच्च लोकों के विप्रगण प्राप्त करते हैं, उनसे भी अति उच्च लोकों को शूरवीर क्षत्रिय धर्मयुक्त में प्राण देकर क्षणभर में ही प्राप्त कर लेते हैं। जल से परिपूर्ण, मन्त्रों से संस्कृत, दर्भ से आच्छादित नवीन सकोरा उस पुरुष को प्राप्त नहीं होता जो अपने स्वामी के लिए युद्ध नहीं करता तथा वह नरक को भी प्राप्त होता है॥१-२॥

इति मंत्रिपुरोहिताभ्यामुत्साहयेद्योधान् । व्यूहसम्पदा कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गः सर्वज्ञदैवसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्षमुद्धर्षयेत् । परपक्षे चोद्वेजयेत् । 'श्वो युद्धम्' इति कृतोपवासः शस्त्रवाहनं चानुशयीत । अथर्वभिश्च जुहुयात् । विजययुक्ताः स्वर्गीयाश्चाशिषो वाचयेत् । ब्राह्मणेभ्यश्चात्मानमतिसृजेत् । शौर्यशिल्पाभिजनानुरागयुक्तमर्थमानाभ्यामविसंवादितमनीकगर्भं कुर्वीत । पितृपुत्रभ्रातृकाणामायुधीयानामध्वज मुण्डानीकं राजस्थानम् । हस्ती रथो वा राजवाहनमश्वानुबन्धे । यत्प्रायः सैन्यो, यत्र वा विवीतः स्यात्, तदधिरोहयेत् । राजव्यंजनो व्यूहाधिष्ठानमायोज्यः ।

इस प्रकार मंत्री और पुरोहित सेना को प्रोत्साहित करें । विजिगीषु के ज्योतिषी और शकुनशास्त्री राजा को विशिष्ट प्रकार के व्यूहादि की रचना के सम्बन्ध में बता कर तथा अपनी सर्वज्ञता और दैव-साक्षात्कार की बातें प्रचारित करते हुए अपनी सेना को प्रसन्न और शत्रु-सेना को उद्विग्न करने की चेष्टा करें । आगामी कल युद्ध होने की बात निश्चय होते ही राजा उस दिन उपवास करता हुआ शस्त्र-वाहनादि के समीप शयन करे और अथर्ववेदोक्त अभिचार मंत्रों के द्वारा यज्ञ करावे । शत्रु की हार और अपनी जीत एवं मरने पर स्वर्ग प्राप्त कराने वाले मंत्रों के उच्चारण सहित स्वस्तिवाचन कराता हुआ अपनी रक्षा के लिए स्वयं को ब्राह्मणों के लिए अर्पित कर दे । विजिगीषु धन-मान-दान से अनुकूल एवं शौर्य, शिल्प में कुशल, कुलीन एवं राजभक्त सैनिकों को अपनी विशाल सेना के मध्य अपनी रक्षा में नियुक्त करे । पिता, पुत्र, बन्धु एवं आत्मरक्षार्थ नियुक्त अन्याय विश्वस्त सशस्त्र पुरुषों की उस सेना को जो राजा से विशेष सम्बन्ध रखती हो, उस प्रधान सेना को सामान्य वेश में (जिससे कि राजपुरुष जैसे प्रतीत न हों) अपने अत्यन्त समीप रखे । राजा का वाहन हाथी अथवा रथ हो और उसके दोनों पार्श्वों में अश्वारोही सेना हो । अथवा सेना के पास जो वाहन हों, वैसे ही वाहन पर राजा भी चले । अथवा उसे जिस

वाहन पर बैठने का अभ्यास हो उसी पर बैठे। दुर्ग-प्रबन्ध के कार्यों पर राजा जैसे वेश में ही किसी अन्य व्यक्ति को नियुक्त कर दे, जिससे कि शत्रु को असली राजा की पहिचान न हो सके।

सूतमागधाः शूराणां स्वर्गमस्वर्गं भीरूणां जातिसंघकुलकर्मवृत्तस्तवं च योधानां वर्णयेयुः। पुरोहितपुरुषाः कृत्याभिचारं ब्रूयुः। सत्रिवर्धकिमौहूर्तिकाः स्वकर्मसिद्धिमसिद्धिं परेषाम्। सेनापतिरर्थमानाभ्यामभिसंस्कृतमनीकमभिभाषेत—'शतसाहस्रो राजवधः। पंचाशत्साहस्रः सेनापतिकुमारवधः। दशसाहस्रः प्रवीरमुख्यवधः। पंचसाहस्रो हस्तिरथवधः। साहस्रोऽश्ववधः। शत्यः पत्तिमुख्यवधः। शिरो विंशतिकम्। भोगद्वैगुण्यं स्वयंग्राहश्चेति। तदेषां दशवर्गाधिपतयो विद्युः। चिकित्सकाः शस्त्रयंत्रागदस्नेहवस्त्रहस्ताः, स्त्रियश्चान्नपानरक्षिण्यः पुरुषाणामुद्धर्षणीयाः पृष्ठतस्तिष्ठेयुः।

सूत-मागध गण वीरों को स्वर्ग और कायरों को नरक मिलने की कथाएँ सुनावें तथा अन्यान्य वीरों की जाति, समूह जीविका एवं शील विषयक प्रशंसा सुनाते हुए राजा और उसकी सेना को प्रोत्साहित करें। शत्रुघात के हेतु पुरोहितगण शत्रुघातिनी कृत्या रूपी अभिचार की बात राजा से कहें तथा सत्रि, वर्धकी अर्थात् बढ़ई और ज्योतिषी राजा को अपने कार्य की सिद्धि और शत्रु के कार्य की असिद्धि का विश्वास दिलावें। सेनापति भी सेना के मध्य में जाकर उनको धन-मान देते हुए इस प्रकार उत्साहित करें कि तुमनें से जो कोई वीर उस शत्रु राजा का वध कर देगा, उसे एक लाख स्वर्णमुद्रा पुरस्कार में दी जाँयगी। जो शत्रु के राजकुमार या सेनापति को मारेगा वह पचास हजार स्वर्णमुद्रा प्राप्त करेगा। शत्रु के प्रमुख वीर को मारने पर दस हजार, समस्त रथ या हाथियों को नष्ट करने वाले को पाँच हजार, अश्वों को मारने वाले को एक हजार, पदाति-प्रमुख की हत्या करने वाले को एक सौ तथा सामान्य सैनिक का वध करने वाले को बीस स्वर्णमुद्राएँ दी जाँयगी।

साथ ही वेतन-भत्ता भी दुगुना हो जायगा । शत्रु-राज्य से लूट कर लाया जाने वाला धन-रत्नादि लूटने वालों को ही मिलेगा । फिर उन वीरतापूर्ण कार्यों तथा उनके कारण प्राप्त होने वाले पुरस्कारों के विषय में दशवर्गाधिपतियों को जानकारी रहे । चिकित्सकों को चिकित्सा के शस्त्र, यन्त्र, औषधि, तल, स्नेह, मरहम, पट्टी के लिये वस्त्र लेकर सदैव प्रस्तुत रहना चाहिये । अन्न-जल आदि सब खाद्यसामग्री की रक्षा करने वाली स्त्रियां जो सैनिक पुरुषों को प्रसन्न करने के लिए आकर्षक वेश-भूषा में हों, वे सेना के पिछले भाग में रखी जांय ।

अदक्षिणामुखं पृष्ठतः सूर्यमनुलोमवातमनीकं स्वभूमौ व्यूहेत । परभूमिव्यूहे चाश्वांश्चारयेयुः । यत्र स्थानं प्रजवश्चाभूमिर्व्यूहस्य, तत्र स्थितः प्रजवितश्चोभयथा जीयेत । विपर्यये जयति । उभयथा स्थाने प्रजवे च । समा विषमा व्यामिश्रा वा भूमिरिति, पुरस्तात्पार्श्वाभ्यां पश्चाच्च ज्ञेया । समायां दण्डमण्डलव्यूहाः । विषमायां भोगसंहतव्यूहाः । व्यामिश्रायां विषमव्यूहाः । विशिष्टबलं भंक्त्वा सन्धिं याचेत । समबलेन याचितः सन्दधीत । हीनमनुहन्यात् । न त्वेव स्वभूमिप्राप्तं त्यक्तात्मानं वा ।

पुनरावर्तमानस्य निराशस्य च जीविते ।
अधार्यो जायते वेगस्तस्माद्भग्नं न पीडयेत् ॥३

अपनी भूमि पर अपनी सेना की व्यूह-रचना इस प्रकार से करे कि उसका मुख दक्षिण की ओर न रहे और सूर्य व्यूह के पीछे की ओर रहे तथा वायु का प्रवाह भी अनुकूल दिशा से हो । यदि शत्रु की भूमि पर व्यूह बनाना हो तो अश्वारोहियों का चक्रमय व्यूह बनावे । किन्तु किसी अयोग्य भूमि में व्यूह बनाना पड़े तो यह समझले कि चाहे अल्प कालीन युद्ध हो या दीर्घकालीन वहाँ ठहरने और लौटने—दोनों ही अवस्थाओं में पराजय का मुख देखना पड़ सकता है । इसके विपरीत योग्य भूमि में बनाया गया व्यूह दीर्घकालीन हो चाहे अल्पकालीन, विजय प्राप्त कराने वाला ही होता है । व्यूह के आगे, पार्श्व में, या पीछे सम, विषम

और व्यामिश्र संज्ञक भूमि होती है। समभूमि में दण्डाकार, विषम भूमि में भोगव्यूह या संहतव्यूह तथा व्यामिश्र भूमि मे विषय व्यूह बनाना चाहिये। विजिगीषु ने अपने से बलवाल को हराया हो तो स्वयं ही सन्धि का प्रस्ताव करे। यदि समान बल को हराया हो तो उस शत्रु की प्रार्थना पर सन्धि कर ले। किन्तु हीनबल से सन्धि न करके उसका पूरी तरह उच्छेद कर दे,जिससे कि वह भविष्य में कभी भी सिर न उठा सके। पर यह भी ध्यान रखे कि यदि हीनबल शत्रु भी विजिगीषु के आश्रय में रहने को आ गया हो और पूरी तरह आत्म-समर्पण कर चुका हो तो उसका उच्छेद कदापि न करे। हीनबल शत्रु भी यदि जीवन से निराश होकर विपरीत हो जाय और युद्ध में पुनः कटिवद्ध हो जाय तो उसके वेग का रोकना कठिन हो जाता है। इसलिए हारे हुए शत्रु को अधिक संतप्त नहीं करना चाहिए ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

युद्धभूमि, पदाति, अश्व, रथ, हाथी आदि के कार्य

स्वभूमिः पत्त्यश्वरथद्विपानामिष्टा युद्धे निवेशे च। धान्वन-वननिम्नस्थलयोधिनां खनकाकाशदिवारात्रियोधिनां च पुरुषाणां नादेयपर्वतानूपसारसानां च हस्तिनामश्वानां च यथास्वमिष्टा युद्ध-भूमयः कालाश्च। समा स्थिराभिकाशा निरुत्खातिन्यचक्रखुराऽ-नक्षग्राहिणी अवृक्षगुल्मव्रततिस्तम्भकेदारश्वभ्रवल्मीकसिकतापंक-भंगुरा दरणहीना च रथभूमिः।

अब युद्धोपयोगी स्थान, पदाति, अश्व, रथ तथा हाथी आदि के कार्यों को कहेंगे। इन सबके ठहरने के लिए उन-उन के अनुकूल भूमि का होना आवश्यक है। मरुदुर्ग, वनदुर्ग, नीची या समतल भूमि पर रह कर युद्ध करने वाले, भूमि खोद कर खाई में रहते हुए लड़ने वाले, आकाशयुद्ध दिवायुद्ध या रात्रि में लड़ने वालों के लिए नदी, पर्वत, जल युक्त प्रदेश, सरोवर एवं हस्ति-अश्व के लिए अनुकूल स्थल एवं समय

तथा विषमता रहित, धूल-मिट्टी-विहीन, गढ़े आदि से रहित रथचक्र, अश्वों के खुर, रथ के धुरों को न रोकने वाली तथा वृक्ष, झाड़ी, लता, ठूँठ, मेंढ़, खन्दक, बिल, धूल, दलदल, दरार एवं तीक्ष्णता-रहित पृथिवी ही रथ चलाने के उपयुक्त मानी जाती है।

हस्त्यश्वयोर्मनुष्याणां च समे विषमे हिता युद्धे निवेशे च। अल्पाश्मवृक्षा ह्रस्वलंघनीयश्वभ्रा मन्ददरणदोषा चाश्वभूमिः। स्थूलस्थाण्वश्मवृक्षप्रततिवल्मीकगुल्मा पदातिभूमिः। गम्यशैलनिम्नविषमा मर्दनीयवृक्षा छेदनीयप्रततिः पंकभंगुरा दरणहीना च हस्तिभूमिः। अकण्टकिन्यबहुविषमा प्रत्यासारवतीति पदातीनामतिशयः। द्विगुणप्रत्यासारा कर्दमोदकखंजनहीना निःशर्करेति वाजिनामतिशयः। पांसुकर्दमोदकनलशराधानवती श्वदंष्ट्राहीना महावृक्षशाखावघातवियुक्तेति हस्तिनामतिशयः। तोयाशयाश्रयवतो निरुत्खातिनी केदारहीना व्यावर्तनसमर्थेति रथानामतिशयः। उक्ता सर्वेषां भूमिः। एतया सर्वबलनिवेशा युद्धानि च व्याख्यातानि भवन्ति।

उक्त रथ चलने के उपयुक्त भूमि ही सम-विषम स्थल में युद्ध करने या रुकने के समय हस्ति, अश्व एवं पदाति सैनिकों के लिए भी उपयोगी मानी जाती है। लघु शिलाखण्ड, वृक्ष लाँघने में सरल गढ़े तथा अल्प दरारों वाली भूमि घोड़ों के लिए, वृक्षों के ठूँठ, पाषाण, वृक्ष, लता, बिल एवं बड़ी झाड़ियों वाली पृथिवी पदातियों के लिए तथा पर्वत, नीचे स्थान, विषम स्थल, हाथियों के जाने के लिए सुगम, हाथियों द्वारा तोड़े जा सकने योग्य वृक्ष तथा हाथियों के खाने योग्य लताओं से युक्त, कीचड़ वाली, टेढ़ी मेंढ़ी किन्तु दरारों से रहित भूमि हाथियों के लिए उपयोगी होती है। काँटे-विहीन, समतल एवं विचरण योग्य भूमि पैदल सेना के लिये उपयुक्त होती है। जहां आगे बढ़ने से अधिक सुविधा लौटने की हो, कीचड़ या जल न हो, अश्वों के लंगड़ाने का भय न हो, दलदल या कङ्कड़ न हो, उसे अश्वों के योग्य

स्थान समझे। जहाँ धूल या कीच से युक्त जल न हो, नल (एक प्रकार की घास) और मूँज हो, किन्तु गोखरू आदि न हों तथा बड़े-बड़े वृक्षों की शाखाओं से टकराव न हो सके, ऐसी भूमि हाथियों की सेना के योग्य समझें। जलाशय एवं आश्रय स्थान युक्त तथा विषम स्थल और मेंड़ आदि रहित और सर्वत्र रथ मोड़ने की सुविधा से युक्त भूमि रथसेना के लिये उपयोगी होती है। यह सब प्रकार की सैन्य-उपयोगी भूमि की व्याख्या हुई। इसी से सम्पूर्ण सेना के पड़ाव और रणक्षेत्र का भी विवेचन हो गया।

भूमिवासवनविचयो विषमतोयतीर्थवातरश्मिग्रहणं वीवधासारयोर्घातो रक्षा वा, विशुद्धिः स्थापना च बलस्य, प्रसारवृद्धिर्बाहूत्सारः, पूर्वप्रहारो व्यावेशनं, व्यावेधनमाश्वासो, ग्रहणं, मोक्षणं, मार्गानुसारविनिमयः, कोशकुमाराभिहरणं, जघनकोटयभिघातो हीनानुसरणमनुयानं, समाजकर्मेत्यश्वकर्माणि। पुरोयानमकृतमार्गवासतीर्थकर्म बाहूत्सारस्तोयतरणावतरणे स्थानगमनावतरणं विषमसम्बाधप्रवेशोऽग्निदानशमनमेकाङ्गविजयः भिन्नसन्धानमभिन्नभेदनं व्यसने त्राणमभिघातो विभीषिका त्रासमौदार्यं ग्रहणं मोक्षणं सालद्वाराट्टालकभंजनं कोशवाहनापवाहनमिति हस्तिकर्माणि।

अब घुड़सवार सेना का कार्यकलाप कहते हैं। भूमि, वास और वन का विचय अर्थात् छिपे हुए शत्रु, चोर एवं कण्टकादि का दूर करना घुड़सवार सेना का ही कार्य है। विषम, तोय (जलयुक्त), तीर्थ, वात एवं रश्मि अर्थात् धूप आदि की सुविधा वाले स्थानों पर पहले से ही अधिकार कर ले और शत्रु के वीवध और आसार को नष्ट करना तथा अपने वीवध और आसार की रक्षा, छिप कर घुसी हुई सेना का शोधन तथा अपनी सेना के विद्रोह को दबा कर शान्ति स्थापन, प्रसार की वृद्धि, अश्वों द्वारा शत्रु-सेना का प्रतिरोध, शत्रु पर अग्रिम प्रहार, शत्रु सेना में प्रविष्ट होकर भयोत्पत्ति एवं कष्ट पहुँचाना, स्वसैन्य को

आश्वासन, परसैन्य का ग्रहण और स्वसैन्य का शत्रु से मोक्षण, शत्रु-सेना का पीछा करना और उसके कोश या कुमार का हरण, आगे पीछे से शत्रु पर प्रहार, अस्त्रहीन सैनिकों या भागती हुई सेना का पीछा करना, यत्र-तत्र बिखरी सेना को एकत्र करना आदि सभी कार्य अश्व-सेना द्वारा ही कराने में सुगम होते हैं। अब हस्तिसेना के कार्य-कलाप कहेंगे। अपनी सेना में सबसे आगे रहना, नवीन मार्ग, नवीन आवास या नवीन घाट आदि के बनाने में सहायक होगा। भुजा के समान आगे बढ़ कर शत्रु-सेना को पीछे खदेड़ देना, नदी आदि के जल की थाह लेने, पार उतरने, शत्रु के सामने जाने, मार्ग चलने, ऊँचाई से उतरने, विषम या तृण एवं झाड़ियों वाले स्थानों तथा शत्रु सेनाओं के मध्य घुसने, शत्रु-शिविर को जलाने, अपने शिविर में लगी अग्नि को बुझाने आदि कार्यों में केवल हस्तिसेना ही अधिक उप-योगी और विजय देने वाली होती है। बिखरी सेना के एकत्र करने, समूह-बद्ध शत्रु को बिखराने, अपने संकट को दूर करने, शत्रु सेना को मर्दित करने या भीषण आकार दिखा कर डराने, मद आदि से विचलित करने, अपनी सेना का बल दिखाने, शत्रु-सेना को पकड़ने, अपनी सेना को शत्रु से मुक्त कराने, शत्रु के प्राकार-गोपुर-अट्टालक आदि को ध्वस्त करने तथा शत्रु के कोश और वाहनादि को हथियाने में हस्तिसेना ही उपयुक्त होती है।

स्वबलरक्षा चतुरंगबलप्रतिषेधः संग्रामे ग्रहणं मोक्षणं भिन्न-सन्धानमभिन्नभेदनं त्रासनमौदार्यं भीमघोषश्चेति रथकर्माणि। सर्वदेशकालशस्त्रवहनं व्यायामश्चेति पदातिकर्माणि। शिबिरमा-र्गसेतुकूपतीर्थशोधनकर्म यन्त्रायुधावरणोपकरणग्रासवहनमायोध-नाच्च प्रहरणावरणप्रतिविद्धापनयनमिति विष्टिकर्माणि।

कुर्याद्गवाश्वव्यायोगं रथेष्वल्पहयो नृपः।
खरोष्ट्रशकटानां वा गर्भमल्पगजस्तथा॥

अब रथ के कार्य-कलाप कहते हैं। अपनी सेना की रक्षा, युद्ध के समय शत्रु की चतुरंगिणी सेना का प्रतिरोध, शत्रु-सेना का बन्धन में डालना, अपनी सेना को शत्रु के चंगुल से छुड़ाना, अपनी बिखरी हुई सेना को एकत्रित करना समूह बद्ध शत्रु-सेना को तितर बितर करना, शत्रु-सेना में डर उत्पन्न करना, स्वसैन्य का महत्त्व प्रदर्शन और तुमुल नाद की उत्पत्ति—यह सब रथ-कर्म हैं। अब पदाति सेना के कर्त्तव्य कहते हैं। निःशस्त्र सैनिक शिविर, मार्ग, सेतु, कूप, तट आदि को कार्य के अनुरूप रखेंगे तथा यन्त्र, शस्त्रास्त्र, कवच एवं अन्यान्य रणोपयोगी सामान तथा खाद्य पदार्थों को एक स्थान से अन्य स्थान पर पहुँचाते रहेंगे। वही रणक्षेत्र में छोड़े हुए शस्त्रास्त्र एवं कवचादि उपकरणों को एकत्र करते हुए आहत वीरों को भी यथास्थान पहुँचाने का कार्य करेंगे। जिसके पास अश्वों की संख्या कम हो वह अश्वों के स्थान पर बैलों को रथों में जोड़ें। यदि हाथियों की संख्या अल्प हो तो गधों और ऊँटों से जुड़ी हुई गाड़ियों को पीछे रखता हुआ अपनी सेना की रक्षा का उपाय करे।

पञ्चमोऽध्यायः

व्यूहविभाग, सारफल्गुबलविभाग, एवं पत्त्यश्वरथहस्तियुद्ध

पञ्चधनुःशतापकृष्टदुर्गमवस्थाप्य युद्धमुपेयात्। भूमिवशेन वा विभक्तमुख्यामचक्षुर्विषये मोक्षयित्वा सेनापतिनायकौ व्यूहेयाताम्। शमान्तरं पत्तिं स्थापयेत्। त्रिशमान्तरमश्वम्। पंचशमान्तरं रथं हस्तिनं वा। द्विगुणान्तरं त्रिगुणान्तरं वा व्यूहेत। एवं यथासुखमसम्बाधं युध्येत। पञ्चारत्नि धनुः, तस्मिन्धन्विनं स्थापयेत्। त्रिधनुष्यश्वम् तंचधनुषि रथं हस्तिनं वा। पंचधनुरनीकसन्धिः पक्षकक्षोरस्यानाम्।

अब व्यूह एवं सेना का विभाजन तथा अश्व, रथ एवं हाथियों के युद्ध के विषय में कहेंगे। रणक्षेत्र से पाँच सौ धनुष दूरी पर छावनी

स्थापित करके विजिगीषु रणक्षेत्र बनवावे। अथवा भूमि की स्थिति के अनुसार रणक्षेत्र को इससे न्यूनाधिक दूरी पर भी रख सकते हैं। प्रमुख सैनिकों को पक्ष-कक्ष आदि पर स्थित करते हुए शत्रु के नेत्रों से बचाते हुए सेनापति अथवा नायक आदि व्यूह-रचना में लगें। एक खड़े हुए पदाति एवं अन्य खड़े हुए सैनिक के मध्य चौदह अंगुल का फासला होना चाहिए। दो अश्वों के मध्य बयालीस अंगुल तथा दो रथों या हाथियों के मध्य सत्तर अंगुल का अन्तर रहे। अथवा भूमि की स्थिति के अनुसार यह अन्तर दुगुना या तिगुना भी रखा जा सकता है। इस प्रकार सुविधापूर्वक व्यूह बना कर युद्ध करना चाहिये। पाँच अरत्नि अर्थात् पाँच हाथ का जो एक धनुष होता है, उतनी-उतनी दूरी पर धनुर्धारी वीरों को खड़ा किया जाय। तीन धनुष की दूरी पर घोड़ों और पाँच धनुष की दूरी पर हाथियों को खडा करना चाहिए। सेना के अगले भाग के पक्षद्वय अर्थात् दोनों ओर तथा-पिछले भाग के कक्षद्वय अर्थात् पीछे के दोनों पार्श्व एवं मध्य भाग-इन पाँचों सेनाओं के मध्य का अन्तर पाँच धनुष अर्थात् पच्चीस हाथ होना चाहिए।

अश्वस्य त्रयः पुरुषाः प्रतियोद्धारः, पंचदश रथस्य, हस्तिनो वा पञ्च चाश्वाः। तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानां विधेयाः। त्रीणि त्रिकाण्यनीकं रथानामुरस्यं स्थापयेत्। तावत्कक्षं पक्षं चोभयतः। पञ्चचत्वारिंशदेवं रथा व्यूहे भवन्ति। द्वे शते पञ्चविंशतिश्चाश्वाः, षट्शतानि पञ्चसप्ततिश्च पुरुषाः प्रतियोद्धारः। तावन्तः पादगोपा वाजिरथद्विपानाम्। एष समव्यूहः। तस्य द्विरथोत्तरा वृद्धिराएकविंशतिरथादित्येवमोजा दश समव्यूहप्रकृतयो भवन्ति।

प्रत्येक अश्वारोही के आगे तीन-तीन पदाति युद्ध के लिए तत्पर रहें। रथ एवं हाथी के आगे पन्द्रह-पन्द्रह सैनिक एवं पाँच-पाँच अश्वारोही तथा अश्व, रथ और हाथी की सेना के लिये पाँच पादरक्षक भी

रहें। इस प्रकार तीन-तीन की पंक्तियं में नौ-नौ और कक्ष-पक्ष में भी नौ-नौ ही रथ रखे जाँय। इस प्रकार कुल पैंतालीस रथ हुए। यह पहिले कह ही चुके हैं कि प्रत्येक रथ के आगे पाँच अश्वारोही सैनिक रखे जाँय। इस प्रकार पैंतालीस रथों के आगे सवा दो सौ घोड़े हुए। प्रत्येक रथ के आगे पन्द्रह सैनिक होने से कुल छः सौ पिचहत्तर पुरुष हुए। अश्व, रथ और हाथियों के पादरक्षक भी इसी हिसाब से रखे जाँय। यह समव्यूह हुआ। इस व्यूह में दो-दो रथ की वृद्धि पच्चीस रथ तक कर सकते हैं। इस प्रकार पाँच, सात, नौ आदि की विषम संख्या में इक्कीस रथों तक बढ़ाने से समव्यूह रचना के दस प्रकार हो सकते हैं।

पक्षकक्षोरस्यानामतो विशमसंख्याने विषमव्यूहः। तस्यापि द्विरथोत्तरा वृद्धिगएकविंशतिरथादित्येवमोजा दश विषमव्यूह-प्रकृततो भवन्ति। अतः सैन्यानां व्यूहशेषमावापः कार्यः। रथानां द्वौ त्रिभागावङ्गेष्वावापयेत्। शेषमुरस्यं स्थापयेत्। एवं त्रिभा-गोनो रथानामावामः कार्यः। तेन हस्तिनामश्वानामावापो व्याख्यातः। यावदश्वरथद्विपानां युद्धसम्बाधं न कुर्यात्तावदावापः कार्यः।

पक्ष, कक्ष और उरस्य में रथों की विषम संख्या हो तो वह विषम व्यूह होगा। इनमें भी तीन-तीन के आगे दो-दो बढ़ा कर इक्कीस पर्यन्त अयुग्म रूप से दस विषमव्यूह बनाये जा सकते हैं। इस प्रकार की व्यूह-रचना के पश्चात् भी कुछ सेना शेष रहे तो उसे भी व्यूह में इधर-उधर नियुक्त कर दे। उसमें से दो तिहाई भाग पक्ष-कक्ष में और शेष भाग उरस्य (मध्य) में मिला दे। व्यूह-रूप में स्थित रथ-सैन्य में जो अवशिष्ट रथ पीछे से मिलाये जाँय, उनकी संख्या, व्यूह रूप में स्थित सेना से एक तिहाई से भी कम रहे। इसी प्रकार हस्ति और अश्वों के मिलाये जाने के विषय में समझे। इस प्रकार युद्ध प्रारम्भ

होने तक अश्व, रथ, हाथी, आदि की बहुत भीड़-भाड़ दिखाई न पड़ने तक उसमें अधिक से अधिक सेना को सम्मिलित करता रहे।

दण्डबाहुल्यमावापः। पत्तिबाहुल्यं प्रत्यावापः। एकाङ्गबाहुल्यमन्वावापः। दूष्यबाहुल्यमत्यावापः। परावापात् प्रत्यावापाच्चतुर्गुणादाष्टगुणादिति वा विभवतः सैन्यानामावापः कार्यः। रथव्यूहेन हस्तिव्यूहो व्याख्यातः। व्यामिश्रो वा हस्तिरथाश्वानाम्। चक्रान्तयोर्हस्तिनः, पार्श्वयोरश्वमुख्याः, रथा उरस्ये। हस्तिनामुरस्यं रथानां कक्षावश्वानां पक्षाविति मध्यभेदी। विपरीतोऽन्तर्भेदी। हस्तिनामेव तु शुद्धः। सन्नाह्यानामुरस्यम्, औपवाह्यानां जघनं व्यालानां कोटयाविति। अश्वव्यूहो वर्मिणामुरस्यं शुद्धानां कक्षपक्षाविति। पत्तिव्यूहः पुरस्तादावरणिनः पृष्ठतो धन्विन इति शुद्धाः।

व्यूह-रचना के पश्चात् अवशिष्ट रही सेना को व्यूह में ही लगा देने को 'आवाप' कहते हैं। केवल पदाति सेना ही व्यूह में खपाई जाय तो उसे 'प्रत्यावाप' कहेंगे। अश्व, रथ, गज में से किसी एक अंग को उसमें मिलाना 'अन्वावाप' और दूष्य व्यक्तियों को सम्मिलित कर लेना 'अत्यावाप' कहा जाता है। शत्रु ने अपनी सेना में जितना आवाप या प्रत्यावाप किया हो, विजिगीषु को अपनी सेना में उससे चौगुना या अठगुना तक आवाप-प्रत्यावाप करना चाहिए। अथवा अपनी जैसी शक्ति हो, उसी के अनुसार सैन्य-वृद्धि करे। रथों की व्यूह-रचना के अनुसार ही हाथी की भी व्यूह-रचना कह दी गई समझे। अथवा गज, रथ, अश्व द्वारा सम्मिलित व्यूह बनावे। सेना के आगे दोनों ओर हाथियों को, सेना के पिछली दोनों ओर अश्वों को और मध्य भाग में रथों को खड़ा करे। इसे 'पक्षभेदी' व्यूह कहते हैं। यदि हाथियों को बीच में, रथों को पीछे और अश्वों को आगे की ओर रखें तो यह मध्यभेदी तथा इसके विपरीत रचना हो तो अन्तर्भेदी व्यूह होगा। यदि अश्व, रथ आदि से रहित, केवल हाथियों का ही व्यूह हो तो वह शुद्ध कहा जायगा। उन

हाथियों में जो युद्ध के योग्य हों, उन्हें बीच में रखे। राजा की सवारी वाले हाथी कक्ष अर्थात् पीछे के भाग में रहें। दुष्ट या बिगड़ैल हाथियों को आगे के दोनों भागों में नियुक्त करे। केवल घोड़ों वाले शुद्ध व्यूह में कवचमय घोड़ों को मध्य में रखे और कवच हीन अश्वों को पक्ष-कक्ष दोनों में खड़ा करे। इसी प्रकार पदाति सेना के शुद्ध व्यूह में कवचधारी सैनिकों को आगे के दोनों भागों में और धनुर्धारी सैनिकों को पीछे के दोनों भागों में रखे। यह गज, अश्व आदि के शुद्ध व्यूहों की व्याख्या हुई।

पत्तयः पक्षयोरश्वाः पार्श्वयोः, हस्तिनः पृष्ठतो रथाः पुरस्तात्, परव्यूहवशेन वा विपर्यास इति द्वयङ्गबलविभागः। तेन त्र्यङ्ग-बलविभागो व्याख्यातः। दण्डसम्पत् सारबलं पुंसाम्। हस्त्य-श्वयोर्विशेषः कुलं जातिः सत्वं वयः स्थता प्राणो वर्ष्म जव-स्तेजः शिल्पं स्थैर्यमुदग्रता विधेयत्वं सुव्यंजनाचारतेति। पत्त्य-श्वरथद्विपानां सारत्रिभागमुरस्यं स्थापयेत्, द्वौ त्रिभागौ कक्षं पक्षं चोभयतः। अनुलोममनुसारम्। प्रतिलोमं तृतीयसारम्। फल्गु प्रतिलोमम्। एवं सर्वमुपयोगं गमयेत्।

मिश्र व्यूहों में सेना के दो प्रकार के अंगों को मिला कर रचना की जाती है। पदाति सैनिकों को आगे और अश्वों को पीछे के दोनों भागों में रखे। या हाथियों को पीछे और रथों को आगे रखे। अथवा शत्रु का व्यूह तोड़ने के लिए इसमें उचित परिवर्तन करले। इस प्रकार सेना के दो अंगों से तीन प्रकार के व्यूह रचे जा सकते हैं। इसी के द्वारा सेना के तीनों अंगों के विषय में समझ ले। यह पक्ष,कक्ष, उरस्य के रूप में व्यूह-विभाग कहा गया। अब सार और फल्गु सेना के विषय में कहेंगे। जो पदाति सेना पितृ-पितामह आदि के क्रम से निरन्तर सेवा-रत सेना सारबल कही जाती है। गज और अश्व के विषय में यह विशेष है कि कुल, जाति, सत्व, धैर्य, वय, बल, ऊँचाई, चौड़ाई, वेग, पराक्रम, सीख, स्थिरता, उदग्रता, वश में रहना तथा अन्यान्य श्रेष्ठ

लक्षण और चेष्टाओं से सम्पन्न हाथी-घोड़ों को सार बल मानना चाहिए। पदाति, अश्व, रथ एवं हाथियों के सारबल के तिहाई भाग को मध्य में रखे। शेष भागों को पक्ष और कक्ष में नियुक्त करे। यह सैन्य-स्थिति का श्रेष्ठ प्रकार है। कुछ न्यून शक्ति को 'अनुसार' कहते हैं, उसे सारबल के पीछे रखे। इससे भी अल्प शक्ति वाली 'तृतीयसार' सेना को सारबल के आगे रखे। फल्गुबल अर्थात् तृतीयसार से भी अल्प बल को तृतीयसार सेना से भी आगे रखे। इस प्रकार सब सेनाओं के उपयोग के विषय में समझे।

फल्गुबलमन्तेष्ववधाय वेगोऽभिहुतो भवति। सारबलमग्रतः कृत्वा कोटीष्वनुसारं कुर्यात्। जघने तृतीयसारं, मध्ये फल्गुबल-मेतत्सहिष्णु भवति। व्यूहं तु स्थापयित्वा पक्षकक्षोरस्यानामेकेन द्वाभ्यां वा प्रहरेत्। शेषैः प्रतिगृह्णीयात्। यत्परस्य दुर्बलं वीत-हस्त्यश्वं दूष्यामात्यकं कृतोपजापं वा, तत्प्रभूतसारेणाभिहन्यात्। यद्वा परस्य सारिष्ठं तद्द्विगुणसारेणाभिहन्यात्। यदङ्गमल्पसार-मात्मनस्तद्बहुत्वेनोपचिनुयात्। यतः परस्यापचयस्ततोऽभ्याशे व्यूहेत, यतो वा भयं भवेत्।

फल्गुबल को पक्ष स्थान पर खड़ा करके युद्ध करावे तो (चाहे फल्गु बल नष्ट होजाय) शत्रु के आक्रमण का वेग ठंडा पड़ जाता है। यदि सारबल को आगे करें और इधर-उधर 'अनुसार' बल को लगावें तथा पीछे की ओर तृतीय सार को और बीच में फल्गु सेना को खड़ा करे। इस प्रकार की व्यूह-रचना से शत्रु का आक्रमण सहन किया जा सकता है। पक्ष, कक्ष और उरस्य में प्रथम व्यूह की यथावत स्थापना करके सेना के एक या दो अंगों के द्वारा शत्रु पर हमला करे तथा सेना के अवशिष्ट अंगों से शत्रु के हमले को रोके। जो शत्रु-सेना निर्बल, गज अश्व से रहित, दूष्य अमात्यों से युक्त एव उपजाप की हुई हो, उसे सारबल से समाप्त कर दे। अपनी सेना के अल्पसार को अधिक सेना से सम्पन्न करे तथा जिधर से अपनी सेना नष्ट हो रही हो, उसी ओर

अपनी सेना की व्यूह रचे। अथवा जिस ओर से आक्रमण का भय हो उसी ओर व्यूह बनावे।

अभिसृतं परिसृतमतिसृतमपसृतमुन्मथ्यावधानं वलयो गोमूत्रिकामण्डलं प्रकीर्णिका व्यावृत्तपृष्ठमनुवंशमग्रतः पार्श्वाभ्यां पृष्ठतो भग्नरक्षा भग्नानुपात इत्यश्वयुद्धानि। प्रकीर्णिकावर्जान्येतान्येव, चतुर्णामंगानां व्यस्तसमस्तानां वा घातः। पक्षकक्षोरस्यानां च प्रभंजनमवस्कन्दः सौप्तिकं चेति गस्तियुद्धानि। उन्मथ्यावधानवर्जान्येतान्येव स्वभूमावभियानापयानस्थितयुद्धानीति रथयुद्धानि। सर्वदेशकालप्रहरणमुपांशुदण्डश्चेति पत्तियुद्धानि।

एतेन विधिना व्यूहानोजान् युग्मांश्च कारयेत्।
विभवो यावदङ्गानां चतुर्णां सदृशो भवेत् ॥१
द्वे शते धनुषां गत्वा राजा तिष्ठेत्प्रतिग्रहे।
भिन्नसंघातनं तस्मान्न युध्येताप्रतिग्रहः ॥२

अत्र अश्वों का प्रकार कहते हैं। अभिसृत, परिसृत, अतिसृत, अपसृत, उन्मथ्यावधान, वलय, गोमूत्रिका, मण्डल, प्रकीर्णिका, व्यावृत्तपृष्ठ, अनुवंश, भागती सेना को आगे-पीछे से रोकने के कार्य में संलग्न और भागती हुई शत्रु सेना का पीछा करने में लगी हुई अश्व-सेना। यह तेरह प्रकार की अश्व सेना शत्रु की ओर जाना, उसे चोट पहुँचाना, उसे छिन्न-भिन्न करना, शत्रु सेना को उन्मथित करना, उसमें वक्रगति से घुसना आदि-आदि विभिन्न कार्यों को करती है। प्रकीर्णिका अर्थात् सब गतियों के मिश्रित प्रयोग वाली अश्व सेना के अतिरिक्त शेष सब प्रकार के युद्धों में शत्रु सेना के बिखरे हुए या संगठित सभी अंगों का नष्ट करना पक्ष, कक्ष या मध्य में खड़ी सेना को कुचलना, शत्रु के छिद्र देख कर प्रहार करना, सोते हुए शत्रुओं को रोंद डालना आदि कार्य हाथियों के युद्ध द्वारा होता है। उन्मथ्यावधान अर्थात् अनेक हाथियों द्वारा शत्रु-सेना को मर्दित करके फिर एकत्र होजाना आदि के अतिरिक्त शेष सब हाथियों के युद्ध में अपने ठहरने योग्य स्थान से शत्रु पर

हमला, शत्रु पर हमला करके भाग जाना, सुरक्षित बैठें हुए शत्रु को चारों ओर से घेर कर युद्ध करना आदि रथ युद्ध कहे गये हैं। सब देश एवं काल में शस्त्र धारण करके शत्रु सेना के नाश में तत्पर होना पदाति सेना का युद्ध कहा गया है। उक्त विधियों से युग्म-अयुग्म व्यूहों की रचना करानी चाहिए। अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार जितनी चतुरंगिणी सेना अपने पास हो, उसी के अनुरूप व्यूह-रचना करे। युद्ध काल में राजा को सैन्यव्यूह के पीछे दो सौ धनुष दूर रहे। क्योंकि वैसा होने से शत्रु द्वारा सेना नष्ट कर दी जाने पर भी पुनः सैन्य एकत्र करना सरल होता है इसलिए सेना के पिछले भाग के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर रह कर राजा को युद्ध नहीं करना चाहिए ॥१-२॥

षष्ठोऽध्यायः

दण्ड, भोग, मण्डल, असंहतव्यूह एवं प्रतिव्यूहस्थापन

पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभागः। पक्षौ कक्षावुरस्यं प्रतिग्रहः इति बार्हस्पत्यः। प्रपक्षकक्षोरस्या उभयोर्दण्डमण्डलासंहताः प्रकृतिव्यूहाः। तत्र तिर्यग्वृत्तिर्दण्डः। समस्तानामन्वावृत्तिर्भोगः। सरतां सर्वतो वृत्तिर्मण्डलः। स्थितानां पृथगनीकवृत्तिरसंहतः।

अब दण्डव्यूह, भोगव्यूह, प्रकृतिव्यूह आदि के विषय में कहते हैं। सेना के दोनों पक्ष, उरस्य और पृष्ठ भाग रूपी अवयवों वाले व्यूहों का विभाग उशना (शुक्राचार्य) ने इन्हीं चार प्रकारों से किया है। पक्ष, कक्ष अर्थात् आगे-पीछे के दो-दो भाग, उरस्य एवं प्रतिग्रह इस प्रकार से छः विभाग आचार्य बृहस्पति ने किये हैं। उक्त दोनों आचार्यों के मत में पृथक्-पृथक् पक्ष, कक्ष, तथा उरस्य में स्थित सेना दण्ड, भोग, मंडल और असंहत नामक चार प्रकार के व्यूह वाली होती है। यह प्रकृतिव्यूह कहे गये हैं। सेना को तिरछी स्थित करके बनाया जाने वाला दण्डव्यूह

माना गया है। शुक्राचार्य और बृहस्पति के मत से क्रमशः चार और छः अवयवों का निरंतर कई घुमाव वाला भोगव्यूह तथा आक्रमण करती हुई शत्रु सेना को चारों ओर से घेर कर उस पर प्रहार करना मण्डल व्यूह है। शत्रु की ओर जाने से पूर्व चार-छः स्थानों पर रुकी हुई सेना से स्वयं को या परस्पर एक दूसरे से भिन्न प्रदर्शित करते हुए आक्रमण करना असंहत व्यूह कहा जाता है।

पक्षकक्षोरस्यैः समं वर्तमानो दण्डः। स कक्षाभिक्रान्तः प्रदरः। स एव पक्षाभ्यां प्रतिक्रान्तो दृढकः। स एवातिक्रान्तः पक्षाभ्यामसह्यः। पक्षाववस्थाप्योरस्यातिक्रान्तः श्येनः। विपर्यये चापं चापकुक्षिः प्रतिष्ठितः सुप्रतिष्ठितश्च। चापपक्षः संजयः। स एवोरस्यातिक्रान्तो विजयः। स्थूलः कर्णपक्षः स्थूलकर्णः। द्विगुण-पक्षस्थूलो विशालविजयः। त्र्यभिक्रान्तपक्षश्चमूमुखः। विपर्यये झषास्यः। ऊर्ध्वराजिर्दण्डः सूची। द्वौ दण्डौ बलयः। चत्वारो दुर्जयः। इति दण्डव्यूहाः।

कक्ष, पक्ष, उरस्य रूपी पाँच प्रकार की सेना द्वारा सही भाग में अवस्थित और चलने वाली सेना दण्डव्यूह कही गई है। दोनों कक्षों से आक्रमण का संचालन करे तो वही सेना प्रदर कही जायगी। यदि यह सेना दोनों पक्षों से विपरीत चलकर आक्रमण करे तो उसका नाम 'दृढक' और अपने दोनों पक्षों द्वारा वेग पूर्वक शत्रु सेना में प्रविष्ट हो जाय तो 'असह्य' होगा। यदि वह दोनों पक्षों को स्व-स्व स्थान पर रख कर मध्यभाग द्वारा प्रहार करे तो श्येनव्यूह कहलायेगी। इन व्यूहों के अतिरिक्त चार प्रकार के व्यूह और भी हैं—चाप, चापकुक्षि, प्रतिष्ठ और सुप्रतिष्ठ। अब दण्ड व्यूह के विकृत नाम कहते हैं। जिसके दोनों पक्ष धनुषाकार हों वह संजय, यदि उरस्य द्वारा आक्रमण करके शत्रु सेना उसमें घुस कर फँस जाय तो वह विजय और जिसके दोनों पक्ष स्थूल-कर्ण के आकार के हो जाँय वह स्थूलकर्ण व्यूह होगा। उक्त विजयव्यूह की अपेक्षा दुगुने पक्ष-कक्ष हों तो वह विशाल विजय व्यूह कहा जायगा।

जिसके दोनों पक्ष-कक्ष एवं उरस्य के समान अभिक्रान्त हों तो वह चमूमुख और उसके विपरीत हो तो झषास्यव्यूह होगा। शत्रु की ओर बढ़ने वाली सेना से युक्त दण्डव्यूह सूचीव्यूह कहा जायगा। जिसमें दोनों पक्ष, दोनों कक्ष और उरस्य पर दो दण्डव्यूह तिरछे खड़े किये जाँय, वह बलय व्यूह और वैसे ही चार दण्डव्यूह किसी में स्थित कर दें तो वह दुर्जयव्यूह होगा। यह दण्डव्यूह की व्याख्या पूर्ण हुई।

पक्षकक्षोरस्यैर्विषमं वर्तमानो भोगः। स सर्पसारी गोमूत्रिका वा। स युग्मोरस्यो दण्डपक्षः शकटः, विपर्यये मकरः, हस्त्यश्वरथैर्व्यतिकीर्णः शकटः पारिपतन्तकः। इति भोगव्यूहाः। पक्षकक्षोरस्यानामेकीभावे मण्डलः। स सर्वतोमुखः, सर्वतोभद्रः, अष्टानीको दुर्जयः। इति मण्डलव्यूहाः। पक्षकक्षोरस्यानामसंहतादसंहतः। स पंचानीकानामाकृतिस्थापनाद्वज्रो गोधा वा चतुर्णामुद्यानकः काकपदी वा। त्रयाणामर्धचन्द्रकः कर्कटश्रृङ्गी वा। इत्यसंहतव्यूहाः।

पक्ष-कक्ष और उरस्य भागों में विषय संख्यक भोगव्यूह सर्प जैसी या गोमूत्रिका जैसी आकृतियों में होता है। इसलिए यह सर्पसारी और गोमूत्रिका के भेद से दो प्रकार का है। जिसमें, मध्यभाग दो भागों में बँट कर दण्डाकार हो जाय तथा जिसके दोनों पक्ष एक-एक दण्ड के समान दिखाई दें उसे शकटव्यूह कहते हैं। इसके विपरीत स्थिति होने पर मकरव्यूह कहा जायगा। शकटव्यूह में गज, अश्व और रथ भी मिला दें ती वह पारिपतन्तव्यूह हो जायगा। यह भोगव्यूह का वर्णन हुआ। जिसके पक्षद्वय, कक्षद्वय और उरस्य परस्पर मिल जाँय वह मण्डलव्यूह होगा, जिसके सर्वतोभद्र और दुर्जय संज्ञक दो भेद माने जाते हैं। शत्रु पर सब ओर से आक्रमण करने के लिए रचा गया होने से यह सर्वतोभद्र हुआ। जिसमें उरस्य और दोनों पक्षोंमें दो-दो सेनाएँ तथा दोनों कक्षों में एक सेना स्थित करके हमला कर दिया जाय वह अष्टानीकव्यूह कहलाता है। यह मन्डल व्यूह की व्याख्या हुई। पक्षद्वय, कक्षद्वय

और उरस्य यह पांचों पृथक्-पृथक् रूप से शत्रु पर हमला करें तो उसे असंहतव्यूह कहेंगे। असंहतव्यूह के भी पाँच भेद कहे हैं। यदि यह सेनाएँ वज्र की आकृति में संगठित हों तो वज्रव्यूह, गोधा की आकृति में हों तो गोधाव्यूह तथा पक्षद्वय, उरस्य और सेना के पीछे के भाग में असंहत भाव से रखने पर उद्यानकव्यूह या काकपदीव्यूह कहा जायगा। यदि पक्षद्वय, उरस्य और पीछे के भाग—इन तीन स्थानों पर सैन्य एकत्र करें तो अर्धचन्द्रक अथवा कर्कटशृंगीव्यूह कहेंगे। यह असंहत-व्यूह की व्याख्या हुई।

रथोरस्यो हस्तिकक्षोऽश्वपृष्ठोऽरिष्टः। पत्तयोऽश्वा रथा हस्ति-नश्चानुपृष्ठमचलः। हस्तिनोऽश्वा रथाः पत्तयश्चानुपृष्ठमप्रतिहतः। तेषां प्रदरं दृढकेन घातयेत्। दृढकमसह्येन, श्येनं चापेन, प्रतिष्ठं सुप्रतिष्ठेन, संजयं विजयेन, स्थूलकर्णं विशालविजयेन, पारिप-तन्तकं सर्वतोभद्रेण, दुर्जयेन सर्वान्प्रतिव्यूहेत। पत्त्यश्वरथद्वि-पानां पूर्वं पूर्वमुत्तरेण घातयेत्। हीनाङ्गमधिकाङ्गेन चेति। अङ्गदशकस्यैकः पतिः पदिकः, पदिकदशकस्यैकः सेनापतिः, तद्दश-कस्यैको नायक इति। स तूर्यघोषध्वजपताकाभिव्यूहाङ्गाना संज्ञाः स्थापयेत्। अङ्गविभागे संघाते स्थाने गमने व्यावर्तने प्रह-रणे च समे व्यूहे देशकालसारयोगात्सिद्धिः।

अब अन्य व्यूह-भेदों को कहते हैं। जिसके बीच में रथ, दोनों कक्षों में गज, पीछे अश्व तथा दोनों पक्षों में पदाति सेना हो, वह अरिष्टव्यूह, जिसके दोनों पक्षों में पदाति, मध्य में अश्व, दोनो कक्षों में रथ और पीछे हस्तिसेना हो वह अचलव्यूह तथा पक्षद्वय में गज, कक्षद्वय में रथ और पृष्ठ में पदाति हों, वह अप्रतिहत व्यूह कहा जायगा। अब प्रतिव्यूह के विषय में कहते हैं। प्रदर व्यूह पर दृढक व्यूह से, तथा दृढक पर असह्यव्यूह से प्रहार करे। इसी प्रकार प्रतिष्ठव्यूह पर सुप्रतिष्ठ से, संजय व्यूह पर विजय व्यूह से, स्थूलकर्ण पर विशालविजय व्यूह से और

पारिपतन्त पर सर्वतोभद्रव्यूह से प्रहार करना चाहिये। दुर्जय संज्ञक व्यूह ऐसा होता है, जिससे कि सब प्रकार के व्यूहों पर प्रहार संभव है। पदाति सेना को घुड़सवारों से, घुड़सवार सेना को रथ-सेना से और रथ-सेना को हाथियों की सेना से नष्ट कर डाले। क्षीण अंग एवं अल्पबल वाली सेना को प्रबल सेना से हरावे। दस सेनांग अर्थात् दस-दस रथ और हाथी के अधिकारी को 'पदिक', दस पदिकों के अधिकारी को 'सेनापति तथा दस सेनापतियों के अधिकारी को 'नायक' कहते हैं। व्यूह के अंगभूत रथ-हाथी आदि के तितर-बितर होने पर नायक ही उन्हें एकत्र करता है। सेना की गति रुकने पर वह ही उसे गतिशील बनाता है। अपने और शत्रु के समान बली होने पर देश, काल, सार आदि के योग से सिद्धि अर्थात् विजय प्राप्त हो सकती है।

यन्त्रैरुपनिषद्योगैस्तीक्ष्णैर्व्यासक्तघातिभिः।
मायाभिर्दैवसंयोगैः शकटैर्हस्तिभूषणैः ॥१
दूष्यप्रकोपैर्गोयूथैः स्कन्धावारप्रदीपनैः।
कोटीजघनघातैर्वा दूतव्यंजनभेदनैः ॥२
दुर्गं दग्धं हृतं वाते कोपः कुल्यः समुत्थितः।
शत्रुरार्टविको वेति परस्योद्वेगमाचरेत् ॥३
एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुः क्षिप्तो धनुष्मता।
प्राज्ञेन तु मतिः क्षिप्ता हन्याद्गर्भगतानपि ॥४

जामदग्न्यादि यन्त्र, औपनिषदिक प्रकरणोक्त विष-प्रयोग, छिप कर या मिल कर घात करने वाले तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर, छल राजा का ऐश्वर्य कथन एवं हाथी योग्य मार्गों से आच्छादित रथों से शत्रु को व्यथित करे। शत्रु के दूष्य-वर्ग में कोप, मार्ग में गो-समूह की रुकावट, स्कन्धावार अर्थात् छावनी में अग्निकाण्ड, सेना के आगे-पीछे प्रहार या दूतवेश वाले गुप्तचरों द्वारा शत्रु सेना में फूट डलवादे। या ऐसा कहे कि तुम्हारा दुर्ग जल गया, लुट गया अथवा तुम्हारे कुल का ही पुरुष उपद्रव कर रहा है, तुम्हारे सामन्त शत्रु ने हमला बोल दिया या

तुम्हारे आटविक अमित्र ने युद्ध छेड़ दिया, आदि अफवाहों से शत्रु सेना में खलबली मचवादे। इससे भी शत्रु शीघ्र वश में आ सकता है। धनुर्धारी द्वारा चलाया हुआ बाण, चाहे किसी एक को मारे या न मारे, किन्तु बुद्धिमान द्वारा प्रयुक्त बुद्धि गर्भस्थित जीव को भी नष्ट कर सकती है। इसलिए बुद्धि को शक्ति से प्रबल समझे ॥१-४॥

॥ सांग्रामिक दशम आधकरण समाप्त ॥

———

संघवृत्त एकादश अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

भेद प्रयोग एवं उपांशुदण्ड

संघलाभो दण्डमित्रलाभानामुत्तमः । संघा हि संहतत्वाद-धृष्याः परेषाम् । ताननुगुणान्भुंजीत सामदानाभ्याम् । विगुणा-न्भेददण्डाभ्याम् । काम्बोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्ताशस्त्रोप-जीविनः । लिच्छिविकवृजिकमल्लकमद्रककुकुरपाञ्चालादयो राजशब्दोपजीविनः । सर्वेषामासन्नाः सत्रिणः संघानां परस्पर-न्यगद्वेषवैरकलहस्थानान्युपलभ्य क्रमाभिनीतं भेदमुपचारयेयुः— 'असौ त्वा विजल्पति' इति । एवमुभयतो बद्धरोषाणां विद्याशिल्प-द्यूतवैहारिकेष्वाचार्यव्यंजना बालकलहानुत्पादयेयुः । वेशशौण्डि-केषु वा प्रतिलोमप्रशंसाभिः संघमुख्यमनुष्याणां तीक्ष्णाः कलहा-नुत्पादयेयुः । कृत्यपक्षोपग्रहेण वा कुमारकान् विशिष्टच्छन्दिकया हीनच्छन्दिकानुत्साहयेयुः ।

सैन्यलाभ या मित्रलाभ की अपेक्षा संघ लाभ श्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि संघ अर्थात् समूह में रहने के कारण शत्रु का दबाव नहीं चलता। यदि वीजिगीषु को समूह में रहने का लाभ मिल जाय तो उसे साम, दान आदि के द्वारा अपने पक्ष में लेकर लाभ उठावे। यदि संघ विरोध में हो जाय तो उसे भेद अथवा दण्ड नीति के प्रयोग से काबू में करे। काम्बोज और सौराष्ट्र संघ-समूह के रहने वाले क्षत्रिय-वैश्य आदि वार्ता अर्थात् कृषिकर्म और वाणिज्य एवं शस्त्र आदि के द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं। लिच्छिविक, व्रजिक, मल्लक, कुकुर कुरु और पांचाल आदि देशों के राजागण भी संघराज्य के अन्तंगत ही हैं।

उक्त दोनों प्रकार के संघों के पास जाकर सत्रि संज्ञक गुप्तचर पारस्परिक दोष, द्वेष, वैर, कलह आदि के कारणों की खोज करें और फिर संघ के मुख्य-मुख्य राजाओं में भेद डालने का प्रयत्न करते हुये कहें—वह संघ आपके संघ की निन्दा करता है। यही बात वे गुप्तचर दूसरे संघ के मुखयों से कहें तो दोनों संघों में फूट पड़ सकती है। जब वे दोनों संघ परस्पर विरुद्ध हो जांय तब आचार्य वेशधारी गुप्तचर विद्या, शिल्प, जुआ एवं वैहारिक अर्थात् क्रीड़ा आदि के विषय में बालक के समान भड़का कर उनमें कलह करा दें। अथवा वेश्या और मदिरापान में अनुरक्त मुख्य पुरुषों में व्याज स्तुति कराते हुये वे तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर उनमें आपस में झगड़ा करा दें। अथवा उनमें जो क्रुद्ध, लोभी, डरे हुए या अपमानित हों. उन्हें अपने विश्वास में लाकर परस्पर कलह करावें। संघ में रहकर वे गुप्तचर जो विशेष सुखी लोगों की अपेक्षा राजकुमारों जैसे सुन्दर किन्तु नीचश्रेणी के साधनों से आजीविका कमाते हों उन बालक जैसे व्यक्तियों को सुख भोगने वालों के विरुद्ध कर दें।

विशिष्टानां चैकपात्रं विवाहं होनेभ्यो वारयेयुः। हीनान् वा विशिष्टैरेकपात्रे विवाहे वा योजयेयुः। अवहीनान् वा तुल्यभावोपगमने कुलतः पौरुषतः स्थानविपर्यासतो वा व्यवहारमवस्थितं वा प्रतिलोमस्थापनेन निशामयेयुः। विवादपदेषु वा द्रव्यपशुमनुष्याभिघातेन रात्रौ तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः। सर्वेषु च कलहस्थानेषु हीनपक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य प्रतिपक्षवधे योजयेत्, भिन्नानपवाहयेद्वा। एकदेशे समस्तान् वा निवेश्य भूमौ चैषां पंचकुलीं दशकुलीं वा कृष्यायां निवेशयेत्। एकस्था हि शस्त्रग्रहणसमर्थाः स्युः। समवाये चैषामत्ययं स्थापयेत्।

वे तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर विशिष्ट व्यक्तियों के भोजन एवं विवाह व्यवहार हीन लोगों से करावें। अथवा हीन और विशिष्टों को एक पंक्ति में बैठा कर परस्पर भोजन व्यवहार करा दें। कुल, पौरुष एवं स्थान

भेद से जो व्यक्ति नीचे माने जाते हों, उन्हें उच्च श्रेणी वालों की समानता में पहुंचने के लिये भड़कावें। अथवा संघ-समूह से यदि कोई नियम न्याय संगत भी हो, तो भी तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर उस कानून का विपरीत अभिप्राय बताकर संघ का विरोध उत्पन्न करावे। अथवा रात्रि-काल में किसी विचारणीय विषय पर तर्क चल रहे हों तब उनमें से किसी एक पक्ष के मनुष्य का धन, पशु या मनुष्य नष्ट करके उसका दोष दसरे पक्ष पर लगा दें। एसे अवसर पर हीन पक्ष के व्यक्तियों को धन-जन की सहायता देकर शत्रु की हत्या के लिए उकसावे। अथवा संघ से विरुद्ध हुए व्यक्तियों को वहाँ से अन्य स्थान पर भेज दे। अथवा उन्हें कहीं एक स्थान पर एकत्र कर कृषि योग्य भूमि पर ऐसे व्यक्तियों के पाँच-दस परिवार मिलाकर गाँव बसादे। क्योंकि यदि यह एक स्थान पर एकत्रित रहें तो सम्भव है कि सबल होकर विजिगीषु के ही विरुद्ध आ डटें। क्योंकि एक स्थान पर संघ के पाँच-दस परिवार को मिलाकर एक-एक गांव बसा देना उचित है, क्योंकि यह चाहें तो विजिगीषु के विरुद्ध भी शस्त्र उठा सकते हैं। यदि यह एक ही स्थान पर रहें तो उनके प्रति दण्डव्यवस्था करनी चाहिए।

राजशब्दिभिरवरुद्धमवक्षिप्तं वा कुल्यमभिजातं राजपुत्रत्वे स्थापयेत्। कार्तान्तिकादिश्चास्य वर्गो राजलक्षण्यतां संघेषु प्रकाशयेत्। संघमुख्यांश्च धर्मिष्ठानुपजपेत्—'स्वधर्ममममुष्य राज्ञः पुत्रे भ्रातरि वा प्रतिपद्यध्वम्' इति। प्रतिपन्नेषु कृत्यपक्षोपग्रहार्थमर्थं दण्डं च प्रेषयेत्। विक्रमकाले शौण्डिकव्यंजनाः पुत्रदारप्रेतापदेशेन 'नैषेचनिकम्' इति मदनरसमुक्तान्मद्यकुम्भान् शतशः प्रयच्छेयुः। चैत्यदैवतद्वाररक्षास्थानेषु च सत्रिणः समयकर्मनिक्षेपं सहिरण्याभिज्ञानमुद्राणि हिरण्यभाजनानि च प्ररूपयेयुः, दृश्यमानेषु च संघषु 'राजकीयाः' इत्यावेदयेयुः। अथवावस्कन्दं दद्यात्। संघानां वा वाहनहिरण्ये कालिके गृहीत्वा संघमुख्याय प्रख्यातं द्रव्यं

प्रयच्छेत् । तदेशं याचिते 'दत्तममुष्मै मुख्याय' इति ब्रूयात् । एतेन स्कन्धावाराटवीभेदो व्याख्यातः ।

विजिगीषु राजा नामधारी संघ द्वारा रोकें या पराजित हुए किसी विशिष्ट राजकुल में उत्पन्न पुरुष को योग्य व्यक्ति के रूप में राजपुत्र बनावे । फिर कार्तान्तिक लोग संघ में मिल कर उस कल्पित राजकुमार में राजयोग होने का लक्षण बतावे । जो संघमुख्य धार्मिक विचार के हों उन्हें यह कह कर फोड़े कि अमुक राजपुत्र या राजभ्राता के क्लेश को मिटाने के लिए आप अपने धर्मानुकूल कार्य करें । यदि वे उनकी वात स्वीकार कर लें तब संघ के रुष्ट एवं लुब्ध मुख्यों को अपने अनुकूल बनाने के लिये धन-जन की सहायता विजिगीषु करे । ऐसा होने पर संघ के राजाओं में परस्पर युद्ध छिड़ने पर शौण्डिक अर्थात् मदिरा बेचने वाले के वेश वाले गुप्तचर अपने पुत्र या स्त्री के मरने का वहाना करते हुए प्रेत के लिये दान किये हुये सैकड़ों मद्यघट जिनमें धतूरे का रस मिला हुआ हो, लाकर उन संघ वालों को पान करा दें । सत्रि गुप्तचर धर्मालय, देवालय, रक्षास्थान आदि में संघ के अध्यक्ष से सन्धि विषयक शपथ कराने के उद्देश्य से धरोहर योग्य, राजमुद्रा से अंकित धन की थैलियों वाला स्वर्णपात्र उन्हें दे दें । जब वे पात्र अन्य सब संघियों को दिखाई दे जाँय तब गुप्तचर सब में प्रचारित कर दें कि इन स्वर्णपात्रों को राजा ने भेजा है । जब इस विषय को लेकर संघ में फूट पड़ जाय तव विजिगीषु उन पर हमला बोल दे । अथवा संघ से वाहन, हिरण्यादि कुछ समय के लिए उधार लेकर कालान्तर में सबके समक्ष संघ के मुख्य को लौटा दे । जब अन्यान्य सदस्य ऋण रूप में लिये धन-वाहन आदि वापस मांगे, तब स्पष्ट बता दे कि संघ के मुख्य को वे सब वस्तुएं लौटाई जा चुकी हैं । इससे संघ एवं उसके मुख्य में संघर्ष उत्पन्न हो जायगा । इसी प्रकार आटविकों में भी फूट डालने के उपाय कह दिये गये समझो ।

संघमुख्यपुत्रमात्मसंम्भावितं वा सत्री ग्राहयेत्—'अमुष्य राज्ञः पुत्रस्त्वं शत्रुभयादिह न्यस्तोऽसि' इति। प्रतिपन्नं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य संघेषु विक्रमयेत्। अवाप्तार्थस्तमपि प्रवासयेत्। बन्धकीपोषकाः प्लवकनटनर्तकसौभिका वा प्रणिहिताः स्त्रीभिः परमरूपयौवनाभिः संघमुख्यानुन्मादयेयुः। जातकामानामन्यतमस्य कृत्वाऽन्यत्र गमनेन प्रसभहरणेन वा कलहानुत्पादयेयुः। कलहे तीक्ष्णाः कर्म कुर्युः—'हतोऽयमित्थं कामुकः' इति। विसंवादितं वा मर्षयमाणमभिसृत्य सत्री ब्रूयात्—'असौ मां मुख्यस्त्वयि जातकामां बाधते, तस्मिन् जीवति नेह स्थास्यामि' इति घातमस्य प्रयोजयेत्। प्रसह्यापहृता वा वनान्ते क्रीडागृहे वापहर्तारं रात्रौ तीक्ष्णेन घातयेत्। स्वयं वा रसेन। ततः प्रकाशयेत्—'अमुना मे प्रियो हतः' इति।

अब उपांशु वध के विषय में कहेंगे। किसी अत्यंत अहङ्कारी संघ-मुख्य के किसी पुत्र से सत्रि कहे कि तुम अमुक राजा के सुपुत्र हो, किन्तु शत्रुभय से तुम्हें यहाँ धरोहर के रूप में रखा गया है। जब वह इस कथन पर विश्वास कर ले, तब विजिगीषु उसे धन-मान के द्वारा अपने वश में करके संघ से भिड़ा दे। फिर जब वह राजकुमार संघ को हरा दे, विजिगीषु संघ को अपने वश में करके उस कुमार को वहाँ से कहीं अन्यत्र भेज दे। अथवा किसी वेश्या के पोषक, प्लवक, नट, नर्तक या सौभिक आदि का वेश धारण करने वाले गुप्तचर अपने करतब दिखाते हुए रूपवती नवयुवतियों में उन संघमुख्यों को भ्रमाये रहें। उनमें से जो कोई एक मुख्य किसी रूपसी में अधिक आसक्त होजाय तो वह रूपवती उसके मन में विश्वास जमाकर अपने मिलने का समय-स्थान आदि निश्चित कर ले। किन्तु इसी बीच गुप्तचरों के प्रयत्न से कोई अन्य मुख्य उस सुन्दरी को अपने साथ लेकर कहीं चला जाय। तभी गुप्तचर उस सुन्दरी का उस मुख्य द्वारा उड़ा लिया जाना प्रचारित कर दें। इससे उनमें परस्पर कलह उत्पन्न हो जायगी। तत्पश्चात् तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर

किसी प्रकार उनमें से किसी एक प्रमुख की हत्या करके अफवाह उड़ा दें कि अमुक को अमुक कामुक मुख्य ने मार डाला है। यदि ऐसा होने पर भी संघमुख्य परस्पर न लड़ें तो वह सुन्दरी किसी संघमुख्य से कहे कि मैं आप पर अनुरक्त हूं, किन्तु अन्य मुख्य मुझे रोके हुए है। उसके जीवित रहते हुए मेरा आपके पास आकर रहना सम्भव नहीं है। इस प्रकार उसे उत्तेजित करके अन्य मुख्य की हत्या करा दे। अथवा यदि कोई मुख्य बलपूर्वक उस वेश्या को किसी वनोद्यान या क्रीड़ास्थल में ले जाय तो तीक्ष्ण गुप्तचर किसी प्रकार उस मुख्य को मरवा दें या स्वयं विष देकर मार डालें। तदनन्तर वह वेश्या यह बात फैला दे कि अमुक कामुक मुख्य ने मेरे प्रियतम की हत्या कर दी है।

जातकामं वा सिद्धव्यंजनः सांवननिकीभिरोषधीभिः संवास्य रसेनातिसन्धायापगच्छेत्। तस्मिन्नपक्रान्ते सत्रिणः परप्रयोगमभिशंसेयुः। आढ्यविधवा गूढाजीवा योगस्त्रियो वा दायनिक्षेपार्थं विवदमानाः संघमुख्यानुन्मादयेयुः इति। अदितिकौशिकस्त्रियो नर्तकीगायना वा प्रतिपन्नान् गूढवेश्मसु रात्रिसमागमप्रविष्टांस्तीक्ष्णा हन्युर्बद्ध्वा हरेयुर्वा। सत्री वा स्त्रीलोलुपं संघमुख्यं प्ररूपयेत्—'अमुष्मिन् ग्रामे दरिद्रकुलमपसृतं, तस्य स्त्री राजार्हा गृहाणैनाम्' इति। गृहीतायामर्धमासान्तरं सिद्धव्यंजनो दूष्यः संघमुख्यमध्ये प्रक्रोशयेत्—'असौ मुख्यो मे भार्यां स्नुषां भगिनीं दुहितरं वाधिचरति' इति। तं चेत्संघो निगृह्णीयात्, राजा एनमुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेत्। अनिगृहीते सिद्धव्यंजनं हि रात्रौ तीक्ष्णाः प्रवासयेयुः। ततस्तद्व्यंजनाः प्रक्रोशेयुः—'असौ ब्रह्महा ब्राह्मणीजारश्च' इति।

अथवा सिद्ध वेश वाले गुप्तचर किसी कामुक मुख्य को वशीकरण वाली औषधि के बहाने विष मिली हुई औषधि देकर समाप्त कर दे और उस स्थान को छोड़ कर भाग जाय। फिर सत्रि संज्ञक गुप्तचर प्रचारित कर दें कि किसी कामुक पुरुष ने ही उस सिद्ध के द्वारा उसकी हत्या

कराई थी। अथवा कोई धनिक विधवा या निर्धन पति वाली जो स्त्री छिप कर व्यभिचार कर्म में प्रवृत्त होती हो अथवा स्त्री वेश में पुरुष हो वह किसी दायादि के विवाद का निर्णय कराने के बहाने से किसी संघ-मुख्य के पास जाकर उसे अपने सौंदर्यमय हाव-भावों से मोहित कर ले। अथवा अदिति स्त्री अर्थात् देवमूर्ति के नाम पर आजीविका कमाने वाली, सर्प पकड़ने वाली, नर्तकी या गायिका आदि में से कोई किसी मुख्य के पास जाकर उससे आसक्त कर ले। जब वह आसक्त होकर पूर्व संकेत वाले किसी छिपे हुए विहार गृह में उसे ले जाय, तब तीक्ष्ण गुप्तचर वहीं उसे मार दें या अपहरण करके कहीं अन्यत्र लेजाँय। अथवा सत्रिगण मुख्य से कहें कि अमुक ग्राम का अमुक धनहीन व्यक्ति जीविका के निमित्त कहीं गया हुआ है, उसकी स्त्री राजाओं के उपभोग के योग्य है। इसलिए आप उसे ले लीजिए। इससे सहमत होकर वह संघ मुख्य जब उस स्त्री को अपने पास बुलाले, उसके एक पखवाड़े के पश्चात् एक सिद्ध वेशधारी व्यक्ति संघ मुख्यों के समक्ष जाकर रुदन अथवा चीत्कार करता हुआ कहे कि इस मुख्य ने मेरी पत्नी, पुत्रवधू, भगिनी या पुत्री को बलपूर्वक अपने उपभोगार्थ रख लिया है। इस बात से प्रभावित होकर संघ यदि उस मुख्य को कारागार मे डाल दे तो विजिगीषु उस सिद्ध वेशधारी पुरुष को अपने वश में रखता हुआ उससे अन्यान्य विरोधी मुख्यों के प्रतीकार का कार्य ले। यदि वह मुख्य संघ द्वारा कारागार में न डाला जाय तो रात्रि काल में तीक्ष्ण गुप्तचर उस सिद्ध वेशधारी को मार डालें तथा प्रातःकाल होने पर अनेक सिद्ध वेशधारी चीखते-चिल्लाते हुए रुदन करें कि यह मुख्य ब्राह्मणी से व्यभिचार करने वाला एवं ब्रह्महत्यारा है।

कार्तान्तिकव्यंजनो वा कन्यामन्येन वृतामन्यस्य प्ररूपयेत्—'अस्य कन्या राजपत्नी राजप्रसविनी च भविष्यति, सर्वस्वेन प्रसह्य वैनां लभस्व' इति। अलभ्यमानायां परपक्षमुद्धर्षयेत् लब्धायां सिद्धः कलहः। भिक्षुकी वा प्रियभार्यं मुख्यं ब्रूयात्—

'असौ ते मुख्यो यौवनोत्सिक्तो ते भार्यायां मां प्राहिणोत् तस्याहं भयाल्लेख्यमाभरणं गृहीत्वाऽऽगताऽस्मि, निर्दोषा ते भार्या, गूढमस्मिन् प्रतिकर्तव्यम्। अहमपि तावत्प्रतिपत्स्यामि' इति। एमादिषु स्वयमुत्पन्ने वा कलहे तीक्ष्णैरुत्पादिते वा हीननक्षं राजा कोशदण्डाभ्यामुपगृह्य विगुणेषु विक्रमयेदपवाहयेद्वा। सघेष्वेवमेकराजो वर्तेत। सघाश्चाप्येवमेकराजादेतेभ्योऽतिसन्धानेभ्यो रक्षयेयुः।

संघमुख्यश्च संघेषु न्यायवृत्तिर्हितः प्रियः।
दान्तो मुक्तजनस्तिष्ठेत्सर्ववित्तानुवर्तकः॥

अथवा ज्योतिषी वेशधारी गुप्तचर संघ मुख्यों में से जिस किसी के साथ, जिस किसी की कन्या का विवाह निश्चित हो चुका हो, उसके विषय में अन्य मुख्य से कहे—अमुक की पुत्री जिसकी पत्नी बनेगी, वह तो राजा होगा ही, वरन् उससे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह भी राजा ही बनेगा। इसलिए आप अपना सर्वस्व दान करके उस कन्या को हस्तगत कर लीजिए। जो इस प्रकार उकसाने पर भी यदि उस कन्या को हस्तगत न कर सके तो जिसके साथ उस कन्या का विवाह निश्चित हो चुका हो, उस मुख्य को उसके विरुद्ध उकसाने का प्रयत्न करे। यदि वह उस कन्या को प्राप्त करने में सफल हो जाय तो उन दोनों में स्वयं ही परस्पर कलह उत्पन्न हो जायगी। अथवा भिक्षुणी वेश वाली गुप्तचरी अपनी पत्नी में आसक्त किसी मुख्य से जाकर कहे कि अमुक कामान्ध मुख्य आपकी पत्नी पर आसक्त है। उसने यह पत्र और अलंकार मेरे द्वारा यहाँ भेजा है। मैं उसके डर से ही दूती बन कर आई हूँ। किन्तु आपकी पत्नी अत्यन्त साध्वी और दोष रहित है। आप चुपचाप उस मुख्य का कुछ उपाय करें। इस समय मैं आपके ही आश्रय में रहूँगी। इस प्रकार के प्रयत्न से कलह उत्पन्न हो जाय या प्रयत्न के विना ही कलह उत्पन्न हो जाय या तीक्ष्ण पुरुष द्वारा कलह उत्पन्न करा दी जाय तो विजिगीषु किसी अल्प बल वाले मुख्य को धन-जन की सहायता देकर अपने वश

में करले और अपने विरोधी अन्यान्य मुख्यों पर उसी से हमला करावे। अथवा ऐसा न होने पावे तो उस वश में हुए मुख्य को वहाँ से कहीं अन्यत्र भेज दे। इस प्रकार के प्रयत्नों से विजिगीषु पूरे संघ का एकमात्र अधिपति हो जायगा और उस स्थिति में वह संघ भी उससे या उसके द्वारा उत्पन्न की हुई विपत्तियों से अपनी रक्षा कर सकेगा। संघमुख्य सदैव न्यायपरायण और सर्वजन-हितैषी एवं प्रिय बन कर रहे। उसे योग्य पुरुषों से सम्पर्क बनाए रखना और सदैव प्रसन्न चित्त रहना चाहिए।

॥ सघवृत्त एकादश अधिकरण समाप्त ॥

———

आबलीयस द्वादश अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

दूत कर्म

बलीयसाऽभियुक्तो दुर्बलः सर्वत्रानुप्रणतो वेतसधर्मा तिष्ठेत् । 'इन्द्रस्य हि स प्रणमति यो बलीयसो नमति' इति भारद्वाजः । 'सर्वसन्दोहेन बलानां युध्येत्; पराक्रमो हि व्यसनमपहन्ति । स्वधर्मश्चैष क्षत्रियस्य युद्धे जयः पराजयो वा' इति विशालाक्षः । नेति कौटिल्यः । सर्वत्रानुप्रणतः कुलैडक इव निराशो जीविते वसति । युध्यमानश्चाल्पसैन्यः समुद्रमिवाप्लवोऽवगाहमानः सीदति । तद्विशिष्टं तु राजानमाश्रितो दुर्गमविषह्यं वा चेष्टेत ।

अब दौत्यकर्म का विवेचन करेंगे । यदि कोई प्रबल किसी हीनबल पर आक्रमण करे तो बलहीन राजा को बेंत के समान झुक जाना चाहिए । क्योंकि बलवान के सामने झुकना इन्द्रदेव को नमस्कार करने के समान है, ऐसा भारद्वाज मानते हैं । आचार्य विशालाक्ष के मत में बलहीन भी अपने सम्पूर्ण सैन्यबल को एकत्र करके बलवान से भिड़ जाय । क्योंकि पराक्रम ही संकट को दूर करता है । युद्ध में हार-जीत तो होती है, इसलिए क्षत्रिय का धर्म युद्ध करना है । किन्तु कौटिल्य इससे असहमति प्रकट करते हुए कहते हैं कि यदि सभी कार्यों में निर्बल को झुकना पड़ा तो वह बलि के बकरे के समान जीवन की आशा ही छोड़ देगा और यदि अल्प सेना के साथ रणक्षेत्र में कूद पड़ा तो बिना नाव के समुद्र में कूदने के समान मरण को प्राप्त होगा । इसलिए उसे किसी अन्य बलवान का आश्रय लेना या सुरक्षित दुर्ग में बैठा रहना ही

श्रेयस्कर होगा। उस दुर्ग में रह कर ही वह अपनी विजय के लिए प्रयत्न करता रहे।।

त्रयोऽभियोक्तारो धर्मलोभासुरविजयिन इति। तेषामभ्यवपत्त्या धर्मविजयी तुष्यति। तमभ्यवपद्येत परेषामपि भयात्। भूमिद्रव्यपुत्रदारप्राणहरणेन असुरविजयी, तं भूमिद्रव्याभ्यामुपगृह्याग्राह्यः प्रतिकुर्वीत। तेषामन्यतममुत्तिष्ठमानं सन्धिना मन्त्रयुद्धेन वा प्रतिव्यूहेत। शत्रुपक्षमस्य सामादानाभ्यां, स्वपक्षं भेददण्डाभ्याम्। दुर्गं राष्ट्रं स्कन्धावारं वास्य गूढाः शस्त्ररसाग्निभिः साधयेयुः। सर्वतः पार्ष्णिमस्य ग्राहयेत् अटवीभिर्वा राज्यं घातयेत्, तत्कुलीनावरुद्धाभ्यां वा हारयेत्।

धर्मविजयी, लोभविजयी और असुरविजयी के रूप में आक्रमणकारियों के तीन भेद हैं। धर्मविजयी आक्रमणकारी तो 'मैं आपकी शरण हूँ' ऐसा विनम्र वचन सुनते ही प्रसन्न होजाता है। दुर्बल राजा धर्मविजयी के ही नहीं, अन्यान्य शत्रुओं से प्राप्त होने वाले भय में भी उसकी शरण ले ले। लोभविजयी आक्रामक भूमि और धन लेकर ही मानता है। इसलिए जो राजा दुर्बल हो वह धनादि देकर उसका आश्रय ले। असुरविजयी आक्रामक अधिक दुष्ट होता है। क्योंकि वह शत्रु की भूमि, धन, पुत्र और प्राण लेकर ही सन्तुष्ट होता है। दुर्बल राजा ऐसे आक्रमणकारी को भूमि और धन देकर अनुकूल बनाने की चेष्टा करता हुआ अवसर मिलते ही अपने प्राण बचा कर ऐसे स्थान पर भाग जाय, जिससे कि शत्रु उसे पकड़ न सके। उक्त तीनों प्रकार के आक्रामकों से दुर्बल राजा सन्धि, मन्त्रयुद्ध या कूटयुद्ध अर्थात् जैसा भी अवसर देखे वैसे ही शत्रु का प्रतीकार करे। आक्रामक अधिक प्रबल हो तो उसे साम, दान द्वारा अनुकूल करे अथवा उसके प्रकृतिवर्ग में भेद या दण्डनीति का प्रयोग करके उन्हें वश में करले। अथवा आक्रमणकारी के दुर्ग, राज्य, छावनी आदि को अपने गुप्तचरों द्वारा शस्त्र, विष या अग्नि-प्रयोग द्वारा नष्ट करें अथवा अवसर मिले तो उसकी राजधानी के पृष्ठ

भाग से हमला करे। या आटविकों द्वारा उपद्रव करा दे अथवा उसके वश के किसी विरोधी बन्दी द्वारा उसपर प्रहार करावे।

अपकारान्तेषु चास्य दूतं प्रेषयेत्। अनपकृत्य वा सन्धानम्। तथाप्यभिप्रयान्तं कोशदण्डयोः पादोत्तरमहोरात्रोत्तरं वा सन्धि याचेत। स चेद्दण्डसन्धि याचेत, कुण्ठमस्मै हस्त्यश्वं दद्यात्। उत्साहितं वा गरयुक्तम्। पुरुषसन्धि याचेत, दूष्यामित्राटवीबलमस्मै दद्याद्योगपुरुषाधिष्ठितम्। तथा कुर्याद्यथोभयविनाशः स्यात्। तीक्ष्णबलं वास्मै दद्यात्, यदवमानितं विकुर्वीत। मौलमनुरक्तं वा, यदस्य व्यसनेऽपकुर्यात्।

इस प्रकार आक्रामक का अपकार करता हुआ दुर्बल राजा उससे सन्धि करने के लिए अपना दूत भेज दे। यदि आक्रमणकारी का अपकार करने में समर्थ न हो तो सन्धि की याचना करे। यदि इतने पर भी वह आक्रमण करे ही तो दिये जाने वाले धन और सेना की संख्या चतुर्थांश और बढ़ा कर सन्धि के दिन-रात्रि की अवधि आगे बढ़ा कर सन्धि की पुनः याचना करे। यदि आक्रामक राजा सेना लेने पर तैयार हो तो उसे कुण्ठ अर्थात् अशक्त अश्व गज आदि दे। अथवा उत्साही या सबल अश्व आदि ही देने पड़ें तो उन्हें कोई विषाक्त औषधि आदि के द्वारा व्याधिग्रस्त करके ही दे, जिससे कि वे उसके पास जाने के बाद नष्ट हो जाँय। यदि आक्रमणकारी पदाति सेना लेकर राजी होता हो तो दुर्बल राजा योगपुरुष अर्थात् विष-प्रयोगादि में प्रवीण पुरुष के आधिपत्य में दूष्य, शत्रु या आटविक सेना दे। साथ ही ऐसी व्यवस्था करे कि शत्रु के पास जाकर वे सेनाएँ शीघ्र नष्ट हो जाँय। अथवा ऐसी तीक्ष्ण सेना दे जो शत्रु द्वारा तिरस्कृत होते ही उसका अपकार करने लगे। अथवा अपनी ऐसी भक्त सेना दे, जो शत्रु के किसी संकट में फँसने पर उसको क्षति पहुँचावे।

कोशसन्धि याचेत, सारमस्मै दद्यात्। यस्य क्रेतारं नाधिगच्छेत्। कुप्यमयुद्धयोग्यं वा। भूमिसन्धि याचेत, प्रत्यादेयां

नित्यामित्रामनपाश्रयां महाक्षयव्ययनिवेशां वास्मै भूमिं दद्यात् । सर्वस्वेन वा राजधानीवर्जेन सन्धिं याचेत बलीयसः ।

यत्प्रसह्य हरेदन्यस्तत्प्रयच्छेदुपायतः ।
रक्षेत्स्वदेहं न धनं का ह्यनित्ये धने दया ॥

यदि सबल आक्रामक निर्बल राजा से धन लेकर संधि के लिए तैयार हो तो उसे ऐसी सार वस्तु अर्थात् रत्न मणि आदि देनी चाहिए, जिसका कोई क्रेता उसे न मिले। यदि कुप्य आदि कोई वस्तु देनी हो तो ऐसी देनी चाहिए जिसका युद्ध के समय कोई उपयोग न हो सके। यदि भूमि देने की शर्त हो तो ऐसी भूमि देनी चाहिए, जो भविष्य में अपने पास वापस आ सकती हो। उस भूमि में अमित्रों की अधिकता हो, सुरक्षित आश्रय स्थान अर्थात् दुर्ग आदि न हो, जहाँ बस्ती भी बसाई जाय तो उसमें धन-जन का भारी व्यय हो। अथवा बलहीन राजा को राजधानी के अतिरिक्त और सब कुछ भी देना पड़े तो उसे सबल राजा से सन्धि की याचना करनी चाहिए। यदि कोई प्रबल आक्रमणकारी बल-प्रयोग द्वारा धन को छीनना चाहे तो निर्बल उससे स्वेच्छापूर्वक उसका इच्छित धन आदि देकर सन्धि करले। उसे धन की नहीं, अपने शरीर की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि धन तो अनित्य है अर्थात् शरीर रहेगा तो धन फिर आ सकता है।

द्वितीयोऽध्यायः

मंत्रयुद्ध

स चेत्सन्धौ नावतिष्ठेत, ब्रूयादेनम्—'इमे षड्वर्गवशगा राजानो विनष्टाः, तेपामनात्मवतां नार्हसि मार्गमनुगन्तुम्, धर्ममर्थं चावेक्षस्व, मित्रमुखा ह्यमित्रास्ते ये त्वां साहसधर्ममर्थातिक्रमं च ग्राहयन्ति, शूरैस्त्यक्तात्मभिः सह योद्धुं साहसं जनक्षयमुभयतः कर्तुमधर्मः, दृष्टमर्थं मित्रमदुष्टं च त्यक्तुमर्थातिक्रमः । मित्रवांश्च स राजा भूयश्चैतेन अर्थेन मित्राण्युद्योजयिष्यति,

यानि त्वां सर्वतोऽभियास्यन्ति । न च मध्यमोदासीनयोर्मण्डलस्य वा परित्यक्तः, भवांस्तु परित्यक्तो ये त्वां समुद्युक्तमुपप्रेक्षन्ते—'भूयः क्षयव्ययाभ्यां युज्यतां, मित्राच्च भिद्यतां अथैनं परित्यक्त-मूलं सुखेनोच्छेत्स्याम' इति । स भवान् नार्हति मित्रमुखानाम-मित्राणां श्रोतुं तित्राण्युद्वेजयितुम, अमित्रांश्च श्रेयसा योक्तुम्, प्राणसंशयमनर्थं चोपगन्तुम्' इति यच्छेत् ।

अब मन्त्रणायुक्त युद्ध के उपायों को कहेंगे । यदि बलवान राजा सन्धि-पालन से फिर जाय तो अल्पबल वाला राजा उसे समझाये कि अमुक-अमुक राजागण कामादि छः शत्रुओं के वश में पड़ कर विनष्ट हो चुके हैं । आप उन स्वेच्छाचारियों के मार्ग पर न चलें, वरन् अपने धर्म-अर्थ के अनुसार ही आक्रमण करें । क्योंकि मुख से मित्रता दिखाने और साहस, अधर्म एवं अनर्थ की ओर उन्मुख करने वाले लोग राजा के सबसे अधिक शत्रु होते हैं । अपने जीवन के ममत्व का त्याग करने वाले से युद्ध करना साहस, दोनों ओर की प्रजा का नाश अधर्म और हस्तगत धन एवं मित्र का त्याग ही अनर्थ अथवा अर्थ का उल्लंघन है । अमुक राजा के अनेक मित्र हैं, जिन्हें धन आदि के दान द्वारा वह अपने कार्य के अनुकूल बना कर उन्हीं के द्वारा आप पर आक्रमण करा सकता है । यद्यपि मध्यम एवं उदासीन राजाओं ने आपका साथ नहीं छोड़ा है, किन्तु वह राजमण्डल तुम्हारा त्याग कर चुका है । इसलिए वे राजागण तुम्हें रण के लिए प्रस्तुत देख कर आपको अधिक क्षय-व्यय के पंक में फँस जाने और मित्रों से छुड़ाने तक के लिये ही आपके प्रति उपेक्षा दिखा रहे हैं । किन्तु वे जैसे ही तुम्हारा मूल रूप से पतन होता देखेंगे, वैसे ही उखाड़ फेंकेंगे । इसलिए आप इन मिथ्या मैत्री प्रदर्शन करने वाले शत्रुओं के बहकावे में न आइये । क्योंकि मित्रों में उद्विग्नता और अमित्रों में सुख उत्पन्न करते हुए अपने जीवन को संकट में डालना बुद्धिमानी नहीं है । यदि वह इन वचनों से सन्तुष्ट हो जाय तो अल्प-बल राजा सन्धि की शर्तों में निश्चित हुआ धन उसे प्रदान कर दे ।

तथापि प्रतिष्ठमानस्य प्रकृतिकोपमस्य कारयेद्यथा संघवृत्ते व्याख्यातं, योगवामने च। तीक्ष्णरसदप्रयोगं च। यदुक्तमात्मरक्षितके रक्ष्यं, तत्र तीक्ष्णान् रसदांश्च प्रयुंजीत। बन्धकीपोषका परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिः सेनामुख्यानुन्मादयेयुः। बहूनामेकस्या द्वयोर्वा मुख्ययोः कामे जाते तीक्ष्णाः कलहानुत्पादयेयुः। कलहे पराजितपक्षं परत्रावगमने यात्रासाहाय्यदाने वा भर्तुर्योजयेयुः। कामवशान् वा सिद्धव्यंजनाः सांवननिकीभिरोषधिभिरतिसन्धानाय मुख्येषु रसं दापयेयुः।

किन्तु उक्त प्रकार के वचनों को न मान कर आक्रमणकारी सन्धि का उल्लंघन करके आक्रमण ही करना चाहे तो अल्पबल राजा उसके प्रकृतिवर्ग को कुपित करने का यत्न करे और संघवृत्त अधिकरणोक्त तथा जो योग वामन प्रकरण में कहा जायगा, उसी के अनुसार सब कार्य करे। तीक्ष्ण एवं विषादि देने वाले गुप्तचरों को शत्रु-नाश के कार्य में लगावे तथा आत्मरक्षितक प्रकरणोक्त जो रक्षास्थान हों, वहाँ भी उक्त गुप्तचर लगा दिये जाँय। वेश्याओं के पोषक गुप्तचर अत्यन्त रूपवती युवतियों की नियुक्त करके शत्रु-सेना के प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियों में कामोन्माद उत्पन्न करा दें। ऐसा करने से यदि किसी एक ही तरुणी पर अनेक अथवा दो सैन्य-प्रमुख अनुरक्त हो जाँय तो तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर उनमें आपस में ही कलह करा दें और उनमें जो पक्ष हार जाय उसे कहीं दूसरे स्थान पर चले जाने के लिए अथवा अपने स्वामी के पक्ष में मिला लें। अथवा उन सैन्यप्रमुखों में जो कामासक्त दिखाई दें उन्हें वशीकरण की औषधि के बहाने से विष खिला कर मार दें।

वैदेहकव्यंजनो वा राजमहिष्याः सुभगायाः प्रेष्यामासन्नां कामनिमित्तमर्थेनाभिवृष्य परित्यजेत्। तस्यैव परिचारकव्यंजनोपदिष्टः सिद्धव्यंजनः सांवननिकीमोषधिं दद्यात्, वैदेहकशरीरेऽवधातव्येति। सिद्धं सुभगाया अप्येनं योगमुपदिशेद्राजशरीरेऽवधातव्येति। ततो रसेनातिसन्दध्यात्। कार्तान्तिकव्यंजनो वा महा-

मात्रं राजलक्षणसम्पन्नं क्रमाभिनीतं ब्रूयात् । भार्यामस्य भिक्षुकी—'राजपत्नी राजप्रसविनी वा भविष्यति' इति । भार्या-व्यंजनो वा महामात्रं ब्रूयात्—'राजा किल मामवरोधयिष्यति, तवान्तिकाय पत्रलेख्यमाभरणं चेदं परिव्राजिकयाऽऽहृतमिति' ।

वैदेहक अर्थात् व्यापारी वेश वाले गुप्तचर महारानी की किसी अन्यन्त सुन्दरी एवं अन्तरंग दासी को धन देकर अपने वश में कर ले और उसी के द्वारा शत्रु को मरवाने का प्रयत्न करे । अर्थात् उस दासी से एक बार संगति के पश्चात् उससे विरक्ति दिखावे । तब उस वैदेहक के सेवक रूप में रहने वाला सिद्ध वेशी गुप्तचर उसे वशीकरण की औषधि देता हुआ कहे कि इसे अपने उस प्रियतम व्यापारी के शरीर पर लगा देना, इससे वह वशीभूत हो जायगा । इस प्रकार वैदेहक के वशीभूत होने पर विश्वास में आई हुई दासी अपनी महारानी को राजा के वशीभूत करने के उपाय रूप में औषधि देकर कहे कि यदि आप भी महाराज के शरीर में इस औषधि को लगा दें तो वह सदैव के लिए आपके वशीभूत हो जाँयगे । तब उस दासी के द्वारा विष युक्त औषधि रानी को दिलवा कर उस राजा को मरवा दे । अथवा शत्रु के महामात्र को अपनी ओर करे, इसके लिए ज्योतिषी वेशधारी गुप्तचर किसी राजलक्षण सम्पन्न महामात्र का अपने पर विश्वास जमावे और फिर किसी दिन उससे कहे कि तुम किसी दिन राजा हो जाओगे । तभी एक दिन भिक्षुकी गुप्तचरी उसी महामात्र की पत्नी से कहे कि तुम रानी बनोगी और तुम जिस पुत्र को उत्पन्न करोगी, वह भी राजा होगा । ऐसा करने से वह महामात्र राजा का पतन करने के प्रयत्न में लग जायगा। अथवा कोई गुप्तचरी महामात्र की पत्नी बन कर रहने लगे, वह कभी अवसर देख कर उससे कहे कि ऐसा प्रतीत होता है कि राजा मुझे यहां से उड़ा कर अपने पास रख लेगा । देखो, उसका यह पत्र और आभूषण अभी एक भिक्षुकी मुझे दे गई है । इस प्रकार भी महा-मात्र राजा का विरोधी बन जायगा ।

सूदारालिकव्यंजनो वा रसप्रयोगार्थं राजवचनादर्थं चास्य लोभनीयमभिनयेत्। तदस्य वैदेहकव्यंजनः प्रतिसन्दध्यात्, कार्यसिद्धिं च ब्रूयात्। एवमेकेन द्वाभ्यां त्रिभिरित्युपायैरेकैकमस्य महामात्रं विक्रमायापगमनाय वा योजयेदिति। दुर्गे चास्य शून्यपालासन्नाः सत्रिणः पौरजानपदेषु मैत्रीनिमित्तमावेदयेयुः—'शून्यपालेनोक्ता योधा अधिकरणस्थाश्च—'कृच्छ्रगतो राजा जीवन्नागमिष्यति न वा, प्रसह्य, वित्तमर्जयध्वममित्रांश्च हत' इति बहुलीभूते तीक्ष्णाः पौरान् निशास्वाहारयेयुः मुख्यांश्चाभिहन्युः—एवं क्रियन्ते, ये शून्यपालस्य न शुश्रूषन्ते' इति। शून्यपालस्थानेषु च सशोणितानि शस्त्रवित्तबन्धनान्युत्सृजेयुः। ततः सत्रिणः—'शून्यपालो घातयति विलोपयति च' इत्यावेदयेयुः। एवं जानपदान्समाहर्तुर्भेदयेयुः।

रसोइया या मांसपाचक के वेश में रहने वाले गुप्तचर शत्रु के महामात्र से कहें कि राजा ने आपको विष देने का आदेश दिया है और इस कार्य के एवज में भारी पुरस्कार देने को भी कहा है। वैदेहक गुप्तचर भी उक्त रसोइये की बात को प्रमाणित कर दे अर्थात् बतावे कि इसने मुझसे ऐसा विष खरीदा है, जिसके खाने से मृत्यु निश्चित है। इस प्रकार विजिगीषु के गुप्तचर एक या अनेक उपायों के द्वारा महामात्र को विरोधी बना कर उस राजा को अपने विरुद्ध बल-प्रदर्शन वाले कार्य से विरक्त कर दे। अथवा शत्रु राजा के दुर्ग में न रहने पर शून्यपाल अर्थात् राजा के चले जाने पर सूनी राजधानी के रक्षक से सत्रि संज्ञक गुप्तचर अन्तरंग भाव स्थापित कर नगर और जनपद के रहने वाले लोगों से शून्यपाय के प्रति अपनी मित्रता प्रदर्शित करते हुए कहें कि शून्यपाल ने राजधानी में उपस्थित सब वीरों और राजपुरुषों से कहा है कि महाराज भारी विपत्ति में फँस गये हैं, वे जीवित लौटेंगे या नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता। इसलिए आप सब प्रजा से बलपूर्वक धन प्राप्त करें और जो लोग महाराज के द्वेषी

प्रतीत हों, वे मार दिए जाँय। इस प्रकार शून्यपाल की ऐसी आज्ञा का प्रचार हो जाय, तब तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर रात्रिकाल में अपने अनुचरों द्वारा प्रजाजनों को लुटवा दें और प्रमुख पुरुषों की हत्या करवा दें। फिर यह प्रचारित किया जाय कि शून्यपाल के अनुकूल रहने वालों की ऐसी ही दशा होती है। तत्पश्चात् सत्रि संज्ञक गुप्तचर शून्यपाल के निवास के समीप रक्तरंजित शस्त्रास्त्र एवं धन रखने की थैलियों के ढेर लगवा दें और फिर ऐसा प्रचार करें कि शून्यपाल ने लोगों की हत्या करा कर उनका धन हरण कर लिया है। इसी प्रकार के कार्यों द्वारा जनपद के निवासियों को अधिकारी आदि के विरुद्ध भड़का दें।

समाहर्तृपुरुषांस्तु ग्राममध्येषु रात्रौ तीक्ष्णा हत्वा ब्रूयुः— 'एवं क्रियन्ते ये जनपदमधर्मेण बाधन्ते' इति। समुत्पन्ने दोषे शून्यपालं समाहर्तारं वा प्रकृतिकोपेन घातयेयुः। तत्कुलीनमवरुद्धं वा प्रतिपादयेयुः।

अन्तःपुरपुरद्वारद्रव्यधान्यपरिग्रहान् ।
दहेयुस्तांश्च हन्युर्वा ब्रूयुरस्यार्तवादिनः ॥

तीक्ष्ण गुप्तचर रात्रि के समय ग्रामों में समाहर्ता के अधीनस्थ कर्मचारियों की हत्या करा कर प्रचारित करें कि अधर्मपूर्वक प्रजा पर अत्याचार करने वालों की ऐसी ही दशा होती है। इस प्रकार शून्यपाल और समाहर्ता को दोषी बना कर प्रजाजनों को क्षुब्ध करके शून्यपाल और समाहर्ता की हत्या करा दें अथवा शत्रु के किसी विरोधी पुत्र या वंशज को, जो कारागार में बन्द हो, किसी प्रकार मुक्त करा कर राज्य पद पर आसीन करा दें। इस प्रकार वे गुप्तचर शत्रु के अन्तःपुर, पुर द्वार अथवा प्रमुख द्वार, द्रव्य एवं धान्यों के कोष्ठागार आदि में आग लगा दें और उनके रक्षकों की भी हत्या कर दें। और फिर स्वयं उस घटना पर दुःख प्रकट करने का अभिनय करते हुए यह प्रचारित करें कि उक्त कार्य नगर और जनपद के रहने वालों ने ही किया है।

तृतीयोऽध्यायः

सेनामुख्यवध एवं राजमण्डलप्रोत्साहन

राज्ञो राजवल्लभानां चासन्नाः सत्रिणः पत्यश्वरथद्विपमुख्यानां 'राजा क्रुद्धः' इति सुहृद्विश्वासेन मित्रस्थानीयेषु कथयेयु। बहुलीभूते तीक्ष्णाः कृतरात्रिचरप्रतीकारा गृहेषु 'स्वामिवचनेन आगम्यताम्' इति ब्रूयुः। तान्निर्गच्छत एवाभिहन्युः। 'स्वामिसन्देशः' इति चासन्नान् ब्रूयुः। यं च प्रवासितास्तान् सत्रिणो ब्रूयुः—'एतत्तद्यदस्माभिः कथितं, जीवितुकामेन अपक्रान्तव्यम्' इति।

अब शत्रु-सेना के प्रमुखों की हत्या और राजमण्डल में विरोध उत्पन्न करने के उपायों को कहेंगे। राजा एवं उसके प्रियजनों के निकट के व्यक्ति बने हुए सत्रिगण पदाति, अश्वारोही, रथारोही, गजारोही सेनाओं के प्रमुखों के मित्रों से सौहार्दपूर्वक तथा विश्वास के साथ कहें कि इन सब सेनाध्यक्षों से राजा रुष्ट हो गया है। जब राजा के क्रुद्ध होने का समाचार सर्वत्र प्रसारित हो जाय तब तीक्ष्ण गुप्तचर रात्रि में चलने की बाधाओं का प्रतीकार करके उन सेनाप्रमुखों के घरों पर जाकर उनसे कहें कि स्वामी की आज्ञा से आपको हमारे साथ चलना है। जब वे उनके साथ चलें तभी उनकी हत्या कर दें। फिर सत्रि गुप्तचरों से राजा के प्रियजनों के समक्ष कहें कि स्वामी की आज्ञा से ही इनका वध किया गया है। फिर जो सेनापति आदि पहले ही राजा को छोड़ कर चले जा चुके हों, उनके पास जाकर सत्रि कहें कि देखो, हम जो कहते थे, वही हुआ। अब जो अपने प्राण बचाना चाहें वे यहाँ से शीघ्र भाग जाँय। इस प्रकार के उपाय शत्रु के बल को न्यून करने में सहायक हो सकते हैं।

येभ्यश्च राजा याचितो न ददाति तान् सत्रिणो ब्रूयुः—'उक्तः शून्यपालो राज्ञा अयाच्यमर्थंमसौ चासौ मां याचते, मया प्रत्याख्याताः शत्रुसंहिताः, तेषामुद्धरणे प्रयतस्व' इति। ततः पूर्ववद-

चरेत् । येभ्यश्च राजा याचितो ददाति, तान् सत्रिणो ब्रूयुः—'उक्तः शून्यपालो राज्ञा अयाच्चमर्थमसौ चासौ च मां याचते, तेभ्यो मया सोऽर्थो विश्वासार्थं दत्तः, शत्रुसंहिताः। तेषामुद्धरणे प्रयतस्व' इति। ततः पूर्ववदाचरेत्। ये चैनं याच्यमर्थं न याचन्ते, तान् सत्रिणो ब्रूयुः—'उक्तः शून्यपालो राज्ञा 'याच्यमर्थमसौ चासौ च मां न याचते, किमन्यत्स्वदोषशंकितत्वात्, तेषामुद्धरणे प्रयतस्व' इति। ततः पूर्ववदाचरेत्। एतेन सर्वः कृत्यपक्षो व्याख्यातः।

शत्रु के जिन प्रमुखों ने शत्रु से धन आदि माँगा हो और शत्रु राजा किसी कारणवश उन्हें न दे सका हो तो सत्रिगण उनसे कहें कि राजा ने अपने शून्यपाल से कहा है कि अमुक-अमुक ने मुझसे धन माँगा था, किन्तु मेरे द्वारा धन न दिये जाने पर वे शत्रु से मिल गए हैं। इसलिए उनकी हत्या कर दो। इस प्रकार का सर्वत्र प्रचार हो जाय तब वही गुप्तचर उनकी हत्या करा दें। तत्पश्चात् राजा ने जिन्हें माँगी हुई वस्तु दे दी हो, उनके पास जाकर कहें कि राजा ने शून्यपाल से कहा है कि अमुक-अमुक ने मुझसे न माँगने योग्य वस्तु माँगी और मैंने उन्हें प्रसन्न करने के लिए दे भी दी। तो भी वे शत्रु से मिल गये हैं, इसलिए उनको मार डालो। ऐसा बहुत प्रचार करने के पश्चात् वे गुप्तचर उन्हें भी मरवा दें। फिर जिन्होंने राजा से कुछ भी न माँगा हो, उनके पास जाकर कहें कि राजा ने शून्यपाल को आदेश दिया है कि अमुक-अमुक ने मुझसे याच्य वस्तु की भी याचना नहीं की है। इससे प्रतीत होता है कि वे लोग शत्रु से मिले हुए हैं और अपने इसी अपराध से डरे हुए होने के कारण मेरे पास नहीं आ पाते। इसलिए तुम उनका चुपचाप वध करा दो। जब यह बात भले प्रकार प्रचार में आ जाय, तब सत्रिगण उन्हें भी मार दें। इस प्रकार शत्रु के सब प्रमुख कर्मचारियों के उच्छेद की विधि कही गई है।

प्रत्यसन्नो वा राजानं सत्री ग्राहयेत् –'असौ चासौ च ते महामात्रः शत्रुपुरुषैः सम्भाषते' इति। प्रतिपन्ने दूष्यानस्य शासनहरान् दर्शयेत्—'एतत्तत्' इति। सेनामुख्यप्रकृतिपुरुषान् वा भूम्या हिरण्येन वा लोभयित्वा स्वेषु विक्रमयेदपवाहयेद्वा। योऽस्य पुत्रः समीपे दुर्गे वा प्रतिवसति, तं सत्रिणोपजापयेत्—'आत्मसम्पन्नतरस्त्व पुत्रस्तथाप्यन्तर्हितः, तत् किमुपेक्षसे। विक्रम्य गृहाण, पुरा त्वां युवराजो विनाशयति' इति। तत्कुलीनमवरुद्धं वा हिरण्येन प्रतिलोभ्य ब्रूयात्—'अन्तबलं प्रत्यन्तस्कन्धमन्यं वास्य प्रमृद्नीह इति। आटविकानर्थमानाभ्यामुपगृह्य राज्यमस्य घातयेत्।

अब अधिक बलवान राजा को महामात्रादि के विरुद्ध करने का उपाय बताते हैं। राजा के पास पहिले से विश्वस्त रूप से रहने वाला गुप्तचर, उससे कहे कि अमुक-अमुक महामात्रों का आपके शत्रु से वार्तालाप चल रहा है। जब राजा इस पर विश्वास करने लगे तभी वह सत्रि गुप्तचर कुछ दूष्य पुरुषों को दिखाता हुआ कहे कि देखिये, वे महामात्र का संदेश ले जा रहे हैं। जो बात मैंने कही थी वह नितान्त ठीक निकली। अथवा सत्रिगण सेनाध्यक्षों, अमात्यों और अन्यान्य राजपुरुषों को पृथिवी तथा धन का लोभ देकर अपने ही साथियों पर प्रहार करा दें अथवा उन्हें वहां से अन्यत्र जाने को प्रेरित करें। अथवा उस राजा का जो पुत्र राजधानी में हो या अन्तपाल के समीपस्थ किसी दूर के दुर्ग में रहता हो उसे किसी प्रकार से भड़का कर राजा के विरुद्ध कर दें। वे सत्रिगण उससे कहें कि युवराज से तो आप में अधिक आत्मगुणसम्पन्नता है, फिर भी राजा ने आपको इस प्रकार वंचित कर रखा है, तब आप ही क्यों उपेक्षा करें? अपना बल दिखा कर राज्य प्राप्त करिये। यदि आप सावधान नहीं रहेंगे तो हो सकता है कि युवराज आपकी ही हत्या कर दे। अथवा उस सबल राजा के कुल वाले या अवरुद्ध पुत्र को धन का प्रलोभन देकर उकसावे कि आप राजा के अन्तर्बल

अर्थात् राजधानी की भीतरी सेना, सीमा पर नियुक्त सेना अथवा अन्य किसी सेना पर प्रहार करके राज्य ले लीजिये। ऐसा भी न हो सके तो आटविकों को धन-मानादि से सत्कृत करके उपद्रवों द्वारा राज्य को क्षति पहुंचवा दे।

पार्ष्णिग्राहं वास्य ब्रूयात्—'एष खलु राजा मामुच्छिद्य त्वा-मुच्छेत्स्यति, पार्ष्णिमस्य गृहाण। त्वयि निवृत्तस्याहं पार्ष्णि ग्रहीष्यामि' इति। मित्राणि वाऽस्य ब्रूयात्—'अहं वः सेतुः, मयि विभिन्ने सर्वानेष वो राजा प्लावयिष्यति' इति। सम्भूय वाऽस्य यात्रां विहनाम' इति। तत्संहतानामसंहतानां च प्रेषयेत—'एष खलु राजा मामुत्पाट्य भवत्सु कर्म करिष्यति। बुध्यध्वम्, अहं वः श्रेयानभ्यवपत्तुम्' इति।

मध्यस्य प्रहिणुयादुदासीनस्य वा पुनः।
यथाऽऽसन्नस्य मोक्षार्थं सर्वस्वेन तदर्पणम्॥

अब राजमण्डल के प्रोत्साहन के विषय में कहते हैं—सबल आक्रमणकारी के पार्णिग्राह को अल्पबल राजा इस प्रकार कहे कि यह राजा हमको नष्ट करने के बाद आपको भी समाप्त कर देगा। इसलिए आप इस पर पीछे से आक्रमण कर दें। ऐसा होने पर यदि वह आप पर हमला करेगा तो मैं पीछे से उस पर आक्रमण कर दूंगा। अथवा उस आक्रमणकारी के मित्रों से कहे कि मैं तो आप लोगों के लिए पुल का कार्य कर रहा हूं। यदि इसने मुझे पराजित कर दिया तो फिर आपको भी शेष नहीं छोड़ेगा। अथवा उस शत्रु के मित्रों को यह कह कर राजी करेकि हम सबको एकसाथ मिल कर इसके विजयाभियान को रोकना ही श्रेयस्कर है। अथवा आक्रमणकारीसे जो राजा मेल किये हुए हों या न किये हुए हों उन सभी से कहलवाये कियह राजा मुझे उच्छिन्न करने के पश्चात् आपको भी उखाड़ फेंकेगा। इसलिए यह जान लीजिये कि आपके द्वारा यदि मुझे ही सहायता मिलेगी तो उसमें सभी का कल्याण निहित है। अल्पबल राजा सबल आक्रमणकारी से बचाव के लिए मध्यम, उदासीन

एव अन्य समीपवर्ती राजा सर्वस्व अर्पण करने का संदेश भेजकर अपनी रक्षा करे।

चतुर्थोऽध्यायः

शास्त्रादि का गूढ़ प्रयोग एवं वीवधादि का नाश

ये चास्य दुर्गेषु वैदेहकव्यंजनाः, ग्रामेषु गृहपतिकव्यञ्जनाः, जनपदसन्धिषु गारक्षकतापसव्यञ्जनाः, ते सामन्ताटविकतत्कुलीनावरुद्धानां पण्यागारपूर्वं प्रेषयेयुः—'अयं देशो हार्य' इति। आगतांश्चैषां दुर्गे गूढपुरुषानर्थमानाभ्यामभिसत्कृत्य प्रकृतिच्छिद्राणि प्रदर्शयेयुः। तेषु तैः सहप्रहरेयुः। स्कन्धावारे वास्य शौण्डिकव्यञ्जनः पुत्रमभित्यक्तं स्थापयित्वा नवस्कन्दकाले रसेन प्रवासयित्वा 'नैषेचनिकम्' इति मदनरसयुक्तान् मद्यकुम्भाञ्छतशः प्रयच्छेत्। शुद्धं वा मद्यं माद्यं वा मद्यं दद्यादेकमहः, उतर रससिद्धं प्रयच्छेत्। शुद्धं वा मद्य दण्डमुख्येभ्य. प्रदाय मदकाले रससिद्धं प्रयच्छेत्। दण्डमुख्यव्यञ्जनो वा 'पुत्रमभित्यक्तम्' इति समानम्।

अब शस्त्र, अग्नि और विष के प्रयोग, धान्य प्राप्ति, मित्र-सेना के आने और शत्रु द्वारा ईंधन आदि लेने से रोकने के उपाय कहते हैं। सबल आक्रमणकारी शत्रु के दुर्ग एवं राजधानी में अल्पबल राजा के जो वैदेहकादि वेशधारी गुप्तचर कार्य करते हों तथा जो गृहस्थवेश वाले गुप्तचर ग्रामों में और जो तापसवेशी गुप्तचर जनपद के सन्धि स्थान में कार्यरत हों, वे या अन्य गुप्तचर आटविक या शत्रुकुल के किसी पुरुष या अवरुद्ध पुत्र के पास पण्य वस्तुओं के सहित सन्देश भेजें कि शत्रु के अमुक प्रदेश को आप अनायास ही ले सकते हैं। उस सन्देश को प्राप्त करके उन सामन्त आदि के गुप्तचर शत्रु-दुर्ग में आ पहुंचें, तब उनका धन-मानादि से सत्कार करके शत्रु के अमात्यादि प्रकृतिवर्ग के दोषों को उन्हें अच्छी तरह बतादें। फिर वे गुप्तचर और आटविक साथ मिलकर

शत्रु के छिद्रों पर खुल कर आक्रमण करें। अथवा शत्रु के सैन्य-शिविर में मदिरा बेचने वाले का वेश बनाये हुये गुप्तचर किसी प्राणदण्ड प्राप्त व्यक्ति को अपना पुत्र प्रचारित कर रात्रि के समय उसे विष आदि के प्रयोग द्वारा मार दे। फिर मृतक की तृप्ति के लिए नैषचनिक द्रव्य के नाम पर मादक एवं विषमिश्रित द्रव्य सैकड़ों घड़ों में भरवा कर सैनिकों को पिला दे। अथवा मदिरा बेचने वाले के वेश में पहिले विश्वास दिलाने के लिये उन्हें विष-रहित शुद्ध मदिरा पिलावे और जब वे मद में उन्मत्त हो जाँय तब विष पिला कर मार दे। अथवा सेनापति के वेश में किसी वध्य पुरुष को अपना पुत्र बनाकर सभी कार्य पूर्ववत पूर्ण करें।

पक्वमांसिकौदनीकशौण्डिकापूपिकव्यञ्जना वा पण्यविशेषमवघोषयित्वा परस्परसंघर्षेण कालिकं समर्घतरमिति वा परानाहूय रसेन स्वपण्यान्यपचारयेयुः। सुराक्षीरदधिसर्पिस्तैलानि वा तद्व्यवहर्तृहस्तेषु गृहीत्वा स्त्रीयो बालाश्च रसयुक्तेषु स्वभाजनेषु परिकिरेयुः, 'अनेनार्घेण विशिष्टं वा भूयो दीयताम्' इति तत्रैवावकिरेयुः। एतान्येव वैदेहकव्यञ्जनाः पण्यविक्रयेणाहर्तारो वा हस्त्यश्वानां विधायवसेषु रसमासन्ना दद्युः।

अथवा पका मांस, पका अन्न, मदिरा और पुए आदि के बेचने वाले के वेश में रहने वाले गुप्तचर अपने-अपने पदार्थों को श्रेष्ठ बताते हुये स्पर्द्धा के साथ शत्रु पक्ष के लोगों को यह कहते हुये आकर्षित करें कि मेरे पदार्थों का मूल्य औरों की अपेक्षा कम है और मैं उधार भी दे सकता हूँ। इस प्रकार आकर्षित हुये उन लोगों को विषयुक्त पदार्थ दे दे। अथवा गुप्तचरियाँ और बालक गुप्तचर मदिरा, दूध, दही, घृत, तैल आदि पदार्थ उन-उन के विक्रेताओं से लेकर विष से लिपे हुये पात्रों में डालकर उन विक्रेताओ से कहें कि हम तो इतना ही मूल्य देंगे। इस प्रकार झंझट करने पर जब विक्रेता कम मूल्य न लें, तब वे उन सब पदार्थों को विक्रेताओं के पात्रों में ही पुनः डाल दें। ऐसा

करने से विक्रेताओं की सभी वस्तुएँ जहरीली हो जाँयगी । अथवा वैदेहक गुप्तचर शत्रु सेना के शिविर के निकटवर्ती स्थानों में वस्तुएँ बेचते रहें और अवसर देख कर हाथियों या अश्वों के चारे-घास में विष मिलाकर उन्हें दे दें ।

कर्मकरव्यंजना वा रसाक्तं यवसमुदकं वा विक्रीणीरन् । चिरसंसृष्टा वा गोवाणिजका गवामजावीनां वा यूथा-यवस्कन्द-कालेषु परेषां मोहस्थानेषु प्रमुंचेयुः । अश्वखरोष्ट्रमहिमषादीनां दुष्टांश्च तद्व्यंजना वा चुचुन्दरीशोणिताक्षान्, लुब्धकव्यजना वा व्यालमृगान् पंजरेभ्यः प्रमुंचेयुः, सर्पग्राहा वा सर्पानुग्रविषान्, हस्तिजीविनो हस्तिनः, अग्निजीविनो वा अग्निमवसृजेयुः । गूढ-पुरुषा वा विमुखान् पत्त्यश्वरथद्विपमुख्यानभिहन्युः, आदीपयेयुर्वा मुख्यावासान् । दूष्यामित्राटविकव्यंजनाः प्रणिहिताः पृष्ठाभिघात-मवस्कन्दप्रतिग्रहं वा कुर्युः । वनगूढा वा प्रत्यन्तस्कन्धमुपनिष्कृ-ष्याभिहन्युः । एकायने वीवधासारप्रसारान् वा ।

अथवा श्रमिक वेशधारी गुप्तचर विषयुक्त घास या जल बेचें । अथवा चिरकाल से मित्रता दिखाने वाले एव गौओं का व्यवसाय करने वाले सत्रि संज्ञक गुप्तचर अपने गौ, बकरी, भेड़ आदि के झुण्डों को रात्रिकाल में जब शत्रु के लोग गहरी नींद में हों, तब उनमें हड़बड़ी उत्पन्न करने के लिए छोड़ दें । इसी प्रकार अश्व, गधा, ऊँट, भैंस आदि पशुओं में से जो दुष्ट या बिगड़ैल हों, उन्हें, उनके नेत्रों में उग्र विष वाली छछूंदर के खून को आँज कर छोड़ दे । आखेटक वेशधारी सत्री अपने हिंसक जन्तुओं को पिंजड़े से मुक्त कर दें । इसी प्रकार सर्प पक-ड़ने वाले अपने विषैले सर्पों को और हाथियों से आजीविका वाले अपने हाथियों को छोड़ दें । यह कार्य शत्रु-सेना की व्याकुलता बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाता है । इस स्थिति का लाभ उठाकर विजिगीषु शत्रु पर आक्रमण करके उसे पराजित कर सकता है । अथवा लोहार आदि अग्नि से आजीविका करने वाले के वेश में जो गुप्तचर हों, वे शत्रु

की छावनी में आग लगा दें। अथवा शत्रु के पदाति, अश्व, रथ एवं हस्तिसेना के प्रमुखों को व्याकुलतावश कार्य से विमुख देख कर गूढ़ पुरुष स्वयं ही उन पर आक्रमण कर दें। अथवा आक्रमण के लिए तत्पर उक्त सेनाओं पर तुरन्त ही प्रत्याक्रमण किया जाय। अथवा वन-वासी गुप्तचर समीपवर्ती शत्रु-सेना को किसी कूटचाल से उनको समाप्त कर दें। यह शस्त्र, अग्नि एवं विष प्रयोग की व्याख्या पूर्ण हुई। अब शत्रु के वीवध (खाद्य पदार्थ), आसार तथा प्रसार के नाश की व्याख्या की जायगी।

ससंकेत वा रात्रियुद्धे भूरि तूर्यमाहत्य ब्रूयुः—'अनुप्रविष्टाः स्मो, लब्ध राज्यम्' इति। राजावासमनुप्रविष्टा वा संकुलेषु राजानं हन्युः। सर्वतो वा प्रयातमेनं म्लेच्छाटविकदण्डचारिणः सत्रापाश्रयाः स्तम्भवाटापाश्रया वा हन्युः। लुब्धकव्यंजना वाऽव-स्कन्दसंकेलेषु गूढयुद्धहेतुभिरभिहन्युः। एकायने वा शैलस्तम्भ-वाटखंजनान्तरुदके वा स्वभूमिबलेनाभिहन्युः। नदीसरस्तटाक-सेतुबन्धभेदवेगेन वा प्लावयेयुः। धान्वनवननिम्नदुर्गस्थं वा योगाग्निधूमाभ्यां नाशयेयुः। संकटगतमग्निना, धान्वनगतं रसेन, तोयावगाढ़ं दुष्टग्राहैरुदकचरणैर्वा तीक्ष्णाः साधयेयुः। आदीप्तावासान्निष्पतन्तं वा—

योगवामनयोगाभ्यां योगेनान्यतमेन वा।
अमित्रमतिसन्दध्यात्सक्तमुक्तासु भूमिषु॥

अथवा रात्रियुद्ध के अवसर पर अनेक तुरहियों का सम्मिलित नाद करके घोषित करें कि हमने शत्रु के प्रदेश में घुसकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया है। इस घोशणा से शत्रु दल के लोगों के व्याकुल हो जाने पर राजभवन पर हमला करके राजा की हत्या कर दें। अथवा राजा जिस मार्ग से भागे, उस पर म्लेच्छ और आटविक वेश वाले गुप्तचर मरुदुर्ग या तृणादि से आवृत्त झाड़ियों में से निकल कर उस पर प्रहार कर दें। या लुब्धक वेश वाले गुप्तचर आक्रमण से

घबरा कर भागते हुए राजा को मार डालें। अथवा सँकरे मार्ग, पर्वतीय मार्ग, घनी झाड़ी, दलदल या जलयुक्त मार्ग पर अपनी सेना द्वारा प्रहार करा कर ही आक्रमणकारी शत्रु का सफाया करा दें। अथवा नदी, तड़ाग या सरोवर के बाँध को तोड़ कर उसके तीव्र वहाव में शत्रु को प्रवाहित करें। अथवा मरुदुर्ग, वनदुर्ग या नीचे दुर्ग में स्थित शत्रु को अग्नि के द्वारा अथवा विषैले धुँए के द्वारा मार दें। अथवा किसी निकलने-प्रविष्ट होने में कठिनाई वाले मार्ग में छिये हुये शत्रु को तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर विषैले धुँए से, अत्यन्त गुप्त स्थान में छिपे शत्रु को विष से तथा जल में छिपे हुए को मगर आदि जन्तुओं से मरवा दें अथवा जल में जाने के अन्यान्य साधनों से उसे पकड़ कर बन्दी बनालें। अथवा आग में जलते हुए घर से भागते हुए या अपनी रक्षा के लिए अत्यन्त गोपनीय तहखाने आदि में पहुँचे हुए शत्रु राजा को योगवामन और योगातिसन्धान प्रकरणोक्त उपायों के द्वारा अथवा अन्य किसी भी योग(अवसर के अनुकूल उपाय)द्वारा अपने वश में करे।

पञ्चमोऽध्याय:

योगातिसन्धान, दण्डातिसन्धान एवं एकविजय

दैवतेज्यायां यात्रायाममित्रस्य बहून् पूज्यागमस्थानानि भक्तितः, तत्रास्य योगमुब्जयेत्। देवतागृहप्रविष्टस्योपरि यंत्रमोक्षणेन गूढभित्तिं शिलां वा पातयेत्। शिलाशस्त्रवर्षमुत्तमागारात्कपाटमवपातितं वा भित्तिप्रणिहितमेकदेशबन्धं वा परिघं मोक्षयेत्। देवतादेहस्थप्रहरणानि वास्योपरिष्टात्पातयेत्। स्थानासनगमनभूमिषु वास्य गोमयप्रदेहेन गन्धोदकावसेकेन वा रसमतिचारयेत्। पुष्पचूर्णोपहारेण वा गन्धप्रतिच्छन्नं वास्य तीक्ष्णं धूममतिनयेत्। शूलकूपमवपातनं वा शयनासनस्याधस्ताद्यन्त्रबद्धतलमेनं कीलमोक्षेण प्रवेशयेत्। प्रत्यासन्ने वामित्रे जनपदाज्जनमवरोधक्षममतिनयेत्। दुर्गाच्चानवरोधक्षममपनयेत्। प्रत्या-

देयमरिविषयं वा प्रेषयेत् । जनपदं चैकस्थं शैलवननदीदुर्गेष्व-टवीव्यवहितेषु वा पुत्रभ्रातृपरिगृहीतं स्थापयेत् । उपरोधहेतवो दण्डोपनतवृत्ते व्याख्याताः ।

अब शत्रु और उसकी सेना को वश में करके विजय प्राप्ति के उपायों को कहेंगे। देवपूजन या किसी विशेष उत्सव पर देवयात्रा आदि के अवसरों पर शत्रु राजा की देवता के प्रति श्रद्धा के अनुसार उसके आवागमन के अनेक अवसर उपस्थित हो सकते हैं। कूट उपायों के प्रयोगार्थ यह अवसर बहुत उपयुक्त रहते हैं। अब उन प्रयोगों पर प्रकाश डालते हैं। जब शत्रु राजा देवालय में घुस रहा हो, तभी विजिगीषु के गुप्तचर किसी प्रकार कोई अधर की गई दीवार या शिला गिरा दें। अथवा किसी मकान की छत से उस पर शस्त्रों या पत्थरों की वर्षा करावें। अथवा किसी प्रकार से उखड़ा हुआ किवाड़ या प्राचीर पर छिपा कर रखे, एक ओर से बँधे हुए अर्गल को उस पर गिरा दें। अथवा देवमूर्ति पर विद्यमान शस्त्र ही गिरा दिया जाय। अथवा शत्रु के खड़े होने, बैठने या जाने के स्थान को विष-मिश्रित गोबर से लिपवा दे या विषयुक्त सुगन्धित जल छिड़कवा दे। अथवा विषयुक्त पुष्पों या इत्र आदि गन्ध द्रव्यों को भेंट करावे या विषयुक्त धुँआ फैला कर सुँघावे। अथवा शत्रु की शय्या या आसन के नीचे कूप जैसा गढ़ा बनवा दे और उसमें लोहे के शूल गढ़वा दे। जब राजा उस पर सोवे या बैठे तब हटी हुई कील के कारण वह उसमें गिर कर मर जाय। अथवा अपनी सीमा से लगी शत्रु-सीमा के जनपद में रहने वाले समर्थ लोगों को पकड़वाये और असमर्थों को छुड़वा दे। वे पकड़े हुए लोग यदि लौटाने के योग्य हों तो स्वयं ही उन्हें शत्रु को लौटा दे। यदि शत्रु अपने जनपद का स्वयं ही अधिकारी हो तो वहाँ के पर्वतदुर्ग, वनदुर्ग, जलदुर्ग तथा वनों से घिरे हुए जिन स्थानों पर शत्रु के किसी विरुद्ध पुत्र या भाई का शासन हो, वह स्थान उसी पुत्र या भाई के ही अधिकार में बना रहे। शत्रु-सेना के घिराव के विषय-

में दण्डोपनतवृत्त प्रकरण में व्याख्या हो चुकी है।

तृणकाष्ठमायोजनाद्दाहयेत् उदकानि च दूषयेदवास्रावयेच्च। कूटकूपावपातकण्टकिनीश्च बहिरुब्जयेत्। सुरुङ्गाममित्रस्थाने बहुमुखीं कृत्वा विचयमुख्यानभिहारयेदमित्रं वा। परप्रयुक्तायां वा सुरुंगायां परिखामुदकान्तिकीं खानयेत्। कूपशालामनुसालं वा अतोयकुम्भान् कांस्यभाण्डानि वा शंकास्थानेषु स्थापयेत्। ज्ञाते सुरुंगापथे प्रतिसुरुंगां कारयेत्। मध्ये भित्त्वा धूममुदकं वा प्रयच्छेत्। प्रतिविहितदुर्गो वा मूले दायादं कृत्वा प्रतिलोमामस्या दिशं गच्छेत्। यतो वा मित्रैर्बन्धुभिराटविकैर्वा संसृज्येत, परस्य मित्रैर्दूष्यैर्वा महद्भिः। यतो वा गतोऽस्य मित्रैर्वियोगं कुर्यात्, पार्ष्णिं वा गृह्णीयात्। राज्यं वास्य हारयेत्। वीवधासारप्रसारान् वा वारयेत्।

शत्रु-प्रदेश में चारों ओर एक योजन पर्यन्त स्थान में तृणादि ईंधन एकत्र करके आग लगा दे या शत्रु के प्रदेश में विद्यमान जल में विष मिला दे या बाँध आदि काट कर जल की बाढ़ उत्पन्न करा दे। शत्रु के प्राकार के बाहर छुपे हुए गढ़े खोद कर उनमें लोहे के काँटे बिछवा दे और ऊपर से घास-फूँस ढक दे। शत्रु के निवास स्थान से संलग्न सुरंग खुदवा कर उसे या उसके मुख्यों को उड़वा दे अथवा आक्रमण करा दे। यदि शत्रु ही विजिगीषु के दुर्ग में घुसने के लिए सुरंग बनवाये तो वह अपने दुर्ग के चारों ओर ऐसी खाई खुदवा दे, जिसमें कि नीचे से स्वयं ही जल निकल आवे। जहाँ सुरंग बनाये जाने की सम्भावना हो वहाँ जलविहीन घड़े या काँसे के खण्ड रख दे जिससे कि खुदने वाली सुरंग का मार्ग जाना जा सके। शत्रु की सुरंग का मार्ग विदित हो जाय तो उसके समानान्तर अन्य सुरंग बनवादी जाय। शत्रु की सुरंग का पता चल जाय तो उसमें बीच-बीच में जल या विषैला धुँआ भरवाये। यदि अपनी राजधानी की सुरक्षा-व्यवस्था ठीक हो चुकी हो तो वहां अपने किसी वंशज को छोड़कर स्वयं किसी अज्ञात स्थान में

चला जाय, जहाँ रहना शत्रु को तो मालुम न हो सके, किन्तु अपने मित्र, बांधव या आटविकों से सम्पर्क हो जाय तथा शत्रु के दूष्य अधिकारियों और शत्रु के शत्रुओं को अपने पक्ष में किया जा सके। साथ ही शत्रु के मित्रों को फोड़ने का प्रयत्न भी करता रहे और शत्रु-देश में जाने वाले अन्न, सेना, ईंधन आदि को रोकता रहे।

यतो वा शक्नुयादाभिकवदपक्षेपेणास्य प्रहर्तुं यतो वा स्वं राज्यं त्रायेत, शूलस्योपचयं वा कुर्यात्। यतः सन्धिमभिप्रेतं लभेत, ततो वा गच्छेत्। सहप्रस्थायिनो वास्य प्रेषयेयुः—'अयं ते शत्रुरस्माकं हस्तगतः पण्यं विप्रकारं वापदिश्य हिरण्यमन्तः सारबलं प्रेषयस्व, एनमर्पयेम बद्धं प्रवासितं वा' इति। प्रतिपन्ने हिरण्यं सारबलं चाददीत। अन्तपालो वा दुर्गसम्प्रदानेन बलैकदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत्। जनपदमेकस्थं वा घातयितुममित्रानीकमावाहयेत्, तदवरुद्धदेशमतिनीय विश्वस्तं घातयेत्।

अथवा जहाँ पहुँच कर द्यूत क्रीड़ा के समान छल प्रयोग करने से शत्रु पर सुविधापूर्वक प्रहार किया जा सके, अथवा जहाँ रह कर राज्य की रक्षा की जा सके, अथवा जहाँ पहुंचने पर शत्रु से अपनी इच्छा के अनुसार सन्धि हो सकना सम्भावित हो, ऐसे स्थान पर जाकर विजिगीषु को रहना चाहिये। अथवा अपने गुमचरों के द्वारा शत्रु के पास यह सन्देश भेज दे कि आपके शत्रु को हमने हस्तगत कर लिया है, इसलिए आप किसी पण्य वस्तु के नाम पर नकद धन और शक्तिशाली सेना हमारे पास भेज दें, ताकि हम आपके शत्रु को पकड़कर आपके पास भेज सकें। अथवा आप चाहें तो हम उसे यहाँ से अन्यत्र भेज देंगे। यदि शत्रु इसे स्वीकार करके धन और सेना भेज दे तो उस पर अपना अधिकार करले। अथवा विजिगीषु का अन्तपाल अपना दुर्ग शत्रु को देकर उसकी अधिकांश सेना बहुत भीतर तक घुसाकर लेजाय और फिर प्रबल प्रहार द्वारा उन सबको समाप्त कर दे। अथवा अपने किसी संगठित दूष्य जनपद का दमन करने के उद्देश्य से अन्तपाल शत्रु-सेना को

बुलाकर किसी ऐसे प्रदेश तक घुसा लेजाय, जहाँ से वे सरलता से न लौट सकें और मारे जांय।

मित्रव्यंजनो वा बाह्यस्य प्रेषयेत्—'क्षीणमस्मिन्दुर्गे धान्यं स्नेहाः क्षारो लवण वा, तदमुष्मिन्देशे काले च प्रवेक्ष्यति। तदुपगृहाण' इति। ततो रसविद्धं स्नेहं क्षीरं वा दूष्यामित्राटविकाः प्रवेशयेयुः, अन्ये वा अभित्यक्ताः। तेन सर्वभाण्डवीवधग्रहणं व्याख्यातम्। सन्धि वा कृत्वा हिरण्यैकदेशमस्मै दद्यात्, विलम्बमानः शेषम्। ततो रक्षाविधानान्यवस्रावयेत्। अग्निरसशस्त्रैर्वा प्रहरेत्, हिरण्यप्रतिग्राहिणो वास्य वल्लाभननुगृह्णीयात्। परिक्षीणो वास्मै दुर्गं दत्वा निर्गच्छेत्सुरुंगया। कुक्षिप्रदरेण वा प्राकारभेदेन निर्गच्छेत्।

अथवा विजिगीषु का कोई मित्र वेश वाला गुप्तचर शत्रु से कहलवाये कि आपके उस दुर्ग में धान्य, स्नेह, क्षार-द्रव्य एवं लवणादि सब लूट लिया गया है यह द्रव्य अमुक स्थान पर अमुक समय पहुंचेगा, इसलिए उस सब को आप अपने अधिकार में ले लें। फिर अपने विरोधी, शत्रु एवं आटविकों के द्वारा विषयुक्त धान्य, स्नेह, गुड़, नमक आदि उसी निश्चित स्थान और समय पर भेजे। तब शत्रु उसे लूट कर खाने से मृत्यु को प्राप्त हो सकते हैं। यह शत्रु के पास विषयुक्त खाद्य पदार्थ पहुंचाने के उपायों की व्याख्या हुई। अथवा अल्पबल विजिगीषु शत्रु से सन्धि करके निश्चित देय धन का कुछ अंश प्रदान करे और शेष अंश देने में देर करे। जब शत्रु विश्वास करके अपनी सेना के घेरे को वहाँ से समाप्त करके हट जाय,तब उस शत्रु राजा को विष दिलाकर मरवा दे अथवा धन के प्रलोभन में मारने के लिए तत्पर शत्रु के ही प्रियजनों को धन देकर मरवा डाले। अथवा अधिक अशक्त हो गया हो तो अपना दुर्ग शत्रु के हाथ में जाने दे और स्वयं सुरंग मार्ग द्वारा निकल भागे। यदि ऐसा न हो सके तो जहाँ कहीं दीवार में कोई छिद्र आदि हो तो उसी को चौड़ा करके वहाँ से भाग जाय।

रात्रावचस्कन्दं दत्त्वा सिद्धस्तिष्ठेत्, असिद्धः पार्श्वेनापगच्छेत्, पाषण्डच्छद्मना मन्दपरिवारो निर्गच्छेत्, प्रेतव्यंजनो वा गूढैर्निर्ह्रियेत, स्त्रीवेषधारी वा प्रेतमनुगच्छेत् । देवतोपहारश्राद्धप्रवहणेषु वा रसविद्धमन्नपानमवसृज्य कृतोपजापो दूष्यव्यजनैर्निष्पत्य गूढसैन्योऽभिहन्यात्। एवं गृहीतदुर्गो वा प्राश्यप्राशं चैत्यमुपस्थाप्य दैवतप्रतिमाच्छिद्र प्रविश्यासीत । गूढभित्तिं वा दैवतप्रतिमायुक्तं भूमिगृहम् । विस्मृते सुरुंगया रात्रौ राजावासमनुप्रविश्य सुप्तममित्रं हन्यात् । यन्त्रविश्लेषणं वा विश्लेष्याधस्तादवपातयेत् । रसाग्नियोगेनावलिप्तं गृहं वाऽधिशयानममित्रमादीपयेत् ।

अथवा ऐसा प्रतीत हो कि रात्रि के समय अकस्मात् आक्रमण करके शत्रु को वश में किया जा सकता है, तो दुर्ग में ही रुका रहे । किन्तु आक्रमण करने से लाभ न हो तो दुर्ग के किसी बगल के मार्ग से किसी पाखण्डी साधु के वेश में थोड़े से परिवार के साथ निकल भागे । यदि ऐसा भी न हो सके तो उसके गुप्तचर उसे मृतक के रूप में काठी पर बाँध कर निकाल ले जाँय । अथवा विजिगीषु स्वयं ही स्त्री वेश धारण कर किसी मिथ्या मृतक के पीछे-पीछे चला जाय । अथवा देवपूजन एवं श्राद्ध आदि के या वन-भोजन के नाम पर दिये जाने वाले खाद्य पदार्थों में विष मिला दे या दूष्यव्यजन गुप्तचरों के वेश वाले अपने गुप्तचरों की सहायता लेकर शत्रु-सेना में घुस जाय और अपनी गूढ़ सेना द्वारा तोड़-फोड़ आदि कार्यों को कराता हुआ, शत्रु पर हमला बोल दे । यदि विजिगीषु के दुर्ग पर शत्रु का अधिकार हो जाय तो बच कर भाग निकला हुआ विजिगीषु किसी ऐसे देवमन्दिर में आश्रय ले, जहाँ जीवनोपयोगी खाद्यादि सब पदार्थ उपलब्ध हों और आवश्यक हो तो देवमूर्ति में छिद्र बना कर उसके भीतर छिप कर रहे । या देवालय की किसी दीवार के छेद अथवा भूमिगत स्थान अर्थात् तहखाने में रहे । कालान्तर में शत्रु को विजिगीषु की स्मृति न रहे या विजिगीषु की ओर से निश्चिन्त होजाय, तब अवसर देख कर सुरंग-मार्ग से शत्रु को शयन गृह में जाकर,

सोते हुए में ही उसकी हत्या कर दे। अथवा किसी षडयन्त्र के संचालन द्वारा उसे दुर्ग से उठा कर बाहर फेंक दे। अथवा विष और अग्नि के योग से लिपे हुए घर या लाख आदि से निर्मित किसी घर में शत्रु को ठहराने का प्रयत्न करे और रात्रि-कालीन शयनावस्था में ही उस घर में आग लगा कर भस्म कर डाले।

प्रमदवनविहाराणामन्यतमे वा विहारस्थाने प्रमत्तं भूमिगृहसुरुङ्गागूढाभित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णा हन्युः, गढप्रणिहिता वा रसेन। स्वपतो वा निरुद्धे देशे गूढाः स्त्रियः सर्परसाग्निधूमानुपरि मुंचेयुः। प्रत्युत्पन्ने वा कारणे यद्यदुपपद्येत तत्तदमित्रेऽन्तःपुरगते गूढसंचारः प्रयुंजीत। ततो गूढमेवापगच्छेत्, स्वजनसंज्ञां च प्ररूपयेत्।

द्वाःस्थान् वर्षवरांश्चान्यान् निगूढोपहितान् परैः।
तूर्यसंज्ञाभिराहूय द्विषच्छेषाणि घातयेत्॥

अथवा तहखाने, सुरंग या गुप्त दीवार में छिपे हुए तीक्ष्ण संज्ञक गुप्तचर अवसर की ताक में रहें और जब कभी काम-विहार में अनुरक्त शत्रु विलासिनी स्त्रियों के उद्यान या क्रीड़ास्थल पर जाय, तब उस पर प्रहार कर दें। अथवा रसोइया और मांस पाचक रूपी गुप्तचर शत्रु के यहाँ नौकरी करें और भोजनादि में विष मिला कर उसे मार दें। अथवा अन्य व्यक्तियों के लिए निषिद्ध प्रवेश वाले एकान्त स्थान में शयन करते हुए अरि पर गुप्तचरियाँ सर्प, विष अथवा विषमय धूम्र का अवसरानुकूल प्रयोग कर उसे मार दें। अथवा उचित अवसर और अनुकूल परिस्थिति हो तो उसके अन्तःपुर में घुस कर स्वयं विजिगीषु ही उक्त उपायों से काम ले। तदनन्तर छिपे रूप में ही स्वयं बाहर निकलता हुआ, संकेत द्वारा अपने अनुचरों को भी साथ निकाल लावे। द्वाररक्षक, नपुंसक (हिजड़े), अथवा अन्यान्य सेवकों के रूप मे शत्रु के अन्तःपुर में रहने वाले अपने गुप्तचरों या विशिष्ट व्यक्तियों को तुरही-नाद के संकेत से बाहर बुलाता हुआ, शत्रु के शेष परिजनों को भी मरवा डाले।

॥ आबलीयस नामक द्वादश अधिकरण समाप्त

दुर्गलम्भोपाय त्रयोदश अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

उपजाप

विजिगीषुः परग्राममवाप्तुकामः सर्वज्ञदैवतसंयोगख्यापनाभ्यां स्वपक्षमुद्धर्षयेत्' परपक्षं चोद्वेजयेत् । सर्वज्ञख्यापनं तु गृहगुह्य-प्रवृत्तिज्ञानेन प्रत्यादेशो मुख्यानां कण्टकशोधनापसर्पागमेन प्रका-शनं राजद्विष्टकारिणां, विज्ञाप्योपायनख्यापनमदृष्टसंसर्गविद्या-संज्ञाभिः, विदेशप्रवृत्तिज्ञानं तदहरेव गृहकपोतेन मुद्रासंयुक्तेन।

अब शत्रु दुर्ग की प्राप्ति के विषय में कहते हैं। अरि के ग्राम और नगर पर कब्जा करने की इच्छा वाला विजिगीषु अपनी सर्वज्ञता और दैव-साक्षात्कार की विशेषता को प्रचारित करके स्वपक्ष को उत्साहित और परपक्ष को उत्साह हीन करने की चेष्टा करे। सर्वज्ञता का प्रचार ऐसे करे कि अपने प्रमुख व्यक्तियों के घरों की अनेक गुप्त बातों को गुप्तचरों द्वारा जान कर उन प्रमुखों के सामने ही सुनावे, कण्टकशोधन अधिकरणोक्त अपसर्प विधान से सब वृत्तान्त जान कर अपने दुष्ट कर्मचारियों के विषय में बतादे, दूसरे जिसे न जानते हों उसे नट-नर्तक आदि की संसर्गविद्या अर्थात् नाच, गान, वाद्य आदि के संकेतों से या गुप्त-चरों आदि के द्वारा सूचना प्राप्त करके सामन्तों द्वारा अपने लिए भेंट किये जाने वाले उपहार, धन आदि की संख्या और रूप, भेंट मिलने से पहिले ही बता दे तथा अपने पालतू कपोतों द्वारा पता लगाई गई विदेश में घटी हुई घटनाओं को उसी दिन बतावे।

दैवतसंयोगख्यापनं तु—सुरुङ्गामुखेनाग्निचैत्यदैवतप्रतिमा-च्छिद्रानुप्रविष्टैरग्निचैत्यदैवतव्यंजनैः सम्भाषणं पूजनं च, उदका-

दुत्थितैर्वा नागवरुणव्यंजनैः सम्भाषणं पूजनं च, रात्रावन्तरुदके समुद्रवालुकाकोश प्रणिधायाग्निमालादर्शनम्, शिलाशिक्यावगृहीते प्लवके स्थानम्, उदकबस्तिना जरायुणा वा शिरोऽवगूढनासः पृषतान्त्रकुलीरनक्रशिशुमारोद्रवसाभिर्वा शतपाक्यं तैल नस्तः प्रयोगः। तेन रात्रिगणश्चरति इत्युदकचरणानि, तैर्वरुणनागकन्या-वाभ्यर्क्रियासम्भाषणं च, कोपस्थानेषु मुखादग्निधूमोत्सर्गः।

अब दैव-साक्षात्कार के प्रचार का उपाय कहते हैं। देवालय में बनी सुरंग के द्वारा कोई गुप्तचर देवप्रतिमा में घुस जाय और उसके छिद्र द्वारा स्वयं को अग्निदेव आदि जिस देवता की मूर्ति हो, वही अपने को बतावें और राजा सबके सामने उससे बातें करे और उसकी पूजा करे। इसी प्रकार जल से निकलते हुए नाग या वरुण देवता का रूप धारण किए हुए गुप्तचरों से वार्तालाप और पूजनादि किया जाय। वे गुप्तचर तड़ागादि के जल में मुद्रायुक्त तथा बाल से भरी हुई पिटारी रख दें और रात्रिकाल में उसमें से आग की लपटों को बारंबार किसी प्रकार प्रज्वलित कर-करके दिखावें। अथवा नौकाओं में इस प्रकार से भारी पाषाण आदि बाँधें कि वेगपूर्वक बहते हुए जल में वे नौकाएं लंगर द्वारा रोक कर दिखा दी जाँय। उनमें से किसी नौका पर खड़ा होकर राजा भी दर्शन दे सकता है। उदकवास्ति अर्थात् जल में प्रविष्ट होने से रोकने के लिए विशेष प्रकार से बनी वस्त्र थैली अथवा जरायु अर्थात् गर्भ थैली के समान बनी चर्म थैली से अपने सिर को नाक तक ढँक कर पृषत संज्ञक हिरन की आँत और केंकड़ा, मगर, शिशुमार (शिरस मछली) और उद्र अर्थात् हूद नाम की मछली की चर्बी के साथ सौ बार पकाया हुआ तैल नासिका में डाल दिया जावे। इस प्रकार करने से झुण्ड के झुण्ड व्यक्ति रात्रि के समय जल पर चल सकते हैं। जल पर चलने वाले ऐसे गुप्तचरों के द्वारा वरुण और नाग कन्याओं जैसे स्वरों का उच्चारण कराया जाय और राजा स्वयं उनसे बात-चीत करे। यदि क्रोध का रूप प्रदर्शित करना हो तो वे गुप्तचर

किसी औषधि आदि के प्रयोग द्वारा अपने मुख से अग्नि की लपटें अथवा धुँआ निकलने का प्रदर्शन करे।

तदस्य स्वविषये कार्तान्तिकनैमित्तिकमौहूर्तिकपौराणिकेक्षणिकगूढपुरुषसाचिव्यकरास्तद्दर्शिनश्च प्रकाशययुः। परस्य विषये दैवतदर्शनं दिव्यकोशदण्डोत्पत्तिं च अस्य ब्रूयुः। दैवतप्रश्ननिमित्तावायसांगविद्याः स्वप्नमृगपक्षिव्यवहारेषु चास्य विजयं ब्रूयुः विपरीतमित्रस्य। सदुन्दुभिमुल्कां च परस्य नक्षत्रे दर्शयेयुः। परस्य मुख्यान्मित्रत्वेनापदिशन्तो दूतव्यंजनाः स्वामिसत्कारं ब्रूयुः। स्वपक्षबलाधानं परपक्षप्रतिघातं च तुल्ययोगक्षेममामात्यानामायुधीयानां च कथयेयुः। येषु व्यसनाभ्युदयावेक्षणमपत्यपूजनं प्रयुञ्जीत।

राजा की सर्वज्ञता एवं देव-साक्षात्कार की बात स्वदेश में उसके सहायक और उक्त कार्यों को प्रत्यक्ष देखने वाले दैवज्ञ, शकुनी, ज्योतिषी, पौराणिक एवं प्रश्नों का शुभाशुभ फल कहने वाले के वेश में रहने वाले गुप्तचर प्रचारित करें तथा वे ही गुप्तचर शत्रुदेश में भी राजा को देव-साक्षात्, दिव्यकोश तथा दिव्यसेना की प्राप्ति की बात बड़े जोर-शोर से विज्ञापित करें। शुभाशुभ विषयक प्रश्न, शकुन, काक की बोली से शुभाशुभ का ज्ञान, अंग-स्पर्श से शुभाशुभ का ज्ञान, स्वप्न देख कर और पशु पक्षी के शब्दों को सुन कर वे गुप्तचर कहें कि यह शकुन विजिगीषु की विजय और शत्रु की पराजय के सूचक हैं। विजिगीषु की अवश्य ही जीत होगी। अपने सम्पूर्ण राज्य भी दुंदुभी बजाते हुए उक्त बात का प्रचार करें तथा प्रजाजनों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए शत्रु के लिए अशुभ सूचक, आकाश से उल्का गिरावें। शत्रु के प्रमुख पुरुषों के मित्र बने हुए दूतवेश वाले गुप्तचर उनके सामने अपने स्वामी द्वारा किए जाने वाले सत्कार की बारबार प्रशंसा करें। वे शत्रु के अमात्यादि तथा सशस्त्र सैनिकों के सामने अपने स्वामी की विजय और शत्रु-सेना के नष्ट होने की कथा जोर-शोर से प्रचारित

करते हुए दोनों राजाओं के योग क्षेम की समानता भी कहते रहें। तथा यह भी प्रचारित करते रहें कि हमारा स्वामी अपने अनुचरों की विपत्ति में बड़ा सहायक होता है, और अभ्युदय काल में दान-मानादि से अनेक प्रकार सत्कृत करता है। यदि कोई अमात्यादि राजपुरुष मर जाता है तो उसके पुत्रों को भी वैसी ही सुविधाएं एवं धन-मानादि से सत्कार करता है।

तेन परपक्षमुत्साहयेद्यथोक्तं पुरस्तात्। भूयश्च वक्ष्यामः—साधारणगर्दभेन दक्षान्, लकूटशाखाहननाभ्यां दण्डचारिणः कुलैडकेन चोद्विग्नान्, अशनिवर्षेण विमानितान् विदुलेनावकेशिना वायसपिण्डेन कैतवजनितमेघेन वा विहतशान्, दुर्भगालकारेण द्वेषिणेति पूजाफलान्, व्याघ्रचर्मणा मृत्युकूटेन चोपहितान्, पीलुविखादनेन करकयोष्ट्र्या गर्दभीक्षीराभिमन्थनेनेति ध्रुवापकारिण इति।

भेद के जो उपाय कहे जा चुके हैं, उनके द्वारा परपक्ष को भड़कावे। अब अन्य उपाय भी कहते हैं कि परपक्ष के अत्यन्त निपुण व्यक्तियों को अपने स्वामी के लिए सामान्य गधे के समान व्यर्थ परिश्रम करने वाला कह कर भड़कावे। लाठी और कुल्हाड़ी के उदाहरण द्वारा सैनिकों को उत्तेजित करे। शत्रु से भयभीत व्यक्तियों को जीवन से निराश मेढ़े या बकरे के उदाहरण से राजा के विरुद्ध करे। राजा द्वारा तिरस्कृत व्यक्तियों को बदला लेने के लिए उत्साहित किया जाय। शत्रु ने जिनकी आशा नष्ट की हो, उन्हें फलहीन बेंत, खाने के अयोग्य लौहमोदक अथवा जलहीन मेघ की उपमा देकर फोड़े। जो राजा से अलंकार या पुरस्कारादि पाकर अपने को धन्य समझते हों, उन्हें उन अलकारों या पुरस्कारों को अशुभ लक्षण वाले बता कर विरुद्ध करें। जो राजा द्वारा किसी प्रकार की चालों से प्रवंचित हुए हों, उन्हें राजा को नकली व्याघ्र बना हुआ मृत्यु रूप बता कर उत्तेजित करें। जो व्यक्ति शत्रु का अपकार करने में समर्थ प्रतीत हों,

उन्हें पीलु-फल खाने, करका अर्थात् तिक्त रस वाले शाक विशेष, उष्ट्री अर्थात् तिक्त रस वाली औषधि विशेष अथवा गधी के दूध को बिलोने का उदाहरण देकर राजा के विरुद्ध भड़कावें।

प्रतिपन्नानर्थमानाभ्यां योजयेत्। द्रव्यभक्तच्छिद्रेषु चैनान्द्रव्य-भक्तदानैरनुगृह्णीयात्। अप्रतिगृह्णतां स्त्रीकुमारालंकारानभिह-रेयुः। दुर्भिक्षस्तेनाटव्युपघातेषु च पौरजानपदानुत्साहयन्तः सत्रिणो ब्रूयुः—'राजानमनुग्रहं याचामहे, निरनुग्रहाः परत्र गच्छामः' इति।

तथेति प्रतिपन्नेषु द्रव्यधान्यपरिग्रहैः।
साचिव्यं कार्यमित्येतदुजापादद्भुतं महत्॥

गुप्तचरों द्वारा बताये गये मार्ग पर चलते हुए जो व्यक्ति शत्रु के अपकार में तत्पर हो सकें, उन्हें धनदान द्वारा सम्मानित किया जाय। अथवा अर्थ या धन का संकट उपस्थित होने पर उन्हें धन या अन्न देना चाहिए। यदि वे लोग उसमें अपना अपमान समझ कर कुछ न लें तो उनकी स्त्री या सन्तानादि को आभूषणादि देकर सत्कृत करें। शत्रुदेश में दुर्भिक्ष, दस्युभय या आटविकों के आक्रमण का भय उप-स्थित हो और उस अवसर पर नगर एवं जनपद के रहने वालों को शासन के विरुद्ध भड़काने में समर्थ व्यक्तियों से विजिगीषु के सत्रि गुप्त चर कहें कि हमें राजा से सहायता की याचना करनी चाहिए। यदि यह राजा हमारी सहायता न करेगा तो हम अन्य राजा की शरण लेंगे। इस प्रकार अपने राजा की सहायता प्राप्त न करके जो व्यक्ति सत्रिगण की बात मान लें, उन्हें विजिगीषु द्रव्य, अन्न तथा घर आदि के प्रदान द्वारा सहायता दे। शत्रु पक्ष के पुरुषों को अपने पक्ष में करने का यह उपाय अद्भुत एवं महान है।

द्वितीयोऽध्यायः

योगवामन

मुण्डो जटिलो वा पर्वतगुहावासी चतुर्वर्षशतायुर्ब्रुवाण-

प्रभूतजटिलान्तेवासी नगराभ्याशे तिष्ठेत् । शिष्याश्चास्य मूलफलोपगमनैरमात्यान् राजानं च भगवद्दर्शनाय योजयेयुः । समागतश्च राजा पूर्वराजदेशाभिज्ञानानि कथयेत्—'शते शते च वर्षाणां पूर्णेऽहमग्निं प्रविश्य पुनर्बालो भवामि, तदाह भवत्समीपे चतुर्थमग्निं प्रवेक्ष्यामि । अवश्यं मे भवान्मानयितव्यः, त्रीन् वरान् वृणीष्व' इति । प्रतिपन्नं ब्रूयात्—'सप्तरात्रमिह सपुत्रदारेण प्रेक्षाप्रहवणपूर्वं वस्तव्यम्' इति । वसन्तमवस्कन्दयेत् ।

अब शत्रु को कूट चाल द्वारा दुर्ग से बाहर निकालने के विषय में कहते हैं । मुंड़ सिर के या जटाधारी गुप्तचर स्वयं को किसी गिरि-कन्दरा में रहने वाला और चार सौ वर्ष की आयु का कह कर अनेक तपस्वी व्यंजन शिष्यों के साथ नगर के समीप रहने लगे । फिर कभी उसके वे शिष्य शत्रु राजा के पास फलमूल की भेंट लेकर जाँय और प्रकृतिवर्ग सहित राजा को भी अपने गुरु के दर्शनों के लिए आमन्त्रित एवं प्रेरित करें । जब अमात्यों के सहित राजा उस तपस्वी के दर्शन करे, तब वह उस राजा के पूर्वजों और उसके देश से सम्बन्धित सभी चिन्ह यथावत बना कर कहे कि प्रत्येक बार सौ वर्ष पूरे होने पर मैं अग्नि में प्रवेश कर जाता तथा बालक बन कर पुनः निकल आता हूँ । अब मैं चतुर्थ बार अग्नि में प्रविष्ट हूँगा । आप मुझसे सम्मान प्राप्त करने के अधिकारी हैं, इसलिए मैं आपको वर प्रदान द्वारा सम्मानित करना चाहता हूँ । अतः आप चाहें तो मुझसे तीन वर माँग लें । राजा द्वारा आज्ञा शिरोधार्य कर लेने पर तपस्वी पुनः कहे कि आप सात रात्रि तक अपने स्त्री-पुत्र सहित क्रीडा आदि मनोरंजन करते-कराते और सभी आगन्तुकों को सहर्ष भोजनादि प्रदान करते हुए मेरे पास ही रहें । जब राजा वहाँ आकर रहने लगे तब उसे छिप कर अथवा शयनावस्था में मार डाले ।

मुण्डो वा जटिलो वा स्थानिकव्यजनः प्रभूतजटिलान्तेवासी बस्तशोणितदिग्धां वेणुशलाकां सुवर्णचूर्णेनावलिप्य वल्मीके निद-

ध्यादुपर्जिह्विकानुसरणार्थं, स्वर्णनालिकां वा । ततः सत्री राज्ञः कथयेत्—'असौ सिद्धः पुष्पित निधि जानाति' इति । स राजा पृष्टः 'तथा' इति ब्रूयात् । तच्चाभिज्ञान दर्शयेत् । भूयो वा हिरण्य-मन्तराधाय ब्रूयाच्चैनम्—'नागरक्षितोऽयं निधिः प्रणिपातसाध्यः' इति । प्रतिपन्नं ब्रूयात्—'सप्तरात्रम्' इति । शेष समानम् ।

अथवा अनेक जटाधारी शिष्यों के साथ मुण्डित या जटाधारी गुरु किसी विशेष स्थान पर रह कर बकरे के रक्त म सनी और स्वर्ण के चूर्ण से लिपटी बाँस की शलाका को बाँबी में रख कर उस बाँबी की पहिचान के लिये कोई चिन्ह बना दिया जाय । फिर सत्रि गुप्तचर राजा से कहें कि अमुक तपस्वी भूमिगत धन को बता देता है । इस पर, जब राजा उससे पूछे, तब वह कहे कि मैं भूमि में गढ़े कोश को बता सकता हूँ । फिर वह उस राजा को बाँबी पर ले जाय और सोने से लिप्त वह नली अथवा बहुत-सा धन दिखाता हुआ कहे कि यह धन सर्प देवता का है, इसलिए उनका पूजन करना चाहिए । जब राजा इसे स्वीकार कर ले तब उससे कहे कि आप अपने स्त्री-पुत्र आदि के साथ सात रात्रि पर्यन्त यहाँ रहें । और जब वह वहाँ आकर रहने लगे, तब अवसर देख कर उसे मार डाले ।

स्थानिकव्यञ्जनं वा रात्रौ तेजनाग्नियुक्तमेकान्ते तिष्ठन्तं सत्रिणः क्रमाभिनीतं राज्ञः कथयेयुः—'असौ सिद्धः सामेधिकः' इति । तं राजा यमर्थं याचेत, तमस्य करिष्यमाणः 'सप्तरात्रम्' इति समानम् । सिद्धव्यञ्जनो वा राजानं जम्भकविद्याभिः प्रलोभयेत् । 'तं राजा' इति समानम् । सिद्धव्यञ्जनो वा देशदेवताम-भ्यर्हितामाश्रित्य प्रहवणैरभीक्ष्णं प्रचतिमुख्यानभिसंवास्य क्रमेण राजानमतिसदध्यात् । जटिलव्यञ्जनमन्तरुदकवासिनं वा सर्प-चैत्यसुरुङ्गाभूमिगृहापसरणं वरुणं नागराजं वा सत्रिणः क्रमाभि-नीतं राज्ञः कथयेयुः । तं राजा' इति समानम् ।

अथवा रात्रि के समय जादू की विधि से दहकती हुई अग्नि के समीप बैठे हुए किसी तपस्वी के पास सत्रि गुप्तचर राजा को चुपचाप लेजाँय और उस तपस्वी को दिखा कर कहें कि यह सिद्ध पुरुष भविष्य का यथावत कथन करते हैं। यह सुनकर राजा उस तपस्वी के पास जाकर जिस वर की याचना करे, उसे पूर्ण करने का वचन देकर वह तपस्वी सात रात्रि पर्यन्त उसे वहीं निवास करने का आदेश दे और जब वह वहाँ रहने लगे, तब उसका वध कर दे। अथवा तापस वेशधारी कोई गुप्तचर राजा को अपनी कपट विद्या के चमत्कार दिखा कर राजा को वशीभूत करके, सात रात्रि पर्यंत अपने पास रखे और अवसर मिलते ही उसकी हत्या कर दे। अथवा कोई सिद्ध तापस गुप्तचर वहाँ के प्रदेश-देवता के पूजन के बहाने से भारी उत्सव आयोजित करे और उसमें अमात्यादि के सहित राजा को भी बुलावे तथा अवसर मिलते ही राजा की हत्या करा दे। अथवा कोई जटिल व्यंजन श्वेत जटाधारी गुप्तचर ऐन्द्रजालिक विधि से जल में रहें, उसके विषय में राजा को बताते हुए सत्रिगण वरुण या नागदेव कह कर उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करें। जब उनकी बातों से प्रभावित हुआ राजा वहाँ जाय, तब वह सर्प की बाँबी, देवालय, सुरंग अथवा भूमिगत स्थान से निकलता हुआ दिखाई दे। जब राजा उस पर विश्वास करके वर की याचना करे, तब इच्छापूर्ति के लिए उसे सात रात्रि तक अपने पास रखे और अवसर मिलते ही मार डाले।

जनपदान्तेवासी सिद्धव्यंजनो वा राजानं शत्रुदर्शनाय योजयेत्। प्रतिच्छन्नं बिम्बं कृत्वा शत्रुमात्राहयित्वा निरुद्धे देशे घातयेत्। अश्वपण्योपयाता वैदेहकव्यंजनाः पण्योपायननिमित्तमाहूय राजानं पण्यपरीक्षायामासक्तमश्वव्यतिकीर्णं वा हन्युः, अश्वैश्च प्रहरेयुः। नगराभ्याशे वा चैत्यमारुह्य रात्रौ तीक्ष्णाः कुम्भेषु नालीन् वा विदलानि धमन्तः—स्वामिनो मुख्यानां वा मांसानि

भक्षयिष्यामः, पूजा नो वर्तताम्' इत्यव्यक्तं ब्रूयुः। तदेषां नैमत्तिकमौहूर्तिव्यंजनाः ख्यापयेयुः।

अथवा जनपद की सीमा पर निवास करने वाला कोइ सिद्ध व्यंजन गुप्तचर शत्रु राजा को अपने पास बुलाकर शत्रु को देखने की प्रेरणा करे। जब राजा उसे स्वीकार कर ले तब पहिले से निश्चित शब्द या चिन्ह संकेत के द्वारा अपने राजा को बुलाकर एकान्त स्थान में उन दोनों को मिलावे और अपने राजा के द्वारा ही शत्रु राजा को मरवा दे। अथवा अश्व वेचने वाले के रूप में रहने वाले गुप्तचर के अश्वों को देख कर उनका मूल्यांकन करने के वहाने से सत्रिगण शत्रु राजा को वहाँ ले जाँय और जब वह अश्व देखने में व्यस्त हो, तब चारों ओर से भीड़ करके उसे घेर कर स्वयं मार दें या घोड़े द्वारा कुचलवा दें। अथवा रात्रिकाल में नगर के समीपवर्ती किसी वृक्ष पर तीक्ष्ण गुप्तचर घड़ों में धान्य या काष्ठ चूर्ण डाल कर जलावें और उसके भयप्रद उजाले में अव्यक्त रूप में अर्थात् मिनमिनाते हुए कहें कि मेरा पूजन करो, अन्यथा मैं राजा और उसके प्रमुखों का माँस-भक्षण करूँगा। फिर नैमित्तिक अर्थात् शुभाशुभ कहने वाले और मौहूर्तिक अर्थात् ज्योतिषी वेशधारी गप्तचर उस बात को जोर-शोर से प्रचारित कर दें।

मंगल्ये वा ह्रदे तटाकमध्ये वा रात्रौ तेजनतैलाभ्यक्ता नागरूपिणः शक्तिमुसलान्ययोमयानि निष्पेषयन्तस्तथैव ब्रूयुः। ऋक्षचर्मकंचुकिनो वा अग्निधूमोत्सर्गयुक्ता रक्षोरूपं वहन्तस्त्रिरपसव्यं नगरं कुर्वाणाः श्वश्रृगालवाशितान्तरेषु तथैव ब्रूयुः। चैत्यदैवप्रतिमां वा तेजनतैलेनाभ्रपटलच्छन्नेनाग्निना वा रात्रौ प्रज्वाल्य तथैव ब्रूयुः। तदन्ये ख्यापयेयुः। दैवतप्रतिमानानभ्यर्हितानां वा शोणितेन प्रस्रावमतिमात्रं कुर्युः। तदन्ये देवरुधिरसंस्रावे पराजयं ब्रूयुः।

अथवा किसी मांगलिक और गहरे सरोवर में रात्रि के समय ऐन्द्रजालिक तैल की मालिश करके नाग देवता के वेश वाले गुप्तचर लोहे से

निर्मित शक्ति और मूसल को परस्पर रगड़ते हुए मिर्नामनाहटयुक्त स्वर में कहे कि मुझे भेंट दो, अन्यथा मैं राजा और उसके अमात्यों का भक्षण कर लूँगा। अथवा रीछ के चर्म को ओढ़कर और राक्षस का वेश धारण करके मुख से धूम्र-मय अग्नि निकालते हुए गुप्तचर नगर की तीन बार उल्टी परिक्रमा करके श्वान या स्यार जैसे शब्दों में उसी प्रकार भेंट माँगे, अन्यथा राजा या मन्त्री आदि को खोजने का भय बतावे। अथवा रात्रिकाल में कोई गुप्तचर किसी वृक्ष के नीचे विद्यमान देवता को दीप्तिमय तैल लगा कर अभरक के ढक्कन से ढँकी हुई अग्नि को जला कर उक्त प्रकार से ही भेंट माँगे और फिर उसके साथी गुप्तचर उसका भारी प्रचार करें। अथवा वे गुप्तचर किसी प्रमुख देव-प्रतिमा पर रक्त की धारा बहा दें और अन्य गुप्तचर उसे राजा की हार का लक्षण कह कर प्रचारित करें।

सन्धिरात्रिषु श्मशानप्रमुखे वा चैत्यमूर्ध्वभक्षितैर्मनुष्यैः प्ररूपयेयुः। ततो रक्षोरूपी मनुष्यकं याचेत। यश्चात्र शूरवादिकोऽन्यतमो वा द्रष्टुमागच्छेत् तमन्ये लोहमुसलैर्हन्युः, यथा रक्षोभिर्हत इति ज्ञायेत। तदद्भुतं राजस्तद्दर्शिनः सत्रिणश्च कथयेयुः। ततो नैमित्तिकमौहूर्तिकव्यंजनाः शान्तिं प्रायश्चित्तं च ब्रूयुः—'अन्यथा महदकुशलं राज्ञो देशस्य च' इति। प्रतिपन्नम्—'एतेषु सप्तरात्रमेकैकमन्त्रबलिहोमं स्वयं राज्ञा कर्तव्यम्' इति ब्रूयुः। ततः समानम्।

अथवा पक्ष-सन्धि अर्थात् पूर्णिमा या अमावस्या की रात्रि में गूढ़ पुरुष नगर के प्रमुख श्मशान में ऊपर से खाये हुए मनुष्यों के धड़ चिताओं के चारों ओर फैले हुए दिखावें। फिर कोई गूढ़ पुरुष राक्षस रूप में आकर अपने भक्षणार्थ मनुष्य माँगे। उस समय यदि कोई साहसी पुरुष अपने को सबल समझकर उस राक्षस को देखने के लिए पहुंचे, तब अन्य गुप्तचर उसे लोहे के मूसलों से मार डालें, जिससे कि उस का राक्षस द्वारा मारा जाना मान लिया जाय। फिर उस बात को

देखने वाले लोगों के सहित सत्रिगण राजा से जाकर कह वें। फिर नैमित्तिक और मौहूर्तिक गुप्तचर राजा के पास जाकर राक्षस की शांति और प्रायश्चित का उपाय बताते हुए कहें कि सात दिन तक जप, बलि एवं यज्ञ आदि राजा स्वयं करे, अन्यथा राजा और राष्ट्र दोनों का ही अमंगल होगा। फिर जब राजा वहाँ जाकर वैसा करने लगे तभी उस की हत्या कर दी जाय।

एतान् वा योगानात्मनि दर्शयित्वा प्रतिकुर्वीत, परेषामुपदेशार्थम्। ततः प्रयोजयेद्योगान्। योगदर्शनप्रतीकारेण वा कोशाभिसंहरणं कुर्यात्। हस्तिकामं वा नागवनपाला हस्तिना लक्षण्य न प्रयोभयेयु, प्रतिपन्नं गहनमेकायनं वाऽतिनीय घातयेयुः, बद्ध्वा वाऽपहरेयुः। तेन मृगयाकामो व्याख्यातः। द्रव्यस्त्रीलोलुपमाढ्यविधवाभिर्वा परमरूपयौवनाभिः स्त्रीभिर्दायादनिक्षेपार्थमुपनीताभिः सत्रिणः प्रलोभयेयुः। प्रतिपन्नं रात्रौ सत्रिच्छन्नाः समागमे शस्त्ररसाभ्यां घातयेयुः। सिद्धप्रव्रजितदैत्यस्तूपदैवतप्रतिमानामभीक्ष्णाभिगमनेषु वा भूमिगृहसुरुंगागूढ़भित्तिप्रविष्टास्तीक्ष्णाः परमभिहन्युः।

अथवा विजिगीषु उक्त सभी प्रयोगों को स्वयं अपने ऊपर ही करके परीक्षण करे और उनका प्रतीकार भी करे, जिससे कि उसके अनुचर उनमें ठीक प्रकार प्रशिक्षित हो जाँय। फिर उन प्रशिक्षित गुप्तचरों को ही शत्रु पर प्रयोग करने के लिए नियुक्त करे। अथवा वे गुप्तचर प्रजाजनों के मनोरंजनार्थ उन प्रयोगों को दिखाकर उसकी आय से राज्य के कोश को बढ़ावें। अथवा यदि शत्रु राजा हाथी पकड़ने का शौकीन हो तो स्वपक्ष के हस्तिवन की रक्षा करने वाले लोग श्रेष्ठ लक्षण वाले हाथी के प्रलोभन में उसे गहन अरण्य में लेजाकर मार डालें या बन्दी बनाकर विजिगीषु के सामने उपस्थित करें। यही प्रयोग मृगया-प्रेमी शत्रु के प्रति भी किया जा सकता है। अथवा धन या स्त्री की कामना वाले रिपु को सत्रिगण रूपवती धनिक विधवाओं को अपने

दायभाग या धरोहर आदि के बाद के बहाने से अथवा अन्य तरुणियों को लेंजाकर दिखावें और जब राजा उनके रूप जाल में फँस जाय तब उनमें से किसी एक के साथ विहार करने के स्थान में आकर उस कामोन्मत्त राजा की शस्त्र या विष से हत्या कर दें। अथवा सिद्ध सन्यासी तथा स्तूप या देवप्रतिमा को देखने के लिए जाते समय, भूमिगृह, सुरंग या दीवार आदि में छिपे हुए गूढ़ पुरुष शत्रु राजा का वध कर डालें।

येषु देशेषु याः प्रेक्षाः प्रेक्षते पार्थिवः स्वयम्।
यात्राविहारे रमते यत्नाक्रीडति वाम्भसि ॥१
चाटूक्त्यादिपु कृत्येषु यज्ञप्रवहणेषु वा।
सूतिकाप्रेतरोगेषु प्रीतिशोकभयेषु च ॥२
प्रमादं याति यस्मिन्वा विश्वासात्स्वजनोत्सवे।
यात्रास्यारक्षिसंचरो दुर्दिने संकुलेषु वा ॥३
विप्रस्थाने प्रदीप्ते वा प्रविष्टे निर्गनेऽपि वा।
वस्त्राभरणमाल्यानां फेलाभिः शयनासनैः ॥२
मद्यभोजनवेलाभिस्तूर्यैर्वाभिहतैः सह।
प्रहरेयुररींस्तीक्ष्णाः पूर्वप्रणिहितैः सह ॥५
यथैव प्रविशेयुश्च द्विषतः सत्रहेतुभिः।
तथैव चापगच्छेयुरित्युक्तं योगवामनम् ॥६

जिन देशों में शत्रु राजा स्वयं जिन क्रीड़ाओं को देखता, यात्रा करता और विहारादि में लगा रहता, अथवा जहाँ जलक्रीड़ा करता है। अथवा खुशामदियों के चक्कर में, यज्ञ में, प्रतिभोज आदि में, या सूतक, मृतक, व्याधि-भय आदि में यथाक्रम प्रसन्न, दुःखी या भयभीत रहता है। अथवा उत्सव आदि में असावधान, अंगरक्षक के बिना अकेला, किसी प्रकार के दुर्दिन अथवा भीड़भाड़ युक्त मार्ग में जाता हो। अथवा निर्जन मार्ग, अग्निकाण्ड या निर्जन वन में प्रविष्ट हो तब विजिगीषु के गूढ़ पुरुष श्रेष्ठ वसन, आभूषण, माला, बिस्तर, आसन, आसव एवं भोजनादि

से प्रसन्न तथा तूर्यादि के संकेत से बुलाये हुए एवं पहिले से ही नियुक्त अपने साथियों को साथ लेकर शत्रु पर प्रहार करके मार दें। जिस शत्रु के बहाने से वे गुप्तचर घुसे हों, उसी प्रकार से बाहर निकल आवें। इस प्रकार यह योगवामन अर्थात् छलपूर्वक शत्रु को लुभाने की व्याख्या पूर्ण हुई ॥१-६॥

तृतीयोऽध्यायः

गूण पुरुषों का शत्रुदेश में निवास

श्रेणीमुख्यमाप्तं निष्पातयेत्। स परमाश्रित्य पक्षोपदेशेन स्वविषयात्साचिव्यकरणसहायोपादानं कुर्वीत। कृतापसर्पोपचयो वा परमनुमान्य स्वामिनो दूष्यप्रायं वीतहस्त्यश्वं दूष्यामात्यं दण्डमाक्रन्दं वा हत्वा परस्य प्रेषयेत्। जनपदैकदेशं श्रेणीमटवीं वा सहायोपादानार्थं संश्रयेत। विश्वासमुपगतः स्वामिनः प्रेषयेत्। ततः स्वामी हस्तिबन्धनमटवीघातं वापदिश्य गूढमेव प्रहरेत्। एतेनामात्याटविका व्याख्याताः।

अब अपने गुप्तचरों को शत्रु देश में रखने के विषय में कहेंगे। विजिगीषु अपने विश्वस्त श्रेणी-मुख्य को रुष्ट होने के बहाने राज्य से निष्कासित कर दे। तब वह श्रेणीमुख्य शत्रु के आश्रय में जाकर उसका कार्य करने के बहाने से, स्वदेश के सहायक गुप्तचरों को संगठित करे। अथवा अनेक सहायक गुप्तचरों को एकत्र करके शत्रु राजा की अनुमति से अपने पूर्व स्वामी के दूष्य पुरुषों को अश्व एवं गज से विहीन दूष्य अमात्यवर्ग युक्त सेना को तथा आक्रन्द अर्थात् पृष्ठदेश की मित्र सेना को जीत कर अपने आश्रयदाता के पास भेज दे। रिपुदेश के जनपद के एकांश भोगी, श्रेणी एवं आटविकों को विजिगीषु की सहायता करने के वचन पर आश्रय दे। जब वे विश्वस्त प्रतीत हों तब उन्हें विजिगीषु के पास भेजे। फिर वह विजिगीषु हाथियों को पकड़ने और अरण्य को कटवाने के बहाने से चुपचाप शत्रु पर हमला करदे। इसी प्रकार अमात्यों और आटविकों को गुप्तचर बना कर भेजने की विधि भी

कह दी गई समझे ।

शत्रुणा मैत्रीं कृत्वा अमात्यानवक्षिपेत् । ते तच्छत्रोः प्रेषयेयुः—'भर्तारं नः प्रसादय' इति । स स्वयं दूतं प्रेषयेत् । तमुपालभेत—'भर्ता ते माममात्यैर्भेदयति, न च पुनरिहागन्तव्यम्' इति । अथैकममात्यं निष्पातयेत् । स परमाश्रित्य योगापसर्पापरक्तदूष्यानशक्तिमतः स्तेनाटविकानुभयोपघातकान् वा परस्योपहरेत्। आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषोपघातमस्योपहरेत् । अन्तपालमाटविकं दण्डचारिणं वा—'दृढमसौ चासौ च ते शत्रुणा सन्धत्ते' इति । अथ पश्चादभित्यक्तशासनैरेनान्धातयेत् । दण्डबलव्यवहारेण वा शत्रुमुद्योज्य घातयेत् । कृत्यपक्षोपग्रहेण वा परस्यामित्रं राजानमात्मन्यपकारयित्वाऽभियुंजीत । ततः परस्य प्रेषयेत् । असौ ते वैरी ममापकरोति, तमेहि सम्भूय हनिष्यावः । भूमौ हिरण्ये वा ते परिग्रहः' इति ।

शत्रु से कपट-मित्रता करने के पश्चात् विजिगीषु अपने अमात्यों को पद से हटा दे । तब वे पदच्युत अमात्य उस नये बने मित्र राजा से कहलावें कि आप किसी प्रकार हमारे महाराज के रोष को शान्त कर, उन्हें हमारे प्रति प्रसन्न कर दें । तब वह राजा अपने जिस दूत को भेजे उसका भी मान न करता हुआ विजिगीषु कहे कि आपके स्वामी हमारे अमात्यों को बहका कर अपने पक्ष में करना चाहते हैं । इसलिए अब भविष्य में ऐसा कोई संदेश लेकर मेरे पास न आवें । फिर वह उन अमात्यों में से किसी एक को अपने देश से निष्कासित कर दे । तब वह अमात्य शत्रु के आश्रय में जाकर अपने स्वामी से चिढ़े हुए प्रतीत होने वाले गुप्तचरों, चोरों, आटविकों अथवा अपने स्वामी और शत्रु दोनों का अपकार करने वालों को शत्रु राजा के पास अपने सहायक रूप में ले जाय । तदनन्तर शत्रु जब उस अमात्य पर पूर्ण विश्वास कर ले, तब वह छिपे रूप में शत्रु के पराक्रमी विश्वस्त वीरों का मरवाना प्रारम्भ करा दे । अथवा वह रिपु के अन्तपाल, आटविक

आदि की दुष्टता बनाता हुआ कहे कि अमुक-अमुक व्यक्ति आपके शत्रु से मित्रता कर रहे हैं। फिर किसी प्राणदण्ड-प्राप्त व्यक्ति का कूट लेख दिखा कर उसे मरवा दे। अथवा सैन्यबल के प्रयोग द्वारा उन सभी की हत्या करा दे। अथवा शत्रु से रुष्ट या कुपित व्यक्तियों को अनुकूल करके उसके शत्रु को भड़का कर आक्रमण करा दे। तदनन्तर अपने शत्रु राजा से यह कहलवाये कि आपका अमुक शत्रु मेरे अहित में तत्पर है. उसे हम और आप मिल कर मार दें। युद्ध मे जीतने पर उससे जो भूमि और धन प्राप्त होगा, उसमें आपको भी भाग मिलेगा।

प्रतिपन्नमभिसत्कृत्यागतमवस्कन्देन प्रकाशयुद्धेन वा शत्रुणा घातयेत्। अभिविश्वासनार्थं भूमिदानपुत्राभिषेकरक्षापदेशेन वा ग्राहयेत्। अविषह्यमुपांशुदण्डेन वा घातयेत्। स चेद्दण्डं दद्यात् न स्वयमागच्छेत् तमस्य वैरिणा घातयेत्। दण्डेन वा प्रयातुमिच्छेत् न विजिगीषुणा, तथाप्येनमुभयतः संपीडनेन घातयेत। अविश्वस्तो वा प्रत्येकशो यातुमिच्छेत, राज्यैकदेशं वा यातव्यस्य आदातुकामः, तथाप्येनं वैरिणा सर्वसन्दोहेन वा घातयेत्। वैरिणा वा सक्तस्य दण्डोपनयेन मूलमन्यतो हारयेत्। शत्रुभूम्या वा मित्रं पणेत, मित्रभूम्या वा शत्रुम्। ततः शत्रुभूमिलिप्सायां मित्रेणात्मन्यपकारयित्वाऽभियुञ्जीत। इति समानाः पूर्वेण सर्व एव योगाः।

यदि शत्रु राजा उस प्रस्ताव को मान ले और स्वयं विजिगीषु के पास आ जाय तो दिखावे में उसका भारी स्वागत-सत्कार करे और रात्रि में सोने पर प्रहार करके मरवा दे। अथवा प्रत्यक्ष युद्ध में उसका वध बनावटी शत्रु के द्वारा करावे। अथवा विश्वास दिलाने के लिए पहिले से देने के लिए निश्चित भूमि को दे: या पुत्र के राज्याभिषेक अथवा आत्मरक्षा के लिए बुला कर ही उसे पकड़वा ले। यदि यह भी न हो सके तो उपशुांदण्ड की विधि से मरवा दे। यदि बुलाने पर शत्रु स्वयं न आकर अपनी सेना ही सहायतार्थ भेजे तो अपने बनावटी

शत्रु की सेना के द्वारा उस सब सेना को नष्ट करावे। यदि आमंत्रित शत्रु अपनी सेना के साथ निकल भागने के विचार में हो तो उसे आगे और पीछे दोनों ओर से ही घेर कर समाप्त कर दे। यदि वह विजिगीषु पर विश्वास न करके सेना सहित आक्रमण कर दे या किसी प्रदेश पर अधिकार करना चाहे तो बनावटी शत्रु के साथ अपनी पूरी सेना का जोर लगा कर उसे नष्ट कर डाले। अथवा बनावटी शत्रु उस शत्रु से लड़ रहा हो तो अन्य मार्ग मे सेना भेज कर शत्रु की राजधानी को पूरी तरह लुटवा ले। अथवा किसी मित्र से ऐसी सन्धि करे कि हम मिल कर शत्रु-देश पर अधिकार कर लें तो आधा-आधा बाँट लेंगे। अथवा शत्रु से भी ऐसी सन्धि की जा सकती है कि किसी मित्र की भूमि पर अधिकार करके परस्पर बाँट लेंगे। इस प्रकार भूमि प्राप्त करने की इच्छा हो तो मित्र से अपना कुछ अपकार करवा कर उस पर हमला कर दे। तदनन्तर सभी छलयुक्त उपायों का प्रयोग किया जा सकता है।

शत्रु वा मित्रभूमिलिप्सायां प्रतिपन्नं दण्डेनानुगृह्णीयात्। ततो मित्रगतमतिसन्दध्यात्। कृतप्रतिविधानो वा व्यसनमात्मनो दर्शयित्वा मित्रेणामित्रमुत्साहयित्वा आत्मानमभियोजयेत्। ततः संपीडनेन घातयेत्, जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत्। मित्रेणाहूतश्चेच्छत्रुरग्राह्ये स्थातुमच्छेत्, सामन्तादिभिर्मूलमस्य हारयेत्, डण्डेन वा त्रातुमिच्छेत्, तमस्य घातयेत्। तौ चेन्न भिद्येयातां प्रकाशमेवान्योन्यस्य भूम्यां पणेत, ततः परस्परं मित्रव्यंजनोभयवेतना वा दूतान् प्रेषयेयुः—'अयं ते राजा भूमिं लिप्सते शत्रुसंहितः' इति। तयोरन्यतरो जाताशंकारोषः पूर्वंच्चेष्टेत।

अथवा यदि शत्रु विजिगीषु के मित्र की भूमि लेना चाहे तो शत्रु को अपनी ओर से सैनिक सहायता दे दे और जब वह मित्र के देश में पहुँच जाय तो मित्र से मिल कर शत्रु को मरवा दे। अथवा सब विपत्तियों

का प्रतीकार करके स्वयं पर कोई कल्पित विपत्ति दिखा कर अपने मित्र द्वारा प्रोत्साहित करा कर शत्रु का आक्रमण अपने ऊपर करवाये। इस प्रकार विजिगीषु के मित्र से मिला हुआ शत्रु आक्रमण कर दे तब विजिगीषु और वह मित्र दोनों ही मिल कर रिपु को नष्ट कर डालें। अथवा उसे जीवित ही पकड़ कर उसके राज्य पर उसके पुत्रादि में से किसी को बैठा दे। यदि मित्र द्वारा उत्साहित शत्रु उससे पृथक् रह कर ही युद्ध करना चाहे तो किसी सामन्त आदि के द्वारा ही उसकी राजधानी छिनवा दे। यदि सेना उसकी रक्षा में हो तो उस सेना को भी नष्ट करा दे। यदि विजिगीषु के मित्र और शत्रु परस्पर में एक हो जाँय तो प्रकट रूप में एक-दूसरे की भूमि के लिए सन्धि कर ले। फिर उभयवेतन गुप्तचर शत्रु और मित्र दोनों से ही कहलवायें कि यह राजा शत्रु के साथ मिलकर तुम्हारी भूमि पर अधिकार करने का इच्छुक है। उस अवस्था में वे परस्पर शंकित एवं कुपित होकर विजिगीषु पर हमला कर देंगे। तब वह दूसरे राजाओं से मिल कर आक्रमण-कारियों का प्रतिरोध करें।

दुर्गराष्ट्रमुख्यान् वा कृत्यपक्षहेतुभिरविख्याप्य प्रव्राजयेत्, ते युद्धावस्कन्दावरोधव्यसनेषु शत्रुमतिमन्दध्युः, भेदं वास्य स्ववर्गेभ्यः कुर्युः, अभित्यक्तशासनैः प्रतिसमानयेयुः। लुब्धकव्यंजना वा मांस-विक्रयेण द्वाःस्था दौवारिकापाश्रयाश्चोराभ्यागमं परस्य द्विस्त्रिरिति निवेद्य लब्धकप्रत्यया भर्तुरनीकं द्विधा निवेश्य ग्रामवधेऽवस्कन्दे च द्विषतो ब्रूयुः—'आसन्नश्चोरगणः, महांश्चाक्रन्दः, प्रभूतं सैन्यमा-गच्छतु' इति। तर्पयित्वा ग्रामघातदण्डस्य सैन्यमितरदादाय रात्रौ दुर्गद्वारेषु ब्रूयुः—'हतश्चोरगणः, सिद्धयात्रमिदं सैन्यमागतं, द्वार-मपाव्रियताम्' इति। पूर्वप्रणिहिता वा द्वाराणि दद्युः तैः सह प्रहरेयुः।

अथवा विजिगीषु अपने दुर्ग, राष्ट्र और सेना के प्रमुखों को अपने क्रुद्ध, लुब्ध और डरे हुए लोगों की सहायता के बहाने से अपने देश

से निष्कासित कर दे। तब वे सब शत्रु का आश्रय लेकर रहें और फिर युद्ध के अवसर पर, शयन काल में, अन्तःपुर में विहार के समय अथवा किसी भी प्रकार की विपत्ति में ग्रस्त होने पर उसे धोखे से मार डालें। अथवा वे सब शत्रु से उसके अमात्यवर्ग को विरुद्ध एवं पृथक् कर दें। अथवा विजिगीषु के वध्य पुरुषों से प्राप्त कपट लेखों के साथ अपनी कल्पित बातें जोड़ कर अमात्यवर्ग और राजा में भेद डलवाने का प्रयत्न करे। अथवा आखेटक वेशधारी गुप्तचर माँस वेचने के बहाने से राज-द्वार पर ठहर कर द्वाररक्षक की सहायता से शोर मचा कर प्रचारित करें कि राजा के नगर में चोर आया करते हैं। जब राजा इस बात पर विश्वास कर ले तब विजिगीषु की सेना को दो भागों में बाँट कर वहाँ लूट-मार करने के लिए तैयार करे और फिर राजा से कहे कि चोरों का समूह नगर के समीप ही आ गया है, इसलिए बड़ा कोलाहल हो रहा है। अतएव आप एक बड़ी सेना हमारी सहायता के लिये भेजें। इस प्रकार सेना को प्राप्त करके उसके साथ ही वे गुप्तचर ग्राम के समीप जाँय, तभी विजिगीषु की सेना उस शत्रु सेना को वन्दी बना लें और उसके वदले में विजिगीषु की सेना को वे गुप्तचर दुर्ग द्वार पर ले जाकर कहें कि चोरों को मार कर यह सेना आ गई है। इलिए दुर्गद्वार खोल देना चाहिए। अथवा पहले से नियुक्त गूढ़ पुरुष ही संकेत मिलने पर दुर्गद्वार को खोल दें। तब दुर्ग में घुसी विजिगीषु की सेना वहाँ मार-काट मचा दे।

कारुशिल्पिपाषण्डकुशीलववैदेहकव्यञ्जनानायुधीयान् वा परदुर्गे प्रणिदध्यात्। तेषां गृहपतिकव्यञ्जनाः काष्ठतृणधान्यपण्य-शकटैः प्रहरणावरणान्यभिहरेयुः, देवध्वजप्रतिमाभिर्वा। ततस्त-द्व्यंजनाः प्रमत्तवधमवस्कन्दप्रतिग्रहमभिप्रहरणं पृष्ठतः शंखदुन्दु-भिशब्देन वा प्रविष्टमित्यावेदयेयुः। प्राकारद्वाराट्टालकदानमनीक-भेदं घातं वा कुर्युः। सार्थगणवासिभिरातिवाहकैः कन्यावाहिकैर-श्वपण्यव्यवहारिभिरुपकरणहारकैर्धान्यक्रेतृभिर्वा प्रव्रजितलिङ्गि-

भिर्दूतैश्च दण्डातिनयनं सन्धिकर्म विश्वासनार्थम्। इति राजापसर्पाः ।

अथवा विजिगीषु शत्रु-दुर्ग में कारु, शिल्पी, पाखण्डी, कुशीलव तथा वैदेहक व्यंजन गुप्तचरों को सशस्त्र रूप में नियुक्त करे। गृहपति व्यंजन गुप्तचर उक्त गुप्तचरों के निमित्त काष्ठ, तृण, धान्य आदि पण्य वस्तुएं शकटों पर लाद कर उनके पास पहुँचावें। अथवा देव-प्रतिमाओं के ध्वज रूपी तलवार आदि शस्त्रास्त्र तथा कवच आदि उनको दें। तदनन्तर कारु आदि के वेश वाले गूढ़ पुरुष प्रमादी पुरुषों का वध, लूट-मार, प्रहार एवं शख, नगाड़े आदि की ध्वनि करते हुए पीछे की ओर से दुर्ग में घुस जाँय और फिर राजा को शत्रुसेना द्वारा प्रमादी पुरुषों के वध किये जाने का वृत्तान्त बता दें। इतने में ही विजि-गीषु के सैनिक भारी संख्या में वहाँ पहुँच कर परकोटा, द्वार तथा अट्टालक आदि की तोड़-फोड़ और शत्रु-सेना का वध प्रारम्भ कर दें। अब शत्रु-सेना में भेद डाल कर गुप्तचरों द्वारा उसके विमुख करने का उपाय कहते हैं। दुर्गम मार्गों से जाने वाले, व्यापारियों के समूह-रूप में रहने वाले, कन्याओं को ले जाने वाले, अश्व आदि के विक्रेता, धान्य क्रय-विक्रय करने वाले, संन्यासी या जुआरी के वेश वाले गुप्तचर शत्रु-सेना को अपने स्थान से हटा कर न निकल सकने योग्य मार्ग में पहुँचा दें। इससे दुर्ग में प्रविष्ट विजिगीषु के सैनिक अपना कार्य सुविधा पूर्वक कर सकेंगे और शत्रु से हुई सन्धि भी बनी रहेगी। यहाँ तक शत्रु के यहाँ नियुक्त गुप्तचरों के कार्यों का निरूपण कर दिया गया।

एत एवाटवीनापसर्पाः कण्टकशोधनोक्ताश्च। व्रजमटव्यासन्नमपसर्पाः सार्थं वा चोरैर्घातयेयुः। कृतसकेतमन्नपानं चात्र मदनरसविद्धं वा कृत्वाऽपगच्छेयुः। गोपालकवैदेहकाश्च ततश्चोरा गृहीतलोप्त्रभारा मदनरसविकारकालेऽवस्कन्दयेयुः। संकर्षणदेवतीयो वा मुण्डजटिलव्यञ्जनः प्रवहणकर्मणा मदनरसयोगाम्यामतिसन्दध्यात्। अथावस्कन्दं दद्यात्। शौण्डिकव्यंजनो वा

दैवतप्रेतकार्योत्सवसमाजेष्वाटविकान् सुराविक्रयोपायननिमित्तं मदनरसयोगाभ्यामतिसन्दध्यात् । अथावस्कन्दं दद्यात् ।

ग्रामघातप्रविष्टां वा विक्षिप्य बहुधाऽटवीम् ।
घातयेदिति चोराणामपसर्पाः प्रकीर्तिताः ॥

उक्त गूढ़ पुरुषों एवं कण्टकशोधन अधिकरण में कहे हुए गुप्तचर शत्रु के आटविकों में भी अपना कार्य करते रहें। वे गूढ़ पुरुष वन के निकटस्थ गोष्ठों के रहने वाले तथा मार्ग चलने वाले व्यापारियों के समूहों को चोरों के द्वारा लुटवा दें। अथवा व्यापारियों के लिए अन्न-जल आदि की व्यवस्था करके उसमें कोई मादक विष मिला कर हट जांय। फिर गोपालक या वैदेहक व्यंजन पुरुष उन आटविक चोरों से भी चोरी में लूटा हुआ धन लेकर धतूरे का रस मिली हुई कोई वस्तु खिला कर पागल कर दें और फिर उन पर प्रहार कर दें। अथवा मदिरा से प्रेम करने वाला कोई संकर्षण-भक्त अर्थात् बलदेवजी का भक्त मुण्डित या जटाधारी के वेश में रह कर उन चोरों को इच्छित भोजन देते समय धतूरा मिले किसी पदार्थ को खिला कर चेतनाहीन कर दें। अथवा मद्य वेचने वाले का वेश बना कर कोई गूढ पुरुष देवपूजन, श्राद्ध एवं प्रीतिभोज के समय कोई मादक द्रव्य या विष मिश्रित मदिरा का पान करा दें, जिससे कि वे चोर पागल हो जाँय। ऐसा होने पर उन्हें पकड़ लें। अथवा ग्राम को नष्ट करने के लिए उद्यत आटविक चोरों को मादक पदार्थों के द्वारा विक्षिप्त बना दें और फिर उन पर प्रहार करके मार डालें। यहाँ तक आटविकों के प्रति किये गये गूढ़ पुरुषों के कार्यों का वर्णन पूर्ण हुआ।

चतुर्थोऽध्यायः

पर्युपासनकर्म एवं अवमर्द

कर्शनपूर्वं पर्युपासनकर्म । जनपदं यथानिविष्टमभयं स्थापयेत् । उत्थितमनुग्रहपरिहाराभ्यां निवेशयेदन्यत्रापसरतः ।

समग्रमन्यस्यां भूमौ निवेशयेदेकस्यां वा वासयेत्। न ह्यजनो जनपदो राज्यमजनपदं वा भवतीति कौटिल्यः। विषमस्थस्य मुष्टिं सस्यं वा हन्याद्वीवधप्रसारौ च।

प्रसारवीवधच्छेदान्मुष्टिसस्यवधादपि।
वमनाद्गूढघाताच्च जायते प्रकृतिक्षयः॥

अब शत्रु दुर्ग को घेर कर अपने अधिकार में करने के विषय में कहेंगे। शत्रु के कोश, सेना एवं प्रकृतिवर्ग के विनाश का उपाय करके पर्युपासन कर्म अर्थात् शत्रु-दुर्ग पर घेरा डालने का कार्य करना चाहिए। इसके लिए पहिले शत्रु के शान्त जनपद में किसी प्रकार का भय उत्पन्न न होने दे। रिपु का जो जनपद विजिगीषु के विरुद्ध हलचल उत्पन्न करे, उसे धन-प्रदान या करमुक्ति के प्रलोभन से शान्त कर दे और उन्हें कहीं अन्यत्र चले जाने से रोके। उस समय उन्हें किसी एक ही स्थान पर रखे अथवा विभिन्न स्थानों पर भेज दे। कौटिल्य के अनुसार प्रजाजन के अभाव में जनपद नहीं रह सकते और जनपद में राज्य का अस्तित्व नहीं रह सकता। इसलिए जनपद की प्रजा को अनुकूल रखना आवश्यक है। यदि शत्रु का जनपद विपत्तिग्रस्त हो जाय तो विजिगीषु उसके एकत्रित अन्न, उपज और अन्न लाने या ईंधनादि लाने के साधनों को नष्ट कर दे। इस प्रकार प्रसार, वीवध, अन्न और उपज आदि के नष्ट होने से और शत्रु के प्रकृतिवर्ग को अन्यत्र पहुंचा कर मरवा देने से भी शत्रु का नाश हो जाता है।

'प्रभूतगुणवद्धान्यकुप्ययंत्रशस्त्रावरणविष्टिरश्मिसमग्रं मे सैन्यमृतुश्च पुरस्तात्, अपतुः परस्य व्याधिदुर्भिक्षनिचयरक्षाक्षयः क्रीतबलनिर्वेदो मित्रबलनिर्वेदश्च' इति पर्युपासीत। कृत्वा स्कन्धावारस्य रक्षां वीवधासारयोः पथश्च परिक्षिप्य दुर्गं खातसालाभ्यां दूषयित्वोदकमवस्राव्य परिखाः संपूरयित्वा वा, सुरुंगाबलकुटिकाभ्यां वप्रप्राकारौ हारयेत्। दारं च बहुलेन निम्नं वा पसुमालयाऽऽच्छादयेत्। बहुलारक्षं यंत्रैर्घातयेत्। निष्करादुप-

निष्कृष्याश्वैश्च प्रहरेयुः। विक्रमान्तरेषु च नियोगविकल्पसमुच्चयैश्चोपायानां सिद्धिं लिप्सेत दुर्गवासिनः। श्येनकाकनप्तृभासशुकशारिकोलूककपोतान् ग्राहयित्वा पुच्छेष्वग्नियोगयुक्तान्परदुर्गे विसृजेयुः।

अब शत्रु-दुर्ग को किस अवस्था में घेरे, यह बताते है। जब अपनी सेना अधिक सशक्त, गुणयुक्त एवं धान्य, कुप्य, यन्त्र, शस्त्र, आवरण, विष्टि, रश्मि अर्थात् रस्सी आदि से पूर्णतया सुरक्षित हो और ऋतु की भी अनुकूलता हो तथा शत्रु के लिए यह सब विपरीत हो अर्थात् ऋतु उसके अनुकूल न हो, रोग, दुर्भिक्ष, अन्नाभाव, सैन्याभाव, वेतनभोगी पुरुषों की कर्त्तव्य-विमुखता और मित्र-सेना में भी खिन्नता हो तो उस अवस्था में शत्रु-दुर्ग को घेर ले। प्रथम अपने शिविर, वीवध, आसार एवं मार्ग को सुरक्षित रख कर दुर्ग की खाई, परकोटे आदि की स्थिति के अनुसार शत्रु-दुर्ग को घेर कर उसके जल को विषादि से दूषित करदे या बाँध आदि तोड़ कर उसे बहा देने का प्रयत्न करे और खाइयों को भरदे। अथवा सुरंग या तिर्यक् खड्डों के द्वारा वाह्य प्राकार को तोड़े। दरारों को रोड़ों से और नीचे स्थानों को मिट्टी से भरकर जाने का मार्ग सुगम करे तथा दुर्ग रक्षा की भारी व्यवस्था वाले स्थान को यन्त्र अर्थात् तोप आदि से उड़वा दे। कपट पूर्वक अथवा हथियों की सूँड़ पर चढ़ा कर रक्षकों को निकाले और फिर अश्वों तथा हाथियों के द्वारा आक्रमण करदे। यदि शत्रु-सेना अधिक वल प्रदर्शित करे, तब सामादि उपायों, उपाय प्रयोग के अवसरों, विकल्पों या समुच्चय आदि से कुशलता पूर्वक कार्य ले। तभी दुर्ग में रहने वाले शत्रु को वश में किया जा सकता है। अथवा बाज, काक, नप्ता, गिद्ध, तोता, मैना, उलूक एवं कपोत को पकड़वा कर इनकी पूँछ में आग लगाने वाली कोई वस्तु बाँध कर शत्रु-दुर्ग में छोड़ दे, जिससे कि उसमें आग लग सके।

अपकृष्टस्कन्धावारादुच्छ्रितध्वजधन्वारक्षा वा मानुषेणाग्निना परदुर्गमादीपयेत्। गूढपुरुषाश्चान्तर्दुर्गपालका नकुलवानरविडाल-

शुनां पुच्छेष्वग्नियोगमाधाय काण्डनिचयरक्षाविधानवेश्मसु विसृजेयुः। शुष्कमत्स्यानामुदरेष्वग्निमाधाय वल्लूरे वा वायसोपहारेण वयोभिर्हारयेयुः । सरलदेवदारुपूतितृणगुग्गुलश्रीवेष्टकसरसर्जलाक्षागुलिकाः खरोष्ट्राजावीनां लेण्डं चाग्निधारणम् । प्रियालचूर्णमवल्गुजमषीमधूच्छिष्टमश्वखरोष्ट्रगोलेण्डमित्येष क्षेप्योऽग्नियोगः । सर्वलोहचूर्णमग्निवर्णं वा कुम्भीसीसत्रपुचूर्णं वा परिभद्रकपलाशपुष्पकेशमषीतैलमधूच्छिष्टकश्रीवेष्टकयुक्तोऽग्नियोगो विश्वासघाती वा । तेनावलिप्तः शणत्रपुसीसवल्कवेष्टितो बाण इत्यग्नियोगः ।

न त्वेव विद्यमाने पराक्रमेऽग्निमवसृजेत् । अविश्वास्यो ह्यग्निर्दैवपीडनं च । अप्रतिसंख्यातप्राणिधान्यपशुहिरण्यकुप्यद्रव्यक्षयकरः । क्षीणनिचयं चावाप्तमपि राज्यं क्षयायैव भवति । इति पर्युपासनकर्म ।

शत्रु-दुर्ग के बाहर, नीचे की ओर स्थित अपने सैन्य शिविर से, शत्रु-दुर्ग पर अग्नि फेंकने के लिए ध्वज एवं धनुष आदि को लिये हुए अपने वीर मानवाग्नि अर्थात् शत्रु द्वारा मारे हुए व्यक्ति की अस्थि के रगड़ने से उत्पन्न अग्नि को उनमें बाँध कर शत्रु दुर्ग में फेंकें, जिससे कि वह भस्म होजाय । अथवा रक्षा-कार्य में नियुक्त पुरुषों द्वारा ही यह कार्य लिया जाय । अथवा सीमापाल या दुर्गपाल के वेश वाले गुप्तचर नेवला, बन्दर, बिलाव और श्वान की पूँछ में, आग लगाने वाले पदार्थ बांध कर उन स्थानों में छोड़े, जहाँ शत्रु के कुप्यादि रक्षा-साधन वाले सामान रखे हों । शुष्क मछली के उदर में या शुष्क माँस में आग लगाने वाले पदार्थों को रख कर, पक्षियों को खिला कर उनके द्वारा शत्रु-दुर्ग में आग लगवाने की चेष्टा करे। सरल (सरु), देवदारु, पूति नामक घास गूगल, श्रीवेष्टक अर्थात् सरल वृक्ष का गोंद या चीढ़ का गोंद सर्ज (सज्जी अथवा विजयसार), रस (राल) और लाख को कूट-पीस कर गोली बनावे तथा गधा, ऊँट, बकरा और मेंढ़ा की विष्टा को एक साथ मिलाने से अग्नि शीघ्र उत्पन्न होती है। प्रियाल अर्थात् चिरोंजी का

चूर्ण, बावचीं का चूर्ण, मषी अर्थात् सम्हालू, मोम (अथवा शहद), अश्व, गधा, ऊँट और बैल की विष्टा का मिश्रण भी फेंक कर आग लगाने में उपयोगी होता है। अथवा आग जैसे वर्ण का सब प्रकार के लोहे का चूर्ण, कायफल, सीसा और राँग का चूर्ण, नीम और ढाक के पुष्प, केश, तैल, मोम (अथवा मधु) और सरल वृक्ष (चीढ़) का गोंद का मिश्रण विश्वासघाती अग्नियोग (अर्थात् जहाँ अग्नि की संभावना न हो, वहाँ भी आग लगाने वाला योग) होता है। उक्त वस्तुओं में सना हुआ सन और ककड़ी की बेल की छाल में लपेट कर बनाया हुआ बाण भी अग्नि-योग अथवा अग्नि-बाण समझना चाहिए।

किन्तु पराक्रम के अवसर पर अर्थात् युद्ध करते समय उक्त अग्नि-योगों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि अग्नि पीड़ा और दैवपीड़ा का विश्वास नहीं कि कब, क्या करदे ? अर्थात् इससे अपनी क्षति भी संभव है। अग्नियोग असंख्य जीवों, अन्नों, पशुओं एव स्वर्ण-लौह-ताम्रादि कुप्य पदार्थों को बात की बात में भस्म कर सकता है। जिस राज्य के जीवों एवं अन्न आदि का नाश होजाता है, उसे प्राप्त करना या जीतना भी विनाश के ही समान है। क्योंकि उस विजय से भी कुछ लाभ नहीं हो सकता। यह पर्युपासन कर्म की व्याख्या हुई।

'सर्वारम्भोपकरणविष्टिसम्पन्नोऽस्मि, व्याधितः पर उपधा-विरुद्धप्रकृतिरकृतदुर्गकर्मनिचयो वा निरासारः सासारो वा पुरा मित्रैः सधत्ते' इत्यवमर्दकालः। स्वयमग्नौ जाते समुत्थापिते वा प्रवहणे प्रेक्षानीकदर्शनसंगसौरिककलहेषु नित्ययुद्धश्रान्तबले बहुल-युद्धप्रतिविद्धप्रेतपुरुषे जागरणक्लान्तसुप्तजने दुर्दिने नदीवेगे वा नोहारसम्प्लवे वाऽवमृद्नीयात्। स्कन्धावारमुत्सृज्य वा वनगूढः शत्रुः सत्रान्निष्क्रान्तं घातयेत्।

अब यह निरूपण करते हैं कि शत्रु-दुर्ग को अपने अधिकार में कब करना चाहिए ? जब विजिगीषु अपने को सर्व साधन सम्पन्न, सशक्त सैन्यबल से युक्त तथा शत्रु को व्याधिग्रस्त, अविश्वस्त प्रकृतिवर्ग

युक्त, जीर्ण दुर्ग एवं धान्यादि के अभाव से ग्रस्त तथा मित्रबल से रहित समझे तथा यह देखे कि उसे किसी प्रकार की सहायता के लिए किसी मित्र से सन्धि करनी पड़ेगी, किन्तु उस सन्धि में अभी सफलता नहीं मिली है। उस अवस्था में शत्रु का दमन सहज ही हो सकता है, इसलिए आक्रमण कर दे। अथवा शत्रु के यहाँ स्वयं ही आग लग जाय या कोई आनन्दोत्सव मनाया जाय, जिसमें भोज, नृत्य,गीत, अभिनय, युद्धाभ्यास, मदिरा-पान के कारण उन्मत्तता और परस्पर में झगड़ा, शत्रु-सेना का दीर्घकालीन युद्ध से थकना तथा बड़े-बड़े वीरों या प्रमुखों का घायल होना या मर जाना, अथवा अधिक, काल तक जागरण करने के कारण निद्राग्रस्त होना, अति वृष्टि या दुर्दिन में फँस जाना अथवा शत्रु-सेना का किसी वेगवती नदी को पार करना या कुहरे के कारण कुछ दिखाई न देना अथवा छावनी छोड़ कर वन में छिपे शत्रु का बाहर निकलना आदि लक्षण हों तो विजिगीषु को उस पर आक्रमण कर देना चाहिए।

मित्रासारमुख्यव्यंजनो वा संरुद्धेन मैत्रीं कृत्वा दूतमभित्यक्तं प्रेषयेत्—'इदं ते छिद्रम्, इमे दूष्याः, संरोद्धुर्वा छिद्रमयं ते कृत्यपक्षः' इति। तं प्रतिदूतमादाय निर्गच्छन्त विजिगीषुर्गृहीत्वा दोषमभिविख्याप्य प्रवास्यापगच्छेत्। ततो मित्रासारव्यंजनो वा संरुद्धं ब्रूयात्—'मां त्रातुमुपनिर्गच्छ, मया वा सह संरोद्धारं जहि' इति। प्रतिपन्नमुभयतः संपीडनेन घातयेत्, जीवग्राहेण वा राज्यविनिमयं कारयेत्, नगरं वास्य प्रमृद्नीयात्, सारबलं वास्य वमयित्वाऽभिहन्यात्। तेन दण्डोपनताटविका व्याख्याताः।

मित्र के वेश या मित्रसेना के प्रमुख के वेश वाले गुप्तचर घिरे हुए शत्रु से मित्रता करके किसी वध्य पुरुष को दूत बना कर उसके द्वारा यह संदेश भेजे कि तुममें अमुक छिद्र हैं, अमुक पुरुष दूष्य हैं तथा तुम्हारे शत्रु में अमुक दोष हैं तथा उसके क्रुद्ध, लुब्ध, भीत आदि वर्ग तुम्हारे साथ मिलने को तैयार हैं। जब वह दूत उक्त संदेश का उत्तर लेकर

लौट आवे, तब विजिगीषु उसे पकड़ कर अपना अपकार करने वाला बता कर मार डाले और वहाँ से चला जाय। अथवा मित्र या मित्रसेना के प्रमुख का वेश बनाये हुए कोई गुप्तचर उस घिरे हुए शत्रु से कहे कि आप मेरी रक्षा के लिए तत्पर होजाँय अथवा मेरे साथ चल कर अपने शत्रु को मार डालें। यदि वह इसे स्वीकार कर ले तो उसे दोनों ओर से घेर कर मार दे अथवा जीवित पकड़ कर बन्दी बना ले और उसके स्थान पर अन्य को उसके राज्य पर बैठा दे। अथवा उसकी राजधानी को नष्ट कर दे या नगर की रक्षा में नियुक्त प्रबल सेना को बाहर निकाल कर मरवा दे। इस प्रकार यह दण्डोपनतों और आटविकों की व्याख्या पूरी हुई।

दण्डोपनताटविकयोरन्यतरो वा संरुद्धस्य प्रषयेत्—'अयं संरोद्धा व्याधितः, पार्ष्णिग्राहेणाभियुक्तः, छिद्रमन्यदुत्थितम्, अन्यस्यां भूमावपयातुकामः' इति। प्रतिपन्ने संरोद्धा स्कन्धावा-रमादीप्यापयायात्, ततः पूर्ववदाचरेद्। पण्यसम्पातं वा कृत्वा पण्येनैनं रसविद्धेनातिसन्दध्यात्। आसारव्यंजनो वा संरुद्धस्य दूतं प्रषयेत्—'मया बाह्यमभिहतमुपनिर्गच्छाभिहन्तुम्' इत। प्रतिपन्नं पूर्ववदाचरेत्। मित्रं बन्धुं वाऽपदिश्य योगपुरुषाः शासनमुद्राहस्ताः प्रविश्य दुर्गं ग्राहयेयुः। आसारव्यंजनो वा संरु-द्धस्य प्रेषयेत्—'अमुष्मिन् देशे काले च स्कन्धावारमभि हनि-ष्यामि, युष्माभिरपि योद्धव्यम्' इति। प्रतिपन्नं यथोक्तमभ्याघात-संकुलं दर्शयित्वा रात्रौ दुर्गान्निष्क्रान्तं घातयेत्।

अथवा दण्डोपनत और आटविक में से कोई उस घिरे हुए रिपु के पास यह संदेश भेजे कि घेरा डालने वाला शत्रु रोग-ग्रस्त होगया है और पार्ष्णिग्राह ने उस पर हमला भी कर दिया है। एक यह भी कमी ज्ञात हुई है कि वह अपने स्थान से भागने की ताक में है। यदि घिरा हुआ शत्रु इस संदेश पर विश्वास कर ले तो विजिगीषु अपनी छावनी से स्वयं आग लगा कर वहाँ से अन्यत्र चला जाय। तदनन्तर सब कार्य पूर्ववत

करे अर्थात् शत्रु आक्रमण के लिए अग्रसर हो तभी उसे घेर कर मार डाले। अथवा व्यापारियों का आगमन दिखा कर विष मिश्रित-पदार्थों की बिक्री द्वारा ही शत्रु को मरवा दे। या मित्रसेना के प्रमुख का वेश धारण किये हुए कोई गूढ पुरुष घिरे हुए राजा से कहलवाये कि आपके बाह्य शत्रु को मैंने हरा दिया है। अब इसे नष्ट कर देने के लिए आप भी दुर्ग से बाहर निकल आयें। यदि शत्रु इसे स्वीकार कर बाहर निकल आये तो उसे घेर कर मार दे। अथवा स्वयं को शत्रु राजा का मित्र या सुहृद बताते हुए योग पुरुष राजमुद्रांकित बनावटी पत्र ले कर उसके दुर्ग में प्रविष्ट होजाँय और कोई ऐसा उपाय करें जिससे कि विजिगीषु उस पर सुगमता से अधिकार कर सके। अथवा मित्रसेना के अधिकारी के वेश में कोई गुप्तचर उस घिरे हुए राजा को सन्देश भेजे कि मैं अमुक देश-काल में आपके शत्रु पर हमला करूँगा। आप भी उसी स्थान और समय पर सेना के साथ आकर शत्रु पर हमला कर दीजिये। यदि शत्रु इसे स्वीकार कर ले तो विजिगीषु अपनी छावनी को ऐसी दिखावे, जैसे कि वह आक्रमण से छिन्न-भिन्न होगई हो। फिर रात्रिकाल में प्रहार करके उसे मार डाले।

यद्वा मित्रमावाहयेदाटविकं वा तमुत्साहयेत्—'विक्रम्य संरुद्धे भूमिमस्य प्रतिपद्यस्व' इति। विक्रान्तं प्रकृतिभिर्दूष्यमुख्यावग्रहेण वा घातयेत्, स्वयं वा रसेन। 'मित्रघातकोऽयम्' इत्यवाप्तार्थः। विक्रमितुकामं वा मित्रव्यंजनः परस्याभिशंसेत्। आप्तभावोपगतः प्रवीरपुरुषानस्योपघायेत। सन्धिं वा कृत्वा जनपदमेनं निवेशयेत्। निविष्टमन्यजनपदमविज्ञातो हन्यात्। अपकारयित्वा दूष्याटविकेषु वा बलैकदेशमतिनीय दुर्गमवस्कन्देन हारयेत्। दूष्यामित्राटविकद्वेष्यप्रत्यपसृताश्च कृतार्थमानसंज्ञाचिह्नाः परदुर्गमवस्कन्देयुः।

अथवा विजिगीषु अपने आटविक या मित्रादि अन्यान्य राजाओं को बुलवा कर शत्रु पर आक्रमण करने के लिए उत्साहित करता हुआ

कहे कि आप लोग संरुद्ध राजा पर हमला करके उसकी भूमि और राज्य पर अधिकार कर लें। यदि वे आटविक या मित्र राजा उस घिरे हुए राजा पर हमला कर दें तो उसे, उसके प्रकृतिवर्ग द्वारा अथवा अपने अनुकूल हुए उसके दूष्य पुरुषों द्वारा ही उसकी हत्या करा दे। अथवा स्वयं ही विष दिलवा कर उसे मरवा दे। फिर उसे अपने मित्र का वधिक बता कर शत्रु पर आक्रमण कर दे। अथवा मित्रवेश वाले गुप्तचर शत्रु से कहें कि विजिगीषु मुझ पर हमला करने वाला है। यदि वह उस पर विश्वास करके सहायतार्थ आ उपस्थित हो तो उसके प्रमुख वीरों को मरवा डाले। अथवा मित्र वेश वाला गूढ़ पुरुष शत्रु से सन्धि करके उसे विजिगीषु के जनपद में रखे या उसके द्वारा नवीन जनपद की स्थापना करावे और फिर छिपे रूप से उसके उस जनपद को ध्वस्त करा दे। अथवा विजिगीषु अपने दूष्यों और आटविकों के द्वारा किसी प्रकार से अहित करा कर उसी बहाने से अधिकांश शत्रु-सेना को बहुत दूर तक लिवा ले जाय और फिर सेना-रहित शत्रु पर हमला करके उसके दुर्ग पर अधिकार कर ले।

परदुर्गमवस्कन्द्य स्कन्धावारं वा पतितपाङ्मुखाभिपन्नमुक्त-केशशस्त्रभयविरूपेभ्यश्चाभयमयुध्यमानेभ्यश्च दद्युः। परदुर्गम-वाप्य विशुद्धशत्रुपक्षः कृतोपांशुदण्डप्रतीकारमन्तर्बाह्यश्च प्रविशेत्। एवं विजिगीषुरमित्रभूमिं लब्ध्वा मध्यमं लिप्सेत। तत्सिद्धावु-दासीनम्। एष प्रथमो मार्गः पृथिवीं जेतुम्। मध्यमोदासीनयोर-भावे गुणातिशयेनारिप्रकृतीः साधयेत्। तत उत्तराः प्रकृतीः। एष द्वितीयो मार्गः। मण्डलस्याभावे शत्रुणा मित्रं मित्रेण वा शत्रुमु-भयतः सम्पीडनेन साधयेत्। एष तृतीयो मार्गः। शक्यमेकं वा सामन्तं साधयेत्, तेन द्विगुणो द्वितीयं, त्रिगुणस्तृतीयम्। एष चतुर्थो मार्गः पृथिवीं जेतुम्। जित्वा च पृथिवीं विभक्तवर्णाश्रमां स्वधर्मेण भुंजीत।

उपजापोऽपसर्पो वा वामनं पर्युपासनम् ।
अवमर्दश्च पञ्चैते दुर्गलम्भस्य हेतवः ।।

अब शत्रु-दुर्ग पर आक्रमण करने वाले सहायकों के विषय में कहते हैं। शत्रु के शत्रु, आटविक, द्वेष या एक बार पृथक् होकर पुनः उससे मिल गये हों तथा जो विजिगीषु के द्वारा धन-मान से सस्कृत हुए हों एवं जो आक्रमण कालीन संकेतों से परिचित और प्रशिक्षित हों, वे आक्रमण करने में सहायक हो सकते हैं। शत्रु के दुर्ग या छावनी पर आक्रमण करके सफलता प्राप्त कर लेने पर अपने जो आहत सैनिक रणक्षेत्र में पड़े हों, जो युद्ध से विरत हो चुके हों, जो संकटग्रस्त हों, जिनके बाल छितरा गये हों जो भय से विकृतमुख हो गये हों अथवा जो युद्ध करना अस्वीकर कर चुके हों—ऐसे सब प्रकार के व्यक्तियों को अभय प्रदान करे। शत्रुदुर्ग को ले लेने के पश्चात् शत्रुपक्ष के सभी व्यक्तियों को तुरन्त दुर्ग से बाहर निकाल दे। उनमें जिन्हें प्रबल रूप से विरोध करने वाले समझा जाय उनका दुर्ग-प्रवेश से पूर्व ही उपांशु-वध करा दे। इस प्रकार शत्रु-दुर्ग पर अधिकार करने के पश्चात् मध्यम राजा का राज्य छीनने का प्रयत्न करे। जब उस पर भी अधिकार हो जाय तब उदासीन का राज्य भी हस्तगत कर ले। भूमि-विजय का यही प्रथम मार्ग है। मध्यम और उदासीन का अभाव होने पर अपने गुणों की विशेषता से शत्रु के प्रकृतिवर्ग को अपने अनुकूल तथा कोशादि को वश में करने का उपाय करे। भूमि जय का यही द्वितीय मार्ग माना गया है। राजमण्डल न हो तो अपने शत्रु द्वारा मित्र को और मित्र द्वारा शत्रु को दबा कर दोनों को ही अपने वश में रखे। भूमिविजय का तृतीय मार्ग समझा जाता है। अथवा सरलता से साध्य सामन्त राजा को अपने वश में करे और उसकी शक्ति को अपनी शक्ति में मिला कर उस दुगुनी शक्ति के द्वारा अन्य सामन्त को भी सहज में अधीन कर ले। उसकी शक्ति मिलने से तिगुना बल हो जाने पर और किसी सामन्त को वश में कर ले। यह पृथिवी-विजय का चतुर्थ मार्ग

हुआ। इस प्रकार पृथिवी को जीत कर विजिगीषु वर्णाश्रित-भेद से यथोचित व्यवस्थां करता हुआ स्वधर्म के अनुसार पृथिवी का भोग करे। उपजाप, अपसर्प, वामन (शत्रु को दुर्ग से निकलने के लिए विवश करना), पर्युपासन और अवमर्द अर्थात् शत्रु दुर्ग को नष्ट करना—इन पाँच उपायों से ही शत्रु का दुर्ग प्राप्त हो सकता है।

पञ्चमोऽध्यायः

विजित दुर्ग में शान्ति स्थापन

द्विविधं विजिगीषोः समुत्थानम्, अटव्यादिकमेकग्रामादिकं च। त्रिविधश्चास्य लम्भः—नवो भूतपूर्वः पित्र्य इति। नवमवाप्य लम्भं परदोषान् स्वगुणैश्छादयेत्। गुणान् गुणद्वैगुण्येन। स्वधर्मकर्मानुग्रहपरिहारदानमानकर्मभिश्च प्रकृतिप्रियहितान्यनुवर्तेत। यथासम्भाषितं च कृत्यपक्षमुपग्राहयेत्। भूयश्च कृतप्रयासम्। अविश्वास्यो हि विसंवादकः स्वेषां परेषां च भवति। प्रकृतिविरुद्धाचारश्च। तस्मात्समानशीलवेषभाषाचारतामुपगच्छेत्। देशदैवतसमाजोत्सवविहारेषु च भक्तिमनुवर्तेत।

अब जीते हुए राज्य में शान्ति-स्थापन के उपाय कहेंगे। विजिगीषु के समुत्थान के दो प्रकार होते हैं। इनके द्वारा ही उसे वन, खान एवं ग्रामादि की प्राप्ति हो सकती है। लाभ तीन प्रकार का होता है— नया, भूतपूर्व और पित्र्य। जो अभी किसी से प्राप्त हुआ हो वह नव या नया, जो पहिले अपने पास था और जाकर पुनः प्राप्त हो गया वह भूतपूर्व और जो पिता से प्राप्त हुआ था और शत्रु के हस्तगत होकर पुनः लौट आया वह पित्र्य कहा जाता है। नये राज्य में अपने गुणों से शत्रुकृत दोषों को दबा दे अथवा अपने दुगुने गुणों से शत्रु के गुणों को फीका कर दे। फिर अपने प्रजापालन कार्यों के साथ धर्म, यज्ञ, स्वकर्म, प्रजाजनों को ऋणदान, कर में छूट, करमुक्ति, भूमिदान एवं प्रजा के कल्याणार्थ अनेक प्रिय और हितकर कार्यों को करे। अपने

वचन का पालन करता हुआ विजिगीषु शत्रु के क्रुद्ध, लुब्ध आदि दूष्यवर्ग को दान-मान द्वारा सन्तुष्ट रखे। अपने उपकार करने वाले विशिष्ट व्यक्तियों को प्रसन्न रखने की विशेष चेष्टा करे। क्योंकि अपने वचन का निर्वाह न करने वाला राजा शत्रुपक्ष वालों की दृष्टि में सहज ही विश्वस्त नहीं बन पाता। जो प्रजा के प्रतिकूल कार्य करता है, वह तो बहुत ही अविश्वस्त बन जाता है। इसलिए विजिगीषु को अपनी प्रजा के समान ही शील, वेश, भाषा एवं आचरण रखना चाहिए। उसे उस नव प्राप्त राज्य के देवताओं, सामाजिक मान्यताओं, उत्सवों और आहार-विहार आदि में भी प्रेम प्रदर्शन करना चाहिए।

देशग्रामजातिसंघमुख्येषु चाभीक्ष्णं सत्रिणः परस्यापचारं दर्शयेयुः। माहाभाग्यं भक्तिं च तेषु स्वामिसत्कारं च विद्यमानम्। उचितैश्चैनान् भोगपरिहाररक्षणावेक्षणैर्भुञ्जीत। सर्वदेवताश्रम-पूजनं च विद्यावाक्यधर्मशूरपुरुषाणां च भूमिद्रव्यदानपरिहारान् कारयेत्। सर्वबन्धनमोक्षणमनुग्रहं दीनानाथव्याधितानां च। चातुर्मास्येष्वर्धमासिकमघातं पौर्णमासीषु। च चातूरात्रिकं राज-देशनक्षत्रेष्वेकरात्रिकम्। योनिबालवधं पुंस्त्वोपघातं च प्रतिषे-धयेत्। यच्च कोशदण्डोपघातिकमधर्मिष्ठं वा चरित्रं मन्येत, तद-पनीय धर्मव्यवहारं स्थापयेत्। चोरप्रकृतीनां म्लेच्छजातीनां च स्थानविपर्यासमनेकस्थं कारयेत्। दुर्गराष्ट्रदण्डमुख्यानां च। परोप-गृहीतानां मंत्रिपुरोहितादीनां परस्य प्रत्यन्तेष्वनेकस्थं वासं कारयेत्। अपकारसमर्थाननुक्षीयतो वा भर्तृविनाशमुपांशुदण्डेन प्रशमयेत्। स्वदेशीयान् वा परेण वावरुद्धानपवाहितस्थानेषु स्थापयेत्।

उस राज्य में सत्रिगण देश, ग्राम, जाति, समूह एवं प्रमुख पुरुषों के पास जा-जाकर पुराने राजा के अन्याय पूर्ण कार्यों को खूब प्रचारित करें। साथ ही अपने नये राजा की उदारता, भक्ति, सत्कार आदि गुणों का भी बारबार उन देश-ग्राम-जाति आदि में कीर्तन करते रहें।

विजिगीषु भी दान, परिहार, रक्षा आदि के द्वारा प्रजा को अनुकूल रखता हुआ राज्य को भोगे। सब देवनाओं और आश्रमों को पूजे तथा विद्याविदों, वक्ताओं, धर्मात्माओं आदि को भूमि एवं धन का दान एवं करों में छूट आदि दे। दीन, अनाथ एवं रोगियों पर दया रखे और बन्दियों को कारागृह से मुक्त कर दे। वर्षा के चातुर्मास में पंद्रह दिन के लिए पशुवध बन्द करा दे। पूर्णिमा से चार रात्रि पर्यन्त तथा राज्याभिषेक की तिथि और देश लाभ की जयंती के दिन भी पशुवध निषिद्ध रखे। वह मादा और बाल पक्षियों का वध भी न होने दे तथा बैल आदि नर पशुओं को बधिया करने पर प्रतिबंध लगा दे। जिस व्यवहार को अधर्म समझा जाय तथा जिससे राज्यकोश और सेना को क्षति पहुँचती हो, उस व्यवहार को निषिद्ध घोषित कर, धर्म-युक्त व्यवहार का प्रचलन करावे। चोरों, म्लेच्छों और दुर्ग, देश तथा सैन्य प्रमुखों को वहाँ से देशान्तर में भेज दे और उनका स्थानान्तरण कराता रहे। शत्रु द्वारा उपकार प्राप्त मंत्री-पुरोहित आदि के रहने का प्रबन्ध शत्रु-सीमा के पृथक्-पृथक् स्थानों पर करे। अपकार में समर्थ जो व्यक्ति नये राजा की हत्या या राज्य में गड़बड़ी करने वाले प्रतीत हों उन्हें उपांशुवध द्वारा समाप्त करा दे। स्वदेश के व्यक्तियों और शत्रु द्वारा पद से हटा कर बन्दी बनाये गये अधिकारियों को कारागार से मुक्त करके पुराने पदों पर नियुक्त कर दे।

यश्च तत्कुलीनः प्रत्यादेयमादातुं शक्तः प्रत्यन्ताटवीस्थो वा प्रबाधितुमभिजातः, तस्मै विगुणां भूमिं प्रयच्छेत्। गुणवत्याश्चतुर्भागं वा कोशदण्डदानमवस्थाप्य तदुपकुर्वाणः पौरजानपदान् कोपयेत्। कुपितैस्तैरेनं घातयेत्। प्रकृतिभिरुपक्रुष्टमनयेदौपघातिके वा देशे निवेशयेदिति। भूतपूर्वे—येन दोषेणाप्रवृत्तः, तं प्रकृतिदोषं छादयेत्। येन च गुणेनोपावृत्तः, तं तीव्रीकुर्यादिति। पित्र्ये—पितृदोषान् छादयेत्। गुणांश्च प्रकाशयेदिति।

चरित्रमकृतं धर्म्यं कृतं चान्यैः प्रवर्तयेत् ।
प्रवर्तयेन्न चाधर्म्यं कृतं चान्यैर्निवर्तयेत् ।।

यदि शत्रु वंश का कोई व्यक्ति अपनी भूमि वापस लेने के यत्न में प्रतीत हो या वह किसी आटविक की सहायता से किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न कर सकता हो, तो उसे कुछ बेकार भूमि देकर संतुष्ट करे या आवश्यक प्रतीत हो तो उस राज्य की गुणयुक्त भूमि का चौथाई भाग तक दे दे। जब शत्रु वंश का वह व्यक्ति विजिगीषु को सेना और धन देगा तभी उसके प्रजाजन क्रुद्ध हो जाँयगे। ऐसी अवस्था आ जाय तब उस क्रुद्ध प्रजा के द्वारा ही उसका वध करा दे। अथवा प्रकृतिवर्ग द्वारा निन्दा को प्राप्त हुए उस शत्रुवंशज को राज्य से बाहर करा दे या किसी ऐसे स्थान पर पहुँचा दे जहाँ उस पर प्रहार होने में सुगमता रहे। यह नवप्राप्त राज्य के प्रति विजिगीषु के कर्तव्यों की व्याख्या हुई। पूर्व राजा के जिस दोष के कारण उसका देश अपने हाथ में आ गया, उस दोष को कभी उभड़ने न दे और अपने जिस गुण से शत्रु के पास गया हुआ राज्य पुनः लौट आया, उस गुण को अधिक से अधिक बढ़ावे। अब पित्र्यलाभ के विषय में बताते हैं कि पिता के जिस दोष से उस देश पर शत्रु ने अधिकार किया हो, उस दोष को दबाता रहे और पिता के गुणों को भी बारबार कहता रहे उसे नव-प्राप्त राज्य में अपूर्व धर्ममय व्यवहार करना चाहिए। अथवा अन्य श्रेष्ठ पुरुषों जैसे व्यवहार का प्रचलन करे। इसके विपरीत अधर्म-व्यवहार को कभी न होने दे। यदि पहले किसी ने चलाया भी हो तो उसे सर्वथा रोक दे।

।। दुर्गलम्भोपाय नामक त्रयोदश अधिकरण समाप्त ।।

———

औपनिषदिक चतुर्दश अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

परघात-प्रयोग

चातुर्वर्ण्यरक्षार्थमौपनिषदिकमधर्मिष्ठेषु प्रयुंजीत। कालकूटादिर्विषवर्गः। श्रद्धेयदेशवेशशिल्पभाजनापदेशैः कुब्जवामनकिरातमूकबधिरजडान्धच्छद्मभिर्म्लेच्छजातीयैरभिप्रेतैः स्त्रीभिः पुंभिश्च परशरीरोपभोगेष्वाधातव्यः। राजक्रीडाभाण्डनिधानद्रव्योपभोगेषु गूढाः शस्त्रनिधानं कुर्युः। सत्राजीविनश्च रात्रिचारिणोऽग्निजीविनश्चाग्निनिधानम्।

अब शत्रु के प्रति मारक मंत्र, औषधि आदि के विषय में कहेंगे। चारों वर्ण में जो अधार्मिक व्यक्ति हों, उन्हीं पर इसका प्रयोग करे। शत्रु के लिए उपभोग्य वस्त्र एवं भोजनादि पर श्रद्धेय देश, वेश, शिल्प पात्रता का ढोंग रचने वाले पाखण्डी, कुबड़े, बौने, ठिगने, गूंगे, बहरे, जड़, अन्ध आदि के छद्मवेश में घूमने वाले अपने अनुचर म्लेच्छ आदि स्त्री-पुरुषों के द्वारा कालकूट आदि विषवर्ग का प्रयोग करावे। वे गूढ़ पुरुष शत्रु की क्रीड़ा-सामग्री, आभूषण, भाण्ड एवं अन्यान्य उपभोग्य वस्तु रखने के स्थानों पर शस्त्र छिपा कर रखते हुए अवसर देख कर प्रहार कर दें। अग्निजीवियों के वेश में रात्रि के समय घूमने वाले सत्रिगण राजभवन को जला दें।

चित्रमेककौण्डिन्यकक्कणपंचकुष्ठशतपदीचूर्णमुच्चिटिंगकम्बलिशतकन्दध्मकृकलासचूर्णं गृहगोधिकान्धाहिककृकणकपूतिकीटगोमारिकाचूर्णं भल्लातकावल्गुकारससंयुक्तं सद्यः प्राणहरमेतेषां वा धूमः।

कीटो वान्यतमस्तप्तः कृष्णसर्पप्रियंगुभिः ।
शोषयेदेष संयोगः सद्यः प्राणहरो मतः ॥१

चितकबरा मेंढक, कौण्डिन्यक, कृकणक, कूठ का पचाँग, शतपदी (कनखजूरा) इनका चूर्ण, उच्चिटिंग (वरं), कम्बली (एक कीड़ा), शतावर, जमीकन्द, ढाक की लकड़ी और गिरगिट का चूर्ण तथा छपकली, दुमुँही सर्प, कृकणक, पूति नामक कीड़ा और गोमारिका बूटी के चूर्ण को मिलावे और बाबची के रस में खरल करके बनाया हुआ नुस्खा प्राणघातक है। इन चूर्णों का धुआँ भी प्राण हरण कर लेता है। उक्त कीड़ों में से किसी भी कीड़े को आग पर तपा कर सुँघा दे तो सूँघने वाले का शरीर सूख जाता है। यदि उक्त में से किसी कीड़े को कृष्ण सर्प और प्रियंगु के साथ मिलाकर आग पर तपा कर सुँघा दे तो प्राण हरण करने वाला होजाता है।

धामार्गवयातुधानमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तमार्धमासिकः। व्याघातकमूलं भल्लातकपुष्पचूर्णयुक्तं कीटयोगो मासिकः। कला मात्रं पुरुषाणां द्विगुणं खराश्वानां चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम्। शतकर्दमोच्चिटिंगकरवीरकटुतुम्बीमत्स्यधूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा पवातानुवाते प्रणीतो यावच्चरति तावन्मारयति। पूतिकीटमत्स्यकटुतुम्बीशतकर्दमेध्मेन्द्रगोपचूर्णं पूतिकीटक्षुद्रारालाहेमविदारीचूर्णं वा बस्तश्रृङ्गखुरचूर्णयुक्तमन्धीकरो धूमः। पूतिकरंजपत्रहरितालमनः—शिलागुञ्जारक्तकार्पासपलालान्यास्फोटकाचगोशकृद्रसपिष्टमन्धीकरो धूमः। सर्पनिर्मोकं गोश्वपुरीषमन्धाहिकशिरश्चान्धीकरा धूमः।

यदि चिड़चिड़ा और यातुधान नाम की बूटी की जड़ कूट कर भल्लातक चूर्ण के साथ खिलादे तो पन्द्रह दिन में प्राणनाश हो। अमलताश की जड़ के चूर्ण को भल्लातक पुष्प और उक्त कीड़े में से किसी एक के चूर्ण में मिश्रित कर सेवन कराने से एक मास में मार देता है। कीटयोग की एक कला (भार विशेष) मात्रा का प्रयोग मनुष्य पर, दो

कला गधा और अश्व पर तथा चार कला हाथी और ऊँट पर प्रयोग करनी चाहिए। शतावर, कर्दम, उच्चिटिंग, कनेर, कड़वी तुम्बी, और मछली को धतूरे एवं कोंदो के पुआल, हस्तिकर्ण तथा ढाकपत्र मिलाकर आग पर सुलगावे तो इसका धुँआ जिधर जायगा, वहाँ के जीवों को प्राणघातक हो जायगा। पूतिकीट, मछली, कड़वी तुम्बी, शतावर, कर्दम, इन्द्रगोप का मिश्रित चूर्ण अथवा पूतिकीट, क्षुद्रा (कटहरी), राल, धतूरा और विदारीकन्द का चूर्ण बकरे के सींग और खुर के चूर्ण के साथ आग पर डालने से जिसे इसका धुँआ लगेगा, वह नेत्र खो बैठेगा। पूतिकरंज के पत्र, हरताल, मैनसिल, गुंजा, लाल कपास और पुआल को लाल मदार एवं काच लवण के साथ पीस कर धूनी देने से, जिसके नेत्रों को यह धुँआ लगेगा वह अन्धा हो जायगा। सर्पकेंचुल, गौ का गोबर, अश्व की विष्टा और दुमुँहे सर्प के मस्तक का योग भी अन्धा बना देता है।

पारावतप्लवकक्रव्यादानां हस्तिनरवराहाणां च मूत्रपुरीषं कासीसहिंगुयवतुषकणतण्डुलाः कार्पासकुटजकोशातकीनां च बीजानि गोमूत्रिकाभाण्डीरमूलं निम्बशिग्रुफणिज्जकाक्षीवपीलुकभंगः सर्पशफरीचर्महस्तिनखश्रृङ्गचूर्णमित्येष धूमो मदनकोद्रवपलालेन हस्तिकर्णपलाशपलालेन वा प्रणीतः प्रत्येकशो यावच्चरति तावन्मारयति। कालीकुष्ठनडशतावरीमूलं सर्पप्रचलाककृकणपंचकुष्ठचूर्णं वा धूमः पूर्वकल्पेनार्द्रशुष्कपलाले वा प्रणीतः सर्वसंग्रामावतरणास्वकन्दकालेषु कृतेनांजनोदकाक्षिप्रतीकारैः प्रणीतः प्राणिनां नेत्रघ्नः। शारिकाकपोतबकबलाकालेण्डमर्काक्षिपीलुकस्नुहीक्षीरपिष्टमन्धीकरणमंजनमुदकदूषणं च।

पारावत, प्लव, गृध्र, हाथी, मनुष्य, शूकर का मल मूत्र, कसीस, हींग, जौ का छिलका, चावल, कपास, कुटज, कटु तोरई, गोमूत्रिका घास, मंजीठमूल, नीम, लाल सहँजना, श्वेत मोरवा, श्वेत सहँजना, पीलू, इन सब की छाल, सर्प की चर्बी, मछली की चर्बी, हाथी के नख,

हाथीदाँत का चूर्ण, कोंदौं, फान का पुआल, घनियाँ, पलाशपत्र, इन सब के चूर्ण का धुँआ जिसे लगेगा, वही मरण को प्राप्त हो जायगा। नीबू, काली कूठ, नड, शतावरी मूल, सर्प, मोरपंख, कृकणक और कूठ का पंचांग को चूर्ण करके कोंदो, धनिया एवं पलाश मिश्रित योग को रणक्षेत्र में रात्रि के समय आक्रमण करने वाले सैन्यसमूह के समय तेनांजनोदक विधि से अग्नि में डाल कर धुँआ करे तो सब शत्रु-सैनिक अन्धे हो सकते हैं। किन्तु इस प्रयोग को करने से पूर्व अपने नेत्रों को बचाने का अवश्य उपाय कर ले, अन्यथा अपने लोग भी नेत्र खो बैठेंगे। अथवा मैना, कपोत, बकुल, बकुली इन सब की विष्ठा को आक, सहँजना, पीलू और सेंहुड़ के दुग्ध में डाल कर अंजन बना ले। यह अंजन नेत्रों को नष्ट करने वाला और जल को दूषित कर देने वाला है।

यवकशालिमूलमदनफलजातीपत्रनरमूत्रयोगः प्लक्षविदारीमूलयुक्तो मूकोदुम्बरमदनकोद्रवक्वाथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्वाथयुक्तो वा मदनयोगः। शृङ्गिगौतमवृक्षकण्टकारिमयूरपदीयोगो गुंजालांगलीविषमूलिकेङ्गुदीयोगः करवीराक्षिपीलुकार्कमृगमारणीयोगो मदनकोद्रवक्वाथयुक्तो हस्तिकर्णपलाशक्वाथयुक्तो वा मदनयोगः। समस्ता वा यवसेन्धनोदकदूषणाः।

कृतकण्डककृकलासगृहगोधिकान्धाहिकधूमो नेत्रवधमुन्मादं च करोति। कृकलासगृहगोधिकायोगः कुष्ठकरः। स एव चित्रभेकान्त्रमधुयुक्तः प्रमेहमापादयति, मनुष्यलोहितयुक्तः शोषम्। दूषीविषं मदनकोद्रवचूर्णमुपजिह्विकायोगः। मातृवाहकांजलिकारप्रचलाकभेकाक्षिपीलुकयोगो विषूचिकाकरः। पंचकुष्ठककौण्डिन्यकराजवृक्षपुष्पमधुयोगो ज्वरकरः। भासनकुलजिह्वाग्रन्थिकायोगः खरीक्षीरपिष्टो मूकबधिरकरो मासार्धमासिकः। कलामात्रं पुरुषाणामिति समानं पूर्वेण। भङ्गक्वाथोपनयनमौषधानां चूर्णं प्राणभृताम्। सर्वेषां वा क्वाथोपनयनम्, एवं वीर्यवत्तरं भवति। इति योगसम्पत्।

जौ और शालि की जड़, धतूरे का फल, जूही पत्र और मानवमूत्र को एकत्र करके पीपल और विदारीकन्द मूल में मिलाकर मूक नामक मछली, गूलर, मैनफल और कोंदो के क्वाथ में डाल दे या हस्तिकर्ण एवं पलाश के क्वाथ मिलाने से तैयार हुआ यह मदनयोग चित्त को भ्रान्त कर देता है। सींगा मछली का पित्ता, गौतमवृक्ष, लोध, सेमर और मयूरपदी के मिश्रण से निर्मित योग तथा गुंजा, लाँगली, विष-मूलिका, इंगुदी, कनेर, अक्ष, पीलू, मदार और मृगमारणी बूटी को धतूरे और कोदों के काढ़े या हस्तिकर्ण और ढाक के काढ़े में मिला कर बनाया गया 'मदनयोग' भी चित्त को भ्रान्त करने में समर्थ है। इन योगं के द्वारा घास, ईंधन और जल भी दूषित हो सकता है। कृक-लास, गृहगोधिका और दुमुंहे सर्प की आँतों को जलाने से जो धुँआ निकले वह अन्धा तथा उन्मत्त बना सकता है। केवल कृकलास और गृहगोधिका के धूम्र से कुष्ठ और इसमें चितकबरे मेंढक की अन्तड़ी मिलाने से प्रमेह हो सकता है। तथा इसी योग में मानवरक्त मिलाने से क्षय हो जाता है। दूषी विष से युक्त क्षीण शक्ति वाले मतौना कोंदो के चूर्ण में उपजिह्विका अर्थात् एक प्रकार की चींटी मिला दे या मातृवाहक, अंजलिकार, प्रचलाक, मेंढक का नेत्र और पीलू के योग से विषूचिका हो जाता है। कूठ का पंचांग, कौण्डिन्यक, राजवृक्ष और महुआ के योग से ज्वर और भास, न्योला, मजीठ, पिप्पली मूल को गधी के दूध में घोट कर दिया जाय तो उससे एक मास या पक्ष में ही मूक, बधिर हो जाता है। मनुष्य को इसकी मात्रा एक कला, अश्व और गधे को दो कला तथा हाथी और ऊँट को चार कला दे। उक्त योगों में डलने वाली ओषधियों को कूट-पीस कर क्वाथ बनावे और जो पक्षी आदि जीव हों उनका चूर्ण काम में लावे। अथवा सब का काढ़ा बना कर प्रयोग करे तो बहुत शक्ति बढ़ जाय। यह विविध प्रकार के योगों का वर्णन किया गया।

शाल्मलीविदारीधान्यसिद्धो मूलवत्सनाभसंयुक्तश्चुचुन्दरी-शोणितप्रलेपेन दिग्धो बाणो यं विध्यति, स विद्धोऽन्यान्दश पुरुषान्दशति, ते दष्टा दशान्यान्दशन्ति पुरुषान् । भल्लातकयातुधानापामार्गबाणानां पुष्पं रेलकाक्षिगुग्गुलुहालाहलानां च कषायं बस्तनरशोणितयुक्तं दंशयोगः । ततोऽर्धधरणिको योगः सक्तुपिण्याकाभ्यामुदके प्रणीतो धनुःशतायाममुदकाशयं दूषयति, मत्स्यपरम्परा ह्येतेन दृष्टाऽभिमृष्टा वा विषीभवन्ति, यश्चैतदुदकं पिबति स्पृशति वा रक्तश्वेतसर्षपैर्गोधात्रिपक्षमुष्ट्रिकायां भूमौ निखातायां निहिता वध्येनोद्धृता यावत्पश्यति, तावन्मारयति । कृष्णः सर्पो वा । विद्युत्प्रदग्धोऽङ्गारोऽज्ज्वालो वा विद्युत्प्रदिग्धैः काष्ठैर्गृहीतश्चानुवासितः कृत्तिकासु भरणीषु वा रौद्रेणाभिहुतोऽग्निः णोतश्च निष्प्रतीकारो दहति ।

शाल्मली, विदारीकन्द एवं धनिया में पिप्पलीमूल, वत्सनाभ और छछूंदर का रक्त मिला कर बाण पर लेप कर दे । यह बाण जिस मनुष्य को जा लगेगा, वह आहत होकर दस मनुष्यों को दाँत से काट खायेगा तथा जो दस व्यक्ति दाँत से काटे जाँयगे, वे भी दस-दस व्यक्तियों को काट खायेंगे । भल्लातक, यातुधान, अपामार्ग, अर्जुनपुष्प में सिद्ध एला, बहेड़ा, गूगल और हलाहल विष के मिश्रण से बनाये गये काढ़े में मानव रक्त मिलाने से दंशयोग तैयार कर जिस मनुष्य पर प्रयोग किया जाय, वह विषाक्त हुआ मनुष्य अन्य मनुष्यों को काटने लगेगा । अर्ध धरणिक सत्तू और तिल के कल्क में उक्त क्वाथ का प्रयोग चार सौ हाथ लम्बे-चौड़े सरोवर के जल को दूषित करने में समर्थ है । इस दंशयोग के द्वारा दष्ट और स्पृष्ट मछलियाँ तथा उस जल को पीने या स्पर्श करने वाला कोई भी प्राणी विषाक्त हो सकता है । किसी हांडी में लाल या श्वेत सरसों के साथ कोई एक गोह रख कर पेंतालीस दिन तक भूमि में गाढ़े रखे और किसी वध्य व्यक्ति द्वारा उसे भूमि में से निकलवाये । तब वह व्यक्ति उस गोह को देखते ही मर जायगा । इसी प्रकार गोह के स्थान

पर कृष्णसर्प को पैंतालीस दिन गाढ़ने के बाद निकालने पर जो उस सर्प को देखेगा, वह मृत्यु को प्राप्त होगा। मेघ-विद्युत से उत्पन्न अंगार अथवा विद्युत से ही जली लकड़ी के कोयले की अग्नि में कृत्तिका या भरणी नक्षत्र में रौद्र कर्म के साथ हवन करके उस अग्नि को जहाँ भी लगा दे, वहीं वह सर्वस्व भस्म कर देगी और किसी भी प्रतीकार से बुझाई न जा सकेगी।

कर्मारादग्निमाहृत्य क्षौद्रेण जुहुयात्पृथक्।
सुरया शौण्डिकादग्निं भार्ग्यायोऽग्निं घृतेन च ॥२
माल्येन चेकपत्न्यग्निं पुंश्चल्यग्निं च सर्षपैः।
दध्ना च सूतिकास्वग्निमाहिताग्निं च तण्डुलैः ॥३
चण्डालाग्निं च मांसेन चिताग्निं मानुषेण च।
समस्तान्बस्तवसया मानुषेण ध्रुवेण च ॥४
जुहुयादग्निमन्त्रेण राजवृक्षकदारुभिः।
एष निष्प्रतिकारोऽग्निर्द्विषतां नेत्रमोहनः ॥५

ॐअदिते ! नमस्ते, अनुमते ! नमस्ते, सरस्वति ! नमस्ते, देव ! सवितर्नमस्ते। अग्नये स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा।

अब अन्य योग कहते हैं। कुम्हार के अवा से अग्नि ला कर उसमें मधु से, कलवार के यहाँ से अग्नि ला कर उसमें मदिरा से, लुहार से अग्नि लाकर उसमे घी मिली भँगरैया से, किसी पतिव्रता के घर से अग्नि लाकर उसमें पुष्पमाला से और किसी कुलटा के घर से अग्नि ला कर उसमें सरसों से हवन करे। सूतिका के घर की आग में दही की अग्निहोत्री के घर की आग में चावल की, चण्डाल के घर की आग में पशु आदि के माँस की और चिता की आग में मनुष्य के माँस की आहुति दे। उक्त सब अग्नियों को एकत्र करके बकरे की चर्बी, मनुष्य के माँस और बड़ की लकड़ी से हवन करना चाहिए। फिर अमलताश की लकड़ियों से हवन करे। इस प्रकार से सिद्धि की गई आग जहाँ लगाई जायगी वहां सर्वस्व भस्म किए बिना किसी प्रकार भी नहीं बुझेगी। इस

अग्नि की लपटों को देखने वालों के नेत्रों में चकाचौंध हो जायगी ॥२-५॥ अदिते ! तुम्हें नमस्कार, अनुमते ! नमस्कार सरस्वतिदेवी ! नमस्ते, सवितादेव ! आपको भी नमस्ते ! अग्नि के लिए स्वाहा, सोम के लिए स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवःस्वाहा । इस मंत्र के द्वारा उक्त अग्नियों में हवन करे ।

द्वितीयोऽध्यायः

प्रलम्भन में अद्भुतोत्पादन

शिरीषोदुम्बरशमीचूर्णं सर्पिषा संहृत्यार्धमासिकक्षुद्योगः । कशेरुकोत्पल कन्देक्षुमूलबिसदूर्वाक्षीरघृतमण्डसिद्धो मासिकः । माषयवकुलत्थदर्भमूलचूर्णं वा क्षीरघृताभ्यां, वल्लीक्षीरघृतं वा समसिद्धं सालपृश्निपर्णीमूलकल्कं पयसा पीत्वा पयो वा तत्सिद्धं मधुघृताभ्यामशित्वा मासमुपवसति। श्वेतबस्तमूत्रे सप्तरात्रोषितैः सिद्धार्थकैः सिद्धं तैलं कटुकालाबौ मासार्धमासस्थितं चतुष्पदद्विपदानां निरूपकरणम् । तक्रयवभक्षस्य सप्तरात्रादूर्ध्वं श्वेतगर्दभस्य लेण्डयवैः सिद्धं गौरसर्षपतैलं विरूपकरणम् ।

अब शत्रु-वंचन के विविध प्रयोगों को कहते हैं । सिरस, गूलर और शमी की छाल का चूर्ण खा लेने पर एक पखवाड़े तक क्षुधा नहीं लगती । कसेरू, कमल की जड़, ईख की जड़, कमलपुष्प का डंठल, दूब, दूध, घृत और मांड़ के मिश्रित योग को सेवन करने से एक माँस तक भूख नहीं लगती । अथवा उड़द, जौ कुलथी और कुश की जड़ का चूर्ण दूध-घृत में मिला कर खाले । अथवा शालिपर्णी और पृश्निपर्णी की जड का चूर्ण या कल्क दुग्ध-योग से सेवन करे । अथवा शालिपर्णी-पृश्निपर्णी मूल के कल्क को दूध में डाल कर खीर बनावे और शहद-घी मिला कर खाले । इन प्रयोगों से एक महीने तक भूख नहीं लगेगी । श्वेत बकरे के मूत्र में श्वेत सरसों को सात रात्रि तक भिगोने के पश्चात् तेल पिलवा ले और फिर उस तेल को कटुतुम्बी में एक मास तक रखे ।

तदुपरान्त इस विरूपकरण योग को जिस मनुष्य व पशु पर लगा दे तो उसकी आकृति में परिवर्तन हो जाता है। सात रात्रि पर्यन्त केवल मठा और जौ खिला कर रखे हुए गधे की लीद और जौ के साथ पके हुए श्वेत सरसों के तेल से भी विरूपीकरण होता है।

एतयोरन्यतरस्य मूत्रलेण्डरसंसिद्धं सिद्धार्थकतलमर्कतूलपतंगचूर्णप्रतिवापं श्वेतीकरणम्। श्वेतकुक्कुटाजगरलेण्डयोगः श्वेतीकरणम्। श्वेतबस्तमूत्रे श्वेतसर्षपाः सप्तरात्रोषितास्तक्रमर्कक्षीरमर्कतूलकटुकमत्स्यविडंगाश्च। एष पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम्। समुद्रमण्डूकीशंखसुधाकदलीक्षारतक्रयोगः श्वेतीकरणम्। कदल्यवल्गुजक्षाररसशुक्तास्तक्रार्कतूलस्नुहीलवणं धान्याम्लं च पक्षस्थितो योगः श्वेतीकरणम्। कटुकालाबौ वल्लीगते नगरमर्धमासस्थितं गौरसर्षपपिष्टं रोम्णांश्वेतीकरणम्।

अर्कतूलोऽर्जुने कीटः श्वेता च गृहगोधिका।
एतेन पिष्टेनाभ्यक्ताः केशाः स्युः शंखपाण्डराः ॥१

श्वेत बकरा या श्वेत गधा में से किसी एक के मल-मूत्र के रस में सरसों का तेल सिद्ध करके आक की रूई और पतंग का चूर्ण, धान के चूर्ण में मिला कर लगाने से मनुष्य का वर्ण श्वेत हो जाता है। श्वेत मुर्ग और अजगर की विष्ठा के मिलने से भी मनुष्य श्वेत हो सकता है। श्वेत बकरा के मूत्र में श्वेत सरसों को सात रात्रि पर्यन्त भिगो कर निकाल ले और फिर मठा, आक के दूध, आक की रूई, कटुक, मछली और वायविडंग में मिश्रित कर पन्द्रह दिन तक सुरक्षित रखे। तत्पश्चात् उस सरसों का तेल पिलवा कर जो लगावे, वह श्वेत वर्ण का होजाता है। समुद्र की मेंढ़की, शंख, सुधा (मरोरफली), केला, यवक्षार और मठा के मिश्रण से भी श्वेत बनाने वाला योग बन जाता है। केला, बावची, यवक्षार, पारा और चूक को मिला कर मदिरा में भिगोवे और फिर मठा, आक की रुई, सेंहुड़ और सेंधे नमक के साथ काँजी में डाल कर पंद्रह दिन तक रखे। यह योग भी श्वेत बनाने वाला है। अपनी

बेल में ही लगी हुई कटुतुम्बी में सोंठ को पन्द्रह दिन तक रखे और फिर उस सोंठ को निकाल कर श्वेत सरसों के साथ पीस कर लगावे तो इनसे बाल सफेद हो जाँयगे। आक की रुई, अर्जुन वृक्ष का कीड़ा और श्वेत गृहगोधिका (छपकली) को एकत्र पीस कर बालों पर लगावे तो बाल शंख के समान श्वेत होजाँयगे ॥१॥

गोमयेन तिन्दूकारिष्टकल्केन वा मर्दिताङ्गस्य भल्लातकरसानुलिप्तस्य मासिकः कुष्ठयोगः। कृष्णसर्पमुखे गृहगोधिकामुखे वा सप्तरात्रोषिता गुञ्जाः कुष्ठयोगः। शुकपित्ताण्डरसाभ्यङ्गः कुष्ठयोगः। कुष्ठस्य प्रियालकल्ककषायः प्रतीकारः। कुक्कुटीकोशातकीशतावरीमूलयुक्तमाहारयमाणो मासेन गौरो भवति। वटकषायस्नातः सहचरकल्कदिग्धः कृष्णो भवति। शकुनकंगुतैलयुक्ता हरितालमनः शिलाः श्यामीकरणम्। खद्योतचूर्णं सर्षपतैलयुक्तं रात्रौ ज्वलति।

गोबर, तेंदुआ और नीम के कल्क से अंगों का मर्दन करके फिर भिलावे को पारे में मिला कर शरीर पर लेप कर दे तो एक मास में लेपित मनुष्य कुष्ठ रोगी होजाता है। कृष्णसर्प और छपकली के मुख में सात रात्रि पर्यन्त रखी हुई गुंजा (रत्ती) का लेप करने से अथवा तोते के अण्डे के रस में तोते का पित्ता मिश्रित कर देह पर मालिश करने से कुष्ठ रोग हो जाता है। किन्तु प्रियाल अर्थात् चिरोंजी वृक्ष के कल्क का कषाय या क्वाथ पिलाने से कुष्ठ रोग मिट जाता है यानी कुष्ठ रोग के प्रतीकारार्थ चिरौंजी के कल्क का काढ़ा सेवन करावे। मुर्गी, कड़वी तोरई और शतावर मूल को एकत्र कर सेवन करे तो एक मास में गौरवर्ण का होजाय। वट व्रक्ष के क्वाथ से स्नान और पियावाँसे के कल्क की मालिश करे तो गोरे से काला हो जाय। गिद्ध के मांस, काँगनी, हरताल और मैनसिल को तेल में सिद्ध करने से मनुष्य का वर्ण काला होजाता है। खद्योत अर्थात् जुगुनू का चूर्ण सरसों के तेल में मिला दे वह रात में जलता हुआ दिखाई देता है।

खद्योतगण्डूपदचूर्णं समुद्रजन्तूनां भृङ्गकपालानां खदिरकर्णिकाराणां पुष्पचूर्णं वा शकुनकंगुतैलयुक्तं तेजनचूर्णं पारिभद्रत्वङ्मषीमण्डूकवसया युक्ता गात्रप्रज्वालनमग्निना पारिभद्रत्वग्वज्रकदलीतिलकल्कप्रदिग्धं शरीरमग्निना ज्वलति। पीलुत्वङ्मषीमयः पिण्डो हस्ते ज्वलति। मण्डूकवसादिग्धोऽग्निना ज्वलति। तेन प्रदिग्धमङ्गं कुशाम्रफलतैलसिक्तं समुद्रमण्डुकीफेनकसर्जरसचूर्णयुक्तं वा ज्वलति। मण्डूकवसासिद्धेन पयसा कुलीरादीनां वसया समभागं तैलं सिद्धमभ्यङ्गो गात्राणामग्निप्रज्वालनम्। मण्डूकवसादिग्धोऽग्निना ज्वलति। वेणुमूलशैवललिप्तमङ्गं मण्डूकवसादिग्धमग्निना ज्वलति। पारिभद्रकप्रतिबलावंजुलवज्रकदलीमूलकल्केन मण्डूकवसादिग्धेन तैलेनाभ्यक्तपादोऽङ्गारेषु गच्छति।

उपोदिका प्रतिबलावंजुलः पारिभद्रकः।
एतेषां मूलकल्केन मण्डूकवसया सह ॥२
साधयेत्तैलमेतेन पादावभ्यज्य निर्मलौ।
अङ्गारराशौ विचरेद्यथा कुसुमसंचये ॥ ३

खद्योत और केंचुए का चूर्ण तथा समुद्र के छोटे छोटे जन्तुओं तथा भृंगपक्षी के मस्तक का चूर्ण, खैर और कनेर के वृक्ष का चूर्ण, गिद्ध और कांगनी के तेल में डला हुआ बांस का चूर्ण, मेंढक की चर्बी और नीम की छाल से निर्मित स्याही—इन सब के मिश्रण से बने योग की मालिश से देह में अग्नि के समान चमक आ जाती है। नीम की छाल, वज्र अर्थात् थूहर, कदली और तिल का कल्क मिला कर शरीर पर लेप करके अग्नि का स्पर्श करा देने से शरीर जलने लग जाता है। यदि पीलू की छाल से बनी स्याही का गोला हाथ पर रख ले तो अग्नि के बिना ही आग जलने लगेगी। यदि उस गोला को मेंढक की चर्बी से लिप्त कर दे तो वह अग्नि के संयोग से जलेगा। यदि उस गोले को शरीर पर पोत दे और फिर उस पर कुश का तेल आम

की गुठली का तेल डाले अथवा समुद्र की मेंढकी, समुद्रफेन और शालि का चूर्ण उस पर डाल दे तो वह अपने आप ही जलने लगे। मेंढक की चर्बी डाल कर दूध उबाले और उसमें केकड़े की चर्बी और समान भाग तेल मिला कर शरीर पर मालिश करे तो उसमें अग्नि जलने लगे। मेंढक की चर्बी का शरीर पर लेप करके आग से छुवा दे तो शरीर जल उठे। अथवा बाँस की जड़ और सेंवार को पीस कर शरीर पर पोत कर फिर मेंढक की चर्बी लगा दे तो आग स्वयं ही उत्पन्न हो जाय और शरीर धधकने लगे। नीम, खिरेंटी, बेंत, थूहर और कदली-मूल के कल्क में मेंढक की चर्बी सहित तेल मिला कर पाँवों में लगा ले तो जलते हुए अंगारों पर चलने में भी पाँव नहीं जलेंगे। उपोदिका (पोदीना), खिरेंटी, बेंत और नीम की जड़ के कल्क में मेंढक की चर्बी मिला कर तेल बना ले। वह तेल निर्मल अर्थात् धोकर साफ किये हुए मैल-रहित पाँवों में लगा ले तो धधकते हुए अंगारों पर वैसे ही चल सकता है, जैसे कि फूलों पर चल रहा हो ॥२-३॥

हंसक्रौंचमयूराणामन्येषां वा महाशकुनीनामुदकप्लवानां पुच्छेषु बद्धा नलदीपिका रात्रावुल्कादर्शनम्। वैद्युतं भस्माग्निशमनम्। स्त्रीपुष्पपायिता माषा व्रजकुलीमूलं मण्डूकवसामिश्रं चुल्यां दीप्तायामपाचनम्। चुल्लीशोधनं प्रतीकारः। पीलुमयो मणिरग्निगर्भः। सुवर्चलामूलग्रन्थिः सूत्रग्रन्थिर्वा पिचुपरिवेष्टितो मुखादग्निधूमोत्सर्गः। कुशाम्रफलतैलसिक्तोऽग्निर्वर्षप्रवातेषु ज्वलति। समुद्रफेनस्तैलयुक्तोऽम्भसि प्लवमानो ज्वलति। प्लवङ्गानामस्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथितोऽग्निर्नोदकेन शाम्यति उदकेन च ज्वलति।

हंस, क्रौंच, मोर या बत्तख आदि अन्यान्य पक्षियों या जलचरों की पूँछ में बांधी हुई नल दीपिका अर्थात् नरसल पर लिपटी हुई बत्ती बाँध दे तो रात्रि के समय वह उल्का के समान दिखाई देती है। मेघ-विद्युत से जले हुए काठ की राख धधकती हुई अग्नि को बुझाने में समर्थ है।

स्त्री-रज में साने हुए उड़द को गौओं के गोष्ठ में उत्पन्न कटेरीमूल एवं मेंढक की चर्बी में मिला कर कितनी भी तेज अग्नि क्यों न दे, उड़द पकेगा नहीं। यदि उसे आग से उतार कर भले प्रकार धोकर साफ कर दिया जाय, तो ही पकेगा। पीलू की लकड़ी से बने हुए कलश में अग्नि निहित रहता है, अर्थात् आग के किंचित् स्पर्श से ही धधक सकता है। अलसी मूल की गाँठ या अलसी के सूत की गाँठ को रुई में लपेट कर मुख में रख ले तो मुख से अग्नि और धुँआ निकलने लगेगा। कुश और आम की गुठली का तेल आग में डाल दे तो वह आग आँधी और वर्षा से भी नहीं बुझ सकती। तेल में भिगोये हुए समुद्रफेन को जला कर जल में छोड़ दे तो वह जल में तैरता हुआ रह कर भी जलता रहेगा। बन्दर की अस्थि पर चितकबरे वर्ण के बाँस को रगड़ कर उत्पन्न की गई अग्नि जल डाल कर भी नहीं बुझाई जा सकती। इसके विपरीत जितना जल डाला जायगा, उतनी ही वह तीव्र होगी।

शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुरुषस्य वामपार्श्वपर्शुकास्थिषु कल्माषवेणुना निर्मथितोऽग्निः, स्त्रियाः पुरुषस्य वाऽस्थिषु मनुष्य-पर्शुकया निर्मथितोऽग्निर्यत्र। त्रिरपसव्यं गच्छति, न चात्रान्योऽग्निर्ज्वलति।

चुचुन्दरी खंजरीटः खारकोटश्च पिष्यते।
अश्वमूत्रेण संसृष्टा निगडानां तु भंजनम् ॥४
अयस्कान्तो वा पाषाणः।

हथियार के प्रहार से या शूली पर चढ़ा कर मारे गये व्यक्ति के बाँये पार्श्व की पसली को चितकबरे बाँस से रगड़ कर उत्पन्न की गई आग को अथवा किसी स्त्री या पुरुष की अस्थि को मनुष्य के बाँये पार्श्व की अस्थि पर रगड़ कर उत्पन्न आग को जहाँ तीन बार बाँयी ओर से घुमा दे तो वहाँ आग नहीं जल सकती। छछूँदर, खंजनपक्षी और ऊसर भूमि में उत्पन्न हुआ कीड़ा—इन्हें पीस कर अश्व के मूत्र में मिला कर उपयोग करने वाला मनुष्य लोहे की साँकलों को भी तोड़ने

में समर्थ होता है ।।४।। अथवा अयस्कान्त नामक पाषाण (मणि) में सांकलों को तोड़ने की शक्ति होती है।

कुलीराण्डदर्दुरखारकीटवसाप्रेदेहेन द्विगुणो दारकगर्भः कंकभासपार्श्वोत्पलोदकपिष्टश्चतुष्पदद्विपदानां पादलेपः, उलूकगृध्रवसाभ्यांमुष्ट्रचर्मोपानहावभ्यज्य वटपत्रैः प्रतिच्छाद्य पंचाशद्योजनान्यश्रान्तो गच्छति । श्येनकंककाकगृध्रहंसक्रौंचवीचिरल्लानां मज्जानो रेतांसि वा योजनशताय। सिंहव्याघ्रद्वीपिकाकोलूकानां मज्जानो रेतांसि वा, सार्ववर्णिकानि गर्भपतनान्युष्ट्रिकायामभिषूय श्मशाने प्रेतशिशून् वा तत्समुत्थितं मेदो योजनशताय।

अनिष्टैरद्भुतोत्पातैः परस्योद्वेगमचरेत्।

अराज्यायेति निर्वादः समानः कोप उच्यते ।।५

केंकड़े के अण्डे पर मेंढ़क और खारकीट की चर्बी से दुगुने बढ़ाये गये शूकर के गर्भ को कंकपक्षी और गिद्ध के पार्श्वभाग तथा कमल के जल में पीस कर जिस पशु या मनुष्य के पाँवों में लेप करे और उसे ऊँट चर्म से निर्मित जूतों पर उल्लू एवं गिद्ध की चर्बी को लेप कर बड़ के पत्ते से ढँक कर वह जूता पहिना दे तो वह पशु या मनुष्य बिना थके ही पचास योजन तक पैदल चल सकता है। बाज, कंक, काक, गिद्ध, क्रौंच और बीचिरल्ल—इन सब पक्षियों की चर्बी अथवा इन के वीर्य को पाँव और जूते में लगा कर सौ योजन तक बिना थके चल सकता है। सिंह, व्याघ्र, गेंडा, काक एवं उलूक की चर्बी अथवा वीर्य को भी वैसे ही पाँवों और जूते में लगा कर जाय तो सौ योजन पर्यंत बिना थके पैदल चले। किसी उच्च वर्ण की स्त्री का पतित हुआ गर्भ मृत्तिका पात्र में रखे और फिर अभिषव मन्त्र से अभिमंत्रित करके उस गर्भ अथवा श्मशान से लाये हुए किसी मरे हुए शिशु को उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उस गर्भ या शिशु की चर्बी का लेप पाँवों अथवा जूतों में करे तो भी बिना थके सौ योजन तक चलने में समर्थ रहे। इस प्रकार के अनिष्ट करने वाले अद्भुत उपायों के द्वारा शत्रु को व्यथित

करे। क्योंकि उक्त कार्य शत्रु राज्य में अराजकता उत्पन्न कर सकते हैं। इनमें जो निन्दनीय उपाय हैं वे कोप आदि के अवसर पर दोनों पक्षों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं ।।५।।

तृतीयाऽध्यायः

प्रलम्भन में भैषज्य-मन्त्र प्रयोग

मार्जारोष्ट्रवृकवराहश्वाविद्वागुलीनप्तृकाकोलूकानामन्येषां वा निशाचराणां सत्त्वानामेकस्य द्वयोर्बहूनां वा दक्षिणानि वामानि चाक्षीणि गृहीत्वा द्विधा चूर्णं कारयेत्। ततो दक्षिणं वामेन वामं दक्षिणेन समभ्यज्य रात्रौ तमसि च पश्यति।

एकाम्लकं वराहाक्षि खद्योतः कालशारिवा।
एतेनाभ्यक्तनयनो रात्रौ रूपाणि पश्यति ।।

त्रिरात्रोपोषितः पुष्ये शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरः कपाले मृत्तिकायां यवानावास्याविक्षीरेण सेचयेत्, ततो यवविरूढ-मालामाबध्य नष्टच्छायारूपश्चरति। त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण श्वमार्जारोलूकवागुलीनां दक्षिणानि वामानि चाक्षीणि द्विधा चूर्णं कारयेत्। ततो यथास्वमभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति। त्रिरात्रोपोषितः पुष्ये पुरुषघातिनः काण्डस्य शलाकामंजनीं च कारयेत्, ततोऽन्यतमेनाक्षिचूर्णेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति।

अब शत्रु को धोखे में डालने वाली विभिन्न औषधियों और मन्त्रों के विषय में कहेंगे। बिलाव, ऊँट, वृक, वराह, श्वावित् अर्थात् साही, वकुली, नप्ता पक्षी, काक, उलूक एवं रात्रिकाल में विचरण करने वाले अन्यान्य जीवों में से एक, दो एवं अनेक पशुओं की दाँये-बाँये नेत्र लेकर पृथक्-पृथक् कूट-पीस कर रखें। यदि उसमें से बाँये नेत्र का चूर्ण अपने दाँये नेत्र में और दाँये नेत्र का बाँये नेत्र में लगा लिया जाय तो रात्रि-कालीन घोर अन्धकार में भी दिखाई देता है। एक बड़हल फल, शूकर

का नेत्र, खद्योत और काला शारिवा इन सब का अंजन बना कर लगा ले तो रात्रि के अन्धकार में भी दृश्यों को देख सकता है ॥१॥ तीन दिन तक उपवास रख कर शस्त्र या शूली द्वारा मारे गये मनुष्य की खोपड़ी में मिट्टी डाल कर पुष्प नक्षत्र में जौ बो कर भेड़ की दूध से सींचे। कालान्तर में जब उस खोपड़ी में जौ के अंकुर उत्पन्न हो जाँये, तब उन अंकुरों की माला पहिन कर घूमे तो उसकी छाया या रूप कुछ भी दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार तीन रात्रि तक उपवास किया हुआ कोई व्यक्ति पुष्प नक्षत्र में श्वान, विलाव, उल्लूक एवं वकुली की दोनों आँखे लेकर पृथक्-पृथक् चूर्ण करके रखे। फिरजो अपने दाँये नेत्रमें दांये नेत्रका और बाँये नेत्र मेंबाँयेनेत्रका चूर्ण आँजले तो उसका रूप या छाया घोर अन्धकार में भी किसी को दिखाई नहीं देता। तीन रात्रि पर्यन्त उपवास किया हुआ जो व्यक्ति किसी के प्राण हरण करने वाले लोहे के बाण को लेकर उससे सलाई और सुर्मा रखने की डब्बी बनवाये। फिर श्वान, विलाव आदि में से किसी एक के नेत्र का चूर्ण उस डब्बी में रख कर उसी सलाई से नेत्रों में लगा कर घूमे तो कोई भी उसका रूप या छाया नहीं देख सकता।

त्रियात्रोपोषितः पुष्येण कालायसीमांजनीं शलाकां च कारयेत्। ततो निशाचराणां सत्त्वानामन्यतमस्य शिरःकपालमंजनेन मूरयित्वा मृतायाः स्त्रिया योनौ प्रवेश्य दाहयेत्। तदञ्जनं पुष्येणोद्धृत्य तस्यामञ्जन्यां निदध्यात्, तेनाभ्यक्ताक्षो नष्टच्छायारूपश्चरति। यत्र ब्राह्मणमाहिताग्नि दग्धं दह्यमानं वा पश्येत्, तत्र त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण स्वयंमृतस्य वाससा प्रसेवं कृत्वा चिताभस्मना पूरयित्वा तमाबध्य नष्टच्छायारूपश्चरति। ब्राह्मणस्य प्रेतकार्ये या गौर्मार्यते तस्या अस्थिमज्जाचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पशूनामन्तर्धानम्। सर्पदष्टस्य भस्मना पूर्णा प्रचलाकभस्त्रा मृगाणामन्तर्धानम्। उलूकबागुलीपुच्छपुरीषजान्वस्थिचूर्णपूर्णाहिभस्त्रा पक्षिणामन्तर्धानम्। इत्यष्टावन्तर्धानयोगाः।

त्रिरात्रि उपवास किये हुए पुष्य नक्षत्र में कालायस लौह की सलाई सुर्मादानी बनावे और चमगादड़ प्रभृति किसी जीव की खोपड़ी में सुर्मा भर कर किसी मृत स्त्री की योनि में रख कर जलावे। फिर उस सुर्मे को पुष्य नक्षत्र में निकाल कर उस सुर्मादानी में रखे और उसी सलाई से लगावे तो उसके रूप और छाया को कोई नहीं देख सकता। जिस श्मशान में किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण का दाह संस्कार किया गया हो अथवा किया जा रहा हो, उसमें त्रिरात्रि उपवास करके मृत हुए व्यक्ति के कफन वस्त्र की थैली बनाकर उसमें चिता भस्म भर कर थैली को अपने देह से बांधे तो किसी को दिखाई न दे। अथवा किसी ब्राह्मण के प्रेत-संस्कार के समय जो गौ मर जाय उसकी अस्थि-मज्जा के चूर्ण को सर्प-केंचुल में भरे। वह केंचुल जिसके गले में बांध दे वह पशु दिखाई नहीं देगा। अथवा सर्पदंश से मृत पुरुष की चिता-भस्म से भरी मयूर-चर्म की थैली जिस मृगादि के कण्ठ में बाँध दे, वह किसी को भी दिखाई नहीं देगा, उलूक और वकुली की पूँछ, विष्ठा, जानु और अस्थि के चूर्ण को किसी सर्प-कैंचुल में भर कर किसी पक्षी के कण्ठ में बाँध दे तो वह पक्षी दिखाई न दे। यह अन्तर्धान होने के आठ योग कह दिये गये।

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम्।
भण्डीरपाकं नरकं निकुम्भं कुम्भमेव च ॥२
देवलं नारदं वन्दे वन्दे स सावर्णिगालवम्।
एतेषामनुयोगेन कृतं ते स्वापनं महत् ॥३
यथा स्वपन्त्यजगराः स्वपन्त्यपि चमूखलाः।
तथा स्वपन्तु पुरुषा ये च ग्रामे कूतूहलाः ॥४
भाण्डकानां सहस्रेण रथनेमिशतेन च।
इमं गृहं प्रवेक्ष्यामि तूष्णीमासन्तु भाण्डकाः ॥५
नमस्कृत्वा च मनवे बद्ध्वा शुनकफेलकाः।
ये देवा देवलोकेषु मानुषेषु च ब्राह्मणाः ॥६

अध्ययनपारगाः सिद्धा ये च कैलासतापसाः।
एते च सर्वसिद्धेभ्यः कृतं ते स्वापनं महत् ॥७
अतिगच्छिति च मय्यपगच्छन्तु संहताः।
अलिते पलिते मनवे स्वाहा ॥८

विरोचनसुत बलि, सैकड़ों मायाओं का ज्ञाता शम्बर, भण्डीरपाक, नरक, निकुम्भ, कुम्भ, देवल, नारद और सार्वणिगालव की मैं वन्दना करता हूँ। इन सब देव-दानवों की सहायता लेकर मैं आपके निमित्त महत् निद्रायोग का विधान करता हूँ। जिस प्रकार अजगर या सेना में खल शयन करते हैं तथा ग्रामों में हजारों भाँड और सैकड़ों रथनेमि को प्राप्त होकर कौतूहलयुक्त व्यक्ति निवास करते हैं, उसी प्रकार यह पुरुष सो जाँय। मैं इस घर में घुसता हूँ, इसलिए इसमें रखे हुए भांडों (पात्रों) से शब्द न हो। मनु को नमन करके दुष्ट श्वानों बद्ध कर, देवलोक के देवताओं और मनुष्यलोक के ब्राह्मणों को प्रणाम करके, अध्ययन पारंगत कैलासवासी तपस्वियों को प्रणाम करके, इन सभी सिद्धों की शक्ति से समन्वित होता हुआ मैं आपके हेतु घोर निद्रा योग का आयोजन करता हूँ ॥२-७॥ मेरे जाने के पश्चात् सभी समूह-बद्ध पुरुष भी प्रस्थान करें। तत्पश्चात् यह मन्त्र कहे—'अलिते पलिते मनवे स्वाहा'।

एतस्य प्रयोगः—त्रिरात्रोपोषितः कृष्णचतुर्दश्यां पुष्ययोगिन्यां श्वपाकोहस्ताद्विलखावलेखनं क्रीणीयात्। तन्माषैः सह कडोलिकायां कृत्वा ससंकीर्णे आदहने निखानयेत्। द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्य कुमार्या पेषयित्वा गुलिकाः कारयेत्। तत एकां गुलिकामभिमंत्रयित्वा यत्रैतेन मंत्रेण क्षिपति, तत्सर्वं प्रस्वापयति।

एतेनैव कल्पेन श्वाविधः शल्यकं त्रिकालं त्रिश्वेतमसकीर्णं आदहने निखानयेत्। द्वितीयस्यां चतुर्दश्यामुद्धृत्यादहनभस्मना सह यत्रैतेन मंत्रेण क्षिपति, तत्सर्वं प्रस्वापयति।

प्रयोग विधि यह है कि त्रिरात्रि उपवास के पश्चात् पुष्य नक्षत्र युक्त कृष्णपक्षीय चतुर्दशी को किसी चाण्डाली से भूमि खोदने द्वारा मूषक का माँस-खण्ड क्रय करे। फिर उसे उड़द के साथ किसी छोटी पिटारी में रख कर श्मशान में गाढ़ने के पश्चात् जो चतुर्दशी पड़े उसमें उसे निकाल कर कुमारी कन्या के हाथ से पिसवा कर गोली बना ले और फिर उसे 'अलिते०'आदि मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसी मन्त्र का उच्चारण करते हुए जहाँ भी एक गोली फेंक दी जायगी, वहाँ के सभी व्यक्ति प्रगाढ़ निद्रा में सो जाँयगे। उक्त प्रकार से ही साही का श्वेतवर्ण वाला काँटा तीन स्थान पर और काले वर्ण वाला काँटा भी तीन ही स्थान पर खुले श्मशान में पुष्पमयी चतुर्दशी काढ़ दे और फिर दूसरी चतुर्दशी के उक्त मन्त्र पढ़ता हुआ उस एक काँटे को ही जहाँ फेंक देगा, वहीं सब गाढ़ निद्रा में सो जाँयगे।

सुवर्णपुष्पीं ब्रह्माणीं ब्रह्माणं च कुशध्वजम्।
सर्वाश्च देवता वन्दे वन्दे सर्वांश्च तापसान् ॥ ८
वशं मे ब्राह्मणा यान्तु भूमिपालाश्च क्षत्रियाः।
वशं वैश्याश्च शूद्राश्च वशतां यान्तु मे सदा ॥ ९

स्वाहा। अमिले किमिले वयुजारे प्रयोगे फक्के वयुश्वे विहाले दन्तकटके स्वाहा।

सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्राम्ये कुतूहलाः।
श्वाविधः शल्यक चैतत्त्रिश्वेतं ब्रह्मनिर्मितम् ॥१०
प्रसुप्ताः सर्वसिद्धा हि एतत्ते स्वापनं कृतम्।
यावद्ग्रामस्य सीमान्तः सूर्यस्योद्गमनादिति ॥११

एतस्य प्रयोगः। श्वाविधः शल्यकानि त्रिश्वेतानि सप्तरात्रोपोषितः कृष्णचतुर्दश्यां खादिराभिः समिधाभिरग्निमेतेन मन्त्रेणाष्टशतसम्पातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात्। तत एकमेतेन मंत्रेण ग्रामद्वारि वा यत्र निखन्यते, तत्सर्वं प्रस्वापयति।

सुवर्णपुष्पी, ब्रह्माणी, ब्रह्मा कुशध्वज तथा अन्यान्य सब देवों और

तपस्वियों की वंदना करता हूँ। सभी ब्राह्मण और भूपाल मेरे वशीभूत हों। वैश्य और शूद्र भी सदा मेरे वश में रहें ॥८-९॥ फिर 'स्वाहा अमिले किमिले वयुजारे प्रयोगे फक्के०' आदि का उच्चारण करे। ग्राम के सभी भौंकने वाले श्वान सुखपूर्वक शयन करें। तीन स्थानों पर श्वेत साही का यह काँटा ब्रह्माजी द्वारा निर्मित है। सभी सिद्धगण निद्रा को प्राप्त हो चुके हैं, अतएव आपके सोने की भी योजना बना दी गई है। जहाँ तक इस ग्राम की सीमा है, वहाँ से सूर्योद्गम पर्वत पर्यन्त इसका प्रभाव रहे। स्वाहा ॥१०-११॥ इसकी प्रयोग विधि यह है कि श्मशान में तीन स्थानों पर श्वेत साही के काँटों को गाढ़ कर सात रात्रि तक उपवास करके कृष्ण पक्षीय चतुर्दशी को उक्त मंत्र का उच्चारण करके खदिर-समिधाओं को शहद-घी में लिप्त करके एक सौ आठ आहुतियाँ अग्नि में दे। फिर उक्त मन्त्रों में से एक-एक को कहता हुआ ग्राम या गृह के द्वार पर एक-एक काँटा गिरावे। ऐसा करते ही उस ग्राम या घर के सभी प्रगाढ़ निद्रा में सो जाँयगे।

बलिं वैरोचनं वन्दे शतमायं च शम्बरम्।
निकुम्भं नरकं कुम्भं तन्तुकच्छं महासुरम् ॥१२
अर्मालवं प्रमील च मण्डोलूक घटोबलम्।
कृष्णकंसोपचारं च पौलोमीं च यशस्विनीम् ॥१३
अभिमंत्रयित्वा गृह्णामि सिद्धार्थं शवशारिकाम्।
जयतु जयति च नमः शशकभूतेभ्यः स्वाहा।
सुखं स्वपन्तु शुनका ये च ग्राम्ये कुतूहलाः।
सुखं स्वपन्तु सिद्धार्था यमर्थं मार्गयामहे ॥१४
यावदस्तमयादुदयो यावदर्थी फलं मम ॥१५ स्वाहा।

एतस्य प्रयोगः—चतुर्नक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यामसंकीर्ण आदहने बलिं कृत्वा एतेन मंत्रेण शवशारिकां गृहीत्वा पोत्रीपोट्टलिकां बध्नीयात्। तन्मध्ये श्वाविधः शल्यकेन विद्ध्वा यत्रैतेन मंत्रेण निखन्यते, तत्सर्वं प्रस्वापयति।

विरोचनसुत बलि, सैंकड़ों माया के ज्ञाता शम्बर, निकुम्भ, नरक, कुम्भ, महासुर तन्तुकच्छ, अर्मालव, प्रमील, मण्डोलूक, घटोबल, कृष्ण एवं कंस के उपचार और यशस्विनी इन्द्राणी की वन्दना करता हूँ। मैं अपने कार्य की सिद्धि के निमित्त शवशारिका को ग्रहण करता हूँ। ग्राम के सभी कौतूहलयुक्त श्वान आनन्द पूर्वक सो जाँय। सूर्योदय से सूर्यास्त तक, जब तक कि मुझे मेरे इच्छित की उपलब्धि न हो जाय तब तक सभी मेरी सिद्धि के निमित्त सो जाँय। स्वाहा ॥१२-१५॥ इसकी प्रयोगविधि यह है कि चार रात्रि तक उपवास किया हुआ कोई पुरुष कृष्णपक्षीय चतुर्दशी में, श्मशान में पशुबलि दे और उक्त मंत्र को बोलता हुआ एक मृत मैना ग्रहण कर वस्त्र में बाँध कर पोटली बना ले। फिर उक्त मंत्र बोलता हुआ साही के काँटे से पोटली को बींध कर जहाँ कहीं गाढ़े, वहीं सब प्रगाढ़ निद्रा के वशीभूत हो जाँय।

उपैमि शरणं चाग्निं दैवतानि दिशा दश।
अपयान्तु च सर्वाणि वशतां यान्तु मे सदा ॥१६॥स्वाहा।

एतस्य प्रयोगः—त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शर्करा एकविंशतिसम्पातं कृत्वा मधुघृताभ्यामभिजुहुयात्। ततो गन्धमाल्येन पूजयित्वा निखानयेत्। द्वितीयेन पुष्येणोद्धृत्यैकां शर्करामभिमन्त्र्य कवाटमाहन्यात्। अभ्यन्तरं चतसृणां शर्कराणां द्वारमपाव्रियते।

चतुर्भक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां भग्नस्य पुरुषस्यास्थ्ना वृषभं कारयेत्। अभिमन्त्रयेच्चैतेन द्विगोयुक्तं गोयानमाहृतं भवति। ततः परमाकाशे विक्रामति। सदा रविर्वः सगण्डपरिघाति सर्वं भणाति। चण्डालीकुम्भीतुम्बकटुकसारिघः सनारीभगोऽसि। स्वाहा। तालोद्घाटनं प्रस्वापनं च।

मैं अग्निदेव एवं दशों दिशाओं में विद्यमान देवताओं की शरण लेता हूँ। मेरी सभी बाधाएँ दूर हों और सभी मेरे वशीभूत हो जाँय। स्वाहा ॥१६॥ द्वार खोलने के उक्त मंत्र-प्रयोग की विधि यह है कि त्रिरात्रि उपवास किया हुआ व्यक्ति पुष्यनक्षत्र में शर्करा अर्थात् पत्थर

की कंकड़ियों को एकत्र करके, उन पर अग्नि रखे और शहद-घी की आहुतियाँ दे। फिर उन कंकड़ियों को गन्ध माल आदि से पूज कर मिट्टी में गाढ़ दे। फिर जब दसरा पुष्यनक्षत्र आवे तब उन कंकड़ियों को निकाल कर, उनमें से एक को उक्त मंत्र से अभिमंत्रित कर किवाड़ पर मारे। इस प्रकार चार कंकड़ियाँ मारने पर उसमें चार ककडियों के वराबर छेद हो जायगा, जिससे कि द्वार सरलता से खोला जा सकता है। अथवा चार रात्रि उपवास किया हुआ पुरुष कृष्णपक्षीय चतुर्दशी में मृत मनुष्य की अस्थि से एक वैल की प्रतिमा बनवा कर उसे उक्त मंत्र से अभिमंत्रित करे। ऐसा करने से दो वैलों से युक्त एक गाड़ी उसके सामने आ खड़ी होगी। उस गाड़ी पर चढ़ने वाला वह पुरुष आकाश में विचरण करने में समर्थ होगा। 'सदा रविरविः' इत्यादि प्रथम मंत्रयोग और 'चण्डालीकुम्मी' इत्यादि दूसरा मंत्र योग है। इन दोनों के द्वारा द्वार पर लगे हुए ताले को खोला जा सकता तथा घर के सभी लोग सुलाये जा सकते हैं।

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य व पुसः शिरःकपाले मृत्तिकायां तुवरीरावास्योदकेन् सेचयेत्। जातानां पुष्येणैव गृहीत्वा रज्जुकां बर्तयेत्। ततः सज्यानां धनुषां यन्त्राण च पुरस्ताच्छेदन ज्याछेदन करोति। उदकाहिभस्त्रामुच्छ्वास-मृत्तिकया स्त्रियाः पुरषस्य वा पूरयेत, नासिकाबन्धनं मुखग्रहश्च। वाराहवस्तिसुच्छ्वासमृत्तिकया पूरयित्वा मर्कटस्नायुनाऽवबध्नीयात्, आनाहकरणम्। कृष्णचतुर्दश्यां शस्त्रहतायागोः कपिलायाः पित्तेन राजवृक्षमयीममित्रप्रतिमामञ्ज्यात्, अन्धीकरणम्।

चतुर्भक्तोपवासी कृष्णचतुर्दश्यां बलिं कृत्वा शूलप्रोतस्य पुरुष-स्यास्थ्ना कीलकान्कारयेत्। एतेषामेकः पुरीषे मूत्रे वा निखात आनाहं करोति। पादेऽभ्यासने वा निखातः शोषेण मारयति। आपणे क्षेत्रे गृहे वा वृत्तिच्छेदं करोति। एतेन कल्पेन विद्यु-द्दग्धस्य वृक्षस्य कलिका व्याख्याताः।

त्रिरात्रि उपवास किया हुआ पुरुष पुष्य नक्षत्र में शस्त्र या शूली से मारे गये पुरुष की खोपड़ी लाकर, उसमें मिट्टी भर कर अरहर बोवे और बासी जल से सींचता रहे। जब वह अधिक अंकुरित हो जाय, तब उसे पुष्य नक्षत्र में काट कर बट ले और धनुष की डोरी बना ले। उस डोरी को धनुष पर बांध कर जो बाण उससे चलाया जायगा, वह शत्रुओं के धनुषों और उनकी डोरियों को काट देगा। जल के सर्प की केंचुली में किसी स्त्री या पुरुष की चिता की राख भर कर पोटली-सी बना ले। फिर उस पोटली को जिसे सुंघावे उसी का मुख और नाक बन्द हो जाय। अथवा शूकर की बस्ति में चिता-भस्म भर कर बन्दर की नसों से बाँधे। इसके प्रयोग से शत्रु को आनाह अर्थात् मल का स्तम्भन रूपी रोग हो जायगा। यदि कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी में शस्त्र से मारी हुई कपिला गौ का पित्ता लेकर उसे अमलताश की लकड़ी द्वारा निर्मित शत्रु के पुतले की आँखों में आँज दे तो शत्रु अन्धा हो जाय। अथवा चार रात्रि उपवास किया पुरुष कृष्णपक्ष की चौदस में विधिवत बलि देकर शूली से मृत पुरुष की अस्थियों की कीलें बनावे। इनमें से एक कील लेकर जिसके मलमूत्र में गाड़ दे उसी को आनाह अर्थात् अफरा रोग हो जाय। यदि यह कील किसी के पदचिन्ह अथवा बैठने के स्थान पर गाढ़ दे तो वह मनुष्य सूखा रोग से शीघ्र मर जायगा। जिसके व्यवसाय स्थान या खेत आदि में गाढ़ दे उसकी आजीविका मारी जाय। इसी विधि से मेघ-विद्युत से भस्म हुए वृक्ष की लकड़ी से कीलें बनाने पर वही फल होना कहा गया है।

पुनर्नवमवाचीनं निम्बः काकमधुश्च यः।
कपिरोम मनुष्यास्थि बद्ध्वा मृतकवाससा ॥१८
निखन्यते गृहे यस्य पिष्ट्वा या यं प्रपाययेत्।
सपुत्रदारः सधनस्त्रीन्पक्षान्नातिवर्तते ॥१९
पुनर्नवमवाचीनं निम्बः काकमधुश्च यः।

स्वयंगुप्ता मनुष्यास्थि पदे यस्य निखन्यते ॥१९
द्वारे गृहस्य सेनाया ग्रामस्य नगरस्य वा ।
सपुत्रदारः सधनस्त्रीन् पक्षान्नातिवर्तते ॥२०
अजमर्कटरोमाणि मार्जारनकुलस्य च ।
ब्राह्मणानां श्वापाकानां काकोलूकस्य चाहरेत्॥२१
एतेन विष्ठावक्षुण्णा सद्य उत्सादकारिका ।
प्रेतनिर्मालिका किण्वं रोमाणि नकुलस्य च ॥२२
वृश्चिकाल्यहिकृत्तिश्च पदे यस्य निखन्यते ।
भवत्यपुरुषः सद्यो यावत्तन्नापनीयते ॥२३

अवाचीन अर्थात् दक्षिण की ओर उत्पन्न नीचे मुख वाला पुनर्नवा, काकमधु अर्थात् कौओं को मीठा लगने वाला नीम, धमासा और मानव-अस्थि को मृत मनुष्य के कफन वस्त्र में बाँध कर जहाँ गाढ़ दे या जिसे पिला दे, वह मनुष्य तीन पक्ष में अपने स्त्री, पुत्र और धनादि के सहित नष्ट हो जाता है। अथवा अवाचीन पुनर्नवा, काकमधु नीम, धमासा और मानव-अस्थि को जिसके पदचिन्ह, घर-द्वार, सेना की छावनी ग्राम या नगर के द्वार पर गाढ़ दे तो भी वह सर्वनाश सहित तीन पक्ष में मिट जाता है। बकरा, बन्दर, बिलाव, नेवला, ब्राह्मण, चण्डाल, काक और उलूक के बाल एकत्र करके, जिसकी विष्ठा पर डाल दे, वह तुरन्त मृत्यु को प्राप्त हो। शव पर डाली गई माला, किण्व, नेवले के रोम, बिच्छू, भौंरा और सर्प की खाल को एकत्र करके जिसके पदचिन्ह पर गाढ़ दे वह नपुंसक हो जाता है, किन्तु उक्त वस्तुएँ वहाँ से निकाल लेने पर वह रोग-मुक्त हो जायगा ॥१७-२३॥

त्रिरात्रोपोषितः पुष्येण शस्त्रहतस्य शूलप्रोतस्य वा पुंसः शिरःकपाले मृत्तिकायां गुञ्जा आवास्योदकेन च सेचयेत्। जातानाममावास्यायां पौर्णमास्यां वा पुष्ययोगिन्यां गुञ्जावल्ली-र्ग्राहयित्वा मंडलिकानि कारयेत्। तेष्वन्नपानभाजनानि न्यस्तानि न क्षीयन्ते। रात्रिप्रेक्षायां प्रवृत्तायां प्रदीपाग्निषु मृतधेनोः स्तना-

नुत्कृत्य दाहयेत् । दग्धान् वृषमूत्रेण पेषयित्वा नवकुम्भमन्तर्लेपयेत् । ते ग्राममपसव्यं परिणीय तत्र न्यस्तं नवनीतमेषां तत्सर्वमागच्छतीति । कृष्णचतुर्दश्यां पुष्ययोगिन्यां शुनो लग्नकस्य योनौ कालायसीं मुद्रिकां प्रेषयेत्, तां स्वयं पतितां गृह्णीयात् । तया वृक्षफलान्याकारितान्यागच्छन्तीति ।

मंत्रभैषज्यसंयुक्ता योगा मायाकृताश्च ये ।
उपहन्यादमित्रांस्तैः स्वजनं चाभिपालयेत् ॥२४

त्रिरात्रि उपवास किया हुआ पुरुष शस्त्र या शूली से मृत मनुष्य की खोपड़ी पुष्य नक्षत्र में लेकर उसमें मिट्टी भरे और गुंजा बोकर बासी जल से सींचे । जब वह अंकुरित एवं फलित हो जाय तब उन गुंजाफलों से घेरा बनावे । उस घेरे में रखे हुए भाण्ड में जो सामान भरे जाँयगे वे कभी भी कम नहीं होंगे, चाहे उनमें से कितना भी व्यय क्यों न कर ले । मृत गौ के थन काट कर रात्रिकाल में जब कहीं नाच-गान आदि उत्सव हो रहा हो तब वहाँ जो मशाल जल रही हो उसमें उस गोस्तन को जलवाये । फिर उसे बैल के मूत्र में पिसवा कर मिट्टी के नवीन घड़े में सब ओर उसका लेप कर दे । फिर उस घड़े को लेकर ग्राम की बाँयी ओर से अर्थात् उल्टी परिक्रमा दे तो समूचे ग्राम का नवनीत उस घड़े में आकर भर जायगा । पुष्य नक्षत्र वाली कृष्णपक्षीय चौदह को एक लोहे की अँगूठी लेकर किसी कामोन्मत्ता कुतिया की योनि में रख दे तथा जब वह अँगूठी स्वय निकल पड़े तब उसे उठा ले । वह अँगूठी जिसके पास रहे वह मनुष्य जिस वृक्ष के फल की इच्छा करे, उसी वृक्ष का फल उसके पास स्वयं ही आ जायगा । इस प्रकार मंत्रों तथा औषधियों वाले जो-जो मायायोग कहे गए हैं, उनके द्वारा शत्रु का अपकार और स्वजनों का पालन करना चाहिए ॥२४॥

चतुर्थोऽध्यायः

स्वसैन्य-घातक प्रयोगों का प्रतीकार

स्वपक्षे परप्रयुक्तानां दूषीविषगराणां प्रतीकारे श्लेष्मांतक-

कपित्थदन्तिदन्तशठगोजोशिरोषपाटलोबलास्योनाकपुनर्नवाश्वेता-वरणक्काथयुक्तं चन्दनसालावृकीलोहितयुक्तं तेजनोदनकं राजोपभोग्यानां गुह्यप्रक्षालनं स्त्रीणां सेनायाश्च विषप्रतीकारः। पृषतनकुलनीलकण्ठगोधापित्तयुक्तं मषीराजिचूर्णं सिन्दुवारित-वरणवारुणीतण्डुलीयकशतपर्वाग्रपिण्डीतकयोगो मदनदोषहरः। श्रृगालविन्नामदनसिन्दुवारितवरणवारुणीवल्लीमूलकषायाणाम-न्यतमस्य समस्तानां वा क्षीरयुक्तं पानं मदनदोषहरम्। कैडर्य-पूतितिलतैलमुन्गादहरं नस्यकर्म। प्रियगुनक्तमालयोगः। कुष्ठ-लोध्रयोगः पाकशोषघ्नः। कट्फलद्रवन्तीविडंगचूर्णं नस्यकर्म शिरोरोगहरम्।

यदि अपनी सेना पर किये गये दूषित विष आदि प्रयोगों के प्रतिकार की आवश्यकता प्रतीत हो, तब ल्हिसोड़ा, कैथ, जमालगोटा, जंभीरी, गोभी, सिरस, कृष्ण पाटल, खिरेंटी, सोनापाठा, पुनर्नवा, मद्य और बरनावृक्ष का क्वाथ करे। फिर चन्दन और गीदड़ी का रुधिर मिश्रित कर उससे तेजनोदक बनावे। यदि राजा के उपभोगार्थ कोई विषकन्या भेजी गई हो तो उसकी योनि को इससे धोने से विष दूर हो जायगा। अथवा शत्रु ने सेना पर विष का प्रयोग किया हो तो वह विष भी इसी तेजन नामक जल से धोने पर मिट जायगा। पृषत संज्ञक मृग, नेवला, नीलकण्ठ और गोह के पित्ते में कृष्ण संभाल, राई का चूर्ण, संभालू, बरना, दूब, चौलाई, बाँस का अंकुर तथा मैनफल मिलावे। इस योग से धतूरे के विष का प्रभाव दूर हो जाता है। श्रृगालविन्ना नामक औषधि, धतूरा, संभालू, बरना और गजपीपल, इन पाँचों अथवा इनमें से किसी एक की मूल का क्वाथ दूध में मिला कर पीवे तो धतूरे का विष नष्ट हो जाय। कायफल और कँटीले कंजा के रस को तिल-तैल में मिश्रित कर नस्य ले तो उन्माद रोग मिटे। ककुनी और कंजा के मिश्रण का सेवन कुष्ठरोग को, कूठ और लोध के मिश्रण का सेवन केशों की श्वेतता और क्षय रोग को तथा कायफल, द्रवन्ती

अर्थात् मूषाकर्णी और वायविडंग के मिश्रित चूर्ण का सूंघना सब प्रकार के शिरोरोग को दूर कर देता है।

प्रियङ्गु मंजिष्ठातगरलाक्षारसमधुकहरिद्राक्षौद्रयोगो रज्जूदक-विषप्रहारपतननि:संज्ञानां पुनः प्रत्यानयनाय। मनुष्याणामक्षमात्रं, गवाश्वानां द्विगुणं, चतुर्गुणं हस्त्युष्ट्राणाम। रुक्मगर्भश्चैषां मणिः सर्वविषहरः। जीवन्तीश्वेतामुष्ककपुष्पवन्दाकानामक्षीबे जातस्याश्वत्थस्य मणिः सर्वविषहरः।

तूर्याणां तैः प्रालिप्तानां शब्दो विषविनाशनः।
लिप्तध्वज पताकां वा दृष्ट्वा भवति निर्विषः ॥१
एतैः कृत्वा प्रतीकारं स्वसैन्यानामथात्मनः।
अमित्रेषु प्रयुंजीत विषधूमाम्बुदूषणान् ॥२

प्रियंगु, मंजीठ, तगर, लाक्षा, राल, महुआ, हल्दी और मधु का मिश्रित योग रस्सी, दूषित जल, शस्त्र प्रहार या ऊपर से गिरने के कारण अचेत हुए व्यक्ति को चेत में कर देता है। मनुष्यों को यह एक अक्ष अर्थात् सोलह माशे की मात्रा में दे। बैल और अश्व को इससे दुगुनी तथा हाथी और ऊँट को चौगुनी मात्रा देनी चाहिए। उक्त औषधियों की गोली स्वर्ण या चाँदी आदि के तावीज में रख कर शरीर पर बाँध ले तो भी सब प्रकार के विष दूर हो जाते हैं। अथवा जीवन्ती, श्वेता, मुष्कक, कृष्ण पाँढरी, पुष्पवन्दा, अमरबेल और नीम के वृक्ष पर उत्पन्न हुए पीपल को संचित कर, इस मिश्रण से निर्मित योग को भी ताबीज में भर कर बाँधे तो सब प्रकार के विषों का प्रभाव दूर हो जाय। उक्त जीवन्ती अर्थात् गिलोय आदि औषधियों से लिप्त बाजों के शब्द से भी विष दूर हो जाते हैं। इसी प्रकार उक्त औषधियों से लिप्त ध्वजा-पताका देखने से ही विष को दूर कर देती हैं। इसलिए उक्त औषधियों से स्वसैन्य एवं स्वयं का बचाव करता हुआ विजिगीषु शत्रु के प्रति विष, धूम एवं जल दूषण आदि के प्रयोगों को करे ॥१-२॥

॥ औपनिषदिक नामक चतुर्दश अधिकरण समाप्त ॥

तन्त्रयुक्ति पंचदश अधिकरण

प्रथमोऽध्यायः

तन्त्रयुक्ति

मनुष्याणां वृत्तिरर्थः, मनुष्यवतो भूमिरित्यर्थः । तस्याः पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति । तद्द्वात्रिंशद्युक्तियुक्तम्—अधिकरणम्, विधानम्, योगः, पदार्थः, हेत्वर्थः, उद्देशः, निर्देशः, उपदेशः, अपदेशः, अतिदेशः, प्रदेशः, उपमानम्ः, अर्थापत्तिः, संशयः, प्रसंगः, विपर्ययः, वाक्यशेषः, अनुमतम्ः, व्याख्यानम्, निर्वचनम्, निदर्शनम्, अपवर्गः, स्वसञ्ज्ञा, पूर्वपक्षः, उत्तरपक्षः एकान्तः, अनागतावेक्षणम्, अतिक्रान्तावेक्षणम्, नियोगः, विकल्पः, समुच्चयः, ऊह्यमिति ।

अब अर्थशास्त्र के अर्थ निर्णयार्थ उपयुक्त युक्तियों विषय में कहेंगे । मनुष्यों की वृत्ति अर्थात् जीविका 'अर्थ' है और मनुष्यों से सम्पन्न भूमि भी 'अर्थ' कही जाती है । इस पृथिवी के लाभ और पालन के उपायों का विधान करने वाला शास्त्र 'अर्थशास्त्र' कहा जाता है । इस शास्त्र में निम्न बत्तीस युक्तियाँ दी गई हैं—अधिकरण, विधान, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, उद्देश्य, निर्देश, उपदेश, अपदेश, अतिदेश प्रदेश, उपमान, अर्थापत्ति, संशय, प्रसंग, विपर्यय वाक्यशेष, अनुमत, व्याख्यान, निर्वचन, निदर्शन, अपवर्ग, स्वसंज्ञा, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष, एकान्त, अनागतावेक्षण, अतिक्रान्तावेक्षण, नियोग, विकल्प, समुच्चय और ऊह्य ।

यमर्थमधिकृत्योच्यते तदधिकरणम्—'पृथिव्या लाभे पालने च यावन्त्यर्थशास्त्राणि पूर्वाचार्यैः प्रस्थापितानि प्रायशस्तानि संहृत्यैकमिदमर्थशास्त्रं कृतम्' (अधि० १, अध्या० १) इति ।

शास्त्रस्य प्रकरणानुपूर्वी विधानम्—'विद्यासमुद्देशः, वृद्धसंयोगः, इन्द्रियजयः अमात्योत्पत्तिः' (अधि० १, अध्या० १) इत्येवमादिकमिति। वाक्ययोजना योगः—'चतुर्वर्णाश्रमो लोकः' (अधि० १, अध्या० ४) इति। पदावधिकः पदार्थः—'मूलहरः' इति पदम्। 'यः पितृपैतामहमर्थमन्यायेन भक्षयति स मूलहरः' (अधि० २ अध्या० ९) इत्यर्थः। हेतुरर्थसाधको हेत्वर्थः—अर्थमूलौ हि धर्मकामौ' (अधि० १, अध्या० ७) इति। समासवाक्यमुद्देशः—'विद्याविनयहेतुरिन्द्रियजयः' (अधि० १, अध्या० ६)। व्यासवाक्यं निर्देशः—'कर्णत्वगक्षिजिह्वाघ्राणेन्द्रियाणां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेष्वविप्रतिपत्तिरिन्द्रियजयः' (अधि० १, अध्या० ६) इति। एव वर्तितव्यमित्युपदेशः—'धर्मार्थाविरोधेन कामं सेवेत न निःसुखः स्यात्' (अधि० १, अध्या० ७) इति। एवमसावाहेत्यपदेशः 'मन्त्रिपरिषदं द्वादशामात्यान् कुर्वीतेति मानवाः, षोडशेति बार्हस्पत्याः, विंशतिमित्यौशनसाः, यथासामर्थ्यमिति कौटिल्यः' (अधि० १,अध्या० १५) इति।

जिस अर्थ को अधिकार पूर्वक कहा जाय, उसे 'अधिकरण' कहेंगे। जैसे सर्व प्रथम सूत्र में 'पृथिव्या लाभे' इत्यादि कह कर सब शास्त्र को ही एक अधिकरण कह दिया गया है। इसी प्रकार उन-उन नामों के अनुसार ही विनयाधिकारिक, अध्यक्षप्रचार आदि नामों से अधिकरण नाम की प्राप्ति होती है। प्रकरण के अनुसार शास्त्र की आनुपूर्वी अर्थात् क्रमनिवेश कहना ही 'विधान' है। जैसे कि विद्यासमुद्देशादि (अधि०१, अ०१)। वाक्यों की योजना ही 'योग' है, जैसे कि 'चतुर्वर्णाश्रमो लोक' (अधि०१, अ०४)। किसी पद का अर्थ 'पदार्थ' कहा जाता है, जैसे कि मूलहर एक पद है। इसका अर्थ पैतृक सम्पत्ति का अपहरण कर लेने वाला समझा जायगा। अर्थ को सिद्ध करने वाला हेतु 'हेत्वार्थ' है, जैसे कि 'अर्थ मूलौ०' इत्यादि (१·७)। संक्षिप्त वाक्य का कथन 'उद्देश्य' है, जैसे कि 'विद्याविनय०' इत्यादि (१-६)। वितृत वाक्य का कहना

'निर्देश' है, जैसे कि 'कर्णत्वगक्षि०' इत्यादि (१-६)। इस प्रकार का व्यवहार होना चाहिए, इस प्रकार कहा जाना 'उपदेश' है, जैसे कि धर्मार्थाविरोधेन०' इत्यादि (१-७)। अमुक व्यक्ति ने इस प्रकार कहा है, ऐसा कहा जाना 'अपदेश' है, जैसे कि 'मन्त्रिपरिषदम्०, इत्यादि (१-५)।

उक्तेन साधनमतिदेशः—'दत्तस्याप्रदानमृणादानेन व्याख्यातम्' (अधि० ३, अध्या० १६) इति। वक्तव्येन साधनं प्रदेशः—'सामदानभेदण्डैर्वा यथापत्सु व्याख्यास्यामः' (अधि० ७, अध्या० १४) इति। दृष्टेनादृष्टस्य साधनमुपमानम्—'निवृत्तपरिहारान् पितेवानुगृह्णीयात्' (अधि० २, अध्या० १) इति। यदनुक्तमर्थादापद्यते सार्थापत्तिः—'लोकयात्राविद्राजानमात्मद्रव्यप्रकृतिसम्पन्नं प्रियहितद्वारेणाश्रयेत (अधि० ५, अध्या० ४)। नाप्रियहितद्वारेणाश्रयेतेत्यर्थादापन्नं भवतीति। उभयतो हेतुमानर्थः संशयः—क्षीणलुब्धप्रकृतिमपचरितप्रकृतिं वा' (अधि० ७, अध्या० ५) इति। प्रकरणान्तरेण समानोऽर्थः प्रसङ्गः—'कृषिममंप्रदिष्टायां भूमाविति समानं पूर्वेण' (अधि० १, अध्या० ११) इति। प्रतिलोमेन साधनं विपर्ययः—'विपरीतमतुष्टस्य' (अधि० १, अध्या० १६) इति। येन वाक्यं समाप्यते स वाक्यशेषः—'छिन्नपक्षस्येव राज्ञश्चेष्टानाशश्चेति' (अधि० ८, अध्या० १)। तत्र शकुनेरिति वाक्यशेषः। परवाक्यमप्रतिषिद्धमनुमतम्—'पक्षावुरस्यं प्रतिग्रह इत्यौशनसो व्यूहविभागः' (अधि० १०, अध्या० ६) इति।

किसी कही हुई बात से न कही हुई बात का भी तात्पर्य निकाल लेना 'अतिदेश' है, जैसे कि 'दत्तस्याप्रदानम्०' इत्यादि (३।१६)। जो बात भविष्य में कही जाने वाली हो, उससे न कही हुई बात की सिद्धि होना 'प्रदेश' है, जैसे कि 'सामदानभेदैर्वा०' (७।१४)। देखी वस्तु से न देखी वस्तु की सिद्धि होना 'उपमान' है, जैसे कि "निवृतिपरिहारान्०' आदि (२-१)। न कही बात कही गयी बातों के अर्थ से ही समझ

में आ जाय, वह 'अर्थापत्ति' है, जैसे 'लोकयात्राविद्राजानम्०' आदि (५-४)। 'अप्रिय और अहित पुरुष के द्वारा दिया गया आश्रय न ले' यह अर्थ 'अर्थापत्ति' से ही जाना गया। किसी अर्थ में दोनों पक्ष के लिए हेतु हो तो वह 'संशय' है, जैसे कि 'क्षीणलुब्ध प्रकृतिम्०' आदि (७-५)। दूसरे प्रकरण से अर्थ की समानता 'प्रसंग' है, जैसे कि 'कृषिकर्मप्रदिष्टायाम्०' (१।११)। कथित बात की विपरीतता से किसी वस्तु का निर्देश 'विपर्यय' है, जैसे 'विपरीतम्०' आदि (१।१६)। जिस वार्ता द्वारा वाक्य ही समाप्ति हो, वह 'वाक्यशेष' है, जैसे कि 'छिन्नपक्षस्येव०' इत्यादि (८।१)। इसमें सामर्थ्य से अपाहृत 'शकुनके' वाक्यशेष ही माना जायगा। यदि अन्य की बात का प्रतिषेध न किया जाय तो वह 'अनुमत' होगा, जैसे कि 'पक्षावुरस्यम्०' इत्यादि (१०।६)।

अतिशयवर्णना व्याख्यानम्—'विशेषतश्च संघानां संघधर्मिणां च राजकुलानां द्यूतनिमित्तो भेदः तन्निमित्तो विनाश इत्यसत्प्रग्रहः पापिष्ठतमो व्यसनानां तंत्रदौर्बल्यात्' (अधि० ८, अध्या० ३) इति। गुणतः शब्दनिष्पत्तिर्निर्वचनम्—'व्यस्यत्येनं श्रेयस इति व्यसनम्' (अधि० ८, अध्या० १) इति। दृष्टान्तो दृष्टान्तयुक्तो निदर्शनम्—'विगृहीतो हि ज्यायसा हस्तिनः पादयुद्धमिवाभ्युपैति' (अधि० ७, अध्या० ३) इति। अभिप्लुतव्यपकर्षणमपवर्गः—'नित्यमासन्नमरिबलं वासयेदन्यत्राभ्यन्तरकोपशकायाः' (अधि० ९, अध्या० २) इति। परैरसमितः शब्दः स्वसंज्ञा—'प्रथमा प्रकृतिस्तस्य भूम्यनन्तरा द्वितीया भूम्येकान्तरा तृतीया' (अधि० ६, अध्या० २) इति। प्रतिषेद्धव्यं वाक्यं पूर्वपक्षः—'स्वाम्यमात्यव्यसनयोरमात्यव्यसनं गरीयः' (अधि० ८, अध्या० १) इति। तस्य निर्णयनवाक्यमुत्तरपक्षः—'तदायत्तत्वात्, तत्कूटस्थानीयो हि स्वामी' (अधि० ८, अध्या० १९)।

सिद्ध अर्थ का अत्यधिक युक्तियों से कहा जाना 'व्याख्यान' है, जैसे 'विशेषतश्च संघानाम्०' (८।३) भीतरी गुण के द्वारा शब्द की

सिद्धि 'निर्वचन' है, जैसे 'व्यस्यत्येनम्०' आदि (८।१)। दृष्टान्त के सहित दृष्टान्त का निर्देश 'निदर्शन' है, जैसे कि 'विग्रहीतो हि ज्यायसा०' (७।३) किसी विधि को सामान्यभाव से व्यापक रूप से कहते कहते संकोच अर्थात् संक्षिप्त कर देना 'अपवर्ग' है, जैसे कि 'नित्यमासन्नम्०' आदि (९।२)। दूसरों पर संकेत न करना 'स्वसंज्ञा' होगा, जिस प्रकार 'प्रथमा प्रकृतिस्तस्य०' (६·२)। प्रतिषेध किया जाने वाला वाक्य 'पूर्व-पक्ष' होगा, जैसे 'स्वाम्यमात्यव्यसनयोः०' आदि उस पूर्वपक्ष का निर्णायक वाक्य 'उत्तर पक्ष' होगा, जैसे कि 'तदायत्तत्वात्०' (८।१९)।

सर्वत्रायत्तमेकान्तः—तस्मादुत्थानमात्मनः कुर्वीत' (अधि० १, अध्या० १९) इति। पश्चादेवं विहितमित्यनागतावेक्षणम्—'तुलाप्रतिमानं पौतवाध्यक्षे वक्ष्यामः' (अधि० २, अध्या० १३) इति। पुरस्तादेवं विहितमित्यतिक्रान्तावेक्षणम् –'अमात्यसम्प-दुक्ता पुरस्तात्' (अधि० ६, अध्या० १) इति। एवं नान्यथेति नियोगः—'तस्माद्धर्ममर्थं चास्योपदिशेन्नाधर्ममनर्थं च'। (अधि० १, अध्या० १७) इति। अनेन वानेन वेति विकल्पः—'दुहितरो वा धर्मिष्ठेषु विवाहेषु जाताः' (अधि० ३, अध्या० ५) इति। अनेन चानेन चेति समुच्चयः—स्वसंजातः पितृबन्धूनां च दायादः (अधि० ३, अध्या० ७) इति। अनुक्तकरणमूह्यम् 'यथावद्दाता प्रतिग्रहीता च नोपहौ तस्यातां तथानुपशय कुशलाः कल्पयेयुः' (अधि० ३ अध्या० १६) इति।

जो अर्थ किसी देश-काल में त्याज्य न हो, उसे एकान्त कहेंगे, जैसे 'तस्मादुत्थानाम्०' (१-१९)। आगे ऐसा विधान किया जायगा, इसे 'अनागतावेक्षण' कहेंगे, जैसे 'तुलाप्रतिमानम्०' (२।१३) इसका पहिले निरूपण किया जा चुका है, यह कहना 'अतिक्रान्तावेक्षण' होगा जैसे कि 'अमात्यसम्पदुक्ता' इत्यादि (६-१)। अमुक कार्य इसी प्रकार से होगा, इसके विपरीत नहीं, इस प्रकार का कथन 'नियोग' है, यथा—

तस्माद्धर्ममर्थम्० (११७) । अमुक कार्य इस प्रकार होगा अथवा इस प्रकार भी हो सकता है, ऐसा कहना 'विकल्प' है, यथा—'दुहितरोवा-धर्मिष्ठेषु० (३।५) अमुक कार्य इस प्रकार होता है और इस प्रकार भी हो सकता है ऐसा कथन 'समुच्चय' है, यथा—'स्वसंजात:०' (३।७)। न कही हुई बात की कल्पना कर लेना 'उह्य' कहा जाता है। जैसे कि 'यथावद्दाता प्रतिग्रहीता च०' इत्यादि (३।१६)।

एवं शास्त्रमिदं युक्तमेताभिस्तंत्रयुक्तिभिः।
अवाप्तौ पालने चोक्तं लोकस्यास्य परस्य च ॥१
धर्ममर्थं च कामं च प्रवर्तयति पाति च।
अधर्मानर्थविद्वेषानिदं शास्त्रं निहन्ति च ॥२
येन शास्त्रं च शस्त्रं च नन्दराजगता च भूः।
अमर्षेणोद्धृतान्याशु तेन शास्त्रमिदं कृतम् ॥३
दृष्ट्वा विप्रतिपत्तिं बहुधा शास्त्रेषु भाष्यकाराणाम्।
स्वयमेव विष्णुगुप्तश्चकार सूत्रं च भाष्यं च ॥४

इस प्रकार यह शास्त्र उक्त सब तन्त्र-युक्तियों से सम्पन्न है। इसकी रचना इहलोक और परलोक की प्राप्ति और पालन के निमित्त हुई है। यह धर्म, अर्थ और काम की प्रवृत्ति जगाता हुआ, उनकी रक्षा का विधान करता तथा अर्थ से विरोध रखने वाले अनर्थों को नष्ट करता है। जिसने शास्त्र, शस्त्र और राजा नन्द के वश हुई पृथिवी का उद्धार कर दिया, उन्हीं आचार्य कौटिल्य ने इस शास्त्र की रचना की है ॥१-३॥ विभिन्न शास्त्रों के विषय में मत वैभिन्न से भाष्यकारों में विवाद देख कर स्वयं आचार्य विष्णुगुप्त (कौटिल्य) ने सूत्रों की रचना के साथ उनका भाष्य भी लिख दिया है ॥४॥

॥ तंत्रयुक्ति नामक पंचदश अधिकरण समाप्त ॥

॥ ग्रन्थ समाप्त ॥

परिशिष्ट

चाणक्य के सूत्र

सुखस्य मूलं धर्मः ॥ १ ॥ धर्मस्य मूलमर्थः ॥ २॥ अर्थस्य मूलं राज्यम् ॥ ३ ॥ राज्यमूलमिन्द्रियजयः ॥ ४ ॥ इन्द्रियजयस्य मूलं विनयः ॥ ५ ॥ विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा ॥ ६ ॥ वृद्धसेवाया विज्ञानम् ॥ ७ ॥ विज्ञानेनात्मानं सम्पादयेत् ॥ ८ ॥ सम्पादितात्मा जितात्मा भवति ॥ ९ ॥ जितात्मा सर्वार्थैः संयुज्येत ॥ १० ॥

सुख का मूल धर्म, धर्म का मूल अर्थ, अर्थ का मूल राज्य, राज्य का मूल इन्द्रियों का जीतना, इन्द्रिय जीतने का मूल विनय, विनय का मूल वृद्धों की सेवा, वृद्धों की सेवा का मूल विज्ञान है। इसलिए विज्ञान से अपने को सम्पन्न करे। क्योंकि जो इन्द्रियजयी मनुष्य विज्ञान का सम्पादन कर लेता है, वही जितात्मा है। जितात्मा अपनी सभी कामनाएँ पूर्ण कर लेता है ॥१-१०॥

अर्थसम्पत्प्रकृतिसम्पदं करोति ॥ ११ ॥ प्रकृतिसम्पदा ह्यनायकमपि राज्यं नीयते ॥ १२ ॥ प्रकृतिकोपः सर्वकोपेभ्यो गरीयान् ॥ १३ ॥ अविनीतस्वामिलाभादस्वामिलाभः श्रेयान् ॥ १४ ॥ सम्पाद्यात्मानमन्विच्छेत्सहायवान् ॥ १५ ॥ नासहायस्य मन्त्रनिश्चयः ॥ १६ ॥ नैकं चक्रं परिभ्रमयति ॥ १७ ॥ सहायः समसुखदुःखः ॥ १८ ॥ मानी प्रतिमानिनमात्मनि द्वितीयं मन्त्रमुत्पादयेत् ॥ १९ ॥ अविनीतं स्नेहमात्रेण न मन्त्रे कुर्वीत ॥ २० ॥

धन-सम्पत्ति से प्रकृति-सम्पत्ति अर्थात् अमात्य, सेना और मित्र रूपी सम्पत्ति प्राप्त होती है। प्रकृति-सम्पत्ति से सम्पन्न राज्य राजा के बिना

भी चल सकता है। प्रकृतिवर्ग का कोप सभी कोपों से भीषण होता है। अविनीत स्वामी की अपेक्षा तो स्वामी का न होना ही श्रेष्ठ है। स्वयं सुयोग्य और शक्ति-सम्पन्न होजाय तब तब सहायकों को एकत्र करने की इच्छा करे। क्योंकि सहायकों के विना मंत्रणा नहीं हो सकती। एक पहिये से गाड़ी न चलने के समान ही अकेले राजा से राज्य नहीं चल सकता। सुख-दुःख में समान रूप से साथ रहने वाला ही यथार्थ सहायक है। मनस्वी पुरुष अपने जंसे मनस्वी को ही मत्री बनावे। केवल स्नेहवश ही किसी अविनीत अर्थात् उद्दण्ड को मंत्री न बना ले ॥१९-२०॥

श्रुतवन्तमुपधाशुद्धं मंत्रिणं कुर्वीत ॥ २१ ॥ मंत्रमूलाः सर्वारम्भाः ॥ २२ ॥ मंत्ररक्षणे कार्यसिद्धिर्भवति ॥ २३ ॥ मत्रविस्रावी कार्यं नाशयति ॥ २४ ॥ प्रमादाद्द्विषितां वशमुपयास्यति ॥२५॥ सर्वद्वारेभ्यो मन्त्रो रक्षितव्यः ॥ २६ ॥ मन्त्रसम्पदा राज्यं वर्धते ॥ २७ ॥ श्रेष्ठतमां मंत्रगुप्तिमाहुः ॥ २८ ॥ कार्यान्धस्य प्रदोपो मन्त्रः ॥ २९ ॥ मंत्रचक्षुणा परच्छिद्राण्यवलोकयन्ति ॥ ३० ॥

शास्त्रज्ञाता और पवित्र आचरण वाले को ही मंत्रीपद पर नियुक्त करे। सभी कार्यारम्भों का मूल मंत्र अर्थात् मंत्रणा है। मंत्र की रक्षा अर्थात् बात न खुलने से ही कार्यसिद्धि होती है। अपने मंत्र का भेद खोलने वाला स्वयं ही अपने को नष्ट कर लेता है। मंत्रणा में प्रमाद करने वाला शत्रु के आधीन हो जाता है। इसलिए मंत्रणा की सभी प्रकार से रक्षा करे। मत्र सम्पत्ति से ही राज्य की वृद्धि होती है। मंत्र को गुप्त रखना सर्वोत्तम कार्य है। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के विषय में अंध अर्थात् विमूढ़ होजाने पर मंत्र ही दीपक के समान प्रकाश दिखाता है। मंत्र रूपी नेत्रों से ही शत्रु के छिद्र देखे जाते हैं ॥२१-३०॥

मत्रकाले न मत्सरः कर्तव्यः ॥३१॥ त्रयाणामेकवाक्ये सम्प्रत्ययः ॥ ३२ ॥ कार्याकार्यतत्वार्थदर्शिनो मंत्रिण. ॥ ३३ ॥ षट्कर्णाद्भिद्यते मन्त्रः ॥ ३४ ॥ आपत्सु स्नेहसंयुक्तं मित्रम् ॥ ३५ ॥ मित्रसंग्रहणे बलं संपद्यते ॥ ३६॥ बलवानलब्धलाभे प्रयतते ॥ ३७ ॥ अलब्धलाभो

नालसस्य ॥ ३८ ॥ अलसस्य लब्धमपि रक्षितुं न शक्यते ॥ ३९॥ स चालसस्य रक्षितं विवर्धते ॥ ४० ॥ न भृत्यान्प्रेषयति ॥४१॥

मंत्रणा के विषय में किसी से द्वेष न करे अर्थात् उचित परामर्श को द्वेष वश अमान्य न करे। तीन मंत्रियों का समान मत हो तो उसके अनुसार कार्य करे। क्योंकि कार्य और अकार्य के तत्वदर्शी मन्त्रिगण ही होते हैं। छः कानों में गया हुआ [अर्थात् तीसरे व्यक्ति पर प्रकट हुआ] मन्त्र (भेद) खुल जाता है। आपत्काल में साथ दे वह मित्र है। मित्रों के संग्रह करने अर्थात् मित्र बढ़ाने से बल बढ़ता है। बलवान होकर अलभ्य वस्तु को प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया जा सकता है। आलसी को अलभ्य का लाभ कभी नहीं हो सकता। आलसी मनुष्य अपने पास की सम्पत्ति की रक्षा करने में भी समर्थ नहीं होता। आलसी के पास रक्षित धन बढ़ नहीं सकता। आलसी मनुष्य अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण भी नहीं कर पाता ॥३१-४१॥

अलब्धलाभादिचतुष्टयं राज्यतंतम् ॥ ४२ ॥ राज्यतंत्रायत्तं नोतिशास्त्रम् ॥ ४३ ॥ राज्यतंत्रेष्वायत्तौ तंत्रावापौ ॥ ४४ ॥ तन्त्र स्वविषयकृत्येष्वायत्तम् ॥ ४५ ॥ आवापो मण्डलनिविष्टः ॥ ४६ ॥ सन्धिविग्रहयोर्निर्मण्डलः ॥ ४७ ॥ नीति शास्त्रानुगो राजा ॥४८॥ अनन्तरप्रकृतिः शत्रुः ॥ ४९ ॥ एकान्तरितं मित्रमिष्यते ॥ ५० ॥

अलब्ध की प्राप्ति, लब्ध धन की रक्षा, रक्षित धन की वृद्धि और बढ़े हुए धन का भृत्यों या परिवारीजनों में वितरण, यही चार कार्य राजतन्त्र के मूल हैं। राजतन्त्र ही नीतिशास्त्र का संचालन करता है। राजतन्त्र से ही अर्थ की रक्षा और नीति का बीज बोया जाता है। राजतन्त्र ही अपने देश के कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निर्णय कर सकता है। राष्ट्र मण्डल में रह कर ही राजा को नीति रूपी बीज बोना चाहिए। राष्ट्र मण्डल ही सन्धि-विग्रह का कारण होता है। नीतिशास्त्र के अनुसार कार्य करने वाला राजा होता है। अपने देश की सीमा से भिड़ी

हुई सीमा वाला राजा सहज शत्रु होता है। उस एक राज्य के पश्चात् वाले राज्य का राजा स्वाभाविक मित्र हो जाता है ॥४२-५०॥

हेतुतः शत्रुमित्रे भविष्यतः ॥ ५१ ॥ हीयमानः सन्धि कुर्वीत ॥ ५२ ॥ तेजो हि सन्धानहेतुस्तदर्थानाम् ॥ ५३ ॥ नातप्तलोहो लोहेन संधीयते ॥ ५४ ॥ बलवान् हीनेन विगृह्णीयात् ॥ ५५ ॥ न ज्यायसा समेन वा ॥ ५६ ॥ गजपादयुद्धमिव बलवद्विग्रहः ॥५७॥ आमपात्रमामेन सह विनश्यति ॥ ५८ ॥ अरिप्रयत्नमभिसमीक्षेत ॥ ५९ ॥ सन्धायैकतो वा ॥ ६० ॥

शत्रु या मित्र बनाने का कोई कारण होता है। क्षीण बल वाला राजा किसी के साथ सन्धि कर ले। तेज अर्थात् प्रभाव से ही कार्य सिद्ध होते हैं। गर्म लोहे से ठन्डा लोहा नहीं जुड़ सकता। बली राजा अपने से न्यून बल वाले से ही युद्ध करे। अपने से अधिक या समान बल वाले से युद्ध न करे। बलवान से लड़ाई लड़ना वैसा ही है जैसे कि कोई पैदल मनुष्य किसी गजपाद अर्थात् हाथी पर चढ़े हुए के साथ युद्ध करे। कच्चे घड़े के कच्चे घड़े से ही टकरा कर टूट जाने के समान, एक निर्बल राजा दूसरे निर्बल राजा से टकरा कर अपना और उसका—दोनों का ही विनाश कर लेता है। अपने शत्रु के प्रयासों (गति-विधियों) पर निरंतर दृष्टि रखे। यदि अनेक शत्रु हों तो, उनमें से किसी एक से मेल कर ले ॥५१-६०॥

अमित्रविरोधादात्मरक्षामावसेत् ॥ ६१ ॥ शक्तिहीनो बलवन्तमाश्रयेत् ॥ ६२ ॥ दुर्बलाश्रयो दुःखमावहति ॥ ६३ ॥ अग्निवद्राजानमाश्रयेत् ॥ ६४ ॥ राज्ञः प्रतिकूलं नाचरेत् ॥ ६५ ॥ उद्धतवेषधरो न भवेत् ॥ ६६ ॥ न देवचरितं चरेत् ॥ ६७ ॥ द्वयोरपीर्ष्यतो द्वैधीभावं कुर्वीत ॥ ६८ ॥ न व्यसनपरस्य कार्यावाप्तिः ॥ ६९ ॥ इन्द्रियवशवर्ती चतुरंगवानपि विनश्यति ॥ ७० ॥

शत्रु कृत अपकार से अपनी रक्षा करता रहे। बलहीन हो तो किसी बलवान का आश्रय ले ले। दुर्बल का आश्रय लेना दुःख का कारण होता

है। अग्नि के समान ही राजा का आश्रय ले अर्थात् अग्नि से बच कर उससे सम्पर्क रखते हैं, वैसे ही राजा से बचता हुआ ही सम्पर्क रखे। राजा के विरुद्ध कोई कार्य न करे। उद्धतवेश में राजा के सामने न जाय। देवताओं के चरित्र के समान आचरण करे। दो शत्रुओं में से एक से कृत्रिम मित्रता करके दूसरे से युद्ध करे। व्यसनों में लिप्त मनुष्य की कार्यसिद्धि नहीं होती। इन्द्रियों के वशीभूत हुआ पुरुष चतुरंगिणी सेना से सम्पन्न रहता हुआ भी नाश को प्राप्त होता है ॥६१-७०॥

नास्ति कार्यं द्यूतप्रवृत्तस्य ॥ ७१ ॥ मृगयापरस्य धर्मार्थौ विनश्यतः ॥ ७२ ॥ अर्थेषणा न व्यसनेषु गण्यते ॥ ७३ । न कामासक्तस्य कार्यानुष्ठानम् ॥ ७४ ॥ अग्निदाहादपि विशिष्टं वाक्पारुष्यम् ॥ ७५ ॥ दण्डपारुष्यात्सर्वजनद्वेष्यो भवति ॥ ७६ ॥ अर्थतोषिणं श्रीः परित्यजति ॥ ७७ ॥ अमित्रो दण्डनीत्यामायत्तः ॥७८॥ दण्डनीतिमधितिष्ठन्। प्रजाः संरक्षति ॥ ७९ ॥ दण्डः सम्पदा योजयति ॥ ८० ॥

जुआरी का कोई कार्य नहीं हो पाता। मृगया-परस्त शिकारी के धर्म और अर्थ दोनों का नाश होता है। धन की आकांक्षा व्यसन में सम्मिलित नहीं है। कामासक्त पुरुष कार्यारम्भ के अयोग्य होता है। वाक्पारुष्य अर्थात् वचनों की कठोरता अग्नि के जलने से भी अधिक दाहक होती है। दण्ड की कठोरता के कारण सभी द्वेषी होजाते हैं। धन से जो संतुष्ट हो जाता है, उसे लक्ष्मी सदा के लिए छोड़ देती है। दण्डनीति से शत्रु को वश में किया जाता है। दण्ड के बल पर ही राजा प्रजा की रक्षा करता है। दण्ड अर्थात् सेना से ही राजा सम्पत्ति से सम्पन्न होता है ॥७१-८०॥

दण्डा भावे मन्त्रिवर्गाभावः ॥ ८१ ॥ न दण्डादकार्याणि कुर्वन्ति ॥ ८२ ॥ दण्डनीत्यामायत्तमात्मरक्षणम् ॥ ८३ ॥ आत्मनि रक्षिते सर्वं रक्षितं भवति ॥ ८४ ॥ आत्मायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ८५ ॥ दण्डो हि विज्ञाने प्रणीयते ॥ ८६ ॥ दुर्बलोऽपि राजा

नावमन्तव्यः ॥ ८७ ॥ नास्त्यग्नेदौर्बलम् ॥ ८८ ॥ दण्डे प्रतीयते वृत्तिः ॥ ८९ ॥ वृत्तिमूलमर्थलाभः ॥ ९० ॥

सेना के अभाव वाले राजा क पास अमात्य वर्ग का भी अभाव रहता है। सेना होने पर लोग अकार्यों को नहीं कर पाते। दण्डनीति से ही राजा आत्मरक्षा कर पाता है। राजा की आत्मरक्षा में सभी की रक्षा निहित है। अपनी वृद्धि और विनाश अपने ही ऊपर निर्भर करते हैं। दण्ड़नीति का प्रयोग विचार पूर्वक ही करे। राजा दुर्बल हो तो भी उसका अपमान न करे। क्योंकि अग्नि कभी दुर्बल नहीं होती। सम्पूर्ण व्यवहार राजदण्ड पर ही आधारित हैं। सद्वृत्ति से ही धन का लाभ होता है ॥८१-९०॥

अर्थमूलौ धर्मकामौ ॥ ९१ ॥ अर्थ मूलं कायम् ॥ ९२ ॥ यदल्प-प्रयत्नात्कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ९३ ॥ उपायपूर्वं न दुष्करं स्यात् ॥ ९४ ॥ अनुपायपूर्वं कार्यं कृतमपि विनश्यति ॥ ९५ ॥ कार्या-र्थिनामुपाय एव सहायः ॥ ९६ ॥ कार्यं पुरुषकारेण लक्ष्यं सम्पद्यते ॥ ९७ ॥ पुरुषकारमनुवर्तते दैवम् ॥ ९८ ॥ दैव विनाऽतिप्रयत्नं करोति यत्तद्विफलम् ॥ ९९ ॥

धर्म और काम का मूल धन ही है। धन से ही सब कार्य होते हैं। धन हो तो थोड़े से प्रयत्न से ही कार्य बन जाता है। प्रयत्न पूर्वक कार्य करने से दुष्कर कुछ भी नहीं है। बिना उपाय के कार्य नष्ट होजाता है। कार्य-सिद्धि की इच्छा वालों को उपाय की ही सहायता लेनी चाहिए। पुरुषार्थं द्वारा किया हुआ कार्य अवश्य पूरा होजाता है। दैव अर्थात् भाग्य भी पुरुषार्थी का ही साथ देता है। किन्तु दैव की विपरीतता हो तो प्रयत्न भी निष्फल हो जाता है ॥९1-९९॥

असमाहितस्य वृत्तिर्न विद्यते ॥ १०० ॥ पूर्वं निश्चित्य पश्चा-त्कार्यमारभेत् ॥ १०१ ॥ कार्यान्तरे दीर्घसूत्रता न कर्तव्या ॥१०२॥ चलचित्तस्य कार्यावाप्तिः ॥ १०३ ॥ हस्तगतावमानात्कार्यव्यति-क्रमो भवति ॥१०४॥ दोषवर्जितानि कार्याणि दुर्लभानि ॥१०५॥

दुरनुबन्धं कार्यं नारभेत ॥ १०६ ॥ कालवित्कार्यं साधयेद् ॥१०७॥ कालातिक्रमात्काल एव फलं पिबति ।१०८। क्षणं ब्रति कालविक्षेपं न कुर्यात्सर्वंकृत्येषु।१०९। देशकालविभागौज्ञात्वा कार्यमारभेत।११०।

असावधान चित्त से कोई व्यवहार ठीक प्रकार नहीं चल पाता। पूर्व निश्चित कार्य का ही आरम्भ करे अर्थात् जो भी करे उसे पहिले भले प्रकार सोचले। कार्य आरम्भ करके फिर आलस्य न करे। चंचल चित्त वाले का कोई कार्य सिद्ध नहीं होता। हस्तगत कार्य को प्रमादवश छोड़ देने से कार्य नहीं बन सकता। क्योंकि सर्वथा निर्दोष कार्य दुर्लभ होता है। अर्थात् सब कार्यों में कोई न कोई वाधा आती ही है। अत्यन्त कठिन कार्यों का आरम्भ न करे। समय की अनुकूलता से कार्य करने पर सफलता मिलती है। किन्तु समय की अनुकूलता न देखने वाले के कार्य के फल रूपी रस को प्रतिकूल समय ही पी जाता है। इसलिए किसी भी कार्य में समय का अतिक्रमण नहीं होने देना चाहिए। इसलिए देश-काल का विभाग जानकर ही कार्यारम्भ करे ॥१००-११० ॥

दैवहीन कार्यं सुसाध्यमपि दुःसाध्यं भवति ॥ १११ ॥ नीतिज्ञो देशकालौ परीक्षेत ॥ ११२ ॥ परीक्ष्यकारिणि श्रीश्चिर तिष्ठति ॥ ११३ ॥ सर्वाश्च सम्पदः सर्वोपायेन परिग्रहेत् ॥ ११४ ॥ भाग्यवन्तमपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥ ११५ ॥ ज्ञानानुमानैश्च परीक्षा कर्तव्या ॥ ११६ ॥ यो यस्मिन् कर्मणि कुशलस्तं तस्मिन्नेव योजयेत् ॥ ११७ ॥ दुःसाध्यमपि सुसाध्यं करोत्युपायज्ञः ॥ ११८ ॥ अज्ञानिना कृतमपि न बहु मन्तव्यम् ॥ ११९ ॥ यादृच्छिकत्वात्कृमिरपि रूपान्तराणि करोति ॥ १२० ॥

भाग्य साथ न दे तो सुखसाध्य कार्य भी दुःसाध्य बन जाता है। नीति के ज्ञाता राजा को देश-काल के प्रति सतर्क रहना चाहिए। क्योंकि देश-काल को देख कर कार्य करने वाले के पास ही लक्ष्मी चिरकाल तक टिक सकती है। सब प्रकार की सम्पत्तियों को प्रयत्नों से संचित करे। महान भाग्यशाली भी बिना सोचे कार्य करे तो लक्ष्मी उसका

परित्याग करके चली जाती है। सभी कार्यों की परीक्षा प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुमान से करे। जो जिस कार्य में निपुण हो, उसे उसी कार्य पर नियुक्त करे। उपायों का ज्ञाता दुःसाध्य को भी सुसाध्य बनाने में समर्थ होता है। अज्ञानी के द्वारा किये गये काय को अधिक मान्यता न दे। कभी-कभी सामान्य कीट भी यदृच्छा से ही अनेक रूप बदल लेता है ॥१११-१२०॥

सिद्धस्यैव कार्यस्य प्रकाशनं कर्तव्यम् ॥ १२१ ॥ ज्ञानवतामपि दैवमानुषदोषात्कार्याणि दुष्यन्ति ॥ १२२ ॥ दैवं शान्तिकर्मणा प्रतिषेद्धव्यम् ॥ १२३ ॥ मानुषीं कार्यविपत्तिं कौशलेन विनिवारयेत् ॥ १२४ ॥ कार्यविपत्तौ दोषान् वर्णयन्ति बालिशाः ॥१२५॥ कार्यार्थिना दाक्षिण्य न कर्तव्यम् ॥१२६॥ क्षीरार्थी वत्सो मातुरूधः प्रतिहन्ति ।१२७। अप्रत्नात्कार्यविपत्तिर्भवेत् ।१२८। न दैवप्रमाणानां कार्यसिद्धिः।१२९। कार्यबाह्यो न पोषयत्याश्रितान्।१३०।

कार्य के सिद्ध होने पर ही उसका प्रकाशन करे। किसी प्रकार के दोष अथवा दैव की प्रतिकूलता होने पर सिद्धहस्त एवं ज्ञानी पुरुषों के कार्य भी बिगड़ जाते हैं। दैव विपरीत हो तो शान्तिकर्मों द्वारा उसे प्रसन्न करे। कार्य में उपस्थित हुए विघ्न का कौशल से निवारण करे। कार्य बिगड़ने पर उसके दोषों का वर्णन (पश्चात्ताप) मूर्ख ही किया करते हैं। अपने कार्य को सिद्ध करने की आकांक्षा हो तो अधिक भोलेपन से कार्य न ले। क्योंकि दूध पीने की इच्छा वाला बछड़ा भी माता के अयन मे आघात करता है। प्रयत्न किये बिना कार्य बिगड़ जाते हैं। दैव अर्थात् भाग्य के भरोसे रहने से कार्यसिद्धि नहीं होती। कार्य के बिगड़ने पर राजा अपने आश्रितों के पोषण में भी समर्थ नहीं रहता ॥१२१-१३०॥

यः कार्यं न पश्यति सोऽन्धः ॥ १३१ ॥ प्रत्यक्षपरोक्षानुमानैः कार्याणि परीक्षेत ॥ १३२ ॥ अपरीक्ष्यकारिणं श्रीः परित्यजति ॥ १३३ ॥ परीक्ष्य तार्या विपत्तिः ॥ १३४ ॥ स्वशक्तिं ज्ञात्वा

कार्यमारभेत ॥ १३५ ॥ स्वजनं तर्पयित्वा यः शेषभोजी सोऽमृतभोजी ॥१३६॥ सर्वानुष्ठानादायमुखानि वर्द्धन्ते ॥ १३७ ॥ नास्ति भीरोः कार्यचिन्ता ॥ १३८ ॥ स्वामिनः शीलं ज्ञात्वा कार्यं साधयेत् ॥१३९॥ धेनोः शीलज्ञः क्षीरं भुंक्ते ॥ १४० ॥

अपने कार्य की ठीक प्रकार देखभाल न करने वाला मनुष्य अन्धे के ही समान है। प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमान के प्रमाण से अपने कार्यों की परीक्षा करनी चाहिए। बिना विचारे कार्य करने वाले को लक्ष्मी छोड़ देती है। विपत्तियों से पार होने के लिए सोच-विचार से कार्य ले। अपनी शक्ति के अनुसार ही कार्य का आरम्भ करे। स्वजनों को तृप्त करके ही भोजन करने वाला सुधामय भोजन करता है। विभिन्न उपयोगी कार्यों का आरम्भ करने से आय-वृद्धि होती है। परिश्रम से भय मानने वालों को कार्य की चिन्ता नहीं होती। अपने स्वामी के स्वभाव को जान कर, उसी के अनुसार कार्य-साधन करे। जो गौ के स्वभाव को जानता है, वही दुग्धपान कर सकता है ॥१३१-१४०॥

क्षुद्रे गुह्यप्रकाशनमात्मवान्न कुर्यात् ॥ १४१ ॥ आश्रितैरप्यवमन्यते मृदुस्वभावः ॥ १४२ ॥ तीक्ष्णदण्डः सर्वैरुद्वेजनीयो भवति यथार्हदण्डकारी स्यात् ॥ १४३ ॥ अल्पसारं श्रुतवन्तमपि न बहु मन्यते लोकः ॥ १४४ ॥ अतिभारः पुरुषमवसादयति ॥ १४५ ॥ यः संसदि परदोषं शंसति स स्वदोषं प्रख्यापयति ॥ १४६ ॥ आत्मानमेव नाशयत्यनात्मवतां कोपः ॥ १४७ ॥ नास्त्यप्राप्यं सत्यवताम् ॥ १४८ ॥ साहसेन न कार्यसिद्धिर्भवति ॥ १४९ ॥ व्यसनार्तो विस्मरत्यप्रवेशेन ॥ १५० ॥

आत्मवान पुरुष किसी क्षुद्र व्यक्ति के समक्ष अपनी गोपनीय बात न कहे। अधिक कोमल स्वभाव न रखने से आश्रित भी अपमान कर बैठते हैं। अति तीक्ष्ण दड देने वाले राजा के प्रति सभी उद्विग्न रहते हैं। इसलिए राजा यथोचित दण्ड देने वाला ही होना चाहिए।

शक्तिहीन शास्त्रज्ञ भी लोक में सम्मान प्राप्त नहीं करता। अत्यधिक भार पुरुष में अवसाद उत्पन्न करता है। संसद अर्थात् समाज में दूसरों की निन्दा करने वाला अपने ही दोष कथन करता है। जो स्वयं पर अधिकार नहीं रखता, वह क्रोध करके अपने को ही विनष्ट कर लेता है। सत्यपालकों के लिए अप्राप्य कुछ भी नहीं होता। केवल साहस से ही कार्यसिद्धि नहीं होती। दुःख के नष्ट हो जाने पर दुःखी पुरुष दुःख को भूल जाता है ॥१४१-१५०॥

नास्त्यनन्तरायः कालविक्षेपे ॥ १५१ ॥ असंशयविनाशात्संशयः श्रेयान् ॥ १५२ ॥ अपरधनानि विक्षेप्तुः केवलं स्वार्थम् ॥ १५३ ॥ दानं धर्मः ॥ १५५ ॥ नार्थागतोऽर्थवद्विपरीतोऽनर्थभावः ॥ १५५ ॥ यो धर्मार्थो न विवर्धयति स कामः ॥ १५६ ॥ तद्विपरीतोऽनर्थसेवी ॥ १५७ ॥ ऋजुस्वभावपरो जनेषु दुर्लभः ॥१५८॥ अवमानेनागतमैश्वर्यमवमन्यते साधुः ॥ १५६ ॥ बहूनपि गुणानेकदोषो ग्रसति । १६० ।

अवसर चूकने पर कार्य में विघ्न होना स्वाभाविक है। जिस कार्य के करने में विनाश निश्चित प्रतीत हो और जिस कार्य में विनाश संदिग्ध हो तो उन दोनों में संदिग्ध विनाश वाला कार्य ही करे। पराये धन को धरोहर रखने में केवल स्वार्थ ही प्रयोजन होता है। दान ही धर्म है। वणिक् वृत्ति से किया गया दान महत्व युक्त नहीं होता, किन्तु दान न देना उससे भी अधिक अनर्थ समझा जाता है। जिससे धर्म और अर्थ की वृद्धि न हो वह 'काम' है। इसलिए धर्म और अर्थ को नष्ट करने वाले काम का सेवन करने वाला मनुष्य अनर्थ का ही सेवन करता है। मृदु स्वभाव वाले मनुष्य दुर्लभ होते हैं। मानी पुरुष अपमान पूर्वक प्राप्त ऐश्वर्य को ठुकरा देते हैं। मनुष्य के बहुत-से गुणों को केवल एक ही दोष नष्ट कर डालता है ॥१५१-१६०॥

महात्मना परेण साहसं न कर्तव्यम् ॥ १६१ ॥ कदाचिदपि चारित्रं न लंघयेत् ॥ १६२ ॥ क्षुधार्तो न तृणं चरति सिंह ॥१६३॥

प्राणदपि प्रत्ययो रक्षितव्यः ॥ १६४ ॥ पिशुनः श्रोता पुत्रदारैरपि त्यज्यते ॥ १६५ ॥ बालादप्यर्थं जातं ॥ १६६ ॥ सत्यमप्यश्रद्धेयं न वदेत् ॥ १६७ ॥ नाल्पदोषाद्बहूगुणास्त्यज्यन्ते ॥ १६८ ॥ विपश्चित्स्वपि सुलभा दोषाः ॥ १६९ ॥ नास्ति रत्नमखंडितम् ॥१७०॥

महान् पुरुष को शत्रु से संघर्ष में नहीं पड़ना चाहिए। मनुष्य को सदाचरण का उल्लंघन कभी न करना चाहिए। भूखा होने पर भी सिंह घास कभी नहीं खाता। प्राण देकर भी अपनी साख बनाये रखे। चुगलखोर या चुगली सुनकर उस पर विश्वास करने वाले को, उसके स्त्री-पुत्र भी छोड़ देते हैं। अपने मतलब की बात बालक द्वारा कही गई हो तो भी मान ले। सत्य बात भी विश्वास करने के योग्य न हो तो उसे न कहे। अल्पदोष के कारण अधिक गुणी का परित्याग न करे। विद्वानों में भी दोष सुलभ हो सकते हैं। रत्न भी छिद्र-रहित नहीं होता ॥१६१-१७०॥

मर्यादातीतं न कदाचिदपि विश्वसेत् ॥ ७१ ॥ अप्रिये कृतं प्रियमपि द्वेष्यं भवति ॥ १७२ ॥ नमन्त्यपि तुलाकोटिः कूपोदकक्षयं करोति ॥ १७३ ॥ सतां मतं नातिक्रमेत् ॥ १७४ ॥ गुणवदाश्रयान्निर्गुणोऽपि गुणो भवति ॥ १७५ ॥ क्षीराश्रितं जलं क्षीरमेव भवति ॥ १७६ ॥ मृत्पिण्डोऽपि पाटलिगन्धमुत्पादयति ॥ १७७ ॥ रजतं कनकसंगात्कनकं भवति ॥ १७८ ॥ उपकर्तयंपकर्तुमिच्छत्यबुधः ॥ १७९ ॥ न पापकर्मणामाक्रोशभयम् ॥ १८० ॥

सीमा से अधिक विश्वास किसी पर भी न करे। अप्रिय मनुष्य के लिए प्रिय कार्य करना भी द्वेष का कारण हो सकता है। ढेंकुली की झुकी हुई बल्ली भी कुएं के जल को निकाल देती है। श्रेष्ठ या सज्जन पुरुषों के विचार का अतिक्रमण न करे। गुणवान के आश्रय में गुणहीन भी गुणी हो जाता है। दूध में मिला हुआ जल दूध ही हो जाता है। मिट्टी का ढेला भी पाटलि-पुष्प की सुगन्धि उत्पन्न कर सकता है। सुवर्ण के सङ्ग से चाँदी भी सुवर्ण बन जाती है। दुष्ट मनुष्य उपकार करने

वाले का भी अपकार कर बैठता है। पाप करने वाला निन्दा से भय-भीत नहीं होता ॥१७१-१८०॥

उत्साहवतां शत्रवोऽपि वशीभवन्ति ॥ १८१ ॥ विक्रमधना राजानः ॥ १८२ ॥ नास्त्यलसस्यैहिकायुष्मिकम् ॥ १८३ ॥ निरुत्साहाद्दैवं पतति ॥ १८४ ॥ मत्स्यार्थीव जलमुपयुज्यार्थं गृह्णीयात् ॥ १८५ ॥ अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ १८६ ॥ विषं विषमेव सर्वकालम् ॥ १८७ ॥ अर्थसमादाने वैरिणां संग एव न कर्तव्यः ॥ १८८ ॥ अर्थसिद्धौ वैरिणं न विश्वसेत् ॥ १८९ ॥ अर्थाधीन एव नियतसम्बन्धः ॥ १९० ॥

उत्साह युक्त व्यक्तियों के शत्रु भी वश में हो जाते हैं। राजाओं का धन पराक्रम ही है। आलसी मनुष्य का इहलोक-परलोक कुछ भी नहीं बनता। उत्साहहीन व्यक्ति का साथ दैव अर्थात् भाग्य भी नहीं देता। मछेरे द्वारा जल में गोता लगाने के समान ही अपने कार्य की सिद्धि के लिए परिश्रम रूपी जल गोता लगावे। अविश्वस्त पर कभी विश्वास न करे। क्योंकि विष तो सदैव विष ही रहेगा। धन के संग्रह करने के कार्य में शत्रु का सङ्ग न करे। अर्थसिद्धि के विषय में वैरी का विश्वास नहीं करना चाहिए। निश्चित सम्बन्ध धन के ही अधीन रहते हैं ॥१८१-१९०॥

शत्रोरपि सुतः सखा रक्षितव्यः ॥ १९१ ॥ यावच्छत्रोश्छिद्रं पश्यति तावद्धस्तेन स्कन्धेन वा बाह्यः ॥ १९२ ॥ शत्रुं छिद्रे प्रहरेत् ॥ १९३ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥ १९४ ॥ छिद्रप्रहारिणः शत्रवः ॥ १९५ ॥ हस्तगतमपि शत्रुं न विश्वसेत् ॥ १९६ ॥ स्वजनस्य दुर्वृत्तं निवारयेत् ॥ १९७ ॥ स्वजनावमानोऽपि मनस्विनां दुःखमावहति ॥ १९८ ॥ एकाङ्गदोषः पुरुषमवसादयति ॥ १९९ ॥ शत्रुं जयति सुवृत्तता ॥ २०० ॥

यदि शत्रु का पुत्र भी मित्र के समान व्यवहार करे तो उसकी रक्षा मित्र के ही समान करे। शत्रु का छिद्र दिखाई न देने तक शत्रु को हाथ

या कन्धे पर चढ़ाये रखे। किन्तु छिद्र देखते ही शत्रु पर प्रहार कर दे। अपने छिद्र कभी प्रकट न होने दे। क्योंकि छिद्र देखते ही शत्रु प्रहार कर देगा। अपने हाथ में आये हुए शत्रु पर भी विश्वास न करे। स्वजनों की दुर्वृत्ति का निवारण करे। मनस्वियों को स्वजन का भी अपमान दुःखित करता है। एक सामान्य सा दोष भी मनुष्य को नष्ट करने के लिए काफी है: सदाचरण से ही शत्रु पर विजय प्राप्त होती है॥१९१-२००॥

निकृतिप्रिया नीचाः ॥ २०१ ॥ नीचस्य मतिर्न दातव्या ॥ २०२ ॥ तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ॥ २०३ ॥ सुपूजितोऽपि दुर्जनः पीडयत्येव ॥ २०४ ॥ चन्दनादीनपि दावोऽग्निर्दहत्येव ॥ २०५ ॥ कदापि पुरुषं नावमन्येत ॥ २०६ ॥ क्षन्तव्यमिति पुरुषं न बाधेत ॥ २०७ ॥ भर्त्राधिकं रहस्युक्तं वक्तुमिच्छन्त्यबुद्धयः ॥ २०८ ॥ अनुरागस्तु फलेन सूच्यते ॥ २०९ ॥ प्रज्ञाफलमैश्वर्यम् ॥ २१० ॥ दातव्यमपि बालिशः परिक्लेशेन दास्यति ॥ २११ ॥ महदैश्वर्यं प्राप्याप्यधृतिमान् विनश्यति ॥ २१२ ॥ नास्त्यधृतेरैहिकामुष्मिकम् ॥२१३॥ न दुर्जनैः सह संसर्गः कर्तव्यः ॥ २१४ ॥ शौण्डहस्तगतं पयोऽप्यवमन्येत ॥ २१५ ॥

नीच पुरुष तिरस्कार और छल करना अच्छा समझते हैं। नीच पुरुषों को परामर्श न दे। उन पर विश्वास न करे। भले प्रकार सत्कार करने पर भी दुर्जन पीड़ित ही करता है। दावाग्नि चन्दनादि शीतल वस्तुओं को भी भस्म कर डालती है। माननीय पुरुष का तिरस्कार कदापि न करे। क्षमा-योग्य व्यक्ति को बाधित न करे। रहस्य की बात एकान्त में कहने पर भी नीच बुद्धि मनुष्य बहुत बढ़ा कर कहते हैं। प्रेम की परीक्षा उसके परिणाम से ही हो सकती है। ऐश्वर्य बुद्धि का ही परिणाम है। मूर्ख देने योग्य वस्तु भी आसानी से नहीं देता। धैर्य-विहीन पुरुष अत्यन्त वैभव प्राप्त करके भी नाश को प्राप्त होजाता है। धैर्य-विहीन मनुष्य इहलोक-परलोक दोनों को ही नष्ट कर डालता है। दुर्जनों

का संग न करे। मद्य-विक्रेता के हाथ में स्थित दूध भी मद्य समझ लिया जाता है ॥२०१-२१५॥

कार्यसङ्कटेष्वर्थव्यवसायिनी बुद्धिः ॥२१६॥ मितभोजनं स्वास्थ्यम् ॥ २१७ ॥ पथ्यमपथ्यं वाऽजीर्णे नाश्नीयात् ॥ २१८ ॥ जीर्णभोजिनं व्याधिर्नोपसर्पति ॥ २१९ ॥ जीर्णशरीरे वर्धमानं व्याधिं नोपेक्षेत ॥ २२० ॥ अजीर्णे भोजनं दुःखम् ॥ २२१ ॥ शत्रोरपि विशिष्यते व्याधिः ॥ २२२ ॥ दानं निधानमनुगामि ॥ २२३ ॥ पटुतरे तृष्णापरे सुलभमतिसन्धानम् ॥ २२४ ॥ तृष्णया मतिश्छाद्यते ॥ २२५ ॥ कार्यबहुत्वे बहुफलमायतिकं कुर्यात् ॥ २२६ ॥ स्वयमेवावस्कन्नं कार्यं निरीक्षेत ॥ २२७ ॥ मूर्खेषु साहसं नियतम् ॥ २२८ ॥ मूर्खेषु विवादो न कर्तव्यः ॥ २२९ ॥ मूर्खेषु मूर्खवत्कथयेत् ॥ २३० ॥

कार्य-संकट उपस्थित होने पर भी कार्य करने वाली बुद्धि श्रेष्ठ होती है। स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए मितभोजी बने। अजीर्ण हो तो पथ्य या अपथ्य कैसा भी भोजन न करे। भोजन पच जाय तो रोग नहीं होते। जीर्ण अर्थात् वृद्धावस्था में शरीर में रोग बढ़ता प्रतीत हो तो उसकी उपेक्षा न करे। अजीर्ण में भोजन करना दुःखदायी होता है। व्याधि शत्रु से भी अधिक घोर होती है। अपना कोश देख कर ही दान करना चाहिए। अधिक तृष्णा वाले व्यक्ति को अपनी ओर कर लेना सरल होता है। क्योंकि सतृष्ण व्यक्ति की बुद्धि तृष्णा से आवृत्त रहती है। अधिक कार्यों के एक साथ उपस्थित होने पर विशेष लाभ की संभावना वाले कार्य को ही करे। शत्रु पर अभियान विषयक कार्य का निरीक्षण राजा स्वयं कर ले। मूर्ख व्यक्ति साहस का कार्य कर बैठते हैं। मूर्ख से विवाद न करे। मूर्ख से मूर्ख के समान ही बात करे ॥२१६-२३०॥

आयसैरायसं छेद्यम् ॥ २३१ ॥ नास्त्यधीमतः सखा ॥२३२॥ धर्मेण धार्यते लोकः ॥ २३३ ॥ प्रेतमपि धर्माधर्मावनुगच्छतः॥ २३४॥ दया धर्मस्य जन्मभूमिः ॥२३५॥ धर्ममूले सत्यदाने ॥२३६॥

धर्मेण जयति लोकान् ॥ २३७ ॥ मृत्युरपि धर्मिष्ठं रक्षति ॥२३८॥ धर्माद्विपरीतं पापं यत्र प्रसज्यते तत्र धर्मावमतिर्महती प्रसज्यते ॥ २३९ ॥ उपस्थितविनाशानां प्रकृत्या कार्येण लक्ष्यते ॥ २४० ॥ आत्मविनाशं सूचयत्यधर्मबुद्धिः ॥ २४१ ॥ पिशुनवादिनो न रहस्यम् ॥ २४२ ॥ पररहस्यं नैव श्रोतव्यम् ॥२४३॥ वल्लभस्य कारकत्वमधर्मयुक्तम् ॥ २४४ ॥ स्वजनेष्वतिक्रमो न कर्तव्यः ॥२४५॥

लोहे को लोहा ही काटता है। बुद्धिविहीन का सखा कोई नहीं होता धर्म ही ससार का धारण कर्त्ता है। मरने पर भी धर्म अधर्म दोनों साथ जाते हैं। धर्म की जन्मभूमि दया है। सत्य और दान ही धर्म के मूल हैं। धर्म से सब लोक जीते जा सकते हैं। धर्मिष्ठ की रक्षा मृत्यु भी करती है। जहाँ पाप रहता है, वहाँ धर्म का भारी अपमान होता है। उपस्थित विनाशों की स्थिति स्वभाव या कार्य से ही जानी जा सकती है। अधर्म बुद्धि आत्म-विनाश को सूचित करती है। चुगलखोर की बात छिपी नहीं रहती। पराये रहस्यों को न सुने। स्वामी का कठोर होना अधर्मयुक्त है। स्वजनों के साथ व्यवहार का उल्लंघन करना उचित नहीं है ॥।२३१-२४५॥

मातापि दुष्टा त्याज्या ॥ २४६ ॥ स्वहस्तोऽपि विषदिग्धश्छेद्यः ॥ २४७ ॥ परोऽपि च हितो बन्धुः ॥ २४८ ॥ कक्षादप्यौषधं गृह्यते ॥ २४९ ॥ नास्ति चोरेषु विश्वासः ॥ २५० ॥ अप्रीतकारेष्वनादरो न कर्तव्यः ॥ २५१ ॥ व्यसनं मनागपि बाधते ॥ २५२ ॥ अमरवदर्थजातमर्जयेत् ॥ २५३ ॥ अर्थवान् सर्वलोकस्य बहुमतः ॥ २५४ ॥ महेन्द्रमप्यर्थहीनं न बहु मन्यते लोकः ॥ २५५ ॥ दारिद्र्यं खलु पुरुषस्य जीवितं मरणम् ॥ २५६ ॥ विरूपोऽर्थवान् सुरूपः ॥ २५७ ॥ अदातारमप्यर्थवन्तमर्थिनो न त्यजन्ति ॥ २५८ ॥ अकुलीनोऽपि धनी कुलीनाद्विशिष्टः ॥ २५९ ॥ नास्त्यवमानभयमनार्यस्य ॥ २६० ॥

दुष्टा माता भी त्याज्य होती है। अपना हाथ भी विषाक्त होगया हो तो उसे काट दे। यदि पराया व्यक्ति भी अपना हित करे तो उसे बन्धु ही माने। शुष्क वन से भी औषधि ग्रहण की जाती है। चोरों पर कदापि विश्वास न करे। जिन कार्यों में विघ्न की सम्भावना न हो, उनका अनादर न करे। स्वल्प क्लेश भी बाधा उत्पन्न कर सकता है। अपने को अमर मान कर अर्थ का अर्जन न करे। धनवान सभी का सम्मानित बन जाता है। धनहीन राजा भी लोक में सम्मान नहीं पाता। दरिद्र का तो जीवन ही मरण के समान है। धनवान कुरूप होने पर भी सुरूप दिखाई देता है। धनिक अदानशील हो तो भी याचक उसका त्याग नहीं करते। धनिक अकुलीन हो तो भी कुलीनों से श्रेष्ठ समझा जाता है। अनार्य अर्थात् उद्दण्ड को अपमान का डर नहीं होता॥ २४६-२६०॥

न चेतनवतां वृत्तिभयम्॥ २६१॥ न जितेन्द्रियाणां विषयभयम्॥ २६२॥ न कृतार्थानां मरणभयम्॥ २६३॥ कस्यचिदर्थं स्वमिव मन्यते साधुः॥ २६४॥ परविभवेष्वादरो न कर्तव्यः॥ २६५॥ परविभवेष्वादरो नाशमूलम्॥ २६६॥ पलालमपि परद्रव्यं न हर्तव्यम्॥ २६७॥ परद्रव्यापहरणमात्मद्रव्यनाशहेतुः॥ २६८॥ न चौर्यात्परं मृत्युपाशः॥ २६९॥ यवागूरपि प्राणधारणं करोति काले॥ २७०॥ न मृतस्यौषधं प्रयोजनम्॥ २७१॥ समकाले स्वयमपि प्रभुत्वस्य प्रयोजनं भवति॥ २७२॥ नीचस्य विद्याः पापकर्मणि योजयन्ति॥ २७३॥ पयःपानमपि विषवर्धनं भुजंगस्य नामृतं स्यात्॥ २७४॥ न हि धान्यसमो ह्यर्थः॥ २७५॥

उद्योगी को वृत्ति की चिन्ता नहीं होती। जितेन्द्रिय को विषयों का भय नहीं रहता। कृतार्थ (पूर्णकाम) को मृत्युभय नहीं होता। साधु पुरुष पराये स्वार्थ को भी अपना स्वार्थ मानते हैं। परायी सम्पत्ति पर मन न चलावे। क्योंकि परधन की लालसा अपने नाश का कारण होजाती

है । पुआल के समान भी परधन न हड़पे । क्योंकि परधन का हड़पना अपने धन को भी नष्ट कर देता है । चोरी से अधिक कोई भी दुःख ऐसे बन्धन में डालने वाला नहीं होता । अवसर पड़ने पर थोड़ी सी यवागू अर्थात् लप्सी भी प्राण रक्षा कर देती है । मृतक को औषधि से कुछ प्रयोजन नहीं रहता । कभी-कभी स्वयं भी प्रभुत्व स्थापन की आवश्यकता हो जाती है । नीच पुरुष की विद्या भी उसे पापकर्म में डाल देती है । दूध पिलाने पर भी सर्प में विष की ही वृद्धि होती है, अमृत की उत्पत्ति नहीं होती । अन्न से अधिक धन नहीं होता ॥२६१-२७५॥

न क्षुधासमः शत्रुः ॥ २७६ ॥ अकृतेर्नियता क्षुत् ॥ २७७ ॥ नास्त्यभक्ष्यं क्षुधितस्य ॥ २७८ ॥ इन्द्रियाणि जरावशं कुर्वन्ति ॥ २७९ ॥ सानुक्रोशं भर्तारमाजीवेत् ॥ २८० ॥ लुब्धसेवी पावकेच्छया खद्योतं धमति ॥ २८१ ॥ विशेषज्ञं स्वामिनमाश्रयेत् ॥ २८२ ॥ पुरुषस्य मैथुनं जरा ॥ २८३ ॥ स्त्रीणाममैथुनं जरा ॥ २८४ ॥ न नीचोत्तमयोर्विवाहः ॥ २८५ ॥ अगम्यागमनादायुर्यशःपुण्यानि क्षीयन्ते ॥ २८६ ॥ नास्त्यहंकारसमः शत्रुः ॥ २८७॥ संसदि शत्रुं न परिक्रोशेत् ॥ २८८ ॥ शत्रुव्यसनं श्रवणसुखम् ॥ २८९ ॥ अधनस्य बुद्धिर्न विद्यते ॥ २९० ॥

भूख के समान कोई शत्रु नहीं । कार्य न करने वाले को भूख से पीड़ित होना ही पड़ता है । भूखे के लिए अभक्ष्य कुछ भी नहीं होता । इन्द्रियाँ ही मनुष्य को वृद्धावस्था के वश में करने वाली हैं । दयाभाव युक्त स्वामी की सेवा करके आजीविका करे । लोभी स्वामी के सेवक की वही दशा होती है जो जुगनू को अग्नि समझ कर फूँक मारने वाली की होती है । विशेषज्ञ स्वामी का आश्रय ग्रहण करे । मैथुन ही पुरुष की वृद्धावस्था का कारण है । अमैथुन स्त्रियों कीवृद्धावस्था में सहायक होता है । नीच और श्रेष्ठ में परस्पर विवाह उचित नहीं । अगम्या के सहवास से आयु, यश और पुण्य का ह्रास होता है । अहंकार से अधिक कोई शत्रु नहीं है । सभा में शत्रु की भी निन्दा नहीं करनी चाहिए ।

शत्रु की विपत्ति सुनने में बहुत सुख देने वाली होती है। धनहीन पुरुष बुद्धि से भी हीन होता है ॥२७६-२९०॥

हितमप्यधनस्य वाक्यं न गृह्यते ॥ २९१ ॥ अधनः स्वभार्ययाऽप्यवमन्यते ॥ २९२ ॥ पुष्पहीनं सहकारमपि नोपासते भ्रमराः ॥ २९३ ॥ विद्याधनमधनानाम् ॥ २९४ ॥ विद्याचौरैरपि न ग्राह्या ॥ २९५ ॥ विद्यया ख्यापिता ख्यातिः ॥ २९६॥ यशःशरीरं न विनश्यति ॥ २९७ ॥ यः परार्थमुपसर्पति स सत्पुरुषः ॥२९८ ॥ इन्द्रियाणां प्रशमं शास्त्रम् ॥ २९९ ॥ अशास्त्रकार्यवृत्तौ शास्त्रांकुश निवारयति ॥ ३०० ॥ नीचस्य विद्या नोपेतव्या ॥ ३०१ ॥ म्लेच्छभाषण न शिक्षेत ॥ ३०२ ॥ म्लेच्छानामपि सुवृत्तं ग्राह्यम् ॥ ३०३ ॥ गुणे न मत्सरः कर्तव्यः ॥ ३०४ ॥ शत्रोरपि सुगुणो ग्राह्यः ॥ ३०५ ।

धनहीन की बात हितकर हो तो भी कोई नहीं सुनता। धनहीन की पत्नी भी उसका तिरस्कार कर बैठती है। बिना पुष्प के आम के वृक्ष के समीप भौंरे नहीं जाया करते। धनहीन का धन विद्या ही है। विद्याधन को चोर भी नहीं चुरा सकता। विद्या से ख्याति प्राप्त होती है। मनुष्य का यश रूपी देह कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। परोपकार के लिए तत्पर रहने वाला ही सत्पुरुष है। शास्त्रानुकूल आचरण ही इन्द्रियों को शमन कर सकता है। अशास्त्री कार्य करने में उद्यत होने पर शास्त्ररूपी अंकुश ही रोक सकता है। नीच की विद्या की भी अवहेलना न करे। म्लेच्छों के समान निकृष्ट बोली बोलना न सीखे। म्लेच्छ में भी कोई श्रेष्ठ गुण हो तो उसे ग्रहण कर ले। पराये गुण से ईर्ष्या न करे। सद्गुण शत्रु से भी ग्रहण कर लेना चाहिए ॥२९१-३०५॥

बिषादप्यमृतं ग्राह्यम् ॥ ३०६ ॥ अवस्थया पुरुषः सम्मान्यते ॥ ३०७ ॥ स्थान एव नराः पूज्यन्ते ॥ ३०८ ॥ आर्यवृत्तमनुतिष्ठेत् ॥ ३०९ ॥ कदापि मर्यादां नातिक्रमेत् ॥ ३१० ॥ नास्त्यर्घः पुरुषरत्नस्य ॥ ३११ ॥ न स्त्रीरत्नसमं रत्नम् ॥ ३१२ ॥ सुदु-

र्लभं रत्नम् ॥ ३१३ ॥ अयशोभयं भयेषु ॥ ३१४ ॥ नास्त्यलसस्य शास्त्रागमः ॥ ३१५ ॥ न स्त्रैणस्य स्वर्गाप्तिर्धर्मकृत्यं च ॥३१६॥ स्त्रियोऽपि स्त्रैणमवमन्यन्ते ॥ ३१७ ॥ न पुष्पार्थी सिंचति शुष्कतरुम् ॥ ३१८ ॥ अद्रव्यप्रयत्नो वालुकाक्कथनादनन्यः ॥ ३१९ ॥ न महाजनहासः कर्तव्यः ॥ ३२० ॥

विष से भी अमृत निकाल ले । मनुष्य की स्थिति के अनुसार ही उसका मान करे । मनुष्य की पूजा उसके अपने स्थान पर ही होती है । आर्य अर्थात् उच्च आचरण का अनुकरण करे । मर्यादा का अतिक्रमण कदापि न करे । पुरुष-रत्न का मूल्य कभी नहीं आँका जा सकता । स्त्री-रत्न के समान कोई रत्न नहीं होता । रत्न की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है । अपयश का भय सब भयों से अधिक होता है । आलसी को शास्त्र की उपलब्धि नहीं होती । स्त्रैण पुरुष को स्वर्ग और धर्म की प्राप्ति नहीं हो पाती । स्त्रैण पुरुष का तिरस्कार स्त्रियाँ भी कर देती हैं । पुष्प की इच्छा वाला व्यक्ति शुष्क वृक्ष को नहीं सींचता । धन के बिना किसी कार्य का आरम्भ करना बालू में से तेल निकालने के समान है । महान पुरुषों का उपहास न करे ॥३०६-३२०॥

कार्यससम्पदं निमित्तानि सूचयन्ति ॥ ३२१ ॥ नक्षत्रादपि निमित्तानि विशेषयन्ति ॥ ३२२ ॥ न त्वरितस्य नक्षत्रपरीक्षा ॥ ३२३ ॥ परिचये दोषा न छाद्यन्ते ॥ ३२४ ॥ स्वयमशुद्धः परानाशंकते ॥ ३२५ ॥ स्वभावो दुरतिक्रमः ॥ ३२६ ॥ अपराधानुरूपो दण्डः ॥ ३२७ ॥ कथानुरूपं प्रतिवचनम् ॥ ३२८ ॥ विभवानुरूपमाभरणम् ॥ ३२९ ॥ कुलानुरूपं वृत्तम् ॥ ३३० ॥ कार्यानुरूपः प्रयत्नः ॥ ३३१ ॥ पात्रानुरूपं दानम् ॥ ३३२ ॥ वयोऽनुरूपो वेषः ॥ ३३३ ॥ स्वाम्यनुकूलो भृत्यः ॥ ३३४ ॥ भर्तृवशवर्तिनी भार्या । ३३५ । गुरुवशानुवर्ती शिष्यः । ३३६ ॥ पितृवशानुवर्ती पुत्रः ॥ ३३७ ॥

कार्य के लक्षण ही उसकी पूर्णता-अपूर्णता को सूचित कर देते हैं। नक्षत्र भी उसकी सिद्धि-असिद्धि का आभास दे देते हैं। किन्तु कार्य-सिद्धि की शीघ्र कामना वाला व्यक्ति नक्षत्रों से भाग्य का परीक्षण नहीं किया करता। अधिक परिचय होने पर दोष नहीं छिपते। अशुद्ध विचार का मनुष्य दूसरों पर भी वैसा होने का सन्देह करता है। स्वभाव का अतिक्रमण करना कठिन होता है। अपराध के अनुरूप ही दण्ड देना उचित है। पूछी हुई बात का अनुरूप उत्तर दे। सम्पत्ति के अनुसार ही अलंकार धारण करे। कुल के अनुरूप ही कार्य करे। कार्य के अनुरूप प्रयत्न करे। पात्र के अनुरूप दान करे। आयु के अनुरूप वेश रखे। सेवक को स्वामी के अनुकूल रहना चाहिए। भार्या वही है जो भर्त्ता के अनुकूल रहे। शिष्य गुरु के अनुकूल रहे। पुत्र को पिता का अनुवर्ती रहना चाहिए ॥३२१ ३३७॥

अत्युपचारः शंकितव्यः ॥ ३३८ ॥ स्वामिनमेवानुवर्तेत ॥ ३३९ ॥ मातृताडितो वत्सो मातरमेवानुरोदिति ॥ ३४० ॥ स्नेहवतः स्वल्पो हि रोषः ॥ ३४१ ॥ आत्मच्छिद्रं न पश्यति परच्छिद्रमेव पश्यति बालिशः ॥ ३४२ ॥ सोपचारः कैतवः ॥ ३४३ ॥ काम्यैर्विशेषैरुपचरणमुपचारः ॥ ३४४ ॥ चिरपरिचितानामत्युपचारः शंकितव्यः ॥ ३४५ ॥ गौर्दुष्करा श्वसहस्रादेकाकिनी श्रेयसी ॥ ३४६ ॥ श्वो मयूराद्य कपोतो वरः ॥ ३४७ ॥ अतिसंगो दोषमुत्पादयति ॥ ३४८ ॥ सर्वं जयत्यक्रोधः ॥ ३४९ ॥ यद्यपकारिणि कोपः कोपे कोप एव कर्तव्यः ॥ ३५० ॥ मतिमत्सु मूर्खमित्रगुरुवल्लभेषु विवादो न कर्तव्यः ॥ ३५१ ॥ नास्त्यपिशाचमैश्वर्यम् ॥ ३५२ ॥ नास्ति धनवतां शुभकर्मसु श्रमः ॥ ३५३ ॥ नास्ति गतिश्रमो यानवताम् ॥ ३५४ ॥ अलौहमयं निगड कलत्रम् ॥ ३५५ ॥

अधिक आदर शंका उत्पन्न करता है। सेवक को स्वामी की आज्ञा में रहना चाहिए। माता द्वारा ताड़ित बालक माता के ही आगे रुदन

करता है। स्नेही पुरुष को रोष थोड़े समय के लिए होता है। मूर्ख अपने दोष न देखता हुआ पराये दोष ही देखता है। विशेष कामना के लिए की जाने वाली सेवा उपचार कही गई है। चिर परिचितों का अधिक उपचार करना भी शंका का कारण होता है। हजारों कुत्तों से एक गौ अधिक होती है। कल प्राप्त होने वाले मयूर से तो आज मिल जाय, वह कबूतर ही श्रेष्ठ है। अत्यन्त आसक्ति से दोष उत्पन्न होते हैं। क्रोध-रहित मनुष्य सब को जीत लेता है। यदि अपकार करने वाले पर क्रोध करना आवश्यक हो तो उसके द्वारा कोप कर लेने के पश्चात् ही कोप करे। बुद्धिमान को मूर्ख, मित्र, गुरु तथा प्रियजनों से विवाद नहीं करना चाहिए। ऐश्वर्य पिशाचत्व से दूर नहीं रखता। धनिकों को शुभ कार्य करने में श्रम नहीं करना होता। यानयुक्त अर्थात् सवारी वाले को चलने की थकान नहीं व्यापती। स्त्री का बन्धन लौहमय नहीं होता अर्थात् स्त्री-पुरुष का प्रेम बन्धन कच्चे धागे का, किन्तु दृढ़ माना जाता है ॥३३८-३५५॥

योा यस्मिन्कुशलः स तस्मिन् योक्तव्यः ॥ ३५६ ॥ दुष्कलत्रं मनस्विनां शरीरकर्शनम् ॥ ३५७ ॥ अप्रमत्तो दारान्निरीक्षेत ॥ ३५८ ॥ स्त्रीषु किंचिदपि न विश्वसेत् ॥ ३५९ ॥ न समाधिः स्त्रीषु लोकज्ञता च ॥ ३६० ॥ गुरुणां माता गरीयसी ॥ ३६१ ॥ सर्वावस्थासु माता भर्तव्या ॥ ३६२ ॥ वैदूष्यमलंकारेणाच्छाद्यते ॥ ३६३ ॥ स्त्रीणां भूषणं लज्जा ॥ ३६४ ॥ विप्राणां भूषणं वेदः ॥ ३६५ ॥ सर्वेषां भूषणं धर्मः ॥ ३६६ ॥ भूषणानां भूषणं सविनया विद्या ॥ ३६७ ॥ अनुपद्रवं देशमावसेत् ॥ ३६८ ॥ साधुजन-बहुलो देशः ॥ ३६९ ॥ राज्ञो भेतव्यं सार्वकालम् ॥ ३७० ॥ न राज्ञः परं दैवतम् ॥ ३७१ ॥ सुदूरमपि दहति राजवह्निः ॥३७२॥ रिक्तहस्तो न राजानमभिगच्छेत् ॥ ३७३ ॥ गुरुं च देवं च ॥ ३७४ ॥ कुटुम्बिनो भेतव्यम् ॥ ३७५ ॥

जो जिस कार्य में कुशल हो, उसे उसी कार्य में लगाना चाहिए। दुष्ट स्त्री मनस्वी पुरुष को भी चूम लेती है। स्त्री का निरीक्षण प्रमाद-रहित रूप से करे। स्त्रियों पर कदापि विश्वास न करे। स्त्रियों में निश्चलता और लोक व्यवहार का ज्ञान नहीं होता। गुरुजनों में माता सब से महती है। इसलिए सब अवस्थाओं में माता का भरण-पोषण करे। आभूषण विद्वत्ता को ढंक देते हैं। स्त्री का भूषण लज्जा है। ब्राह्मणों का भूषण वेद है। धर्म सभी का आभूषण है। सब भूषणों का भूषण विनययुक्त विद्या है। जिस देश में उपद्रव न हों, उसमें रहना उचित है। श्रेष्ठ देश वही है जहाँ अधिक सज्जनों का निवास हो। राजा से सदैव भयभीत रहे। राजा से अधिक कोई देवता नहीं है। क्योंकि राजा रूपी अग्नि दूर से ही भस्म कर डालती है। राजा के समक्ष खाली हाथ न जाय। गुरु और देवता के समक्ष भी खाली हाथ नहीं जाना चाहिए। कुटुम्बी से सदा भयभीत रहे ॥३५६-३७५॥

गन्तव्यं च सदा राजकुलम् ॥ ३७६ ॥ राजपुरुषैः सम्बन्धं कुर्यात् ॥ ३७७ ॥ राजदासी न सेवितव्या ॥ ३७८ ॥ न चक्षुषाऽपि राजानं निरीक्षेत ॥ ३७९ ॥ पुत्रे गुणवति कुटुम्बिनः स्वर्गः ॥ ३८० ॥ पुत्रा विधानां पारं गमयितव्याः ॥ ३८१ ॥ जनपदार्थं ग्रामं त्यजेत् ॥ ३८२ ॥ ग्रामार्थं कुटुम्बस्त्यज्यते ॥ ३८३ ॥ अतिलाभः पुत्रलाभः ॥ ३८४ ॥ दुर्गतेः पितरौ रक्षति स पुत्रः ॥ ३८५ ॥ कुलं प्रख्यापयीत पुत्रः ॥ ३८६ ॥ नानपत्यस्य स्वर्गः ॥ ३८७ ॥ या प्रसूते सा भार्या ॥ ३८८ ॥ तीर्थसमवाये पुत्रवतीमनुगच्छेत् ॥ ३८९ ॥ सतीर्थागमनाद्ब्रह्मचर्यं नश्यति ॥ ३९० ॥ न परक्षेत्रे बीजं विनिक्षिपेत् ॥ ३९१ ॥ पुत्रार्था हि स्त्रियः ॥ ३९२ ॥

राजकुल में आवागमन बनाये रखे। राजपुरुषों से सम्पर्क बनाये रहे राजसेविका से सम्बन्ध न रखे। राजा को नेत्र उठा कर कभी न देखे। गुणवान पुत्र से कुटुम्ब स्वर्ग बन जाता है। पुत्र को सर्व विद्याओं

में पारंगत करे। जनपद के हित के सामने ग्राम के हित को छोड़ दे। ग्राम के हित के समक्ष कुटुम्ब के हित की उपेक्षा करे। पुत्रलाभ सब से अधिक लाभ है। सत्पुत्र माता-पिता को दुर्गति से बचाता है। सत्पुत्र से कुल की ख्याति होती है। संतानहीन को स्वर्ग नहीं मिलता। सन्तान को जन्म देने वाली स्त्री ही भार्या होती है। तीर्थयात्रा में पुत्रवती पत्नी को साथ रखे। रजस्वला से मैथुन करने से ब्रह्मचर्य का नाश हो जाता है। पर स्त्री में गर्भाधान न करे। स्त्रियों के वरण का प्रयोजन पुत्रोत्पत्ति ही है ॥३७६-३९२॥

स्वदासीपरिग्रहो हि दासभावः ॥ ३९३ ॥ उपस्थितविनाशः पथ्यवाक्यं न शृणोति ॥ ३९४ ॥ नास्ति देहिनां सुखदुःखाभावः ॥ ३९५ ॥ मातरमिव वत्साः सुखदुःखानि कर्तारमेवानुगच्छन्ति ॥ ३९६ ॥ तिलमात्रमप्युपकारं शैलवन्मन्यते साधुः ॥ ३९७ ॥ उपकारोऽनार्येष्वकर्तव्यः ॥ ३९८ ॥ प्रत्युपकारभयादनार्यः शत्रुर्भवति ॥ ३९९ ॥ स्वल्पमप्युपकारकृते प्रत्युपकारं कर्तुमार्यो न स्वपिति ॥ ४०० ॥ न कदापि देवताऽवमतव्या ॥ ४०१ ॥ न चक्षुषः समं ज्योतिरस्ति ॥ ४०२ ॥ चक्षुर्हि शरीरिणां नेता ॥ ४०३ ॥ अपचक्षुषः किं शरीरेण ॥ ४०४ ॥ नाप्सु मूत्रं कुर्यात् ॥ ४०५ ॥ न नग्नो जलं प्रविशेत् ॥ ४०६ ॥ यथा शरीरं तथा ज्ञानम् ॥ ४०७ ॥ यथा बुद्धिस्तथा विभवः ॥ ४०८ ॥ अग्नावग्निं न निक्षिपेत् ॥ ४०९ ॥ तपस्विनः पूजनीयाः ॥ ४१० ॥

अपनी दासी से संसर्ग करना स्वयं को दास बनाना है। जिसका विनाश उपस्थित हो वह अपने हित की बात नहीं सुनता। शरीरधारी को सुख-दुःख की प्राप्ति होती ही रहती है। वत्स के माता के समीप पहुँचने के समान ही कर्ता के समीप सुख-दुःख और पुण्य-पाप पहुँच जाते हैं। सज्जन पर तिल जैसा उपकार किया जाय, तो वे उसे भी पर्वत जैसा विशाल मानते हैं। दुष्ट पुरुष पर उपकार न करे। क्योंकि वह प्रत्युपकार करने के भय से शत्रु बन जाता है। सज्जन स्वल्प

उपकार का भी बड़े से बड़ा प्रत्युपकार करने को प्रस्तुत रहता है। देवता का तिरस्कार न करे। चक्षु के समान कोई ज्योति नहीं होती। शरीरधारियों के नेता नेत्र ही हैं। नेत्रहीन को देह से क्या लाभ है? जल में मूत्र-त्याग अनुचित है। नगा होकर जल में न घुसे। जैसा देह हो, वैसा ही ज्ञान होता है। बुद्धि के अनुसार ही वैभव की प्राप्ति होती है। आग में आग न फेंके (अर्थात् तपस्वी पर कोप न करे)। क्योंकि तपस्वी पूजनीय होते हैं ॥३९३-४१०॥

परदारान्न गच्छेत् ॥ ४११ ॥ अन्नदानं भ्रूणहत्यामपि मार्ष्टि ॥ ४१२ ॥ न वेदबाह्यो धर्मः ॥ ४१३ ॥ कदाचिदपि धर्मं निषेवेत ॥ ४१४ ॥ स्वर्गं नयति सूनृतम् ॥ ४१५ ॥ नास्ति सत्यात्परं तपः ॥ ४१६ ॥ सत्यं स्वर्गस्य साधनम् ॥ ४१७ ॥ सत्येन धार्यते लोकः ॥ ४१८ ॥ सत्याद्देवो वर्षति ॥ ४१९ ॥ नानृतात्पातकं परम् ॥ ४२० ॥ न मोमांस्या गुरवः ॥ ४२१ ॥खलत्वं नापेयात् ॥४२२॥ नास्ति खलस्य मित्रम् ॥ ४२३ ॥लोकयात्रा दरिद्रं बाधते ॥४२४॥ अतिशूरो दानशूरः ॥ ४२५ ॥ गुरुदेवब्राह्मणेषु भक्तिर्भूषणम् ॥ ४२६ ॥ सर्वस्य भूषणं विनयः ॥ ४२७ ॥ अकुलोनोऽपि विनीतः कुलीनाद्विशिष्टः ॥ ४२८ ॥ आचारादायुर्वर्धते कीर्तिश्च ॥ ४२९ ॥ प्रियमप्यहितं न वक्तव्यम् ॥ ४३० ॥

परस्त्री से समागम न करे। अन्न का दान भ्रूणहत्या के पाप का मार्जन कर देता है। वेद से बाहर का धर्म अमान्य होता है। जहाँ तक संभव हो, धर्म का आचरण करना चाहिए। सत्याचरण स्वर्ग में पहुँचा देता है। सत्य से अधिक तप नहीं होता। सत्य स्वर्ग का साधन है। सत्य ही संसार का आधार है। सत्य से ही देवराज वर्षा करते हैं। अनृत अर्थात् झूठ से अधिक कोई पाप नहीं है। गुरुजनों की आलोचना न करे। दुष्टता का कभी उपयोग न करे। क्योंकि दुष्ट का मित्र कोई नहीं होता। दरिद्र को आजीविका भी कठिन होती है। दानवीर ही महान् वीर है। गुरु, देवता और ब्राह्मणों में भक्ति मनुष्य-

मात्र का आभूषण है। विनय सभी का भूषण है। अकुलीन भी विनीत हो तो वह उद्दण्ड कुलीन से श्रेष्ठ समझा जाता है। सदाचार से आयु और कीर्ति की वृद्धि होती है। अहितकर वचन प्रिय भी हो तो न बोले ॥४११-४३०॥

बहुजनविरुद्धमेकं नानुवर्तेत ॥ ४३१ ॥ न दुर्जनेषु भागधेयः कर्तव्यः ॥ ४३२ ॥ न कृतार्थेषु नीचेषु सम्बन्धः ॥ ४३३ ॥ ऋण-शत्रुव्याधिष्वशेषः कर्तव्यः ॥ ४३४ ॥ भूत्यानुवर्तनं पुरुषस्य रसा-यनम् ॥ ४३५ ॥ नार्थिष्ववज्ञा कार्या ॥ ४३६ ॥ दुष्करं कर्म कार-यित्वा कर्तारमवमन्यते नीचः ॥ ४३७ ॥ नाकृतज्ञस्य नरकान्नि-वर्तनम् ॥ ४३८ ॥ जिह्वायत्तौ वृद्धिविनाशौ ॥ ४३९ ॥ विषामृतस्था-योराकरी जिह्वा ॥ ४४० ॥ प्रियवादिनो न शत्रुः ॥ ४४१ ॥ स्तुता अपि देवतास्तुष्यन्ति ॥ ४४२ ॥ अनृतमपि दुर्वचनं चिरं तिष्ठति ॥ ४४३ ॥ राजद्विष्टं न च वक्तव्यम् ॥ ४४४॥ श्रुतिसुखा-त्कोकिलापात्तुष्यन्ति ॥ ४४५ ॥ स्वधर्महेतुः सत्पुरुषः ॥ ४४६ ॥ नास्त्यर्थिनो गौरवम् ॥४४७ ॥ स्त्रीणां भूषणं सौभाग्यम् ॥४४८ ॥ शत्रोरपि न पातनीया वृत्तिः ॥४४९॥ अप्रयत्नोदकं क्षेत्रम्॥४५०॥

अनेक व्यक्तियों से जिसका विरोध हो, उस एक मनुष्य का साथ न दे। दुर्जन को कभी भागीदार न करे। नीच पुरुष कृतार्थ भी हो तो उसकी संगति न करे। ऋण, शत्रु और रोग को सर्वथा नष्ट कर दे। कल्याण मार्ग पर चलना ही श्रेष्ठ रसायन है। याचक का तिर-स्कार न करे। नीच मनुष्य दुष्कर कार्य लेकर भी कार्य करने वाले का तिरस्कार करता है। कृतघ्न की गति नरक से अन्यत्र कहीं नहीं है। अपनी वृद्धि और अवनति जिह्वा पर निर्भर है। क्योंकि जिह्वा ही विष और अमृत की खान है। प्रियवादी का कोई शत्रु नहीं होता। स्तुति से देवता भी प्रसन्न रहते हैं। झूठा दुर्वचन चिरकाल तक याद रहता है। राजा से द्वेष की बात न कहे। काली कोयल की भी कर्ण-प्रिय वाणी सबको प्रिय लगती है। स्वधर्म पालन से मनुष्य सत्पुरुष

बना रहता है। याचना करने वाले का गौरव नहीं रहता। स्त्री का आभूषण सौभाग्य ही है। जीविका शत्रु की भी नष्ट नहीं करनी चाहिए। विशेष प्रयत्न के बिना जहाँ जल निकल आवे, वही खेत अपना समझे ॥४३१-४५०॥

एरण्डमवलम्ब्य कुञ्जरं न कोपयेत् ॥ ४५१ ॥ अतिप्रवृद्धा शाल्मली वारणस्तम्भो न भवति ॥ ४५२ ॥ अतिदीर्घोऽपि कर्णिकारो न मुसली ॥४५३॥ अतिदीप्तोऽपि खद्योतो न पावकः ॥४५४॥ न प्रवृद्धत्वं गुणहेतुः ॥ ४५५ ॥ सुजीर्णोपि पिचुमन्दो न शंकुलायते ॥ ४५६ ॥ यथा बीजं तथा निष्पत्तिः ॥ ४५७ ॥ यथा श्रुतं तथा बुद्धिः ॥ ४५८ ॥ यथा कुलं तथाऽऽचारः ॥ ४५९ ॥ संस्कृतः पिचुमन्दः सहकारो न भवति ॥ ४६० ॥ न चागतं सुखं त्यजेत् ॥४६१॥ स्वयमेव दुखःमधिगच्छति ॥ ४६२ ॥ रात्रि चारणं न कुर्यात् ॥ ४६३ ॥ न चार्धरात्रं स्वपेत् ॥ ४६४ ॥ तद्विद्वद्भिः परीक्षेत ॥ ४६५ ॥ परगृहमकारणतो न प्रविशेत् ॥ ४६६ ॥ ज्ञात्वापि दोषमेव करोति लोकः ॥ ४६७ ॥ शास्त्रप्रधाना लोकवृत्तिः ॥ ४६८ ॥ शास्त्राभावे शिष्टाचारमनुगच्छेत् ॥ ४६९ ॥ नाचरिताच्छास्त्रं गरीयः ॥ ४७० ॥

एरण्ड वृक्ष के भरोसे पर हाथी को क्रुद्ध न करे। शाल्मली वृक्ष बड़ा होने पर भी हाथी को बाँधने के काम में नहीं आ सकता। कनेर का वृक्ष विशाल हो तो भी उससे मूसल नहीं बनाया जा सकता। जुगनू कितना भी दीप्तिमान हो, किन्तु आग नहीं बन सकता। अधिक वैभवशाली होने से ही कोई गुणवान नहीं माना जा सकता। अत्यन्त जीर्ण नीम भी शंकुल अर्थात् सरोंता नहीं बन सकता। बीज के समान ही फल होता है। स्वाध्याय के अनुसार ही बुद्धि होती है। कुल के अनुरूप ही आचार होता है। संस्कार करने पर भी नीम आम नहीं हो सकती, उपलब्ध सुख का त्याग न करे। मनुष्य अपने कर्मों से ही दुख भोगने को विवश होता है। रात्रि के समय व्यर्थ विचरण न करे।

अर्द्ध रात्रि में न सोवे। विद्वानों के समक्ष ब्रह्म विषयक चर्चा करे। पराये घर में अकारण प्रवेश न करे। जानते हुए भी मनुष्य अपराध करते ही हैं। लोक व्यवहार भी शास्त्र के अनुकूल ही होना चाहिए। शास्त्रज्ञान के अभाव में श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण के अनुसार चले। सदाचार से अधिक कोई भी शास्त्र नहीं है ॥४५१-४७०॥

दूरस्थमपि चारचक्षुः पश्यति राजा ॥ ४७१ ॥ गतानुगतिको लोकः ॥ ४७२ ॥ यमनुजीवेत्तं नापवदेत् ॥ ४७३ ॥ तपः सार इन्द्रियनिग्रहः ॥ ४७४ ॥ दुर्लभः स्त्रीबन्धनान्मोक्षः ॥ ४७५ ॥ स्त्री नाम सर्वाशुभानां क्षेत्रम् ॥ ४७६ ॥ न च स्त्रीणां पुरुषपरीक्षा ॥ ४७७ ॥ स्त्रीणां मना क्षणिकम् ॥ ४७८ ॥ अशुभद्वेषिणः स्त्रीषु न प्रसक्ताः ॥ ४७९ ॥ यज्ञफलज्ञास्त्रिवेदविदः ॥ ४८० ॥ स्वर्गस्थानं न शाश्वतं यावत्पुण्यफलम् ॥ ४८१ ॥ न च स्वर्गपतनात्परं दुःखम् ॥ ४८२ ॥ देही देहं त्यक्त्वा ऐन्द्रं पदं न वांछति ॥ ३८३ ॥ दुःखानामौषधं निर्वाणम् ॥ ४८४ ॥ अनार्यसम्बधाद्वरमार्यशत्रुता ॥ ४८५ ॥

राजा अपने गुप्तचरों के द्वारा सुदूर की वस्तु भी देख सकता है। लोग एक के पीछे दूसरे क्रम से बिना विचारे ही चल देते हैं। जिससे जीविका चले, उसकी कदापि निन्दा न करे। तपों का सार इन्द्रिय-निग्रह है। स्त्री के बन्धन से मुक्त होना दुष्कर है। समस्त अशुभों का उत्पत्ति स्थान स्त्री है। स्त्रियों की परीक्षा पुरुष नहीं कर पाते। स्त्री का मन क्षण-क्षण पर परिवर्तनशील है। अशुभ कर्मों से बचने वाले पुरुष स्त्रियों के जाल में नहीं फँसते। तीन वेदों के ज्ञाता यज्ञफल के के भी ज्ञाता होते हैं। जब तक पुण्य का फल रहता है तभी तक स्वर्ग में निवास रहने के कारण वह स्थायी नहीं होता। स्वर्ग से गिरने पर परम दुःख होता है। शरीर छोड़ने के पश्चात् प्राणी इन्द्रपद न चाह कर, मोक्ष की ही इच्छा करता है। सम्पूर्ण दुःखरूपी व्याधि की परम

औषधि मोक्ष ही है। अनार्य (नीच) से मित्रता की अपेक्षा आर्य (उच्च) पुरुष से शत्रुता भी श्रेष्ठ होती है ॥४७१-४८५॥

निहन्ति दुर्वचनं कुलम् ॥ ४८६ ॥ न पुत्रसंस्पर्शात्परं सुखम् ॥ ४८७ ॥ विवादे धर्ममनुस्मरेत् । ४८८ । निशान्ते कार्यं चिन्तयेत् ॥ ४८९ ॥ प्रदोषे न संयोगः कर्तव्यः ॥ ४९० ॥ उपस्थितविनाशो दुर्नयं मन्यते ॥ ४९१ ॥ क्षीरार्थिनः किं करिण्या ॥४९२॥ न दानसमं वश्यम् ॥ ४९३ ॥ परायत्तेषूत्कण्ठां न कुर्यात् ॥४९४॥ असत्समृद्धिरसद्भिरेव भुज्यते ॥ ४९५ ॥ निम्बफलं काकैरेव भुज्यते ॥ ४९६ ॥ नाम्भोधिस्तृष्णामपोहति ॥ ४९७ ॥ बालुका अपि स्वगुणमाश्रयन्ते ॥ ४९८ ॥ सन्तोऽसत्सु न रमन्ते ॥ ४९९ ॥ हंसः प्रेतवने न रमते ॥ ५०० ॥

दुर्वचन कुल को भी डुबा देते हैं। पुत्र के स्पर्श में परम सुख निहित है। विवाद उपस्थिति होने पर धर्मानुकूल कार्य करना चाहिए। रात्रि के अवसान काल (अर्थात् प्रातःकाल) में नित्य प्रति अपने उचित-अनुचित कार्यों पर विचार करे। सायंकाल में समागम न करे। विनाश काल की समीपता वाला मनुष्य अन्यान्य कार्य करने लगता है। दूध की इच्छा वाले को हथिनी से क्या प्रयोजन ? दान के समान वश में करने का अन्य कोई उपाय नहीं है। परायी वस्तु पर मन न चलावे। दुर्जनों के वैभव का भोग दर्जन ही करते है। नीम के फल को काक ही भक्षण करते हैं। समुद्र कभी प्यास नहीं बुझा सकता। बालू भी अपने ही गुणों का अवलम्बन करती है। साधुजन असाधुओं से प्रीति नहीं रखते। हंस कभी श्मशान में विहार नहीं करते ॥४८६-५००॥

अर्थार्थं प्रवर्तते लोकः ॥ ५०१ ॥ आशया बध्यते लोकः॥५०२॥ न चाशापरैः श्रीः सह तिष्ठति ॥ ५०३ ॥ आशापरे न धैर्यम् ॥ ५०४ ॥ दैन्यान्मरणमुत्तमम् ॥ ५०५ ॥ आशा लज्जां व्यपोहति ॥ ५०६ ॥ न मात्रा सह वासः कर्तव्यः ॥ ५०७ ॥ आत्मा न स्तोतव्यः ॥५०८॥ न दिवा स्वप्नं कुर्यात् ॥ ५०९ ॥ न चासन्नमपि

पश्यत्यैश्वर्यान्धो न शृणोतीष्टं वाक्यम् ।। ५१० ।। स्त्रीणां न भर्तुः परं दैवतम् ।। ५११ ।। तदनुवर्तनमुभयसुखम् ।। ५१२ ।। अतिथिमभ्यागतं पूजयेद्यथाविधि ।। ५१३ ।। नास्ति हव्यस्य व्याघातः ।। ५१४ ।। शत्रुर्मित्रवत्प्रतिभाति ।। ५१५ ।। मृगतृष्णा जलवद्भाति ।। ५१६ ।। दुर्मेधसामसच्छास्त्रं मोहयति ।। ५१७ ।। सत्संगः स्वर्गवासः ।। ५१८ ।। आर्यः स्वमिव परं मन्यते ।। ५१९ ।। रूपानुवर्ती गुणः ।। ५२० ।।

धन के लिए ही संसार प्रवृत्त होता है। संसार के सभी जीव आशा के बन्धन में पड़े हैं। केवल आशा के भरोसे रहने वालों को लक्ष्मी प्राप्त नहीं हो पाती। आशावान को धैर्य नहीं होता। दरिद्र रह कर जीवित रहने से तो मर जाना ही श्रेष्ठ है। आशा लज्जा को हटा देती है। एकान्त में माता के पास भी न रहे। अपनी प्रशंसा स्वयं न करे। दिन में न सोवे। ऐश्वर्य से अन्धे हुए को निकटस्थ वस्तु भी दिखाई नहीं देती और न वह अपने हित की बात ही सुनता है। स्त्री के लिए पति से अधिक कोई देवता नहीं है। पति की अनुवर्तिनी पत्नी को इहलोक-परलोक दोनों में सुख मिलता है। अतिथि और अभ्यागत का यथाविधि सत्कार करे। देवताओं के निमित्त दिया हुआ हव्य कभी व्यर्थ नहीं होता। शत्रु भी कभी मित्र के समान प्रतीत होता है। मृग को तृष्णा (प्यास) में बालू भी जल जैसी प्रतीत होती है। दुर्बुद्धि मनुष्य को असत् शास्त्र भ्रमा कर अपने वश में कर लेते हैं। सज्जनों का संग ही स्वर्ग का वास है। आर्य (उच्च) पुरुष दूसरों को भी अपने जैसा ही मानते हैं। वस्तु में रूप के अनुसार ही गुण होता है ।।५०१-५२०।।

यत्र सुखेन वर्तते तदेव स्थानम् ।। ५२१ ।। विश्वासघातिनो न निष्कृतिः ।। ५२२ ।। दैवायत्तं न शोचेत् ।। ५२३ ।। आश्रितदुःखमात्मन इव मन्यते साधुः ।। ५२४ ।। हृद्गतमाच्छाद्यान्यद्वदत्यनार्यः ।। ५२५ ।। बुद्धिहीनः पिशाचतुल्यः ।। ५२६ ।। असहायः पथि न गच्छेत् ।। ५२७ ।। पुत्रो न स्तोतव्यः ।। ५२८ ।। स्वामी

स्तोव्योऽनुजीविभिः ॥ ५२९ ॥ धर्मकृत्येष्वपि स्वामिन एव घोषयेत् ॥ ५३० ॥ राजाज्ञां नीतिलंघयेत् ॥ ५३१ ॥ यथाज्ञप्तं तथा कुर्यात् ॥ ५३२ ॥ नास्ति बुद्धिमतां शत्रुः ॥ ५३३ ॥ आत्मच्छिद्रं न प्रकाशयेत् ॥ ५३४ ॥ क्षमावानेव सर्वं साधयति ॥ ५३५ ॥ आपदर्थं धनं रक्षेत् ॥ ५३६ ॥ साहसवतां प्रियं कर्तव्यम् ॥ ५३७ ॥ श्वः कार्यमद्य कुर्वीत ॥ ५३८ ॥ आपराह्णिकं पूर्वाह्ण एव कर्तव्यम् ॥ ५३९ ॥

जो जहाँ सुख में निवास कर सके, उसके लिए वही स्थान उपयुक्त है। विश्वासघाती का कभी उद्धार नहीं हो सकता। दैवाधीन कार्य के विषय में सोच न करे। साधु पुरुष आश्रितों के दुःख को अपना ही दुःख समझते हैं। अनार्य पुरुष मन के भाव छिपा कर प्रकट में कुछ और ही कहते हैं। बुद्धिहीन मनुष्य पिशाच के तुल्य होता है। सहायकों के बिना अर्थात् अकेला ही यात्रा न करे। अपने पुत्र की स्तुति न करे। भृत्यों को स्वामी का गुणगान करना चाहिए। सेवकगण धर्म-कार्य करने में भी अपने स्वामी की ही कृपा बतावें। राजाज्ञा उल्लंघन न करे। राजा जो आज्ञा दे उसी के अनुसार कार्य करना चाहिए। बुद्धिमान का कोई शत्रु नहीं होता। अपने छिद्रों को प्रकट न करे। क्षमावान के सब कार्य बन जाते हैं। आपत्काल के लिए धन की रक्षा करे। साहसी पुरुष कर्त्तव्य प्रिय होते हैं। कल किये जाने वाले कार्य को आज ही करे। दोपहर के पश्चात् किये जाने वाले कार्य को दोपहर से पूर्व ही कर ले ॥५२१-५३९॥

व्यवहारानुलोमो धर्मः ॥ ५४० ॥ सर्वज्ञता लोकज्ञता ॥ ५४१ ॥ शास्त्रज्ञोऽप्यलोकज्ञो मूर्खतुल्यः ॥ ५४२ ॥ शास्त्रप्रयोजनं तत्त्वदर्शनम् ॥ ५४३ ॥ तत्त्वज्ञानं कार्यमेव प्रकाशयति ॥ ५४४ ॥ व्यवहारे पक्षपातो न कार्यः ॥ ५४५ ॥ धर्मादपि व्यवहारो गरीयान् ॥ ५४६ ॥ आत्मा हि व्यवहारस्य साक्षी ॥५४७॥ सर्वसाक्षी ह्यात्मा ॥ ५४८ ॥ न स्यात्कूटसाक्षी ॥ ५४९ ॥ कूटसाक्षिणो नरके पतन्ति ॥ ५५० ॥ प्रच्छन्नपापानां साक्षिणो महा-

भूतानि ॥ ५४१ ॥ आत्मनः पापमात्मैव प्रकाशयति ॥ ५५२ ॥ व्यवहारेऽन्तर्गतमाचारः सूचयति ॥ ५५३ ॥ आकारसंवरणं देवानामशक्यम् ॥ ५५४ ॥ चोरराजपुरुषेभ्यो वित्तं रक्षेत् ॥ ५५५ ॥

व्यवहार के अनुसार ही धर्म होगा । लोकज्ञता अर्थात् सांसरिक व्यवहार का ज्ञान ही सर्वज्ञता अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञान है । शास्त्रज्ञ होकर भी जो लोकज्ञ न हो वह मूर्ख के ही समान है । शास्त्र का प्रयोजन सब वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान कराना है । कार्य ही तत्व को प्रदर्शित करता है । व्यवहार में पक्षपात कदापि न करे । व्यवहार धर्म से भी महान होता है । आत्मा ही व्यवहार का साक्षी है । क्योंकि आत्मा ही सर्वसाक्षी रूप से विद्यमान होता है । कपट साक्षी (झूँठा गवाह) न बने । क्योंकि कपट साक्षी नरक में गिरता है । छिप कर पाप करने वाले के साक्षी पंचमहाभूत होते हैं । अपने द्वारा किये हुए पाप को आत्मा स्वय प्रकट कर देती है । व्यवहार के समय आकृति ही आन्तरिक भावों को सूचित कर देती है । मनोभावों को प्रकट करने वाली आकृति को छिपाने में देवता भी समर्थ नहीं होते । चोरों और राजपुरुषों से सदैव अपने धन की रक्षा करनी चाहिए ॥५४०-५५५॥

दुर्दर्शना हि राजानः प्रजाः नाशयन्ति ॥ ५५६ ॥ सुदर्शना हि राजानः प्रजाः रजयन्ति ॥ ५५७ ॥ न्याययुक्तं राजानं मातरं मन्यन्ते प्रजाः ॥ ५५८ ॥ तादृशः स राजा इह सुखं ततः स्वर्गमाप्नोति ॥ ५५९ ॥ अहिंसालक्षणो धर्मः ॥५६०॥ स्वशरीरमपि परशरीरं मन्यते साधुः ॥ ५६१॥ मांसभक्षणमयुक्तं सर्वेषाम् ॥५६२॥ न संसारभयं ज्ञानवताम् ॥ ५६३ ॥ विज्ञानदीपेन संसारभयंनिवर्तते ॥ ५६४ ॥ सर्वमनित्यं भवति ॥ ५६५॥ कमिशकृन्मूत्रभाजनं शरीरं पुण्यपापजन्महेतु ॥५६६॥ जन्ममरणादिषु दुःखमेव ॥५६७॥ तेभ्यस्ततुं प्रयतेत ॥ ५६८ ॥ तपसा स्वर्गमाप्नोति ॥ ५६९ ॥ क्षमायुक्तस्य तपो विवर्धते ॥ ५७० ॥ तस्मात्सर्वेषां कार्यसिद्धिर्भवति ॥ ५७१ ॥

कठिनता से दर्शन देने वाले राजा की प्रजा नष्ट (अथवा विरुद्ध) हो जाती है। निरन्तर प्रजा से सम्पर्क रख कर जो राजा उसके सुख-दुःख की बात सुनता है, उससे प्रजा सदैव प्रसन्न रहती है। न्याय-वान राजा को प्रजा माता के समान समझती है। इस प्रकार का राजा इहलोक में सुख और मरने पर स्वर्ग प्राप्त करता है। अहिंसा प्रमुख धर्म है। साधुजन अपने देह को भी पराया ही मानते हैं। मांस-सेवन सभी के लिए अनुचित है। ज्ञानवानों को संसार का डर नहीं होता। विज्ञानदीप से संसार का भय दूर हो जाता है। संसार में सब कुछ अनित्य है। कीड़े और मल-मूत्र का पात्र यह देह ही विभिन्न पाप-पुण्य और जन्म का कारण होता है। जन्म-मरण में दुःख ही दुःख होते हैं। इसलिए जन्म-मरण से मुक्त होने का उपाय करे। तप से स्वर्ग प्राप्त होता है। क्षमावान के तप में सदा वृद्धि होती रहती है। तप से भी सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं॥५५६-५७१

चाणक्यसूत्र समाप्त

पारिभाषिक शब्दावलि

अकरद—कर न देने वाला
अक्षण संचार—असमय घूमना
अकृत क्षेत्र—कृषि अयोग्य भूमि
अकोप्य—खरा सिक्का
अटवीबल—भील-सेना
अत्यय—अर्थदण्ड
अनय—कुनीति
अनुत्थान—आलस्य, प्रमाद
अनुनय—अनुरोध
अन्तपाल – सीमापाल
अनूप—जलमय प्रदेश
अपदान—प्रशस्त कर्म
अपनय—योगक्षेम की अप्राप्ति
अपसर्प—गुप्तचर के कार्य
अप्राप्तव्यवहार—अवयस्क
अवक्रीत—किरायेदार
अवक्रेता—मकान मालिक
अवमर्द—शत्रु दुर्ग पर अधिकार
अभित्यक्त—प्राणदंड प्राप्त
अमित्रबल—शत्रुसेना
अय—इच्छित फल की प्राप्ति
अर्थत्रिवर्ग—धर्म, अर्थ, काम
आजीव—जीविका
आटविक—वनरक्षक
आन्वीक्षिकी—अध्यात्मविद्या
आवेशिनी—स्वर्णकार
आयुधागार—शस्त्रभंडार
आयशरीर—आय के साधन
आहित—बन्धक पुरुष
उपधा—छलयुक्त परीक्षा
उपनिपात—दैवी संकट
उपांशुदण्ड—गुप्त हत्या
उरस्य—सेना का मध्य भाग
औदनिक—पक्वान्न विक्रेता
कक्ष—व्यूह के पीछे के दोनों पार्श्व
कर्मान्त—कारखाना
कर्शन—कष्ट देना
कारु—मोटे कार्य का कर्मचारी
क्रीत—खरीदा हुआ
कूटरूप—जाली सिक्का
कूटमुद्रा—जाली मुहर
कूटयुद्ध—छलयुद्ध
कूटशासन—जाली लेख
कूटसाक्षी—मिथ्या गवाह

कौमारभृत्य—बालसेवक
कौशिकस्त्री—सँपेरन
खल—ओखली
खलभूमि—बोने योग्य खेत
गूढ़पुरुष—गुप्तचर
गोपुर—दुर्ग एवं नगर का द्वार
ग्रामकूट—ग्राम प्रमुख
ग्रामिक—ग्रामपाल
घाणपिण्याक—खली
चलसंधि—अस्थिर संधि
चक्रपथ—गाड़ी का मार्ग
चारक—हवालात
चार्या—चलने का मार्ग
चित्रघात—कष्ट पूर्वक वध
जांगलीविद्—विष चिकित्सक
टंक—छेनी
ड. र—विप्लव
डामरिक—विप्लवकारी
डिम्ब—प्रजा का विद्रोह
तरशुल्क—पार उतरने का भाड़ा
तीक्ष्ण—साहसी गुप्तचर
तुन्नवाय—दर्जी
त्रैविद्य—तीन वेदों का ज्ञाता
दण्डपाल—सेना-रक्षक
दशकुली—दस परिवार का समूह
दशग्रामी—दस ग्राम का समूह
दशवर्गिक—दस सैनिकों का नेता
दायक—करदाता
दायाद--पैतृक संपत्ति का अधिकारी
दुर्गकर्म—दुर्गनिर्माण
दूष्य—राजद्रोही
द्यूत—जुआ
द्रव्यवन—काष्ठादि का वन
धर्मस्थ—न्यायाधीश
धारणिक—ऋणी
नागरिक—नगराधीश
नायक—दस सेनापतियों का प्रमुख अधिकारी
निबन्ध पुस्तक—बही
नियामक—जलपोत चालक
निशान्त—राजभवन
पक्ष—सेना के अग्रिम दोनों पार्श्व
पण—चाँदी का सिक्का विशेष
पदाति—पैदल सैनिक
प्रकर्म—कन्या से व्यभिचार
प्रतिवर्णक—नमूना
प्रतिभू—जमानती
प्रत्यभियोग—उल्टा आरोप
प्रतोली—रथमार्ग
प्रथम साहस—२५० पण का दंड
प्रहवण—प्रीतिभोज
पादपथ—पैदल का मार्ग

पार्ष्णि—सेना का पृष्ठभाग
प्रलम्भन—शत्रु को धोका देना
प्राप्तव्यवहार—वयस्क
पूरमुख्य—नगर प्रमुख
पुराणचोर—पहिले का तस्कर
फलबाट—फल का उद्यान
बन्धनागार—कारावास
वर्ण—चारों जाति
वर्णक—छोटी स्वर्णमुद्रा
वर्धकि—बढ़ई
वास्तु—गृह, क्षेत्र, उपवनादि
विनय—शिक्षा, संयम, नम्रता
विष्टि—श्रमिकवर्ग
विवीत—पशुओं का चारागाह
वीवध—वस्तुओं का आयात
वेतन—पारिश्रमिक
वैदेहक—व्यापारी
वैयावृत्यकर—खुदरा व्यापारी
व्यवहारप्रापण—वयस्क नर-नारी
व्याधिसंस्था—रोगीशाला
भक्त—कर्मचारियों का भत्ता
भाटक—भाड़ा
भृतक—वेतन पाने वाला श्रमिक
भृतकबल—वैतनिक सेना
मदनरस—उन्मत्त बनाने वाला योग
मध्यमसाहस—५०० पण का दण्ड

मंत्रशक्ति—मंत्रणा से प्राप्त शक्ति
महामात्य—प्रधान मन्त्री
माषक—तांबे का सिक्का विशेष
मित्रबल—मित्र राजा की सेना
मूलस्थान—राजधानी
मौहूर्तिक—ज्योतिषी
यान—शत्रु पर चढ़ाई
यातव्य—जिस पर चढ़ाई की जाय
युक्त—राजकर्मचारी
युग्य—जुतने वाले पशु
योग—कपट प्रयोग
योगप्रयोग—गुप्तचरों की नियुक्ति
रथव्यूह—रथों से बनाया व्यूह
राजव्यंजन—राजा रूपी अन्य पुरुष
राजर्षि—अनासक्त राजा
रिक्थ—पैतृक सम्पत्ति
रूप—रुपया
रूपाजीवा—वेश्या आदि
लक्षणाध्यक्ष—टकसाल का अधिकारी
लोकयात्रा—जीविका
शासन—राजलेख
शुद्धवध—विना क्लेश मारना
शून्यपाल—सूनीराजधानी का रक्षक
शौण्डिक—मद्य विक्रेता
सत्र—दुर्गादि संकटकालीन स्थान
सत्री—छात्र रूपी गुप्तचर

सन्धि—समझौता
सन्निधान—गढ़ा हुआ धन
समवाय—समूह, झुण्ड
सर्वाधिकरण—सर्व शासन विभाग
सहज शत्रु—पड़ौसी राजा
सहोदक—सदा जल वाला बाँध
सामवायिक—राजसघ
सार्थं—व्यापारी संघ
साहस—बल पूर्वक अपहरण
सिक्थ—दागी मोती
सीता—धान्य, फसल
सीमावरोध—सीमा का पत्थर
सुवर्ण—१६ माशे की स्वर्णमुद्रा
सुषमा—श्रेष्ठ फसल
सूत्रग्राहक—सारथी
सूचक—समाचारदाता दूत
सूद—माँस पकाने वाला
सेतु—पुल, बाँध
सैन्धविका—सिन्धु देश की मिट्टी
सैनिक—सीमारक्षक
सौभिक—जादूगर
सौरिक—मदिरापान गोष्ठी
स्कंध—विभाजन
स्वामी—राजा, मालिक
स्त्रीबंधन—विवाह
संघी—संघ के सदस्य
संयानपथ—जलमार्ग
संस्थ—गुप्तचर विशेष
संश्रय—सर्व समर्पण
ह्रणि—झील, नहर
ह्रणोपाय—राजधन हरने का ढंग
हर्ष—प्रसन्नता
हलमुख—शक्ति आदि शस्त्र
हस्तपूरण—तोल के बाद का रुख
हस्तिकर्म—हाथी के कार्य
हस्तिनख—हाथी के नख जैसा
हस्तिपरिघ—हाथी-प्रवेश का स्थान
हस्तिवन—हाथियों का जंगल
हस्तिव्यूह—हाथियों से निर्मित व्यूह
हस्तिवाहा—हाथी-परिचारक
हस्त्यध्यक्ष—हाथीशाला-अधिकारी
हाटक—सोना
हिरण्य—नकद धन, सोना
हीनसन्धि—कमजोर से सन्धि
हेड—क्रोध करना
हेमापसार—सुनार द्वारा स्वर्ण चोरी
हैमन—हेमन्त के अन्न
हैमन्य—हिमालय पर उत्पन्न

सम्पूर्ण

भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम धर्म-ग्रन्थ

१—ऋग्वेद ४ खण्ड	...	३६)
२—अथर्व वेद २ खण्ड	...	१८)
३—यजुर्वेद	...	६)
४—सामवेद	...	८)
५—वेद महाविज्ञान	...	१२)
६—शतपथ ब्राह्मण	...	१०)
७—१०८ उपनिषद् ३ खण्ड	...	३०
८—उपनिषद् रहस्य	...	६
९—बृहदारण्यकोपनिषद्	...	४
१०—छान्दोग्योपनिषद्	...	४
११—वैशेषिक दर्शन	...	५)
१२—न्याय दर्शन	...	५,७५
१३—सांख्य दर्शन	...	५)७५
१४—योग दर्शन	...	५)७५
१५—वेदान्त दर्शन	...	५)७५
१६—मीमांसा दर्शन	...	७)५
१७—२० स्मृतियां २ खण्ड	...	
१८—मनुस्मृति	...	६)७।
१९—योग वासिष्ठ २ खण्ड	...	२४)
२०—कौटिल्य अर्थशास्त्र	...	१२)
२१—ब्रह्म सूत्र	...	१०)
२२—गृह्य सूत्र संग्रह	...	१०)
२३—पञ्चदशी	...	१२)७५
२४—विचार सागर	...	११)
२५—विचार चन्द्रोदय	...	२)
२६—पञ्चीकरण	...	३)५०
२७—उपदेश साहस्री	...	५)७५
२८—वृत्ति प्रभाकर	...	७)५०
२९—सौन्दर्य लहरी	...	४)७५

प्रकाशक :—संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेद नगर,
बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)